ISSN : 2320-7604
RNI NO.: DELHIN/2008/27588
UGC Care Approved Research Journal
October, 21, Part 1, Serial No. 143

त्रैमासिक

बहुरि नहिं आवना

अंक-26
जनवरी, 2024 - मार्च, 2024, भाग-2
मूल्य : 200 रुपए

आजीवक महासंघ ट्रस्ट द्वारा निर्गत
संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य

वर्ष : 15
अंक : 26
अंक : जनवरी, 2024 - मार्च, 2024, भाग-2
संस्थाओं के लिए प्रति कापी : 100 रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क : 3000 रुपए
आजीवन सदस्यता : 10000 रुपए

संपादकीय पता
जे-5, यमुना अपार्टमेंट,
होली चौक, देवली,
नई दिल्ली-110080
मोबाइल : 09868701556
Email: bahurinahiawana14@gmail.com
Website-www.bahurinahiawana.in

Advertisement Rate
Full Page Rs. 20,000/-
Half Page Rs. 10,000/-
Qtr. Page Rs. 5,000/-
Back Cover Rs. 40,000/- (four colour)
Inside Front Rs.35,000/- (four colour)
Inside Back Rs. 35,000/- (four colour)

Mechanical Data
Overall Size 27.5 cms x 21.5 cms
Full Pages Print Area 24 cms x 18 cms
Half Page 12 cms x 18 cms or
24 cms x 9 cms
Qtr Page12 cms x 9 cms

प्रधान संपादक
प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन'
संपादक
प्रो. दिनेश राम
सहायक संपादक
डा. अनिरुद्ध कुमार 'सुधांशु'
डा. तान्या लांबा
भाषा सहयोग
डा. हेमंत कुमार 'हिमांशु'
डा. राजकुमार राजन
कानूनी सलाहकार
एड. सतपाल विर्दी
एड. संदीप दहिया

संपादकीय सलाहकार एवं विषय विशेषज्ञ
डा. वी. पी. सिंह, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, बलवीर माधोपुरी, प्रो. फूलबदन, प्रो. नामदेव, प्रो. सुजीत कुमार, डा. चन्देश्वर, डा. दीनानाथ, डा. मोहन चावड़ा, विजय सौदायी, डा. यशवंत वीरोदय, डा. सुरेश कुमार, डा. मनोज दहिया

अप्रवासी समाज, संस्कृति और साहित्य के विशेषज्ञ
ओमप्रकाश वाघा, नरेन्द्र खेड़ा, राम बाबू गौतम, डा. गुलशन नजरोवना जुगुरोवा, डॉ. बयात रहमातोव, डा. सिराजुद्दीन नूरमातोव

* पत्रिका पूरी तरह अवैतनिक और अव्यावसायिक है।
* पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।
* अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है।
* 'बहुरि नहिं आवना' के सारे भुगतान मनीआर्डर/चैक/बैंक ड्राफ्ट 'बहुरि नहिं आवना' के नाम से स्वीकृत किये जायेंगे।
* स्वामी, संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रो. दिनेश राम की ओर से भारत ग्राफिक्स, सी-83, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-20 द्वारा मुद्रित एवं एफ-345, लाडो सराय, नई दिल्ली- 30 से प्रकाशित।
* 'बहुरि नहिं आवना' में प्रकाशित लेखों में आये विचार लेखकों के अपने हैं जिन से संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

अनुक्रम

संपादकीय		*–डॉ. ज्योति प्रसाद*	7
1.	मानवीय मूल्यों को जीना सिखाती : दलित आत्मकथा	*–डॉ. आशीष कुमार 'दीपांकर'*	9
2.	राष्ट्रकवि 'दिनकर' के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना	*–डॉ. वीरेन्द्र कुमार दत्ता*	13
3.	मीरा कांत के नाटक : युग साक्ष्य के प्रमाण	*–डॉ. ऐश्वर्या झा*	16
4.	धार्मिक रीति-रिवाजों और परम्पराओं के प्रति युवावर्ग का दृष्टिकोण : 15-45 आयु वर्ग के लोगों की केस स्टडी	*–कार्तिक अग्रवाल*	20
5.	भारत में दिव्यांगजन एवं दिव्यांगजन के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्मेलन, 2006 का प्रभाव : एक अध्ययन	*–डॉ. शशि सौरभ* *–दिलीप कुमार*	26
6.	ग्रामीण विकास के लिए सहकारी समितियों का सशक्तीकरण *(कृषि क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में)*	*–प्रो. (डॉ.) किशोर कुमार* *–शशि कान्त मौर्य*	32
7.	'सामाजिक एवं आर्थिक न्याय' के परिप्रेक्ष्य में 'न्यायिक सक्रियता'	*–माधवेन्द्र तिवारी* *–डॉ. तरूण कुमार राय*	37
8.	'विधि विवादित किशोर' की अवधारणा : एक अवलोकन	*–डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र*	41
9.	प्रवासी पीढ़ी का जीवन संघर्ष और उषा प्रियम्वदा	*–डॉ. पूनम सिंह*	45
10.	आदिवासी हिंदी कविता में जल, जंगल और जमीन के सवाल	*–प्रफुल्ल कुमार रंजन* *–डॉ. सपना भूषण*	52
11.	प्राचीन भारतीय ग्रंथों के आलोक में हिन्दू विवाह	*–प्रो. संजय कुमार सिंह* *–सोनू कुमार भाटी*	57
12.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में कक्षा में संचार माध्यम एवं तकनीकी की भूमिका का अध्ययन	*–सुनील कुमार दूबे* *–डॉ. रश्मि श्रीवास्तव*	61
13.	नारी शक्ति वंदन अधिनियम : महिला सशक्तिकरण की ओर एक कदम	*–रिचा सेंगर* *–डॉ. ज्योति सिंह*	65
14.	दलित चेतना और शिक्षा का अधिकार : एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों	*–डॉ. जागीर नागर*	69
15.	रजत रानी मीनू की कहानियों में दलित चेतना	*–डॉ. सुमन रानी*	75
16.	बौद्ध धर्म एवं डॉ. अंबेडकर का योगदान 'नव बौद्ध यान' के रूप में	*–प्रीति गहलोत*	81
17.	श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन का विश्लेषण : (एन.ई.पी.) 2020 ई. के विशेष सन्दर्भ में	*–डॉ. सुलोचना सजवाण*	84
18.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्येतिहास दृष्टि : विशेष संदर्भ	*–माया*	88
19.	मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि : एक समीक्षात्मक अध्ययन	*–नितेश कुमार मौर्य* *–डॉ. सुनीता सिंह*	92
20.	एस. आर. हरनोट कृत 'हिडिम्ब' उपन्यास में किसान विमर्श	*–सरबजीत कौर*	97
21.	नरेन्द्र मोहन का नाटक-नो मैंस लैंड	*–डॉ. पुष्पा देवी*	100

22. रामचरित मानस में शिक्षा दर्शन का समालोचनात्मक अध्ययन	*–डॉ. गिरीश कुमार वत्स*	105
23. हिन्दी काव्य में ब्रज संस्कृति का माधुर्य एवं श्री कृष्ण	*–डॉ. देवानन्द सिंह*	109
24. मैत्रेयी पुष्पा एवं प्रभा खेतान की आत्मकथाओं में चित्रित नारी : एक दृष्टि	*–डॉ. अल्पना मिश्रा*	112
25. शोध के अनुसार स्थान, परिवार और पाठ्यक्रम के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा	*–शशिकला यादव* *–डॉ. हलधर यादव*	116
26. जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रवाद	*–डॉ. कोकिल*	119
27. लोहिया का सामाजिक न्याय एवं उसकी अवधारणा	*–डॉ. ममता यादव*	123
28. भवभूति के नाटकों में 'कर्मफल सिद्धान्त' : एक दृष्टि	*–डॉ. नीलिमा चौधरी*	126
29. 'आधा गाँव' विभाजन की त्रासदी और 'गंगौली' गाँव का दर्द	*–डॉ. प्रकृति राय*	129
30. बिदेसिया में चित्रित स्त्री की पीड़ा	*–डॉ. राम किशोर यादव*	133
31. हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में नारी का बदलता परिवेश	*–नाइराह कुरेशी*	138
32. राजेंद्र बड़गूजर का काव्य : दलित जन जागरण का अभियान	*–डॉ. बिजेंद्र कुमार*	143
33. युद्ध और विभाजन का स्त्री जीवन पर प्रभाव	*–तसनीम कौशर*	147
34. छत्तीसगढ़ी की लोक परंपरा में पंथी गीतों का महत्व	*–पुष्कर बन्धु*	150
35. कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज : एक अध्ययन	*–डॉ. आसिया मकबूल* *–डॉ. शाजिया* *–डॉ. उमर*	158
36. हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में गाँधीवादी चेतना	*–डॉ. (श्रीमती) मंजू तिवारी* *–ज्योति रावत*	161
37. भारत के ग्रामीण समाज में युवा महिलाओं का सशक्तिकरण	–डॉ. प्रियंका	165
38. कामकाजी महिलाओं के लिए योगाभ्यास के लाभ : एक समीक्षात्मक अध्ययन	*–दीप्ति मुदगल* *–डॉ. शाम गनपत तिखे*	169
39. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में डिजिटल शिक्षा : एक विश्लेषण	*–सुश्री सीता पाण्डेय* *–कुँवर संजय भारती*	174
40. सन् 1857 के विद्रोह में दलितों का योगदान एवं उसका महत्व	*–डॉ. अजीत प्रताप सिंह* *–सुनील कुमार निषाद*	178
41. अम्बेडकर एवं सामाजिक न्याय	*–डॉ. परवीन कुमार झा* *–डॉ. संगीता*	182
42. महादेवी वर्मा के काव्य का वितान : एक आलोचनात्मक अध्ययन	*–लक्ष्मण*	187
43. जल विज्ञान में तालाबों का महत्व : जबलपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में	*–पूजा दाहिया* *–डॉ. अमित कुमार रवि*	191
44. स्वदेश दीपक के नाटकों में अभिव्यक्त : व्यक्ति और समाज का द्वंद्व	*–हिमांशु* *–सिद्धार्थ शंकर राय*	195
45. हिंदी लोकनाट्य और रंगमंच	*–शिवनाथ मिश्र*	199
46. प्रेम और विरह के आलोक्य में मीराबाई	*–प्रिया दूबे*	203
47. अज्ञेय की आधुनिकता	*–चंद्रशेखर शर्मा*	206

48. लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा और चंदायन की भाषा	*–डॉ. रीता दूबे*	209
49. कविवर गणेशदत्त सारस्वत का बाल-साहित्य	*–डॉ. सन्ध्या राय* *–जिज्ञासा तिवारी*	214
50. अलका सरावगी की कहानियों में नारी चेतना	*–डॉ. सन्ध्या राय* *–साधना मौर्या*	218
51. हिन्दी दलित साहित्य पर वैचारिकता का प्रभाव	*–हेमलता*	221
52. श्यौराज सिंह बेचैन के कथा साहित्य में स्त्री एवं पुरुष संबंध	*–डॉ. मनुप्रताप*	224
53. वृद्ध जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करता इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यास	*–अजीत कुमार*	227
54. शैलेश मटियानी के कथा साहित्य में दलित विमर्श	*–दिव्यांशु*	230
55. डॉ. कालीचरण 'स्नेही' के काव्य है दलित समाज का संघर्ष	*–वीर पाल*	233
56. किसान जीवन का यथार्थ : अगम बहै दरियाव	*–डॉ. नमिता जैसल* *–चन्द्रावती*	236
57. रैदास के काव्य में लोक जागरण	*–डॉ. अजय कुमार*	240
58. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर एवं डॉ. राम मनोहर लोहिया के विचारों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	*–प्रो. शैलेन्द्र सिंह* *–रबिन्द्र कुमार*	243
59. निषाद समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण	*–प्रवीन चौधरी*	246
60. संस्कृति पर संचार माध्यमों का प्रभाव	–डॉ. ध्वनी सिंह	250
61. स्वच्छ भारत के निर्माण में महात्मा गांधी के आदर्शों की विवेचना	*–डॉ. जागीर कौर* *–डॉ. रूबल रानी शर्मा*	254
62. भारत में पसमांदा जो पीछे छुट गये : एक समाजशास्त्रीय पुनर्विचार	*–डॉ. हयात अहमद* *–आशीष कुमार चौरसिया*	258
63. स्वतन्त्रता सेनानी एवं आर्य समाज व वैदिक शिक्षा के प्रबल समर्थक पंडित पूर्णाचन्द्र आर्य (स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती)	*–प्रो. आशा रानी* *–मंजली भाटी*	264
64. श्रीकांत वर्मा की 'हस्तक्षेप' कविता की राजनीतिक प्रासंगिकता	*–अनूप कुमार सिंह*	268
65. डॉ. कीर्ति काले के व्यक्तित्व में सृजन के विविध आयाम	*–शशांक चंद्र शुक्ल* *–शुभम सिंह*	271
66. *शैलेश मटियानी के कहानियों में शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण*	*–शुभम सिंह* *–शशांक चंद्र शुक्ल*	276
67. आधुनिक भारत में डिजिटल स्वास्थ्य सेवाएँ : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ	*–अंकिता रस्तोगी* *–विनीता लाल*	278
68. भारत में सतत् विकास हेतु शिक्षा : एक विश्लेषण	*–बेचा लाल* *–अनिल कुमार*	282
69. विद्यार्थियों के हिंदी भाषा कक्षा के अनुभवों का अध्ययन	*–प्रो. इन्दू कुमारी* *–निपुण निशान्त (शोधार्थी)*	287
70. पुष्प की अभिलाषा : बलिदानी रक्तधारा की प्राणवंत पुकार	*–प्रो. सुनील कुमार तिवारी*	293
71. स्वामी सहजानंद सरस्वती और उनका आंदोलनात्मक स्वरूप	*–आलोक यादव*	296

72. हरिशंकर परसाई की कहानियों में राजनैतिक व्यंग्य का अध्ययन	*–आस्था तिवारी* *–डॉ. शशि भूषण चौधरी*	299
73. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के आर्थिक-सामाजिक विकार	*–भीमराव अम्बेडकर (शोध छात्र)* *–डॉ. आदित्यकृष्ण सिंह चौहान*	302
74. कितने पाकिस्तान के कथ्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन का कथ्य	*–दरख़्शाँ ग़नी*	305
75. उत्तर प्रदेश के जनपद आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थिति	*–प्रमोद कुमार* *–डॉ. नन्दन सिंह*	309
76. भारत में महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण एवं विकास	*–रिम्मी यादव* *–डॉ. अरूण कुमार सिंह*	312
77. थारू जनजाति और सामाजिक गतिशीलता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	*–मीनाक्षी सिंह*	317
78. 'ब्लाइंड स्ट्रीट' दृष्टिबाधित समाज के लोगों का जीवन-संघर्ष	*–शिवदेव प्रजापति*	322
79. हिंदी आलोचना में उत्तर-संरचनावाद की प्रासंगिकता	*–डॉ. नीलकंठ कुमार*	326
80. सामाजिक सरोकारों के कवि रहीम	–डॉ. ममता चावला	330
81. देश विभाजन का संदर्भ और राजी सेठ की कहानियाँ	*–प्रणय प्रकाश*	334
82. जातक चित्र-दृश्य	*–डॉ. सूरज पाल साहू*	337
83. कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज : एक अध्ययन	*–डॉ. आसिया मकबूल* *–डॉ. शाजिया* *–डॉ. उमर*	340
84. तकनीकी और साहित्य का अनूठा संगम	*–डॉ. सुधीर* *–डॉ. अजय कुमार* *–डॉ. रीना हुड्डा* *–डॉ. शिवानी*	344
85. बिहार का तिलका मांझी विद्रोह : एक मूल्यांकन	*–डॉ. अजीत कुमार*	347
86. हम यहां थे : सामाजिक विषमताओं की अभिव्यक्ति	*–डॉ. रीनासिंह*	355
87. प्रेम की भारतीय अवधारणा और घनानंद का प्रेम समर्पण	*–डॉ. विजय पाल* *–सुधांशु रायल*	358
88. श्रमजीवी वर्ग की अंतहीन पीड़ा को व्यक्त करती पं. वंशीधर शुक्ल की कविताएँ	*–कविता मौर्या* *–डॉ. प्रणव कुमार मिश्र*	362
89. रविदास : श्रम और साधना के संत-साहित्यकार	*–डॉ. पूनम सिंह* *–सुधांशु रायल*	366
90. गंगा नदी का ऐतिहासिक स्वरूप : महाभारत के परिप्रेक्ष्य में	*–डॉ. साधना देवी*	370
91. जीवन राग के कवि : सुरेन्द्र स्निग्ध	*–हेमंत कुमार हिमांशु*	374
92. आदिवासी हिंदी कविताओं में सत्ता एवं शक्ति का प्रतिरोध	*–वेद प्रकाश सिंह*	378
93. जनपद जौनपुर में महिला सशक्तिकरण हेतु व्यवसायिक शिक्षा की स्थिति	*–प्रदीप कुमार मौर्य* –डॉ. नन्दन सिंह	382

94.	डिजिटल इंडिया और ग्रामीण समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	*–कुँवर संजय भारती* *–सुश्री सीता पाण्डेय*	386
95.	इक्कीसवीं सदी की कहानियों में अभिव्यक्त कृषक संस्कृति का स्वरूप	*–जितेंद्र कुमार*	391
96.	भक्तिकाल : आधुनिकता के आईने में	*–डॉ. राजकुमार राजन*	395
97.	'पुनर्नवा' उपन्यास में संस्कृत ग्रंथों के संदर्भ	*–डॉ. सव्यसाची*	398
98.	निष्ठा का सवाल उठाये अरसा गुजर गया !	*–अनुज कुमार*	403
99.	युवाओं के बीच ओटीटी प्लेटफॉर्म की लोकप्रियता से टेलीविजन पर पड़ता प्रभाव	*–शालिनी प्रसाद* *–डॉ. राहुल अमीन*	411
100.	राष्ट्रीय एकात्मता यात्रा का भारत की एकता में योगदान का अध्ययन	*–अनुज* *–स्वेता रानी* *–डॉ. धीरज कुमार*	415
101.	असगर वजाहत के नाटकों में सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भ	*–सोनू (पीएचडी)* *–प्रो. नीलम राठी*	419
102.	भारतीय लोकसाहित्य परंपरा में जिकड़ी का लोकचिंतन	*–डॉ. महेश कुमार चौधरी*	424

संपादकीय

... और एक दिन प्रेम आपको किसी भी उम्र में खोज लेगा

किसी बैठक में एक सम्मानीय सदस्य ने कहा कि मैं नौकरी से सेवा निवृत्ति लेने के बाद एक झोला लेकर अपनी जिंदगी में रम जाऊँगा। मुझे यह सुनकर बेहद अच्छा लगा कि लोग एक उम्र के बाद ही सही जीने के बारे में सोचने लगे हैं। इसके बाद मैंने उनकी पत्नी के बारे में सोचा कि क्या वे भी इसी तरह से पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त होकर एक झोला उठाकर जा सकती हैं? देखा जाए तो आसपास के माहौल में जीने का अर्थ बचपन, शिक्षा, नौकरी, शादी, बच्चे, परिवार की जिम्मेदारी निभाना, बुढ़ापा और मृत्यु है। जीवन का यह पैटर्न स्त्री और पुरुष दोनों के लिए लगभग एक समान ही है। पर स्त्रियों को मिलने वाले जीवन जीने के अवसर शायद कम हैं। अगर स्त्री कोई निर्णय ले भी ले, तो उसके पीछे शक्ति और उर्जा का एक बड़ा हिस्सा उसे निवेश करना पड़ता है। ठीक यही स्थिति प्रेम में भी होती है।

अंग्रेजी सिनेमा में हाल ही में स्त्रियों की कुछ ऐसी छवियों को सिनेमा के पर्दे पर उतारा गया है जो बेहद संवेदनशील और जमाने के बदलाव की आहट के साथ हैं। हिंदी फिल्मों में भी ऐसी छवियाँ अवश्य होंगी जिन्हें मैंने शायद अभी नहीं देखा। हाल ही में आई दो फिल्मों के बारे में चर्चा करना महत्वपूर्ण होगा। एक फिल्म है- 'द आईडिया ऑफ यू' और दूसरी फिल्म है, 'ए फैमिली अफेयर'। दोनों ही फिल्में बेहद बढ़िया कहानियों के साथ ध्यान खींचती हैं और स्त्री चरित्रों को आधुनिक समय में एक सुंदर मानवीय रूप में प्रस्तुत करती हैं।

पहली फिल्म, 'द आईडिया ऑफ यू' इसी नाम के उपन्यास पर बनी फिल्म है जिसे रोबिन ली ने लिखा है। सोलेन मर्चंड एक उनतालीस वर्षीय सिंगल माँ है जो अमेरिका के एक बड़े शहर में आर्ट गैलरी चलाती है। उसका अपनी बेटी के साथ मजबूत दोस्ती वाला रिश्ता है साथ ही वह जीवन को जीने के लिए नए तरीकों पर भी काम कर रही है जैसे अकेले घूमने जाने पर। गीत-संगीत के एक बड़े कार्यक्रम 'कॉचेला' में सोलेन अपनी बेटी और उसके दोस्तों को ले जाती है जहाँ उसकी मुलाकात गाना गाने वाले मशहूर ग्रुप के एक सदस्य ह्वेस कैम्पबेल से होती है। ह्वेस पहली नजर में ही सोलेन के प्रति अनुरक्त हो जाता है। यहाँ तक कहानी सामान्य है जो किसी भी प्रेम कहानी में पढ़ने या देखने को मिल जाती है। पर इस कहानी में जटिलता और आधुनिकता का समावेश तब होता है जब कहानी खुलती जाती है। सोलेन और ह्वेस के बीच उम्र का लंबा फासला है। सोलेन अपने काम और अपनी बेटी में ही जीवन के अर्थ तलाश रही है तभी एक चौबीस वर्षीय युवा लड़के का किरदार सोलेन को अपने जीवन और प्रेम के प्रति बनी-बनाई दृष्टि में बदलाव लाने वाला जीवंत कारक बनता है। जब मीडिया में उन दोनों के बारे में लिखा जाने लगता है तब उनके जीवन और अपने लोगों पर नकारत्मक असर पड़ता है। फिल्म के अंत में पांच साल बाद सोलेन और ह्वेस वापस मिलते हैं और अपने जीवन में बहने लगते हैं।

उम्र के अंतर के बावजूद दोनों के बीच प्रेम और उसकी गहराई बढ़ती जाती है। एक जगह ह्वेस सोलेन से कहता है कि लोग उम्र को लेकर क्या सोचते और कहते हैं इससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। पूरी फिल्म में सोलेन अपनी उम्र के चलते ह्वेस को लेकर असमंजस में दिखाई देती है। अंत में यह असमंजस खत्म भी हो जाता है और दोनों की आँखों के में आंसू, प्यार, और उम्मीद होती है। स्त्रियों की छवि उनकी बढ़ती उम्र अर्थात उनके 'डिस्कार्ड' अथवा खारिज किए जाने के सामाजिक दायरे में बनती हुई दिखाई देती है। यदि कोई स्त्री उम्र सजने-संवरने की शौकीन है तो उसे, 'बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम' कहकर हास्यास्पद बनाया जाता है। वहीं पुरुषों के संदर्भ में ऐसा कम देखने को मिलता है। एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू स्त्री और पुरुष के मध्य उम्र की सीमा को लेकर भी समाज में ध्यान से रचाया-बसाया जाता है। लोकप्रिय सोशल साईट 'इन्स्टाग्राम' पर एक रील में एक लड़की अपने जन्म की तारीख 1998 बताती है और अपने पति का सन् 2005। इसके लिए उन्हें ट्रोल किया जाता है। इसकी वजह यह है कि लड़की को विवाह जैसे संबंध में पुरुष से छोटा होना चाहिए। लोगों के कमेंट होते हैं- ''बुढ़िया ने बच्चे से शादी कर ली!'' ठीक यही बात मशहूर अदाकारा प्रियंका चोपड़ा के

लिए भी है। उनके पति उनसे उम्र में ग्यारह साल छोटे हैं। इसके लिए प्रियंका चोपड़ा को बुरी तरह से ट्रोल किया जाता है। लेकिन फिल्म की नायिका सोलेन अंत में ह्वेस के प्रति अपने प्रेम को अपनी उम्र के साथ स्वीकार कर लेती है और सामाजिक बंधन टूटते हैं।

दूसरी फिल्म 'ए फैमिली अफेयर' की कहानी भी ध्यान खींचने वाली है। इस फिल्म में बेहद कम चरित्रों को रचा गया और दिलचस्प बात यह है कि सभी चरित्रों के साथ कहानी में प्रवेश पाया जा सकता है फिर चाहे वह चरित्र माँ का है, प्रेमी का है अथवा बेटी का। जारा नाम की चौबीस वर्षीय लड़की एक बड़े फिल्म स्टार क्रिस की असिस्टेंट है। जारा अपनी माँ ब्रुक के साथ रहती है जो एक लेखक है। एक दिन क्रिस जारा के घर आता है और उसकी माँ पर मोहित हो जाता है। दोनों के बीच प्रेम संबंध बनते हैं और इसका पता जब जारा को लगता है तो वह अपनी माँ से लड़ने की मुद्रा में होती है। धीरे-धीरे जब कहानी खुलती है तो जारा को एहसास होता है कि उसकी माँ की खुशी का उसकी स्वयं की खुशी से कोई लेना-देना नहीं है। इस उम्र में भी उसकी माँ किसी को प्यार कर सकती है और किसी के साथ घूमने जा सकती है। पति की मृत्यु के बाद किसी स्त्री का जीवन खत्म नहीं हो जाता। वह हर प्रकार के संबंधों से पहले एक स्त्री है, विचार को फिल्म में बार-बार इंगित किया जाता है। इस फिल्म के सभी किरदार एक विशेष प्रकार का आग्रह लेकर दर्शकों के सामने उपस्थित होते हैं कि समय और रिश्तों की मांग के साथ खुद में और अपने विचारों में कैसे बदलाव लाया जा सकता है। इस महत्वपूर्ण बदलाव में जीवन जीने की जिजीविषा बनी रह सकती है।

इतने अर्थपूर्ण संदेश के साथ ये दोनों फिल्में गतिशील समय और स्त्री चरित्रों की परतों को खोलते हैं जहाँ एक स्त्री मनुष्य की तरह उभरती है। वह उम्र और संबंधों के बीच खो जाने के लिए नहीं बनी है बल्कि जीवन को किसी भी पड़ाव में चाहने के लिए तैयार हैं। इन दोनों फिल्मों की स्त्री चरित्र संभावनाओं के साथ उभरती हैं जिनमें गरिमा और प्रेम दोनों स्पष्ट अनुभव किये जा सकते हैं।

–डॉ. ज्योति प्रसाद

मानवीय मूल्यों को जीना सिखाती : दलित आत्मकथा

–डॉ. आशीष कुमार 'दीपांकर'

आत्मकथा भी प्रथमतः और अंततः एक कथा ही है। उसे आत्मकथा बनाने वाला तत्त्व केवल लेखक का है। यह दावा है कि वह उसकी अपनी, अपने जीवन की सच्ची कथा है। उसका आत्मकथा होना मानो लेखक का अपने पाठक के साथ एक अनुबंध है कि वह जो कहेगा, सच-सच और सिर्फ सच कहेगा; यही उनकी प्रामाणिकता है। इस अनुबंध के अलावा उसके पास सच का और कोई साक्ष्य नहीं है। आत्मकथा ईमानदारी से किया गया स्वमूल्यांकन है। यदि आत्मकथाकार चिंतनशील और ईमानदार न हो तो वह कभी भी अपनी आत्मकथा के साथ न्याय नहीं कर सकता। आत्मकथा की विकास यात्रा में पाश्चात्य संस्कृति का भी योगदान अवश्य है क्योंकि अन्य विधाओं की भाँति इसका भी आगमन पश्चिम से ही माना जाता है। मनुष्य को अपने जन्म और विकास के लिए संस्कृति की आवश्यकता होती है। धीरे-धीरे समय के साथ सोच में बदलाव आया। आत्मकथा का स्वरूप आत्म-वचनों के रूप में सामने आया। आत्मकथा लेखन में तटस्थता और निरपेक्षता को महज स्थान मिला है। हिन्दी परिपाटी में आत्मकथा लेखन की एक लंबी परम्परा रही है। हिंदी की प्रथम आत्मकथा के रूप में 1641 ई. में बनारसीदास जैन कृत 'अर्थकथा' सामने आती है। इसी क्रम में श्यामसुन्दर दास कृत 'मेरी आत्म कहानी', वियोगी हरि कृत आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह', यशपाल कृत 'सिंहावलोकन', पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की 'अपनी खबर' इत्यादि आत्मकथाएँ क्रमशः लगातार सामने आने लगीं।

दलित साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करते समय उसकी प्रेरणाओं पर विचार करना अनिवार्य है। क्योंकि उसके बिना दलित साहित्य की वैचारिक विशिष्टता को नहीं जाना जा सकता है। वैसे दलित साहित्य का जन्म मराठी साहित्य के प्रभाववश हुआ है। मराठी भाषा में दलित साहित्य सन् 1960 के आस-पास चर्चा में आया। गरीब, दलित, मजदूरों के हक के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। दलित साहित्य मनुष्य की समानता पर बल देता है। दलित साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर बात करें तो आलवार संतों का प्रभाव देखने को मिलता है। 13वीं शताब्दी में नामदेव, रैदास, कबीर, नानक, धन्ना, पीपा इत्यादि लेखकों की रचनाएँ दलित साहित्य की नींव के रूप में सामने आती हैं। इन लोगों की रचनाओं में जाति-पांति, कर्मकाण्ड एवं कुरीतियाँ मुख्य विषय रहा है। समाज सुधार की इसी परम्परा में आगे स्वामी अछूतानन्द, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले व फातिमा शेख का योगदान महत्वपूर्ण स्थान रखता है। डॉ. विरेन्द्र सिंह यादव कहते हैं कि- ''महात्मा फुले ने 'गुलामगीरी' पुस्तक लिखकर दलितों की दशा बदलने की कोशिश की। वहीं बीसवीं सदी के प्रारम्भ में स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' ने उत्तर भारत के दलितों में स्वाभिमान जगाते हुए उनमें जागृति उत्पन्न की।''[1] साहित्यिक दृष्टिकोण से दलित साहित्य का सृजन होना एक महत्वपूर्ण एवं सार्थक घटना है। जब किसी जनमानस में कोई नया बोध जगता है तो उसे अपने 'स्व' का एहसास होने लगता है। दलित साहित्य के केन्द्र में हमेशा मनुष्य रहा है। दलित साहित्य सैद्धान्तिकी का प्रथम स्वरूप बौद्ध धर्म में झलकता है। बौद्ध साहित्य ने दलितों में क्रांति को जगाया है। तथागत गौतम बुद्ध का मानना है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी भी प्रकार से धर्म, जाति अथवा वर्ण के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। बुद्ध ने इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर बौद्ध साहित्य की रचना की। वैज्ञानिक चेतना से ओत-प्रोत है बौद्ध धर्म। इसी संदर्भ में तथागत गौतम बुद्ध का मानना है कि- ''अप्प दीपो भव, अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो। ये वाक्य दलित आन्दोलन और साहित्य बनकर सामने आया।''[2]

हर विमर्श अथवा आन्दोलन का एक वैचारिक आधार होता है। इसी वैचारिक आधार पर वह विमर्श टिका रहता है। उदाहरण के रूप में देखें तो मार्क्सवाद जैसे मार्क्स के सिद्धान्त पर टिका है, मनोविश्लेषणवाद जैसे फ्रायड के सिद्धान्त पर टिका है; वैसे ही दलित साहित्य अम्बेडकरवाद के सिद्धान्त पर टिका है। दलित साहित्य के विकासक्रम की बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि यह साहित्य भी अब बहुतायत में लिखा जा रहा है। चाहे वह विधा कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक हो या आत्मकथा। सभी विधाओं में लेखनी विकास पथ पर अग्रसर है। दलित साहित्य लेखन

की मजबूत कड़ी के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम बहुत सम्मान से लिया जाता है। दलित समाज आज अपने इतिहास को पढ़कर समाज में बदलाव कर रहा है। आज दलित शोषण को सहता नहीं बल्कि उसका प्रतिकार करता है। परिवर्तन की यह लहर दलित समाज में साक्षरता के कारण उत्पन्न हुई है। विभिन्न संकटों से गुजरता हुआ आज दलित साहित्य एक अलग पहचान बना चुका है और वह अपनी जमीन पर मजबूती के साथ खड़ा है।

समता, स्वतंत्रता, बंधुता एवं न्याय पर दलित आत्मकथा की पहचान निर्मित होती है। दलित आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथा लिखकर सदियों से चली आ रही शोषण की परम्परा को ध्वस्त किया है तथा दलित समाज को मुक्त साँस लेने के लिए अवसर प्रदान किया है। दलित आत्मकथाएँ दलित समाज के लिए जीवन्त दस्तावेज हैं जो दलित समाज को निरन्तर संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती हैं। हिन्दी आत्मकथा की परम्परा की बात करें तो यह कहना बिल्कुल तार्किक है कि आत्मकथा के दो प्राथमिक स्रोत हैं 'आत्म' और 'कथा'। इसमें 'आत्म' तत्व निश्चित ही है और 'कथा' तत्व विशिष्ट और व्याख्या सापेक्ष है। हिन्दी साहित्य लेखन में आत्मकथा लेखन आधुनिक युग की देन है और दलित साहित्य के दृष्टिकोण से देखें तो आत्मकथा का लेखन और भी नवीन है। दलित आत्मकथाओं में डॉ. अम्बेडकर की आत्मकथा 'मी कसा झालों' (मैं कैसे बना) सर्वप्रथम मूलतः मराठी भाषा में आई। हिन्दी दलित आत्मकथाएँ तो एक तरह से शपथ-पत्र की तरह हैं जिनमें पूरी ईमानदारी के साथ घटित घटनाएँ ही प्रस्तुत की जाती हैं। दलित आत्मकथाएँ अतीत की सिर्फ स्मृतियाँ ही नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था में अमानवीयता को समझने का एक स्रोत भी हैं। दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में डॉ. जयप्रकाश कर्दम का मत है कि, ''आत्मकथा लिखना निःसंदेह एक हिम्मत और जोखिम का काम है, बल्कि यूँ कहिए कि तलवार की धार पर नंगे पैर चलना है। यदि लेखक सच्चाई पर टिका रहेगा तो उसका लहूलुहान होना लगभग निश्चित है, क्योंकि आत्मकथा नंगी सच्चाई की मांग करती है। और इतना साहस बहुत कम लोगों में होता है जो सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ अपने जीवन के नंगे यथार्थ का सार्वजनिक प्रदर्शन कर सकें।''[3]

दलित आत्मकथाएँ उन शिलालेखों की भाँति हैं, जिनकी प्रमाणिकता के आधार पर दलित साहित्य की नींव तैयार हुई है। दलित आत्मकथा में व्यक्ति की भावना तथा उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पूरा खयाल रखा जाता है। हिन्दी दलित आत्मकथा के मुख्य आधार शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, बेरोजगारी, आत्मसम्मान, भूख, अंधविश्वास और रीति-रिवाज हैं। इन्हीं आधारों पर दलित आत्मकथा की नींव टिकी है। आत्मकथा के संदर्भ में आलोचक पंकज चतुर्वेदी कहते हैं कि, ''आत्मकथा जिन्दगी का आलोचनात्मक दस्तावेज तो है, मगर इसको सही और मजबूत रूप देने के लिए 'आत्म' से हमें विलग होना होता है, उससे एक तार्किक दूरी पर खड़े होते हैं। इसके लिए धैर्य और संयम चाहिए।''[4]

दलित साहित्यकारों का मानना है कि भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व ऐसी संस्कृति नहीं कर सकती है जो जात-पात के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव रखती हो। दलित आत्मकथाकार अपनी आत्मकथाओं में दलित समाज की पीड़ा, वेदना और उस समाज के विद्रोह को बखूबी दर्शाता है। दलित समाज में अधिकांश लेखक अभावग्रस्त थे। इन अभावों को दूर करने का एक मात्र साधन शिक्षा था। शिक्षा प्राप्त करने में अधिकांश लेखकों को जातिगत अपमान का शिकार होना पड़ा। हिन्दी परिपाटी में सर्वप्रथम मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' 1995 ई. में आई। साहित्यिक क्षेत्र में इसकी खूब चर्चा हुई। यह हिन्दी की प्रथम दलित आत्मकथा मानी जाती है। दलित आत्मकथा लेखन परम्परा की अगली कड़ी में ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'जूठन', सूरजपाल चौहान कृत तिरस्कृत, माता प्रसाद कृत 'झोपड़ी से राजभवन', प्रो. श्यामलाल कृत 'एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी', श्यौराज सिंह बेचैन कृत 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', रूपनारायण सोनकर कृत 'नागफनी', डॉ. तुलसीराम कृत 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका', डॉ. धर्मवीर कृत 'मेरी पत्नी और भेड़िया', सुशीला टाकभौरे कृत 'शिकंजे का दर्द', एवं कौसल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप' आदि को इस शोध-आलेख में सम्मिलित किया गया है। लगभग इन सभी आत्मकथाओं में जातिगत द्वेष एवं अपमान जैसी घटनाएँ सामने आती हैं। आत्मकथा में आत्मकथाकार से यह मांग की जाती है कि वह उपदेश, आत्मस्थापना, परनिंदा इत्यादि से बचते हुए अनुभूत सत्य को निर्लिप्त और निर्द्वन्द्व भाव से अभिव्यक्त करे। दलित आत्मकथाओं में लेखकों ने मर्मान्तक पीड़ा और उत्पीड़न को बहुत ही सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है। सभी दलित आत्मकथाकारों की आत्मकथाओं को पढ़ने के पश्चात् यह महसूस होता है कि लगभग सभी लेखकों को जातिगत अपमान का शिकार होना पड़ा है, जिसके कारण उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा।

सच को नकारा नहीं जा सकता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित समाज के लिए सामाजिक जीवन की बात जाने दो, ठीक-ठाक जीवन भी नसीब में नहीं होता है। दलित समाज के सामाजिक रूप से पिछड़ने का सबसे प्रमुख कारण है 'जाति'। इसी आधार पर इस

समाज का शोषण हुआ है। दलित समाज कमोबेश आज भी रोटी, कपड़ा और मकान के लिए संघर्षरत है। दलित समाज के लोगों के सभी मानवीय अधिकार छीन लिये गये। इसी संदर्भ में वरिष्ठ दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय कहते हैं कि-''दलित आत्मकथाकार की एकांगी दृष्टि नहीं होती, क्योंकि जब वह लिखते हैं या सोचते हैं तो समूचे दलित समाज की दृष्टि, उनका मान-अपमान, उसके सवाल जद्दोजहद एक लेखक के सामने होते हैं। इसलिए दलित आत्मकथाएँ एक व्यक्ति के जीवन पर आधारित नहीं होतीं। उसमें सम्पूर्ण दलित समाज होता है।''[5] दलित आत्मकथाओं में व्यक्ति के सामाजिक जीवन में हुए आर्थिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष के विविध रूप सामने आते हैं। समाज में दलितों की शैक्षिक स्थिति क्यों पिछड़ी है? आर्थिक दृष्टिकोण से यह समाज क्यों कमजोर है? इन सभी प्रश्नों की पड़ताल करती हुई शोषण एवं पीड़ा की यथार्थ दस्तावेज है दलित आत्मकथा। मोहनदास नैमिशराय का बचपन भूख, गरीबी और बेरोजगारी में बीता। इसी तरह डॉ. तुलसीराम का भी बचपन देखने को मिलता है। इसी प्रकार सूरजपाल चौहान, सुशीला टाकभौरे, श्यौराज सिंह बेचैन, प्रो. श्यामलाल इत्यादि आत्मकथाकारों का भी बचपन संघर्षों से भरा पड़ा है।

भारतीय समाज लोकतंत्र के बिना अधूरा होता है और लोकतंत्र तभी सफल माना जायेगा जब समाज में गैर बराबरी और भेदभाव को मिटाकर सभी को एक समान मानवीय इंसान बना दिया जाए। यही दलित आत्मकथा का मूल उद्देश्य है। संविधान निर्माताओं ने धर्म, जाति, अंधविश्वास एवं पाखण्ड से ऊपर उठकर एक ऐसे राष्ट्र का सपना सजाया जो समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व में विश्वास रखता हो। भारतीय संविधान के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई का कहना है कि, ''हमारा संविधान हमारा मार्गदर्शन करता है, मुश्किल के समय में भी संविधान ही रास्ता दिखाता है। हमारे हित में यही है कि हम संविधान की सलाह के अनुसार ही चलें, यह हमारे हित में है कि हम संविधान के दायरे में उपर्युक्त सलाह लें। अगर हम ऐसा नहीं करते हैं तो हमें गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। और आगे कहा कि हमारा संविधान बहुमत और समझदारी की आवाज है। संकट के पलों में ये हमें मार्गदर्शन करना जारी रखता है।''[6]

हमारे समाज में नैतिकता के सभी मानदण्ड स्त्री के संदर्भ में ही तय होते हैं जिनका निर्वाह सिर्फ स्त्री को ही करना पड़ता है। मानवीय दुःखों में सबसे ज्यादा दुःख स्त्रियों ने भोगा है। समाज की सबसे बड़ी विडम्बना है कि अधिकांश स्त्रियाँ पुरुषों की छत्रछाया की मोहताज हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि स्त्री आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं है और वह पुरुषों के ऊपर निर्भर है। दलित आत्मकथा समाज की परम्पराओं एवं जड़ताओं को चिह्नित करती हुई उसे सहज ढंग से संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संकेत देती है। आज स्त्री को एक इंसानी पहचान दिलवाने के लिए हर स्तर पर संघर्ष जारी है। अब दलित स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गयी हैं तथा अपने हक और अधिकार के लिए स्वयं मजबूती के साथ आन्दोलन में आगे आ रही है। सौन्दर्य सामाजिक एवं नैसर्गिक दोनों होते हैं। साहित्य के सौन्दर्य में ऐसा कोई अंग नहीं है जिसमें लेखक का बिम्ब-प्रतिबिम्बित न हो। सौन्दर्यशास्त्र को अंग्रेजी में 'एस्थेटिक्स' कहते हैं। यह शब्द पाश्चात्य परम्परा से भारतीय साहित्य में आया है। सौन्दर्यशास्त्र के संदर्भ में रामअवतार यादव कहते हैं कि-''दलित साहित्य का शब्द सौन्दर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज एवं साहित्य में चली आ रही सड़ी-गली परम्पराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलित को लड़ना सिखाता है, वह सिर पर पत्थर ढोने वाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूल-भुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिन शाब्दिक प्रहार की क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है और यही दलित साहित्य का शिल्प सौन्दर्य है।''[7]

यदि हम सौन्दर्य शब्द पर गौर करें तो पाते हैं कि सौन्दर्य के दो प्रकार हैं- पहला आंतरिक सौन्दर्य और दूसरा बाह्य सौन्दर्य। आंतरिक सौंदर्य में उसके गुण एवं विशेषता इत्यादि आते हैं और बाह्य सौन्दर्य में रंग-रूप, साज-सज्जा, शृंगार, वस्त्र-आभूषण आदि आते हैं। सौन्दर्य के संदर्भ में विस्तार से देखें तो पायेंगे कि सौन्दर्य को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है, पहला प्राकृतिक सौन्दर्य और दूसरा कृत्रिम सौन्दर्य। प्राकृतिक सौन्दर्य में पेड़-पौधे, समुद्र, पहाड़, जीव-जन्तु इत्यादि आते हैं और कृत्रिम सौन्दर्य में मनुष्य द्वारा निर्मित की गई वस्तुएँ आती हैं। महान यूनानी विचारक सुकरात सौन्दर्यशास्त्र के संदर्भ में कहते हैं कि-''गोबर से भरी टोकरी भी सुन्दर बन जाती है, यदि वह अपना कुछ उपयोग रखती है। जबकि स्वर्ण ढाल भी असुन्दर है, यदि वह उपयोग की दृष्टि से अपूर्ण है।''[8] स्पष्ट है कि दलित आत्मकथाओं का सौन्दर्यशास्त्र भाषागत वैशिष्ट्य, शिल्प और वातावरण पर निर्भर होता है। दलित आत्मकथाकार अपनी आत्मकथा में क्लिष्ट भाषा एवं शैली का प्रयोग करने से बचता है क्योंकि दलित समाज कम साक्षर है और वह अपनी बात निचले तबके तक आसानी से पहुँचाना चाहता है। इसी कारण लेखक अपनी आत्मकथा में व्यंग्यात्मक एवं अलंकार युक्त भाषा का प्रयोग भी बहुत कम करता है।

साहित्य का मूल स्रोत रचना के परिवेश व वातावरण पर निर्भर करता है। एक अच्छे परिवेश के बिना एक अच्छी आत्मकथा की कल्पना करना असंभव है। दलित आत्मकथाओं को भली-भाँति समझने के लिए उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक इत्यादि सभी परिवेशों को समझना बहुत जरूरी है। दलित आत्मकथा में लेखकों के साथ बीती घटनाओं के आधार पर वातावरण भी बदलता है। लगभग सभी दलित आत्मकथाओं में अलग-अलग परिवेश की चर्चा की गई है। इन आत्मकथाओं में ग्रामीण बस्तियों का परिदृश्य, शहरी परिवेश का वर्णन और महानगरों का परिवेश बहुतायत में मिलता है। अधिकांश आत्मकथाओं में ग्रामीण परिवेश के वातावरण में कुआँ, नदी, तालाब, घर, बस्ती, सर्दी, बरसात, गन्दगी, अच्छाई, बुराई इत्यादि का अंकन आत्मकथाकारों द्वारा बखूबी हुआ है। अंततः परिवेश व वातावरण के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जैसे मौसम के हिसाब से ऋतुएँ बदल जाती हैं वैसे ही व्यक्ति के हिसाब से देशकाल व वातावरण बदल जाता है।

राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया लोकतंत्र पर आधारित होनी चाहिए जो सबके लिए समान अवसर प्रदान करे। आज का समकालीन परिदृश्य गंभीर उथल-पुथल की प्रक्रिया के दौर से गुजर रहा है। दलित आत्मकथाकार अब संकोच की जगह खुलकर अपनी बात अभिव्यक्त करने लगे हैं। दलित आत्मकथा ने दलित साहित्य को एक नया कलेवर दिया है। दलित लेखकों ने जिस प्रकार अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं वे उनकी गहन पीड़ा की संवेदनशील अभिव्यक्ति हैं। डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव बहुतता में दिखाई देता है। डॉ. अम्बेडकर की इसी वैचारिकता को लेकर गेल ओमवेट कहती हैं, ''आधुनिकता का ताना-बाना डॉ. अम्बेडकर के इर्द-गिर्द ही बुन रहा था। न्याय, स्वतंत्रता और समानता की भारतीय परम्परा और फ्रांसीसी क्रांति के मूल्यों को सही अर्थों में वे ही उठा रहे थे। ये तीनों मूल्य किसी भी मानवीय समाज के लिए अनिवार्य हैं।''[9] वर्तमान दौर की आत्मकथाओं पर नजर दौड़ायें तो पाएंगे कि दलित आत्मकथा अब अग्रसर दिशा में है। आधुनिक दृष्टि में आत्मकथाओं को देखें तो रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा 'नागफनी' नये कलेवर के साथ सामने आती है। 'नागफनी' के संदर्भ में 'हंस' के पूर्व सम्पादक राजेन्द्र यादव का मानना है कि-''अभी तक जितनी भी दलित आत्मकथाएँ आई हैं उनमें 'हाय! मार डाला' की चीखे हैं, 'नागफनी' में 'हाय! मार डाला' की चीख नहीं सुनाई पड़ती है लेकिन 'नागफनी' में संघर्ष है। जिसको अंग्रेजी में 'साइलेंट रेन्यूलूशन' कहा जाता है।''[10]

डॉ. तुलसीराम अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में लिखते हैं कि उस समय दलित समाज के लोग मरे हुए पशुओं का मांस खाने में प्रयोग करते थे लेकिन आज स्थिति काफी बदल गई है, अब ऐसा नहीं होता। समाज की व्यवस्था तभी बदलेगी जब समाज की वास्तविक स्थिति बदलेगी। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में लेखिका सुशीला टाकभौरे कहती हैं कि आज स्त्रियाँ हर क्षेत्र में आगे आ रही हैं, चाहे वह शिक्षा हो या सामाजिक क्रियाकलाप। आगे लेखिका कहती है कि दलित आत्मकथा की वैचारिकी डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा पर टिकी है। आधुनिक जीवन ने दलितों की सम्भावनाएँ बढ़ा दी हैं। भूखे रहकर भी दलित वर्ग के लोग अपने बच्चों को पढ़ा रहे हैं और प्राचीन काल की रूढ़ियों से टकरा रहे हैं। इसका प्रामाणिक दस्तावेज दलित आत्मकथाएँ हैं।

संदर्भ

1. डॉ. सियाराम, नयी सदी में दलित विमर्श : सिद्धान्त एवं परम्परा, महेन्द्र बुक कम्पनी, गुड़गांव (हरियाणा), प्रथम संस्करण-2016, पृ. 49
2. डॉ. इकरार अहमद, दलित-मुक्ति-संघर्ष और कथा साहित्य, नवराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृ. 75
3. मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2011, पृ. 196
4. पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003, पृ. 19
5. डॉ. संजय नवले, हिन्दी दलित आत्मकथा, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2011, पृ. 40
6. संकलन-कुशालचन्द्र, भारत का संविधान (संक्षिप्त व सरल भाषा में), रॉयल पब्लिकेशन, रातानाडा, जोधपुर, राजस्थान, संस्करण-2019, पृ. 7
7. डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य परम्परा और विन्यास, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, संस्करण-2011, पृ. 282
8. रमणिका गुप्ता, दलित चेतना साहित्य, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2015, पृ. 70
9. सूरज बड़त्या, सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृ. 189
10. रूपनारायण सोनकर, नागफनी, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण-2014, भूमिका से।

डॉ. आशीष कुमार 'दीपांकर'

सहायक आचार्य

हिन्दी विभाग

स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

मोबाइल- 9795508915

Email - ashishdipankar27@gmail.com

राष्ट्रकवि 'दिनकर' के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

–डॉ. वीरेन्द्र कुमार दत्ता

राष्ट्रकवि 'दिनकर' की रचनाएँ राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना में परिपूर्ण हैं। राष्ट्रवादी कवियों में दिनकर का स्थान मैथिलीशरण गुप्त के बाद है। डॉ. जैन शेखतचंद्र के मतानुसार-''गुप्त जी की कविता में राष्ट्र की चेतना समाज सुधार और धार्मिक औदात्य की सीमा से मुखरित हुई थी और दिनकर जी की कविता में राष्ट्रीयता का विकास, सामाजिक संघर्ष और राजनीतिक क्रांति से सीधी-सीधी जुड़ा है।''[1] ओजस्वी कवि दिनकर अपने स्वच्छंद विचार और ओजस्वी वाणी से हर वर्ग के पाठकों को आंदोलित करते हैं। वे कहते हैं कि, ''राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया। अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धमाके की आवाज आती, फांसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की वह आवाज सुनाई देती जो गांधी जी के हृदय में चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्र नायकों के हृदय में चल रही थी, जिन से बढ़कर मैं किसी और को श्रद्धा नहीं समझता था। मेरी समझ में उस समय सारे देश की एक स्थिति थी जो सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी, सारे देश का एक कर्तव्य था जो स्वतंत्रता संग्राम को सफल बनाने का कर्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मजबूरियों से बेचैन थी।''[2] अतः देश की इसी मनोदशा को बनाए रखने में दिनकर की कविता औषधि का काम करती है। दिनकर संपूर्ण राष्ट्र के भाव का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे भारतवासियों को क्रांति तथा आत्म बलिदान के लिए उद्वेलित करते हैं। यथा-

''जो अड़े, शेर उस नर से डर जाता है
है विदित, व्याघ्र को व्याघ्र नहीं खाता है।
सच पूछो तो अब भी सच यही वचन है,
सभ्यता क्षीण, बलवान हिंस्र कानन है।
एक ही पन्थ अब भी जग में जीने का,
अभ्यास करो छागियो! रक्त पीने का।''[3]

दिनकर ने जिस समय अपनी लेखनी आरंभ की वह युग स्वतंत्रता आंदोलन का युग था। देश में जगह-जगह आंदोलनों का दौर चल रहा था। अतः प्रत्येक भारतीयों का एक ही लक्ष्य था, गुलामी की बेड़ियों से निजात पाना। ऐसे समय में दिनकर जी की प्रेरणात्मक और मुखालिफ कविताओं ने जनमानस को काफी प्रभावित किया। दिनकर की रेणुका, हुंकार, कुरुक्षेत्र जैसी रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर ज्वलंत है। वे कहते हैं-

''कुत्सित कलंक का बोध नहीं छोड़ेंगे,
हम बिना लिये प्रतिशोध नहीं छोड़ेंगे,
अरि का विरोध-अवरोध नहीं छोड़ेंगे,
जब तक जीवित हैं, क्रोध नहीं छोड़ेंगे।''[4]

कवि दिनकर कलम को हथियार बना कर स्वतंत्रता संग्राम में उतारते हैं। डॉ. गोपाल राय सत्यकाम दिनकर के सदंर्भ में कहते हैं-''देश के स्वाधीन होने के समय दिनकर हिन्दी के एक प्रमुख और प्रतिष्ठित कवि थे और वे ऐसे कवि थे जिनकी कविता राष्ट्रीय आन्दोलन की समसामयिक गतिविधियों से अभिन्न रूप से संबद्ध रही थी। दिनकर स्वाधीनता संग्राम में नहीं कूदे थे, केवल कलम से ही उसमें सहयोग दे रहे थे।''[5] दिनकर अपनी वाणी के प्रकाश से संपूर्ण राष्ट्र को जागृत करते हैं। वे भारतीयों का मनोबल बढ़ाते हैं-

''वह प्रदीप जो दीख रहा है झिलमिल, दूर नहीं है;
थककर बैठ गये क्या भाई! मंजिल दूर नहीं है।
चिंगारी बन गई लहू की

बूँद गिरी जो पग से;
चमक रहे, पीछे मुड़ देखो,
चरण दृ चिन्ह जगमग दृ से।
शुरू हुई आराध्य-भूमि यह,
क्लान्ति नहीं रे राही;
और नहीं तो पाँव लगे हैं,
क्यों पड़ने डगमग-से?''[6]

दिनकर जी जहां आजादी के पहले अंग्रेजों के खिलाफ लड़े, वहीं आजादी के बाद नेताओं से। उनका एक ही मकसद था; शांति तथा समानता की स्थापना करना। वह समाज में साम्यवाद की स्थापना करना चाहते थे। दिनकर को शक्ति पर अत्यंत विश्वास है। वे शक्ति को सर्वोत्तम सौंदर्य-रूप में देखते हैं। उनके अनुसार अगर हमारा बल अडिग है तो अंबर भी हमारे सम्मुख शीश झुकाता है।

हिन्दी साहित्य में कल्पवृक्ष के समान अपनी प्रतिभा का दर्पण कराने वाले और साहित्य जगत में चमकते सितारे के माफिक चमकते एवं राष्ट्र को नई दिशा देने वाले राष्ट्र कवि 'दिनकर' जी साहित्य जगत में अनोखी प्रतिभा रखते हैं। हिन्दी साहित्य में रामधारी सिंह 'दिनकर' जी का एक विशेष स्थान है। उनकी रचना में युगीनता, नवीनता, सामाजिकता तथा सांस्कृतिकता के साथ दलित, पीड़ित तथा शोषितों का चित्रण, नारी-चेतना, युवाओं में बेरोजगारी के साथ-साथ समाज में जातिगत भेदभाव सभी को दूर करने में और एक राष्ट्र बनाने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' जी का जन्म बिहार राज्य के छोटे से गाँव में हुआ था। उनकी मृत्यु चेन्नई में हुई थी। वहाँ राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के बाद दिनकर जी का नाम बड़े शान से लिया जाता है। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में अपनी कलम बखूबी चलाई है। दिनकर जी के काव्य ग्रंथों में देखा जाए तो....'कुरूक्षेत्र', 'हुंकार', 'रसवंजी', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी', 'परशुराम की प्रतिक्षा', 'रेणुका', 'बापू इतिहास के आँसू', 'सीपी और शंख' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रामधारी सिंह 'दिनकर' जी के अनुसार सच्चा काव्य वही है जो समाज में क्रांतिकारी भावना की जागृति करे, इसलिए उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम से लेकर भारत-पाकिस्तान युद्ध तक लिखी गई अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय और क्रांतिकारी विचारों को अभिव्यक्त किया। साथ ही उनकी कविताओं ने समाज को ललकारा भी है। उनका उद्देश्य समाज में शोषित और दलित-पीड़ित मजदूर को सच्ची राष्ट्रीयता और न्याय देना था। इसलिए वह लिखते हैं-

''मैं समय का पुत्र हूँ और मेरा सबसे बड़ा कार्य वहाँ है कि अपने युग के क्रोध और आक्रोश को अधीरता और बेचैनी की सबलता के साथ छंदों में बांधकर सबके सामने उपस्थित कर दूँ।''

अतः सभी का दुःख दूर करने के साथ सामाजिक क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना, राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना, आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना और समाज के विभिन्न पक्षों में चेतना लाने में उनका साहित्य महत्त्वपूर्ण है।

दिनकर जी पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से था। सन 1920 में जब वह 12 साल के थे, उनका राष्ट्रीय पाठशाला में नाम लिखवाया था, उसी समय राष्ट्रीय चेतना के बीज इनके मानस में अंकुरित एवं पल्लवित हुए। नमक सत्याग्रह के दौरान दिनकर जी ने एक कविता लिखी थी जो इस प्रकार है-

''यह विस्मय बड़ा प्रबल है।
बल को बलहीन रिझाने
मरने वाले हँसते हैं।
आँसू है, बधिक बहाने।''[7]

दिनकर जी का कहना है कि गांधीजी ने देश को स्वराज्य पथ पर अग्रसर किया। यह बड़ी बात हुई पर गांधीवाद की असली कसौटी समाज में चेतना को उजागर करने की थी जिसमें दिनकर जी महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

सामाजिक क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना दिनकर जी एक समाज में रहते हुए उनका लगाव भी समाज के प्रति विशेष है। इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहता है, इसलिए मनुष्य की मुख्य आवश्यकता अन्न, वस्त्र एवं आवास है। आज 'कोरोना' के कारण मनुष्य के जीवन में और समाज में काफी असर हुआ है। इनके बारे में प्रगतिवादी कवि ने देखा और समाज में आज भी काफी सारे लोग अन्न, वस्त्र और आवास के बिना सड़क पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं, दिनकर जी इसलिए इसमें क्रांतिकारी राष्ट्रीयता की ज्वाला भड़काना चाहते हैं। जिसमें समाज में समानता की भावना अभिव्यक्त हों। प्रगतिवादी कवियों ने अकाल, महंगाई, बीमारी आदि का चित्रण अपनी कविता में किया। दिनकर जी सामाजिक राष्ट्रीय चेतना को जागृत करते हुए लिखते हैं-

''इधर करते हैं करोड़ों
घर नहीं है, मन खोया
पूंजीवाद की छाँह में
आज नंगा और भूखा देश।''[8]
''मकान नहीं खाली है
दुकान नहीं खाली है
खाली है हाथ, खाली है पेट,
खाली है थाली, खाली है प्लेट।''[9]

समाज में आज युवाओं को बेरोजगारी, महंगाई आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उसको ध्यान में

रखकर प्रगतिवादी कवि ने अपनी कलम चलाई है। राष्ट्रीय चेतना में उनको प्रस्तुत किया।

राजनैतिक क्षेत्र में दिनकर जी ने जब हिन्दी काव्य जगत में पदार्पण किया तब भारतीय राजनीति में एक हलचल मची हुई थी। उसी समय नवयुवक समाज का संगठन किया गया, उनका राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय सहयोग मिला। दिनकर जी की 'कुरुक्षेत्र' और सामधेनी रचनाओं में राजनैतिक स्थितियां और चेतना का प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार दिनकर जी राष्ट्रीय चेतना की प्रेरक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए राजनीति में जो नेताओं के चुनाव किया जाता है उनमें काफी सारे नेता अधिक पढ़े-लिखे नहीं होते, वो राज्य व्यवस्था में क्या राष्ट्र का निर्माण करेंगे और बाद में अव्यवस्था का निर्माण होता है।

इस प्रकार आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में दिनकर जी के साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। समाज में किसान, मजदूर, दलित-निम्नवर्ग अनेक पीड़ाओं को सहन करता है। उनमें राष्ट्रीय चेतना का संचार करने हेतु दिनकर ने लिखा-

''आहें उठी दिन कृषकों की मजदूरों की तड़प पुकारे.
अरी! गरीबों के लोहू पर कड़ी हुई तेरी दीवारें।
अंकित है कृषकों के घर में तेरी निष्ठुर कहानी
दुखियों की कुटियों रो-रो कहते तेरी कहानी।''[10]

संदर्भ

1. डॉ. जैन शेखतचन्द्र, राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी कला (भूमिका), जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर
2. एम.एच.डी. 02(2011), आधुनिक हिन्दी काव्य, इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, यूपी, पृष्ठ संख्या-66
3. सिंह केदारनाथ, (2008), परशुराम की प्रतिक्षा, लोकभारती प्रकाशन : इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-20
4. सिंह केदारनाथ, (2008), परशुराम की प्रतिक्षा, लोकभारती प्रकाशन : इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-15
5. डॉ. सत्यकाम, गोपाल राय, दिनकर व्यक्तित्व और रचना के नये आयाम, कविता कोश,
6. दिनकर, रामधारी सिंह, सामधेनी उदयांचल : जयपुर, पृष्ठ संख्या-03
7. रामधारी सिंह 'दिनकर' का राष्ट्रकवि के रूप में मूल्यांकन, डॉ. इंदुप्रकाश सिंह
8. कवि दिनकर के साहित्य में दलित, पीड़ित तथा शोषितों का चित्रण और उनके उत्थान का स्वर, डाह्याभाई जी. रोहित
9. वही, पृ. 123, 10. वही, पृ. 124, 11. वही, पृ. 187

डॉ. वीरेन्द्र कुमार दत्ता
सहायक प्राध्यापक (हिंदी), हिंदी विभाग
आर. एन. ए. आर. महाविद्यालय, समस्तीपुर
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
Email : birendra.dutta1977@gmail.com

मीरा कांत के नाटक : युग साक्ष्य के प्रमाण

–डॉ. ऐश्वर्या झा

आधुनिक स्त्री रचनाकारों में मीरा कांत सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने गद्य एवं पद्य की प्रायः सभी विधाओं जैसे नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता, यात्रा वृत्तांत, बालसाहित्य आदि को अपनी लेखनी से समृद्ध किया। नाटक जैसे द्विआयामी विधा को उन्होंने यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। रचनाकार जिस युग में रचना करता है उसके प्रभाव से स्वयं को अछूता नहीं रह सकता। इक्कीसवीं सदी की नई परिस्थितियों, बदलते परिदृश्यों के आलोक में उनके नाटक समाज, राजनीति, संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करते हैं। मीरा कांत युगीन जीवन-मूल्य, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के विश्लेषण द्वारा नाटकों को वर्तमान स्थिति एवं तर्क के आधार पर प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने जीवन अनुभव एवं तत्कालीन समाज में घटित घटनाओं को अपने नाटकों में स्थान दिया है। स्त्री शोषण, पारंपरिक मान्यताओं, मानवीय मूल्यों में गिरावट राजनीतिक विकृति आदि वर्तमान समाज की समस्याओं को यथार्थपरक दृष्टि से प्रस्तुत कर उन्होंने अपने नाटकों की प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध की है।

पौराणिक सन्दर्भ क आधुनिक परिवेश से जोड़ता नाटक 'नेपथ्य राग' सदियों से शोषित स्त्री की आवाज को तलाशने का प्रयास करता है। कथावाचन शैली में लिखा गया यह नाटक शताब्दियों से नेपथ्य में छिपी स्त्रियों को केंद्र में लाने के प्रयास को दर्शाता है। यह नाटक आधुनिक कामकाजी महिलाओं की समस्याओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की कथा के माध्यम से बताता है। आधुनिक युग की मेधा अपनी कार्यकुशलता से कार्यालय की प्रमुख बनती है किंतु पुरुष कर्मचारियों द्वारा एक स्त्री को प्रमुख स्वीकार करना कठिन हो रहा है। मेधा को उनका सहयोग नहीं मिल रहा। उसके अधीनस्थ कर्मचारी उसे अफसर के रूप में नहीं एक 'स्त्री' के रूप में देखते हैं। ''लेडी ऑफिसर .... यही तो प्रॉब्लम है ... परंतु बर्दाश्त कहां कर पाते हैं मुझे वे लोग... मेरे ज्यादातर फैसलों का विरोध करते हैं ..... कमियां ढूंढते हैं मुझमें... दे फील चैलेंज्ड।''[1] मेधा की यह समस्या उन सभी कार्यालयों में कार्यरत स्त्रियों की समस्या को दर्शाता है जो कहीं-न-कहीं भेदभाव को झेल रही हैं। आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री अधिकारों में प्रमुख मानदंड माना गया है किंतु आज आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के बाद भी स्त्रियों को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पा रही है। मेधा ऐसी सभी स्त्रियों की प्रतीक है जो पुरुष सहकर्मियों के अनुचित व्यवहारों से काम नहीं कर पा रही हैं। मेधा अफसर है तो उसे ऐसा विरोध झेलना पड़ रहा है। जो स्त्रियां किसी पुरुष अधिकारी के पास काम करती हैं उनकी दुर्दशा का अनुमान लगाया जा सकता है। मीरा कांत का यह नाटक इस अत्याधुनिक काल में स्त्रियों के प्रति पुरुषवादी समाज की जड़ मानसिकता को प्रदर्शित करता है। सदियों पुरानी खना हो या इस समय की मेधा उनकी प्रतिभा नेपथ्य में ही रही है। 'कंधे पर बैठा था शाप' नाटक के पात्र, स्थितियां पौराणिक होते हुए भी आधुनिक युग की स्थितियों के निकट हैं। नाटक में कामिनी गणिका होते हुए भी साहित्यिक अभिरुचि रखती है। कुमारदास से वह प्रेम करती है किंतु वह विवाह से पूर्व अपनी पंक्ति को पूरा करने की शर्त रखते हैं। कालिदास के द्वारा रचना पूरा करने पर अपने प्रेम को पाने की आतुरता में कामिनी उन्हें विष दे देती है। पुनः कालिदास का परिचय पाने पर प्रायश्चित स्वरूप आत्मघात कर लेती है। उसके चरित्र के सारे उतार-चढ़ाव का कारण कुमारदास के प्रति उसका प्रेम है। गणिका से विवाहिता होने की इच्छा उसे इस परिणति तक लाती है। नाटक के अंत में राजम्मा कामिनी के शव को देखते हुए विलाप करती कहती है ''तेरे कुमारदास ने अग्नि को साक्षी मानकर कालिदास के साथ ही महाप्रस्थान किया। ... देखो कैसा अंत! अमर हो गए कालिदास. .. अमर रहेंगे कुमारदास... अमर! पर पुत्री, तू जहां थी, वहीं रही... तेरा शव लेने कोई नहीं आया। ...कालिदास को दिया विष सबको स्मरण रहेगा पर कुमारदास को पाने की तेरी आकुल तड़प कोई न समझ पाएगा। कोई नहीं... विष... विष तो हम कब से पीते आये हैं। प्रवंचना का विष... उपेक्षा का विष-तिरस्कार का विष.... न जाने कब तक पीती रहेगी...विष।''[2] यह नाटक का अंतिम संवाद है और यह पाठक/प्रेक्षक के हृदय को कचोटता है। समाज स्त्रियों के त्याग, बलिदान को भी सम्मान नहीं देता। कामिनी के लिए उपेक्षा का कारण उसका गणिका होना था किंतु विद्योत्तमा

तो कालिदास की ब्याहता पत्नी है। पत्नी की प्रेरणा से विद्वान बने कालिदास विद्योत्तमा को अर्धांगिनी के पद से हटाकर गुरु का पद दे देते हैं जिसमें विद्योत्तमा की स्वीकृति नहीं है। पति-पत्नी का संबंध सामान अधिकार एवं आपसी सहमति का होता है। कालिदास का एकपक्षीय फैसला स्त्री को किसी भी स्तर पर चुनाव के स्वतंत्र नहीं बताता। विदुषी विद्योत्तमा निरीह, उपेक्षित उन सभी स्त्रियों की प्रतीक के रूप में नजर आती है जिनके निर्णय को सुना ही नहीं जाता। पति के निर्णय को आज्ञा स्वरूप मानना ही पड़ता है। ''तो पतिदेव बतायेंगे कि आपकी यह परित्यक्ता पत्नी अब अपने का जीवन का क्या करे? क्या करे जीवन की कामनाओं का?....आप स्वयं अपना जीवन कैसे बिताना चाहते हैं और वह निर्णय आप ले चुके हैं... पत्नी के बारे में विचार किए बिना....''[3] आज भी अनगिनत कामकाजी स्त्रियां पत्नी की आज्ञा का अनुसरण करने को बाध्य हैं। कालिदास ऐसे पुरुषों के प्रतीक के रूप में नजर आते हैं जो अपने फैसलों से स्त्रियों की मनोदशा को कमजोर बनाते हैं। समाज आज भी ऐसे पुरुषों के फैसलों को सर्वोच्च स्थान देता है और स्त्रियों को निर्णय की स्वतंत्रता का अधिकार ही नहीं है।

'भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर' नाटक मीरा कांत के द्वारा प्रसिद्ध नाट्यकार भुवनेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर लिखा गया। ''मीरा कांत का यह नाटक उन्हें भावुक भावभीनी श्रद्धांजलि नहीं है। यह उन पर केंद्रित होते हुए भी उनसे आगे निकलकर युगों-युगों से निरंतर बहती 'भुवनेश्वर परंपरा' को प्रकाश में लाने का प्रयास है।''[4] भुवनेश्वर प्रसाद महान साहित्यकार थे। उन्हें हिंदी एकांकी का जनक भी माना जाता है। किंतु उन्हें साहित्य एवं व्यक्तिगत जीवन में उपेक्षा का सामना करना पड़ा। इसका कारण उनका छल प्रपंच से रहित होना, चाटुकारिता की प्रवृत्ति से दूर होना था। आज भी कई प्रतिभा कौशल होने के बाद भी उचित अवसर न मिलने के कारण सामने नहीं आ पाती है। ''.... आपकी प्रतिभा को ... आपकी मेहनत को सायास कुचल देते हैं ..... आपकी हस्ती मिटा देने का प्रण करते हैं .... वो साजिश की कोई पत्र-पत्रिका मेरा लिखा एक शब्द न छापे .... क्या वो विमाता का व्यवहार नहीं था?''[5] भुवनेश्वर के संघर्ष को समर्पित यह संवाद उन सभी प्रतिभाशाली युवाओं को समर्पित है जो किसी भी क्षेत्र के हों उनकी प्रतिभा का सम्मान नहीं हो रहा। उनका चयन या सम्मान कौशल या विद्वत्ता के कारण नहीं बल्कि किसी लाभ अथवा रिश्वत के आधार पर हो रहा है। भुवनेश्वर के नाटक यथार्थ की कसौटी पर तो खड़े थे किंतु साहित्यिक जगत से उपेक्षित रहे। मीरा कांत ने भुवनेश्वर के पात्र की कल्पना के द्वारा उनके साथ-साथ उन सभी युवाओं की आत्मवेदना को वाणी देने का प्रयास किया है। ''ये दुनिया है ... ऐसे मत करो ... वैसे मत करो ... सच मन में रखो ... ऊपर से चापलूसी करो ... अपना फायदा देखो ... नहीं चाहिए तुम्हारी नफे-नुक्सान वाली दुनिया...''[6] भुवनेश्वर जैसे कई लोग समाज में उचित स्थान न मिलने पर मानसिक रूप से कुंठित हो विक्षिप्त जैसा जीवन जीने लगते हैं। कलाकारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सामने लाना इस नाटक का उद्देश्य है।

'ईहामृग' नाटक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर लिखा गया है। ईहामृग का अर्थ है इच्छा जो पूरी होकर भी पूरी नहीं होती। स्नेहगंधा, कुमारिल, अनिबद्ध जैसे पात्रों के द्वारा लेखिका ने जीवन की आशा-आकांक्षा के पीछे भागते लोगों के यथार्थ का चित्रण किया है, साथ ही स्त्री हृदय की संवेदना को भी प्रस्तुत किया है। आज मनुष्य भौतिक संसाधनों को जुटाने की होड़ में निरंतर भागता रहता है फिर भी उसकी दौड़ का, मृगतृष्णा का कोई अंत नहीं होता। इसके कारण जो उसके पास है उसका आनंद उठाने की बजाय वह और अधिक पाने की चाह में जीवन की छोटी-छोटी खुशियों को छोड़ रहा है।

''इच्छाएं मृगतृष्णा-सी क्यों
पाकर भी कब पता है मन
रंग सहेजे पर एकाकी।
ईहामृग-सा है यह जीवन।''[7]

आज के इस अत्याधुनिक युग में क्या ये हर व्यक्ति की सच्चाई नहीं है कि वह अधिक और अधिक कमाने की होड़ में आँख मूंदे भागा जा रहा है, यह जाने बिना कि यह दौड़ कहाँ समाप्त होगी। नाटक राजनीतिक सत्ता अनैतिक स्वरूप को भी दर्शाता है जहाँ मार्तंड अपनी महत्वाकांक्षा को पूरी करने के लिए अपनी बहन स्नेहगंधा को माध्यम बनाना चाहता है। आज भी सत्ता प्राप्ति के लिए राजनीति हो या अफसरशाही किसी भी अनैतिक कार्य को निःसंकोच करती है। अगर स्त्री विधवा हो जाए तो समाज उसके दूसरे विवाह को स्वीकृति नहीं देता जबकि ऐसा बंधन पुरषों के लिए नहीं है अनिबद्ध की माँ स्थिरमति के पति संन्यास ले लेते हैं। वह अपनी मृत बहन के पति के समीप आ जाती है किन्तु समाज उसे गौरव नहीं देता। जिसके कारण वह अपने पुत्र वात्सल्य को पूरा नहीं कर पाती। अनिबद्ध भी जीवन की विडम्बना से जूझता है। उसे जीवन में वह प्रेम नहीं मिलता जो उस मिलना था। वह अपने अतीत के कड़वे अनुभवों से निकलने को तैयार नहीं था। नाटक के अंत वह हृदय को निराशा से निकालकर सकारात्मकता से जीवन लक्ष्य की ओर चल पड़ते हैं।

'काली बर्फ' नाटक कश्मीर के तत्कालीन यथार्थ को एक परिवार की कहानी से जोड़ कर बताता है। यह नाटक कश्मीर में फैले वर्षों के अंधेरे को रोशनी में बदलने की उम्मीद का नाटक है। यह नाटक कश्मीर से विस्थापित

लोगों के दुःख की आवाज है। पंडित श्रीकंठ वौखलू (टाठा जी) और उनकी बेटी शारिका अपनी जड़ों से दूर विवश होकर जीवन जी रहे हैं। उनके बेटे बहू घाटी के आतंकवाद की भेंट चढ़ चुके हैं। उनका पोता गोशा ही उनकी खुशी का कारण है। ऐसा ही एक परिवार डॉ. नसीर का है। वे भी अपने परिवार के साथ दिल्ली आ चुके हैं क्योंकि उनके घर काम करने वाला नौकर गुल्ला आतंकवादी बन चुका होता है और उनकी बेटी से निकाह करना चाहता है। विस्थापित सभी परिवारों की तकलीफ अपने घर, गाओं को छोड़कर आने के कारण एक जैसी है। ''मान लिया कि ये हुकूमतें जमीन के मसले का हल निकाल भी लेंगे-पर इंसानी रिश्तों और कश्मीरियों के दिलों पर लगे जख्मों का क्या होगा? ... इलेक्शन होते हैं ... एक सरकार जाती है, दूसरी आती है... पूरी वादी पोस्टरों में दब जाती है... रंग-बिरंगे वायदे हवा में उछाले जाते हैं पर वो लौटकर कभी नहीं आते... वो वायदे भी बस यादों की शक्ल ले लेते हैं...''[8] यह संवाद न सिर्फ कश्मीर की समस्या और सरकार की स्वार्थपरता को दर्शाता है बल्कि देश राजनीतिक दलों के झूठे वादों की पोल भी खोलता है। गुल्ला के मर जाने की खबर से खुश हो डॉ. नसीर परिवार सहित कश्मीर लौटने का निर्णय करते हैं। वापस लौटना सबके लिए संभव नहीं है। गुल्ला तो एक नाम है। ऐसे अनेक गुल्ला कश्मीर की खूबसूरत वादी को नष्ट कर रहे हैं। ''शारिका ... वो घर लौट रहे हैं ... उनका गुल्ला तो मर गया ... हमारा गुल्ला कब मरेगा? (रोने लगती है) कब मरेगा गुल्ला ... कब मरेगा।''[9] शारिका की बड़ी बहन रूपा का यह संवाद विस्थापितों के दर्द को बयां करता है जो वापस लौटने की आशा को जिंदा रखे हुए हैं। काली बर्फ के गिरने का उन्हें इंतजार है जो असंभव है। स्वयं मीरा कांत ने इस नाटक के सम्बन्ध में लिखा है ''काली बर्फ नाटक आज और अधिक प्रासंगिक हो गया है। क्षेत्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के प्रयासों से इसे और अधिक अर्थपूर्ण बना दिया है। यह शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व सदा से ही कश्मीरियत का मूलमंत्र भी रहा है।''(92)

मीरा कांत के नाटकों में सामाजिक जीवन के प्रति व्यापक अनुभूति मिलती है। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को कल्पना एवं यथार्थ के मिश्रण से प्रस्तुत किया है। इनके नाटक युगानुरूप यथार्थ का चित्रण पूरी संवेदना से करते हैं। स्त्री जीवन, राजनीतिक दांव-पेंच, धार्मिक सौहार्द्र, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, बदलते मानवीय मूल्य एवं रिश्ते आदि समस्याओं का चित्रण नाटकों के कथावस्तु का आधार है। मीरा कांत अपने समय के प्रति संवेदनशील और बदलते मानवीय मूल्यों की परिणति से चिंतित लेखिका हैं। मानवीय मूल्य मर्यादाओं के दायरे में रहकर मानव जीवन को संस्कारित करते हैं। किंतु आज इन मूल्यों का, संबंधों का पतन हो रहा है। इस विघटन का सबसे बुरा प्रभाव स्त्रियों पर हो रहा है। पिता-पुत्री, ससुर-पुत्रवधू, भाई-बहन-सभी रिश्तों का आधार श्रद्धा, सम्मान, मर्यादा है लेकिन आज इसका स्थान काम-पिपासा की भावना ने ले लिया है। महिलाओं पर होने वाले यौन हिंसा करने वालों में घरवालों का प्रतिशत बहुत ज्यादा है। लेकिन इस यथार्थ को समाज सामने आने नहीं देना चाहता है। मीरा कांत का नाटक 'अंत हाजिर हो' आधुनिक समय के ऐसे ही सड़े-गले, नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करता है। भारतीय समाज को हमेशा से अपने नैतिक मूल्यों, परम्परागत मान्यताओं, सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्कृति पर गर्व रहा है लेकिन वह आज ऐसी स्थितियों से गुजर रहा है जो मासूम बालिकाओं, किशोरियों, स्त्रियों के साथ साथ मनुष्यता के लिए खतरा है। पुरुष वर्ग अपनी वासना में लिप्त संवेदनाओं से शून्य होकर अपने संबंधों को ही समाप्त करने लगा है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने मनुष्य को अंतरिक्ष तक जरूर पहुंचा दिया है किन्तु पुरुष की दृष्टि में स्त्री मात्र एक 'देह' ही है। पिता देवतुल्य माने गए हैं किंतु नाटक में छोटी के पिता काम-पिशाच के रूप में दिखाई देते हैं। प्रोफेसर होने का कोई भी सद्गुण उनमें दिखाई नहीं देता। पिता संतान को शिक्षित कर उसकी खुशी चाहते हैं लेकिन छोटी के पिता का यह संवाद पिता के रिश्ते को अपमानित करता है। ''साली क्या जिंदगी है हमारी भी यार...बीज बोओ। उसे सींचते रहो... पालो... पोसो... जब लहलहाने लगे तो किसी और की नजर कर दो। ... पाले हम... फल खायें दूसरे।''[10]

नाटक में छोटी उन असहाय ,अबोध बालिकाओं की प्रतीक है जो घर में ही परिवार वालों के द्वारा यौन हिंसा को झेलती हैं। बचपन से ही उसके मन को लगी चोट उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। उसने बचपन में ही अपने पिता में राक्षस देख लिया था। इस कारण वह खुद को सबसे अलग कर लेती है। नाटक में पिता अपनी पत्नी के लकवाग्रस्त होने पर पहले बड़ी बेटी अनु और उसकी शादी के बाद छोटी बेटी तनु का यौन शोषण करते हैं तब अनु तथा माँ चुपचाप सब कुछ झेलती जाती हैं और अनु को किसी से कुछ न कहने की बात कहती हैं। इसी तरह वृद्धा भी पोती का बेटे के दोस्त द्वारा लगातार किए जा रहे बलात्कार को आंख मूँद कर सहती जाती है क्योंकि यदि वह मुंह खोलेगी तो घर का चूल्हा जलना बंद हो जाएगा। यौन शोषण समाज का क्रूर सत्य है और घर की चहारदीवारी में होने वाले घृणित कृत्य तो झूठी इज्जत के मारे कभी सामने आ ही नहीं पाते। न जाने कितनी 'छोटी' इस बलात्कार को झेलती आत्महत्या करती हैं। ''छोटी का

अपने सिर पर भैंस के सींग उग आने की भयातुर स्थिति, उसका पिता की किताबों को बीच से चीर देना, उसका वाचिक आक्रोश और अंततः आत्मघात, किशोर असामान्य व्यवहार की क्रमिक अंर्तयात्रा है। छोटी के पिता की कुत्सित लिप्सा और छोटी और सलोनी का अवसाद वास्तव में असामान्य मनोविज्ञान की ही दो सरणियाँ हैं। मीरा कांत का यह नाटक इन दोनों ही सिरों के लिए एक नए अंत का आकांक्षी है। यह सनसनी फैलाने अथवा संबंधों की उलटबाँसियाँ पेश करके बोल्ड कहलाए जाने का करतब न होकर, ठहर कर सोचने का अनुष्ठान है।''[11] आज की राजनीति में नीति या नैतिकता का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है और राज करने की इच्छा अनैतिकता को बढ़ावा दे रही है। प्राचीन काल से ही सत्ता को हथियाने का षड्यंत्र होता रहा है लेकिन कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो सत्ता से आसक्ति नहीं रखते। परंतु अपने दायित्व का निर्वाह पूरी ईमानदारी से करते हैं। 'हुमां को उड़ जाने दो' नाटक इतिहास एवं कल्पना के सम्मिश्रण से ऐसे ही अनासक्त हुमायूँ के चरित्र को दिखाया है। 'यकीन मानो, मुझे हुकूमत का नशा कभी न था'[12] कहने वाला हुमायूँ हिंदुस्तान का बादशाह होते हुए भी अहंकार से कोसों दूर था। राज्य लिप्सा से उसके तीनों भाई उसके दुश्मन बन जाते हैं। वो बाबर की तरह अपनी इच्छा अपने पुत्र अकबर पर लादना नहीं चाहता। मुगल शासकों में हुमायूँ का जीवन सर्वाधिक कष्टकारी था। वह कलाप्रेमी था। जीवन के अंत तक संघर्षशील रहा। मृत्यु के बाद भी मुक्ति नहीं मिली। नाटक में हुमायूँ के जीवन के अंतिम चरण तथा राजनीतिक षड्यंत्रों को दिखाया गया है। ''कभी-कभी क्यों लगता है कि ये सिर्फ एक खेल है खेल! इस खेल में न जाने कितनी बेइमानी आर्जुएं... जाने कितनी हसरतें ठूंस-दूस कर भर दी गयी हैं। जिन्हें पूरा करते-करते एक जान थी जो छटपटाती रही।''[13] इस खेल में रूचि न होते हुए भी उसने प्रजापालन का कर्तव्य शिद्दत से निभाया। जबकि आज के नेता सत्ता के लिए अपने सम्मान को भी बेचने से गुरेज नहीं करते। हुमायूँ का चरित्र आज के नेताओं के लिए आदर्श है।

वस्तुतः मीरा कांत के नाटक आज के युग के, स्त्री जीवन, सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों, आतंकवाद, समाज की वास्तविक स्थिति आदि का यथातथ्य चित्रण करता है। अपने नाटकों के माध्यम से वे स्त्री की इच्छाओं, क्षमताओं एवं आकांक्षाओं को उजागर करती हैं। लेखिका ने वर्तमान समय के सच को बारीकी से नाटकों में उठाया है। उनके नाटक युग साक्ष्य के अप्रतिम उदाहरण हैं ऐतिहासिक-पौराणिक मिथकों को उन्होंने आज के संदर्भ से बखूबी जोड़ने में सफलता पायी है। मानव जीवन के विभिन्न पक्ष, वैचारिक अभिव्यक्ति शून्य स्त्री, स्त्री देहवादी संस्कृति, धार्मिक अलगाव, राजनीतिक छल-प्रपंच आदि सभी समस्याओं का चित्रण उनका युग बोध के प्रति जागरूकता का परिचय देता है।

संदर्भ

1. मीरा कांत : नेपथ्य राग, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2004, पृ. 62
2. मीरा कांत, कंधे पर बैठा था शाप नाटक, ज्ञानपीठ वाणी प्रकाशन 2006, दिल्ली, पृ. 60
3. वही, पृ. 55
4. मीरा कांत 'भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर, सार्थक प्रकाशन, 2006 दिल्ली, फ्लैप पेज से उद्धृत
5. वही, पृ. 78
6. वही, पृ. 23
7. मीरा कांत : ईहामृग सार्थक प्रकाशन, दिल्ली 2003, पृ. 64-65
8. मीरा कांत, कंधे पर बैठा था शाप नाटक, ज्ञानपीठ वाणी प्रकाशन, 2006, दिल्ली, पृ. 134
9. वही, पृ. 160
10. मीरा कांत, अंत हाजिर हो, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 32
11. वही, भूमिका, पृ. 10-11
12. मीरा कांत, हुमां को उड़ जाने दो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2008, पृ. 26
13. वही, पृ. 56

डॉ. ऐश्वर्या झा
सह आचार्य
हिंदी विभाग
त्रिपुरा विश्वविद्यालय
aishwaryajha@tripurauniv.ac.in
Mob. : 9810407023

धार्मिक रीति-रिवाजों और परम्पराओं के प्रति युवावर्ग का दृष्टिकोण : 15-45 आयु वर्ग के लोगों की केस स्टडी

–कार्तिक अग्रवाल

सारांशः - इस शोधपत्र में मैंने विभिन्न धार्मिक परंपराओं व रीति-रिवाजों के प्रति युवावर्ग की अवधारणाओं को जानने का प्रयास किया है। रीति-रिवाज व परंपराएं समाज द्वारा मान्यीकृत, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली क्रियाएं हैं, जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। इस शोध में मैंने रीति-रिवाज व परंपराओं से संबंधित कुछ प्रश्नों के उत्तर जानने का प्रयास किया है। जैसे कि युवावर्ग अपनी प्राचीन संस्कृति व परंपराओं को कितना सही मानता है और उन्हें कितना अपने व्यवहार में लाता है? क्या युवावर्ग रीति-रिवाजों व परंपराओं को आधुनिकता के विपरीत समझकर उनसे मुँह मोड़ने लगा है? क्या केवल किसी एक धर्म के लोग ही ऐसी सोच रखते हैं, या फिर अन्य धर्मों में भी यह समस्या है? युवाओं की इस बदलती सोच के पीछे कौन-कौन से मुख्य कारक उत्तरदायी हैं? और क्या कोई ऐसे उपाय हो सकते हैं, जिससे युवाओं को अपनी संस्कृति की ओर पुनः उन्मुख किया जा सके?

यह शोधकार्य 15 से 45 आयु वर्ग के लोगों को आधार बनाकर किया गया है। शोध के दौरान युवाओं के विचारों को जानने के लिए उनसे कुछ प्रश्न किए गए, जिसके लिए विभिन्न धर्मो के रीति-रिवाजों और परंपराओं से संबंधित प्रश्नावली तैयार करके डिजिटल माध्यम से उन्हें भरवारा गया। जिससे अलग-अलग समुदायों और आयु वर्गों के लोगों का विस्तृत डाटा तैयार हुआ और कई महत्वपूर्ण जानकारियां सामने आईं। कुछ लोगों से व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार भी लिए गए। परंतु इन विधियों को अपनाने में मेरी कुछ सीमाएं भी थीं। ये जानकारियाँ ऐसे लोगों से प्राप्त की गई हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरे निकट संबंधी या मित्र हैं। इस कारण से प्राप्त जानकारियों में कुछ पूर्वाग्रह भी शामिल हो सकता है। इसके अतिरिक्त सिख, इसाई व बौद्ध समुदाय से मेरा कोई संपर्क न होने के कारण इन समुदायों से संबंधित जानकारी का भी अभाव है। इन अभावों को कुछ कम करने के लिए कई प्रकाशित शोधपत्रों व पुस्तकों से भी जानकारी एकत्रित की गई हैं और समस्त जानकारियों को क्रमबद्ध कर निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कुंजीशब्द : रीति-रिवाज, परंपराएं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, प्रथाओं, युवावर्ग, सभ्यता, संस्कृति, धर्मों, धार्मिक, पाश्चात्य, शोध, तार्किक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक जीवन, व्यवहार

प्रस्तावना : रीति-रिवाज व परंपराएं समाज द्वारा मान्यीकृत, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली दृढ़ व सुव्यवस्थित क्रियाएं हैं। वास्तव में रीति-रिवाज सामाजिक क्रियाएं करने की स्थापित व मान्य विधियां हैं। समाज के अधिकांश लोग उन्हीं विधियों के अनुसार ही कार्य-व्यवहार करते हैं। दूसरे शब्दों में, इसमें वे क्रियायें शामिल हैं, जिन्हें कई पीढ़ियों से स्वीकार किया जाता रहा है। इन्हीं रीति-रिवाजों व परंपराओं के कारण हम नवीन या भिन्न क्रियाओं को अपनाने में संकोच करते हैं। ये रीति-रिवाज व परंपराएं व्यक्ति के व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं।

रीति-रिवाज व परंपराएं एक दिन में उत्पन्न नहीं होते। इनका विकास धीरे-धीरे होता है। व्यक्ति अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों को खोजने का प्रयत्न करता है। सर्वप्रथम यह साधन एक व्यक्ति के मस्तिष्क में विचार बनकर आता है। फिर उस विचार को व्यवहार में लाता है और यदि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सफल होता है तो वह उस विचार को दोहराता रहता है और फिर वह उसकी व्यक्तिगत आदत बन जाती है। जब अन्य लोग भी इस विधि को अपनाते हैं तो वह विचार 'जनरीति' कहलाती है, यही जनरीति जब पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती है तो रीति-रिवाज का रूप ले लेती है। इस प्रकार अतीत और वर्तमान दोनों ही प्रथाओं की उत्पत्ति में सहायक होते हैं।

सामाजिक जीवन में इन रीति-रिवाजों का बहुत महत्व होता है। रीति-रिवाजों/प्रथाओं में अनेक पीढ़ियों का सफल अनुभव तथा व्यवहार शामिल होता है, जिससे सीखना सरल हो जाता है। इससे व्यक्ति पूर्वजों के अनुभव से सीख लेता

है और उसे अधिक मानसिक परिश्रम भी नहीं करना पड़ता। इन रीति-रिवाजों/प्रथाओं का उपयोग कर न केवल परंपरागत समस्याओं का शीघ्र ही समाधान किया जाता है, बल्कि आधुनिक जटिल समस्याओं के लिए नवीन विधियों के विकास में भी ये प्रथाएं अहम् भूमिका निभा सकती है।

व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक रीति-रिवाजों और परंपराओं से घिरा रहता है और इनसे उसका व्यक्तित्व भी पर्याप्त रूप से प्रभावित होता है। रीति-रिवाज कुछ निश्चित व्यवहार-प्रतिमानों को प्रस्तुत करते हैं जो भिन्न-भिन्न सामाजिक परिस्थितियों से संबंधित होते हैं। इससे समाज में लोगों को समानता का व्यवहार करने की बाध्यता उत्पन्न होती है। परंतु वर्तमान तर्कवादी युग में रीति-रिवाज व परंपराओं को मानने वालों की संख्या घटती जा रही है। युवा वर्ग पश्चिमी सभ्यता को आदर्श मानकर उसी के अंधानुकरण में लिप्त है और अपनी प्राचीन परंपराओं को पीछे छोड़ता जा रहा है।

ऐसी परिस्थिति में यह जानना आवश्यक हो गया है कि युवा वर्ग के इस बदलते व्यवहार के पीछे कौन-कौन से कारक उत्तरदायी हैं? युवा वर्ग अपनी प्राचीन व समृद्ध संस्कृति के विषय में क्या विचार रखता है और रीति-रिवाजों व परंपराओं को कितना सही मानता है? क्या यह स्थिति सभी धर्मों में देखने को मिल रही है या कोई विशेष धर्म ही इस समस्या का सामना कर रहा है? क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है, जिससे युवाओं को अपनी संस्कृति की ओर वापस लाया जा सके? इसी तरह के अनेक प्रश्नों के उत्तर जानने का प्रयास इस शोध में किया जा रहा है।

अपने शोधकार्य को प्रारंभ करने से पूर्व मैंने पहले से उपलब्ध कुछ साहित्यों और शोधपत्रों का सर्वेक्षण किया, जिससे कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त हुई। ''रिलिजन एंड यूथ'' नामक पुस्तक में लेखक 'सिल्विया कौलिंस-मेयो' ने युवाओं और धर्म के बीच संबंधों को लेकर समग्र अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक युवाओं व धार्मिक परंपराओं के बीच जटिलताओं के बारे में बताती है। इसके अतिरिक्त 'पुनीत चावला' द्वारा लिखित ''हिंदू बिलीफस व रिचुअल'' नामक पुस्तक भारतीय परंपराओं को युवा पीढ़ी और विदेश में रहने वाले भारतीयों के बीच प्रोत्साहित करने का प्रयास करती है। इसी प्रकार की कई अन्य पुस्तकें व शोधकार्य उपलब्ध हैं जो किसी न किसी रूप में युवाओं व धार्मिक रीति-रिवाजों और परंपराओं के बीच संबंधों पर चर्चा करती है। ऐसे शोध भारत व भारत से बाहर भी होते रहे हैं, परंतु ऐसा कोई शोधकार्य मेरी दृष्टि में नहीं आया, जो हमारे देश में 15 से 45 आयु वर्ग के युवाओं का धार्मिक रीति-रिवाजों व परंपराओं के प्रति दृष्टिकोण पर प्रकाश डालें। साथ ही बदलते समय व सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप युवाओं की अवधारणाएं व विचार भी बदलते रहते हैं, इसलिए वर्तमान परिदृश्य में युवाओं की धार्मिक रीति-रिवाजों व परंपराओं के प्रति अवधारणा को जानने वाला मेरा यह शोधकार्य पूर्णतया नवीन, मौलिक व प्रासंगिक होगा।

वैश्वीकरण के बढ़ते युग में अनेक संस्कृति व सभ्यताओं का आपस में मिलन हुआ है। जिसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ हमारे सामाजिक ढांचे पर भी पड़ा है। नई प्रकार की शिक्षा व्यवस्था, सभ्यता, सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित वर्तमान युवा पीढ़ी, पिछली पीढ़ी के लोगों के स्वभाव, संस्कारों व व्यवहार से भिन्न है। नई विचारधारा, प्राचीन विचारों से भिन्न प्रतीत होती है। इस कारण से दो पीढ़ियों में वैचारिक भिन्नता स्पष्ट होने लगी है। स्कूल, कॉलेजों से निकलने वाले शिक्षित युवक-युवतियाँ तथा नवीन सभ्यता व विचारों से प्रेरित नई पीढ़ी और पुराने विचारों व परंपराओं से ओत-प्रोत पुरानी पीढ़ी में एक संघर्ष सा चल रहा है। और दोनों ही एक दूसरे से असंतुष्ट व परेशान है।

आज एक ही परिवार की मां और बेटी के विचारों में भी बड़ा अंतर दिखाई देता है। जिस मां ने घर की चहारदीवारी में पर्दे की ओट में रहकर गृहस्थी चलाने को ही अपना धर्म मानकर जीवन व्यतीत किया, आज उसी की बेटी शिक्षित होकर आधुनिक रहन-सहन व स्वतंत्रता को अपना अधिकार मानती है। इसी तरह एक पिता व पुत्र में भी यही वैचारिक असमानता पैदा हो गई है।

पहले युवा पीढ़ी को अपने आदर्श ढूंढने के लिए परिवार व समाज के साथ-साथ पुस्तकों से भी सहायता मिलती थी, जो कि भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। परंतु वर्तमान समय में वेद, पुराण, उपनिषद व अन्य धर्मग्रंथों को पढ़ना या उन पर चर्चा करना तो दूर, उनका नाम लेना भी पिछड़ेपन की निशानी माना जाने लगा है। वर्तमान समय में आदर्श व प्रेरक साहित्यों के स्थान पर अश्लील व स्तरहीन सामग्री की भरमार है। युवावर्ग सदैव दुविधा में रहता है कि वह क्या पढ़े, कैसे पढ़े और कहां से पढ़े? सही व गलत के बीच का अंतर ही स्पष्ट नहीं हो पाता। पहले दादा-दादी, नाना-नानी अपने नाती-पोतों को ज्ञानप्रद कहानियाँ सुनाते थे। वीर नायकों की कहानियों से उनके चरित्र को उत्तम बनाने का कार्य करते थे। परंतु अब बच्चे परियों की कहानी, हिंसक कहानियों में अधिक रुचि लेने लगे हैं। हैरी पॉटर, अवेंजर्स जैसी काल्पनिक व तर्कहीन कहानियों ने बच्चों के मस्तिष्क को ही तर्कहीन बना दिया है।

पश्चिमी सभ्यता द्वारा टीवी, सोशल मीडिया जैसे मंचों पर हमारी लोक संस्कृति को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का ही परिणाम है कि खान-पान, वेशभूषा, आचार-व्यवहार आदि सभी क्षेत्रों में युवाओं द्वारा पाश्चात्य अपसंस्कृति का अंधानुकरण किया जा रहा है। पाश्चात्य

संस्कृति के जीवन मूल्यों को अपनाती हमारी युवा पीढ़ी अपने देश की संस्कृति को हेय दृष्टि से देखने लगी है।

पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का प्रत्यक्ष साक्ष्य यह है कि जब शोध के दौरान कई हिंदू युवाओं से पूछा गया कि 'क्रिसमस डे' किस दिन मनाया जाता है तो शत प्रतिशत लोगों का उत्तर सही था। लेकिन जब उन्हीं युवाओं से पूछा गया कि दीपावली का पर्व किस दिन मनाया जाता है तो मात्र 27% लोगों ने ही सही उत्तर 'अमावस्या' बताया। शेष सभी ने पूर्णिमा, एकादशी, अष्टमी या पता नहीं जैसे उत्तर दिए।

यही नहीं, प्रत्येक वर्ष 1 जनवरी को धूमधाम से नववर्ष मनाने वाले उन्हीं युवाओं से जब यह प्रश्न पूछा गया कि हिंदू कैलेंडर के अनुसार नया वर्ष कब से आरंभ होता है, तो मात्र 48 प्रतिशत लोग ही सही उत्तर दे पाए और उनमें से भी अधिकांश लोग 35 वर्ष से अधिक आयु के थे। यह स्थिति केवल हिंदू धर्म में ही नहीं है, अन्य धर्मों में भी लगभग यही स्थिति देखने को मिली। जब मुस्लिम युवाओं से पूछा गया कि 'हिजरी संवत' का कौन सा माह रमजान से संबंधित है तो लगभग 54% लोग ही सही उत्तर दे सके। इसी प्रकार जैन धर्म के सबसे मुख्य 'पर्यूषण पर्व' के बारे में भी 55% युवा ही यह बता पाए कि यह पर्व कब मनाया जाता है। शेष ने या तो गलत उत्तर दिया या फिर उत्तर ही नहीं दिया। लेकिन यदि उनसे पूछा जाए कि 'वैलेंटाइन डे' या 'चॉकलेट डे' कब मनाए जाते हैं तो उन्हें सारी तारीखें याद होती हैं।

लगभग सौ वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानंद द्वारा कही गई इस बात पर गंभीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है कि आज हमारी जो स्थिति बनती जा रही है, उसका कारण क्या यह तो नहीं है कि हम अपने धर्म के पथ से भटक गए हैं, अपनी संस्कृति और परंपराओं की उपेक्षा करने लगे हैं और पाश्चात्य अंधानुकरणों के कारण स्वयं ही अपनी जड़ों को काटते जा रहे हैं? ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी आज भी हमारे समक्ष खड़े होकर हमें चेतावनी दे रहे हैं, हमें झकझोर रहे हैं। स्वामीजी की बात को आत्मसात करके ही हम वर्तमान चुनौतियों का सामना कर सकेंगे। धार्मिक जीवन के द्वारा ही हम स्वयं में सुधार ला सकेंगे और समाज व राष्ट्र को भी उन्नति के मार्ग पर ले जा सकेंगे।

स्वामी जी के ये कथन वर्तमान वास्तविकता की ओर इशारा कर रहे हैं। हमारी युवा पीढ़ी अपने धर्म, संस्कृति और परंपराओं की उपेक्षा कर रही है और उनसे अनभिज्ञ होती जा रही है। हिंदू धर्म का सबसे पवित्र मंत्र गायत्री मंत्र किस देवी या देवता को समर्पित है, इसका सही उत्तर 100 में से मात्र 17 लोगों के पास ही था। यदि उनसे पूछा जाए कि एक हिंदू विवाह-पद्धति में कौन-कौन सी मुख्य रस्में होती हैं तो उन्हें जूता चुराई, बारात, जयमाला जैसी बातें तो याद आती हैं लेकिन चाक पूजन, कुआं पूजन, गौर पूजन जैसी अहम् रस्मों की जानकारी नहीं होती।

जैन धर्म में भी 20% लोग ऐसे थे, जिन्हें यह ही नहीं पता कि उनके धर्म में कुल कितने तीथ ंकर हुए हैं। 40% लोग यह ही नहीं जानते कि जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव हुए थे। इसी प्रकार इस्लाम धर्म को मानने वाले युवाओं में 38-40% ऐसे हैं जो यह ही नहीं जानते कि मोहर्रम किसकी शहादत को याद करते हुए मनाया जाता है।

यह तो सर्वविदित है कि जब कोई व्यक्ति अपनी मूल संस्कृति व परंपराओं का महत्व समझता है और अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है तो वह अधिक योग्य होता है और सफलता के अधिक निकट होता है। परंतु जो व्यक्ति अपनी जड़ों से दूर हो जाता है, उसे तात्कालिक सफलता तो मिल जाती है परंतु दीर्घकाल में यह उसके पतन का कारण बनता है। आज से लगभग 250 वर्ष पूर्व, भारत में अपनी सत्ता को मजबूती प्रदान करने के लिए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत की सांस्कृतिक जड़ों पर ही प्रहार करना शुरू किया। उन्होंने भारत की प्राचीन व समृद्ध संस्कृति को छिन्न-भिन्न कर भारतीयों को कमजोर करने का सफल प्रयास किया। जब भारतीय अपनी जड़ों से विलग हुए, तो उन्होंने स्वयं को निर्बल व असहाय पाया। परंतु जब धर्म सुधार आंदोलन के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद को जगाने का कार्य प्रारंभ हुआ तो पुनः अपनी सभ्यता व संस्कृति पर गर्व करने का आवाहन किया गया और भारतीयों को उनकी समृद्ध अतीत की याद दिलाकर एक सूत्र में बांधा गया और राष्ट्रीय आंदोलन खड़ा किया गया।

हमारी संस्कृति में कुछ परंपराएं ऐसी हैं जो धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोती जा रही हैं। इनमें से एक अवधारणा यह है कि पीपल के वृक्ष को घर के आंगन में नहीं लगाया जाता। यदि इसके पीछे के कारण को किसी से पूछते हैं तो यह बताया जाता है कि पीपल के पेड़ पर भूतों का वास होता है तथा कुछ लोग कहते हैं कि पीपल के वृक्ष की पूजा की जाती है इसलिए इसे घर में नहीं लगाया जा सकता। परंतु यदि इसका तार्किक उत्तर ढूंढा जाए तो यह ज्ञात होता है कि पीपल के वृक्ष की जड़ें बहुत तेजी से फैलती हैं और यदि इसे घर के आंगन में लगाया जाता है तो इसकी जड़ें घर की दीवारों तक में फैल जाती हैं, जिससे घर को नुकसान होने की संभावना रहती है।

शोधकार्य के दौरान लोगों से एक प्रश्न पूछा गया कि प्रत्येक वर्ष नवरात्रि के नौ दिन उपवास क्यों रखा जाता है और प्रश्न के 5 विकल्प दिए गए तो केवल दो विकल्पों पर ही लोग सहमत दिखे। 35 वर्ष से अधिक आयु के लोगों का उत्तर था 'देवी शक्ति/ मां दुर्गा को प्रसन्न करने

के लिए'। जबकि अन्य लोगों को दूसरा विकल्प ज्यादा सही लगा। उन्होंने माना कि उपवास करने से शरीर की रोग- प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है और शरीर स्वस्थ रहता है। इस उत्तर से यह स्पष्ट होता है कि युवा वर्ग तार्किक उत्तरों में अधिक रुचि रखता है न कि परंपरागत मान्यताओं या विचारों में।

इसी प्रकार का एक प्रश्न सभी धर्मों के लोगों से पूछा गया कि क्या आप अपने धर्म से संबंधित रीति-रिवाजों व परंपराओं पर विश्वास करते हैं, क्या उनका पालन करते हैं? यदि हाँ तो क्यों और यदि नहीं तो क्यों नहीं करते? तो उच्च आयु वर्ग के लोगों में से अधिकांश का मानना था कि हमें इनका महत्व तो नहीं पता, लेकिन हमारे बड़े बुजुर्ग सदियों से ऐसा करते आये हैं और वे चाहते हैं कि हम भी उन्हें माने। इसलिए हम बिना किसी संकोच के इन परंपराओं को मानते हैं। परंतु कम आयु वर्ग के अधिकांश लोगों का कहना था कि वे ऐसे किसी भी रीति-रिवाज या परंपरा को तब तक मानने को तैयार नहीं हैं, जब तक उन परंपराओं का कारण उन्हें नहीं बताया जाता। हम इस तार्किक युग में किसी भी अंधविश्वास को स्वीकार नहीं करेंगे।

आज की युवा पीढ़ी धर्म में विश्वास कम करती है बल्कि विज्ञान और तार्किक विचारों को अधिक महत्व देती है। यही कारण है कि धार्मिक मान्यताएं कमजोर होती जा रही हैं। नई पीढ़ी के लोग अपने धर्म, संस्कृति पर गर्व नहीं करते क्योंकि उन्हें धर्म की सही जानकारी ही नहीं दी गई है। विडंबना यह है कि पुरानी पीढ़ी, जो परंपराओं को मानती आ रही है, उसने कभी उनका कारण जानने की कोशिश ही नहीं की, केवल अपने पूर्वजों की व्यवस्थाओं और रीति-रिवाजों पर आँख मूंदकर चलते रहे। परंतु आज उन्हीं की संतानें उनकी इन व्यवस्थाओं पर प्रश्न खड़े कर रही हैं। उनका विचार है कि वे तभी इन व्यवस्थाओं व परंपराओं को अपनाएंगे, जब उनका तार्किक उत्तर उन्हें पता चलेगा, अन्यथा नहीं। परंतु उनके बड़े-बुजुर्गों पर इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। और यही कारण है कि युवा वर्ग एक अलग राह पर निकल पड़ता है, और अपनी जड़ों से दूर हो जाता है।

यदि आज की युवा पीढ़ी धर्म को अंधविश्वास मान रही है तो वे गलत नहीं है। सदियों से जो तथाकथित धर्म व परंपराएं लोगों पर जबरन थोपे गए हैं उनमें से 99% अंधविश्वास से भरे पड़े हैं। विचार कीजिए कि कोई व्यक्ति हिंदू क्यों है? मुस्लिम क्यों है? या अन्य किसी धर्म से संबंधित क्यों है? क्योंकि उसका परिवार और समाज कुछ ऐसी मान्यताएं जन्म से ही उस पर थोप देता है, जिनके आधार पर वह किसी संप्रदाय विशेष का सदस्य मान लिया जाता है। जबकि धर्म का वास्तविक स्वरूप तो आध्यात्मिक जागृति है, जिसका पूजा पाठ के विधि विधानों से कोई लेना-देना नहीं है। धर्म वह है जो मनुष्य को उचित कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। ''धारयति इति धर्मः'', अर्थात् जो समाज के धारण करने योग्य है वह ही धर्म है। किंतु दुर्भाग्य से धर्म का आध्यात्मिक रूप कम लोग ही समझ पाते हैं और धर्म का प्रयोग अपने स्वार्थसिद्धि में करने लगते हैं। यही कारण है कि पूरी दुनिया में धर्म के नाम पर इतना बवाल मचा हुआ है।

हमारी शिक्षा प्रणाली ही ऐसी बना दी गई है कि उसमें धार्मिक संस्कारों और रीति-रिवाजों के पालन की कोई शिक्षा ही नहीं दी जाती है। जबकि शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा बचपन से ही व्यक्ति में धार्मिक मूल्यों को समाहित किया जा सकता है। परंतु आज युवा वर्ग भोग-विलास व भौतिकवाद में अधिक लिप्त होता जा रहा है जो पाश्चात्य मूल्यों के आत्मसातीकरण का ही परिणाम है।

हमारी प्राचीन परंपराएं व मूल्य ऐसे ही स्थापित नहीं हो गए हैं, बल्कि वर्षों के शोध, अनुभव के आधार पर ही उन्हें व्यवहार में लाया गया। भारतीय संस्कृति में सबसे लोकप्रिय रीति-रिवाजों और परंपराओं में से एक 'नमस्ते' अभिवादन है, जिसे कभी-कभी नमस्कार या नमस्कारम भी कहा जाता है, जिसका अनुवाद ''मैं आपके अंदर मौजूद परमात्मा को नमन करता हूं'' है। यह संबोधन हथेलियों को छाती के सामने प्रार्थना मुद्रा में एक साथ रखकर, उंगलियों को ऊपर की ओर करके और हल्का सा झुककर किया जाता है। इसके साथ ही अपने से बड़ों के चरण स्पर्श करने की परंपरा भी हमारी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। यदि आप झुककर किसी के चरण स्पर्श करते हैं, तो उस व्यक्ति की सकारात्मक ऊर्जाएं आपके अंदर आ जाती हैं, जिससे आप अधिक चरित्रवान बनते हैं। परंतु आज की युवा पीढ़ी आदर करने के नाम पर बिना झुके ही घुटनों को छूकर काम चला रहे हैं। लेकिन यदि उन्हें इस परंपरा का तार्किक कारण ज्ञात होगा, तो शायद वे अपनी इस गलत आदत को स्वतः ही सही कर लेंगे।

प्राचीन समय से यह मान्यता रही है कि नदियों, तालाबों व कुओं में सिक्के डालकर अपनी मनोकामनाएं पूरी की जाती है। परंतु युवा वर्ग इसे अंधविश्वास से अधिक कुछ नहीं मानता। परंतु वास्तव में इसके पीछे कुछ तार्किक कारण थे। जब यह परंपरा शुरू हुई थी, उस समय तांबे व चांदी के सिक्के प्रचलन में थे। इन धातुओं के सिक्कों को जल में डालने से ये अपने धनात्मक आवेश से जल की नकारात्मक अशुद्धियों को उदासीन कर देते थे, जिससे लोगों को शुद्ध जल प्राप्त होता था। परंतु अब मिश्रित धातुओं के सिक्के बनाए जाते हैं, जिनका जल की अशुद्धियों पर कोई प्रभाव नहीं होता। इसलिए वास्तव में

इस परंपरा का आज के समय कोई तार्किक अर्थ नहीं रह गया है।

इसी प्रकार सभी धर्मों में अधिकांश परंपराओं, रीति-रिवाजों व मान्यताओं के व्यवहार में आने का कोई न कोई तार्किक कारण अवश्य ही रहा होगा। परंतु अभी हम उनसे अनजान हैं। जैसे ही वे सभी कारण हमारी युवा पीढ़ी के सामने आयेंगे, उनके विचार और व्यवहार में अवश्य ही बदलाव आयेगा। वे फिर से अपनी संस्कृति पर गर्व महसूस करेंगे और अपनी इच्छा से उन्हें अपनाएंगे। निकट भविष्य में अपने शोध के माध्यम से ऐसी ही अनेक परंपराओं के वैज्ञानिक कारणों को सबके सामने लाने की कोशिश करूँगा।

भारतीय संस्कृति में मंदिर निर्माण के पीछे भी विज्ञान छिपा है। कई पवित्र इमारतें जानबूझकर पृथ्वी की चुंबकीय तरंग रेखाओं की सकारात्मक ऊर्जा से संबंधित स्थान पर बनाई गई थी। अधिकांश मंदिरों में गर्भगृह में एक मुख्य मूर्ति होती है, जिसके नीचे एक तांबे की प्लेट होती है जो इस भूमिगत ऊर्जा को अवशोषित और प्रतिध्वनित करती है। भारतीय संस्कृति में मंदिरों में प्रवेश करने से पूर्व स्नान करना या कम से कम हाथ-पैर धोना महत्वपूर्ण परंपरा है, इससे आप नकारात्मक विचारों और बुरे प्रभावों से मुक्त हो जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में रीति-रिवाजों और परंपराओं में त्यौहारों का विशिष्ट स्थान है। त्यौहारों की विशाल विविधता भारत की समृद्ध संस्कृति और परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें राज्यव्यापी, धर्म-आधारित और समुदाय केंद्रित त्यौहार शामिल है। ये त्यौहार केवल धार्मिक महत्व ही नहीं रखते, बल्कि ये कई प्रकार से मानव जीवन को लाभान्वित करते हैं। एक ओर तो यह सुस्त पड़ी अर्थव्यवस्था को गतिशीलता प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर त्यौहारों के माध्यम से व्यक्ति के जीवन में नई उमंग का संचार होता है और समुदायों में आपसी मेलजोल व परस्पर संवाद बढ़ता है, जो एक सुखी समाज बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

शोध कार्य से एक तथ्य यह भी सामने आया है कि अब धीरे-धीरे युवाओं में अध्यात्म के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। शोध कार्य के दौरान ही युवाओं ने विभिन्न धार्मिक प्रश्नों के बड़े उत्सुकता के साथ उत्तर दिए। वे इन विषयों में रुचि लेने लगे हैं। धार्मिक पुस्तकों के प्रति भी उनका रुझान बढ़ रहा है। विभिन्न मेलों में सजी धार्मिक पुस्तकों की दुकानें युवाओं को आकर्षित कर रही हैं। तमाम युवा वर्ग कर्मकांड, ज्योतिष, वेद-पुराण समेत अनेक धार्मिक ग्रंथों की खरीदारी करने में जुटे दिखाई देने लगे हैं। हालांकि इंटरनेट मीडिया पर भले ही सबकुछ उपलब्ध है लेकिन पुस्तकें तो हमारी धरोहर होती हैं। पुस्तकों को पढ़कर इनकी गूढ़ता को महसूस किया जा सकता है। कई ऐसे विषय व सामग्री है, जो इंटरनेट पर उपलब्ध भी नहीं हो पाती हैं। इसी को देखते हुए विभिन्न स्थानों पर गीता प्रेस गोरखपुर जैसे प्रकाशन अपनी चलायमान दुकानें लगाने लगे हैं तथा साथ ही इंटरनेट पर अनेक पुस्तकों को मुफ्त में उपलब्ध कराने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मोबाइल एप्लीकेशंस भी उपलब्ध हैं, जो विभिन्न भाषाओं में धार्मिक पुस्तकें उपलब्ध करा रहे हैं।

किताबों के साथ-साथ युवाओं में कंठी माला, तुलसी माला, रुद्राक्ष व अन्य मालाओं और रक्षा सूत्रों को लेकर भी काफी उत्साह दिखाई दे रहा है। धार्मिक पुस्तकों व संस्कारों के प्रति युवा अपनी भावनाएं भी साझा कर रहे हैं। सैरपुर की तृषा मिश्रा का कहना है कि रामायण या महाभारत को पढ़ने के बाद पता चलता है कि हमारी संस्कृति कितनी विशाल है। इन पुस्तकों से हमें समाज में किस तरह से रहना है, इसकी भी सीख मिलती है।

वर्तमान समय में कवि कुमार विश्वास द्वारा किए जा रहे 'अपने-अपने राम' व 'अपने-अपने श्याम' जैसे कार्यक्रमों में बड़ी संख्या में युवाओं की उपस्थिति तथा राम कथा व श्याम कथा को सुनकर प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा शांत करना, धर्म के प्रति युवाओं के बढ़ते आकर्षण का ही सूचक है।

अब ऐसे समय में जब नई और पुरानी पीढ़ी एक साथ समानांतर रूप से चल रही है तो दोनों में सामंजस्य बनाना अति आवश्यक है। इसके लिए दोनों ही पक्षों को अपने-अपने दृष्टिकोण में थोड़ा परिवर्तन करना ही होगा। पुरानी पीढ़ी को समय के अनुसार स्वयं को ढालना होगा और नई पीढ़ी को एक सीमा तक छूट देनी होगी। उसी प्रकार नई पीढ़ी के युवक व युवतियों को भी अपने शाब्दिक ज्ञान, दिमागी विकास के बल पर वृद्धजनों के लंबे अनुभवों, व्यवहारिक शिक्षा व परंपराओं की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। वे वृद्धजनों के अनुभव, व्यवहारिक ज्ञान का प्रश्रय लेकर जीवन में अधिक सफल हो सकते हैं। नई सभ्यता के बाह्य ढांचे पर मोहित होकर पुरातन व्यवस्था, नियम, मर्यादाओं को उखाड़ फेंकना भारी भूल होगी। पुरातन ज्ञान का सहारा लेकर, नवीन ज्ञान की कसौटी की जा सकती है। इसी काम की जिम्मेदारी नई पीढ़ी पर है ताकि वे पुरातन व नवीन के संयोग से उपयुक्त पथ का निर्माण कर सके।

नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज के अनुसार, भारत में 16 से 25 वर्ष के युवाओं की संख्या लगभग 21-22 करोड़ है। यदि यह युवा शक्ति सकारात्मक और रचनात्मक मार्ग पर चल पड़े तो भारत को विश्व का सिरमौर बना सकती है। अपने सद्गुणों और सद्विचारों के बल पर ही भारत कभी विश्व में जगतगुरु कहलाता था। उसे पुनः उसी पद पर पुनर्स्थापित करने का सामर्थ्य

केवल हमारी युवा पीढ़ी में ही है। युवा पीढ़ी को उग्र नहीं होना चाहिए। उसे भारतीय परंपराओं का मूल्य और महत्व समझना चाहिए। जिससे शिष्टता, सभ्यता और सामाजिक सुरक्षा की बहुमूल्य मर्यादाओं में रहते हुए शांति व्यवस्था और प्रगति का समुचित अवसर प्राप्त होता रहे।

मोहम्मद असलम परवेज ने अपनी पुस्तक में धर्म और विज्ञान के बारे में कई मिथकों का भंडाफोड़ किया है। यह भी बताया है कि किस प्रकार समुदाय, रीति-रिवाजों और परंपराओं के एक अंतहीन चक्र में फंस गया है, जो कुरान के निर्देशों के बिल्कुल विपरीत है। धर्म आमतौर पर अनुष्ठानों का एक समूह है जो बताए गए अनुसार किया जाता है, कोई भी इस पर सवाल नहीं उठाता है और अंधा अनुसरण पीढ़ी दर पीढ़ी जारी रहता है।

उन्होंने इसका समाधान बताया है कि हमें दिए गए प्रत्येक कथन, पाठ या उपदेश के पीछे कारण और सबूत ढूंढना चाहिए और तार्किक अर्थ निकालने चाहिए। हमें बचपन से ही कुछ अभ्यास और प्रार्थनाएं एक कार्यक्रम के अनुसार करना सिखाया जाता है। हम प्रार्थनाएं पढ़ते हैं लेकिन किसी भी श्लोक का अर्थ नहीं जानते। यह एक अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है और एक ईश्वरीय पुस्तक को छोटा करने के समान है। इसलिए हमें उन प्रार्थनाओं के अर्थ को समझकर ही उन्हें अपने व्यवहार में लाना चाहिए। पुस्तकों में बताया गया है कि ईश्वर हमें अन्वेषण करने, तर्क करने और प्रश्न पूछने के लिए कहता है। हमारे अनेक प्राचीन ग्रंथ तो प्रश्नोत्तरी के रूप में ही लिखे गए हैं जिसमें कोई व्यक्ति अपने मन की जिज्ञासा को शांत करने के लिए प्रश्न करता है और ऋषि मुनि या कोई ज्ञानी उन प्रश्नों के तार्किक उत्तर देता है।

इस प्रकार इस शोधकार्य से कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकल कर आते हैं। सर्वप्रथम यह है कि वर्तमान युवाओं को अपने धार्मिक रीति रिवाजों व परंपराओं की बहुत सीमित जानकारी है। 35 वर्ष से अधिक आयु के लोग परंपराओं व रीति-रिवाजों को निभाने को प्राथमिकता देते हैं, परंतु वे न तो इनके वास्तविक कारणों को जानते हैं और न ही उन्हें जानने का प्रयास करते हैं। परंतु युवा पीढ़ी इन परंपराओं व रीति-रिवाजों को तब तक अपनाने के लिए तैयार नहीं है, जब तक कि उन्हें इन परंपराओं को मानने का तार्किक आधार नहीं मिल जाता। वर्तमान तकनीक व विज्ञान के युग में युवा वर्ग बिना तर्क के किसी बात को स्वीकार नहीं करता। और यह समस्या सभी धर्मों में दिखाई दे रही है।

इसके अतिरिक्त शोध से यह भी पता चला है कि जब किसी परंपरा व रीति रिवाज को मानने का तार्किक कारण युवाओं के समक्ष आ जाता है तो वे शीघ्रता से उन्हें अपनने लगते हैं। यद्यपि अब युवा वर्ग का रुझान धार्मिक परंपराओं की ओर बढ़ रहा है परंतु अभी गति धीमी है। और यदि हमें इस गति को तीव्र करना है तो युवाओं को तर्क से संतुष्ट करना होगा। यही एकमात्र उपाय हो सकता है जो हमारी प्राचीन समृद्ध संस्कृति व परंपराओं को जीवित रख सकता है और आगे आने वाली पीढ़ी को धरोहर के रूप में हस्तांतरित कर सकता है अन्यथा यह सब इतिहास का अंशमात्र ही बनकर रह जाएंगे।

संदर्भ

1. काणे, पांडुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, लखनऊ, हिंदी समिति, सूचना विभाग, 1964।
2. थरूर, शशि, मैं हिंदू क्यों हूं?- तृतीय संस्करण, युगांकधीर द्वारा अनुवादित, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2022।
3. परवेज, मोहम्मद असलम। ''भगवान को खोजने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण आवश्यक है''। जिया उससलाम द्वारा साक्षात्कार। द हिंदू, 29 अप्रैल 2021।
4. विश्वनाथन (संपा), एम आई ए हिंदू?, नई दिल्ली, रूपा पब्लिकेशंस, 1993।
5. राधाकृष्णन एस, द हिंदू वे ऑफ लाइफ, लंदन, जी एलन एंड अनविनलि, 1927।
6. परवेज, मोहम्मद असलम, द साइंटिफिक मुस्लिमः अंडरस्टैंडिंग इस्लाम इन ए न्यू लाइट, कोणार्क
7. सिंह, जसविंदर। ''सिख धर्म''। साक्षात्कार। हरिद्वार
8. पंडित हीरालाल (संपा), जैनधर्म- पूजन पाठ प्रदीप, दिल्ली, जिनवाणी संग्रह।
9. जैन, सुनीता। साक्षात्कार। कार्तिकअग्रवाल द्वारा संचालित, 14 नवंबर 2023।
10. जैन, आयुष। साक्षात्कार। कार्तिक अग्रवाल द्वारा संचालित, 14 नवंबर 2023।
11. गोयल, लीना। साक्षात्कार। कार्तिकअग्रवाल द्वारा संचालित, 6 अक्टूबर 2023।
12. वसीम। साक्षात्कार। कार्तिक अग्रवाल द्वारा संचालित, 20 नवंबर 2023।
13. सैनी, आशु। साक्षात्कार। कार्तिक अग्रवाल द्वारा संचालित, 1 नवंबर 2023।
14. गोयल, ज्योति। साक्षात्कार। कार्तिक अग्रवाल द्वारा संचालित, 30 अक्टूबर 2023।
15. शुक्ला, मयंक। साक्षात्कार। कार्तिक अग्रवाल द्वारा संचालित, 25 सितंबर 2023।
16. प्रश्नोत्तरी 17. इंटरनेट

कार्तिक अग्रवाल
शोधकर्ता
डी.पी.बी.एस.(पी.जी.) कॉलेज, अनूपशहर
प्रो. गिरीश कुमार सिंह
शोध-निर्देशक
प्राचार्य, डी.पी.बी.एस.(पी.जी.) कॉलेज, अनूपशहर
(सम्बद्धताः चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)

भारत में दिव्यांगजन एवं दिव्यांगजन के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्मेलन, 2006 का प्रभाव : एक अध्ययन

–डॉ. शशि सौरभ
–दिलीप कुमार

सारांश - भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार दिव्यांगजन की जनसंख्या कुल आबादी का 2.21 प्रतिशत है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत में दिव्यांगजन के सशक्तिकरण के लिए कई प्रयास किए गए हैं। सन् 1980 के दशक से विशेश रूप से दिव्यांगजन के सार्वभौमिक विकास के लिए विभिन्न अधिनियमों को निर्मित व लागू किया गया। इनका सकारात्मक प्रभाव स्पष्ट रूप से दिव्यांगजन के विकास में देखने को मिलता है। सन् 1995 में दिव्यांगता के सात प्रकारों को चिन्हित किया गया था, जिसे 2016 में बढ़ाकर 21 कर दिया गया। दिव्यांगता के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासभा के द्वारा 13 दिसंबर, 2006 को दिव्यांगजन के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन (United Nation Convention on Rights of Person with Disability) आयोजित किया गया, जिसमें उन समस्त विषयों को शामिल किया गया, जो दिव्यांगजन के जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास का मार्ग तैयार करने के लिए आवश्यक हैं। भारत ने इस संधि पत्र पर 1 अक्टूबर 2007 को हस्ताक्षर किया। एक हस्ताक्षरकर्ता देश होने के नाते, इस सम्मेलन में तय किए गए बिन्दुओं के अनुसार दिव्यांगजन के लिए प्रयास करने के लिए भारत ने भी अपनी प्रतिबद्धता दर्शायी। इस शोध पत्र के माध्यम से यह मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है कि भारत में दिव्यांगजन के लिए सरकारों द्वारा किये जा रहे प्रयास कहाँ तक यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के प्रावधानों के आलोक में सार्थक सिद्ध हुए हैं तथा कौन से ऐसे क्षेत्र शेष रह गए हैं, जहाँ प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। इस अध्ययन की शोध की प्रविधि विवरणात्मक है तथा शोध कार्य को प्रासंगिक बनाने के उद्देश्य से भारत में दिव्यांगजन के लिए निर्मित अधिनियमों, कार्यक्रमों और नीतियों का अध्ययन किया गया है, जिसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से अध्ययन सामग्री एकत्र की गई है।

प्रमुख शब्द : संयुक्त राष्ट्र संघ, भारत में दिव्यांगजन, यू.एन.सी.आर.पी.डी. : 2006, सार्वभौमिक विकास, सशक्तिकरण।

भारत में दिव्यांगजन : संक्षिप्त परिचय- भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में से 2.68 करोड़ दिव्यांग हैं, जो कि भारत की कुल जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत है।[1]

भारत में दिव्यांगता की विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत 18.8 प्रतिशत सुनने की क्षमता, 18.9 प्रतिशत दृष्टि दोष, 7.5 प्रतिशत बोलने संबंधी, 20.3 प्रतिशत लोकोमोटर, 5.6 प्रतिशत मंदबुद्धि, 2.7 प्रतिशत मानसिक बीमारी, 18.4 प्रतिशत अन्य प्रकार की दिव्यांगता तथा 7.9 प्रतिशत एक या एक से अधिक प्रकार की शारीरिक या मानसिक दिव्यांगता से ग्रस्त हैं।[2]

लैंगिक आधार पर बात की जाए तो दिव्यांगजन की कुल जनसंख्या 2.68 करोड़ में से 1.5 करोड़ पुरूष और 1.18 करोड़ महिलाएं हैं। अर्थात पुरुष 56 प्रतिशत तथा 49 प्रतिशत महिलाएं हैं। इसी प्रकार यदि जनसंख्या के बिखराव को देखें तो हम यह पाते हैं कि 69 प्रतिशत दिव्यांग ग्रामीण इलाकों से हैं और 31 प्रतिशत शहरी इलाकों से।[3]

शिक्षा के दृष्टिकोण से देखें तो हम यह पाते हैं कि भारत में दिव्यांगों की कुल जनसंख्या में से 45.48 प्रतिशत अशिक्षित हैं। शिक्षित दिव्यांगजनों में 54.52 प्रतिशत दिव्यांग प्राथमिक स्तर की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाए। 24.38 प्रतिशत दिव्यांग माध्यमिक स्तर से कम तथा 16.75 प्रतिशत दसवीं से कम शिक्षा ग्रहण किए हुए हैं। 23. 59 प्रतिशत दिव्यांग स्नातक तक की पढ़ाई पूरी नहीं कर सके तथा केवल 8.53 प्रतिशत दिव्यांग ही स्नातक या उससे

ऊपर की पढ़ाई कर पाने में सक्षम हुए हैं। इसी प्रकार यदि आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो, दिव्यांगजन की कुल जनसंख्या में से 17.1 मिलियन दिव्यांग गैर-आर्थिक कार्यों में लगे हैं।[4]

उपरोक्त जनसांख्यिकीय विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में दिव्यांगजन की जनसंख्या कम नहीं हैं। यदि दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के तहत बताए गए 21 श्रेणियों के आधार पर अध्ययन किया जाए तो यह संख्या और भी अधिक हो जाएगी।[5] ऐसे में दिव्यांगजन की आर्थिक, सामाजिक, एवं शैक्षिक स्तर से जुड़े आंकड़े भी प्रभावित होंगे। यदि 2011 के आंकड़ों के आधार पर भी देखा जाए तो हम यह पाते हैं कि दिव्यांगजन की स्थिति अत्यंत ही चिंता का विषय है। इसलिए सरकारों के द्वारा समय-समय पर दिव्यांगजन के हितों को ध्यान में रखते हुए कानूनों का निर्माण किया गया है। इन कानूनों ने जहाँ एक तरफ दिव्यांगजन को दया नहीं अपितु अधिकारों के प्रति जागरूक किया है, तो वहीं दूसरी ओर इनकी समस्याओं को चिन्हित कर उनके समाधान हेतु उचित प्रयास पर भी बल दिया है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बात की जाए तो दिव्यांगजनों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन (यू.एन.सी.आर.पी.डी.), 2006 से पूर्व वैश्विक स्तर पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के द्वारा दिव्यांगजनों के अधिकारों हेतु विभिन्न देशों में जिन कानूनों का निर्माण किया गया था, उनमें किसी प्रकार की एकरूपता नहीं थी। कुछ देशों में दिव्यांगजन के अधिकारों के लिए कोई विशिष्ठ कानून भी नहीं था। अतः वैश्विक स्तर पर एकरूपता लाने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा के द्वारा 13 दिसंबर 2006 को दिव्यांगजन के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन (यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006) का आयोजन किया गया, जिसके अंतर्गत दिव्यांगजन के जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास का मार्ग तैयार करने के लिए आवश्यक कुछ अधिकारों पर विश्व के विभिन्न देशों में सहमति बनी। यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के प्रावधानों पर सहमति देते हुए भारत ने भी इस पर हस्ताक्षर किए हैं। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के प्रावधानों का अध्ययन कर यह पता लगाया जाए कि भारत में दिव्यांगजन के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए उक्त प्रावधानों को किस स्तर तक अंगीकृत किया गया है तथा दिव्यांगजन के सशक्तिकरण में इसकी क्या भूमिका रही है।

दिव्यांगजन के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का सम्मेलन 2006[6]- यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 में 50 अनुच्छेद हैं जिसमें दिव्यांजन के अधिकारों और इनसे संबंधित विकासात्मक कार्यों का प्रावधान किया गया है, जिसका संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक हो जाता है। हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों से यह अपेक्षा की गई कि वे दिव्यांगजनों के समक्ष आने वाली समस्त प्रकार की बाधाओं को दूर करते हुए दिव्यांगजनों को सभी क्षेत्रों में विकसित कर समाज में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने के लिए तैयार करें। दिव्यांगजनों की समस्या पर विचार करते हुए इनकी पहुँच को बाधारहित करने के लिए संकेत भाषा, सुगम्य संचार प्रौद्योगिकी, बड़े अक्षरों वाले पत्र, पत्रिकाएं और पुस्तकों की उपलब्धता, सुनिश्चित करने पर बल दिया गया है।

इसके अंतर्गत यह उल्लेख किया गया कि सामान्य व्यक्ति की भाँति दिव्यांगजन के भी अधिकार होंगे जैसे- सामान्य व्यक्तियों की भाँति चयन करने का अधिकार; भेद-भाव रहित सामाजिक सम्मान पाने का अधिकार; दिव्यांग बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार; दिव्यांग बच्चों को समाज में उचित सम्मान पाने का अधिकार; दिव्यांग महिला तथा पुरुषों के बीच किसी प्रकार का भेद युक्त व्यवहार नहीं होना; और दिव्यांगजनों हेतु समाज में समावेशन का भाव उत्पन्न करना जिससे इन लोगों का उचित रूप से विकास हो सके।

इस संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों से अपेक्षा की गई कि वे ऐसे नियमों और कानूनों का निर्माण करें जिससे भेद-भाव को समाप्त किया जा सके तथा यह सुनिश्चित हो सके कि निजी क्षेत्रों में भी दिव्यांगजन के प्रति भेद युक्त व्यवहार न हो। इसके साथ ही साथ सुगम्य आवासन की व्यवस्था किए जाने पर भी बल दिया गया।

दिव्यांग महिलाओं एवं दिव्यांग बच्चो के प्रति भेद-भाव को समाप्त किये जाने पर बल दिया गया तथा इनके सर्वांगीण विकास के लिए संसाधनों की व्यवस्था किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया, जिससे समाज में इनका समावेशन संभव हो सके और समाज के दृष्टिकोण को इनके प्रति सकारात्मक बनाया जा सके।

मीडिया तथा अन्य विशेषज्ञों के माध्यम से समाज में दिव्यांगजन के पक्ष में जागरूकता कार्यक्रम चलाने तथा विद्यालयों और उच्च शिक्षण संस्थाओं में दिव्यांगजनों हेतु संसाधनों का प्रबंध करते हुए इनके लिए उन संस्थाओं में निर्बाध रूप से शिक्षा प्राप्ति का वातावरण उत्पन्न करने की व्यवस्था किये जाने पर बल दिया गया।

दिव्यांगजन हेतु सुगम्य वातावरण का निर्माण करने के लिए इस बात पर बल दिया गया कि सार्वजनिक भवन तथा सार्वजनिक परिवहन इस प्रकार बाधा रहित हों कि इनके उपयोग में दिव्यांगजन को आसानी हो सके। साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों को बाधारहित बनाने के लिए ऐसे तकनीकों के प्रयोग पर बल दिया गया जो दिव्यांगजन के द्वारा बिना किसी कठिनाई के प्रयोग किया जा सके। इसके साथ ही साथ सरकारी योजनाओं तक

पहुँच को सुनिश्चित करने की बात की गई, जिससे सरकार द्वारा चलाई जा रही कल्याणकारी योजनाएं उसी प्रकार दिव्यांगजन तक पहुँच सके जैसे समाज के अन्य लोगों तक पहुँचती है।

इसके साथ ही साथ दिव्यांगजन के गरिमामयी जीवन को संभव बनाने के उद्देश्य से ऐसे वातावरण का निर्माण करने पर जोर दिया गया, जिससे दिव्यांगजन सामान्य व्यक्तियों की भाँति जीवन यापन कर सके। आपदा के काल में दिव्यांगजन को सुरक्षा प्रदान करना राष्ट्रों की मौलिक जिम्मेदारी के रूप में स्वीकारा गया। कानून के समक्ष समानता एवं दिव्यांगजन की न्यायपालिका तक पहुँच बनाने के लिए आवश्यक प्रबंध किये जाने पर भी जोर दिया गया। न्यायपालिका के साथ-साथ पुलिस में काम करने वाले व्यक्तियों को दिव्यांगजनों से संबंधित विषयों में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था पर जोर दिया गया।

दिव्यांगजन की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के साथ ही उनके प्रति किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार पर अंकुश लगाए जाने तथा इनके प्रति हिंसा और दुर्व्यवहार को रोकने पर बल दिया गया। सामान्य व्यक्तियों की भाँति दिव्यांगजनो की शारीरिक तथा मानसिक निजता की रक्षा करने की व्यवस्था किए जाने पर जोर दिया गया।

दिव्यांगजनों के भ्रमण तथा अन्य देश की नागरिकता प्राप्त करने की स्वतन्त्रता, सामुदायिक जीवन यापन करने तथा परिवार का निर्माण करने की स्वतंत्रता पर बल दिया गया। दिव्यांगजन के शिक्षा, स्वास्थ, पुनर्वास तथा रोजगार के लिए व्यवस्था किये जाने की आवश्यकता के प्रति हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों के मध्य सहमति दर्ज की गई।

दिव्यांगजन के राजनीतिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए मतदान करने की व्यवस्था करने; मतदान स्थल को जाने के लिए वाहन की व्यवस्था करने; जो दिव्यांग घर से बाहर जाने में असक्षम हैं उनके लिए घर पर ही मतदान करने की व्यवस्था करने; मतदान स्थल पर इनके हेतु प्रशिक्षित विशेषज्ञ पीठासीन अधिकारी की तैनाती करने; इन लोगों को निर्वाचन में उम्मीदवार होने के लिए वातावरण का निर्माण करने; दिव्यांग उम्मीदवार के प्रति मतदाता का विश्वास के लिए जागरूकता अभियान चलाने; निर्वाचित उम्मीदवार को राजनैतिक जिम्मेदारी देने का वातावरण का निर्माण करने; तथा स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संघ बनाने का अधिकार प्रदान करने पर बल दिया गया।

दिव्यांगजनों के लिए सांस्कृतिक, मनोरंजन और खेल में भाग लेने हेतु बाधारहित व्यवस्था करने पर भी विशेष जोर दिया गया। दिव्यांगजन की सही आबादी जानने के लिए डाटा का संकलन किये जाने पर भी बल दिया गया, जिससे उनसे संबंधित योजनाओं का निर्धारण करने में आसानी हो सके। विभिन्न योजनाओं के निर्धारण में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा विशेषज्ञों से परामर्श प्राप्त करने पर भी जोर दिया गया।

उक्त से यह स्पष्ट है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह सम्मेलन दिव्यांगजन के हितपूर्ति में एक मील का पत्थर साबित हुआ है, जिसमें उनके अधिकारों और उनके प्रति समाज तथा राज्य के कर्तव्यों के विशय में विस्तृत रूप से व्यवस्था की गई है, तथा इस बात पर जोर दिया गया है कि समस्त हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्र इसे अनिवार्य रूप से सुनिश्चित करें।

भारत में दिव्यांगजन अधिकार- यदि भारत में दिव्यांगजन के हितों की पूर्ति तथा सशक्तिकरण हेतु सरकार द्वारा किए गए प्रबंध की बात की जाए, तो ऐसे कई कानून, नीतियाँ एवं कार्यक्रम देखे जा सकते हैं। सामान्य रूप से प्राप्त अधिकार, जो अन्य नागरिकों को भी प्राप्त हैं, के अतिरिक्त कई ऐसे अधिकार भी प्रदान किए गए जो दिव्यांगजन के सशक्तिकरण के लिए अत्यंत आवश्यक कहे जा सकते हैं।

सन् 1980 के दशक से कई ऐसे अधिनियम बनाए गए तथा प्रयास किए गए, जिनसे इस वर्ग को सशक्त किया जाना संभव हो सका। सर्वप्रथम सन् 1986 में शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति का निर्माण इस उद्देश्य से किया गया कि शारीरिक और मानसिक रूप से दिव्यांगजन को शिक्षा के माध्यम से समाज के अन्य लोगों की भाँति विकास करने और जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए क्षमता प्रदान की जा सके। इसी क्रम में कई अन्य कानूनों का निर्माण किया गया जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं- मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987, भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम 1992, निशक्त व्यक्ति (समान अवसर अधिकार संरक्षण पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995, राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999, राष्ट्रीय विकलांग जन-नीति 2006, दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, मानसिक स्वास्थ्य देख-रेख अधिनियम, 2017।

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987[7] **-** यह अधिनियम 22 मई 1987 को अधिनियमित हुआ था, जो सम्पूर्ण देश में 1993 तक लागू हुआ। यह अधिनियम भारतीय ल्यूनेसी अधिनियम 1912 की जगह लागू किया गया, जो समय बीतने के पश्चात् प्रभावहीन हो गया था। मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम समाज में व्याप्त उन भ्रांतियों को दूर करने में सफल रहा जो मानसिक रूप से पीड़ित व्यक्तियों के सम्बन्ध में समाज में व्याप्त थीं कि ऐसे लोगों पर भूत-प्रेत की छाया पड़ गयी है और इसी नाम पर उनका निरन्तर शोषण किया जाता था और उपेक्षा के भाव से देखा जाता था।

यह अधिनियम मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों के

उपचार और उनकी देख-रेख सम्बन्धित विधि का समेकन और संशोधन करने तथा उनकी सम्पत्ति की देख-रेख करने के उद्देश्य से पारित किया गया।

भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम, 1992[8] - भारतीय पुनर्वास परिषद् को भारत सरकार ने 1986 में पंजीकृत समाज के रूप में स्थापित किया था। इसका कार्य दिव्यांगों से सम्बन्धित शिक्षण-प्रशिक्षण को व्यवस्थित ढंग से लागू करना था। सितम्बर 1992 में भारतीय संसद ने इसे भारतीय पुर्नवास परिषद् अधिनियम के रूप में अधिनियमित किया। इसका मुख्य उद्देश्य एक ऐसे स्वतंत्र निकाय का निर्माण करना था, जो दिव्यांगजन से सम्बन्धित शिक्षण-प्रशिक्षण और पाठ्यक्रमों को मानकीकृत करे। सन् 2000 में भारतीय पुर्नवास परिषद् के प्रावधानों को और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु कुछ आवश्यक संशोधन भी किये गये।

भारतीय पुनर्वास परिषद् का मुख्य कार्य- दिव्यांगजनों के पुनर्वास की प्रशिक्षण नीतियों और कार्यक्रमों का विनियमन करना, पेशेवरों के लिये प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का मानकीकरण करना, विभिन्न श्रेणियों के पेशेवरों की शिक्षा और प्रशिक्षण के न्यूनतम मानकों का निर्धारण करना, सम्बन्धित क्षेत्र में मास्टर डिग्री या स्नातक की डिग्री या डिप्लोमा पाठ्यक्रम चलाने वाले संस्थानों और विश्वविद्यालयों को मान्यता देना, पुनर्वास और विशेष शिक्षा में अनुसंधान को बढ़ावा देना, पेशेवरों और कर्मियों के पंजीकरण के लिये केन्द्रीय पुनर्वास रजिस्टर बनाये रखना, आदि है।

निशक्त व्यक्ति (समान अवसर अधिकार संरक्षण पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995[9] - इस अधिनियम को भारतीय संसद के द्वारा सन् 1995 में पारित किया गया और इसे 01 जनवरी 1996 को सम्पूर्ण देश में लागू किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत सात प्रकार की दिव्यांगताओं को सम्मिलित करते हुये दिव्यांगजन के लिये शैक्षाणिक एवं सरकारी सेवाओं में तीन प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम में दिव्यांगजन के साथ समाज में होने वाले भेद-भाव को दूर करने के लिए प्रावधान किये गये और सरकारी भवनों, परिवहन वाहनों आदि को दिव्यांगजन हेतु सुगम्य बनाया जाये का प्रावधान भी किया गया। इस अधिनियम को भारत में दिव्यांगजन के सशक्तिकरण के मार्ग पर एक मील के पत्थर के तौर पर देखा जाता है, जिसके अंतर्गत सबसे पहली बार दिव्यांगता की विभिन्न श्रेणियों के लिए सम्यक तौर पर प्रावधान किये गये। इस अधिनियम में सबसे पहली बार यह स्पष्ट कर दिया गया कि दिव्यांग समाज के अभिन्न अंग हैं और ये दया अथवा सहानुभूति के नहीं बल्कि अपने अधिकारों के हकदार हैं।

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999[10] - स्वपरायणता (आटिज्म), प्रमस्तिष्क घात, मानसिक मन्दता और बहु-निःशक्तताग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 पारित किया गया था।[11] यह अधिनियम 30 दिसम्बर 1999 को पारित हुआ। इस अधिनियम में उन चार प्रकार की दिव्यांगताओं को सम्मिलित किया गया है, जिनका विस्तार पूर्वक वर्णन दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 1995 में नहीं किया गया था, जैसे- स्वपरायणता (आटिज्म), प्रमस्तिष्क घात, मानसिक मन्दता और बहु-निःशक्तताग्रस्त। इसका उद्देश्य उक्त दिव्यांगता की श्रेणी में आने वाले लोगों के कल्याण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर एक निकाय का निर्माण करना था, जिसका प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है। 'इसके अंतर्गत दिव्यांगजन के अभिभावक के मृत्यु की दशा में उनकी सुरक्षा की व्यवस्था करना था तथा आवश्यकतानुसार उनके परिवार को संकटकालीन सहायता भी प्रदान करना था।'[12]

राष्ट्रीय विकलांगजन नीति, 2006[13] - यह नीति तत्कालीन सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री मीरा कुमार के समय में लागू किया गया था। इस नीति के माध्यम से यह निश्चय किया गया कि दिव्यांगजन के लिये समान अवसर सुनिश्चित किया जाएगा, उनके अधिकारों का संरक्षण किया जाएगा और साथ ही समाज में उन्हें पूर्ण भागीदारी उपलब्ध कराते हुए समाज की मुख्य धारा में शामिल किया जायेगा।

इस नीति के उद्देश्यों की बात करें तो मुख्य रूप से- दिव्यांगता की शीघ्र पहचान और उसका हस्तक्षेप, दिव्यांग बच्चों हेतु उचित देख-रेख की व्यवस्था, इनके लिये शिक्षण संस्थानों की स्थापना, समावेशी शिक्षा का विकास, दिव्यांगों हेतु सहायक सामग्रियों का निर्माण, इनके लिये खेल व मनोरंजन के साधनों का विकास, दिव्यांगों को पेंशन की सुविधा प्रदान करना, शीघ्रता से दिव्यांगता प्रमाण-पत्र प्रदान करने की सुविधा, ग्रामीण क्षेत्र में पंचायती राज द्वारा दिव्यांगों के विकास की व्यवस्था करना आदि है।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016[14] - यह अधिनियम दिव्यांगों के अधिकार के विषय में सन् 2006 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के प्रावधानों को लागू करने के लिये भारतीय संसद द्वारा सन् 2016 में अधिनियमित किया गया। यह अधिनियम, दिव्यांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 के स्थान पर पारित किया गया है। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 1995 में सात प्रकार की दिव्यांगताओं को शामिल किया गया था, किन्तु दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में 21 प्रकार की दिव्यांगताओं को शामिल किया गया है।

इस अधिनियम के अंतर्गत दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 1995 में दिव्यांगजन को दिये जाने वाले तीन

प्रतिशत आरक्षण को बढ़ाकर चार प्रतिशत कर दिया गया। साथ ही साथ इस अधिनियम के माध्यम से यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन ऑन द राइट्स ऑफ पर्सन विथ डिसेबिलिटि UNCRPD के समझौते के विषयों को लागू करते हुये और दिव्यांगों के सर्वांगीण विकास के लिये प्रशासन को अधिक जवाबदेय बनाने हेतु प्रावधान भी किये गये हैं।

मानसिक स्वास्थ्य देख-रेख अधिनियम, 2017[15] - यह अधिनियम मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 की जगह पर सन् 2017 में भारतीय संसद द्वारा अधिनियमित किया गया। दिव्यांगजन के अधिकारों के विषय में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों द्वारा सम्मेलन के विषयों को लागू करना था। इस क्रम में मानसिक रोगियों के स्वास्थ्य के देख-रेख के लिये इस अधिनियम को हमारे देश में लागू किया गया।

इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान में - मानसिक रोगियों की शीघ्र पहचान केन्द्र तथा राज्य के चिकित्सालयों में मनोचिकित्सकों की भर्ती करना, आत्महत्या को भारतीय दण्ड संहिता के अपराध की श्रेणी से बाहर निकाल देना (किन्तु पीड़ित व्यक्ति अदालत में यह सिद्ध कर दें की उसने यह कार्य मानसिक अवसाद के कारण किया है।), विद्युत चिकित्सा पूर्ण रूप से बच्चों के लिये निषेध करना, मानसिक रोगी हेतु सरकार द्वारा निःशुल्क चिकित्सा का प्रबन्ध, सरकार द्वारा मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता का कार्यक्रम चलाया जाना, आदि।

उपरोक्त कानूनों, अधिनियमों एवं नीतियों के माध्यम से दिव्यांगजन के सशक्तिकरण के लिए जिस प्रकार के प्रयास किए गए उनका मूल्यांकन उचित रूप से तभी संभव हो सकता है, जब इनका अध्ययन यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के आलोक में किया जाए। हालांकि 2006 से पूर्व भी भारत में कई प्रयास किए जा चुके थे, परन्तु यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के सम्मेलन के मापदण्डों के आधार पर यह सुनिश्चित करना संभव हो सकेगा कि दिव्यांगजन के अधिकारों और उनके सशक्तिकरण के मार्ग पर और क्या प्रयास किए जा सकते हैं।

भारत में दिव्यांगजन के अधिकारों का यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के आलोक में मूल्यांकन- भारत ने 1 अक्टूबर 2007 को यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 पर हस्ताक्षर किए।[16] हस्ताक्षरकर्ताओं से की गई अपेक्षाओं के आधार पर भारत में समय-समय पर दिव्यांगजन के हितों की पूर्ति तथा उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से जिन अधिनियमों, कानूनों तथा नीतियों का निर्माण किया गया, उनके माध्यम से दिव्यांगजन के समक्ष आने वाली समस्त प्रकार की बाधाओं को दूर करते हुए दिव्यांगजनों को सभी क्षेत्रों में विकसित कर समाज में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। दिव्यांगजन को बाधारहित वातावरण उपलब्ध करने के लिए सांकेतिक भाषा, सुगम्य संचार प्रौद्योगिकी, बड़े अक्षरो वाले पत्र, पत्रिकाएं और पुस्तकों की उपलब्धता, सुनिश्चित किया जा रहा है।

दिव्यांगजन के प्रति सामाजिक भेद-भाव को दूर करने के लिए विभिन्न कानूनों का निर्माण किया गया है, जो दिव्यांगजन के प्रति भेद-भाव को अवैधानिक करार करते हैं। भारत सरकार ने 'विकलांग' शब्द के स्थान पर 'दिव्यांग'[17] शब्द के प्रयोग पर बल दिया, जो दिव्यांगजन के गरिमामयी जीवन को संभव बनाने की ओर एक सकारात्मक प्रयास के रूप में भी देखा जाता है। दिव्यांगजन की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के साथ ही उनके प्रति किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार पर अंकुश लगाए जाने तथा इनके प्रति हिंसा और दुर्व्यवहार को रोकने के लिए आयुक्त, दिव्यांगजन का पद सृजित किया गया है।

दिव्यांग बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा के अधिकार अधिनियम के साथ ही साथ 6 से 18 वर्ष के आयु के दिव्यांग बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है।[18] विशेष विद्यालयों की स्थापना करने के साथ ही विशेष शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए केन्द्र तथा राज्य के स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों का संचालन किया जाता है। केवल विद्यालय ही नहीं अपितु विशेष विश्वविद्यालय तथा समेकित शिक्षा प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालयों का भी निर्माण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में दिव्यांगजन की शिक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं।

दिव्यांगजनों के लिए सांस्कृतिक, मनोरंजन और खेल में भाग लेने हेतु बाधारहित व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई है। विभिन्न स्तरों पर दिव्यांगजन के लिए सांस्कृतिक तथा खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है, जिससे उनका बहुमुखी विकास संभव हो सके।

दिव्यांगजन का आर्थिक सशक्तिकरण करने के उद्देश्य से सभी सरकारी सेवाओं में दिव्यांगजन के लिए चार प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई है।[19] इसके साथ ही दिव्यांगजन बच्चों को छात्रवृत्ति, कम ब्याज दरों पर लोन एवं विभिन्न प्रकार से आर्थिक सहायता प्रदान किये जाते हैं, जिससे वे अपना कोई व्यवसाय आदि भी प्रारम्भ कर सकें।

दिव्यांगजन हेतु सुगम्य वातावरण का निर्माण करने के लिए भारत सरकार के द्वारा सुगम्य भारत अभियान[20] चलाया गया, जो सरकारी दफ्तरों, शिक्षण संस्थानों, अस्पतालों, बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों, इत्यादि सार्वजनिक स्थलों को दिव्यांगजन हेतु सुगम्य बनाने पर बल देती है। यह

अभियान केवल भौतिक सुगमता ही नहीं बल्कि संसाधनों और सूचना प्रौद्योगिकी तक पहुँच की सुगमता की भी बात करता है।

परन्तु जब बात दिव्यांगजन के राजनीतिक अधिकारों को सुनिश्चत करने की आती है, तो इसके लिए किए जाने वाले प्रयास संतोषजनक नहीं कहे जा सकते। भारत में दिव्यांगजन का राजनीतिक प्रतिभाग शून्य के बराबर है। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए, तो राजनीतिक के विभिन्न स्तरों पर इनका प्रतिभाग ना के बराबर है। किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीति में प्रतिभाग का तात्पर्य केवल मतदान करने तक ही सीमित नहीं रह जाता। राजनीतिक अधिकारों को पूर्णरूपेण परिभाषित करते हुए दिव्यांगजन की भागीदारी सुनिश्चित करना अनिवार्य हो जाता है। यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के तहत किए गए प्रावधानों में अन्य सभी प्रावधानों के लिए तो प्रयास किए जा रहे हैं, तथा सकारात्मक परिवर्तन भी देखा जा सकता है, परन्तु अभी राजनीतिक अधिकारों की ओर कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। जिस प्रकार अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है, उसी प्रकार दिव्यांगजन के आरक्षण को सुनिश्चित करना भी आवश्यक है। दिव्यांगता एक ऐसी श्रेणी है, जो जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, वर्ग, आदि में पाया जाता है। ऐसे में इस श्रेणी को व्यापक स्तर पर आरक्षण दिये जाने की आवश्यकता है। राजनीतिक दलों को भी प्रयास करने की आवश्यकता है कि वे जिस प्रकार समस्त वर्गों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए लोगों को अपने दल में शामिल करते हैं, उसी प्रकार दिव्यांगजन को भी शामिल करने का प्रयास करें, जिससे न केवल इनके राजनीतिक सशक्तिकरण का मार्ग खुलेगा, बल्कि इस वर्ग के प्रति समाज की सोच भी बदलेगी।

निष्कर्ष : उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भारत में यू.एन.सी.आर.पी.डी., 2006 के प्रावधानों के अनुरूप 2007 से ही नहीं, बल्कि पूर्व से ही की जा रही है, जिससे दिव्यांगजन का आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सशक्तिकरण संभव हो सका है, परन्तु राजनीतिक रूप से अभी भी कई प्रयास किए जाने शेष हैं, जिससे न केवल राजनीतिक दलों में सदस्य के रूप में दिव्यांगजन की भागीदारी सुनिश्चित हो सके, बल्कि राजनीति के प्रत्येक स्तर-स्थानीय स्वशासन के निकायों, राज्य एवं केन्द्र के स्तर पर भी राजनीतिक भागीदारी संभव हो सके।

संदर्भ

1. भारत की जनगणना, 2011
2. भारत की जनगणना, 2011
3. उपरोक्त
4. उपरोक्त
5. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016
6. https://social.desa.un.org/issues/disability/crpd/convention-on-the-rights-of-persons-with-disabilities-crpd दिनांक-12/12/2023
7. The Mental Health Act, 1987, Ministry of Law and Justice, New Delhi
8. https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/19048/1/rehabilitation_council_of_india_act_1992.pdf दिनांक-12/10/2023
9. निशक्त व्यक्ति (समान अवसर अधिकार संरक्षण पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995
10. National TrustAct, 1999, Ministry of Social Justice and Empowerment, New Delhi
11. Mehrotra, Nilika, 'Disability, Gender and State Policy- Exploring Margins', Rawat Publications, Jaipur 2013, p. 78
12. उपरोक्त, पृ0 79
13. https://depwd.gov.in/policy/national-policy/ दिनांक-12/10/2023
14. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016
15. The Mental HealthcareAct, 2017, Ministry of Law and Justice
16. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC6482682/#:~:text=India%20signed%20the%20United%20Nations,same% 20on%20October%201%2C%202007. दिनांक- 12/12/2023
17. https://www.thestatesman.com/opinion/power-of-the-pms-words-1503173769.html दिनांक-11/01/2024
18. निशक्त व्यक्ति (समान अवसर अधिकार संरक्षण पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995
19. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016
20. https://www.india.gov.in/spotlight/accessible-india-campaign#tab=tab-1 दिनांक- 12/01/2023

डॉ. शशि सौरभ

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
राजनीति शास्त्र एवं लोक प्रशासन विभाग,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

दिलीप कुमार

शोधार्थी, राजनीति शास्त्र एवं लोक प्रशासन विभाग,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

ग्रामीण विकास के लिए सहकारी समितियों का सशक्तीकरण

(कृषि क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में)

–प्रो. (डॉ.) किशोर कुमार

–शशि कान्त मौर्य

सारांश : हमारे देश में सहकारी आन्दोलन का इतिहास काफी पुराना रहा है लेकिन आजादी के 75 वर्ष बीतने के बाद भी अभी इसमें काफी बिखराव दिखाई पड़ता है, ऐसा प्रतीत होता है कि देश में सहकारी आन्दोलन कई हिस्सों में बटा हुआ है। सहकारी समितियां समाज के साझा हितों के लिए निर्मित एक प्रकार की लोकतांत्रिक शासन प्रणाली वाली संस्थाएं होती हैं, इनका प्रमुख उद्देश्य अपने समुदाय के सामाजिक-आर्थिक हितों और उनके उत्पादों के लिए बाजार उपलब्ध कराना है। वर्तमान सरकार द्वारा एक अलग मंत्रालय ''सहकारिता मंत्रालय'' की स्थापना एक क्रान्तिकारी कदम के रूप में दिखाई पड़ता है जो सहकारिता को पुनर्जीवित करने की पहल के साथ-साथ इसमें और पारदर्शिता लायेगी तथा देश भर मे जमींनी स्तर पर सहकारी समितियों की पहुँच व्यापक स्तर पर सुनिश्चित करेगी। वर्तमान सरकार की परिकल्पना (vision) ''सहकार से समृद्धि'' भी इसी दृष्टिकोण पर आधारित है। इस लेख के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए सहकारी समितियों की महत्ता और सहकारी समितियों को और सशक्त करने के लिए सरकार द्वारा वर्तमान में किये गये प्रयासो की चर्चा की गयी है।

मुख्य शब्द : सहकारिता, सहकारी समितियां, सामाजिक पूंजी, प्रतिस्पर्धा, मेंटरशिप, कौशल विकास, नवाचार, स्वायत्तता, कॉयर उद्योग, सशक्तीकरण, वसुधैव कुटुम्बकम्।

प्रस्तावना : मानव जाति के विकास में सहकार की बड़ी भूमिका है। भारत में भी प्राचीन काल से ही सहकारिता ने सामाजिक, आर्थिक विकास को मजबूती प्रदान करने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सहकारिता की संकल्पना में, राष्ट्र के विकास के लिए जरूरी आवश्यकताओं को पूरा करने तथा विकास के मार्ग में आने वाले अवरोधों को दूर करने की अपार क्षमता है। सहकारिता की इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए तथा इसे और प्रभावी बनाने के उद्देश्य से वर्तमान भारत सरकार ने एक अलग मंत्रालय ''सहकारिता मंत्रालय'' का गठन 6 जुलाई 2021 को ''सहकार से समृद्धि'' के विजन के साथ किया है, (भारत राजपत्र, असाधारण, भाग 2-खण्ड 3-उपखण्ड 3, मंगलवार, जुलाई 6, 2021/आषाण 15, 1943) जिसका स्वागत सभी सहकारी समितियों ने बड़ी आशाओं के साथ किया है। सहकारी समिति अधिनियम, 1912; म्युचुअली एडेड कोऑपरेटिव थ्रिट सोसायटी एक्ट; और बहुराज्य सहकारी अधिनियम, 2002 भारत में सहकारी समितियों के कानूनी ढाँचे का निर्माण करते हैं। देखा जाये तो भारत में तीन प्रकार की सहकारी संस्थाएं मौजूद हैं- पहली राज्य सहकारी समितियां जो राज्य के अधीन होती हैं और दूसरी बहुराज्य सहकारी समितियां जो केन्द्र सरकार के नियन्त्रण में आती हैं, और तीसरी निजी सहकारी संस्थाएं। ये सहकारी समितियां कृषि, डेयरी, ऋण, बैंकिंग, आवास, उत्पादन आदि से सम्बन्धित कार्यों में संलग्न होती है, जिसे हम अमूल, लिज्जत, इको, गांधी आश्रम, खादी और ग्रामोद्योग आयोग जैसी सहकारी समितियों के रूप में देख सकते है। इन सहकारी समितियों के द्वारा कृषि और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में हर व्यक्ति को समृद्ध बनाया जा सकता है तथा यह उन लोगों को समृद्ध बनाने का एक बड़ा माध्यम बन सकता है जिनके पास पर्याप्त पूंजी नहीं है। इस लेख के माध्यम से ऐसी ही उन सहकारी समितियों की चर्चा की गयी है जिन्होंने अपनी कार्यकुशलता से न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित किया है। इन सहकारी समितियों से प्रेरणा लेकर अन्य को भी सशक्त करने की आवश्यकता है, क्योंकि ये सहकारी समितियां ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ साबित हो सकती है। वर्तमान समय में ये सहकारी समितियां एक

उद्यम के रूप में भी सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मन्त्रालय, भारत सरकार के उद्यम पोर्टल पर पंजीकृत है। इस पोर्टल पर एक उद्यम के रूप में पंजीकृत हो जाने के बाद इन सहकारी समितियों के लिए कई मार्ग खुल जाते हैं। मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार वर्तमान समय में पोर्टल पर 16000 से अधिक सहकारी समितियों ने स्वयं को एक उद्यम के रूप में पंजीकृत किया है।[1] उद्यम के रूप में पंजीकृत होने के कारण इन सहकारी समितियों को स्थानीय के साथ-साथ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की अनेक सुविधाएँ प्राप्त हो सकेगी, जिसकी वजह से इन समितियों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में काफी सुविधा भी प्राप्त होगी। ये सहकारी समितियां सामाजिक-आर्थिक नीति और कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के सबसे प्रभावी माध्यम है क्योंकि इनमें गरीबी उन्मूलन, खाद्य सुरक्षा और रोजगार जुटाने की अपार सम्भावनाएं होती हैं। महात्मा गांधी के सपनों को साकार करने के लिए भारत को आत्मर्निभर होने की जरूरत है और यह जरूरत सहकारिता के माध्यम से काफी हद तक पूरा किया जा सकता है। इसी दिशा में कार्यरत खादी और ग्रामोद्योग आयोग जहाँ लोगों को लघु व्यवसाय प्रबन्धन में प्रशिक्षण प्रदान करता है तथा लोगों को संस्थागत ऋण और संकटग्रस्त लोगों के आर्थिक उत्थान हेतू निःशुल्क प्रशिक्षण प्रदान करता है।[2] ये सहकारी समितियां जन-केन्द्रित नागरिक संगठन होने के कारण वस्तुओं एवं सेवाओं को बिना किसी विशेष समस्या के लोगों तक पहुँच सकती है। सहकारी उद्यमिता का उद्देश्य सहकारी समितियों के संचालन में रणनीतिक प्रबन्धन, रचनात्मकता और नवाचार को बढ़ावा देना है। सहकारी उद्यमिता सामूहिक या संयुक्त उद्यमिता का एक रूप है। सहकारी उद्यमी एक सामाजिक जनप्रतिनिधि के अलावा और कुछ नहीं होता, जो व्यक्तिगत लाभ के बजाय, लोकतांत्रिक तरीके से व्यवसायिक और सामाजिक मामलों के प्रबन्धन की एक कुशल दृष्टि रखता है। ठीक इसी प्रकार एक सहकारी उद्यमी मजबूत दृढ़ संकल्प एवं प्रतिबद्धता के साथ काम करते हैं, नवाचार की क्षमता रखते हैं और रूढ़िगत विचारों से अलग होकर जोखिम के साथ कार्यों को सम्पन्न करने की इच्छा रखते हैं। सहकारी उद्यमिता तभी सफल हो सकती है जब समान विचारधारा और सही सोच वाले लोगों का एक समूह एक साथ, एकजुट होकर अपने संसाधनों को इकट्ठा करके अपने व्यापार को आगे ले जाने के लिए एक साथ मिलकर कार्य करने का निर्णय लेता है। सहकारी समितियों की इस दृष्टि से सराहना करनी चाहिए कि ये पूंजी की बजाय लोगों को प्राथमिकता देती है, 'सामूहिक चेतना' सहकारिता की आत्मा है, और जन में केन्द्रित संगठनों के रूप में कार्य करती है। सहकारी उद्यमिता से सम्बन्धित सात सिद्धान्त[3]-

- स्वैच्छिक और खुली सदस्यता
- सदस्यों की आर्थिक भागीदारी
- स्वायत्तता और स्वतंत्रता
- शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचना
- समुदाय के लिए सरोकार
- सहकारी समितियों के बीच सहयोग
- सदस्यों का लोकतांत्रिक नियन्त्रण

इन स्वर्णिम सिद्धान्तों को अपनाकर आपस में सामूहिक एकजुटता का भाव पैदा किया जा सकता है, सामुदायिक संगठन का व्यवसायिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जिससे सामाजिक सम्बन्धों में और मजबूती आयेगी। सहकारिता में सर्व-समावेशी आर्थिक विकास सुनिश्चित करने की असीम क्षमताएं होती है। सहकारिता एक प्रकार से सहयोग आधारित आर्थिक मॉडल है जिसमें सतत् क्षेत्रीय विकास की भावना को बढ़ावा देने तथा स्थानीय उद्यमियों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए प्रेरित करने की अपार क्षमता होती है।

सहकारी समितियों को तीव्रता के साथ आगे बढ़ने तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अपनी प्रासंगिकता को बनाये रखने के लिए हमें ''स्क्वायड''[4] (SQUAD) की अवधारणा को स्वीकार करते हुए तेजी के साथ इसे अमल में लाने की आवश्यकता भी है-

एस- आत्मनिर्भरता (सेल्फ रिलायंस)

क्यू- गुणवत्तापूर्ण कार्य प्रदर्शन (क्वालिटी परफारमेंस)

यू- अडिग सहकारी आन्दोलन (अनशेकेबल कोऑपरेटिव मूवमेंट)

ए- शासन में जवाबदेही (अकाउन्टबिलिटी इन गवर्नेंस)

डी- आधुनिक प्रौद्योगिकीय के माध्यम से विकास (डेवलपमेंट थ्रू मॉर्डन टेक्नोलॉजी)

सहकारिता एक प्रकार से सहयोग आधारित आर्थिक मॉडल है जिसमें संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देने और स्थानीय उद्यमियों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का आयाम देने के लिए प्रेरित करने की क्षमता है। सहकारी समितियां सामुदायिक स्तर की व्यवसायिक संगठन होती है जिसमें सामाजिक पूंजी उत्पन्न करने और अवशोषित करने की असाधारण क्षमता होती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था (कृषि) के सन्दर्भ में सहकारी समितियां : विभिन्न कृषि और उससे सम्बन्धित गतिविधियों को बढ़ावा देने वाली सहकारी समितियों के विकास और वित्तपोषण के लिए राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम[5] (एन. सी.डी.सी.) द्वारा केन्द्रीय क्षेत्र एकीकृत योजना के तहत सहायता प्रदान की जाती है। इसमें कृषि उत्पादनों की आपूर्ति के अलावा कृषि उपज का विपणन, भण्डारण और प्रसंस्करण शामिल होता है। इसके तहत किसानों को लोन व सब्सिडी भी प्रदान की जाती है। सरकार द्वारा प्रारम्भ की

गयी एन.सी.डी.सी. योजना केवल सहकारी सिद्धान्तों पर कार्यक्रमों की योजना बनाता है और इन्हें वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है। इस योजना द्वारा प्रदान की गयी वित्तीय सहायता लोगों को व्यवसायिक गतिविधियों तथा नई सहकारी समितियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित और आकर्षित भी करती है। इस योजना के तहत कृषि प्रसंस्करण, बागवानी, ऋण, कम्प्यूटरीकरण, भण्डारण, कोल्ड चेन, कपड़ा हथकरघा, चीनी, इथेनाल, डेयरी, मत्स्यपालन, पशुपालन, मुर्गी पालन, सुअर पालन, नवीकरणीय ऊर्जा, ग्रामीण आवास जैसी अन्य गतिविधियों को भी कवर किया जाता है। सरकार भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन महासंघ (नाफेड) के माध्यम से खरीददारी का भी कार्य करती है। साथ ही जो किसान विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों के सदस्य होते हैं उन्हें केन्द्रीय क्षेत्र की एकीकृत योजना के तहत भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ और राष्ट्रीय सहकारी प्रशिक्षण परिषद के माध्यम से किसानों को प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। यही नहीं सरकार के द्वारा कृषि क्षेत्र में तेजी के साथ सुधार तथा बुनियादी ढाँचे की मजबूती के लिए कृषि अवसंरचना कोष द्वारा प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों (पैक्स-PACS) सहकारी समितियों के संघ, किसान उत्पादक संगठन, विपणन सहकारी समितियों व अन्य को फसल कटाई के बाद बुनियादी ढाँचे और सामुदायिक कृषि परिसम्पतियों के निर्माण के लिए वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाती है। साथ ही किसानों की उपज का मूल्य सुनिश्चित करने के लिए ''प्रधानमंत्री अन्नदाता आय संरक्षण अभियान'' (PM-आशा) चलाया जा रहा है। युवाओं का इस ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए एन.सी.डी.सी. ने ''युवा सहकारी उद्यम सहायता और नवाचार योजना'' शुरू किया है जिसका उद्देश्य सहकारिता के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की व्यवसायिक गतिविधियों में स्टार्ट-अप को बढ़ावा देना है। साथ ही सहकारी समितियों से सम्बन्धित पहलुओं में अनुभव प्राप्त करने के लिए ''सहकार मित्र योजना'' के द्वारा इंर्टशिप के अवसर भी प्रदान किया जा रहा है तो वहीं ''आयुष्मान सहकार योजना'' के द्वारा सहकारी समितियों को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए वित्तपोषित भी किया जा रहा है। ''प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना'' के द्वारा मछली किसान उत्पादक संगठनों (FFPO) के गठन और संवर्धन पर विशेष ध्यान दिया गया है। नेशनल फेडरेशन आफ फिशर्स कोऑपरेटिव्स लिमिटेड[6] (फिशकॉपफेड) भारत में मत्स्यपालन से सम्बन्धित सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिए एक राष्ट्रिय स्तर की शीर्ष संस्था है। यह संस्था मत्स्यपालन से सम्बन्धित सहकारी समितियों के सशक्तिकरण के लिए समर्पित है। यह संस्था प्राथमिक मत्स्यपालन सहकारी समितियों के खुदरा और थोक व्यापारी के रूप में तथा मत्स्यपालन के क्षेत्र के प्रचार-प्रसार और कल्याणकारी गतिविधियों में लगा हुआ है। यह संस्था मत्स्यपालन से सम्बन्धित किसानों के विपणन की सुविधा के साथ-साथ उन्हें उचित कीमत भी प्रदान करता है। फिशकॉपफेड ने 1982-2020 ई. की अवधि में मत्स्यपालन से सम्बन्धित किसानों को सामाजिक सुरक्षा के रूप में बीमा भी प्रदान कर रहा है। वर्तमान सरकार द्वारा 2014 ई. में प्रारम्भ की गयी नीली क्रान्ति न केवल मछली उत्पादन बल्कि मत्स्यपालन क्षेत्र के अवसंरचना विकास पर भी केन्द्रित है। हाल ही में वर्तमान सरकार द्वारा देश भर में 2000 प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (पैक्स) को प्रधानमंत्री जनऔषधि केन्द्र खोलने की अनुमति प्रदान की गयी है। इस फैसले से न केवल पैक्स की आय बढ़ेगी बल्कि रोजगार के अवसर भी पैदा होंगे साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों को सस्ती कीमतों पर दवाएं भी उपलब्ध होंगी। इसके अलावा पैक्स के कार्यक्षेत्र का विस्तार करते हुए अनेक सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं जैसे-अब पैक्स एल.पी.जी. सिलेण्डर के वितरण का कार्य, लोगों को मुफ्त अनाज वितरण करने के लिए रिटेल आउटलेट के रूप में, जल वितरण के लिए जल समिति के रूप में व कृषि वस्तुओं के भण्डारण का कार्य करने के लिए भी सक्षम बनायी जा रही है। गांवों को सहकारिता के द्वारा आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से सरकार ने मॉडल सहकारी गांव[7] (एम.सी.वी.) कार्यक्रम नाबार्ड और गुजरात राज्य सहकारी बैंक की मदद से प्रारम्भ किया है। इसका उद्देश्य ''सहकार से समृद्धि'' के दृष्टिकोण के माध्यम से गांवों को आत्मनिर्भर बनाना है। प्रत्येक घर से कम-से-कम दो सदस्यों के लिए आजीविका सोसायटी के माध्यम से सुनिश्चित करना है। इसी दिशा में सरकार द्वारा एक अन्य कार्यक्रम प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना जो अनुसूचित जाति वाले गांवों के एकीकृत विकास को समर्पित है।

सहकारी समितियां महिला सशक्तीकरण के उपकरण के रूप में : महिलाओं द्वारा संचालित सहकारी समितियाँ एक आदर्श मॉडल होती है और अभ्यास के लिए सबसे उपर्युक्त होती है। सामूहिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सहकारी समितियां सबसे प्रभावी उपकरण है। ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी समितियों के माध्यम से महिलाओं ने यह साबित कर दिखाया है कि वे भी भारतीय अर्थव्यवस्था में अपना योगदान देने में सक्षम है जिसे हम ''मान देशी''[8] एक महिला आधारित सहकारी संस्था के रूप में देख सकते हैं। इस मान देशी संस्था का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को वित्तीय साक्षरता, व्यवसाय कौशल विकास और पर्याप्त वित्तीय सेवाएं प्रदान कर महिलाओं को एकजुट कर उन्हें सामाजिक रूप सशक्त बनाया जाना है। इस संस्था ने महिलाओं को प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता

प्रदान कर तथा उन्हें व्यवसाय के नये-नये तरीके प्रस्तुत करके आर्थिक रूप से काफी सशक्त बनाया है। साथ ही इस संस्था ने अपने सदस्यों की शिक्षा और स्वास्थ्य की उचित सुविधा प्रदान करके महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसी तरह खादी एवं ग्रामउद्योग आयोग (KVIC) की यदि हम बात करें तो जहां एक ओर यह प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पी.एम.ई.जी.पी.) के तहत महिलाओं विशेषकर आदिवासी महिलाओं को रोजगार सृजन की दिशा में सशक्त बनाने के लिए प्रयासरत है, जिसे हम असम के कामरूप जिले के बिरकुची ग्राम में अगरबत्ती निर्माण के लिए किये जा रहे प्रयासों में देख सकते हैं। साथ ही साथ इस संस्था द्वारा बहु-अनुशासनात्मक प्रशिक्षण केन्द्र (एम. डी.टी.सी.) स्थापित कर अनेक क्षेत्रों में युवा उद्यमियों को प्रशिक्षण भी प्रदान किया जा रहा है, जिसे मधुमक्खी पालन, मिट्टी के बर्तन, चमड़े के शिल्प आदि के रूप में देखा जा सकता है। इस आयोग द्वारा महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए कौशल और उद्यमिता विकास कार्यक्रम आयोजित किया जाता है, जहां महिलाओं को मुत प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, जिसे हम इस आयोग द्वारा महिलाओं को जूट (कॉयर) उद्योग[9] के क्षेत्र में सशक्त करने के लिए किये जा रहे प्रयासों के रूप में देख सकते है। यह आयोग कॉयर बोर्ड के माध्यम से महिला उद्यमिता को बढ़ाने और प्रशिक्षण देने के लिए योजनाएं लागू कर रहा है। इसी क्रम में महिलाओं की सशक्तीकरण की दिशा में लिज्जत जैसी सहकारी संस्था द्वारा किये जा रहे कार्य को भी देख सकते हैं। श्री महिला गृह उद्योग लिज्जत पापड़ साठ के दशक में मुम्बई में महिलाओं द्वारा एक सूक्ष्म व्यवसाय के रूप में स्थापित सहकारी संस्था है जिसने कम आय वाली महिला श्रमिकों के लिए विकास और सशक्तीकरण का एक अनूठा मॉडल विकसित किया है।

इसी क्रम में हम अमूल के योगदान को भी उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं जहाँ गुजरात सहकारी दुग्ध विपणन महासंघ (जी.सी.एम.एम.एफ.) द्वारा प्रबन्धित ''अमूल'' का स्वामित्व गुजरात के लाखों छोटे किसानों के पास है। इस पूरे क्षेत्र में जहाँ लोगों को काफी लाभ हुआ वहीं महिलाएँ भी इस उद्यम से काफी लाभान्वित हुईं। इस उद्योग ने इस क्षेत्र की महिलाओं को न केवल आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की बल्कि उन्हें घरेलू मामलों में निर्णय लेने में काफी सक्षम भी बनाया है। इस उद्योग की डेयरी सम्बन्धित अधिकांश गतिविधियां मुख्यतः महिलाओं द्वारा संभाली जाती है। इस उद्योग ने महिलाओं को काफी सशक्त किया हैं। इन सहकारी समितियों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की और बड़े पैमाने पर भागीदारी को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है, इसके लिए वर्तमान सरकार को कुछ साहसी कदम बढ़ाने की आवश्यकता है-

• सहकारी कानूनों को और अधिक लैंगिक उत्तरदायी बनाया जाये।

• सहकारी समितियों में ग्रामीण महिलाओं की स्वायत्तता और स्वतंत्रता का सम्मान किया जाये।

• समतामूलक लैंगिक सम्बन्धों के महत्व पर सहकारी अधिकारियों और सदस्यों के बीच जागरूकता बढ़ायी जाये।

सहकारी क्षेत्र के समक्ष आने वाली समस्याएं : देश में सामूहिकता और लोकतंत्र की भावना जीवित रखने के लिए सहकारिता सबसे अच्छा माध्यम है। सहकारी संगठन बनाने का प्रमुख उद्देश्य समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को समाज के संगठित और मजबूत वर्ग के उत्पीड़न से बचाना होता है। एक सहकारी संगठन का अन्तर्निहित सिद्धान्त पारस्परिक सहायता होती है, अर्थात ''प्रत्येक सभी के लिए और सभी प्रत्येक के लिए।'' इन सभी विशेषताओं के बावजूद भी आज सहकारी समितियों के प्रति लोगों के रूझान कम दिखाई पड़ते हैं, जिसका सबसे प्रमुख कारण इन समितियों की अपनी कुछ कमियां है जिन्हें दूर करके सहकारी समितियों की महत्ता को सिद्ध किया जा सकता है। यदि हम कमियों की बात करें तो-

1) पर्याप्त पूंजी की समस्या।

2) कुशल प्रबन्धन की समस्या।

3) प्रतिस्पर्धा का अभाव।

वर्तमान समय में सहकारी समितियों को सशक्त बनाने की दिशा में सरकार द्वारा किये गये प्रयास : भारत में सहकारिता के क्षेत्र में आमूल-चूल परिर्वतन लाने तथा एक नया आर्थिक ढाँचा प्रस्तुत करने के उद्देश्य से सरकार ने ''सहकार से समृद्धि'' के दृष्टिकोण के साथ एक नया मंत्रालय ''सहकारिता मंत्रालय'' का गठन किया है। पैक्स (PACS) सहकारिता के क्षेत्र की प्रारम्भिक संरचना होती है। अतः पैक्स को मजबूती प्रदान करने से ग्रामीण क्षेत्र में नये रोजगार के साथ ग्रामीणों का विकास भी सुनिश्चित होगा। इस दिशा में ने सरकार ने पहल करते हुए ''वन पैक्स वन ड्रोन''[10] (OPOD) की नीति को अपनाया है। जिसके तहत उर्वरकों और कीटनाशकों के छिड़काव और सम्पति के सर्वेक्षण के लिए ड्रोन का प्रयोग किया जायेगा। यह नीति पैक्स को काफी मजबूती प्रदान करेगा साथ ही नये उद्यमियों के प्रवेश को बढ़ावा भी मिलेगा। हालाँकि ड्रोन का प्रयोग कृषि क्षेत्र में अभी एक नया प्रयोग है इसे और बढ़े स्तर पर लागू करने के साथ-साथ किसानों को जागरूक करने की आवश्यकता है। ड्रोन के उपयोग से कृषि के उत्पादन क्षमता में काफी

वृद्धि देखी जा सकती है। यह कृषि इनपुट लागत को कम करने के साथ-साथ कीटनाशकों/फफूदनाशी/तरल उर्वरकों आदि का छिड़काव करके कीट संक्रमण और फसलों पर उनके दुष्प्रभाव को भी कम कर पैदावार बढ़ाने में काफी मददगार साबित होगा। सरकार कृषि आपूर्ति श्रृंखला में काफी सुधार करने के लिए विभिन्न प्रकार की नीतियों को अपना रही है। आपूर्ति श्रृंखला में सुधार एक तरह से कृषि क्षेत्र में किये गये कार्यों में एक क्रान्तिकारी कदम साबित होगा। हाल ही में उ.प्र. सरकार द्वारा सहकारी समितियों के सशक्तीकरण की दिशा में उठाये गये कदम के रूप ''नन्द बाबा दुग्ध मिशन योजना''[11] की शुरूआत की गयी है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य दुग्ध उत्पादकों को डेयरी सहकारी समितियों के माध्यम से गाँवों में अपना दूध उचित मूल्य पर बेचने की सुविधा प्रदान करने हेतू इस योजना को शुरू किया गया है।

निष्कर्ष : किसानों की समृद्धि और खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत को नए तरीके अपनाने होंगे, साथ ही नवाचार, प्रौद्योगिकी की दिशा में और तेजी लानी होगी। ऐसी नयी प्रणालियां विकसित करनी होगी जो उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, सुरक्षा और उनके विस्तार पर केन्द्रित हो अर्थात् समावेशी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। छात्रों को जागरूक करने की आवश्यकता है कि सहकारी क्षेत्र कैरियर का एक विकल्प हो सकता है। इसके लिए उन्हें प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। सहकारी समितियों के कर्मचारियों/श्रमिकों के कौशल उन्नयन के लिए उन्हें विभिन्न मंत्रालयों, ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा चलाए जा रहे कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से उन्हें और प्रशिक्षित किया जा सकता है। साथ ही बड़ी सहकारी समितियों के द्वारा छाटी सहकारी समितियों को और मजबूती प्रदान करने के लिए मेंटरशिप कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए, इससे न केवल सहकारी समितियों का उन्नयन होगा बल्कि बड़े पैमाने पर उत्पादन में वृद्धि देखी जा सकती है। ग्रामीण विकास के लिए एक आर्थिक मॉडल तैयार करने और गरीबों को रोजगार प्रदान करने में सहकारी समितियों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। यदि हम वर्तमान में किये जा रहे बदलावों से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होते हैं तो आने वाले कुछ वर्षों में हम सहकारी क्षेत्र को एक नई ऊँचाई पर ले जा सकते हैं और ऐसी स्थिति बना सकते हैं जहाँ राष्ट्रीय विकास में सहकारी क्षेत्र की बड़ी हिस्सेदारी होगी।

सन्दर्भ

1. ''सहकार से समृद्धि'', योजना मैगजीन, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, जुलाई 2023, पृष्ठ सं. 31।
2. खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, भारत सरकार। https://www.kvic.gov.in/kvicres/aboutkvic.php
3. ''सहकार से समृद्धि'', योजना मैगजीन, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, जुलाई 2023, पृष्ठ सं.- 08।
4. वही, पृष्ठ सं.-09।
5. राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम। https://www.ncdc.in/index.jsp?page=genesis-functions=en
6. ''सहकार से समृद्धि'', योजना मैगजीन, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, जुलाई 2023, पृष्ठ सं.- 58।
7. प्रेस सूचना ब्यूरो, सहकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, 14 मार्च 2023। https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1907564
8. मानदेशी बैंक एंड फाउंडेशन www.manndeshifoundation.org
9. सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय www.msme.gov.in/coir-board
10. ''द इकोनामिक्स टाइम'', 08 जून 2023। https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/agriculture/pacs-can-be-roped-in-as-drone-entrepreneurs-for-spraying-fertilizers-pesticides-cmin/articleshow/100852549.cms?from=mdr
11. दुग्धशाला विकास विभाग (डेयरी विभाग) उत्तर प्रदेश https://updairydevelopment.gov.in/aim.aspx

प्रो. (डॉ.) किशोर कुमार
इतिहास विभाग,
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर
विजिटिंग प्रोफेसर (समसामयिक भारत),
भारतीय विद्या विभाग,
येगीलोनियन विश्वविद्यालय क्राको पोलैंड

शशि कान्त मौर्य
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

'सामाजिक एवं आर्थिक न्याय' के परिप्रेक्ष्य में 'न्यायिक सक्रियता'

–माधवेन्द्र तिवारी
–डॉ. तरूण कुमार राय

किसी भी देश का संविधान, वहाँ की सर्वोच्च विधि होती है। भारत के अन्तर्गत भी संविधान सर्वोच्च विधि है, जिसमें सरकार के तीनों अंगों विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है जिसमें वे आपस में संतुलन एवं सामंजस्य से कार्य कर सके। हमारे संविधान में विधायिका को संसद की संज्ञा दी गई है। संसदीय शासन व्यवस्था में कार्यपालिका एवं विधायिका का अभिन्न संबंध होता है एवं कार्यपालिका, विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत, न तो ब्रिटेन के समान संसद की सर्वोच्चता को अपनाया है और न ही अमेरिका की न्यायपालिका की सर्वोच्चता के मॉडल को अपनाया है, बल्कि दोनों के बीच के मार्ग को अपनाया गया है, फिर भी संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका को विशिष्ट स्थान दिया है। न्यायपालिका का कार्य न केवल संविधान की व्याख्या करना है, बल्कि उसके उद्देश्यों की रक्षा करना है, साथ ही साथ नागरिकों के मूल अधिकारों का भी रक्षा करना है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् से ही न्यायपालिका ने संविधान के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए संविधान के भाग-3 एवं संविधान के भाग-4 में क्रमशः मूलभूत अधिकारों द्वारा व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं दूसरी तरफ समाजवादी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामाजिक एवं आर्थिक न्याय द्वारा कल्याणकारी राज्य की अपेक्षा के बीच सामंजस्य का कार्य किया है। भारत में संविधान सर्वोच्च है, संसद नहीं। संविधान के प्रावधानों के निर्वचन का कार्य न्यायपालिका का है। अतः संसद द्वारा बनाया गया कानून "संविधान के मूल ढाँचे" के विरूद्ध है या नहीं, यह देखने का कार्य, माननीय उच्चतम् न्यायालय का ही है। संसद द्वारा पारित कोई कानून संविधान के असंगत होने पर माननीय उच्चतम् न्यायालय द्वारा असंवैधानिक करार दिया जा सकेगा। यदि कोई संस्था संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण करती है तो हमारी सर्वोच्च न्यायपालिका के पास ऐसे कार्यों की जाँच करने का अधिकार है और यही अधिकार न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति कहलाती है। उच्चतम् न्यायालय में निहित न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति संविधान का आधारभूत ढाँचा है, इसे संवैधानिक संशोधन द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता है।

सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की अवधारणा :- न्याय एक गतिशील अवधारणा है, जो आर्थिक एवं सामाजिक न्याय को अपने में समाहित करती है। न्याय के तीन व्यापक आयाम हैं : राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक। सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में लोकतन्त्र के अन्तर्वेक्षण से सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के अर्थ का इतना विस्तार हो गया है कि अब इसके अन्तर्गत मानव जीवन के सभी क्षेत्र आ जाते हैं। व्यक्ति के अधिकारों को, समाज के व्यापक हितों के पक्ष में युक्तियुक्त तरीके से सीमित किया जा सकता है। दूसरों शब्दों में समाज का कल्याण, व्यक्ति के अधिकारों और समुदायों के हितों के मध्य, समन्वय और समाधान पर निर्भर करता है। सामाजिक न्याय का संबंध व्यक्ति के अधिकारों और सामाजिक नियंत्रण के मध्य संतुलन से है ताकि मौजूदा कानूनों के अधीन व्यक्ति की आशाओं की पूर्ति को सुनिश्चित किया जा सके। संकीर्ण दृष्टिकोण से देखने से लगता है कि सामाजिक न्याय, व्यक्ति के कुछ अधिकारों को सामाजिक हित की बलि वेदी पर चढ़ाया जा रहा है, परन्तु व्यापक परिप्रेक्ष्य पर देखने पर सामाजिक न्याय के विचार का उद्देश्य न केवल व्यक्ति और समाज के उद्देश्यों में समाधान करना है या विरोध की स्थिति में समाज के हित को अधिमान्यता प्रदान करना है ताकि वह सामाजिक परिवर्तन का आवश्यक अंग बन जाये। जिसके लिए बहुतों के हित के कारण, किसी वस्तु की बलि देनी पड़ेगी। सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की अवधारणा अति व्यापक है जिसके अंतर्गत अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा से लेकर गरीबी और अशिक्षा के उन्मूलन तक कुछ भी हो सकता है। सामाजिक न्याय को लागू करने में सबसे बड़ा खतरा यह है कि यदि इसको कड़ाई से लागू किया गया तो सर्वाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी क्योंकि यह अपेक्षा करता है कि लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में राज्य का

अत्यधिक हस्तक्षेप हो। आर्थिक न्याय, सामाजिक न्याय का सहभागी तत्व है। आर्थिक न्याय की अवधारणा के रूप में स्वतंत्रता का समस्त विचार ही राजनीति के क्षेत्र को पार करके, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में पदार्पण करता है। ऐसा कहा जाता है कि यदि स्वतंत्रता, आर्थिक न्याय प्राप्त करने के मार्ग में बाधक है तो वह निरर्थक है। एक भूखे या ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसे मानव गरिमा से वंचित किया गया है, राजनीतिक स्वतंत्रता एक खोखला और मिथ्या शब्द है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक न्याय की अवधारणा का तात्पर्य यह है कि आर्थिक मूल्यों के आधार पर लोगों के मध्य कोई विभेद न किया जाये। आर्थिक न्याय की अवधारणा का संबंध, सामान्यतः एवं अनिवार्यतः भूखों को रोटी, अनावृत को कपड़ा और बेघर को रहने के लिए मकान देना और प्रगति के लिए, उन्हें अवसर प्रदान करना है। सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की अवधारणा और इसके बारे में विचारों को राष्ट्रीय स्तर पर, सामाजिक एवं आर्थिक हितों और दूसरी ओर व्यक्तियों का सामूहिक हितों के मध्य, वर्तमान समय के साथ संतुलन और सामंजस्य स्थापित करना होगा।

डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र के अनुसार - सामाजिक एवं आर्थिक न्याय का तात्पर्य, सभी प्रकार की असमानता को कम करना, जिसके अन्तर्गत सामाजिक एवं आर्थिक असमानता भी हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की अवधारणा : भारतीय संविधान :- भारतीय संविधान के अन्तर्गत, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की अवधारणा, संविधान की प्रस्तावना, मूलाधिकार (भाग-3) तथा नीति निदेशक तत्व (भाग-4) में समाहित है। भारतीय संविधान के प्रस्तावना के अन्तर्गत, सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, सभी नागरिकों की गरिमा, बन्धुता आदि बढ़ाने के लिए प्रावधान किये गये हैं।

भारतीय संविधान के भाग-3 मूलाधिकार के अन्तर्गत, अनु.-14, 15, 16, 17, 18, 19, 21, 23, 24, 25, 29, 30 एवं अनुच्छेद 32 में तथा संविधान के भाग-4 नीति निदेशक तत्व के अन्तर्गत अनु.-38, 39, 41, 42, 43, 45, 46, 47, 48 के अन्तर्गत सामाजिक एवं आर्थिक न्याय का प्रावधान समाहित है। इनमें एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है। भारत जैसे गरीब और पिछड़े देश के बारे में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, कि आर्थिक न्याय की अवधारणा का संबंध, भूखों को रोटी, नंगों को कपड़ा और उन्हें रहने के लिए, मकान देना और प्रगति के लिए उन्हें अवसर प्रदान करना है। संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित 'लोक हितकारी राज्य' एवं समाजवादी समाज की स्थापना का आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि सरकार नीति निदेशक सिद्धान्त लागू करने का प्रयत्न करे। केशवानन्द भारती के वाद, में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने कहा था कि, "प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है। प्रस्तावना, संविधान के अन्तर्गत महत्वपूर्ण है और संविधान को उनमें निहित आदर्शों के अनुरूप, निर्वचन किया जाना चाहिये। माननीय न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने कहा कि "देश के स्वतंत्र होने के साथ ही यहाँ के लोगों को राजनीतिक न्याय प्राप्त हो गया था। अब केवल भारत के लोगों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए न्यायालय की महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए।" माननीय न्यायमूर्ति के.के. मैथ्यू ने कहा कि "राज्य के अन्तर्गत न्यायालय भी आता है। नीति निदेशक तत्वों के संदर्भ में, या उसको लागू करने में, न्यायालय को भी भूमिका अदा करनी चाहिये। माननीय न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ "मिनर्वा मिल्स के वाद" में कहा था कि, हमारे संविधान का महल, 'प्रस्तावना' में वर्णित स्पष्ट संकल्पनाओं पर बना है। हमने अपने आपको समाजवादी राज्य बनाने का संकल्प लिया है जो अपने साथ हमारे लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करने का दायित्व होता है। माननीय न्यायमूर्ति हेगडे एवं मुखर्जी ने 'केशवानन्द के वाद' में मत व्यक्त किया था कि "मूल अधिकार एवं निदेशक तत्व हमारे संविधान की आत्मा है। नीति निदेशक तत्वों का प्रयोजन कतिपय ऐसे सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य नियत करना है जिन्हें अहिंसक सामाजिक क्रांति द्वारा अविलम्ब प्राप्त किया जा सके।''

''विधायिका का आशय'' की अवधारणा :- सांविधिक निर्वचन के क्षेत्र में 'विधायिका का आशय' एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधारणा है। यह वह सूर्य के समान है। जिसके इर्द-गिर्द सांविधिक निर्वचन के नियम रूपी ग्रह चक्कर लगाते है। विधियों के निर्वचन में न्यायिक प्रक्रिया की प्रकृति का निर्धारण एवं न्यायिक शक्ति के प्रयोग का औचित्य निर्धारण होता है। संसद के सदस्य अपने क्षेत्र के नागरिकों की आवश्यकता को जानते हैं। दूसरे शब्दों में विधायिका भारत के नागरिकों की आवश्यकता को जानती है और नागरिकों की आवश्यकता को विधि के माध्यम से व्यक्त करती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि "भारत के लोगों" का प्रतिनिधित्व संसद के सदस्य करते हैं और लोगों की आवश्यकता को जानते हैं। यही, लोगों की आवश्यकता ही, "विधायिका का आशय" होता है। जो संविधि के शब्दों के माध्यम से विधायिका व्यक्त करती है। "विधायी आशय" में दो पहलू सम्मिलित हैं। प्रथम पहलू में अर्थ की अवधारणा है अर्थात् शब्दों का क्या अर्थ है। दूसरे पहलू में संविधि में संचरित 'प्रयोजन और

उद्देश्य' अथवा "तर्क एवं भावना" की अवधारणा निहित है। दूसरे शब्दों में विधायिक आशय की खोज, अधिनियम में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोजन एवं उद्देश्य के प्रकाश में, अर्थान्वयन (निर्वचन) कर, की जा सकती है। विधायी आशय का अर्थ परिवर्तित होता रहा है। यह विधायिका ने जो अधिनियमिति में कहा है कि उससे प्रारंभ होकर न्यायालय द्वारा आरोपित आशय से गुजरते हुए विधायिका के प्रयोजन तथा गुणारोपित प्रयोजन तक पहुँच चुका है। विधिशास्त्री कोकैरेफ ने कहा है कि "विधायिका का आशय भावार्थ भ्रामक है और पूर्णतः अनावश्यक है, कोई न्यायालय वास्तविक रूप में इसे ढूंढ़ने का प्रयास नहीं करता है क्योंकि इसे जान सकना असंभव है क्योंकि यह कभी अस्तित्व में नहीं रहता है।"

न्यायिक सक्रियता की अवधारणा :- विधि का निर्वचन करते समय न्यायाधीश विधि की घोषणा मात्र न कर, विधि का निर्माण भी करते हैं। इसे न्यायिक सृजनशीलता की संज्ञा दी गयी है। न्यायिक विधि निर्माण, एक निर्धारित तरीके एवं मानकों के अनुसार न्यायिक विवेक का प्रयोग कर की जाती है। विगत कुछ दशकों में न्यायिक सक्रियता की बात जोर पकड़ रही है। इसका रूढ़िवादी स्वरूप, अमेरिका में 1930 के दशक में तथा भारत में 1950-60 के दशक में प्रभावकारी रहा था। इसके उदार एवं प्रगतिशील स्वरूप की चर्चा, विगत अर्द्धशतक से ज्यादा समय से प्रकाश में आयी है।

ब्लैक'स लॉ डिक्शनरी के अनुसार, "न्यायिक सक्रियता एक न्यायिक दर्शन है जो न्यायाधीशों को प्रगतिशील एवं नवीन नीतियों, जो अपीलीय न्यायाधीशों से अपेक्षित मर्यादा से हमेशा संगत नहीं है, के पक्ष में न्यायिक पूर्व निर्णय के कठोर अनुपालन से विचलित होने से अभिप्रेरित करती है। सामान्यतः यह सामाजिक अभियंत्रण की अपेक्षा वाले निर्णयों में स्पष्ट होती है, कभी-कभी ये निर्णय विधायी एवं कार्यपालिका विषयों में घुसपैठ या बलात् प्रवेश का प्रतिनिधित्व करते हैं।" बीसवीं शताब्दी में न्यायालय ने न्यायिक सक्रियता के अन्तर्गत, सरकारी शाखाओं (कार्यपालिका और विधायिका) के निर्णयों को अभिखण्ड़ित या सारतः उपान्तरित या परिवर्तित किया है। न्यायिक सक्रियता का प्रयोग कर, न्यायालयों ने संविधियों का निर्वचन करते समय, अत्यधिक क्षेत्र विस्तार किया है, जिसमें लोक कल्याण, प्रशासन, शिक्षा नीति, नियोजन नीति, सड़क एवं पुल निर्माण और प्राकृतिक सम्पदा प्रशासन सभी सम्मिलित हो गये हैं।

न्यायिक सक्रियता के रूप :-

विधिशास्त्रियों एवं न्यायाधीशों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर, न्यायिक सक्रियता को दो वर्गों में विभक्त किया गया है।

(क) रूढ़िवादी न्यायिक सक्रियता

(ख) उदारवादी न्यायिक सक्रियता

(क) रूढ़िवादी न्यायिक सक्रियता :- रूढ़िवादी न्यायिक सक्रियता, न्यायालय की शक्तियों को, संसद या विधायिका द्वारा पारित उदार नीतियों को, अवैध कर देते हैं। सन् 1930 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायिक निर्णय एवं सन् 1950-60 के दशकों में भारत में न्यायिक निर्णय, रूढ़िवादी न्यायिक सक्रियता का स्पष्ट उदाहरण है। रूढ़िवादी न्यायिक सक्रियता से क्रोधित होकर, संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति माननीय रूजवेल्ट को कहना पड़ा कि "न्यायाधीशों को शासन करना चाहिये था।" इसी प्रकार राष्ट्रपति माननीय जैक्सन ने चुनौतीपूर्ण शब्दों में कहा था जॉन मार्शल ने निर्णय दिया है अब उन्हें इसे लागू करने दीजिये।

(ख) उदारवादी न्यायिक सक्रियता :- उदारवादी न्यायिक सक्रियता के उदाहरण, संयुक्त राज्य अमेरिका की उच्चतम् न्यायालय के द्वारा सन् 1950-70 के दशकों के निर्णय है। भारत वर्ष में सन् 1970 के दशक में उदारवादी न्यायिक सक्रियता का प्रारम्भ हुआ था।

सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में न्यायिक सक्रियता :- भारत में सन् 1950-70 के दशक में माननीय उच्चतम् न्यायालय के निर्णयों में रूढ़िवादी न्यायिक सक्रियता परिलक्षित होता है। आर.सी. कूपर बनाम भारत संघ के मामले में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने उचित सिद्धांतों के आधार पर प्रतिकर को निर्धारित न किये जाने के कारण बैंकों के राष्ट्रीयकरण संबंधी विधि को, अवैध माना गया था। तब संविधान के 25वें संशोधन अधिनियम 1971 द्वारा अनु.-31(2) के अन्तर्गत प्रयुक्त 'प्रतिकर' शब्द के जगह "राशि" रखा गया। भारत में 1970 के दशक में गत्यात्मक सक्रियता का विशेष रूप से, न्यायिक सक्रियता के रूप में विकसित हुआ है। इसी अनुक्रम में केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में, केरल भूमि सुधार अधिनियम, 1963, के संशोधन के साथ-साथ संविधान के 24वें, 25वें और 29वें संशोधन की विधि मान्यता को चुनौती दी गयी थी। माननीय उच्चतम् न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तियों ने बहुमत से एक नियम का सृजन किया कि "संसद शक्ति का प्रयोग कर संविधान के मूलभूत ढाँचे को विनष्ट नहीं कर सकती है। इस निर्णय को डॉ. उपेन्द्र बक्शी ने "भविष्य का भारतीय संविधान" कहा था। भारत में आपातकाल के बाद न्यायिक सक्रियता, एक खतरनाक तूफान की तरह चला, जिसका नमूना मेनका गाँधी बनाम भारत संघ का मामला था, जिसमें माननीय उच्चतम् न्यायालय द्वारा मूलाधिकारों एवं राज्य के निर्देशक तत्वों का अन्तः संबंध स्वीकार किया गया है। इसमें माननीय उच्चतम् न्यायालय ने संवैधानिक

निर्वचन के माध्यम से, संविधान के पुनर्लेखन का कार्य किया है। बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ के मामले में माननीय उच्चतम् न्यायालय न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी की अदायगी, को बलात्श्रम की संज्ञा दी और अनु.-23, भारतीय संविधान की, उदार व्याख्या की थी तथा न्यायालय ने अनु.-23 को केवल राज्य के विरुद्ध ही नहीं बल्कि प्राइवेट नागरिकों के विरूद्ध भी लागू करने योग्य घोषित किया है। सेन्ट्रल इंलैण्ड वाटर ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम ब्रजोनाथ गांगुली के मामले में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने संविधान के अनु.-38 में वर्णित न्याय प्रदान करने के नीति निदेशक तत्व के प्रकाश में, नागरिकों के बीच आर्थिक विषमता दूर करने के आधार पर वितरणात्मक न्याय की व्याख्या किया था। इसी अनुक्रम में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने "सामाजिक हित वाद" के माध्यम से न्यायिक सक्रियता में और ज्यादा सहयोग किया है। इसी प्रकार जॉली जॉर्ज वर्गीस बनाम बैंक आफ कोचीन, ए.के. चोपड़ा का वाद, गीता हरिहरन का वाद और विशाका के वाद में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने घरेलू विधियों का निर्वचन करते समय, अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों एवं मानकों को सम्मान के साथ लागू किया। बालाजी बनाम मैसूर राज्य के मामले में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने प्रथम नीतिगत निर्णय में यह स्पष्ट किया था कि आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत तक होगी। इसी मत को माननीय उच्चतम् न्यायालय ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ के मामले में दोहराया था और यह कहा कि ''जाति के आधार पर पिछड़ेपन का निर्धारण किया जा सकता है।'' इसी अनुक्रम में एस.आर.वोम्बई बनाम भारत संघ के मामले में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि अनु.-356 के अन्तर्गत जारी राष्ट्रपति घोषणा को अपास्त कर दिया जाता है तो न्यायालय को शक्ति है कि वह भंग विधान सभा को पुनः जीवित घोषित कर दे। के.एस. पुट्टा स्वामी के वाद, में प्रतिपादित सिद्धांतों तथा सुचिता श्रीवास्तव बनाम चंड़ीगढ़ प्रशासन के वाद में प्रतिपादित मत कि "स्त्री की यह चुनाव करने की स्वतंत्रता कि क्या शिशु को जन्म देना है या अपने गर्भ का गर्भपात कराना है, वे क्षेत्र है जो निजता के क्षेत्र में आते हैं।" इसी अनुक्रम में शायरा बानो बनाम भारत संघ, इंडिपेडेंट थॉट बनाम भारत संघ और एक्स. बनाम पी.एस.एफ. डब्ल्यू. डी. (2022) के वाद में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा दिया था, जो महिला सशक्तिकरण के दिशा में ऐतिहासिक, न्यायिक सक्रियता का एक कदम था।

निष्कर्ष :- सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, को आगे बढ़ाने में, भारत में न्यायिक सक्रियता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह कहना कि सरकारें, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, लोगों को प्रदान करने में असफल रही, उतना ही, अर्द्ध सत्य है, जितना कि न्यायालयों ने अपने कमियों से लोगों का ध्यान हटाने में, न्यायिक सक्रियता के रूप में एक हथियार का प्रयोग किया है। डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र के अनुसार, ''न्यायिक सक्रियता कुछ नहीं है बल्कि विलम्ब से न्याय देना, न्याय से इंकार करना", की अवधारणा से लोगों का ध्यान हटाना एवं न्यायालय के कार्य लोपों पर पर्दा डालना है। यदि भारतीय न्यायालयों द्वारा लम्बित मुकदमों या मामलों को समयबद्ध तरीके से निपटारा किया जाय, तो यह लोगों के लिए सबसे बड़ा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय होगा तथा यह सबसे बड़ा न्यायिक सक्रियता माना जायेगा। न्यायिक सक्रियता, "शक्तियों के पृथक्करण" एवं निर्वचन के सिद्धांत, का सबसे बड़ा विरोधी तथा उल्लंघनकारी है। न्यायिक सक्रियता, निर्वचन के सिद्धांत, के आड़ में विधायी एवं प्रशासनिक शक्तियों का दिन-दहाड़े अपहरण है, परन्तु न्यायिक सक्रियता, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के संदर्भ में, हो रहे कुछ न कुछ योगदान को नकारा नहीं जा सकता है।

संदर्भ

1. जी.पी.सिंह, "प्रिन्सिपल्स ऑफ स्टैट्यूटरी इंटरप्रेटेशन", 1997
2. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम के.सी. महाजन, AIR 1992 SC 1277
3. कौफेरेक, आर्टिकल 41, P. 201
4. केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य, (1973) 2 उम.नि.प. 362
5. मिनर्वा मिल्स लि. बनाम भारत संघ, AIR 1980 SC 1784
6. के.के. मैथ्यू, "डिमोक्रेसी, इक्वालिटी एण्ड फ्रीडम'', 1978
7. प्रसाद, डॉ. अनिरूद्ध, "सांविधिक निर्वचन के सिद्धांत" सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, षष्टम संस्करण, 2013
8. ए.आई.आर. 1978 SC 597
9. ए.आई.आर. 1984 SC 837
10. (1986) 3 एस.सी.सी. 156
11. AIR 1980 SC 470
12. (1999) 1 SCC, 759
13. (2017) 10 SCC, 1
14. (2009) 9 SCC, 1
15. (1997) 6 SCC, 241

माधवेन्द्र तिवारी
शोध-छात्र एवं सहायक प्राध्यापक (विधि),
रा.गा.शा.स्नातको. महाविद्यालय, अम्बिकापुर, (छ.ग.)

डॉ. तरूण कुमार राय
शोध-निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक (विधि),
रा.गा.शा.स्नातको. महाविद्यालय, अम्बिकापुर, (छ.ग.)

'विधि विवादित किशोर' की अवधारणा : एक अवलोकन

–डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र

शोध सारांश :- यदि हम दार्शनिक धरातल पर, बालक के जन्म के बारे में विचार करें तो, ऐसा माना जाता है कि, जब ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण किया था, तो मानव की रचना उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना थी। लेकिन कुछ ऐसा भी कार्य क्षेत्र था, जिसकी देखभाल करने में ईश्वर असमर्थ था। इसलिए ईश्वर ने स्त्री शरीर की रचना की। उस युग में मानव, विवाह जैसी संस्था से अनभिज्ञ था। मानव अन्य प्राणियों की भांति रहता था। प्रारंभिक काल में, सामाजिक व्यवस्था न होने के कारण, लैंगिक संबधों की पूर्ण स्वतंत्रता थी। क्रमिक विकास के पथ पर आगे बढ़ते हुए, मानव के मस्तिष्क में, यह विचार आया होगा कि वह जाने की उसकी संतान कौन है? इसी इच्छा की पूर्ति हेतु, विवाह संस्था का उद्‌भव हुआ होगा। लैंगिक स्वतंत्रता के कारण, मानव को अपनी संतान को जानना असम्भव था। समय के अनुक्रम में, हम उस मंजिल पर पहुंच गये कि जब एक स्त्री और एक पुरूष के संबंध ने, वैवाहिक संस्था का स्वरूप ले लिया। तब बालक की पैतृकता को सामान्यतः जानना सम्भव हुआ था। ईश्वर ने बालक की देखभाल का दायित्व प्रमुख रूप से महिला को सौंप दिया था। क्योंकि इसी कार्य क्षेत्र के लिए, ईश्वर अपने को असमर्थ, समझता था। जिसके फलस्वरूप उन्होंने महिला का निर्माण किया था। समय के अनुक्रम में, बालक के संरक्षण का दायित्व पुरूष एवं समाज ने भी अपने हाथों में लिया है। क्योंकि बालक, परिवार, समाज एवं राज्य का भविष्य होता है और वर्तमान को भविष्य के हित के लिए, बलिदान कर देना चाहिए। हम इसी के संदर्भ में 'विधि विवादित किशोर' की अवधारणा के विधिक एवं सामाजिक पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

प्रमुख शब्द :- बालक, विधि विवादित किशोर, उपचार, विकास, एवं पुनर्वास।

किशोर या बालक की अवधारणा :- जब बालक का जन्म होता है तो वह सजीव मांस का टुकड़ा होता है। दूसरे शब्दों में बालक एक जैवकीय प्राणी होता है। लेकिन समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा, बालक जैवकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी बन जाता है। सामाजिक प्राणी बनाने में, परिवार, पड़ोस, विद्यालय एवं समाज की प्रमुख भूमिका होती है। जब शिशु, जैवकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी बनने की बीच की स्थिति, यानि शिशु के सामाजिक प्राणी बनने की पूर्व स्थिति में होता है, उसे हम 'बालक' या किशोर कह सकते हैं। इस स्थिति के दौरान बालक का शारीरिक, मानसिक एवं विवेकीय विकास सामान्यतः नहीं हुआ होता है। यदि बालक का शारीरिक विकास हो भी जाये तो भी उसका मानसिक विकास नहीं हो पाता है। यदि हम विधिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत बालक की अवधारणा का अवलोकन करें, तो इसको लेकर विभिन्न कानूनों में विभिन्न प्रावधान हैं। विधि विवादित बालक की व्याख्या में, बाल अपराधी की आयु एवं व्यवहार में, एक सीमा है। विश्व के सभी देशों में बाल अपराध की आयु एवं व्यवहार क्षेत्र का कोई ऐसा मानक नहीं है, जिसके आधार पर इसकी व्याख्या की जा सके। प्रत्येक देश व राज्य ने अपने दृष्टिकोण से बाल अपराध की मानक आयु तथा व्यवहार क्षेत्र को निश्चित किया है। आयु की दृष्टि से विश्व के अधिकांश देशों में सामान्यतः 7 वर्ष से कम आयु को बाल अपराध के लिए न्यूनतम आयु माना जाता है। जबकि 18 वर्ष की आयु को इसका अधिकतम वर्ष का आयु का मानक माना जाता है। सात वर्ष से कम वाले बालकों को उनके किसी आपराधिक कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं माना जाता क्योंकि ऐसा माना जाता है कि 7 वर्ष से कम आयु के बालकों को अच्छे-बुरे का ज्ञानबोध नहीं होता है। अमेरिका के अधिकांश राज्यों में बाल अपराध की आयु सीमा 18 वर्ष है। जबकि इंग्लैंड में 17 वर्ष तथा जापान में 20 वर्ष माना जाता है। समाज कल्याण की दृष्टि से इसे सदैव 18 वर्ष माना जाता है।

बाल अपराध (विधि विवादित बालक) की परिभाषा :- भारतीय परिस्थिति में, बाल अधिनियम, 1986 की धारा-2(ड़) के अनुसार, उस बालक को अपराधी बालक माना गया है, जिसने कोई अपराधिक कार्य किया है। इस अधिनियम के अनुसार 'बालक' का तात्पर्य 16 वर्ष से कम आयु वर्ष का बालक, और 18 वर्ष से कम आयु की बालिका है। किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम 2015 की धारा- 2(13) के अंतर्गत, 'विधि विवादित किशोर' से अभिप्रेत है, ऐसा बालक जिसके बारे में अभिकथन है या पाया गया है कि उसने कोई अपराध किया है

और जिसने उस अपराध के किये जाने की तारीख को 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी राज्य के कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से कम आयु वाले बालक द्वारा किया गया ऐसा कार्य, जिससे उस राज्य की किसी अपराधिक संहिता का उल्लंघन होता है और जिसके लिए विधिक कार्यवाही व दण्ड व्यवस्था वयस्कों से भिन्न होती है, विधि विवादित किशोर कहलायेगा।

विधि विवादित किशोर : सांविधिक प्रावधान :- बालकों के कल्याण हेतु, भारत में सर्वप्रथम सन् 1850 ई. में 'अप्रैन्टिसेज एक्ट' पारित किया गया है। जो मूलतः बाल आपराधियों से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं था, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से इस अधिनियम के अंतर्गत न्यायाधीश को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वे बालक, जो किसी अपराध में पकड़े जायें उनमें से 10 से 18 वर्ष आयु समूह के बालकों, को प्रशिक्षु के रूप में रखने का आदेश प्रदान कर सकता था। सन् 1875 में इस अधिनियम को 'रिफार्मेटरी स्कूल एक्ट' (जिसका संशोधन 1897 ई. में किया गया) द्वारा बदल दिया गया। इस अधिनियम में बाल व किशोर अपराधियों के मामले मे, निर्णय के लिए, न्यायालयों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि यदि वे उचित समझे तो बाल व किशोर अपराधियों को कारागार भेजने के स्थान पर तीन से सात वर्ष तक के लिए, सुधार विद्यालयों में नजरबंद कर सकते हैं। इस अधिनियम की धारा-18 के अन्तर्गत, सुधार विद्यालय के अधीक्षकों को यह अधिकार दिया गया कि, वे विद्यालय के 'विजिटर्स कमेटी' की अनुमति से 14 वर्ष की आयु वाले बालकों को, लाइसेंस के अन्तर्गत किसी प्रतिष्ठान, विश्वासपात्र व्यक्ति, नगरपलिका या सरकारी अधिकारी के साथ रहने की अनुमति प्रदान कर सकते हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता, की धारा-29/399 एवं 562 के अन्तर्गत 21 वर्ष से कम आयु के बालकों के मामले में निपटारे की व्यवस्था की गई थी। सन् 1973 की दण्ड प्रक्रिया संहिता में भी 16 वर्ष से कम आयु के बाल अपराधियों के लिए प्रशिक्षण, उपचार एवं पुर्नवास की विशेष व्यवस्था की गई है, जिनका अपराध, मृत्यु अथवा आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है।

सन् 1920 ई. में भारत में बाल अधिनियम के रूप में अनेक विधान पारित किये गये थे, जिनके अंतर्गत बाल न्यायालयों तथा अन्य संस्थाओं के स्थापना की व्यवस्था की गई। इसी क्रम में 1920, 1922, 1924, 1928, 1951, 1949 व 1952 ई. में क्रमशः मद्रास, बंगाल, बम्बई, मध्य प्रदेश, हैदराबाद, पंजाब व उत्तर प्रदेश में बाल अधिनियम पारित किये गये। भारत सरकार ने सन् 1960 में केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए एक केन्द्रीय बाल अधिनियम पारित किया था। सम्पूर्ण भारत में इस क्षेत्र में एकरूपता लाने हेतु सन् 1986 ई. में बाल न्याय अधिनियम 1986 पारित किया गया था। इस अधिनियम के अन्तर्गत बाल अपराधियों के कल्याण हेतु, बाल न्यायालय, बाल गृह, संप्रेक्षण गृह, बाल कल्याण बोर्ड, विशेष विद्यालय, प्रतिप्रेषण गृह एवं बाल संरक्षण संगठन इत्यादि संस्थाओं की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम में कुल 63 धाराएं थीं। सन् 2000 ई. में किशोर न्याय (बालकों के देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 के रूप में संशोधित किया गया, तत्पश्चात् इस अधिनियम को नये रूप में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख तथा संरक्षण) अधिनियम 2015 के रूप में समस्त भारत में लागू किया गया। यह अधिनियम संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पारित, बालकों के अधिकार अभिसमय, 'बीजिंग घोषणा पत्र' तथा 'रियाद घोषणा पत्र' के अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाये गये। हैं। इस अधिनियम में कुल 112 धारायें हैं जिसके अन्तर्गत, किशोर न्याय बोर्ड, संप्रेक्षण गृह व विशेष गृह इत्यादि का गठन तथा विधि विवादित बालकों के जमानत इत्यादि संबंधी नियमों का, समावेश है।

बालक की अवधारणा : भारतीय संविधान :- भारतीय संविधान के 'प्रस्तावना' के अन्तर्गत, बालकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय और बालकों की गरिमा को सुनिश्चित करने, संविधान को अंगीकृत, आत्मार्पित किया गया है। माननीय मुख्य न्यायमूर्ति सीकरी ने कहा कि ''प्रस्तावना, संविधान का अभिन्न अंग है।'' किसी साधारण अधिनियम में उद्देशिका या प्रस्तावना को उतना महत्व नहीं दिया जाता है, जितना संविधान के प्रस्तावना को दिया जाता है। संविधान की प्रस्तावना में निहित उदात्त आदर्शों के अनुरूप संविधान के प्रावधानों का निर्वचन किया जाना चाहिए।[1] उद्देशिका के अन्तर्गत, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय बालकों को प्राप्त है, तथा बालकों के जीवन को गरिमामय बनाया जाए, इसके लिए प्रयास जारी है। इससें संबंधित प्रावधान, संविधान के अनु.-14, 15, 19, 21, 21-A, 23, 24, 39, 41, 42, 43, 45, 46, 47 एवं 51-A में दिया गया है। संविधान के अनु. 15(3) के अंतर्गत राज्यों को बालकों के लिए, विशेष उपबंध बनाने का प्रावधान किया गया है, क्योंकि बालकों को दुर्बल वर्ग माना जाता है। बालकों के प्रति, संवैधानिक सहानुभति का आधार का कारण है कि ''संसार में अस्तित्व के संघर्ष में, बालकों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता तथा उनके अविवेकपूर्ण कार्य उन्हें दुखद स्थिति में कर देते हैं। अतः उनका शारीरिक तथा मानसिक विकास एवं संरक्षण, सामाजिक हित एवं राज्य का उद्देश्य हो जाता है, जिससे बालकों की शक्ति और निपुणता को सुरक्षित रखा जा सके।'' माननीय न्यायमूर्ति विवियन बोस ने कहा कि ''लिंग इत्यादि के आधार पर वर्गीकरण, सामान्यतः कोई भेद नहीं किया जा सकता, फिर भी संविधान स्वयं बच्चों एवं महिलाओं के बारे में विशेष उपबंध का प्रावधान करता है।''[2] दीपिका जगत राम साहनी बनाम भारत संघ के मामले[3] में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने मत व्यक्त

किया है कि संविधान की अनु. 47 के अन्तर्गत, राज्यों का प्राथमिक कर्तव्य है कि किशोर बलिकाओं एवं 6 वर्ष की आयु तक के बच्चों को पुष्टाहार की व्यवस्था की जाए। इसी अनुक्रम में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने आकूपेशनल हेल्थ एण्ड सेटी एसोसिएशन बनाम भारत संघ के मामले[4] में मत व्यक्त किया कि संविधान के अनु.-21 में निहित, मानव गरिमा से रहने का अधिकार, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों विशेषकर, अनु. 39(ड़) व (च), 41 तथा 42 से व्युत्पन्न होता है। इसी अनुक्रम में, आर. डी. उपाध्याय बनाम आन्ध्र प्रदेश के मामले[5] में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने विभिन्न जेलों में बंद माँ के साथ बच्चों की दयनीय दशा के विषय में गम्भीर चिंता दिखाई, और यह अभिनिर्धारित किया कि बालकों को अनु. 21, 21क, 23, 39(ड़) व (च) के अन्तर्गत, भोजन, चिकित्सा, कपड़े, शिक्षा और मनोरंजन सुविधाएं पाने का अधिकार है तथा 6 वर्ष से अधिक आयु के बालक को महिला बंदियों के साथ नहीं रखा जायेगा। इसी अनुक्रम में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने अहमदाबाद नगर निगम बनाम नवाब खान गुलाम खान के मामले[6] में कहा था कि ''प्रस्तावना, भारतीय संविधान की मेहराब है'' जो भारत के प्रत्येक नागरिक को, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा प्रदान करता है। प्रस्तावना, मूल अधिकार और नीति निर्देशक तत्व संविधान की त्रिमूर्ति होने के कारण, इनके द्वारा प्रत्येक नागरिक को आश्वस्त किया गया है जिसके अन्तर्गत 'बालक' भी आते हैं। केशवानन्द भारती के मामले में, माननीय उच्चतम् न्यायालय ने मत व्यक्त किया था कि, ''स्वतंत्रता और कुछ भी नहीं, बल्कि बेहतर होने का अवसर है। बेहतर करने की यह स्वतंत्रता ही है, जो संविधान के मूल अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों का विषय है।''

अन्तर्राष्ट्रीय विधि : बालक या किशोर की अवधारणा :- मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनु. -25 में यह प्रावधान है कि शैशवावस्था, विशेष देखभाल और सहायता का हकदार है। सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनु.-23 एवं 24 तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनु.-10 के अन्तर्गत, शिशुओं की देखभाल का प्रावधान किया गया है। शिशुओं के अधिकारों पर अभिसमय, 1989 के अनु.-1 के अन्तर्गत, यह प्रावधान है कि 'शिशु ऐसे प्रत्येक मानव को कहा जायेगा, जिसकी आयु 18 वर्ष से कम हो।' भारत ने इस अभिसमय का अनुसर्मथन 11 दिसम्बर 1992 को किया था। सशस्त्र संघर्ष में 'शिशुओं की अन्तर्ग्रस्तता पर ऐच्छिक नयाचार' के अन्तर्गत, राज्यों पर यह बाध्यता है कि, 18 वर्ष से कम के शिशुओं को सशस्त्र बल में भर्ती नहीं करेंगे। शिशुओं के विक्रय, बाल वेश्यावृति, बाल अश्लील सहित्य पर ऐच्छिक नयाचार के अन्तर्गत शिशुओं के संरक्षण की बात की गई है। राज्य पक्षकारों को यह विवेकाधिकार है कि 'बालकों के आश्रय एवं राष्ट्रीयता' के संदर्भ में, उदारतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। राज्यों को ऐसा कार्य करना चाहिये कि बालकों को 'राज्यविहीनता' का सामना न करना पड़े। जेनेवा अभिसमय के अन्तर्गत युद्ध के दौरान, बच्चों के अधिकार पर राज्यों को ध्यान देने की बात की गई है। पी. यू. सी. एल. बनाम भारत संघ के मामले[7] में माननीय उच्चतम् न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ''संधियों एवं समझौतों में, भारत द्वारा समर्थित अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानक, राज्य पर उस सीमा तक बाध्यकारी है कि ये संविधान द्वारा प्रत्याभूत मूलाधिकारों की व्याख्या और उसे प्रभावी करते है।''

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 : विधि विवादित किशोर :- किशोर न्याय अधिनियम की धारा-2(12) के अन्तर्गत 'बालक' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। तथा किशोर से अठारह वर्ष से कम आयु का बालक अभिप्रेत है।[8] 'विधि का उल्लंघन करने बालक' से ऐसा बालक अभिप्रेत है, जिसके बारे में यह अभिकथन है या पाया गया है कि उसने कोई अपराध किया है और जिसने उसके किए जाने की तारीख को अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।[9] किशोर न्याय अधिनियम की धारा-14(च) के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रावधान है-

1. अपराध किये जाने की तारीख को, 16 वर्ष से कम आयु के बालक के संबंध में जघन्य अपराधों की जाँच बोर्ड द्वारा धारा-14(ड़) के अधीन निपटाई जायेगी।

2. अपराध किये जाने की तारीख को सोलह वर्ष से अधिक आयु के बालक के संबंध में धारा-15 के अधीन निहित रीति से की जाएगी।

किशोर न्याय अधि., 2015 की धारा-15(1) के अन्तर्गत किसी जघन्य अपराध की दशा में, जो अभिकथित रूप से किसी ऐसे बालक द्वारा किया गया है, जिसने सोलह वर्ष की आयु पूरी कर ली है या जो सोलह वर्ष से अधिक आयु का है, बोर्ड ऐसा अपराध करने के लिए उनकी मानसिक और शारीरिक क्षमता, अपराध के परिणामों को समझने की योग्यता और ये परिस्थितियां जिसमें उनमें कथित रूप से उसने अपराध किया था, के बारे मे प्रारंभिक निर्धारण करेगा और धारा-18(3) के उपबंधों के अनुसार आदेश पारित कर सकेगा। धारा-18(3) के अर्न्तगत, जहाँ बोर्ड, धारा-15 के अधीन प्रारंभिक निर्धारण करने के पश्चात् यह आदेश पारित करता है कि उक्त बालक का, वयस्क के रूप में विचारण करने की आवश्यकता है, वहाँ बोर्ड मामले के विचारण को, ऐसे अपराधों के विचारण की अधिकारिता वाले बालक न्यायालय को, अंतरित करने का आदेश दे सकेगा।

विधि विवादित बालक : विश्लेषण :- किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के अन्तर्गत, किशोर का तात्पर्य, ऐसा

बालक, जो 18 वर्ष की आयु पूरी न की हो परन्तु अधिनियम की धारा-15 एवं 18(3) के संयुक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि, ऐसा किशोर जो 16 वर्ष से कम आयु का है, तो उसे दायित्व से पूर्ण उन्मुक्ति है, जबकि 16 वर्ष से अधिक आयु का बालक एवं 18 वर्ष के आयु से कम बालक को पूर्ण उन्मुक्ति, अपराधिक दायित्व से नहीं प्राप्त है। ऐसे किशोर के शारीरिक एवं मानसिक दशा, अपराध के परिणामों की समझने की क्षमता एवं वह परिस्थिति, जिसमें बालक अपराध कारित किया है, इत्यादि पर ध्यान दिया जाएगा। जबकि यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मेघमनि आर्गेनिक्स रिजर्व लि.[10] के मामले में माननीय न्यायमूर्ति एस. के. सिंह ने स्पष्ट किया था कि संविधान के अनु.-51(ब) के संदर्भ में, जहां भारत एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि या समझौता का हस्ताक्षरकर्ता है और संधि दायित्व को पूरा करने हेतु कोई संविधि पारित की गई है, तो ऐसी संविधि एवं तत्समान संधि प्रावधान के बीच कोई विरोध उत्पन्न होने की दशा में, संविधिक भाषा का निर्वचन, संधि के भाषा के समान अर्थ में किया जायेगा। यही मत न्यायालय ने कमिश्नर ऑफ कस्टम बनाम जी. एम. एक्सपोर्ट्स के मामले में भी व्यक्त किया है।[11]

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के कारण, संविधान के अनुच्छेद-15(3) के अन्तर्गत, किशोर न्याय अधि. 2015, एक हितप्रद या लाभकारी विधायन है। इसलिए किशोर न्याय अधि. का अर्थान्वयन, बालक या किशोर के हित में किया जाना चाहिए। भारत संघ बनाम प्रदीप कुमारी के मामले[12] में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को अधिकार है कि वह उन लोगों के प्रति उदार भाव रखें, जिन्हें संविधि द्वारा लाभ प्रदान किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किशोर न्याय अधि. 2015 के उद्देश्य, और धारा -2(13) व 2(12) तथा धारा-15 में विरोधाभास है। जो अधिनियम के उद्देश्य, अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल है। अतः अधिनियम की धारा-15, अप्रासंगिक हैं। किशोर न्याय अधि. की धारा-15, दो आयु समूहों के बीच, 'विवेक' के आधार पर विभेद कर रही है। जबकि 'विवेक' बालकों के संदर्भ में एक अस्पष्ट अवधारणा है। इसलिए अधि. की धारा-15, संविधान के अनुच्छेद,14, 15 19 एवं 21 के प्रतिकूल है। अतः विधायिका एवं न्यायपालिका को इस प्रावधान पर पुनः विचार करना चाहिए। अधिनियम की धारा-15 के अन्तर्गत ''विधि 'पुरोहिती कहावत' के उत्पाद की तरह है, केवल भागित रूप से ही, अच्छा पर्याप्त।'' आश्चर्यजनक रूप से जब केवल अच्छे भागों को देखा जाता है, तब इसके बुरे पहलू की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। यह विधि संकीर्ण, रूढ़िवादी विचारधारा पर आधारित है। जो 'हितप्रद निर्वचन' एवं 'उदारवादी विचारधारा' के प्रतिकूल है।

निष्कर्ष :- बालक या किशोर देश की परिसम्पत्ति है, और देश का भविष्य है। इसलिए वर्तमान को भविष्य के लिए बलिदान करना चाहिये। बच्चे अत्यधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय परिसम्पत्ति है, और राष्ट्र का भावी कल्याण इसी पर निर्भर करता है, कि उनके बच्चे उन्नति एवं विकास करें। महान् कवि 'जॉन मिल्टन' ने कहा था कि ''बालक मनुष्य को वैसे ही दर्शाता है, जैसे सुबह दिन को दर्शाती है।'' इसलिए राष्ट्र के भौतिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का अवधारणा, व्यापक रूप से उस ढंग से ही किया जाता है, जिस ढंग से इसका स्वरूप पूर्व प्रक्रमों में प्रदान किया जाता है। बालक राष्ट्र की आत्मा है, क्योंकि उसकी अपनी निजी प्रकृति और क्षमताएं होती है, जिनको उन्हें जानने, उन्हें परिपक्वता में शारीरिक और व्यापक ऊर्जा की पूर्णता में और उसकी भावनात्मक और बौद्धिक तथा आध्यात्मिक जीवन की अत्यधिक व्यापकता, गहनता एवं शिखरस्थ उन्नति को विकसित करने में, सहायता की जानी चाहिए, अन्यथा राष्ट्र का स्वस्थ विकास नहीं हो सकता है। बच्चों की उनकी वयस आयु तथा शारीरिक, मानसिक अपरिपक्वता और अक्षमता के कारण स्वयं की देखभाल करने के लिए, विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। भारत मे यह अन्तःचेतना, संविधान में अधिनियमित प्रावधानों, अनु.-15(3), राज्य को, अन्य बातों के साथ-साथ बच्चों के लिए विशेष प्रावधान निर्मित करने के लिए समर्थ बनाता है, में परिलक्षित होता है और अनु.-24 एवं 39(ड़) व (च) में भी यह प्रावधान है। ये संवैधानिक प्रावधान, संविधान निर्माता को भी, देश में बालकों के हित तथा कल्याण का परिरक्षण एवं संरक्षण करने की अत्यधिक उत्सुकता को प्रकट करते हैं। इसलिए सरकार ने भी, इन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसरण में बच्चों के कल्याणार्थ हेतु, किशोर न्याय (बालकों के देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 निर्मित की है। यह उद्देश्य, लक्ष्यपरक अस्थिर प्रस्तावना के साथ प्राप्त होती है। हम बालकों के नाम पर प्रेम की नदियां बहा सकते हैं परंतु बालकों के साथ न्याय की बात पर, हम असमर्थ एवं असहज हो जाते हैं।

संदर्भ

1. (1973) 2 उम. नि. प. 362
2. AIR 1954 SC 321
3. AIR 2021 SC 525
4. AIR 2014 SC 1464
5. AIR 2006 SC 1946
6. (1997) 11 SC 121
7. (1997) 3 SCC 433
8. धारा-2(35), किशोर न्याय अधिनियम, 2015
9. धारा-2(13), किशोर न्याय अधिनियम, 2015
10. (2016) 10 SCC 28
11. (2016) 1 SCC 91
12. (1995) 2 SCC 736

डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र
सहायक प्राध्यापक (विधि), लॉ कालेज,
शहडोल (म.प्र.)

प्रवासी पीढ़ी का जीवन संघर्ष और उषा प्रियम्वदा

–डॉ. पूनम सिंह

शोध सार (Abstract) - भूमंडलीकरण के बाद भारत जैसे विकासशील देशों की युवा पीढ़ी में विदेशों में जा कर धन कमाने, पहचान बनाने, उन्नत जीवन शैली पाने का रुझान बढ़ा है और साथ ही इसी दिशा में तमाम तरह के रोजगार के विकल्प भी निर्मित हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में मेधावी, महत्वाकांक्षी युवा पीढ़ी अपने सपने और भविष्य को संवारने के लिए विदेशों की ओर उन्मुख हो रही है। इस पीढ़ी को प्रवासी पीढ़ी के रूप में चिह्नित किया गया है। 'ब्रेन-ड्रेन' की यह प्रक्रिया आज वैश्विक शक्ल अख्तियार कर रही है। विदेशी जमीन पर युवा पीढ़ी न केवल सांस्कृतिक संकट का बल्कि परायपन, अकेलापन, निरर्थकता-बोध की भी शिकार हो रही है। वह नई जमीन पर, नए माहौल में खुद को मिसफिट महसूस करती है। वहां जीवन यापन के लिए आर्थिक संघर्ष के साथ मानसिक संघर्ष भी करती है। 'प्रवासी पीढ़ी का जीवन संघर्ष और उषा प्रियम्वदा' शीर्षक शोध आलेख का उद्देश्य प्रवासी हिंदी लेखिका उषा प्रियम्वदा के कथा साहित्य के माध्यम से विदेशी जमीन पर प्रवासी युवा पीढ़ी के तमाम संघर्षों को जवाबदेही के साथ प्रस्तुत करते हुए प्रवासी पीढ़ी की यथाथिति से रूबरू करवाना है।

बीज शब्द (Key Words) - प्रवासी, विकासशील, प्रवासी पीढ़ी, भूमंडलीकरण, ब्रेन-ड्रेन, निम्नमध्यवर्गीय, कल्चरल शॉक, पार्ट टाइम, बेबी सिटिंग, मनोरोगी, अस्तित्ववादी, रंगभेद, छात्रवृत्ति, अवैधानिक, लिव इन रिलेशन।

भूमिका - किसी देश का नागरिक जब किसी अन्य देश में अल्पकाल या दीर्घकाल के लिए वास करे, तो उसे प्रवासी कहा जाता है। भारत जैसे विकासशील देश के नागरिकों को यह लगता है कि वे विकसित देशों के प्रवासी बनकर अपनी भौतिक उन्नति कर सकते हैं और इसी चाह में आज की युवा पीढ़ी प्रवासी पीढ़ी में तब्दील होती जा रही है। प्रवासी पीढ़ी उस मेधावी युवा पीढ़ी को कहेंगे, जिसको अपने उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएं भारत में नहीं, बल्कि विदेशों में दिखती है। यह पीढ़ी अपने करियर और सपनों की तलाश में अपने देश से दूर विदेशों में प्रवासी बन जाने में अपने जीवन की सफलता और सार्थकता तलाशती है। आज यह सिर्फ एक घर या परिवार की कहानी नहीं रह गई, बल्कि हर घर-परिवार की नियति बनती जा रही है। आज हमारे घरों में पल रही नन्हीं पीढ़ी भी प्रवासी पीढ़ी बनने के सपने देख रही है। विशेषकर भूमंडलीकरण के दौर में युवा पीढ़ी के लिए वैश्विक स्तर पर रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए हैं। किसी देश की भौगोलिक सरहद अब बाधा नहीं रही। विकसित देशों में अपने सुखद भविष्य की संभावना तलाशना पिछड़े और विकासशील देशों की युवा पीढ़ी के सपने बन गए हैं। आज 'ब्रेन-ड्रेन' की यह घटना एक वैश्विक शक्ल अख्तियार कर रही है। प्रवासी होने के चाहे जो भी कारण हों, पर प्रवासकालीन जीवन स्थितियां सबकी एक-सी होती हैं। नए देश, नई संस्कृति, नए माहौल, नई जीवन-शैली, नई भाषा, नए तौर-तरीके को अपना पाना या उनके साथ तालमेल बैठा पाना आसान नहीं होता। प्रवासी जिंदगी जितनी लुभावनी, मनमोहक और आकर्षक दिखती है, वैसी होती नहीं है। ऐसे समय में उषा प्रियम्वदा का स्मरण हो आना सहज ही स्वाभाविक है। उषा प्रियम्वदा न सिर्फ प्रवासी लेखिका हैं, बल्कि प्रवासी पीढ़ी की सच्ची प्रतिनिधि भी हैं। उन्होंने प्रवासी पीढ़ी के सपने, महत्वाकांक्षाएं और उनके जीवन संघर्ष को अनुभव की प्रामाणिकता के साथ व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है।

उषा प्रियंवदा ने अमेरिका को अपने प्रवासी जीवन की ही तरह अपने लेखन का भी केंद्र बनाया है। भूमंडलीकरण के दौर से अमेरिका विश्व की सबसे बड़ी शक्ति के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। दुनिया का सबसे अमीर, उदार और उन्नत देश अमेरिका दुनिया के समस्त विकासशील और पिछड़े देश के नागरिकों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र रहा है। यही कारण है कि आज अमेरिका जाना किसी भी भारतीय के लिए सफलता का मानक बन गया है। इसी सोच के तहत भारत की युवा पीढ़ी अमेरिका की ओर उन्मुख हो रही है। चाहे उच्च शिक्षा हो, वैज्ञानिक अनुसंधान हो, तकनीकी शिक्षा हो या रोजगार–हर क्षेत्र में भारतीय युवा पीढ़ी अमेरिका जाने का मार्ग ढूंढ लेती है। पढ़-लिखकर अपने देश के लिए कुछ करने का जज्बा अब समाप्त हो गया है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'शून्य' के

नायक और उपन्यास 'अंतर्वंशी' के राहुल जैसे मेधावी छात्रों के पिता चाहते थे कि उनकी संतान आई. ए. एस. बनकर देश सेवा करें, पर दोनों अमेरिका में अपने भविष्य की तलाश करते हैं। 'अंतर्वंशी' उपन्यास के राहुल का यह कथन अवलोकनीय है-''बाऊजी चाहते थे कि आई. ए. एस. में बैठूँ। जिस भारत की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपनी आहुति दी, उसके तंत्र का एक अंग बनूं। बाद में उन्होंने चाहा कि मैं पढ़-लिखकर भारत लौट आऊं, एक नॉर्मल सफल व्यक्ति की तरह रहूं। पर मैंने वह भी नहीं किया। मेरी आंखें अपने स्वार्थ अपने ध्येय पर ही टंगी रहीं; मैंने उनका दिल तोड़ दिया।''[1] राहुल जैसे पात्रों के मन में न देश प्रेम की भावना है, न ही पिता के सपनों के प्रति संवेदना। अपनी निम्नमध्यवर्गीय जीवन स्थितियों से मुक्ति की तलाश में ऐसे पात्र अमेरिका जाते हैं।

प्रवासी होने के सबके अपने-अपने कारण और तरीके हैं। उषा प्रियम्वदा के अनेक पात्र स्कॉलर शिप, रिसर्च फेलोशिप, असिस्टेंटशिप मिलने पर, तो कुछ जूनियर साइंटिस, साइंटिस, डॉक्टर, प्रोफेसर, इंजीनियर के रूप में, तो कुछ परिवार की आर्थिक सहायता के दम पर अमेरिका जाते हैं। कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो दहेज में मिले धन के माध्यम से अमेरिका जाने के लिए टिकटों का प्रबंध करते हैं। इस संदर्भ में 'स्वीकृति' कहानी की जपा की यह उक्ति विचारणीय है–''सत्य से शादी भी कितनी हबड़-तबड़ में हुई थी। सत्य पोस्ट-डॉक्टोरल फैलो होकर विदेश आ रहा था। पत्नी पढ़ी-लिखी हो, और दो टिकटों का प्रबंध दहेज में मिले धन से हो सके, उसकी केवल यही दो मांगें थीं। विवाह के बाद दो दिन भी चैन से न बिता सकी थी, तीसरे दिन से ही पासपोर्ट और वीजा के चक्कर में लग जाना पड़ा। जपा ने बिना किसी खेद के स्वदेश छोड़ दिया, न जाने किन सुखों की आशा में।''[2] विवाह जैसा पावन अनुष्ठान भी प्रवासी पीढ़ी की महत्वाकांक्षा का जरिया बन सकता है, यह कथन इसी का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। उषा प्रियंवदा ने यह भी दिखलाया है कि स्त्री संदर्भ में विवाह भी प्रवासी होने का एक जरिया बनता है, साथ ही प्रवासी जीवन के प्रति स्त्री पात्रों में आकर्षण भी देखने को मिलता है। 'शेषयात्रा', 'अंतर्वंशी', 'नदी' जैसे उपन्यासों और 'टूटे हुए', 'स्वीकृति', 'प्रतिध्वनियां', 'शून्य', 'ट्रिप', 'चांदनी में बर्फ पर' जैसी कहानियों में प्रवासी पुरुषों के साथ विवाह होने के कारण स्त्री पात्रों को प्रवासी होते हुए दिखाया गया है।

अमेरिका जाते समय प्रवासी पीढ़ी को रोमांच का अनुभव होता है, साथ ही वहां के जीवन के प्रति उत्सुकता और आकर्षण की भावना जन्म लेती है, पर नए परिवेश में खुद को एडजस्ट कर पाना आसान नहीं होता। प्रवासी जीवन व्यतीत करना हर भारतीय के लिए यातना भरा अनुभव है। इसे उषा प्रियम्वदा 'कल्चरल शॉक' कहती हैं। हर पल स्वयं को नए वातावरण में मिसफिट महसूस करना और साथ ही नए वातावरण के अनुरूप खुद को ढालना बहुत कठिन होता है। इसी मनःस्थिति को व्यक्त करता 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास के पात्र मनीष का मंतव्य विचारणीय है–''...जब हम अपना देश छोड़कर बाहर जाते हैं, तो पहले छह महीने हम एक 'कल्चरल शॉक' के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊंची दिखाई देती है।''[3] उषा प्रियंवदा के समस्त प्रवासी पात्र 'कल्चरल शॉक' के शिकार दिखाई पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति नए माहौल में खुद को अकेला, अवांछित और निरर्थक महसूस करता है। नए देश के प्रति उत्साह काफूर हो जाता है और जन्म लेती हैं मानसिक यंत्रणाएं। अपने परिवार से दूर अमेरिका में अकेले रहते हुए 'एक और विदाई' कहानी की नमिता यह महसूस करती है–''मेरे अंदर कुछ परायापन सा है। यहां कभी भी धरती में जड़ें डालकर उग नहीं सकूंगी–ऐसा हर समय लगता रहता है। और ऐसी ही लंबी अर्धमृत, अर्धजीवंत दशा में दिन बीतते रहते हैं।''[4] नमिता की तरह ही अन्य प्रवासी पात्र भी ऐसी ही मनःस्थिति के शिकार होते हैं। इस संदर्भ में ज्ञानेंद्र कुमार का विचार प्रासंगिक प्रतीत होता है-''विदेश जाकर बसने वाले लोग अपनी सभ्यता, संस्कृति, परंपराओं और नैतिक मूल्यों को भी साथ ले जाते हैं, साथ ही उन्हें दूसरे देश की संस्कृति से सामना भी होता है। प्रवासी लोग अपनी मूल संस्कृति से न टूटने और नवीन संस्कृति को पूर्ण रूप से न अपनाए जाने के कारण द्वंद्व का शिकार होते हैं।''[5] सभी उन्नत देशों की तरह अमेरिका भी एक महंगा देश है। स्कॉलरशिप, असिस्टेंटशिप या फैलोशिप के दम पर वहां जीवन यापन कर पाना आसान नहीं है। निम्न एवं निम्नमध्यवर्गीय परिवार की प्रवासी पीढ़ी को वहां आर्थिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। भारत के विद्यार्थियों को यह लगता है कि अमेरिकन विद्यार्थियों की जिंदगी बड़ी मौज-मस्ती और आनंद वाली होगी, पर यथास्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। नीना भी इसी सोच से ग्रस्त है। अमेरिका में विद्यार्थी जीवन बिता चुकी राधिका उसकी सोच का निराकरण करती हुई कहती है-''...वहां का विद्यार्थी जीवन भी आसान नहीं नीना जी, जहां कम ही मम्मी-डैडी कॉलेज की पढ़ाई का खर्च देते हैं। मैंने ही पूरे ढाई साल सुबह नौकरी की और शाम को पढ़ा। खाली समय लाइब्रेरी में बिताया, वहां मुफ्त फिल्म या टेलीविजन देखने का समय तो मुझे नहीं था।''[6] राधिका के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय माता-पिता की तरह अमेरिकन माता-पिता आजीवन अपने बच्चों की जिम्मेदारी का वहन नहीं करते। हर अमेरिकन विद्यार्थी को अपनी पढ़ाई का खर्च खुद

निकालना पड़ता है। इसीलिए वहां के विद्यार्थी पढ़ाई के साथ-साथ 'पार्ट टाइम' काम भी करते हैं। प्रवासी विद्यार्थियों को भी वहां पार्ट टाइम काम करके ही अपना खर्च निकालना पड़ता है। इसी यथास्थिति को व्यक्त करता 'शेषयात्रा' उपन्यास की अनुका का यह मंतव्य अवलोकनीय है–''प्रणव की बीवी और बड़ी लल्ली की बहू रेस्तरां में खाना पका रही है, पर तभी उसे याद आता है कि वह अकेली नहीं है, जस्टिस चौधरी की बेटी भी उसी जगह वेट्रेस है। उनका दामाद यहीं बावर्ची है।''[7] भारत में जिनकी सामाजिक हैसियत अच्छी है, धनाढ्य, और नामी-ग्रामी परिवारों के बच्चे भी अमेरिका में अध्ययन करने के दौरान बावर्ची और वेट्रेस का काम करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। भारत में ऐसा काम करना सामाजिक निंदा का विषय हो सकता है, पर घर से दूर अमेरिका में ऐसा काम करते हुए उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा आड़े नहीं आती। उषा प्रियम्वदा की 'ट्रिप' कहानी की सोनी और 'शून्य' कहानी की लता बेबी सिटिंग, 'अंतर्वंशी' की वाना डे केयर और अंजी दर्जी, 'मछलियां' कहानी की विजयलक्ष्मी लैब में, 'संबंध' कहानी की श्यामला फ्रीलांस में सभी स्त्री पात्र भी कोई न कोई पार्ट टाइम काम करते नजर आते हैं।

प्रवासी पीढ़ी की विडंबना यह है कि उसके जीवन संघर्ष से उसका घर-परिवार अनभिज्ञ होता है। प्रवासी पीढ़ी से उसके परिवार की कई उम्मीदें जुड़ी होती हैं और यह मान लिया जाता है कि अमेरिका या विकसित देशों में बच्चे बड़ी आरामदायक जिंदगी जी रहे हैं। ऐसे समय पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ उनके कंधे पर हमेशा महसूस होता है। 'टूटे हुए' कहानी का भास्कर अमेरिका में रहते हुए भी चुभन का अनुभव करते हुए कहता है–''मेरे मन में कुछ चुमने-सा लगा था। मेरी मजबूरियाँ यहाँ भी पीछा कर रही थीं। छात्रवृत्ति का आधा भाग घर भेज देता था, वहाँ माँ थी, गाँव में घर, विवाह-योग्य बहन, कॉलेज में पढ़ता भाई।''[8] पात्र भले ही अपने परिवार से दूर हो पर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियां से विमुख नहीं हो पाते। 'शून्य' कहानी के नायक को भी बहन के विवाह के खर्च की व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में वह बैंक से लोन लेता है। अपने माता-पिता को अपनी आर्थिक स्थिति नहीं बात पाता। अपने पिता की मृत्यु के समय भावुकतावश अपनी मां से यह कह बैठता है–''वहाँ की जिन्दगी, खास तौर से हम विद्यार्थियों की बेहद मुश्किल है। वहाँ कैनेडियन, अमरीकन, अंग्रेजों से कम्पिटीशन करना पड़ता है। पढ़ाई भी तो कैसी पढ़ाई! रात-रात भर कम्प्यूटर रूम में बैठे रहो-जाड़े में, गर्मी में मैंने एक प्रोफेसर के साथ काम किया, वह दूसरी यूनिवर्सिटी चला गया। दूसरे प्रोफेसर के साथ पटरी नहीं बैठी। साल-भर बर्बाद करके फिर पहले प्रोफेसर के पास पहुँचा, तो वहाँ असिस्टेंटशिप नहीं मिली। नौकरी भी की और पढ़ाई थी। एक वृद्धा के घर रहा। गर्मी में उसकी घास काटी, जाड़ों में बर्फ साफ की, कमरे के किराए के बदले अब जाकर थीसिस पूरी होने को आई है। पता नहीं नौकरी मिलेगी भी या नहीं...''[9] ऐसे संदर्भ प्रवासी विद्यार्थी जीवन के संघर्ष, पीड़ा, यंत्रणा का जीवंत दस्तावेज बन जाते हैं। ऐसे संदर्भ इस ओर इशारा करते हैं कि अपने देश से दूर रह रही हमारी युवा पीढ़ी अकेले नए परिवेश में आर्थिक ही नहीं, मानसिक पीड़ा की भी शिकार बनती है। उनके ऊपर हमेशा सफल होने का दबाव रहता है, पर सफल होना उतना आसान नहीं है क्योंकि उन्हें वैश्विक स्तर के विद्यार्थियों के साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती है। साथ ही साथ अपने परिवार वालों की आशाएं और उम्मीदें भी बोझ बन जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में वे अपनी असफलता को अपने माता-पिता से बांट नहीं पाते, बल्कि उसकी शर्मिंदगी और दबाव तले अपनी जिंदगी को विकृत कर लेते हैं। 'भया कबीर उदास' उपन्यास की लिली भी ऐसी स्थिति में घर लौटना नहीं चाहती–''वह बार-बार अपने से पूछती–क्या सफल होना ही जीवन का उद्देश्य है? इस अस्तित्ववादी दुविधा में फँसे-फँसे भी वह एक गहरे स्तर पर जानती है कि वह बिना पी-एच.डी. समाप्त किए भारत नहीं लौट सकती थी। जिस ठसक से वह भारतीय रिसर्च को तिलांजलि देकर विदेश चली आई थी, किस मुँह से वापस जाएगी...''[10] ऐसी स्थिति में वह केवल आर्थिक ही नहीं, मानसिक पीड़ा की शिकार भी होती है।

प्रवासी पीढ़ी के लिए काम करना जरूरत नहीं मजबूरी बन जाता है। 'शेषयात्रा' उपन्यास की सद्यप्रसूता नीरजा का कथन द्रष्टव्य है–''यह हुआ शनिवार को। मैंने शुक्रवार तक अपनी 'लैब' में काम किया। सिर्फ दो हफ्ते की छुट्टी ली और फिर काम पर वापस।''[11] नीरजा को मातृत्व के लिए भी कोई छुट्टी नहीं मिलती। वह गर्भावस्था में भी गर्भ के आखिरी दिन तक काम करती है। संतान को जन्म देने के दो सप्ताह के बाद ही उसे अपने काम पर वापस जाना पड़ता है, क्योंकि वहां प्रवासियों के लिए कोई सवैतनिक मैटरनिटी लिव का प्रावधान नहीं है। नीरजा का पति आलोक अभी पी-एच.डी. कर रहा था, इसीलिए घर की सारी आर्थिक जिम्मेदारी नीरजा पर ही थी। नीरजा के पास नौकरी छोड़ने का विकल्प भी नहीं था। इतना ही नहीं वहां प्रवासियों को रंगभेद का शिकार भी होना पड़ता है। 'भया कबीर उदास' की लिली यह मानती है–''स्कॉलरशिप, असिस्टेंटशिप, नौकरी, सभी में उसे उच्छिष्ट ही मिला, पहले सफेद पुरुष, फिर सफेद स्त्रियां, फिर अश्वेत पुरुष, टर्की, पाकिस्तान, नेपाल, आंध्रप्रदेश के बाद उसका नंबर। इस समुदाय में केवल एक भारतीय लड़की।''[12] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि अमेरिका में श्वेत-अश्वेत

नागरिकों में ही नहीं, बल्कि विदेशी नागरिकों में भी भेदभाव बरता जाता है। इस भेदभाव की वृत्ति के कारण योग्य भारतीय विद्यार्थियों को सम्मानजनक नौकरियां नहीं मिल पातीं। विडंबना तो यह है कि सिर्फ अन्य देशों के नागरिकों की तुलना में भारतीय नागरिक उपेक्षित नहीं रहते, बल्कि उत्तर भारतीयों की तुलना में दक्षिण भारतीय नागरिकों को अधिक महत्व दिया जाता है। उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय विद्यार्थियों में भी वैमनस्यता की भावना देखने को मिलती है। 'एक और विदाई' कहानी की कृष्णा द्वारा नमिता को ''स्लाइमी नॉर्थ इंडियन''[13] कहना इसी बात का प्रमाण है। उषा प्रियंवदा ने ऐसे मुद्दों को भी चिंतन का विषय बनाया है।

उषा प्रियंवदा ने न केवल भारतीय बल्कि बांग्लादेश, इजरायल, ऑस्ट्रिया, पाकिस्तान जैसे कई देश की प्रवासी पीढ़ी की जीवन स्थितियों और जीवन संघर्षों का सजीव चित्र उपस्थित किया है। 'एक और विदाई' कहानी की फ्रिदेरीके भी अपने देश ऑस्ट्रिया को याद करती है। उसे अमेरिका की संस्कृति पसंद नहीं है। वह अपने घर लौटना चाहती है, इसीलिए गर्मी की छुट्टियों में जब भोजनागार बंद रहता है, तब वह उपवास करती है, ताकि घर लौटने का किराया जमा कर पाए।[14] इसी तरह 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में राधिका की रूममेट यहूदी दोस्त भी मितव्ययी है, वह राधिका को प्रतिकूल परिस्थितियों में एडजस्ट करना सिखाती है-''राधिका जूडिथ नाम की एक यहूदी लड़की के साथ एक फ्लैट में रहती थी। जूडिथ से जो मितव्ययिता सीखी थी, वह अब काम आ रही थी। वह पूंजी, जो अपने आप संचित हो गई थी, उस पर राधिका एक वर्ष बिना कुछ किये काट सकती थी, यदि वह उसी सावधानी से काम ले। इसीलिए उसने अपने लिए एक भी नया वस्त्र नहीं खरीदा था।''[15] स्पष्ट होता है कि भारतीय ही नहीं बल्कि अन्य देशों की प्रवासी पीढ़ी भी एक ही हालात की शिकार होती है। बांग्लादेशी अंजी अपने पति के साथ बेहतर जीवन की उम्मीद में शिकागो आती है, पर उसका जीवन अंतहीन यातना में तब्दील हो जाता है-''यह ख्याल बार-बार आता है कि हम मियां-बीवी में कितना प्यार और मोहब्बत थी। ढाका से इस्लामाबाद, वहां से शिकागो। दुख-सुख के साथी, असलम को यहां आकर अमरीकी इम्तहान पास करने में कितनी दिक्कतें हुईं; टाइम ही नहीं मिलता था प्रिपेयर करने को। दिन में वीडियो स्टोर देखते थे, रात में टैक्सी चलाते थे।''[16] अंजी को यह महसूस होता है कि हम मियां-बीवी अपने देश बांग्लादेश में ही बहुत खुश थे। ऐसे कथन प्रवासी पीढ़ी के मोह भंग का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। उषा प्रियंवदा स्वयं एक प्रवासी पीढ़ी की प्रतिनिधि रचनाकार हैं। वे स्वयं इस अनुभव की साक्षी रही हैं। उनकी आत्म स्वीकृति द्रष्टव्य है-''मैंने बहुत बाद में गहराई से महसूस की कि भारत से दूर रह जाने का निर्णय गलत था; मैं उस निर्णय और उसे जन्मी परिस्थितियों को कभी पूर्ण रूप से आत्मसात ना कर सकी।''[17] इस कथन से हम सहज ही यह अनुमान लगा सकते हैं कि प्रवासी जीवन हमेशा सफल और सार्थक हो यह जरूरी नहीं है, कभी-कभी यह निरर्थक और बेमायने भी महसूस होता है।

नए देश में नई संस्कृति के तौर-तरीके और रंग-ढंग में खुद को ढालने में समय लगता है, पर एक बार उस रंग में रंग जाने पर प्रवासी पीढ़ी अपनी संस्कृति को धीरे-धीरे भूलने लगती है। 'वनवास' कहानी के श्रीवास्तव का कथन विवेचनीय है–''शर्म कैसी भाभी, सभी यही करते हैं। पहले साल तो कमरे में घुसा बैठा रहा, हिम्मत नहीं पड़ी, पर अब तो यह हाल है कि शुक्रवार की रात को अगर 'डेट' ना हो, तो आत्महत्या करने का विचार होने लगता है।''[18] ऐसा मंतव्य भले ही हमें चकित करे, पर साथ ही प्रवासी पीढ़ी की जीवन स्थितियों का जीवंत दस्तावेज भी प्रस्तुत करता है। प्रवासी पीढ़ी पाश्चात्य रंग में इस कदर रंग जाती है कि धीरे-धीरे न केवल अपनी संस्कृति से, बल्कि अपने घर-परिवार से भी दूर हो जाती है। 'चांदनी में बर्फ पर' कहानी का हेम भी अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध अमेरिकन स्त्री से विवाह कर अमेरिका में ही बस जाने का निर्णय लेता है। पर अपनी पत्नी के अमेरिकी आचरण के कारण नितांत अकेला, असहाय और निरर्थक महसूस करता है-''वह जानता था कि अन्य भारतीयों पर उसका इस बात का रोब है कि उसकी मीरा-सी पत्नी है, ठीक लेक के किनारे महंगा अपार्टमेंट हैं, नौकरी, प्रतिष्ठा, पर हेम के लिए यह जीवन कितना अलोना हो आया है। इसे शायद मीरा भी नहीं जानती। और प्रायः वे चेहरे आँखों के आगे उभरने लगे थे, जिनके बीच पलकर वह बड़ा हुआ था।''[19] सामाजिक प्रतिष्ठा के सारे उपकरणों से लैस होते हुए भी वह खुद को असफल महसूस करता है और ऐसी स्थिति में उसे अपने घर की याद आती है। वे सारे चेहरे उसकी आंखों के सामने उभरने लगते हैं, जिन्हें छोड़कर, नकारकर विदेश में रहने का निर्णय लेता है। 'सागर पार का संगीत' कहानी की देवयानी भी अपने भारतीय मंगेतर से संबंध-विच्छेद करके अमेरिकी प्रेमी से विवाह कर लेती है। अमेरिकी पति के प्यार के बीच भी वह खुद को एकाकी, खाली और अर्थहीन महसूस करती है। वह अकेले होने पर अचानक रोने लगती है, दीवार पर सिर पटकने लगती है, घर की चीज तोड़ने-फोड़ने लगती है। उसे यह महसूस होता है-''मैं औस्कर को बहुत-बहुत प्यार करती हूं, मैं बेहद भरी भी हूं फुलफिल और बेहद अकेली भी। कभी-कभी तो मैं इतनी अकेली हो जाती हूँ कि औस्कर, उसके मित्र, सभी बड़ी दूर लगने लगते हैं, जैसे मेरे चारों ओर एक शीशे की

दीवार आ खड़ी हुई हो।''[20] एक साथ आकर्षक और विकर्षण, लगाव और दुराव, मोह और मोहभंग की स्थिति प्रवासी संस्कृति में खुद को मिसफिट महसूस करने की अनुभूति से जन्मी है। वह भले ही अमेरिकन लड़के से प्रेम करती है, पर उसकी संस्कृति के साथ तालमेल बैठाने में असफल हो, इतनी अधिक मानसिक तनाव का शिकार होती है कि मनोरोगी हो जाती है। यही देवयानी जब श्री करतार सिंह द्वारा गुरुद्वारे में आमंत्रित की जाती है, तो खुद को जीवन से परिपूर्ण और आनंदित महसूस करती है। उसकी मनःस्थिति को व्यक्त करती ये पंक्तियां अवलोकनीय हैं-''...देवयानी रेलिंग से टिककर खड़ी हो जाती है और बहुत दिनों पहले के गीत की एक कड़ी होठों पर आ जाती है। देवयानी प्रसन्न है और अब औस्कर का ध्यान नहीं आता। गुरुद्वारे के बाहर जूतों और चप्पलों का ढेर है। अंदर से तबले, हारमोनियम की बड़ी परिचित आवाज आ रही है। देवयानी का तन-बदन सिहर उठता है।''[21] इन पंक्तियों के आलोक में हम यह कह सकते हैं कि हमारी परवरिश और हमारा संस्कार जिस सांस्कृतिक माहौल में हुआ है, उसी माहौल में हम स्वस्थ अस्तित्व के साथ फल-फूल सकते हैं, पर जब भी हम अपनी संस्कृति से कटते या काटे जाते हैं, तब हम आहत, घायल और बेचैन रहते हैं। देवयानी ही नहीं देवयानी जैसे समस्त पात्र जो अपनी संस्कृति से दूर होने का निर्णय ले तो लेते हैं, वे अंततः अपने अन्तर्मन से अपनी संस्कृति को निकाल नहीं पाते। ऐसी स्थिति संत्रास को जन्म देती है। इसी संदर्भ में मनोज श्रीवास्तव की यह पंक्तियां सटीक प्रतीत होती हैं-''...प्रवासी साहित्य ने हिंदी में मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक द्वंद्व का जो अनुभव दिया है, एक ही समय घर से दूर होने का दर्द और घर से दूर होने की जरूरत का–वह हमारी भाषा की एक बड़ी रचनात्मक पूंजी है।''[22]

'अंतर्वंशी' उपन्यास में छात्रवृत्ति समाप्त होने के बावजूद अवैधानिक रूप से अमेरिका में रह रहा सुबोध राय एक ऐसी अतिमहत्वाकांक्षी प्रवासी पीढ़ी का प्रतीक बन जाता है, जिसके लिए व्यक्तिगत उन्नति, स्वार्थ-सिद्धि और महत्वाकांक्षा इतनी महत्वपूर्ण है, जिसके लिए वह किसी भी रिश्ते के साथ विश्वासघात कर सकता है। अपनी पत्नी और परिवार को भारत में छोड़ कर वह अमेरिकन स्त्री से चुपचाप विवाह कर लेता है ताकि उसे अमेरिका की नागरिकता मिल पाए।[23] ऐसे व्यक्ति किसी भी देश के लिए शर्म और अपमान का विषय हो होते हैं। उषा प्रियंवदा ने ऐसे अवसरवादी, मक्कार प्रवासियों को भी अपनी रचना का विषय बनाया है, तो दूसरी तरफ 'अंतर्वंशी' उपन्यास में डॉक्टर सारिका जैसे पात्र भी नजर आते हैं, जो यह जानने के बाद कि उसका प्रेमी जहांगीर मल्लिक विवाहित है और अपनी पत्नी के होने के बावजूद अमेरिका में सारिका से विवाह कर साथ रहना चाहता है, तो वह उसके साथ संबंध-विच्छेद कर लेती है। सारिका के अनुसार ऐसा संबंध अनैतिक है। वह अपने सुख के लिए किसी विवाहिता स्त्री का अधिकार नहीं छीन सकती।[24] अमेरिकी संस्कृति में सामाजिकता का नितांत अभाव होता है। वहां का व्यक्ति व्यक्तिवादी और आत्मकेंद्रित होता है। मानवीय संबंधों और रिश्तों के प्रति भी उपयोगितापरक नजरिया हावी होता है। इसी कारण रिश्तों में भावुकता का नितांत अभाव होता है। वहां मादक और नशीले पदार्थों का भी खुलकर सेवन होता है, जिसका जिक्र हम 'ट्रिप' कहानी में पाते हैं। डिस्को, बार, पब, क्लब जैसे केंद्र युवाओं ही नहीं अधेड़ उम्र के लोगों के लिए भी आकर्षण का केंद्र होते हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों में भी कोई नैतिकता का प्रश्न खड़ा नहीं होता। विवाह पूर्व, विवाहेतर काम संबंध हो या लिव इन रिलेशन, किसी भी संदर्भ में प्रवासी पीढ़ी अमेरिकन से पीछे नहीं रहती। 'शेषयात्रा' उपन्यास का प्रणव विवाहेतर प्रेम संबंध के कारण अपनी पत्नी अनुका से संबंध विच्छेद कर लेता है। अमेरिका में रह रही अनुका ऐसी स्थिति में खुद को असहाय और अकेला महसूस करती है-''प्रणव को कोई समझाता क्यों नहीं? कोई जाकर समझदारी से बात करे तो शायद प्रणव लौट आए। मगर इंडिया होता तो क्या मामा लोग समझाते-बुझाते नहीं? जोर नहीं डालते? यहाँ तो कोई...''[25] अनुका अगर भारत में होती, तो प्रणव उसे अकेला छोड़नी की हिम्मत नहीं कर पाता। उसके परिवार वालों और समाज का दबाव प्रणव पर होता, पर अमेरिका का समाज सिर्फ सुख का साथी होता है। जब तक अनुका डॉक्टर प्रणव की पत्नी थी, तब तक उसकी कितनी सहेलियां थीं, जो हर सप्ताह बड़ी-बड़ी पार्टियों में शामिल होती थीं, पर आज जब अनुका अकेली है, तो उसे उसका साथ देने वाला, दुख बांटने वाला, ढांढस देने वाला कोई नजर नहीं आता। उसकी किटी पार्टी की सहेलियां एक-एक कर अपना पल्ला झाड़ लेती हैं। अनु यह दुख झेल नहीं पाती। वह पागल हो जाती है। उसे मेंटल एसाइलम में रखा जाता है। वहां अनु देखती है कि यह सिर्फ उसकी नहीं है, बल्कि एसाइलम में रह रही अधिकांश महिलाओं की कहानी है। ऐसी विपरीत परिस्थिति में उसकी बचपन की सहेली दिव्या उसका साथ देती है और उसे जीवन के प्रति प्रेरित करती है। लेखिका ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रवासी जीवन में आने वाली विपदा के समय भी अपने स्वदेशी लोग ही काम आते हैं।

प्रवासी पीढ़ी विदेश में चाहे जितना भी संघर्ष कर रही हो, पर वह नहीं चाहती कि भारतीय रिश्तेदार उसकी स्थिति से अवगत हों। वह भारत लौट कर अपनी संपन्नता और वैभव का झूठा प्रदर्शन करने में सुख का अनुभव करती है। 'अंतर्वंशी' उपन्यास की वाना का यह विचार

इसका ज्वलंत साक्ष्य प्रस्तुत करता है–''हर साल बनारस वापस जाये, आठ बड़े-बड़े सूटकेसों में खचाखच सामान ठूंसकर। ठीक है, भारत में सब मिलता है पर अपनी समृद्धि की नुमायश करने का भी एक सुख होता है।''[26] वाना अपने भारतीय रिश्तेदारों में संपन्नता का प्रदर्शन करना चाहती है, पर पति शिवेश की आर्थिक स्थिति उसके सपनों में बाधक बनती है। इसके रिश्तेदारों को लगता है कि ''चुनमुन (वाना के पुकार का नाम) बिटिया अमरीका में रानी बनकर रह रही है। वहाँ निरन्तर बिजली पानी चलता है। खाने की इफरात, चिट्ठी रसा तक गाड़ी पर चढ़कर डाक बाँटता है। दूध-दही के नदी-नाले, सड़कें सोने चाँदी से पटी हैं, डालों में फलफूल नहीं, पैसे फलते हैं, तभी न जो आता है टमाटर जैसे लाल गाल होते हैं, सामान का अन्त नहीं, ढेरों सूटकेस खुलते हैं, तो बर्तन, कपड़े, स्वेटर, घड़ियाँ, लाली, पाउडर, तमाम अल्लम-गल्लम।''[27] इसी कारण वाना यह सोचती है कि अगर वह खाली हाथ अपने देश लौटी, तो उसके रिश्तेदारों में उसकी कोई इज्जत नहीं रहेगी। अतः वाना अपने देश नहीं लौटने का निर्णय लेती है। वाना ही नहीं अधिकांश प्रवासी पीढ़ी ऐसे हाल में अपने देश नहीं लौटना चाहती। एक तरह अपनी असफलता का दबाव होता है, तो दूसरी ओर अपने रिश्तेदारों में स्वयं को सफल दिखाने का मोह, साथ ही विदेशी माहौल में उन्मुक्त जीवन-शैली का सुखद अहसास-कारण कुछ भी हो पर कोई भी प्रवासी अपने देश लौटना नहीं चाहता। प्रवासी पीढ़ी की ऐसी मनःस्थिति को व्यक्त करती हुई उषा प्रियंवदा लिखती हैं–''पढ़े लिखे लोग एम. ए. पी-एच. डी., डॉक्टर टैक्सियां चलाते हैं, बैंकर अफसर लोग सड़क पर फल बेचते हैं, भले घरों की पर्दानशीन औरतें बेट्रेसो का काम करती हैं। कोई नहीं जाता, झूठ सच्चे कारण यह सभी रहना चाहते हैं।''[28] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि प्रवासी पीढ़ी विदेशों में चाहे जितने भी संघर्ष करे, आर्थिक तंगी का सामना करते हुए निम्न स्तर का काम करने को विवश हो जाए पर अपने देश लौट कर स्वयं को असफल प्रमाणित करने को तैयार नहीं है। वह भारत में अपने परिजनों के इस सुखद भ्रम को बनाए रखना चाहती है कि वह सुखी और सफल है तथा उसके इसी सुख और सफलता के सपने भारतीय परिजन भी पालते लगते हैं एवं इस सुख की चाह में अपनी संतानों को प्रवासी बनाने के सपने देखने लगते हैं। अगर प्रवासी पीढ़ी अपने परिजनों से अपनी यथास्थिति की ईमानदार अभिव्यक्ति कर दे, तो शायद ही कोई माता-पिता अपनी संतानों को प्रवासी बनाने के सपने देखेना चाहेंगे।

निष्कर्ष : हम कह सकते हैं कि जब देश में ही गांव और कस्बे से नगर-महानगर और फिर विदेश गमन के रूप में युवा पीढ़ी का प्रवास अनिवार्य जीवनचर्या हो चुका हो, तब जरूरी हो जाता है कि समय-समाज के समक्ष प्रवास के यथार्थ को उदाहरण स्वरूप प्रेरक विषय बनाया जाए। बेहतर और विकसित जीवन-बोध का पर्याय बन चुका अमेरिका विश्व के अन्य अनेक देश के युवा समाज के लिए करियर की दृष्टि से आकर्षण का केंद्र है। अमेरिका प्रवास आज विकास की अनिवार्य शर्त बन चुका है, इसीलिए पारिवारिक रिश्ते, प्रेम, विवाह, सारे के सारे मानवीय संदर्भ इसके समक्ष अर्थ खो चुके हैं। ऐसे में उषा प्रियंवदा का संवेदन संसार युवा पीढ़ी के प्रवास मोह के संदर्भ में एक प्रमाणिक उदाहरण समान है। बेहतर भविष्य की कामना में एक ओर भारतीय मूल्य एवं संस्कृति-बोध की तिलांजलि युवा पीढ़ी की संघर्ष गाथा का प्रस्थान है, तो दूसरी ओर नियति स्वरूप 'ब्रेन ड्रेन' और 'कल्चरल शॉक' जैसा विडंबनात्मक परिणाम अत्यंत ही त्रासद दिशा-बोध है। जिन भारतीय मूल्यों की व्यर्थता को युवा पीढ़ी प्रतिक्षण महसूस करती है, वे प्रवास काल में स्मरण और गौरव का विषय बनकर रह जाते हैं। परिवार से दूर जरूरी परिवार-बोध के बावजूद अकेलेपन का दंश प्रवासी युवा पीढ़ी का नियतिपरक यथार्थ रचता है। विशेषकर करियर लोभ में परिघटित विद्यार्थी जीवन भारतीय माता-पिता के लिए चाहे कितना ही त्रासद क्यों ना हो, युवा पीढ़ी यथास्थिति के साथ समझौता करने को विवश रहती है। उषा प्रियंवदा ने प्रवासी पीढ़ी के संघर्ष के चरम बिंदुओं को उद्घाटित किया है। भौतिक समृद्धि के साथ बेहतर और सुखद भविष्य की कामना में भारतीय मूल्य व संस्कृति बोध से आत्मनिर्वासित प्रवासी पीढ़ी स्वयं को ठगा हुआ पाती है। स्थितप्रज्ञ-सा उनका जीवन भारतीय युवा पीढ़ी के लिए एक जरूरी सबक बन जाता है। इस कारण उषा प्रियंवदा के कथा संसार में प्रवास काल के दौरान परिघटित संघर्ष गाथा भारत जैसे विकासशील देशों की युवा पीढ़ी के लिए बेहद जरूरी विमर्शमूलक आयाम के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

संदर्भ

1. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ-172
2. संपूर्ण कहानियां, 'स्वीकृति', उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ-369
3. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, 11वां संस्करण-2015, पृष्ठ-102
4. बनवास, 'एक और विदाई', उषा प्रियंवदा, पेंगुइन बुक्स, प्रथम संस्करण-2009, पृष्ठ-107
5. 'प्रवासी जगत', प्रवासी साहित्य की अवधारणा, ज्ञानेंद्र कुमार, आषाढ़ भाद्रपद, 2077 / जुलाई सितंबर, 2020, पृष्ठ-110
6. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, 11वां संस्करण-2015, पृष्ठ-71

7. शेषयात्रा, उषा प्रियंवदा राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण-2014, पृष्ठ-85
8. संपूर्ण कहानियां, 'टूटे हुए', उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ-303
9. वही, 'शून्य', पृष्ठ-430
10. भया कबीर उदास, उषा प्रियम्वदा, राजकमल पेपरबैक्स, पहली आवृत्ति-2011, पृष्ठ-71
11. शेषयात्रा, उषा प्रियंवदा, राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण-2014, पृष्ठ-38
12. भया कबीर उदास, उषा प्रियम्वदा, राजकमल पेपरबैक्स, पहली आवृत्ति-2011, पृष्ठ-70
13. बनवास, 'एक और विदाई', उषा प्रियंवदा, पेंगुइन बुक्स, प्रथम संस्करण-2009, पृष्ठ-117
14. वही, पृष्ठ-110
15. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, 11वां संस्करण-2015, पृष्ठ-78
16. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ-127
17. संपूर्ण कहानियां, भूमिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, भूमिका, पृष्ठ-xv
18. बनवास, उषा प्रियंवदा, पेंगुइन बुक्स, प्रथम संस्करण-2009, पृष्ठ-131
19. संपूर्ण कहानियां, 'चांदनी में बर्फ पर', उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ-297
20. वही, 'सागर पार का संगीत', पृष्ठ-269
21. वही, पृष्ठ-270
22. अभिव्यक्ति, 4.4.2011, प्रवासी हिंदी साहित्य में परंपरा, जड़ें और देशभक्ति, मनोज श्रीवास्तव
23. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ-31-32
24. वही, पृष्ठ-76
25. शेषयात्रा, उषा प्रियंवदा, राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण-2014, पृष्ठ-82
26. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ-70
27. वही, पृष्ठ-67
28. वही, पृष्ठ-79

डॉ. पूनम सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कालीपद घोष तराई महाविद्यालय
बागडोगरा, दार्जिलिंग-734014 पश्चिम बंगाल
मोबाइल नं. - 8637325810
Email : poonamsingh2945@gmail.com

आदिवासी हिंदी कविता में जल, जंगल और जमीन के सवाल

–प्रफुल्ल कुमार रंजन
–डॉ. सपना भूषण

शोध सार

विस्थापन आदिवासी समाज की मुख्य समस्या रही हैं। भारत में ब्रिटिश हुकूमत के आगमन और औद्योगिक क्रांति के बाद यह समस्या बड़े स्तरों पर उभर कर सामने आई है। कल तक जो आदिवासी जंगल को अपना घर मानते थे आज वे विकास के नाम पर विस्थापन को मजबूर हैं। वैश्वीकरण ने आदिवासी समाज को केवल भौगोलिक स्तर पर ही विस्थापित नहीं किया है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और मानसिक स्तर पर भी विस्थापित किया है। आजादी के बाद से यह समस्या सांगठनिक और संस्थानिक तौर पर किया जाने लगा। प्रकृति के साथ सहजीविता और सहअस्तित्व की भावना से जीवन यापन करने वाला आदिवासी समाज एकांगी जीवन जीने को मजबूर होता चला गया। आदिवासी समाज ने गैर आदिवासी समाज से संघर्ष को दो स्तरों पर किया। एक हिंसात्मक रास्ता था दूसरा रचनात्मक रास्ता था। हिंसात्मक रास्ते के रूप में हम नक्सलबाड़ी आंदोलन को देख सकते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ लोगों ने हिंसा ही बजाय रचनात्मक रास्ता स्वीकार किया। उसी रचनात्मक रास्ते पर चलते हुए जो कविताएं आदिवासी समाज द्वारा की गई उसमे जल, जंगल और जमीन के सवाल को बहुत प्रमुखता के साथ उठाया गया। वाचिक परंपरा से निकली आदिवासी समाज को कविता में अपनी बात कहना बहुत सहज और सरल लगा। यही कारण है की आदिवासी साहित्य में सबसे अधिक प्रमुखता आदिवासी कविता को दी जाती है। आदिवासी हिंदी कविता में आदिवासी कवियों ने अपने समाज के विस्थापन, शोषण, क्रूरता, जंगलों के दोहन और प्रकृति संसाधनों के लूट को दर्ज किया। इस लूट को दुनिया के सामने लाया, विरोध किया और आदिवासी समाज का प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध को बताया।

मूल आलेख

एक साक्षात्कार में आदिवासी समाज को परिभाषित करते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं कि ''एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाला ऐसा जनसमूह जो अपने अनुभव से अर्जित ज्ञान, परंपरा, भाषा, संस्कृति पर भरोसा करते धरती, प्रकृति, मनुष्य का परस्पर सम्मान, संरक्षण, संवर्धन को प्राथमिकता देते, बंधुत्व भाव से समस्त प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत भर उपभोग करते हुए मुनाफा कमाने व सत्ता के शिखर पर रहने की अंधी इच्छा रक्खे बगैर, सहयोगपूर्ण सामूहिक जीवन जीते, भावी पीढ़ी के लिए भी सभ्यता, तकनीकी व विज्ञान की विनाशकारी आविष्कारों, प्रभावों से इस सुंदर पृथ्वी को संपूर्ण मानव जाति के लिए खुशहाल और शांतिमय रूप में बचाकर रखना चाहता है, वही आदिवासी समाज है।''[1]

यह परिभाषा मानव और प्रकृति के सहजीवी संबंधों को बहुत गहराई से रेखांकित करता है। विज्ञान और तकनीक का सहारा लेकर पनपा सभ्य पूंजीवादी समाज अपनी सामंती, लालची, मुनाफाखोर चकाचौंध, उपभोक्तावादी भोग विलास की अतृप्त आकांक्षा से समस्त धरती व प्रकृति के हर संसाधन को खोखला बनाने व लीलने के लिए उन्मत व पागल दिखता है। ऐसे में आदिवासी समाज मनुष्य को, धरती व प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करते हुए एकजुटता व सहजीविता के साथ जीवन यापन करने को प्रोत्साहित करता है। पूरा आदिवासी समाज एक खास तरह के जीवन दर्शन पर अपना जीवन संचालित करता है जिसके बारे में वंदना टेटे बताती हैं कि ''आदिवासी दर्शन प्रकृतिवादी है। आदिवासी समाज धरती, प्रकृति और सृष्टि के ज्ञात-अज्ञात निर्देश, अनुशासन और विधान को सर्वोच्च स्थान देता है। उसके दर्शन में सत्य असत्य, सुंदर असुंदर, मनुष्य अमनुष्य जैसी कोई अवधारणा नहीं है न ही वह मनुष्य को उसके बुद्धि विवेक अथवा मनुष्यता के कारण महान मानता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि सृष्टि में जो कुछ भी सजीव और निर्जीव है सब समान है। न कोई बड़ा है न कोई छोटा। न कोई दलित है न कोई ब्राह्मण। सब अर्थवान है एवं सबका अस्तित्व एक समान है। चाहे वह एक कीड़ा हो, पौधा हो, पत्थर हो या कि मनुष्य हो।''[2]

इस तरह आदिवासी दर्शन ने आदिवासी समाज के क्रियान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आदिवासी समाज की अपनी एक संस्कृति होती है जो किसी सत्ता, सेना और अपराधी व हत्यारे गिरोह से शासित नहीं होती है बल्कि प्रकृति से शासित होती है। आदिवासी समाज और आदिवासी दर्शन जिन मूल्यों पर खड़ा है वहां जल, जंगल और जमीन मुख्य भूमिका में है। औपनिवेशिक शासन से पहले आदिवासी समाज जंगलों में स्वछंदता पूर्वक जीवन यापन करता था। नए-नए कानूनों के माध्यम से आदिवासियों को उनकी जमीनों से बेदखल किया जाने लगा।

इसके संबंध में रमणिका गुप्ता लिखती है कि, ''ब्रिटिश शासन द्वारा 1793 में स्थायी बंदोबस्त के माध्यम से एक नए प्रकार की जमींदारी व्यवस्था आदिवासियों पर थोप दी गई। इस व्यवस्था के चलते जमीन सामूहिक संपति से एकाएक निजी संपति में तब्दील हो गई। 1793 में शुरू इस प्रकिया ने सामूहिकता पर आधारित आदिवासी जीवन पद्धति को झकझोर कर रख दिया। फलस्वरूप विद्रोह की भावना बढ़ी और आदिवासी हिंसात्मक विरोध के लिए बाध्य हुए 1832 में प्रसिद्ध कोल विद्रोह, सरदारी लड़ाई और 1857 के बाद 1895 में बिरसा मुंडा में विद्रोह का बिगुल फूंका और खुंटकट्टीदरों की जमीन और वन अधिकारों पर जमीदारी, ठेकेदारी और सरकार के अतिक्रमण के खिलाफ संग्राम शुरू कर दिया।''[3]

आदिवासी सदियों से जंगलों में रहते आए थे और जंगल के उत्पादों का इस्तेमाल अपने जीवन निर्वाह के लिए करते थे लेकिन नए शासकों ने उनके पूरे जीवन दर्शन व व्यवस्था को ही तहस-नहस कर दिया। दूसरी ओर अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए पूरे भारत वर्ष में स्वतंत्रता का संघर्ष चल रहा था। आदिवासियों को लगा अंग्रेज इस देश के साझे दुश्मन है जिसके फलस्वरूप आदिवासी समाज भी स्वतंत्रता की आग में कूद पड़ा। वे बाकी देशवासियों की तरह ब्रिटिश हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर चल पड़े। लेकिन वे इस बात से अनजान थे कि अंग्रेजों के बाद उनका क्या होगा? उनको लगा बाकी देशवासियों की तरह उनको भी आजादी मिलेगी और वे पुनः स्वतंत्रता पूर्वक अपने जंगलों में अपनी संस्कृति के साथ जीवन यापन कर सकेंगे। लेकिन वे गलत थे आने वाली कल की समस्याओं और संकटों से अनजान थे। रमणिका गुप्ता लिखती है कि ''आजादी के बाद भारतीय शासकों ने जंगल को एक मुनाफे की वस्तु बना दिया और सरकारी अधिकारियों, नेताओं और ठेकेदारों ने मिलकर बर्बरतापूर्वक उसे बर्बाद किया। बिहार झारखंड में सखुआ के जंगल कटकर सागवान और सफेदे के जंगल लगाने का जबरदस्त विरोध हुआ क्योंकि मिश्रित जंगल आदिवासी को रोजगार, पानी और वर्षा देते हैं।''[4]

आजादी के बाद जब चुनी हुई सरकारों के प्रतिनिधियों ने इनकी आवाज नहीं सुनी तो वे हिंसात्मक रास्ते की ओर चल पड़े। कुछ युवाओं ने हिंसा की जगह अपनी ऊर्जा अहिंसात्मक तरीके से प्रस्तुत किया। आदिवासियों ने अहिंसात्मक तरीके से अपनी जो बाते सरकारों व गैर आदिवासी समाज तक पहुंचने के लिए जो रचनात्मक कार्य किया वही आदिवासी साहित्य के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। हालांकि आदिवासी समाज सदियों से वाचिक व मौखिक परंपरा के माध्यम से जीवन जीता आया है। इसके सारे ऐतिहासिक प्रमाण उनके गीतों, तीज त्यौहारों के रूप में उपस्थित हैं।

आदिवासी साहित्य को रेखांकित करते हुये वंदना टेटे कहती है कि ''आदिवासी जीवन की परंपरा और समाज में साहित्य जैसी कोई रूढ श्रेणीगत परंपरा नहीं है। नैसर्गिक रूप से वाचिक रहा आदिवासी समाज एक ऐसी सत्ता रहित सभ्यता और संस्कृति का वाहक है जिसमें वायदे करार, दस्तावेजी प्रमाण आदि लिखित साहित्य की आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने एक ऐसी जीवन प्रणाली विकसित की जो लचीली है और जिसमे वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियां एक समान रूप से अपने अनुभवों को समसामयिक जरूरतों के मुताबिक जोड़ घटा सकती है। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर।''[5]

आदिवासी हिंदी कविता का विकास इसी मौखिक व वाचिक परंपरा के भीतर से हुआ है। वैसे तो आदिवासी कविता लेखन आजादी के पहले से होता रहा है लेकिन 1990 के बाद से यह काफी निरंतर हो गया है। बढ़ते औद्योगिकीकरण और पूंजीवादी समाज ने आदिवासियों के जंगलों पर अतिरिक्त दबाव बढ़ा दिया जिसने विस्थापन और सांस्कृतिक संकट पैदा कर दिया। जल, जंगल और जमीन से विस्थापित में जिन लोगों ने हिंसा का मार्ग न चुनकर अन्य मार्ग चुना उसमे कविता एक मजबूत माध्यम थी। हिंदी में पहली आदिवासी कवयित्री के रूप में सुशीला सामद को जाना जाता है। 1930-34 के दशक में उनकी दो कविता संग्रह प्रकाशित हुई। लेकिन 1990 के बाद बढ़ते पूंजीवादी दबाव के कारण आदिवासी कविता ने सक्रियता से अपनी उपस्थिति दर्ज की।

आदिवासी कविता के संदर्भ में गंगा सहाय मीणा लिखते हैं कि ''हिंदी आदिवासी कविता में पहला नाम सुशीला सामद का है लेकिन उसके बाद एक निरंतरता का अभाव दिखाई देता है। इस लिए समकालीन हिंदी आदिवासी कविता की शुरुआत हम रामदयाल मुंडा की कविताओं से मान सकते हैं, जिन्होंने मुंडारी के साथ हिंदी में भी कविताएं लिखी हैं। उनके बाद ग्रेस कुजूर, रोज केरकेट्टा,

हरिराम मीणा, ज्योति लकड़ा, अनुज लुगुन, जसिता केरकेट्टा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।''[6]

आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को एक हथियार की तरह प्रयोग किया है। रामदयाल मुंडा आदिवसियत के सबसे प्रमुख कवि हैं। उनकी कविता में आदिवासी दर्शन की छाप साफ तौर पर देखी जा सकती है। किस तरह नदियों, वनों और वन्य जीवों को खत्म किया जा रहा है इसका वर्णन वे अपनी एक कविता में करते हैं,

उसे बांधकर ले जा रहे थे
राजा के योद्धा
और नदी
छाती पीटकर रो रही थी
लौटा दो, लौटा दो
मुझे मेरा पानी,[7]

जब आदिवासियों के घर उजाड़े जाते हैं तो केवल आदिवासी ही नहीं रोता है बल्कि उसके साथ-साथ उसका पूरा परिवेश नदी, पहाड़, पेड़, पौधे, जीव जंतु सभी रो रहे होते हैं। आदिवासी जिन क्षेत्रों में रहते हैं उन क्षेत्रों को बहुत संगठित व पूर्वनियोजित तरीके से सरकारों ने बर्बाद कर दिया।

गैर आदिवासी दुनिया में आदिवासी कविता की जोरदार उपस्थिति इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में निर्मला पुतुल लेकर आती हैं। उनकी तीन कविता संग्रह प्रकाशित हैं। बेघर सपने, अपने घर की तलाश में और नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द। अपनी एक कविता में वे कहती हैं,

हमारे संसाधनों को हमसे छीनकर
विकास के ऊंचे शिखर तक पहुंचते हैं वे
जानती हूं, सब जानती हूं
क्षमा करना
नकारती हूं तुम्हारे इस विकास प्रस्ताव को
जो पटना, रांची, दिल्ली से बनाकर लाए हो
तुम हमारे लिए[8]

आदिवासी समाज को विकास के चुनावी जुमलों में उलझाकर उनकी जमीनों व संसाधनों का बेतहाशा दोहन किया जा रहा है। निर्मला पुतुल की कविताएं आदिवासी समस्याओं के साथ साथ स्त्री के पीड़ा को भी दर्ज करती है।

ग्रेस कुजूर उरांव समुदाय से आने वाली कुडुख भाषी कवयित्री हैं लेकिन उनकी कविताएं प्रायः हिंदी में ही छपती रही हैं। वह आदिवासियत के सरोकारों को बगैर किसी शोर और प्रोपेगेंडा के बहुत ही सरल अंदाज में रखती हैं। उनकी कविताओं में वन संपदा, पारंपरिक कल्चर व सहजीविता की भावना के साथ साथ जल, जंगल व जमीन से आत्मीय लगाव को दर्ज किया गया है। वे कहती हैं।

मेरा जूड़ा बहुत सूना लगता है
संगी सरहुल के फूलों बिना
लगता है कहीं अटक गया है।
किसी डाल पर 'करमा' के गीत
नहीं सुनाई पड़ता है अब[9]

ग्रेस कुजूर अपनी कविताओं में समाज, व्यवस्था और उससे उपजी विसंगतियों के कई कोने अंतरे को एक आदिवासी की निगाह से दर्ज करती है। इसलिए इनकी कविताओं को पढ़ना आदिवासियत की सांझी परंपरा को आत्मसात करना भी है।

आदिवासी कवियों में महादेव टोप्पो एक प्रमुख नाम है। उनकी कविता संग्रह ''जंगल पहाड़ के पाठ'' की काफी सराहना की गई है। आदिवासी समाज की मूल समस्याओं को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं-

अपने ही घरों में
अपने ही जंगलों पहाड़ों के सामाज्य में
शेर थे कभी हम
अब मेमने हुए जा रहे हैं[10]

आदिवासी कविता एक मिशन के तहत काम कर रही है। महादेव टोप्पो उसकी यात्रा के एक मजबूत सारथी हैं। रमणिका गुप्ता कहती हैं कि ''महाजन, दलाल, ठेकेदार, दिकू, राजा, नवाब या मैदानी लोग सब उसके जंगलों को और उसकी औरतों को लूटते रहे हैं। उसका रोजगार छीनते रहे हैं। विस्थापन उसकी जिंदगी का हिस्सा बन चुका है। आजादी के बाद देश के विकास का हर कार्यक्रम आदिवासी की कीमत पर हुआ है। विकास की कीमत वह अपने विस्थापन से अदा करता है।''[11]

महादेव टोप्पो की कविताओं में बदलते झारखंड की तस्वीर देखी जा सकती है। वे अपने समाज के इतिहास और संस्कृति को जानने, बचाने और समाज को जागरूक करने के लिए लिख रहे हैं।

कवि अनुज लुगुन ने भी आदिवासी कविता के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई है। उनकी कविता अघोषित उलगुलान आदिवासी कविता में रुचि लेने वालों की स्मृति का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी है। इसमें विकास के नाम पर आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन के लूट को उजागर करते हुए अनुज लुगुन कहते हैं कि

लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उलगुलान में
कट रहे है वृक्ष
माफियाओं के कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे हैं कंक्रीट के जंगल[12]

अनुज लुगुन विकास ही उस पूंजीवादी अवधारणा के

साथ आदिवासियों के रिश्ते पर बड़ी गंभीरता से लिखते हैं। वे साथ ही विकास की लूट में सहयोग कर रहे आदिवासी नेतृत्व पर भी सवाल उठाते हैं। विकास के नाम पर होने वाले विस्थापन और बाजारवाद के अनावश्यक प्रवेश ने उनको अपने जल, जंगल और जमीन के लिए बहुत अधिक सचेत किया है। किस तरह भूमंडलीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खातिर सरकारें संगठित रूप से जंगलों को खाली करा रही हैं और उन जंगलों में रहने वाले आदिवासी अनजान शहरों की ओर पलायन करने को मजबूर है। इसकी आहट अनुज लुगुन की कविता में है।

कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते देखा
उससे पहले नदी गई
अब खबर फैल रही है कि
मेरा गांव भी यहां से जाने वाला है
शहर में मेरे लोग तुमसे मिलेंगे
यहां से जाते हुए
मैंने उनकी आंखों में नमी देखी थी[13]

आदिवासी कविता के क्षेत्र में हाल के दिनों में चर्चा में रही कवयित्री जसिंता केरकेट्टा का कविता संग्रह ''ईश्वर और बाजार'' काफी सराहा गया। जसिंता ने आदिवासी समाज की मूल समस्या धर्म को रेखांकित किया है। जो ईश्वर और बाजार के रूप में सांस्कृतिक विस्थापन का कारण बनता जा रहा है। अपनी एक कविता ''क्या लौटा सकोगे'' में कहती हैं कि-

मेरे गांव में आज
क्यों दूर तक पसारा वह खालीपन है
कट गए है वह पेड़ पुराने और
फैली दूर तक वीरानी है
वह नदी प्यारी
सिमट रही जो रेत की गोद में[14]

भारत में आदिवासी जनसमूहों का विस्थापन व पलायन तो ऐसे सदियों पहले से ही जारी है परंतु इधर विकास के नाम पर बनाई गई नीतियों के कारण केवल अपनी जमीनों, जंगलों, संसाधनों व गावों से ही बेदखल नहीं हुए हैं बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन शैलियों, भाषाओं व संस्कृति से भी उनके विस्थापन की प्रक्रिया तेज हो गई है। इस विस्थापन में सरकारी हस्तक्षेप व नीतियों के साथ साथ तथाकथित मुख्य धारा के समाज द्वारा उनके संसाधनों पर कब्जा करके उन्हें बेदखल कर देना भी विस्थापन व पलायन का मुख्य कारण रहा है।[15]

आदिवासी कविता के संदर्भ में अनुज लुगुन कहते हैं कि मैं अपने जंगलों, पहाड़ों, दरख्तों और गिलहरियों को देखता हूं तो मुझे उनके चेहरे पर कई भ्रामक पहचान चिपकी हुई दिखाई देती है। इन सबने जंगल को जंगली होने का जो नकारात्मक अर्थ दिया है मेरी कविता उन सबका प्रत्युतर देने के लिए बेचैन रहती है। आज कविता की दुनिया में एक तरफ वैश्वीकरण का प्रतिरोध है तो दूसरी ओर वंचित अस्मिताओं का संघर्ष है। मेरा मानना है कि कोई भी अस्मिता बिना सहजीविता के संभव नहीं है। जो सहजीवी होगा वह स्वभावतः वंचित अस्मिताओं का पक्षधर होगा। आज के अस्मिता मूलक विमर्श में आदिवासी कविता का स्वर ऐसा स्वर है जो एक साथ नव सामाज्यवाद के विरुद्ध भी है और अस्मिता अस्तित्व के लिए भी संघर्षरत है।[16]

निष्कर्ष

आज आदिवासी उजाड़े जा रहे हैं। जल, जंगल और जमीन इन तीन महत्वपूर्ण अधिकारों से उनको वंचित किया जा रहा है। ये सब कुछ हो रहा है उनके विकास या उनकी स्थिति सुधारने के नाम पर। जिस धरती पर वे बसते हैं उसके गर्भ में खनिज है और ऊपर नदियां और जंगल हैं, जो पूंजीपतियों व सरकारों के लिए मुनाफे का सौदा है। यही कारण है कि आज आदिवासी क्षेत्र अपने ही देश में बड़े महानगरों के उपनिवेश बनकर रह गए हैं। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और मंगलौर की रौनक झारखंड, मध्यप्रदेश, बिहार, कर्नाटक, उड़ीसा जैसे राज्यों से सारी खनिज संपदा को सोखकर बनाई गई है। अपने समूह और समाज से जुड़कर, प्रकृति का साथी बनकर जीना उसकी जीवन शैली है। वह प्रकृति से संवाद करता चलता है। उसका सहयात्री है, उसको गाय की तरह पोसता और दुहता है। उसे कब्जे में लाने का कभी भी उसका लक्ष्य नहीं रहा। प्रकृति के प्रकोप को वह सहता है, सहता रहा है और रोकता भी रहा है। इसके मुकाबिल खड़ा भी होता है। पर सदैव उसका मित्र बना रहता है। प्रतिशोध की भावना से भरकर वह प्रकृति को कभी नष्ट नहीं करता है। वह उसे रिझाता है, मनाता है और केवल जीने भर, जरूरत भर उससे लेता है पर उसे बदले में देता भी है अपना प्यार, अपनी देखरेख और संवेदना।

संदर्भ

1. महादेव टोप्पो, आदिवासी विश्व चेतना, अनुजा बुक्स, शाहदरा दिल्ली 2022 पृष्ठ-184
2. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, नेशन प्रेस डॉटकॉम 2021, पृष्ठ-37
3. रमणिका गुप्ता, (संपादन) आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी दिल्ली, 2018 पृष्ठ-11
4. वही, पृष्ठ-12
5. वंदना टेटे, वाचिकता, आदिवासी दर्शन साहित्य और सौंदर्य बोध, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, जगतपुरी, दिल्ली 2020, पृष्ठ-27
6. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली 2019 पृष्ठ-49
7. रमणिका गुप्ता (संपादन), कलम को तीर होने दो, वाणी

प्रकाशन, नई दिल्ली 2015, पृष्ठ-32
8. निर्मला पुतुल, बेधर सपने, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा) 2014, पृष्ठ-42
9. वंदना टेटे, कवि मन जनी मन, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपुरी, नई दिल्ली 2019, पृष्ठ-61
10. रमणिका गुप्ता (संपादन) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन 2017, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ-50
11. वही, पृष्ठ-10
12. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली 2019, पृष्ठ-63
13. अनुज लुगुन, हिंदवी, ऑनलाइन प्लेटफार्म (कविता शहर के दोस्त के नाम पत्र)
14. वंदना टेटे, कवि मन जनी मन, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपुरी, नई दिल्ली 2019, पृष्ठ-219
15. रमणिका गुप्ता, (संपादन) आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली, 2018 पृष्ठ-7
16. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2018, पृष्ठ

प्रफुल्ल कुमार रंजन
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
वसंत कन्या महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
मोबाइल-8840110508
Email : prafullr804@gmail.com

डॉ. सपना भूषण
शोध निर्देशिका
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

प्राचीन भारतीय ग्रंथों के आलोक में हिन्दू विवाह

–प्रो. संजय कुमार सिंह
–सोनू कुमार भाटी

विवाह एक अत्यंत प्राचीन सामाजिक संस्था है, जिसके प्रारम्भ को किसी समय बिंदु से बाँधना कठिन प्रतीत होता है। प्रारंभिक शिकारी-संग्रहकर्ता समुदायों से वर्तमान सभ्य समाज तक विश्व के सभी समाजों में विवाह का अस्तित्व रहा है। विवाह की यही सर्वव्यापकता एवं सार्वभौमिकता इसके इतिहास को और जटिल बना देती है। विवाह का प्रथम दर्ज प्रमाण मेसोपोटामिया में लगभग 2350 ई.पू. में मिलता है। लगभग उसी समय मेसोपोटामिया के समकालीन रही हड़प्पा सभ्यता के लोथल और कालीबंगा जैसे स्थलों से मिली युगल समाधियों के पुरातात्विक स्रोत भी विवाह जैसी किसी संस्था के होने की और इशारा करते है। वैदिक काल के आते-आते विवाह का स्वरूप अधिक स्पष्ट होने लगता है, जो धर्म के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि विवाह व्यक्ति को गृहस्थ बनाकर देवताओं के लिए किए जाने वाले यज्ञों की योग्यता देता है। साथ ही देवताओं की स्तुति एवं धर्म के पालन में पति और पत्नी को एक दूसरे का सहायक माना गया हैं।[1]

विवाह मूलतः एक अनुष्ठान और एक औपचारिकता है, जो निश्चित रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसके माध्यम से एक व्यक्ति गृहस्थाश्रम में अपना जीवन शुरू करने में सक्षम होता है। विवाह का अर्थ मुख्य रूप से दुल्हन को दूल्हे के घर तक 'ले जाने' की रस्म से है। लेकिन यह शब्द लंबे समय से संपूर्ण विवाह समारोह पर लागू किया जाने लगा है।[2] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन विवाह संस्था को प्रेम की अभिव्यक्ति और विकास के लिए एक उपकरण के रूप में देखते हैं।[3] वहीं एडवर्ड वेस्टरमार्क का मानना है कि ''विवाह एक सामाजिक संस्था है जिसे एक या एक से अधिक पुरुषों के एक या एक से अधिक महिलाओं के साथ स्थापित संबंध के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसे रीति-रिवाज या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त हो तथा जिसमें अधिकार और कर्तव्य दोनों शामिल हैं।''[4] भारतीय संदर्भ में वेस्टरमार्क की परिभाषा की तुलना में मजूमदार एवं मदन का कहना उचित प्रतीत होता है कि ''विवाह एक सामाजिक स्वीकृति होती है जो प्रायः वैधानिक और धार्मिक कृत्य के रूप में होती है तथा जो दो विषमलिंगी मानवों को, पारस्परिक यौन संबंध तथा इससे संबंधित अन्य सामाजिक और आर्थिक संबंध स्थापित करने का अधिकार प्रदान करती है।''[5] सामान्य शब्दों में विवाह को एक ऐसी सामाजिक संस्था के रूप में परिभाषित किया गया है जो स्त्री और पुरुष के मध्य स्थापित यौन संबंधों को वैधता देते हुए उनके विभिन्न अधिकारों और कर्तव्यों जैसे धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक को मान्यता प्रदान करती है। हालाँकि विवाह के विभिन्न पक्षों की महत्ता को लेकर सभी समाजों के दृष्टिकोण में स्पष्ट अंतर नजर आता है। जहाँ पाश्चात्य मान्यताएँ विवाह में यौन संबंधों पर अधिक बल देती है वहीं दूसरी ओर भारतीय विचारकों ने धर्म को प्रथम स्थान दिया है। यही कारण है कि हिन्दू प्रारम्भ से ही किसी अन्य धर्म की तुलना में विवाह को अधिक महत्त्व देते आए हैं।

हिन्दू धार्मिक ग्रंथ मुख्यतः सोलह संस्कारों के होने की बात करते हैं। यह सोलह संस्कार मानव जीवन के विभिन्न पड़ावों को इंगित करते हैं। इनमें से एक विवाह है, जिसे अति महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया हैं। यहाँ तक कि विवाह की इच्छा रखने वाले का निरादर करना निस्तेज का कारण माना गया है।[6] विवाह के पश्चात ही मनुष्य गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता है। चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) में गृहस्थ आश्रम को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते हुए अन्य सभी आश्रमों को इस पर आश्रित माना गया है।[7] धार्मिक ग्रंथ विवाह के उद्देश्य, महत्त्व और आवश्यकताओं पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत करते हैं। महाभारत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'भार्या पुरुष का आधा अंग है। भार्या उसका सबसे उत्तम मित्र है। भार्या धर्म, अर्थ और काम का मूल है और संसार सागर से तरने की इच्छा रखने वाले पुरुषों के लिये भार्या ही प्रमुख साधन हैं। जिनके पत्नी है, वे ही यज्ञ आदि कर्म कर सकते हैं। पत्नी के साथ ही एक पुरुष सच्चा गृहस्थ हैं। पत्नी वाले पुरुष सुखी और प्रसन्न रहते हैं तथा जो पत्नी

से युक्त हैं, वे मानो लक्ष्मी से सम्पन्न हैं (क्योंकि पत्नी ही घर की लक्ष्मी है)।'[8] विवाह के माध्यम से मनुष्य अपने समस्त अपेक्षित कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है। धर्म का पालन, पुत्र की प्राप्ति एवं रति का सुख विवाह के प्रधान उद्देश्य माने गए हैं।[9]

वैदिक काल में धार्मिक कार्यों के अंतर्गत यज्ञों का विशेष महत्त्व था। मनुष्यों का देवताओं से सम्पर्क का साधन यज्ञों को माना गया था। सफल याज्ञिक अनुष्ठान के लिए विवाह एक अनिवार्य शर्त थी। तैत्तिरीय ब्राह्मण में उल्लिखित है कि पत्नी रहित व्यक्ति यज्ञ संपन्न करने का अधिकारी नही हैं।[10] विवाह का दूसरा मुख्य उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति बताया गया है। प्राचीन काल से ही मानव पुत्र की प्राप्ति की लालसा करता रहा है। पुत्र प्राप्ति की कामना न सिर्फ धार्मिक बल्कि व्यक्तिगत और पारिवारिक कारकों से भी जुड़ी हुई है। पिता के लिए पुत्र को आलोक तथा संसार सागर से पार करने की नौका कहा गया है। महाभारत में पुत्र को पुत् नामक नरक से पिता का त्राण करने वाला बताया गया है।[11] ग्रंथों में ऐसा भी वर्णन मिलता है कि इक्ष्वाकु वंश के प्रसिद्ध राजा भागीरथ ने गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाकर अपने साठ हजार पूर्वजों को मुक्ति दिलाई थी। भारतीय शास्त्रों में रति सुख अर्थात यौन इच्छाओं की संतुष्टि को विवाह के उद्देश्यों में धर्म के बाद स्थान दिया गया है। हालाँकि शास्त्र मानव की जैविक माँगों से भली भांति परिचित थे। वात्स्यायन द्वारा कामसूत्र जैसे ग्रंथ की रचना प्राचीन विचारकों की इस विषय पर गहरी समझ को दर्शाता है। पाश्चात्य संस्कृति ने विवाह को काम भावना को शांत करने का सुसभ्य साधन माना है। किंतु हिन्दू दर्शन काम को आवश्यक मानते हुए भी उसकी अधिकता का विरोध करता है। कौटिल्य का मत है कि धर्म और अर्थ से विरोध न रखने वाले काम का सेवन करना चाहिए।[12]

सामान्यतः सभी गृहसूत्रों का प्रारंभ विवाह संस्कार के साथ होता है। हालाँकि हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों एवं समुदायों में विवाह से जुड़े रीति-रिवाजों में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। 'संस्कारमयूख' नामक ग्रंथ में समाज मे प्रचलित वैवाहिक विधियों का वर्णन मिलता है। जैसे वाग्यदान (विवाह प्रस्ताव की स्वीकृति), मधुपर्क (वधू के घर जाने पर वर पक्ष का सत्कार सम्मान), गौरीहर पूजा, कन्यादान, कंकण बंधन, तिलककरण, मंगलसूत्र बंधन, वधूवरयोरूत्तरीय-प्रांत-बंधन (वर-वधू की चादरों के छोरों को बाँधना), अग्निस्थापन, पाणिग्रहण (वर द्वारा वधू का हाथ पकड़ना), अग्नि-परिणयन, सप्तपदी (विवाह के उद्देश्यों के लिए सात पग रखना; अन्न की कामना, शारीरिक मानसिक बल, धन, सुख, संतान, प्राकृतिक सहायता, पारस्परिक सहयोग) सिन्दूर दान, गृहप्रवेश आदि।[13] विवाह के अवसर पर वधू पक्ष द्वारा वर पक्ष को उपहार दिए जाने का वर्णन भी मिलता है। विद्वानों ने इसे दहेज का प्रारंभिक रूप माना हैं। परंतु प्रारंभ में यह उपहार माँग के बजाय प्रतीकात्मक आशीर्वाद ज्यादा दिखते हैं। यही कारण है कि प्राचीन धर्मशास्त्रों में स्त्रीधन[14] की तो चर्चा मिलती हैं परंतु दहेज की कोई स्पष्ट व्याख्या देखने को नहीं मिलती। फिर भी दहेज दिए जाने के प्रमाण बहुतायत में मिलते हैं। मगध नरेश बिम्बिसार को कोसल के शासक प्रसेनजित की बहन से विवाह करने पर काशी का एक गांव दहेज में दिया गया था।[15] यह भी सत्य है कि प्रारंभ में स्वेच्छा से दिए जाने वाले उपहारों से शुरू हुई इस प्रथा ने समय के साथ जड़ता ग्रहण कर ली हैं। जिसने वर्तमान में कन्या का विवाह बगैर दहेज के करना कठिन कर दिया है।

विष्णुपुराण में आठ प्रकार के विवाहों की चर्चा की गयी है यथा; ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।[16] स्मृतियों में इन प्रकारों को और विस्तारपूर्वक कहा गया है। ब्रह्म विवाह के अंतर्गत पिता अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर तलाश कर उससे अपनी बेटी का पाणिग्रहण करवाता है। इस विवाह में पिता विद्वान, आचारवान, स्वस्थ और अच्छे कुल के वर को अपने घर आमंत्रित करता है, और कन्या को वस्त्र आभूषण से सुसज्जित कर कन्यादान करता है। इस विवाह में वर वधू की सहमति पर अग्नि के समक्ष सात फेरे दिलाकर विवाह संपन्न कराया जाता था। सभी विवाहों में ब्रह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। देव विवाह के अन्तर्गत पिता किसी निर्धारित यज्ञ को सफलतापूर्वक संपन्न कराने वाले पुरोहित को, अपनी कन्या दान में दे देता था। विशेष रूप से देवताओं के लिए यज्ञ करने पर यह विवाह होता था। इसीलिए इसे देव विवाह कहा गया। इस विवाह में कन्या की पूर्ण सहमति होती थी। आर्ष विवाह में कोई ऋषि विवाह की इच्छा से कन्या के पिता को गाय और बैल या उनका जोड़ा दान में देता था, तो यह विवाह किया जाता था। यह गोदान कन्या के मूल्य के रूप में नहीं बल्कि धार्मिक कारण से गाय बैल दान में दिए जाने पर होता था। क्योंकि यह विवाह ऋषियों से संबंधित है, इसीलिए यह आर्ष विवाह कहलाता है। प्राजापत्य विवाह के अंतर्गत कन्या का पिता नवदंपति को आदेश देता था, कि तुम दोनों मिलकर आजीवन धर्माचरण करते हुए वैवाहिक जीवन व्यतीत करो।[17] इससे पूर्व एक विशेष पूजन भी किया जाता था। ऐसा माना जाता है, कि इस विवाह से उत्पन्न संतान अपनी पीढ़ियों को पवित्र करती है। असुर विवाह में कन्या के माता पिता वर से धन लेकर विवाह करते थे। असुर विवाह में कन्या का मूल्य प्राप्त किया जाता था, इसीलिए यह असुर विवाह कहलाया। इस विवाह में कन्या की इच्छा या अनिच्छा का कोई महत्त्व नहीं

होता था। गान्धर्व विवाह में लड़का और लड़की एक दूसरे के प्रेम में संबंध बना लेते थे। इसके बाद परिवार और माता पिता के आशीर्वाद से विवाह करते थे। इसीलिए इस विवाह को गान्धर्व नाम दिया गया। राक्षस विवाह को निम्न कोटि का विवाह माना जाता है। राक्षस विवाह में बलपूर्वक, छल कपट से, युद्ध में पराजित पक्ष की कन्याओं का अपहरण कर, उनसे इच्छा के विरुद्ध किया गया विवाह राक्षस विवाह कहलाता है। पैशाच विवाह को निकृष्टतम विवाह कहा जाता है। इसमें स्त्री की सहमति के बिना, धोखे से, बेहोशी की हालत में शारीरिक संबंध बनाने और दुष्कर्म करने के बाद विवाह किया जाता है।

संख्या के आधार पर दो प्रकार के विवाहों की जानकारी हमें मिलती है। पहला एकल विवाह जिसमें एक पुरुष की एक पत्नी और एक स्त्री का एक पति होता है। दूसरा बहुविवाह जिसमें एक पुरुष की एक से अधिक पत्नियां या एक स्त्री के एक से अधिक पति होते हैं। धर्मशास्त्रकारों में विवाह की संख्या को लेकर एकमत नजर नहीं आता। परंतु सामान्यतः हिन्दू धर्मग्रंथों में एकल विवाह को ही श्रेष्ठ माना गया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार यदि पत्नी धर्मों में श्रद्धा रखने वाली तथा पुत्र उत्पन्न करने में सक्षम हो तो दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए।[18] रामायण में पुरषोत्तम कहे जाने वाले राम स्वयं एक विवाह का पालन करते हुए दिखते हैं जबकि उनके पिता दसरथ की तीन रानियाँ थीं। इसी प्रकार महाभारत में बहुपत्नी और बहुपति दोनों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। किवदंतियां ये भी हैं कि श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियां थीं। इस प्रकार हमें एकल विवाह और बहुविवाह दोनों का ही प्रचलन तत्कालीन समाज मे नजर आता है।

विवाह संस्कार को सम्पन्न करने के लिए उच्च कुल के वर वधू के चुनाव पर बल दिया गया है। हालाँकि अनुलोम विवाह (उच्च कुल के पुरुष संग निम्न कुल की स्त्री) और प्रतिलोम विवाह (उच्च कुल की स्त्री संग निम्न कुल का पुरुष) का प्रचलन भी प्राचीन कालीन समाज में था। अनुलोम की तुलना में प्रतिलोम विवाह को समाज में हीन माना जाता था। स्मृतिकारों ने विवाह के लिए वर्जित वर-वधू की एक लंबी सूची दी है। वर की प्रमुख योग्यता में कुल, शील, वपु (शरीर) वय, विद्या, वित्त और साधन सम्पन्नता आदि शामिल थे। इसके साथ ही वर के पुंसत्व युक्त होने पर स्मृतिकारों ने सर्वाधिक बल दिया है। योग्यताओं के साथ-साथ नारद चौदह प्रकार के अयोग्य वरों का उल्लेख भी करते हैं- प्रव्रजित (संन्यस्त), लोकविद्विष्ठ, मित्रों तथा संबंधियों से परित्यक्त, विजातीय, क्षयरोगी, लिंगस्थ (गुप्तवेशधारी), उदरी (पेटू या बड़े पेटवाला), प्रमत्त (पागल), पतितकुष्ठी, सगोत्र, अंध-बधिर, अपस्मार रोगी आदि। वधू के गुणों में शील और सौंदर्य को विशेष महत्व दिया गया है। वहीं विष्णुपुराण में वर्जित वधू अर्थात ऐसी कन्या जो विवाह योग्य ना हो कि एक लंबी सूची दी गयी है।[19] हिन्दू धर्म में विवाह का एक पवित्र उद्देश्य संतान (विशेषतः पुत्र) की प्राप्ति को माना गया है। इस संदर्भ में पुरुष एवं स्त्री दोनों के लिए सन्तान उत्पन्न करने योग्य होना, विवाह की योग्यता का प्रथम आधार स्वीकार किया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि महिलाओं को बच्चे पैदा करने के उद्देश्य से और पुरुषों को प्रजनन के उद्देश्य से बनाया गया था। अन्य योग्यताओं के समान ही विवाह के लिए वर-वधू की आयु को भी आवश्यक मापदण्ड माना गया है। कोई स्पष्ट या एक समान आयु का वर्णन हमें ग्रंथों में नहीं मिलता। पुरुषों के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात विवाह की व्यवस्था का प्रावधान मिलता है जिसके आधार पर ये माना जा सकता है कि लगभग बीस से पच्चीस वर्ष की आयु वर्ग के पुरुष को विवाह के लिए उत्तम माना जाता रहा होगा। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के लिए विवाह योग आयु का बार-बार जिक्र मिलता है। कन्या के विवाह का वर्णन करते हुए कहा गया है कि शादी उसके मासिक धर्म के शुरू होने के तुरन्त बाद कर देनी चाहिए।[20] सामान्यतः मासिक धर्म के प्रारम्भ को ही विवाह के लिए आधार स्वीकार किया गया है परंतु ऐसा भी वर्णन मिलता है कि उत्तम वर मिलने पर कम आयु की कन्या का विवाह किया जा सकता है।[21]

प्रारम्भ से ही विवाह संस्कार को पूर्ण करने का दायित्व परिवार को सौंपा गया है। पुत्री के लिए उचित वर की तलाश पिता का पुनीत कर्तव्य बताया गया है। परंतु इस संबंध में कठोर नियमों का अभाव नजर आता है। यही कारण है कि धर्मशास्त्रकारों ने पिता द्वारा अपनी कन्या के लिए वर न चुने जाने की स्थिति में स्वयं अपना वर चुनने का अनुमोदन किया है।[22] वैदिक युग मे कन्या स्वयं अपने पति को चुन लेती थी। हिन्दू साहित्य में ऐसे अन्य उदाहरण मिलते हैं, जब वर ने वधू का और वधू ने वर का चुनाव स्वेच्छा से किया है। दुष्यंत एवं शकुंतला, सत्यवान एवं सावित्री, कृष्ण एवं रुक्मिणी, नल एवं दमयंती आदि के प्रेम विवाह की कहानियों भारतीय समाज में प्रचलित है। स्वयंवर भी एक ऐसा ही आयोजन था जिसके द्वारा विवाह योग्य कन्या स्वयं अपने वर का चुनाव करती थीं। रामायण में माता सीता, महाभारत में कुंती[23] और द्रौपदी के स्वयंवर का बड़ा ही मनोरम उल्लेख मिलता है। पूर्व-मध्यकालिन साहित्य पृथ्वी राजरासो में संयोगिता के स्वयंवर का उल्लेख जग जाहिर है।

हिन्दू समाज में विवाह को पुरुष और स्त्री के मध्य में एक पवित्र रिश्ता स्वीकार किया गया है। इस संबंध को न सिर्फ इस जन्म बल्कि सात जन्मों के संबंध के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे हमें आभास मिलता है कि

इस संबंध को तोड़ना इतना सरल नहीं है। यही कारण है कि धर्म-विचारकों ने किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही विवाह विच्छेद की अनुमति प्रदान की है। पति पत्नी में परस्पर द्वेष उत्पन्न हो जाने पर कौटिल्य ने संबंध विच्छेद की व्यवस्था की है।[24] वह आगे कहते हैं कि नीच, प्रवासी (परदेश में गए हुए) , राजद्रोह, घातक, जाति एवं धर्म से पतित और नपुंसक पति को स्त्री छोड़ सकती है।[25] पराशर ने निम्न पाँच प्रकार की विपत्तियों में पति के नष्ट, क्लीब (नपुंसक), प्रव्रजित (संन्यासी), पतित और मृत्यु हो जाने पर दूसरी पत्नी करने की अनुमति प्रदान की है।[26] वहीं पर यदि पत्नी संतान उत्पन्न करने में अक्षम हो, केवल कन्या उत्पन्न करनेवाली, हो या उसकी संतान उत्पन्न होकर मर जाती हो तो दूसरी पत्नी करने का पुरुष को अधिकार था। इन सभी कारणों के साथ व्यभिचार या दुष्चरित्र पुरुष एवं स्त्री दोनों के लिए सही नहीं माना गया है। ऐसा होने पर दोनों को अलग होने का अधिकार दिया गया है।

अंत में ये कहना गलत नहीं होगा कि भारतीय ग्रंथ हिन्दू विवाह की बहुआयामी छवि पेश करते हैं। ऋग्वेद की पवित्र ऋचाओं से लेकर मनुस्मृति की सूक्ष्म सामाजिक टिप्पणियों तक, ये ग्रंथ बदलते सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य के साथ विकसित होती विवाह संस्था की एक लंबी यात्रा को दर्शाते हैं। प्रारंभ से ही विवाह को एक पवित्र मिलन के रूप में चित्रित किया गया है, जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत संतुष्ट से परे वंश के संरक्षण सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति और आध्यात्मिक विकास की खोज तक फैला हुआ है। हालाँकि बाद के ग्रंथों में विवाह पद्धति पर पितृसत्तात्मक समाज के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता हैं, जिसमें लैंगिक असमानता, दहेज, बालविवाह एवं बहुविवाह जैसी जटिलताएँ शामिल हैं। परंतु हमें इन जटिलताओं का अध्ययन तत्कालीन समाज एवं काल विशेष के संदर्भ में ही करना होगा। सम्भव है कि वर्तमान समाज मे बुराई समझी जाने वाली ये प्रथाएँ तत्कालीन समाज की मांग रही हो। जैसे कि पूर्वमध्यकाल में बाल विवाह की अधिकता का कारण मुस्लिम आक्रांताओं से कन्याओं का बचाव रहा हो? बहुविवाह के प्रचलन का कारण भोग से अधिक राज्य की स्थिति को सुदृढ़ करना रहा हो? वही प्रारंभिक ग्रंथों में विवाह के लिए दहेज की किसी अनिवार्यता का न रखा जाना आदि। इस प्रकार के उदहारण हमें बताते हैं कि बाल विवाह, दहेज, बहुविवाह आदि का प्रारम्भ वर्तमान स्वरूप से काफी भिन्न रहा होगा। समय के साथ इन प्रथाओं ने रूढ़ता ग्रहण की जिससे इनमें बुराइयों का समावेश हुआ। हिन्दू विवाह की जटिलताओं से निपटने के लिए समकालीन समाज के विकसित मानदण्डों, आधुनिक मूल्यों और वास्तविकताओं के प्रति सजग रहते हुए प्राचीन ग्रंथों में निहित ज्ञान का उपयोग करना चाहिए। विवाह की गतिशील प्रकृति को पहचानकर और इसके आधार मूल्यों पर कायम रहते हुए, हम हिंदू विवाह की एक ऐसी विधि श्रृंखला का निर्माण कर सकते हैं जो परंपरा और आधुनिकता दोनों के साथ प्रतिध्वनित होती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित करती हैं।

संदर्भ

1. मनुस्मृति 9.96
2. प्रभु, पंढरीनाथ एच. हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन, बॉम्बेः पॉपुलर प्रकाशन, 1979, पृ. 149
3. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली. रिलिजन एंड सोसाइटी. लंदनः जॉर्ज एलन एंड अनविन लिमिटेड, 1947, पृ. 146-147
4. वेस्टरमार्क, एडवर्ड. दी फ्यूचर ऑफ मैरिज इन वेस्टर्न सिविलाइजेशन. नई दिल्लीः कॉस्मो पब्लिकेशन, 2008, पृ. 3
5. मिश्र, डॉ. जयशंकर. प्राचीन भारत का इतिहास. पटनाः बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2001, पृ. 306
6. विष्णुपुराण 5.38.38
7. मनुस्मृति 3.77
8. महाभारत का आदिपर्व 74.41-42
9. मनुस्मृति 9.28
10. तैत्तरीय ब्राह्मण 3.3.3.1
11. महाभारत, आदिपर्व 74.39
12. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.7 धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत।
13. मिश्र, डॉ. जयशंकर. प्राचीन भारत का इतिहास. पटनाः बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2001, पृ. 319-321
14. अर्थशास्त्र 3.2 वृत्तिराबध्यं वा स्त्रीधनम्
15. सिंह, उपिन्दर. प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास पाषाण काल से 12वीं शताब्दी तक. दिल्लीः पियरसन, 2021, पृ. 286
16. विष्णुपुराण 3.10.24, अर्थशास्त्र 3.2.2-9
17. अर्थशास्त्र 3.2.3
18. आपस्तम्ब धर्म सूत्र 2.5.12
19. विष्णुपुराण 3.10.16-23
20. गौतम धर्म सूत्र 18.20-23
21. मनुस्मृति 9.88
22. वही, 9.90-91
23. महाभारत का आदिपर्व 111.3-9
24. कौटिल्य अर्थशास्त्र 3.3 परस्पर द्वेषान्मोक्षः।
25. वही, 3.2.59
26. पराशर स्मृति 4.28-30

प्रो. संजय कुमार सिंह
शोध निर्देशक, इतिहास विभाग
एम. एम. एच. कॉलेज, गाजियाबाद
सोनू कुमार भाटी
शोधार्थी, इतिहास विभाग
एम. एम. एच. कॉलेज, गाजियाबाद

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में कक्षा में संचार माध्यम एवं तकनीकी की भूमिका का अध्ययन

–सुनील कुमार दूबे
–डॉ. रश्मि श्रीवास्तव

सारांश : वर्तमान समय में संचार एवं तकनीकी मनुष्य से दूर नही है इसलिए शिक्षा भी संचार एवं तकनीकी से दूर नही हो सकती है। विद्यालयों में गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने के लिए बुनियादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बदलाव आ रहा है जो संचार एवं तकनीकी के रूप में देखने को मिल रहा है इस वजह से अधिगम के लिए नए-नए ज्ञान का निर्माण हो रहा है। बदलते शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के नीति-निर्माताओं के साथ-साथ समग्र शिक्षा योजना के नीति-निर्माताओं ने ध्यान देते हुए विद्यार्थियों में अधिगम के प्रति रूचि उत्पन्न हो, इसके लिए कक्षा में तकनीक युक्त स्मार्ट बोर्ड, प्रोजेक्टर, हैंडहेल्ड कंप्यूटिंग डिवाइस, टेलीविजन, रेडियो, विद्यार्थियों के विकास के लिए कंप्यूटर लैब एवं अन्य प्रकार के शैक्षिक सॉफ्टवेयर एवं हार्डवेयर से जुड़ी नई तकनीकों को शामिल किया है जिससे यह पता चलेगा कि विद्यार्थी कक्षा में कैसे सीखते हैं क्या सीखते हैं। शिक्षा में संचार एवं तकनीकी विद्यार्थियों के साथ-साथ शिक्षकों को ज्ञान प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। प्रस्तुत शोध आलेख में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्ररिप्रेक्ष्य में कक्षा में संचार एवं तकनीकी किस प्रकार से विद्यार्थियों में बौद्धिक क्षमताएँ विकसित करेगी पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, समग्र शिक्षा योजना, संचार एवं तकनीकी।

प्रस्तावना : मनुष्य जीवन में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभव से बहुत कुछ सिखते हैं। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभव के स्रोतों से प्राप्त सूचना के आधार पर ही हम किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु या विचार के बारे में जानने या समझने का प्रयत्न करते हैं। सूचना रूपी ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात ज्ञान को व्यवस्थित रूप से नियंत्रित करने की प्रक्रिया को ही सूचना तकनीकी कहा जाता है। सूचना से प्राप्त ज्ञान को संप्रेषण की सहायता से हम अपने विचारों, मान्यताओं एवं जानकारियों को एक-दूसरो के साथ साँझा करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सूचना और संप्रेषण दोनों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान को ग्रहण करने तथा ज्ञान प्राप्ति के संप्रत्य को जानने तथा समझने हेतु सूचना एवं संचार की आवश्यकता रहती हैं। सूचना एवं संप्रेषण संबंधी कार्य में नवीनता एवं प्रशिक्षण के लिए समय-समय पर शिक्षकों को प्रशिक्षित करते रहना चाहिए जिससे कक्षा में अनुप्रयोग करने में सुविधा हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं समग्र शिक्षा योजना ने विद्यालय में इस प्रकार से सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी की व्यवस्था किया है कि तकनीक के माध्यम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया संचालित होने लगी है। सूचना एवं तकनीकी के माध्यम का उपयोग करके सूचना के संग्रहण, भंडारण, पुनः प्रस्तुतीकरण, उपयोग, स्थानांतरण, संश्लेषण एवं विश्लेषण, आत्मसातीकरण इत्यादि के विश्वसनीय एवं यथार्थ सम्पादन में सहायक सिद्ध हो रहे है जिससे शिक्षक, विद्यार्थी एवं उपयोगकर्ता अपने ज्ञान का निर्माण करते हुए कक्षा की समस्या का समाधान कर रहे है।

शैक्षिक पृष्ठभूमि : माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि अन्य देशों के विद्यालयों की भांति हमारे देश के विद्यालयों में भी शिक्षा संचार के प्रयोग को बढ़ावा देते हुए कुछ नवीन विधियों जैसे-फिल्म, फिल्म पट्टियां, प्रोजेक्टर, तथा रेडियो आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए (माध्यमिक शिक्षा आयोग,1952-53)। देश के अधिकांश प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में आधारभूत शिक्षण सामग्री का किसी भी प्रकार का प्रयोग नहीं किया जाता है। प्राथमिक विद्यालयों के साथ-साथ उच्च प्राथमिक विद्यालयों में फिल्म, रेडियो एवं टेप रिकॉर्डर इत्यादि का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाना चाहिए। रेडियो के माध्यम से पाठ्यक्रम के पाठों का विधिवत एकीकरण एवं समन्वय करके

कक्षा-कक्ष अधिगम प्रक्रिया में शामिल करना चाहिए (भारतीय शिक्षा आयोग, 1964-66)। औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन करके विद्यालय में शैक्षिक परिस्थितियों का वातावरण बनाकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को संचालित करें तो यह प्रक्रिया प्रभावशाली होगी इस प्रकार की प्रक्रिया शिक्षा एवं संप्रेषण तकनीकी के प्रयोग का एक उत्तम साधन होगा (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986)। आज शिक्षा में जनसंचार माध्यमों का प्रयोग कक्षाओं में अधिक से अधिक किया जा रहा है। इस वजह से आजकल देश में हार्डवेयर तथा शैक्षिक सॉफ्टवेयर के उपयोग में उतरोत्तर वृद्धि हो रही है। शैक्षिक सॉफ्टवेयर के अंतर्गत विद्यार्थियों के शैक्षिक व्यवहार में परिमार्जन एवं वांछनीय परिवर्तन लाए जा रहे हैं। हार्डवेयर उपागम के अंतर्गत दूरदर्शन, वी.सी.आर, टेप रिकॉर्डर, फिल्म प्रोजेक्टर तथा ओवरहेड प्रोजेक्टर इत्यादि वैज्ञानिक एवं प्रक्षेपी यंत्रों का प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किया जाता है। शिक्षण प्रक्रिया के अनुदेशन की इस गतिविधि को कंप्यूटर के उपयोग द्वारा पूर्णरूप से परिवर्तित किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के अंतर्गत समय-समय पर अध्यापकों के तकनीकी रूप से प्रशिक्षण के लिए अथक प्रयास किया जा रहा है (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020)। कक्षा-कक्ष की प्रक्रिया में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करके राष्ट्रीय प्रगति के लिए शिक्षक एवं विद्यार्थी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं जिससे देश की आर्थिक विकास के साथ-साथ विद्यार्थी आत्मनिर्भर बन सके। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए समग्र शिक्षा योजना दो 'T' शिक्षक और प्रौद्योगिकी को एकीकृत करके पूर्व-विद्यालय, प्राथमिक विद्यालय, उच्च प्राथमिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय एवं माध्यमिक विद्यालय स्तर से एक सुचारु परिवर्तन के रूप में है (समग्र शिक्षा योजना, 2018)।

विद्यालय में संचार एवं तकनीकी की आवश्यकताः

- विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय से सम्बंधित विभिन्न प्रकार की शैक्षिक प्रमाणिक एवं अद्यतन सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए।
- कक्षा-कक्ष में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सरल, सुगम, रूचिकर एवं बोधपूर्ण बनाने के लिए।
- पाठ्यचर्या से सम्बन्धित पाठ्य-सामग्री को विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता के अनुरूप विकसित करने के साथ-साथ अध्यापन प्रक्रिया में शामिल करने के लिए।
- औपचारिक, निरौपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा अभिकरणों को रुचिपूर्ण, ग्रहणशील एवं प्रभावशाली बनाने के लिए।
- दूरस्थ शिक्षा को अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली बनाने के लिए।
- देश के साथ-साथ प्रत्येक राज्य के दूरस्थ व दुर्गम क्षेत्र तक संचार एवं तकनीकी की सहायता से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए।
- शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक सूचनाओं के अदान-प्रदान एवं शोध से सम्बन्धित आंकड़ों के संकलन के लिए।
- शिक्षा के क्षेत्र में नई तकनीकी एवं नये शिक्षण कौशल के माध्यमों को विकसित करना जिससे अधिकतम विद्यार्थियों को इसका लाभ मिल सके।

शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता का अध्ययनः

सूचना संवाहनः सूचना रूपी ज्ञान का महत्व तब बढ़ जाता है जब वह सूचना रूपी ज्ञान उचित समय पर, उचित व्यक्ति के पास पहुँच जाए। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने अध्यापन प्रक्रिया में विद्यार्थियों को सूचना रूपी ज्ञान एवं कक्षा-कक्ष की प्रक्रिया में संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग से समय पर ज्ञान प्रदान करते हुए सूचना संवहन तंत्र को सुलभ कर दिया है।

शैक्षिक नीति निर्धारणः शैक्षिक नीतियों के निर्धारण के साथ-साथ वर्तमान समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इस प्रकार से भविष्य के लिए आधारशिला बनायें कि भविष्य में संचार एवं प्रौद्योगिकी की क्या उपयोगिता शिक्षा में होगी इसके साथ ही शिक्षा के किन-किन उपागमों को कहाँ तक प्रभावित करेगी। शैक्षिक नीतियों का सृजन इस प्रकार से किया जाये कि विकसित देशों के साथ विकासशील देश मिलकर अपना शैक्षिक विकास कर सके। वर्तमान समय में पूरा संसार संचार की सहायता से एक गांव की तरह हो गये हैं जिससे सभी व्यक्तियों की समान पहुँच हो गयी है इस अवधारणा को ध्यान में रखकर शैक्षिक नीतियों को बनाना चाहिए जिससे उपलब्ध संसाधनों का उपयोग किया जा सके।

दूरस्थ शिक्षा प्रणालीः दूरस्थ शिक्षा के शैक्षिक प्रणाली को व्यापक रूप से संचालन के लिए सूचना एवं संचार तकनीकी की आवश्यकता पड़ती है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के परस्पर सहयोग के साथ सामंजस्य स्थापित करने से दूरस्थ शिक्षा की प्रविधियां जैसे-शिक्षण सामग्री, कॉन्फ्रेंसिंग, कंप्यूटर ज्ञान, रिकार्डिंग एवं विडियो इत्यादि के प्रयोग से दूरस्थ शिक्षा की शैक्षिक क्रियाविधि की स्थिरता को प्रदान किया जा सकता है।

परीक्षा मूल्यांकनः कक्षा-कक्ष शिक्षण के उपरांत विद्यार्थियों के आकलन के लिए लिखित परीक्षा एवं मूल्यांकन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग से व्यापक परिवर्तन हुआ है। विद्यार्थियों के परीक्षा के लिए परंपरागत आवेदन पत्रों की जगह ऑनलाइन फार्म भरवाया जा रहे हैं एवं उत्तर पुस्तिकाओं कंप्यूटर की सहायता से जांच करने

के उपरांत परीक्षा परिणामों को घोषित करते हैं जिससे विद्यार्थियों के आकलन की गुणवत्ता के साथ गोपनीयता बनी रहती है।

शैक्षिक प्रशासनः वर्तमान परिस्थितियों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से शिक्षकों की उपस्थिति फिंगरप्रिंट के माध्यम से लिया जा सकता है साथ ही सुदूरवर्ती जगहों पर इन्टरनेट की सहायता से आसानी से विद्यालयों में शैक्षिक सुधार के सुझाव दिया जा सकता है।

पाठ्यक्रम निर्माणः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में संचालित पाठ्यक्रम के निर्माण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को शामिल करने से विद्यार्थियों में सीखने के प्रति उत्साह उत्पन्न होगा साथ ही पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार से किया जाए कि शिक्षक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में शामिल करके पढ़ायें।

अभिलेखीकरण शिक्षाः विद्यालय में अभिलेखों को सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से संग्रहित किया जा सकता है साथ ही साथ विद्यालय अपने प्रत्येक विद्यार्थियों के शैक्षिक अभिलेखों को कंप्यूटर की सहायता से अलग-अलग बना कर संग्रहित कर सकते हैं इससे समय के साथ वित्त की बचत होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं समग्र शिक्षा योजना के परिप्रेक्ष्य में संचार एवं तकनीकी की भूमिकाः

शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोगः आज के समय में शिक्षक, विद्यार्थी तथा पाठ्यक्रम के अतिरिक्त शिक्षा से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करके अपने ज्ञान का विकास कर रहा है। शिक्षक अधिगम प्रक्रिया में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावी बनाने के साथ-साथ स्वयं विषय से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त कर रहा है। शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता धीरे-धीरे इस कदर बढ़ रही है कि मानव के समक्ष सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से किसी भी विषय पर विचार प्रस्तुत किया जा सकता है।

ऑनलाइन शिक्षा के लिए पायलट अध्ययनः शिक्षा में ऑनलाइन कमियों को कम करने के लिए विद्यार्थियों को ऑनलाइन उपकरणों के अभ्यास के लिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्रतिदिन एक घंटे तकनीकी अभ्यास की कक्षा निर्धारित किया जा रहा है जिससे विद्यार्थी ऑनलाइन कक्षा-कक्ष की प्रक्रिया में संलग्नता के साथ प्रतिभाग करके शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बना रहा है। संबंधित विषयों के पाठ्यक्रम के प्रकरण को आनंदित बनाने के लिए लगातार एनईटीएफ, सीआईईटी, एनआईओएस, इग्नू, आईआईटी इत्यादि जैसी उपयुक्त एजेंसियों के माध्यम से पायलट अध्ययन करते हुए निरंतर सुधार किया जा रहा है।

डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चरः समग्र शिक्षा योजना एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक साथ मिलकर विद्यालय में डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का निर्माण इस प्रकार से कर रहे हैं कि शिक्षक के अभाव में भी कक्षा-कक्ष का संचालन सुचारू रूप से चलता रहे इसके लिए प्रत्येक विद्यालय में कंप्यूटर, टेलीविजन, प्रोजेक्टर के साथ इंटरनेट को इस प्रकार से लगाया जा रहा है कि शिक्षक एवं विद्यार्थी एक साथ तकनीकी का उपयोग कर सके।

ऑनलाइन शिक्षण, मंच एवं उपकरणः कोविड-19 महामारी के समय विद्यालयों में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया संचालित नहीं हो रही थी जिससे विद्यार्थियों के अधिगम प्रभावित हो रहे थे। विद्यालय में कंप्यूटर, टेलीविजन, प्रोजेक्टर के साथ इंटरनेट कोविड-19 से पहले विद्यालय में होते एवं शिक्षक एवं विद्यार्थी तकनीकी रूप से सक्षम होते तो ऑनलाइन कक्षाओं को संचालन होता तो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावित नहीं होते। अब वर्तमान समय में विद्यालयों में ऑनलाइन कक्षा-कक्ष का संचालन गूगल मीट, जूम के साथ हो रहा है इससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी संलग्न हो रहे हैं। शिक्षक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शामिल विद्यार्थियों की कक्षा-कक्ष मूल्यांकन के साथ-साथ पाठ्य सहगामी क्रियाओं की निगरानी के लिए समय-समय पर तकनीकी सामग्री का निर्माण किया जा रहा है। इसके साथ ही शिक्षक आनलाइन प्लेटफार्मों जैसे- स्वयं, दीक्षा से प्रशिक्षण प्राप्त करके विद्यार्थियों का सतत् मूल्यांकन कर रहे हैं।

सामग्री निर्माणः विद्यालय में विद्यार्थियों को मनोरंजनयुक्त शिक्षा के लिए समग्र शिक्षा योजना एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मिलकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में उपयोग सामग्री का निर्माण विद्यार्थियों के दैनिक जीवन को ध्यान में रखकर कर रहे हैं। विद्यालय के पाठ्यक्रम निर्माण के समय भारतीय कला और संस्कृति का एकीकरण करके तकनीक सामग्री के रूप में बनाया जा रहा है जिससे विद्यार्थियों में आभासी संज्ञानात्मकता एवं संवेदनशील का विकास हो।

वर्चुअल लैब्सः शिक्षकों और विद्यार्थियों को डिजिटल जानकारी पर्याप्त रूप से देने के लिए दीक्षा, स्वयं और स्वयं प्रभा जैसे ई लर्निंग प्लेटफॉर्म का उपयोग की संभावना पर विचार किया जा रहा है जिससे विद्यार्थी और शिक्षक वीडियो को आसानी से देख कर वर्चुअल रूप से सीख सके। इस प्राविधि से सभी विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण, व्यावहारिक और प्रयोग आधारित अनुभव का समान अवसर प्राप्त होगा।

शिक्षकों के लिए प्रशिक्षणः शिक्षकों को तकनीक शिक्षण का प्रशिक्षण इस प्रकार से दिया जायेगा कि

कक्षा-कक्ष में शिक्षक विद्यार्थियों को ध्यान में रखते हुए तकनीकी रूप से शिक्षण करेंगे। इस प्रकार से शिक्षकों के द्वारा कक्षा-कक्ष में शिक्षण करने से विद्यार्थियों में स्वयं ज्ञान के सृजन की कला का विकास होगा।

सारांशः

विद्यालय के शैक्षिक वातावरण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाया जा रहा है जिससे विद्यार्थियों द्वारा स्वयं के अध्ययन और शिक्षकों के द्वारा कक्षा-कक्ष में शिक्षण के साथ-साथ प्रशिक्षण में सहायता मिल रहा है। वर्तमान समय में शैक्षिक तकनीकी की क्रिया-कलापों में अभूतपूर्व परिवर्तन किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं समग्र शिक्षा योजना एक साथ मिलकर विद्यालय में विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास के समान अवसर प्रदान कर रहे हैं। इससे विद्यार्थी स्वयं अपने लक्ष्य का चयन स्वतंत्रतापूर्वक कर रहे हैं। विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित के साथ-साथ कक्षा-कक्ष की समस्याओं को शिक्षकों के द्वारा समझते हुए तर्क पूर्वक और शैक्षिक तकनीकी जैसे- प्रोजेक्टर, कंप्यूटर, इन्टरनेट, गूगल मीट, यूट्यूब, टेलीविजन के साथ नवीनतम शिक्षण प्रविधियों एवं तकनीकी का प्रयोग करते हुए समस्याओं का समाधान किया जा रहा है। इस प्रकार के शैक्षिक क्रिया-कलाप से शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में मित्रतापूर्वक सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। शिक्षक इस प्रकार से तकनीकी गतिविधि संचालित कर रहे हैं कि विद्यार्थियों में स्वयं सीखने के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो रहा है।

सन्दर्भ

1. जौहरी, बी. पी. और पाठक, पी. डी., (2011). भारतीय शिक्षा का इतिहास, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
2. त्यागी, जी. डी., (2014). भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
3. त्यागी, जी. (2018). समुदाय एवं प्रारम्भिक शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.
4. सिंह, के. (2008). भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर-खीरी.
5. सारस्वत, एम. एवं गौतम, एस. एल., (2003). भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएँ, आलोक प्रकाशन, लखनऊ.
6. पाराशर, एम. और सिंह, डी., (2013). शिक्षाशास्त्रः भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं विकास, एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन्स, आगरा.
7. श्रीवास्तव, एन. एवं वर्मा, ए., (2016). समसामयिक भारत एवं शिक्षाः चिंताएँ एवं मुद्दे, राखी पब्लिकेशन्स, आगरा.
8. एन.सी.ई.आर.टी. (2009). पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधारः राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र. नई दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
9. मदान, पी., (2013). भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास तथा समस्याएँ, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा.
10. पाठक, पी. डी. और श्रीवास्तव, डी. एस., (2013). भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.
11. मदान, पी. एवं गर्ग, एस. (2016). भारत में शिक्षाः स्थिति, समस्याएँ एवं मुद्दे. अग्रवाल पब्लिकेशन.
12. शर्मा, आर. ए. (2005), भावी शिक्षकों हेतु आधारभूत कार्यक्रम. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.
13. शर्मा, आर. ए. (2005), पाठ्यक्रम, शिक्षणकला तथा मूल्यांकन. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.
14. लाल, आर. बी. और पलोड़, एस., (2013). भारतीय शिक्षा का विकास, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.
15. गुप्ता, एस. पी., (2012). भारतीय शिक्षा का ताना बाना, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.
16. गुप्ता, एस. पी., (2013). भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद.
17. राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा, (2005). राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2005. नई दिल्ली.
18. भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति. मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार, नयी दिल्ली
19. भारत सरकार. (2017). समग्र शिक्षा योजना उद्धरित. https://www.samagra-shiksha-abhiyan-portal-mhrd/

सुनील कुमार दूबे
शोध छात्र
शैक्षिक अध्ययन विभाग,
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
पूर्वी चंपारण, बिहार
Email- sunil333dubey@gmail.com
Mobile : 9452601052

डॉ. रश्मि श्रीवास्तव
सहायक आचार्या
शैक्षिक अध्ययन विभाग,
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
पूर्वी चंपारण, बिहार
Email- rashmisrivastava@mgcub.ac.in
Mobile : 7355954640

नारी शक्ति वंदन अधिनियम : महिला सशक्तिकरण की ओर एक कदम

–रिचा सेंगर
–डॉ. ज्योति सिंह

शोध सारांश

भारत की आबादी लगभग 140 करोड़ है जिसमें 50 प्रतिशत भागीदारी महिलाओं की है। आबादी का लगभग आधा हिस्सा होने के बावजूद भी राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं का प्रतिनिधित्व संतोषजनक नहीं है। आजादी के पिछले 76 वर्षों में लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 10 प्रतिशत तक भी नहीं बढ़ा है। भारतीय निर्वाचन आयोग के अनुसार अक्टूबर 2021 तक महिलाएं संसद के कुल सदस्यों के 10.5 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व कर रही थीं तथा विधानसभाओं में तो महिला सदस्यों की स्थिति और बद्तर है। संसद के नए भवन में प्रवेश के लिए बुलाए गए विशेष सत्र में महिलाओं के लिए किए गए ऐतिहासिक निर्णय को यथार्थ रूप दिया गया। जिस बात का देश को पिछले कई दशकों से इंतजार था वह सपना अब सच हुआ है। लोकसभा और विधानसभा में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण अब सिद्धि बन गई है। नए भारत की नई संसद में 20 और 21 सितंबर नारी शक्ति के लिए ऐतिहासिक बन गया। नई संसद भवन की पहली शुरुआत की जब-जब बात होगी हर भारतवासी और विशेष रूप से नारी शक्ति का माथा गौरव से ऊंचा होगा। 17वीं लोकसभा में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी की सरकार ने नारी शक्ति वंदन अधिनियम विधेयक पेश किया जिसे लगभग सर्व सम्मति से संसद के दोनों सदनों में पारित किया गया। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि नारी शक्ति वंदन अधिनियम द्वारा किस प्रकार से महिला सशक्तिकरण को एक नई दिशा मिलेगी और क्या वाकई में नारी शक्ति वंदन अधिनियम भारत के विकास में नारी शक्ति की भूमिका निर्धारित करेगा तथा वर्ष 2047 तक के अमृत काल में विकसित भारत के निर्माण में मील का पत्थर साबित होगा।

मुख्य शब्द : महिला सशक्तिकरण, मातृशक्ति, नारीशक्ति, महिला प्रतिनिधित्व, नारी विकास, महिला आरक्षण, नारी उत्थान

प्रस्तावना : बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने कहा था ''महिलाएं अगर किसी देश में प्रगति कर रही हैं, तो मैं समझता हूं कि वह समाज वह राष्ट्र प्रगति कर रहा है'' बाबा साहेब की इसी सोच को साकार करने के लिए केंद्र सरकार ने संविधान संशोधन के जरिए राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, लोकसभा, विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 फीसदी आरक्षण का प्रावधान किया। एससी एसटी की महिलाओं के लिए सीटों में आरक्षण पहले से ही है उसमें ही 33 फीसदी महिला आरक्षण सुनिश्चित होगा। इसकी अवधि 15 साल होगी तथा इसके बाद भी जरूरत पड़ने पर संसद द्वारा इसकी अवधि को बढ़ाया जा सकता है। इसे विडंबना ही कहा जाए कि लोकसभा में अभी कल सांसदों में सिर्फ 15.21 फीसदी और राज्यसभा में केवल 13.02 फीसदी महिलाएं हैं जबकि वैश्विक औसत 26 फीसदी कम है। इस मामले में राज्य भी बद्तर स्थिति में है और कहीं भी 15 फीसदी से ज्यादा महिला विधायक नहीं है। गौरतलब है कि लोकसभा में फिलहाल 82 महिला सांसद है और इस विधेयक के पारित होने पर निचले सदन में महिला सांसदों की संख्या बढ़कर 181 हो जाएगी यहां ध्यान देने योग्य यह भी है कि यह आरक्षण केवल प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित जनप्रतिनिधियों पर ही लागू होगा राज्यसभा और राज्य की विधान परिषद इसके क्षेत्र से बाहर होगी।

महिला आरक्षण विधेयक का इतिहास

महिलाओं को आरक्षण दिए जाने से संबंधित इस विधेयक का इतिहास बहुत पुराना है। 27 साल के लंबे इंतजार के बाद केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा इस विधेयक को पारित किया गया है। इससे पहले महिला आरक्षण विधेयक को पारित करने

के लिए पांच बार कोशिश से हो चुकी है। यह बिल सबसे पहले 1996 में पूर्व प्रधानमंत्री एच डी देवगोड़ा के कार्यकाल में 11वीं लोकसभा में 12 सितंबर 1996 में आया था। इसके बाद दूसरी बार 12वीं लोकसभा में 14 दिसंबर, 1998 में अटल बिहारी वाजपेई जी की सरकार में पुनः महिला आरक्षण विधेयक लाया गया परंतु यह पारित नहीं हो सका। तीसरी बार भी 1999 में अटल बिहारी वाजपेई जी की सरकार में ही 13वीं लोकसभा में इस विधेयक को लाया गया परंतु कोई परिणाम नहीं निकला। चौथी बार में 2008 में लोकसभा की बजाय राजसभा में विधेयक लाया गया जिसे स्थाई समिति में भेजा गया। स्थाई समिति की रिपोर्ट आने के बाद 9 मार्च, 2010 को राज्यसभा ने इसे पारित कर दिया तथा 15वीं लोकसभा में पारित होने के लिए भेजा गया परंतु इसके पारित होने से पहले ही लोकसभा भंग हो गई और विधायक लैप्स हो गया। वर्तमान सरकार में 18 सितंबर, 2023 को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023 को मंजूरी दी। 19 सितंबर, 2023 को नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023 (128 व संवैधानिक संशोधन) लोकसभा में विशेष सत्र बुलाकर पेश किया गया तथा 20 सितंबर, 2023 को लोकसभा में विधेयक पारित हो गया। 21 सितंबर को यह राज्यसभा में भी पारित हो गया और लगभग तीन दशक बाद इस विधायक ने यथार्थ रूप ले लिया संसद में महिला सांसदों के प्रतिनिधित्व को लेकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने कहा, ''शुरुआत में संसद में कम महिलाएं थीं लेकिन धीरे-धीरे माता बहनों ने भी संसद की गरिमा को बढ़ाया है। इस संसद की गरिमा में बड़ा बदलाव लाने में उनका अहम् योगदान रहा है। इतने सालों में साढ़े सात हजार से अधिक जनप्रतिनिधि दोनों सदनों में योगदान दे चुके हैं। इस कालखंड में करीब 600 महिला सांसदों ने भी सदनों की गरिमा को बढ़ाया है।''

यह बहुत ही गंभीर विषय है कि लोकसभा के साथ-साथ विधानसभाओं में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम है। दिसंबर 2022 में लोकसभा में दी गई जानकारी के अनुसार किसी भी राज्य में 15 फीसदी विधायक भी महिला नहीं है। यदि हम नागालैंड और मिजोरम की बात करें तो वहां यह आंकड़ा शून्य है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली और उत्तराखंड विधानसभाओं में महिलाओं की भागीदारी 11.43 फीसदी है। यदि हम भारत के बाहर के देशों की बात करें तो दुनिया में कानूनी तौर पर महिलाओं को संसद में आरक्षण देने वाला पहला देश अर्जेंटीना है उसने 1991 में कुल प्रत्याशियों में 30 फीसदी महिलाएं होना अनिवार्य किया। 1991 में 5.4 फीसदी से बढ़कर इस समय वहां की संसद में 44.75 फीसदी सांसद महिलाएं हैं। महिलाओं से राजनीतिक नेतृत्व तलाशने और राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए कई देशों ने बीते कुछ दशकों में जेंडर कोटा शुरू किया है, कड़े नियम बनाए हैं, सुधार भी लागू किए हैं और आज इसके सकारात्मक परिणाम भी उन्हें मिलने लगे हैं।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, रवांडा, क्यूबा , निकारागुआ, न्यूजीलैण्ड, मैक्सिको और यूएई ही ऐसे देश हैं जिनमें संसद के किसी एक सदन या निचले सदन में 50 फीसदी से अधिक सांसद महिलाएं हैं। तकरीबन 22 देश ऐसे बचें हैं जहां महिला सांसद 10 प्रतिशत से कम है। कई अहम् देशों जैसे भारत, ब्राजील, रूस आदि का प्रतिशत वैश्विक औसत से कहीं पीछे है।

मातृशक्ति का सम्मान

नारी शक्ति वंदन अधिनियम 140 करोड़ की आबादी में 50 प्रतिशत भागीदारी रखने वाली मातृशक्ति का सच्चे अर्थ में सम्मान है सच्चे अर्थ में सम्मान है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने नारी के नेतृत्व में विकास की बात समग्र विश्व के सामने रखी। जी-20 की अध्यक्षता करते हुए भारत ने दुनिया को यह एहसास कराया कि मातृशक्ति बेटियां न केवल नीतियों में सहभागिता कर सकती हैं बल्कि नीति निर्धारण में अपने पद को भी सुरक्षित कर पाने में सक्षम हैं। इसकी वजह है कि वर्तमान केंद्र सरकार के लिए महिला सशक्तिकरण राजनीतिक मुद्दा नहीं बल्कि एक संकल्प है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी के शब्दों में, ''हम लोग एक बात कभी-कभी बोलते हैं नारी तू नारायणी, लेकिन ध्यान देने वाली बात यह भी है कि हमारे यहां कहा जाता है नर करणी करें तो नारायण हो जाए। यानी नर को नारायण होने के लिए कुछ करना पड़ेगा लेकिन नारी के लिए क्या कहा है नारी तू नारायणी। अब देखिए कितना बड़ा फर्क है हम बोलते रहते हैं लेकिन अगर सोचें तो हमारे पूर्वजों ने कितने गहन चिंतन से हम पुरुषों के लिए कहा नर करणी करें तो नारायण हो जाए। लेकिन माता बहनों के लिए कहा नारी तू नारायणी। महिला आरक्षण विधेयक के पारित हो जाने से देश और समाज की तस्वीर बदल जाएगी। इससे महिलाओं के बारे में यह बनी बनाई धारणा टूट जाएगी कि गृह गृहस्थी के अलावा भी और क्या कर सकती हैं।'' यूं भी देश के सर्वोच्च पद पर एक महिला ही विराजमान है। आज महिलाएं दफ्तरों में, बाजारों में, हवाई अड्डों पर, फिल्म में, टीवी रेडियो पर बड़ी संख्या में नजर आती हैं। उन्हें यह ताकत हमारे लोकतंत्र और शिक्षा ने दी है। इसके साथ-साथ मीडिया से भी उन्हें भरपूर सहयोग मिला है। महिलाओं को वोट देने का अधिकार हमारे यहां शुरू से ही है जबकि अमेरिका में वोट देने के अधिकार के लिए महिलाओं को 70 वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। आज हर राजनीतिक दल महिला शक्ति को पहचानता है इसीलिए अपने-अपने घोषणा पत्रों में वह उनके लिए

तरह-तरह के वादे करता है। 27 साल से अटके महिला आरक्षण विधेयक का संसद में पारित होना अपने आप में एक ऐतिहासिक क्षण है। अचल संपत्ति ना होने के कारण महिलाओं को कमजोर माना जाता था। इसी कारण सरकार जो मकान गरीबों को दे रही है वह महिलाओं के नाम ही होते हैं। महिलाओं के नाम पर रजिस्ट्री करने पर स्टांप ड्यूटी में छूट मिलती है। इस विधेयक के आने के बाद पूरा राजनीतिक परिदृश्य बदलने की संभावना है। इसके अलावा सामाजिक स्थिति में भी महिलाओं को और अधिक प्राथमिकता मिल सकती है। यदि हम 17वीं लोकसभा की बात करें तो सबसे ज्यादा 78 महिला सांसद लोकसभा में पहुंची थीं। इस विधेयक के पारित होने के बाद तो हर पार्टी को 33 प्रतिशत महिलाओं को टिकट देना ही होगा। कोई भी जीते या हारे आरक्षित सीटों पर महिलाएं ही संसद में पहुंचेंगी। इससे चुनाव के दौरान और बाद में परिदृश्य बेहद रोचक और महिलाओं की ताकत बढ़ाने वाला होगा। बड़ी संख्या में महिलाएं संसद में होगी तो कानून भी बनाएंगे और अपने-अपने चुनाव क्षेत्र में जाकर उनके फायदे भी गिनवाएंगी। इससे यह धारणा भी टूटेगी की औरतों को राज काज से भला क्या मतलब। महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या उनके दिखाई देने या विजिबिलिटी की है। यह छवियों की दुनिया है उसी से भला बुरा तय होता है। महिलाएं संसद में अधिक संख्या में होगी हर पल दिखेंगी तो समाज के अन्य तत्वों को भी इससे प्रेरणा मिलेगी। पहले की तरह अगर कुछ ओबीसी नेता इसमें अपने वर्ग के लिए अलग से आरक्षण की मांग करते हैं तो भी कुछ बुरा नहीं होगा। चाहे किसी भी वर्ग से कोई महिला आए होगी तो वह महिला ही। इससे अंततः महिलाओं का ही भला होगा।

नारी शक्ति वंदन अधिनियम के विपक्ष में दिए गए तर्क

ऐतिहासिक महिला आरक्षण विधेयक संसद में पारित हो चुका है परंतु विपक्ष ने इससे संबंधित कुछ सवाल भी खड़े किए हैं। इससे संबंधित महत्वपूर्ण तर्क है कि आखिर सरकार ने इस विधेयक में परिसीमन और जनगणना की शर्त क्यों जोड़ी? अगर यह दोनों शर्तें नहीं होती तो 2024 के लोकसभा चुनाव से ही महिलाओं को आरक्षण का लाभ मिल सकता था। अब 2029 के लोकसभा चुनाव से ही इसके लागू होने की उम्मीद है। इसीलिए अभी इस प्रतीकात्मक ही कहा जा सकता है। दरअसल विधेयक के जरिए संविधान में एक नया अनुच्छेद 334, जोड़ने का प्रस्ताव रखा गया है। यह अनुच्छेद कहता है कि महिलाओं को दिया जाने वाला आरक्षण सीटों के परिसीमन के बाद प्रभावी होगा। यह परिसीमन कानून अधिसूचित होने के बाद होने वाली पहली जनगणना के आंकड़ों के प्रकाशन के बाद किया जाएगा। आरक्षण 15 सालों के लिए होगा और इसके बाद संसद की इच्छा के अनुसार लागू रहेगा। विधेयक की इस शर्त के कारण ही विपक्ष ने सीधे-सीधे सरकार के इस कदम को चुनावी जुमला करार दिया है। इसके अलावा विपक्ष के द्वारा यह भी तर्क दिया गया था कि इसमें ओबीसी महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान नहीं है। बसपा प्रमुख मायावती जी ने कहा, ''हम एससी, एसटी और ओबीसी महिलाओं के लिए अलग से कोटे के पक्ष में हैं क्योंकि ऐसा नहीं हुआ तो इन वर्गों के साथ नाइंसाफी होगी। लेकिन यह प्रावधान नहीं भी होगा तब भी बसपा बिल का समर्थन करेगी।'' झामुमो सांसद महुआ मांझी ने कहा, ''मैं विधेयक का स्वागत करती हूं। हम लंबे समय से इसकी मांग करते रहे हैं लेकिन इसमें अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति की भी महिलाओं को ध्यान में रखना चाहिए।'' वहीं एआईएमआईएम प्रमुख असदुद्दीन ओवैसी ने कहा, ''आप किसे प्रतिनिधित्व दे रहे हैं? जिनका प्रतिनिधित्व नहीं है। उन्हें प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए इस विधेयक में सबसे बड़ी खामी यह है कि इसमें मुस्लिम महिलाओं के लिए कोई कोटा नहीं है।'' एनसीपी नेता सुप्रिया सुले ने सवाल उठाया कि अगर बिल जनगणना और परिसीमन के पहले लागू नहीं किया जा सकता तो विशेष सत्र क्यों बुलाया? उन्होंने इस 'पोस्ट डेटेड चेक' करार दिया और मांग की कि सरकार इसके कार्यान्वयन के लिए तारीख और समय सीमा बताएं। सपा सांसद डिंपल यादव के अनुसार पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं को भी इसका लाभ मिले क्रांति के बिना विकास संभव नहीं है। उन्होंने पूछा कि सरकार जनगणना कब शुरू करेगी।

अनेक प्रकार के तर्क और वितर्क के बावजूद सभी पक्षों ने इस विधेयक का स्वागत किया। केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह के अनुसार, महिला आरक्षण बिल ने हमारे देश में राजनीतिक विमर्श को बदल दिया है। सदियों से भारत में महिलाओं ने अपनी देखभाल , करुणा और निस्वार्थ योगदान से व्यक्तियों, परिवारों, हमारे समाज और अर्थव्यवस्था को आकार दिया है। नया विधेयक हमारे राष्ट्र की नियति को आकार देने में उनकी शक्ति का उपयोग करेगा। माननीय राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू के अनुसार, नारी शक्ति वंदन अधिनियम लैंगिक न्याय के लिए मौजूदा दौर की सर्वाधिक परिवर्तनकारी क्रांति है। केंद्रीय कानून मंत्री अर्जुन राम मेघवाल के अनुसार, नारी शक्ति आधी आबादी का हिस्सा है। उसकी लोकतांत्रिक प्रतिनिधि संस्थाओं में हिस्सेदारी न्यूनतम थी और यह स्थिति प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध थी। बाध्यकारी सामाजिक मान्यताओं ने निर्णय की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी को सीमित कर दिया था तथा समाज द्वारा लिए गए निर्णयों का अनुपालन करने के लिए वह काफी हद तक बाध्य कर दी गई थी। इन चुनौतियों के बीच इस

दृष्टिकोण के विरोध में अनेक अपवाद सामने आए। महिलाएं अपने पर थोपी गई बाध्यकारी वर्जनाओं से बाहर निकली। महिलाओं ने हर क्षेत्र में देश को गौरवान्वित किया है। विधायन क्षेत्र में नारी शक्ति वंदन अधिनियम द्वारा प्रस्तावित लैंगिक न्याय महिलाओं के सम्मान को समग्र रूप में बल प्रदान करेगा तथा इसे संतुलित नीति निर्माण के लिए आदर्श परिस्थिति सृजित होगी।

निष्कर्ष : अंततः हम यह कह सकते हैं कि यह विधेयक सरकार का ऐतिहासिक कदम है जो महिलाओं के सशक्तिकरण में योगदान देने वाला साबित होगा। इस विधेयक के पारित होने के बाद न केवल शहरी महिलाएं बल्कि ग्रामीण महिलाएं भी उत्साहित हैं। इससे न केवल देश का राजनीतिक चेहरा बदलेगा बल्कि समाज भी प्रभावित होगा। बहुत से लोग मानते हैं कि यह सदी महिलाओं की होने वाली है खासकर युवा महत्वाकांक्षी महिलाओं की तथा भारत की महिलाएं तेजी से आगे बढ़कर देश निर्माण में भूमिका निभा रही है। सेना से लेकर सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में महिला भागीदारी बड़ी है। इसके बिना विकसित भारत का सपना साकार नहीं होगा यह बड़े परिवर्तन की शुरुआत है।

सन्दर्भ

- न्यू इंडिया समाचार, दिनाँक 16 - 31 अक्टूबर 2023
- अमर उजाला झाँसी, दिनाँक 20 सितम्बर 2023
- अमर उजाला, झाँसी, दिनाँक 21 सितम्बर 2023
- www.wikipedia.com
- www.eci-gov.in
- www.amarujala.com
- www.pmindia.gov.in
- www.thehindu.com

रिचा सेंगर
शोध छात्रा
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
Email : richasengar5454@gmail.com
Mob. 9454543309

डॉ. ज्योति सिंह
शोध निर्देशिका
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी
Email : gautamjyotisingh@gmail.com
Mob. : 9454347310

दलित चेतना और शिक्षा का अधिकार : एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों

–डॉ. जागीर नागर

''स्त्री जितनी आजाद हुई है वह वैचारिक, आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक, राजनीतिक रूप से अधिक आत्मनिर्भर हुई है या उस दिशा की ओर अग्रसर है। आर्थिक स्वतंत्रता सिर्फ पैसा कमाना न होकर उसे बरतना भी है और शारीरिक स्वतंत्रता को बरतना या बरतने देना ही नही न बरतना और न बरतने देना भी है।'' -ज्योत्सना मिलन

वे न केवल पुरुष-मूल्यों को कटघरे में खड़ा करती हैं बल्कि कभी-कभी तो पुरुष सत्ता को पूरी तरह खारित भी करती है। देह या दैहिकता के विषय को अब और अनदेखा करने की जरूरत नहीं, अब स्त्रियों के लिखने के लिए असंख्य विषय खुले हुए हैं, जिसके चलते बहुत सी लेखिकाएँ स्वच्छन्द, स्फूर्त और गैर पारम्परिक लेखन कर रही हैं। मैं दरअसल जो कहना चाहती हूँ वह यही कि स्त्री दृष्टि भी उतनी ही विश्वव्यापी है जितनी पुरुषों की लेकिन जिसे पुरुषों की आत्मरति या जिसे हम पितृसत्तात्मक समाज कहते हैं उसके चलते उन्हें गंभीरता से नहीं लिया जाता है।'' -सुचेता मिश्र

अधिकार व्यक्ति को उसके विकास के लिए प्रदान किये जाते हैं। अधिकार से तात्पर्य राज्य मानव के लिए ऐसी दशाओं व परिस्थितियों के गठन से है जिसके अन्तर्गत मनुष्य को कुछ इस प्रकार के संसाधन व सुविधाएँ प्राप्त हो सकें कि वह उन संसाधनों का उपयोग करके अपना पूर्ण विकास कर सके। अधिकार का प्रथम लक्षण उसकी वैधानिकता जो केवल राज्य द्वारा ही निर्धारित की जा सकती है। दूसरी ओर इन अधिकारों को समाज द्वारा भी स्वीकृति दी जानी चाहिए क्योंकि इनका उपभोग व्यक्ति समाज में ही और समाज के उपयोग के लिए ही करेगा।

अधिकार के लक्षणों में यह आवश्यक है कि उसे समाज द्वारा स्वीकृति हो, राज्य का संरक्षण प्राप्त हो, सर्वव्यापक हो अर्थात् समाज के सभी लोगों पर समान रूप से लागू हो, जनहित में हो तथा उसका उपभोग करने के पश्चात् व्यक्ति तथा समाज दोनों का हित हो। यदि अधिकार में ये लक्षण उपलब्ध नहीं है तो उसे सामान्य प्रथा या परम्परा ही कहा जा सकता है। इसलिए राज्य की शक्ति का औचित्य इनके क्रियान्वयन पर निर्भर है। यदि राज्य और अधिकारों के रूप में विरोध है तो अधिकारों का अतिक्रमण हो सकता है।

मानवाधिकारों से अभिप्राय उन अधिकारों से हैं जिन्हें व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता, तथा गरिमा के लिए आवश्यक माना जाता है। ये सभी अधिकार व्यक्ति के सम्मान तथा गौरव से जुड़े हुए हैं और इन्हें मूल या मौलिक अधिकारों के अंतर्गत माना जाता है।

ये अधिकार व्यक्ति के लिए अति महत्वपूर्ण माने गए हैं और इनका हनन होने पर न्यायालय की शरण लेकर इन्हें प्रवर्तित कराया जा सकता है। इन अधिकारों को पुरुष, महिला तथा बच्चे सभी के लिए समान रूप से अनिवार्य माना गया है। इन अधिकारों का हनन लिंग, जाति, धर्म या नस्ल आदि के आधार पर नहीं किया जा सकता है। इंग्लैंड की कॉमन विधि को इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है।

मानवाधिकार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और सूक्ष्म है। यह उतना ही गहन एवं गम्भीर है जितना कि स्वयं मानव है। प्रकृति ने अनेक जीवों की संरचना की है। लेकिन मानव जितना जागृत मस्तिष्क और चेतना स्तर किसी अन्य प्राणी के पास नहीं है। इसलिए कहा जा सकता है कि मानव स्वभाव से ही गहनता से युक्त है। मानव अपने जीवन के सम्बन्ध में अधिकाधिक विचार कर सकता है और उन विचारों का मूर्त रूप प्रदान कर सकता है।

एलेन पैजेल्स के अनुसार - ''मानव अधिकार यह विचार है कि व्यक्ति के पास अधिकार है, समाज पर या समाज के विरुद्ध दावे हैं, यह कि समाज इन अधिकारों को अवश्य मान्यता प्रदान करे। जिस पर वह कार्य करने के लिए बाध्य है, मानव के अन्तरस्थ है।''[1]

न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती के अनुसार - ''स्वतंत्रता का संघर्ष ही इन मूल अधिकारों का उद्‌गम है। इन्हें संविधान

में इस आशा और प्रत्याशा के साथ सम्मिलित किया गया है कि एक दिन सच्ची स्वाधीनता का वृक्ष भारत में विकसित होगा।''[2]

जयशंकर प्रसाद - ''जीवन अंनत, अनश्वर और गतिमान है। वह न कभी रूकता है और न ही कभी नष्ट होता है। अतः उसे जीना आवश्यक है, पर यह जीना इच्छा, क्रिया और ज्ञान के समन्वय के साथ होना चाहिए तब ही विषमता समाप्त होगी अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होगी।''[3]

भारत के संविधान में प्रत्येक नागरिक को एक समान मौलिक अधिकार दिये गये हैं। वह चाहे किसी भी जाति, धर्म, प्रदेश का हो। यद्यपि सभी जातियों, धर्मों और समुदायों के लोगों को समान मौलिक अधिकार दिए गए हैं तथापि कई अन्य कारणों से दलित इन मौलिक अधिकारों का भी पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा पाते क्योंकि वे अशिक्षित है और उनमें राजनीतिक जागरूकता का अभाव है।

भारतीय संविधान ने तो सभी भारतवासियों को समान मौलिक अधिकार दिए हैं किन्तु विडम्बना यह है कि इन मौलिक अधिकारों का अधिकतर लोग लाभ नहीं उठा पाते, दलित तो सदैव इन अधिकारों से वंचित ही रहे हैं, छुआछूत के कारण इन्हें सामाजिक अपमान झेलना पड़ता रहा है, ये अपने शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठा पाते। शिक्षा के अभाव में ये कोई विशेष योग्यता प्राप्त नहीं कर पाते और इसी कारण उन्हें अच्छी नौकरी नहीं मिलती। बल्कि शिक्षित न होने के कारण इनका शोषण होता रहता है फिर भी ये विरोध नहीं कर पाते।

शिक्षा व्यक्ति को कार्यकुशल होने में सहायता देती है। पढ़ा-लिखा शिक्षित व्यक्ति अपने अधिकार और कर्त्तव्य दोनों को समझकर अपने व्यक्तित्व का विकास करता है और समाज के विकास में योगदान देता है। परन्तु धर्मशास्त्र और संस्कृति के नाम पर सवर्ण जातियाँ दलितों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकर नहीं देती रही। यद्यपि स्वतंत्र भारत में दलितों को भी शिक्षा प्राप्त करने का मौलिक अधिकार मिला है पर सवर्ण लोग उनके रास्ते में कई अवरोध खड़े करते रहते हैं। धर्म और संस्कृति की आड़ में भी वे लोग दलितों को शिक्षा ग्रहण करने में हतोत्साहित करते रहते हैं। रजत रानी मीनू की 'सुनीता' सवर्ण समाज के लड़कों की फब्तियों का सामना करते हुए अपनी शिक्षा ग्रहण करती है। सुनीता को पढ़ाई में आगे बढ़ते हुए देख सवर्ण समाज के ठाकुर शेरसिंह का बेटा बहादुर सिंह और चन्दा अहीर उस पर बुरी नजर डालने लगे थे। वे व्यंग्य कसते हैं-''चमारी पढ़-लिखकर अफसर बनेगी गाँव में बड़ी जाति के लोग लड़कियों को पढ़ाना जरूरी नहीं समझते पर छेदा चमार को अपनी औकात का शायद पता नहीं है।''[4]

शिक्षा और समाज का रिश्ता अटूट है। शिक्षा समाज को परिवर्तनशील और प्रगतिशील बनाती है। लेकिन दलितों को तो वर्षों पहले शिक्षा पाने के उस अधिकार से भी वंचित कर दिया गया था जिसके कारण इनका जीवन नारकीय हो गया था। इस अंधेरी गुफा से निकलने का एकमात्र रास्ता बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने 'शिक्षा' को ही बताया। एक ओर सामंती शक्तियों से लड़ने का शस्त्र है, तो वहीं दूसरी ओर आधुनिक युग में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए नितांत जरूरी है। सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 (2) के अनुसार विशेष प्रावधान किया गया है - ''राज्य द्वारा पोषित या राज्यनिधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था मे प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी एक के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।''[5]

संघर्ष कहानी में दलित शंकर को स्कूल से निकाल दिया जाता है। स्कूल से निकालकर शिक्षा से वंचित कर देना शंकर के लिए सबसे बड़ी सजा थी। ''... हेडमास्टर जी ने ट्रान्सफर सर्टिफिकेट बनाकर शंकर के हाथ में दे दिया। स्कूल से शंकर का नाम निकाल दिया गया।... शंकर का सबसे बड़ा अपराध था कि वह अछूत जाति में पैदा हुआ। उसका दूसरा अपराध यह था कि अछूत होकर भी उसने उच्चवर्ण के लड़कों को मारा-पीटा, उनसे उनका थूक चटवाया। सदा से पूजनीय माने गए उच्चवर्ण पर यह बहुत बड़ा आघात था। शिक्षा से वंचित कर देना सबसे बड़ी सजा थी। सदियों से उन्हें शिक्षा से दूर रखकर कमजोर बनाया गया था। आज फिर से शिक्षा रूपी ताकत, शिक्षा रूपी अस्त्र-शस्त्र उससे छीने जा रहे हैं।''[6]

अम्बेडकर ने दलितों के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण अशिक्षा माना है। शिक्षित हुए बिना दलित जीवन में परिवर्तन नहीं हो सकता। दलित अस्मिता की पहचान व सामाजिक न्याय के लिए दलितों का शिक्षित होना आवश्यक है।

बाबा साहेब का 'शिक्षा सम्बन्धी' स्पष्ट विचार था कि-''समाज के सबसे सामान्य शोषित और उपेक्षित व्यक्ति तक शिक्षा की सुविधाएँ पहुँचनी चाहिए। परम्परा से नकारे गये वर्ग को उच्च शिक्षा हेतु अधिक खर्च न करना पड़े ऐसी व्यवस्था हो। स्नातक और छात्रों के पाठ्यक्रम द्वारा सांस्कृतिक प्रगति करने के लिए महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को एकत्र होना जरूरी है।''[7]

भारतीय समाज में सवर्ण जातियों द्वारा जानबूझकर दलितों को अशिक्षित रखा गया है। उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए शारीरिक श्रम की ओर प्रेरित किया जाता रहा, जिससे दलितों में शिक्षा का अभाव है। अशिक्षित दलितों को विवश करके आसानी से उनका शोषण किया जा सकता है। शोषण के कारण ही उनकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति शोचनीय है। यदि वे शिक्षित होते

तो जागरूक और चालाक भी होते और वे सवर्णों के छल-कपट को समझ लेते और शोषण से बच जाते। दलितों का अशिक्षित होना ही उनके शोषण और अपमान का प्रमुख कारण है।

''बाप ने कभी स्कूल जाकर देखा नहीं। लड़के का स्कूल से नाम कट गया है। ... पीढ़ियों से अशिक्षा चली आ रही थी। सफाई का धन्धा विरासत में मिल जाता था। इसके आगे कुछ और सोचने का प्रयास कहीं दिखाई नहीं देता था। अगर कोई सोचता भी था तो उसकी सफलता के लिए अपनी पूरी जिम्मेदारी को न तो वह समझ पाता था और न ही निभा पाता था।''[8]

शिक्षा का दूरगामी महत्त्व पहली बार बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने समझा। वह शिक्षा को किसी एक वर्ग के लिए सीमित नहीं करना चाहते थे। उन्होंने संविधान में स्पष्ट किया है कि शिक्षा के द्वार सबके लिए खुले रहेंगे। वहीं यह भी अनिवार्य किया कि राज्य के चौदह वर्ष तक के हर बच्चे को शिक्षा देना अनिवार्य है। उनका मानना था कि शिक्षा में ही वह शक्ति है जो व्यक्ति में आत्मविश्वास पैदा करती है, वहीं शोषण के खिलाफ लड़ने की शक्ति देती है। बाबा साहब की शिक्षाएँ व्यक्ति परक हैं, वे व्यक्ति को स्वावलंबी बनने के लिए प्रेरित करती हैं। एस. एल. सागर के शब्दों में - ''बाबा साहब की शिक्षा का विषय-आचरण की शिक्षा, व्यवहार की शिक्षा, संगठन की शिक्षा, अनुभव और अभिव्यक्ति की शिक्षा है न कि मात्र पढ़ाई लिखाई की शिक्षा।''[9]

'ज्वालामुखी' कहानी की नायिका ज्वालामुखी चमार जाति से है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके वह अपने सम्पूर्ण अधिकारों के प्रति जागरूक है। समाचार पत्र में छपी खबर-''आजादी के 60 वर्षों के बाद भी पानी के लिए दलित महिलाएँ उच्च वर्णों पर आश्रित है।'' राजस्थान में सामन्तवाद चरम सीमा पर।''[10] यह पढ़कर ज्वालामुखी चिन्ता में पड़ गई क्योंकि गाँव का सरपंच स्वयं दलित होते हुए भी दलित बहनों पर सवर्णों द्वारा हो रहे अत्याचारों को मूक दर्शक बनकर देख रहा था। क्योंकि दलितों के हित में बोलने पर उसको सरपंच की कुर्सी जाने का खतरा था। पढ़ी-लिखी ज्वालामुखी ने दलित महिलाओं को जागृत किया उन्हें समझाया एकजुट होकर हिम्मत से सामना करो। उसने आव देखा न ताव। कार से उतरते ही वह सीधे टांके की सीढ़ियों पर चढ़ गयी और नल की ऊपर वाली टोटी को पकड़ लिया, जिससे अन्य महिलाएँ पानी भर कर ले जा रही थीं। उसने अपनी दलित बहनों को पुकारा - ''आओ टांके की सीढ़ियों पर चढ़ो और पानी भरो। यह देश आजाद है। तुम भी इस आजाद देश की नारियाँ हो। जीने का जितना हक इन्हें हैं, उतना ही तुम्हें भी है।''

महिलाएँ डर रही थीं। एक महिला ने सहमते हुए कहा-''ये पुरुष लोग खड़े हैं। लट्ठ से हमें मारेंगे। ज्वालामुखी ने उन्हें ललकारा - ''मैं खड़ी हूँ डरना नहीं। आगे बढ़ो। पहला लट्ठ मैं खाऊँगी, तब तुम्हें कोई हाथ लगाएगा। आओ चढ़ो पानी भरो।''[11]

आज शिक्षा को लेकर जो लक्ष्य भारतीय संविधान निर्माताओं ने रखा था, वह लक्ष्य पास आने के बजाय दूर होता जा रहा है। इसके अनेक कारणों में एक कारण समयानुसार शिक्षा-सिद्धान्तों में परिवर्तन की उपेक्षा करना भी है। शिक्षा के साथ-साथ रोजगार भी बुनियादी आवश्यकता है। लेकिन रोजगार के क्षेत्र में भी असमानता देखने को मिलती है।

शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने अधिकारों के बारे में जानकर आगे बढ़ सकता है। 'वे दिन' कहानी में अंजू के माध्यम से लेखिका ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया है। क्योंकि शिक्षित स्त्री चाहे वह किसी भी वर्ग की हो पुरुष सत्ता की चालाकियों को समझते हुए अपने विरुद्ध होने वाले अत्याचार और शोषण को स्वीकार नहीं करती अपितु मजबूती से पुरुष सत्ता का सामना करती है।

पढ़ी-लिखी अंजू कुछ परेशान होकर चिन्तित है वह अतीत में जाकर सोचती है कि-''मैं आज इतनी कमजोर क्यों हो गयी? कैसे हो गयी? मैंने विपरीत परिस्थितियों से समझौता कैसे कर लिया? मेरे सामने ऐसी क्या मजबूरियाँ थी जो अब तक यह सब झेल रही हूँ? ... उसे वे दिन याद आने लगे जब उसने हाईस्कूल की परीक्षा दी थी। बचपन से उसे पढ़ने का शौक था। ...वह दसवीं में आयी थीं। उसकी स्कूल की सहेलियाँ निशा पाठक, पूनम सक्सेना, प्रीति भारद्वाज, इत्यादि खाली समय में बतियाती कि हम तो शहर से बी.ए. करके बी.एड करेंगी। अंजू भी उन्हीं की तरह आगे पढ़ना चाहती थी। मगर अपनी दलित बिरादरी में वह पहली लड़की थी जो पढ़ रही थी। उसे देखकर गाँव-मोहल्ले के लोग तमाम तरह की बातें बताते। वह सोचती क्या इन ब्राह्मण, ठाकुर, बनिया, कायस्थ, इत्यादि जाति की लड़कियों के मोहल्ले में ऐसी टिप्पणियाँ नहीं होती?''[12]

डॉ. अम्बेडकर ज्योतिबा फुले को अपना गुरू मानते थे। क्रांति माँ सावित्री बाई फुले ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दिया था। फुले दम्पति के प्रयत्नों से ही समाज में स्त्री शिक्षा का प्रारंभ हुआ था। उन्होंने सवर्ण और शूद्र समाज की लडकियों को शिक्षा देकर मनुस्मृति के इस कानून को तोड़ा था कि 'स्त्रियों को शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। उन्होंने समाज की कुरीतियों और अंधविश्वासों को तोड़ा। वे स्त्रियों को शिक्षित करना समाज जागृति और समाज उत्थान के लिए आवश्यक समझते थे। फुले दम्पति ने अपने कार्यों से यह बता दिया कि शिक्षा का अधिकार सभी को है। स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। वे भी

ज्ञान और तर्क को समझ सकती हैं। वे शिक्षित होकर स्वावलंबी बन सकती हैं। वे जानते थे कि शिक्षा ही वह शास्त्र है जिसे धारण करके दलित समाज और दलित नारी अपनी रक्षा और सुरक्षा स्वयं कर सकती है। डॉ. अम्बेडकर दलित समाज व नारी समाज को शोषण से बचाकर उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन का अधिकार दिलाना चाहते थे।

'वे दिन' कहानी में अंजू आज तेरह वर्ष पूर्व की घटना याद करके फूट-फूट कर रो पड़ी, पास बैठी सहेली रीता के गले लगकर। उसकी आवाज रूंध गयी। थोड़ी देर रूककर बोली-''मुन्ना छोटा था। मैं इनके साथ रहने लगी। जितनी बार मैंने जिद्द की मुझे इंटर कर लेने दो। इस पर उन्होंने सख्ती से कहा था - ''मेरे साथ रहना है तो औरत बनकर रह। मैं इतना कमा सकता हूँ कि तेरा पेट भर सकूँ। मुझे नहीं करानी नौकरी-चौकरी। वैसे भी हमारा घर औरतों की कमाई से नहीं चलता है। हम मर्द हैं, कमा सकते हैं। चिट्ठी पत्री लायक पढ़ गयी है, वह काफी है। मैं बाबूजी नहीं हूँ कि गाँव जैसी छूट दे दूँ। खबरदार, ऐसी बात कही। वैसे भी इंटर-विंटर तेरे बस की बात नहीं। हाई स्कूल में नकल से तुक्का लग गया तो उड़ने लगी आसमान में।''[13]

शोषित पीड़ित दलित महिलाओं में जागृति लाने के लिए उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से वे अपने स्वतंत्रता के अधिकार और कानून के सुरक्षा कवच को समझ सकेंगी। नारी जगत की जननी है, जो विश्व का पालन-पोषण करती है। परन्तु उसकी सदा ही निंदा की जाती है। नारी का उत्पीड़न, शोषण सभी समाजों में न्यूनाधिक रूप में हुआ है। जीवन के हर क्षेत्र में उसके साथ भेदभाव होता रहा है। महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार और छेड़छाड़ घरों, सड़कों, बगीचों, कार्यालयों सभी स्थानों पर देखा जा सकता है। पुलिस भी महिलाओं पर आक्रमण को होते हुए देखकर भी अनदेखा कर देती है। बाल-विवाह की त्रासदी आज भी अनेक कन्याएँ भोगती हैं। महिलाओं का अपहरण करके उनको वैश्या बना देना, जलाकर मारना एवं तरह-तरह की शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ देना सामान्य सी बात हो गयी है। महिला साक्षरता अभियान एवं सशक्तिकरण के द्वारा ही उनको मूलभूत अधिकार प्राप्त हो सकते हैं।

महिलाएँ चाहे वे ग्रामीण हों या शहरी हिंसा की शिकार होती रहती हैं। जिस कारण वे न तो अपने मानवाधिकारों का उपयोग कर पा रही हैं और न ही देश की सामाजिक और आर्थिक प्रगति में अपना सहयोग दे पा रही हैं। महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहें तब ही उनका शोषण रूक सकता है एवं उन पर अत्याचार बंद हो सकते हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए प्रत्येक महिला का शिक्षित होना आवश्यक है तभी वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकेंगी। शिक्षित एवं आर्थिक रूप से सुदृढ़ नारी ही अत्याचार एवं अन्याय का विरोध कर सकती है। शिक्षा जैसे सशक्त माध्यम से जुडकर आज की नारी स्वयं सशक्त बनकर विभिन्न व्यवसाय एवं सेवाओं से जुड़ती जा रही है। कुशलतापूर्वक विभिन्न पदों पर आसीन होकर प्रगति की ओर निरंतर अग्रसर हो रही है।

'सिलिया' कहानी में सिलिया पढ़-लिखकर ऊँचे पद पर पहुँचती है। वह समाज की हर बाधा को पार करते हुए उस मुकाम को हासिल करती हैं जहाँ आज उसे प्रतिष्ठित संस्था द्वारा सम्मानित किया जा रहा है - ''लगभग बीस वर्ष बाद देश की राजधानी के प्रख्यात सभाग्रह में एक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था द्वारा एक महिला को सम्मानित किया जा रहा था। दलित मुक्ति आंदोलन की सक्रिय कार्यकर्त्ता विदुषी, समाजसेवी, कवयित्री, साहित्य जगत की प्रसिद्ध लेखिका आदि अनेक विशेषणों का प्रयोग उसके लिए किया जा रहा था। मंत्री महोदय ने शाल, सम्मानपत्र, सम्मान स्मृति चिन्ह और पुष्प माला से उस महिला का, तालियों की गड़गड़ाहट के बीच स्वागत किया।''[14]

आज की शिक्षित नारी समय और शिक्षा दोनों के महत्त्व को समझने लगी है। आज शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी, वैज्ञानिक, कला, कविता, साहित्य सभी क्षेत्रों में नारी सक्रिय, भूमिका का निर्वाह कर देश के निर्माण एवं उन्नति में सहयोग कर रही है। भारत में महिलाओं को संवैधानिक तथा कानूनी सुरक्षा प्रदान करने के लिए जनवरी 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग की शाखा का गठन किया गया। यह आयोग संवैधानिक संस्था है एवं महिलाओं के अधिकारों के प्रति सजग है। आयोग लड़कियों एवं महिलाओं की शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए विशेष कार्यक्रम आयोजित करता है। खासकर ग्रामीण एवं आदिवासी इलाकों में।

सदियों से दलितों के पढ़ने-पढ़ाने और विद्या अर्जन पर सदा के लिए प्रतिबंध लगा दिया गया। इसका परिणाम यह निकला कि सदियों की दासता और विद्याहीन होने के कारण उन्होंने जो हमसे कहा उसे ही हमने अपना धर्म समझकर स्वीकारा, अमानुषिक अत्याचार, तिरस्कार, अपमान, बलात्कार, शोषण उत्पीड़न दमन सभी को भाग्य की देन मान उसका प्रतिरोध नहीं किया। उन्होंने भी हमारे साथ पशुवत व्यवहार करने को अपना कर्त्तव्य समझ अमानुषिक जिन्दगी जीने को बाध्य किया। वर्ण व्यवस्था व जात-पात, के चक्रव्यूह में फंसकर भाग्य, भगवान और धर्म, कर्म के गोरख धन्धे को हमारे मस्तिष्क में पूरी तरह बिठा दिया। हमने पाप-पुण्य, धर्म-कर्म और स्वर्ग-नरक के भय में फंसे कभी भी अपनी अवनति दुर्दशा और नारकीय जीवन के विषय में नहीं सोचा। इसका मुख्य कारण था दलितों को शिक्षा से वंचित करना। विद्याविहीन होने से वे अपनी विवेक शक्ति खो बैठे।

'संघर्ष' कहानी में दलित शंकर को स्कूल से निकालने

के पीछे मास्टर जीकी सदियों पुरानीसवर्ण मानसिकता है - ''शंकर का सबसे बड़ा अपराध यह था कि अछूत होकर भी उसने उच्चवर्ग के लड़कों को मारा-पीटा, उनसे उनका थूक चटवाया। सदा से पूजनीय माने गये उच्चवर्ग पर यह बहुत बड़ा आघात है। उद्दण्ड शंकर को सजा देना ही था। शिक्षा से वंचित कर देना सबसे बड़ी सजा थी। जातिभेद मानने वाला, अत्याचार, दमन शोषण करने वाला उच्चवर्ग समाज बहुत ताकतवर है और शंकर अकेला निहत्था है। कैसे उनसे जीत सकेगा? इतने बड़े शोषक वर्ग से अकेले लड़ना उसके बस की बात नहीं। सदियों से उन्हें शिक्षा से दूर रखकर कमजोर बनाया गया था। आज फिर से शिक्षा रूपी ताकत, शिक्षा रूपी अस्त्र-शस्त्र उससे छीने जा रहे हैं।''[15]

अब आवश्यकता इस बात की है कि दलितों को जिस शिक्षा से वंचित कर दास, गुलाम और कमीन बनाया गया है, उसी शिक्षा से जुड़कर पुनः अपने खोये हुए गौरव को प्राप्त करें। पिछले पांच हजार वर्षों से दलितों की अपार विद्वता, कला, शक्ति और वैभव का जो ह्रास है उसे फिर से प्राप्त करें। इसके लिए यह भी जरूरी है कि दलित समाज में व्याप्त हीन भावना, क्षुद्रता अविवेक, अंधविश्वास को दूर करें और अपने अन्दर स्वाभिमान, वीरता, विवेक और सुदृढ़ता पैदा करें। यह सब मानसिकता के बदलने पर ही संभव है और मानसिक बदलाव के लिए वैचारिक क्रांति जरूरी है। शंकर को स्कूल से नाम काटकर बाहर निकाल दिया गया। शंकर दसवीं की पढ़ाई के बारे में चिंतित था। यदि वह दसवीं की परीक्षा नहीं दे पाया तो उसे कहीं नौकरी नहीं मिलेगी परिणामस्वरूप उसे भी पुस्तेनी धंधा करने पर मजबूर होना पड़ेगा जिसे वह कदापि नहीं करेगा।

स्कूल में शंकर की कक्षा में दसवीं बोर्ड परीक्षा की पढ़ाई होती रही। शंकर बांहों में मुंह छिपाये घर बैठा रहा। दिन बीतते रहे। शंकर को हेडमास्टर की बातें याद आती थीं कि डॉ अम्बेडकर जी ने उन्हें पढ़ने का अधिकार दिलाया है। फिर उसे स्कूल से कोई कैसे निकाल सकता है? डॉ अम्बेडकर ने उनके लिए क्या किया, शंकर जानना चाहता था। मगर उस समय वहां उसे सही बात बताने वाला कोई नहीं था। मास्टर, हेडमास्टर सभी उसके दुश्मन बने हुए थे।''[16]

शिक्षा का आधार साहित्य का भी मूल आधार है। अतः जनसामान्य, दलित, आदिवासी क लिए विशेष शैक्षिक उपाय करने चाहिए। लेकिन वर्तमान में यह नहीं होता दिख रहा, अभी तो संकट ही संकट आ खड़े हुए हैं। भारत में राजकीय शिक्षा का अंत देश की चौथाई आबादी गरीबों, खासकर दलितों के लिए मातम का पर्याय है। पब्लिक स्कूलों का चरित्र पूंजीवादी और व्यक्तिवादी है।

'नयी राह की खोज' कहानी में पब्लिक स्कूलों द्वारा शिक्षा का बाजारीकरण करने पर कुत्सित चेहरा दिखाया गया है। गरीब, आमजन की पहुंच से दूर ये पब्लिक स्कूल पूंजी के अड्डे बन गये हैं। लालचन्द जैसे-तैसे के. जी क्लास पास करके फर्स्ट स्टैण्डर्ड में पहुंच किन्तु महंगी शिक्षा के खर्चे को उठाना रामचन्द के लिए मुनासिक नहीं था - ''अंग्रेजी की किताबों और कापियों से भरा बस्ता लेकर लालचन्द स्कूल जाता। स्कूल में कुछ लिखना पढ़ना सीखता, लेकिन घर आने के बाद कोई अभ्यास नहीं हो पाता, न होमवर्क न रिविजन। मास्टर साब ने साल भर की ट्यूशन लगाने की सलाह दी। रामचन्द ने बेटे की साल भर की ट्यूशन लगा दी। लेकिन ट्यूशन की घंटे भर की पढ़ाई के बाद घर के अनपढ़ वातावरण में लालचन्द कुछ याद नहीं रख पाता था। इधर खर्च भी बहुत बढ़ गया। महंगी किताब कापियां स्कूल की फीस, ट्यूशन की फीस और साथ में बहुत से खर्च। कभी कर्ज लेकर और कभी कोई गहना गिरवी रखकर लालचन्द को अंग्रेजी की चार क्लास पास करवायी गयी। ... शुरू में अंग्रेजी पढ़ी, वह भी ट्यूशन मास्टर के भरोसे। लेकिन अब हालत यह थी कि फिर से अ-आ-इ-ई पढ़ना पड़ेगा। पांचवीं के शिक्षक यह सब नहीं पढ़ा सकते थे। घर में कौन अभ्यास कराए, यहाँ तो किसी को अपना नाम भी हिन्दी में लिखना नहीं आता था। पढ़ने के विषय भी बहुत से थे, भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान। लालचन्द की पढ़ाई का हाल देखकर शिक्षक उसे पीटने लगे। शिक्षकों का गुस्सा देखकर लालू स्कूल से भागने लगा।''[17]

देश में पिछले कुछ वर्षों से मानव अधिकार एवं जागरूकता शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है। 1995 से प्रारंभ हुए मानव अधिकार शिक्षा दशक के साथही अनेक संगठन एवं संस्थाओं ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एवं क्रिया कलापों में इस संकल्प की क्रियान्वित दृष्टिगत हो रही है। विश्वविद्यालयों पाठ्यक्रम के आधारभूत तत्व मानव अधिकार के किसी न किसी आयाम से जुड़े हुए हैं। उनमें मुख्य तत्व हैं भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास, संवैधानिक उत्तरदायित्व एवं राष्ट्रीय पहचान का संवर्द्धन करने वाले पाठ्य बिन्दु।

हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में धर्मान्धता, हिंसा, अंधविश्वास एवं भाग्यवादिता के संघर्ष पर बल दिया गया है। समानता के लिए शिक्षा के अंतर्गत महिला समानता, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अल्पसंख्यकों की शिक्षा जैसे उपायों की संरचना की है।

संदर्भ

1. सं. एलिन्स एच हैबिन, ह्यूमन डिग्निटी-दि इंटरनेशनलाईजेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स, पृ.2
2. माधवराव सिंधिया बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1971) प्रथम, एस.सी.सी., पृ. 85

3. डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा, भारत में मानव-अधिकार, पृ. 1 (उदधृत)
4. सं. रमणिका गुप्ता, दूसरी दुनिया का यथार्थ, पृ. 116
5. भारत का संविधान, अनुच्छेद 29, पृ. 17, संस्करण 1950
6. सुशीला टाकभोरे, संघर्ष, पृ. 29
7. डॉ. वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, मिशन बाबा साहब अम्बेडकर, पृ. 54
8. सुशीला टाकभोरे, संघर्ष, पृ. 67
9. एस.एल. सागर, शिक्षा और डॉ. अम्बेडकर, पृ. 56
10. डॉ. कुसुम मेघवाल, ज्वालामुखी, पृ. 11
11. वही, पृ. 16-17
12. रजतरानी मीनू, हम कौन हैं, पृ. 35
13. वही, पृ. 42
14. डॉ. ऊषा अग्रवाल, मानव अधिकार पत्रिका, चतुर्थ अंक, वर्ष 2007, पृ. 119
15. डॉ. सुशीला टाकभौरे, संघर्ष, पृ. 29
16. वही, पृ. 30
17. वही, पृ. 81, 82

डॉ. जागीर नागर
सहायक प्रवक्ता हिन्दी
इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी

रजत रानी मीनू की कहानियों में दलित चेतना

–डॉ. सुमन रानी

हिन्दी साहित्य में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई अस्मिताओं का उदय हुआ। इस उदय की कसमसाहट कई वर्षों पहले साहित्य के माध्यम से हम जानते हैं, लेकिन जहाँ तक है 'दलित अस्मिता' की शुरूआत मध्यकालीन भक्ति काव्य में दिखाई देती है। लेकिन भक्ति काव्य में दलित शब्द का अर्थ और उत्पत्ति के संबंध में संत कवियों के विचार आज के समय से भिन्न थे। आज इक्कीसवीं सदी में दलित साहित्य में दलित की अलग-अलग परिभाषाओं से हम परिचित होते है। सभी दलित विद्वानों ने दलित शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में कुछ गैर दलित लेखकों ने भी दलित शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है। जो दलित लेखकों द्वारा की गई परिभाषा से भिन्न है। दलित शब्द का अर्थ दलितों के अनुसार दलित वह व्यक्ति है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक तौर पर समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ा है जिसका गैर दलितों ने दलन, शोषण और उत्पीड़ित किया है। जबकि गैर दलित लेखकों का मानना है कि दलित वह व्यक्ति है, जिसका शोशण किया गया है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार-''यह समाज का वह निम्नतम वर्ग है जिसकी विशिष्ट संज्ञा आर्थिक व्यवस्थाओं के अनुरूप होती है। उदाहरणार्थ - दास प्रथा में दास, सामंतवादी व्यवस्था में किसान, पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर समाज का दलित वर्ग होता है।''[1]

मानक हिन्दी शब्दकोश के अनुसार-''समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना गया हो या दुःखी और दरिद्र हो और उच्च वर्ग के लोग उठने न देते हो, जैसे भारत की छोटी या अछूत मानी जाने वाली जातियों का वर्ग (डिप्रेस्ड क्लास)।''[2]

'विकीपीडिया : एक मुक्त ज्ञान कोश' के अनुसार दलित-''दलित अर्थात् वे लोग जो आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े रहे और जिनका आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक रूप से प्राचीन काल में उच्च वर्ग के द्वारा शोषण किया गया था।'' इससे यह स्पष्ट है कि समाज अर्थात् वर्ग व्यवस्था में सबसे निचली पायदान वाले दलित कहलाते हैं।''[3]

डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' अनुसूचित जाति के अंतर्गत आने वाले वर्ग को 'दलित' की संज्ञा देते हैं। उनका मानना है कि 'दलित' वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है।''[4]

केवल भारती ने दलित की परिभाशा इस प्रकार व्यक्त की है कि ''दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है, जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।''[5]

इस परिभाषा के अनुसार ''दलित' वे हैं जो समाज में अछूत है और भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति के नाम से जाने जाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जो सामाजिक एवं आर्थिक दोनों दृष्टियों से दबे हुए हैं या दबाये गये हैं, वे दलित हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित' की परिभाषा इन शब्दों में व्यक्त की है - ''दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा है, उसका दलन हुआ, इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जातियाँ कहा गया है जा जन्मना अछूत है।''[6]

इसी प्रकार डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' और कंवल भारती की ही तरह ओमप्रकाश वाल्मीकि अनुसूचित जाति और समाज के निचले पायदान वाले वर्ग को, जिन्हें अछूत माना जाता है, उन्हें दलित की कोटि में रखते हैं।

शरण कुमार लिंबाले के अनुसार - दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गांव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियां, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियां सभी के सभी 'दलित' शब्द की परिभाषा में आती है। दलित शब्द की परिभाषा में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा। इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा।''[7]

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि शरण कुमार लिम्बाले दलित की परिभाषा में अछूत, आदिवासी, मजदूर और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्ग को शामिल करते हैं।

आधुनिक हिन्दी कोश के अनुसार दलित वह है - ''जिसका दलन हुआ हो, कुचला हुआ, मर्दित, खंडित, दमित। विशेषतः समाज का वह निम्न वर्ग जिसे सामाजिक न्याय और आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त न हो।''[8]

सोहनपाल सुमनाक्षर ने दलित की परिभाषा इस प्रकार लिखी है - ''दलित वह है जिसका 'शोषण' किया गया हो, उत्पीड़ित किया गया हो। उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं। इस तरह 'दलित' शब्द की परिभाषा के अंतर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक बंधनों में बाधित नारी एवं बच्चे भी इसमें शामिल हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही है। दलित शब्द जहां व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने गौरवमयी इतिहास पर दृष्टिपात करने को बाध्य करता है, वहीं अवगति, वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के विषय में सोचने के लिए भी विवश करता है।''[9]

दलित 'आइडेंटिटी' मुख्य रूप से 'दलित अस्मिता' की ही परिचायक है। इसीलिए शाब्दिक रूप से 'आइडेंटिटी' के लिए हिन्दी में 'अस्मिता' या 'पहचान' का प्रयोग स्वीकार्य माना गया है।

'आइडेंटिटी' का हिन्दी में कोई एक विशिष्ट अर्थ का प्रचलन नहीं है। 'पहचान', 'अस्मिता' और 'विशिष्टता' का अर्थ के रूप में विभिन्न अनुशासनों में प्रयोग होता रहता है।

हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 में 'मैं हूँ' की अभिव्यक्ति 'आत्मचेतना' में होती है। यह चेतना का एक विशिष्ट रूप है।' ... जब हमें यह चेतना हो कि हमें अमुक अनुभव हो रहा है तो वह 'आत्मचेतना' है। 'आत्मचेतना' का दार्शनिक महत्व बहुत अधिक है। इसी के आधार पर विज्ञानवादी और प्रत्यक्षवादी दार्शनिक आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। उस अर्थ में यह शुद्ध अहम् अथवा आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव है। 'मैं हूँ' यह बोध चेतना साहित्य में उस शब्द के मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों की अर्थ रूढ़ है।[10]

लेकिन आत्मचेतना शब्द से केवल व्यक्ति की दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक अर्थव्यंजना ही व्यंजित होती है। वह 'अस्मिता' की सामूहिक व सामाजिक पहचान और उसकी बाध्यता के हेतुओं की ठीक तरह से व्याख्या करने में असमर्थ है। इसीलिए 'आत्मचेतना' 'अस्मिता' का पर्याय और द्योतक नहीं बन सकती।

'अस्मिता' का गहरा सम्बन्ध 'व्यक्तिवाद' से है। और आधुनिकता को स्पष्ट करने के लिए व्यक्तिवाद एक औजार का काम करता है। आज के दौर में हम जो भी अस्मितामूलक बहस या अस्मिता की समस्याएँ, अस्मिता विमर्श पर विचार-विमर्श करते हैं, उन सबके मूल में आधुनिकता एक तरह से कुंजी की तरह काम करती है। द्वितीय विश्व युद्ध में व्यापक स्तर पर जनहानि हुई। और उसके फलस्वरूप व्यक्ति की महिमा को बहुत अधिक महत्व दिया जाने लगा था। उसी दौर में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा हुई। और इस व्यक्तिवाद से 'आत्म' के पहचान की बहस का प्रारंभ होता है। इस प्रकार व्यक्ति विशेष अपनी पहचान एक नहीं दो धरातलों पर बनाता है। एक वह जो उसका निजी व्यक्तिगत छोटा सा समाज है, जिसका वह अभिन्न अंग है। दूसरा वह विराट और व्यापक समाज, जिसमें वह प्रवेश पाना चाहता है, ताकि वह अपने आप को बाह्य दुनिया से जोड़ सके और किसी प्रभुत्व इकाई का भाग बन सके।

इस कारण 'अस्मिता का प्रश्न' जहाँ एक ओर अपने आप को दूसरों से (साधारण से) विशिष्ट तथा खास एवं अलग करना है। वहीं दूसरी ओर उन लोगों के समुदाय में उभयनिष्ठता एवं समानता बनाए रखना है। जिन्होंने एक विशिष्टता की अवस्था को प्राप्त कर लिया है। उदाहरण के तौर वर्ण-व्यवस्था में निम्न या शूद्र वर्ग अपने आप को ब्राह्मण समुदाय के करीब आने की चेष्टा करता है।

अम्बेडकर ने 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' का नारा दिया। इनका संघर्ष कार्लमार्क्स के वर्ग संघर्ष से जरा हट कर शान्तिपूर्ण संघर्ष है। इस संघर्ष में सवर्णों द्वारा दलितों के लिए निर्धारित पेशों से मुक्ति पाना है, जैसे-टट्टी साफ करना, मृत पशुओं को उठाना, उनकी खाल उतारना, उनका मांस खाना, विद्यालयों में बिना रोक-टोक के शिक्षा प्राप्त करना, राजनीतिक और प्रशासनिक गतिविधियों में निःसंकोच भागीदारी करना, अपने मनपसंद पेशों को अपनाना, बेगारी और बन्धुवा मजदूरी से इनकार करना।

दलितों पर सबसे अधिक अत्याचार उन्हें अछूत मानकर उनके भावात्मक शोषण द्वारा ही किया जाता रहा। शारीरिक उत्पीड़न से कम और 'अछूत' शब्द द्वारा दिए जाने वाले मानसिक उत्पीडन से वे अधिक आहत होते रहे हैं। दलित ने जिस क्षेत्र में भी अपनी योग्यता को प्रमाणित करना चाहा, सवर्णों ने हमेशा उन्हें मानसिक रूप से प्रताड़ित किया। सवर्णों द्वारा निकले एक-एक शब्द कलेजे को चीरने वाले होते थे। उस एक अछूत शब्द का प्रभाव कितना गहरा और दर्दनाक होता था।

फरमान कहानी में ठाकुर का बंधुआ कर्मवीरा झूठे इल्जाम में ठाकुर के द्वारा मौत के घाट उतार दिया जाता है। कर्मवीरा की पत्नी लीलावती को अपमानित किया जाता है। सदियों से संताप झेल रही स्त्रियां वर्ण वर्ग द्वारा शोषित पीड़ित होती रही है। ठाकुर के कारिंदे लीलावती को गाली

देते हुए कहते हैं - ''चुप रह चमरिया। ज्यादा मत इतरावै, अबइ पतौ चल जाइगो। बहुत दिमाग आसमान पै चढ़े हैं तेरे।'' इस तरह ठाकुर का कारिंदा बड़बड़ाता चला गया।''[11]

उधर कर्मवीरा को ठाकुर की भैंस चोरी के इल्जाम में ठाकुर के कारिंदे रस्सियों से बांधकर उसे ठाकुर के पैरों में गिरा देते हैं। अनुनय करते कर्मवीरा को ठाकुर ने निर्लज्ज मुस्कान बिखेरते हुए न्याय को धता बताते हुए स्वयं ही सजा सुना दी - ''मैं तेरी बात पर विश्वास कर भी लूं तो सारे गांव वाले मुझ पर विश्वास करना बंद कर देंगे। यदि मैं तुझे दो दिन की मोहलत देता हूँ तो तू इन दो दिनों में अपनी बेगुनाही साबित कर सकता है। भैंसिया ढूंढ सकता है, तो तू बच जाएगा, वरना ...।''[12]

'मिट्ठू की विरासत' कहानी में मिट्ठू के द्वारा नया घर बनवाने पर खचेडू प्रधान का बिगड़ना सामाजिक गुलामी का प्रतीक है। दलितों पर केवल सवर्ण ही नहीं सवर्णों की हाँ में हाँ मिलाने वाले दलित भी अत्याचार करते हैं। खचेडू प्रधान मिट्ठू पर बिगड़ते हुए कहता है कि - ''मिट्ठू तोय मालूम है, मैं कौन हूँ? साब मैनेहूं कै दई, हाँ मालूम है, तू खचेडू है।'' इतनौ बोलो थे मैं, वो चीख कै बोलो - ''मैं खचेडू हूँ।' कह कै वो मोसे चिपटन कूं दौड़ा। मैं पीछे हट गयौ। मोय बिना बात कोई रार नांय बढ़ानी थी लेकिन ऐसे समय में मैंने दबनो ठीक नांय समझो। सो मैं तन के ढाडो हुई गयौ। मैंने कहीं तू जब तें पिरधान बनो है तब से अपनिन से ही काहे लड़त है? हमने तेरो का बिगाड़ौ है? तौय लड़न को इतनौ ही सौक है तो उन ठाकुर, रावन के घर लड़ जा कै। जहाँ तू अपनी पगड़ी पहनि के देहरी पर चढन की हिम्मत नाय रखत है। क्यों अपनो प्रधानी को बस्ता पंडित रामसरन के ढ़िग रखत है? क्यों तू ठाकुर के सामने भीगी बिल्ली बनकै कहत है- ठीक है सरकार, जैसो आप ठीक समझे। आप लोगन की ही तो हम खात है।'' अरे हम और तुम काहु की नाय खात हैं। अपनी मेहनत की खात है। उलटे वे खात हैं हमारौ हिस्सो, हमारी मेहनत। हमारे घर में घुस कै बन गये सुथरे मुँह के और हमें बनाय दौ अछूत।''[13]

मिट्ठू की बातें दलितों के भीतर अपनी अस्मिता के प्रति अहसास की एक चिंगारी पैदा करती है, जो धीरे-धीरे दावानल का रूप धारण करती गई, आज भी वह चिंगारी करोड़ों दलितों के अंदर सुलग रही है। आज दलितों को अपनी अस्मिता का, स्वाभिमान का तथा मनुष्य होने का अहसास हो चुका है।

भारत के बड़े समुदाय अर्थात् हिन्दू समुदाय की स्थापना ही असमानता के सिद्धान्तों के आधार पर हुई, जिसमें समाज को चार वर्णों में विभाजित करते हुए वर्ण के अलग-अलग अधिकार और कर्त्तव्य निर्धारित किए गए, अर्थात् समानता के सिद्धान्त को नकार दिया गया, समानता के सिद्धान्त को न केवल नकारा ही गया वरन् दासता को भी स्थान दिया गया और समाज के शूद्र वर्ग को दास की ही श्रेणी में रखा गया, जिसके कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं थे उसका अधिकार केवल अन्य सभी वर्णों की सेवा करना था, फिर हमारे समाज के अधिकांश केवल अन्य मानवीय व्यवहार भी नहीं किया गया, आश्चर्य की बात तो यह है कि विभिन्न वर्णों के व्यक्तियों के लिए अलग-अलग कानून बनाए गए, शूद्रों को विचरण तथा रहने के लिए स्थान चयन करने की स्वतंत्रता भी नहीं दी गयी। उनको सावर्जनिक मार्ग और सार्वजनिक स्थानों पर जाने की अनुमति नहीं थी और न वह अपने मकान किसी मनचाही जगह पर बना सकते थे उन्हें तो गाँव के दक्षिण और पूर्व में ही रहना था, जहाँ से उनका स्पर्श करने वाली हवा गांव के सवर्णों पर न पड़े।

जातिगत भेदभाव, ऊँच नीच और छुआछूत के विषाणु पूरे विश्व में फैले हुए हैं। ब्राह्मणवाद ने भारतीयता का विकास नहीं होने दिया और भारतीयता के विकास के बिना भारतीय संस्कृति विकसित नहीं हो सकती। दलित संस्कृति यह है कि सब मनुष्य समान है। हर मनुष्य की मानवीय गरिमा होती है। हर मनुष्य को अपनी इच्छानुसार जीने की आजीविका के लिए कार्य करने या व्यवसाय चुनने की, शिक्षा पाने की, आने-जाने की, कपड़े पहनने की, खान-पान की, धर्म की, उपासना की, विचार अभिव्यक्त करने की आजादी हो, समानता का भाव हो। ऊँच नीच, छोटा बड़ा का भेदभाव न हो। संस्कृति क्या है? हम जो होते हैं वह संस्कृति है। तो दलित साहित्य इन मूल्यों की मानवीयता की मानव अधिकारों की बात करता है। समानता, स्वतंत्रता ये दलित संस्कृति के मूल्य है। यही दलित संस्कृति है। समानता की संस्कृति, यह अस्तित्व एवं शांति की संस्कृति। किन्तु दलित को न तो सम्मान मिलता है न स्वतंत्रता। भारतीय संस्कृति में दिखावे की संस्कृति घर कर गयी है। दलितों का अपमान करके सवर्ण लोग अपनी ओछी मानसिकता का परिचय देते हैं।

'भाईचारा' कहानी में गीतांजलि द्वारा कहा गया संस्मरण में दलितों के प्रति उनकी घृणित मानसिकता को उजागर किया गया है। चाय की आखिरी चुस्कियाँ लेते हुए गीतांजलि ने अपने घर आये उस नये मेहमान का संस्मरण सुनाया - ''भाभी जी पिछले सप्ताह हमारे गांव से एक धोबी आया। हम सब परेशान थे क्या करें? घर पर तो मम्मी इन छोटी जात वालों का गिलास अलग रखती है। ... भाभी जी, उसी धोबी का लड़का हमारे घर आ गया। वह पढ़ा-लिखा भी था। यदि उसे खाना नहीं खिलाओ तो भी बुरी बात है।

इधर दीपांशु भी व्यंग्य कस रहे थे -

''तुम्हारा भाई आया है। खाना तो खिला ही दो। नहीं तो वह बेचारा क्या सोचेगा? भाभी जी मैं, बड़ी असमंजस

की स्थिति में फंस गयी। क्या करूं क्या नहीं। तब मुझे याद आया कि हमारे पास प्लास्टिक की प्लेट और कटोरा पड़ा था जिसमें हम अपने प्यारे डॉनल को खाना खिलाते थे। बेचारा बहुत वफादार निकला। किसी की आहट पाते ही वह भौंक-भौंक कर पूरा घर भर देता था। उसके मरने के बाद उसकी याद में उसके बर्तन संभाल कर रखे थे। मैंने वे बर्तन निकाले, उसी में परोस कर उसे खाना खिलाया।

''वह जाते समय बच्चों को 50-50 रूपये दे गया। पर जाकर उसने गांव में खूब तारीफ की। जब मुझे पता चला तो मेरी तो नाक ही कट गयी। मैं पानी-पानी हो गयी। माँ-पिता जी अलग से बिगड़ रहे थे, कि तुम भले शहर चली गयी, सब भूल गयी। नियम धरम। इन नीच जात वालों की जगह कहाँ है, तुम्हें नहीं मालूम।''[14]

सदियों से संताप झेल रहे दलितों के मसीहा डॉ. अम्बेडकर ने कदाचित इसीलिए भारत के संविधान को यथाशक्ति श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न किया है। इसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी महान विचारधाराओं और आदर्शों को सफल बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें देश की पुरानी विषमतावादी, अमानवीय, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर समता, न्याय और समान अवसरों की सुविधा और सुरक्षा सभी नागरिकों को समान रूप से दिए जाने की व्यवस्था है। इसमें दलितों (शूद्रों) और स्त्रियों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध है। भारतीय संविधान में स्त्री पुरुष में किसी भी प्रकार का भेदभाव न मानते हुए कानून के रूप में उन्हें समान अधिकार दिए गए हैं।

दलितों के लिए अपने संघर्ष के आरम्भिक काल से ही मुख्य समस्या सामाजिक स्वतंत्रता की रही है। सामाजिक गुलामी से मुक्ति ही अछूतों के लिए आजादी का अर्थ था। उनके लिए सामाजिक दासता ही उनके आर्थिक विकास में बाधा थी। भारतीय समाज में आर्थिक ढांचा वर्गीय था और राजनीतिक सत्ता का समूचा तन्त्र दलित-मुक्ति के विरुद्ध था। इसलिए सामाजिक असमानता बनी रही।

मृतक जानवरों को उठाना, उनकी खाल निकलना, मैला उठाना, नाल काटना, जैसे गन्दे कामों के खिलाफ दलित आन्दोलन सक्रिय होने लगा। यह आन्दोलन अस्मिता बोध और स्वाभिमान का नवजागरण था। सभी दलित गन्दे काम छोड़ने और अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए जागरूक हो रहे थे।

दलित रचनाकार सामाजिक न्याय के मार्ग में जात-पात पर आधारित व्यवस्था को सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। समाज का सबसे घृणित माना जाने वाला काम सवर्ण समाज का व्यक्ति नहीं करेगा, यह विधान आज तक चला आ रहा था।

हजारों सालों के ऐतिहासिक परिदृश्य में दलितों ने जो सामाजिक उत्पीड़न सहा है, भेदभाव और शोषण ने उसके मस्तिष्क पर जो गहरी रेखाएँ खींची हैं। ऐसी वर्ण-व्यवस्था में उपजी विषमताओं और विसंगतियों को दृष्टि में रखकर ही दलित साहित्य का सृजन होना चाहिए, लेकिन कुछ दलित लेखकों ने रोटी और राजनीति की अपेक्षा सामाजिक न्याय या सामाजिक बराबरी को ही विशेष महत्व दिया। ठोस आर्थिक नींव और राजनीतिक हिस्सेदारी के बिना सामाजिक न्याय की उपलब्धि नहीं हो सकती।

''अब ऊँची जाति के लोग भी वह सब करने को तैयार है, जिसे कभी वे वर्जित समझते थे। पहले यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि कोई ब्राह्मण युवक सफाई का काम करने को तैयार होगा, भले ही कितनी मजबूरी क्यों न हो। यदि सवर्ण जाति के युवा सफाई के काम को सहर्ष स्वीकार करते हैं तो माना जा सकता है कि समाज में जातिगत नफरत समाप्त हो रही है, लेकिन वोट बैंक की राजनति है कि समाज में जातिगत नफरत की इतनी परतें जमा हो चुकी हैं कि जातिविहीन समाज की कल्पना करना भी दूर के ढोल की तरह है। अनुसूचित जातियों के साथ ही पिछड़ी जातियों का आरक्षण के लिए आन्दोलन राजनीति के वोट बैंक से प्रेरित है। ऐसी स्थिति में दलित अस्मिता और सामाजिक न्याय की उपलब्धि असंभव बन सकती है।''[15]

भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था के लाभार्थी मुश्किल से पन्द्रह प्रतिशत है, इसके बावजूद समाज का अधिकांश हिस्सा इसका कड़ाई से पालन करता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि यहाँ समाज का निचला से निचला तबका भी अपनी हीनता ग्रंथि छिपाने के लिए अपने से नीचे एक तबका ढूंढ लेता है, यह फिर झूठे गर्व के लिए अपनी उत्पति या अपने पूर्वजों से सम्बन्धित कोई मिथक गढ़ लेता है।

जब हम इतिहास के पन्नों को पलटते हैं तो पाते हैं कि दुनिया के विभिन्न देशों में पुरानी पड़ गयी सड़ी-गली मान्यताओं को नकार दिया गया तथा नई मान्यताओं को अपना लिया गया, जिससे सार्वजनिक रूप से समाज के हर व्यक्ति को लाभ पहुंचे। पुरानी व्यवस्था मान्यताएँ जब सीमित व्यक्तियों या समूहों के हित के लिए बनी हों तो उसे बदलना जरूरी समझा गया। समता, बंधुत्व भाईचारे के बीच पुरानी मान्यताएँ दीवार बनकर खड़ी थीं, इसीलिए उन्हें ढाह दिया गया। दूसरी ओर भारत में इस प्रकार के कार्य की गति इतनी धीमी रही या आज भी इतनी धीमी है कि उसे अलग से आका नहीं जा सकता। कमोबेश वही सड़ी-गली मान्यताएँ आज भी कायम हैं। यही कारण है कि मानव अधिकार जैसी विचारधारा मानों यहाँ पनप ही नहीं पाई।

आज मीडिया के जितने भी साधन हैं चाहे वह टी.वी. हो या रेडियो, समाचार-पत्र हो या पत्रिकाएँ सभी में आए दिन यही खबर देखने या पढ़ने को मिलती है कि कहीं एक समुदाय ने दूसरे समुदाय का गांव जला डाला तथा पूरे मुहल्ले को फूंक डाला। कहीं किसी ने जाति धर्म के नाम पर कत्ल कर दिया, तो कहीं किसी लड़के-लड़की को इसलिए मार डाला गया, क्योंकि दोनों ने शादी कर ली थी और दोनों बेमेल जाति के थे। हर दिन इसी प्रकार के समाचारों से समाचार-पत्र भरा रहता है। वास्तव में ये घटनाएँ दर्शाती हैं कि, इस देश में जाति, धर्म के नाम पर मानवाधिकार का हनन जारी है। जाति, धर्म पर आधारित समाज ने समाज के सभी लोगों को समान अधिकार से वंचित कर रखा है। जब कोई प्रताड़ित व्यक्ति अपने अधिकार और सम्मान की बात उठाता है तो उसे हिंसा से दबा दिया जाता है।

'वह एक रात' कहानी में पुजारी के द्वारा सुरेश चमार को धर्मशाला से धक्का देकर बाहर निकाल दिया। वह कहता है कि - ''मतलब गे है कि तुम सेठ धर्मदास की धर्मशाला में चमार-भंगिन को हूँ घुसावन लगे तो हम ऊँची जात के लोग कहाँ ठहरेंगे?''

पुजारी को कुछ गड़बड़ी लगी तो वे अपनी सफाई देते हुए बोले - 'गे तौ अपने को प्रधान सुखीरा चौधरी कौ रिश्तेदार बताबत हतौ।'

झूठ कह रहौ, गे तौ सेवकराम चमरा कौ नाती सुरेश चमार है। ''घोर अनर्थ हो गया, सत्यानाश हो या कपटी कौ! तेरी हिम्मत कैसे भई सेठ धर्मदास की धर्मशाला में घुसिवे की। मानो कि वे दरियादिल है, बेशक उन्होंने धर्मशाला धर्मार्थ बनवाई है, पर या कौ मतलब गे तौ नांय हतुइ कि जो कोई भंगी-चमार मुंह उठाए चलो आवे, हम सब कि सेवा करिबे कूं बैठे है। तुम्हारे बाप के नौकर लगे हैं का? गे धर्मशाला है! पवित्र हिन्दु मन्दिर वारी धर्मशाला। बीसियों गामनु में मशहुर है, विलायती होटल नांय हतुइ जामें सब जातिनु के लोग एक संग बैठि कै जैमि लै। कहते हुए उसने अपने लठैतों को आवाज दी-''सुनो रे! बुधुआ, चरना, मंगरू जल्दी दौड़ के आओ रे! गे कहिं चपरि न जाए!'' कहाँ देखते नजारा कुछ से कुछ हो गया था।''[16]

दलितों पर उत्पीड़न का प्रमुख विषय अस्पृश्यता रहा है। इन्हें मंदिर, कुंए, तालाब, स्कूल आदि के प्रयोग के लिए अभी तक रोका जा रहा है। इनकी आवासीय स्थिति अमानवीय है और उन्हें भूमि व अन्य संपति से वंचित रखा गया है। घृणित पेशे करने के लिए इन्हें मजबूर किया जाता है और बेगार ली जाती है।

'हम कौन है' कहानी में पब्लिक स्कूलों में व्याप्त अस्पृश्यता जाति-प्रथा आदि का उल्लेख करते हुए रजत रानी मीनू ने भीतरी तहों को उघाड़ा है। 'अजातिका' पब्लिक स्कूल में पढ़ती है किन्तु वहाँ भी जाति और नेम पूछा जाता है -''मम्मी बताओ न हमारा सरनेम क्या है? मैडम कल मुझसे फिर सवाल पूछेंगी।''

''क्या पूछेंगी?''

''वह कह रही थी कल मम्मी से पूछ कर आना।''

''हाँ हाँ बताऊँगी बेटा।''

अज्जू की बातें सुनकर उमा सोचने लगी। पब्लिक स्कूलों में भी सरनेम पूछा जाता है। यानी जाति पूछने का माडर्न तरीका। सरकारी स्कूलों के ब्राह्मणवादी संस्कारों के कर्मकाण्डी अध्यापक और ये मिशनरी स्कूलों में अंग्रेजी प्रभाव की आधुनिक शिक्षिकाएँ, क्या फर्क है दोनों में? उमा अपने छात्र जीवन की स्मृति में लौट गयी थी। हिन्दी अध्यापक श्री नित्यानंद शर्मा अक्सर एस.सी. छात्रों से भरी कक्षा में कहते थे-''ये एस.सी. छात्र-छात्राएँ वजीफे के लिए पढ़ते हैं।'' एस.सी. सहपाठिन मीना के लेट होने पर एटेडेंस लगाते समय अक्सर उनका तकिया कलाम बन गया था - ''आज फिर लेट हो गयी कमीना।'' उनकी बात सुनकर समूची कक्षा हँस पड़ती थी तो कभी उन अध्यापक के चहेरे के भावों को पढ़ने की कोशिश करते थे छात्र-छात्राएँ।''[17]

सामाजिक न्याय की स्थापना अम्बेडकर के जीवन का मुख्य लक्ष्य था यदि यह कहा जाए कि डॉ. अम्बेडकर आधुनिक भारत में अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के प्रतीक थे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। वे समाज में व्याप्त, भेदभाव, शोषण व अन्याय के विरुद्ध जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे। निम्न जातियाँ हिन्दू समाज में अन्याय व अत्याचार से सर्वाधिक पीड़ित थी। डॉ. अम्बेडकर जाति व्यवस्था के घोर विरोधी थे क्योंकि वे जाति को न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना में सबसे बड़ी बाधा मानते थे। उनका सोचना था कि जाति के चलते समाज में न्याय और लोकतंत्र की स्थापना की कल्पना करना बेकार है। दूसरे शब्दों में भारत में सामाजिक न्याय से अम्बेडकर का आशय जाति का पूर्ण विच्छेद है। हिन्दू समाज ने वर्णाश्रम धर्म के द्वारा हजारों सालों से दलितों को उत्पीड़ित और शोषित बनाए रखा है। हिन्दू वर्णाश्रम व्यवस्था में जो मान्यताएँ प्रचलित है और उन मान्यताओं में दलितों के प्रति जो अपमान, तिरस्कार और घृणा का भाव है उसे हिन्दू समाज तथा हिन्दू धर्मग्रंथों में जगह-जगह देखा जा सकता है। हिंदू वर्णवस्था की सारी मान्यताएँ दलितों के विरोध में खड़ी है। इस वर्णाश्रम व्यवस्था ने दलितों पर द्विजों का इतना निर्णायक सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक वर्चस्व कायम कर दिया कि उसे दंड शक्ति की उतनी जरूरत ही नहीं रह गई।

वर्ण व्यवस्था केवल एक धारणा ही नहीं है, बल्कि यह उन लोगों के व्यवहारों को भी प्रभावित करती है, मुख्यतः उन लोगों के जो इन सब पर विश्वास रखते हैं। गरिमा एवं आत्मसम्मान प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रिय है। तथा ये

दूसरे लोगों से पारस्परिक क्रिया के दौरान प्रसारित तथा विस्तारित होते हैं। दलितों को शोषित किया जाता है साथ ही साथ उनके कल्याण के लिए जरूरी मूल आवश्यकताओं से वंचित भी किया जाता है; क्या यह मानवीय गरिमा है?

निहित स्वार्थों को सुरक्षित रखने के लिए रचित पाखंड को रजत रानी मीनू ने बखूबी पहचान लिया है। जब वह अनुभव करती है कि दलितों को मानवीय स्तर से भी वंचित रखा गया है तब वह पूरी साजिश के प्रति बेबाक विद्रोह की आवाज बुलंद करती है। विद्रोही व्यक्ति समझौता परस्त नहीं हो सकता। अतः उसके विद्रोह में सामाजिक व्यवस्था के प्रति निषेध का भाव अवश्यभावी है। नकार में घृणा और तिरस्कार के भाव घुल-मिल जाते हैं। विद्रोह और निषेध से संघर्ष की चेतना मुखर होने लगता है। चुपचाप सहन करने की शताब्दियाँ गुजर गई हैं। अस्तित्व के लिए संघर्ष अनिवार्य है। इस संघर्ष का कोई अंत नहीं है। पर दलितों के जीवन में अब उसकी चेतना जग गई है। हजारों साल तक जातीय अपमान व घृणा से उत्पीड़ित लोग आज सम्मान चाहते हैं, आर्थिक सुधारों से पहले सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं। सवर्ण समुदाय के गरीब से गरीब व्यक्ति को भी सामाजिक स्तर पर दूसरों से सम्मान मिलता है, लेकिन आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न दलित को उसकी जातीय पहचान के कारण वैसा सम्मान नहीं मिलता। इसलिए दलित की पीड़ा आर्थिक कम सामाजिक ज्यादा है।

दलित लेखन केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक संदर्भों के साथ जुड़कर समूचे भारत की अस्मिता और मूल्यों की पहचानना बनता है। दलित साहित्यकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ रचनाकर्म से जुड़कर साहित्य की सृजनात्मकता में मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं और स्वतंत्रता, भाई-चारे की भावनाओं को स्थापित करता है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा, उसके सुख-दुख महत्वपूर्ण है। उसमें दलित हो या स्त्री उसके प्रति तादात्म्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है।[16]

रजत रानी मीनू ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई है। लेखिका ने 'हम कौन हैं' कहानी संग्रह में बताया है कि किस प्रकार दलितों को अछूत कहकर उनका भावात्मक और सामाजिक शोषण किया जाता है। उन्हें अपमान और तिरस्कार को सहन करना पड़ता है। फरमान मिट्ठू की विरासत, वह एक रात, भाईचारा आदि कहानियों के माध्यम से रजत रानी मीनू इन कारणों की पड़ताल करती है जिनके द्वारा सवर्ण-दलितों को पशु तुल्य जीवन जीने के लिए विवश कर देते हैं, वे सामाजिक धरातल पर उनके द्वारा किए जा रहे शोषण का शिकार हो रहे हैं। वे ऐसे बंधन में जकड़े हैं जिसे तोड़ पाना उनके लिए आसान नहीं।

ब्राह्मणवादी मानसिकता आज भी दलितों को सामाजिक हैसियत से बराबरी का दर्जा देने को तैयार नहीं है। जहाँ उन्हें अवसर मिलता है अपमान करने से बाज नहीं आते। उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि तुम कितना भी पढ़ लिख जाओ। कितने ही ऊँचे ओहदों पर पहुंच जाओ। तुम नीच तो नीच ही रहोगे। तुम हमारी बराबरी नहीं कर सकते। इसलिए साहित्यिक आन्दोलन के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों की आज महती आवश्यकता है।

दलितों की मुक्ति का प्रश्न एक दिन में पैदा नहीं हुआ, यह सदियों से चला आ रहा है। दलितों के प्रति जो संकीर्ण मानसिकता है वह एक दिन में नहीं बनी इसको बनने में भी सदियाँ लगी हैं। जिस व्यवस्था को बनने में सदियाँ लग गईं, वह एक झटके में, एक दिन में नहीं तोड़ी जा सकती। दलितों की मुक्ति के लिए निरन्तर लंबी लड़ाई लड़नी होगी, निरन्तर लिखना होगा। दलित अस्मिता एवं दलित मुक्ति के लिए हमें निरंतर आगे बढ़ना होगा। तभी दलित अस्मिता के प्रश्नों का समाधान हम करने में सफल हो सकते हैं।

सदर्भ

1. डॉ. नरेन्द्र सिंह, दलितों के रूपान्तरण की प्रक्रिया, पृ. 7
2. आचार्य रामचन्द्र वर्मा, लोक भारती मानक हिंदी हिंदी कोश, पृ. 420
3. http://hi.wikipedia.org/wiki/dalit.
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 13
5. उत्तर प्रदेश दलित साहिय विशेषांक, सितम्बर-अक्टूबर, 2002, पृ. 13
6. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 14
7. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिम्बाले, पृ. 42
8. आधुनिक हिन्दी शब्दकोश, सं. गोंविन्द चातक, पृ. 273
9. विश्व धरातल पर दलित साहित्य, सोहनपाल सुमनाक्षर, पृ. 9
10. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, सं. पृ. 78
11. रजत रानी मीनू, हम कौन हैं, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2017, पृ. 25
12. वही, पृ. 25
13. वही, पृ. 60
14. वही, पृ. 92-93
15. डॉ. ललिता कौशल, हिंदी दलित साहित्य और चिंतन, पृ. 85
16. रजत रानी मीनू, हम कौन हैं, पृ. 74
17. वही, पृ. 18
18. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 25-26

डॉ. सुमन रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी
श्री लालनाथ हिन्दू कॉलेज, रोहतक, हरियाणा

बौद्ध धर्म एवं डॉ. अंबेडकर का योगदान 'नव बौद्ध यान' के रूप में

–प्रीति गहलोत

आज से लगभग छब्बीस सौ वर्ष पूर्व सिद्धार्थ गौतम ने अपने अथक परिश्रम के द्वारा चार असंख्य और एक लाख कल्प तक 'पारमी' के संकल्प को 'बोधिसत्व' के रूप में पालन करते हुए अपने तीक्ष्ण प्रज्ञा-द्वारा प्रकृति में विलुप्त विपश्यना ध्यान साधना विधि का पुनः अनुसन्धान कर 'बुद्धत्व' को प्राप्त किया तथा 'सम्यक् बुद्ध' कहलाये। और ''चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकंपाय अत्थाय हिताय सुखाय देव मनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याण मंझे कल्याणं परियोसान कल्याणं सात्थं सव्यंजनं केवल परिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।'' अर्थात् - भिक्खुओं, बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए विचरण करो! आदि-मध्य-और अन्त सभी अवस्थाओं के लिये कल्याणमय धर्म का भाव और आचरण-सहित प्रकाश करते रहो!

इस भावना से अभिप्रेरित लगातार पैंतालीस वर्षों तक धम्म की शिक्षा को मुक्तभाव से वैश्विक सर्वकल्याण के लिए बाँटते रहे तथा इसे जनमानस के लिए व्यवहारिक रूप प्रदान किया। इस विपश्यना ध्यान साधना विधि के सतत् प्रयोग से अतीत से लेकर वर्तमान तक लाखों-करोड़ों लोग दुखों के संताप से मुक्त हुए। हम भी इस विद्या को धारण कर अर्थात् धम्म के अनुरूप आचरण कर दुःख मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं।

तत्कालीन समय में समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार के नकारात्मक प्रथाएँ जैसेः वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, धार्मिक अंधविश्वास तथा कर्मकांड, अप्राकृतिक एवं अवैज्ञानिकता, बलि एवं यज्ञ प्रथा, भाग्यवाद एवं आशीर्वाद वाद, सामाजिक असमानता के खिलाफ एक धार्मिक क्रांति, बौद्धिक क्रांति की थी और वैश्विक समाज में आमूलचूल बदलाव लाये थे और बौद्ध धर्म को संस्थापित किया।

ठीक उसी प्रकार डॉ. अंबेडकर ने 20वीं शताब्दी के आधुनिक भारत में वर्ण व्यवस्था, जातिवाद, नस्लवाद, धार्मिक कर्मकांड, ब्राह्मणवाद, सांप्रदायिकतावाद, छुआछूत के खिलाफ आमूलचूल परिवर्तन लाए थे। जिससे असंख्य शूद्रों, दलित, शोषितों, आदिवासियों, पिछड़ों का कल्याण हुआ और अंततः नव बौद्धयान की स्थापना की।

बुद्ध का आंदोलन एवं धम्म उपदेश सम्पूर्ण इहलोकीय भौतिक जीवन से लेकर पारलोकीय जीवन में दुखों से मुक्ति का मार्ग था। जिसकी दुखों की जड़ें अनेक जन्म-जन्मांतरों से जुड़ी थीं। परंतु डॉ. अंबेडकर का आंदोलन तत्कालीन इहलोकीय भौतिक जीवन में उपजे सामाजिक असमानताओं से भावित था जिसकी जड़ें प्राचीन काल से जुड़ी थीं तथा उसके परिणाम आने वाली पीढ़ियों को प्रकाशित करने वाला था।

वस्तुतः बुद्ध के आगमन से 'धम्म' का पुनः सृजन हुआ तथा धम्म का पुनर्शोधन किया। फलस्वरूप लोक कल्याण की भावना से अभिप्रेरित 'धम्म' का प्रसार-प्रचार किया, जिससे ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणी अपने-अपने सुख-शांति तथा निर्वाण की ओर अग्रसर होने लगे। 'धम्म' की प्रकृति को बताते हुए बुद्ध ने कहा कि -''एस धम्मो सनंतनो'' अर्थात् धम्म का स्वरूप या प्रकृति हर समय, हर काल में सदैव सनातन होता है, एक जैसा होता है। ठीक उसी प्रकार डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर ने आधुनिक भारत में बौद्ध धर्म अपनाकर वर्षों से दबी-कुचली, दलित, गुलाम, शोषित समाज को पुनःसृजित कर उनका दिग्दर्शन किया, इस अद्वितीय महान कार्य के लिए इतिहास उनको सदैव स्मरण करेगा।

वस्तुतः बुद्ध की शिक्षा तार्किक और वैज्ञानिक प्रद थी। एक बार बुद्ध ने कालामों को उपदेश दिया था कि हे कालामों! किसी तथ्य को केवल इसलिए नहीं मानना चाहिए कि यह तो परम्परा से प्रचलित है, अथवा प्राचीन काल से ही ऐसा कहा जाता रहा है, अथवा यह धर्मग्रन्थों में कहा गया है, अथवा किसी वाद के निराकरण के लिए इस तथ्य का ग्रहण समुचित है। आकार या गुरुत्व के कारण ही किसी तथ्य को स्वीकार नहीं करना चाहिए, प्रत्युत इसलिए ग्रहण करना चाहिए कि ये धर्म (कुशल) हैं, अनिन्दनीय हैं तथा इसको ग्रहण करने पर इसका फल सुखद और हितप्रद ही

होगा।

बुद्ध कहते हैंः एहिपस्सिको (आओ और देखो)

भगवान बुद्ध का धम्म इतना वैज्ञानिक है, कि अभी आओ, देखो, चखो। यह विज्ञान की प्रयोगशाला की भांति है। तुरंत फलदायी हैं। जो कार्य-कारण सिद्धांत पर आधारित हैं। बुद्ध कहते हैं कि-

स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चतं वेदितब्बो विञ्ञूहीति।

अर्थात् धम्म के गुणों को श्रद्धा पूर्ण चित्त से स्मरण करते हुए अपने आपको धर्म (धम्म) मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते रहना। अर्थात् बुद्ध के धम्म, शिक्षा को इस तरह समझ जा सकता है।

कार्य तुम्हें ही करना पड़ेगा, मार्ग कोई बता सकता हैः

''तुम्हेहिकिच्चंआतप्पं, अक्खातारोतथागता।

पटिपन्ना पमोक्खन्ति, झायिनोमारबन्धना।।''

अर्थात् कार्य के लिए तुम्हें ही उद्योग करना है, तथागतों का कार्य मार्ग आख्यात करना है। मार्ग पर आरूढ हो, ध्यान में रत, (पुरुष) के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

तथागत बुद्ध ने प्राणीमात्र के हित और सुख के लिए धम्म को प्रकाशित किया है। बुद्ध का उपदेश शील, समाधि और प्रज्ञा के पथ पर आरूढ होकर सर्व प्रकार के दुःखों से मुक्त होने के लिए है। तृष्णा का समुच्छेद करके भवचक्र से मुक्त होकर जीवन मुक्त होने के लिए बुद्ध ने उपदेश किया है। धम्म पथ पर चलना है, कोरी बात करने से धम्म का लाभ मिल नहीं सकता है। बुद्ध के उपदेश को मानने वाले उन उपदेशों पर बहुत चर्चा करते हैं, किताबें लिखते हैं, प्रवचन करते हैं, लेकिन उन उपदेशों का अनुशरण नहीं करते हैं। ऐसे लोग धम्म का सही लाभ नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

इसी परिपेक्ष्य में, डॉ. अंबेडकर की जीवन की संघर्ष यात्रा देखी कि डॉ. अंबेडकर ने किस प्रकार बचपन से कठोर वर्ण व्यवस्था, घोर जाति प्रथा, छुआछूत, अमानवीय व्यवहार, असमाजिकता का दंश झेल चुके थे, जिसे स्वयं था और कटु अनुभव किया था। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता और जातिवाद के चरम दौर में डॉ. भीमराव अंबेडकर का अवतरण किसी क्रांति और अभ्युदय से कमतर नहीं आंका जा सकता। अंबेडकर के पिता सेना में थे। उस समय सैनिकों के बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा की विशेष व्यवस्था हुआ करती थी। इस कारण अंबेडकर की स्कूली पढ़ाई सामान्य तरीके से संभव हो पायी। अन्यथा तो दलित वर्ग के बच्चों के लिए स्कूल में पानी के नल को हाथ लगाना भी वर्जित माना जाता था। अंबेडकर के हृदय में समाज की इस विचित्र और अन्यायपूर्ण व्यवस्था को लेकर बाल्यकाल से ही आक्रोश था। शनैः शनैः उम्र और ज्ञान के साथ उनके आक्रोश की अग्नि और भी तेज होने लगी।

परिणामस्वरूप, डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 13 अक्टूबर, 1935 को नासिक जिले के येओला में दलित वर्ग सम्मेलन में घोषणा की कि ''मेरा जन्म एक हिंदू के रूप में हुआ है लेकिन मैं एक हिंदू के रूप में मरूंगा नहीं।'' इसके अगले साल यानी 1936 में उन्होंने महार सम्मेलन के दौरान एक और भाषण दिया। जो 'मुक्ति कोण पथे' यानी 'मुक्ति का मार्ग क्या है' इस नाम से छपा। इस भाषण में उन्होंने सिलसिलेवार रूप से तर्क दिए कि दलितों को अपना धर्म बदलने की जरूरत क्यों है?

डॉ. अंबेडकर के इस ऐलान को करने भर की देर थी कि अलग-अलग धर्मों के प्रतिनिधि उन्हें लोकलुभावन प्रस्ताव देने लगे जिनमें क्रमशः सिख पंथ, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म इत्यादि। चूंकि बाबा साहेब ने ये घोषणा कोई जल्दबाजी में नहीं की थी बल्कि बहुत सोच विचार कर यह निर्णय लिया था। बाबा साहेब ने हिन्दू समाज को सुधारने, समता तथा सम्मान प्राप्त करने के लिए तमाम प्रयत्न किए, परन्तु सवर्ण हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन न हुआ। उल्टे उन्हें निंदित किया गया, देशद्रोही कहा गया और यहाँ तक कि उन्हें हिन्दू धर्म विनाशक कहा गया। तभी बाबा साहेब ने कहा था, ''हमने हिन्दू समाज में समानता का स्तर प्राप्त करने के लिए हर तरह के प्रयत्न और सत्याग्रह किए, परन्तु सब निरर्थक सिद्ध हुए। हिन्दू समाज में समानता के लिए कोई स्थान नहीं है।''

बीसवीं शताब्दी में भारत में आजादी के बाद 14 अक्टूबर 1956 को डॉ. बी.आर. अंबेडकर और लगभग 4-5 लाख समर्थकों द्वारा नागपुर (महाराष्ट्र) में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली गयी, बाबा साहब ने इन्हें नव बौद्ध कहा तथा बौद्ध धर्म के नए रूप को नाम दिया 'नवयान'। नवयान का अर्थ है, ''नया मार्ग'' या ''शुद्ध वाहन''। इसके अनुयायी ''आम्बेडकरवादी बौद्ध'' होते हैं, हालांकि अपनी मृत्यु से तकरीबन दो माह पहले और दीक्षा लेने से एक सप्ताह पहले 6 अक्टूबर 1956 को नागपुर के एक होटल में डॉ. भीम राव अंबेडकर ने घोषणा की थी कि ''मैं बुद्ध के सिद्धांतों को मानता हूं और उनका पालन करूंगा। मैं अपने लोगों को दोनों संप्रदाय हीनयान और महायान के विचारों से दूर रखूँगा। हमारा बौद्ध धर्म नया है 'नवयान'।''

डॉ. अम्बेडकर अपनी वैज्ञानिक और तार्किक सोच की वजह से संसार के किसी भी क्षेत्र में बसकर स्वाभिमान पूर्वक जीवन-यापन कर सकते थे। उन्होंने भारत के बहुजनों के हितार्थ भारत में ही रहने का फैसला किया। बाबा साहब ने मनुवादी व्यवस्था में व्याप्त अव्यावहारिक और रूढ़िगत परम्पराओं को बदलकर समता मूलक समाज की स्थापना करने का निश्चय किया। बस इन्हीं उद्देश्य के तहत उन्होंने भारत में ही रहने का निर्णय लिया।

इस तरह डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर ने लगातार 21

वर्षों तक विभिन्न धर्मों का गूढ़ रूप से अध्ययन किया और अंततः 24 अक्टूबर 1956 को बौद्ध धर्म को स्वीकार किया और नवयान के रूप में प्रवर्तित किया जिसे नव बौद्ध यान भी कहते हैं। यह धर्म डॉ. अंबेडकर और आने वाली पीढ़ियों को नवीन रूप से, स्वतंत्र रूप से सोचने, समझने, और आजादी से जीने का मार्ग प्रशस्त करता है। जिसमें भाईचारा, स्वतंत्रता, समानता प्रदान कर नई वैज्ञानिक सोच विकसित करता है।

संदर्भ

1. दीघनिकाय 2.1.31
2. धम्मपद -153,154
3. सुत्तनिपात, रतनसुत्त, 238
4. धममपद, सुखवग्गो, 204
5. विपश्यना पत्रिका संग्रह, विपश्यना, विशोधन विन्यास, ईगतपुरी,
6. बुद्ध जीवन परिचय, विपश्यना, विशोधन विन्यास, ईगतपुरी
7. अंगुत्तर निकाय, 1.134
8. दीघनिकाय (2.3.241-272), महापरिनिब्बानसुत्त
9. डॉ. आंबेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धर्म, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर, अनुवाद भदंत आनंद कौसल्यायन, 1997, पृष्ठ 28
10. चंद्रभान प्रसाद दलित, ''क्या मनुस्मृति दहन दिन मनाएगा संघ?'' BBC News हिंदी, मूल से 28 जून 2018
11. Mahabodhi and United Buddhist World, Vol-40, P-392 published-1931
12. प्रभाकर वैद्य. डॉ. आंबेडकर आणि त्यांचा धम्म, पृष्ठ 99
13. ''इसलिए बाबा अंबेडकर ने लाखों दलितों के साथ अपनाया था बौद्ध धर्म!'', https://m.aajtak.in. मूल से 2 अगस्त 2018
14. ''हिन्दू धर्म छोड़कर क्यों बौद्ध धर्म के हुए अम्बेडकर?'' www.navodayatimes.in. 14 अक्तू. 2017
15. ''डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म क्यों छोड़ा?'' Navbharat Times Reader^s Blog. 26 जून 2015
16. सुत्तपिटक, अंगुत्तरनिकाय - तिकनिपात पाळि (66) - महावग्ग, केसमुत्ति सुत?
17. धम्मपदः मग्ग वग्गो, 276
18. मेरी जीवन-यात्रा-2, राहुल सांस्कृत्यायन, (पृ. 19), राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2002

प्रीति गहलोत
शोधार्थी
विभाग-बौद्ध अध्ययन
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन का विश्लेषणः (एन.ई.पी.) 2020 ई. के विशेष सन्दर्भ में

–डॉ. सुलोचना सजवाण

''प्रत्येक मानव एक स्वयं विकशनशील आत्मा है और माता-पिता एवं शिक्षक दोनों का कार्य यही है कि वह बच्चे को इस योग्य बना दें और उसकी इस प्रकार सहायता करें कि वह स्वयं अपने को शिक्षित कर सके, स्वयं अपनी बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यग्राही एवं व्यावहारिक क्षमताओं को विकसित कर सके और एक सजीव सत्ता के रूप में स्वतंत्रतापूर्वक सवंद्वित हो सकें, न कि उसे किसी जड़ लचीले पदार्थ के समान गूँथकर तथा साँचे में दबाकर किसी विशेष रूप में ढाल दिया जाये।''

- श्री अरविन्द

शोध सारांश :

उन्नसवीं-बीसवीं सदी के महान चिन्तक श्री अरविन्द का शैक्षिक दर्शन सर्वांगीणता को समाहित करता है, जिसके अन्तर्गत एकीकृत शिक्षा का उनका दृष्टिकोण गहरायी से निहित है। श्री अरविन्द के शैक्षिक दर्शन का उद्देश्य, सार्वभौमिकता एवं सर्वांगीणता के सिद्धान्त को धारण किये हुये है, जो बालक के शारीरिक विकास, संज्ञानात्मक विकास, नैतिक विकास, भावनात्मक विकास और आध्यात्मिक विकास को समग्र रूप से केन्द्रित करता है। श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन प्रत्येक बालक की अद्वितीय क्षमता को विकसित करने पर केन्द्रित है। यह चिन्तन बालक को विविधता का सम्मान करना, विविधता के द्वारा एकता को प्राप्त करना, मानवता, प्रेम और स्वतन्त्रता के मूल्यों को विकसित करने के महत्व पर जोर देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.ई.पी.) 2020 ई. के अन्तर्गत, शिक्षा के प्रति जो सर्वांगीण-सार्वभौमिक दृष्टिकोण है, वह श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन का ही प्रतिबिम्ब है। यह एन.ई.पी. 2020, बालक के सर्वांगीण विकास, में विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षा, अंतर्विषयक अधिगम और भारतीय ज्ञान परंपरा के एकीकरण के महत्व को रेखांकित करते हुये वर्तमान वैश्विक शिक्षा व्यवस्था में इसकी आवश्यकता पर बल देती है। इस शोध आलेख में श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन के आलोक में एन.ई.पी. 2020 ई. का विश्लेषण करेंगे। जिसमें समसामयिक शैक्षिक व्यवस्था एवं उनके द्वारा संभावित योगदान के क्षेत्रों पर प्रकाश डाला जायेगा।

बीज शब्द- श्री अरविन्द, शैक्षिक चिन्तन, एकीकृत शिक्षा, एन.ई.पी. 2020, सर्वांगीण विकास

प्रस्तावनाः ''न तुम और न कोई अन्य मेरे जीवन के बारे में कुछ जानता है; यह सतह पर नहीं है कि मनुष्य इसे देख सके", स्वयं अपने बारे में प्रकट किये गये इन विचारों से श्री अरविन्द जिज्ञासुओं को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनके लिये खौलते रक्त वाले देशप्रेमी, कवि, आलोचक, योगी, अतिमानस के अग्रदूत, दार्शनिक, भारतीय राष्ट्रवाद के चैम्पियन, शिक्षा शास्त्री आदि कई विशेषण प्रयोग किये जाते हैं, लेकिन यह सब नाम हम मनुष्यों की अपनी-अपनी समझ के अनुसार हैं, क्योंकि इन शब्दों से हम उनका सीमांकन कर देते हैं। साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध नोबेल विद्वान 'रोमा रोलाँ' उनको पूर्व और पश्चिम का समन्वय मानते हुये विचार व्यक्त करते हैं कि, ''एशिया और यूरोप की प्रतिभाओं में सबसे अधिक पूर्ण समन्वय जिस व्यक्तित्व में हुआ है, वे श्री अरविन्द हैं।'' सर्वकल्याण चिन्तन के स्वामी, श्री अरविन्द का जन्म ब्रिटिश काल के भारत में 15 अगस्त 1872 ई. को, कलकत्ता में डॉ. कृष्णधन घोष तथा स्वर्णलता देवी के घर में हुआ था। पिता की इच्छा के अनुरूप, महज सात वर्ष की छोटी आयु में वह 1879 ई. में ब्रिटेन अध्ययन करने के लिये चले गये एवं चौदह वर्ष तक वहाँ पर रहकर वहाँ की भाषा, दर्शन, साहित्य, इतिहास आदि का अध्ययन किया। इक्कीस वर्ष के श्री अरविन्द 1893 ई. में भारत वापस आये और भारत की विभिन्न भाषाओं, दर्शन, साहित्य, इतिहास आदि का अध्ययन किया। क्योंकि वह पश्चिमी एवं पूर्वी भाषाओं, दर्शन, साहित्य, इतिहास आदि का गहन अध्ययन कर चुके थे अतः उनके विचारों में पश्चिमी एवं पूर्वी दोनों का समन्वय था। इसीलिये जब श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन की

बात आती है तो वह शिक्षक, शिक्षार्थी एवं विद्यालय को एकीकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं और यह तीनों अंग एक दूसरे के पूरक हैं और अभिन्न हैं। उनकी इस एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत, शिक्षक, शिक्षार्थी एवं विद्यालय में से प्रत्येक को उचित स्थान दिया गया है। इन तीनों अंगों में से किसी का भी आकलन कम नहीं किया गया है। पूर्व में जो शिक्षा व्यवस्था थी वह शिक्षक केन्द्रित थी, जबकि आगे के काल में शिक्षा व्यवस्था बालक केन्द्रित हो गयी, एकीकृत शिक्षा की योजना में, न तो शिक्षक और न ही शिक्षार्थी का एकमात्र महत्व है, बल्कि समग्र का महत्व है। श्री अरविन्द मानव क्रम विकास में योग को अपरिहार्य रूप से स्वीकार करते हैं, यह योग जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये अलग-अलग पड़ी योग्यताओं या शक्तियों के जागरण के लिये एक पद्धति है। सर्वांगीण विकास के जागरण की इन पद्धतियों के अभ्यास के लिये देश-विदेश में स्थित विभिन्न 'श्री अरविन्द एकीकृत अध्ययन केन्द्र' कार्य कर रहे हैं।

श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन में समाहित मूल तत्व-

• एकीकृत शिक्षा का विचार

श्री अरविन्द की एकीकृत शिक्षा की अवधारणा सर्वांगीण विकास के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें बालक के बहुआयामी विकास यथा, शारीरिक विकास, संज्ञानात्मक विकास, नैतिक विकास, भावनात्मक विकास और आध्यात्मिक विकास को शामिल किया गया है। श्री अरविन्द के एकीकृत शिक्षा सूत्र के अन्तर्गत, छात्र के जीवन के आन्तरिक एवं बाहरी सभी पहलुओं के महत्व एवं उसके पोषण पर विशेष बल दिया गया है। इसके अन्तर्गत सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करना, अभिसारी एवं अपसारी चिन्तन को प्रोत्साहित करना, और शिक्षा के द्वारा सर्वांगीण विकास के उद्देश्य की भावना को बढ़ावा देना है। श्री अरविन्द स्वयं कहते हैं कि भारत की अवनति एवं कमजोरी का जो मुख्य कारण है, वह है चिन्तन शक्ति का उत्तरोत्तर क्षय होता चला जाना। यह व्यवस्था विद्यार्थियों के जीवन के समक्ष चुनौतियों और आने वाले अवसरों के लिए छात्रों को तैयार करने के लिये, नैतिक विकास, भावनात्मक विकास और मूल्यों के साथ-साथ, पाठ्य एवं पाठ्य सहगामी अधिगम के एकीकरण पर बल देती है।

• स्व अधिगम पर आधारित

श्री अरविन्द स्व के द्वारा ज्ञान के सृजन की बात करते हैं। इसीलिये वह स्व अधिगम के दृष्टिकोण के पक्षधर थे। उनका यह मानना था, कि प्रत्येक छात्र अद्वितीय एवं विशिष्ट है, उसे कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता है, क्योंकि सभी में विकास की गति अलग-अलग है, उनकी शक्ति, उनकी रुचियाँ और सीखने की शैलियाँ भिन्न-भिन्न हैं। एकीकृत शिक्षा प्रणाली, अध्यापकों को छात्रों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, अपने शिक्षण विधियों और पाठ्यक्रम को बालक केन्द्रित करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो प्रत्येक छात्र के सर्वांगीण विकास और वृद्धि का समर्थन करने वाले स्व अधिगम के लिये, अनुभव जनित ज्ञान का सजृन करती है।

• अंतर्दृष्टि एवं आत्म चेतना का विकास

एकीकृत शिक्षा प्रणाली, आंतरिक या अंतर्दृष्टि एवं आत्म चेतना के विकास पर बहुत अधिक बल देती है, इसक अन्तर्गत छात्रों को अपनी आन्तरिक शक्तियों का पता लगाने, आत्म-जागरूकता पैदा करने एवं उसको बढ़ाने, अंतर्दृष्टि उत्पन्न करने एवं उसका अभ्यास करने और अपने पर्यावरण के प्रति गहरी समझ विकसित करने के लिये प्रोत्साहित करती है। इसके साथ-साथ श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन, आध्यात्मिक विकास और आत्म-साक्षात्कार के महत्व पर जोर देकर, करुणा, सहानुभूति और लचीलापन जैसे गुणों को महत्व एवं बढ़ावा देता है।

• अंतर्विषयक अधिगम

श्री अरविन्द विभिन्न विषयों में ज्ञान के अंतर्संबन्ध के महत्व को रेखांकित करते हुये, सीखने के लिये, एक अंतर्विषयक दृष्टिकोण के पक्षधर हैं। एकीकृत शिक्षा प्रणाली, विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों के बीच अंतर्संबन्धों का अन्वेषण करने के लिये प्रेरित करता है, संसार में घटने वाली विभिन्न घटनाओं को समग्रता से समझने के लिये एक बहुआयामी और महत्वपूर्ण चिन्तन एवं सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिये प्रोत्साहित करती है।

श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन के आलोक में एन.ई.पी. 2020 ई. का विश्लेषण

• विद्यार्थी-केन्द्रित दृष्टिकोण

एन.ई.पी. 2020 ई., शिक्षा में शिक्षार्थी-केन्द्रित दृष्टिकोण पर बल देती है, जो शिक्षार्थियों के सर्वांगीण विकास एवं उनकी व्यक्तिगत आवश्यकतों और रुचियों पर ध्यान केन्द्रित करती है। श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन इस दृष्टिकोण से संरेखित है, क्योंकि यह रटने या मानकीकृत परीक्षण के बजाय लचीलेपन के सिद्धान्त को बढ़ावा देता है, जिसकी प्राथमिकता है, छात्रों का सर्वांगीण विकास एवं व्यक्तिगत विकास। श्री अरविन्द शिक्षार्थी को केन्द्र में रखकर उसके मन को अध्ययन करने के सम्बन्ध में निर्देश देते हुये दिखते हैं, वे विचार प्रकट करते हैं कि, ''शिक्षा का सच्चा आधार है मानव मन का अध्ययन, शिक्षक का कलाकार या मूर्तिकार की तरह निर्जीव पदार्थ से नहीं, बल्कि अत्यधिक सूक्ष्म और संवेदनशील जीव से काम पड़ता है।''

• बहुविषयक शिक्षा

एन.ई.पी. 2020 ई. बहु-विषयक शिक्षा पद्धति को बढ़ावा देती है, जिसके अन्तर्गत छात्रों को विभिन्न विषयों

और उनसे सम्बन्धित सह-विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला का अन्वेषण करने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है। श्री अरविन्द का अंतर्विषयक अधिगम पर बल देना इसी बहुविषयक अधिगम दृष्टिकोण का पूरक है, क्योंकि यह छात्रों को ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य अन्तर्संबंध स्थापित करने और संसार के अन्दर घट रही घटना की समग्र समझ विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस अर्थ में छात्रों द्वारा ज्ञान का सृजन किया जाता है, न कि ज्ञान को बाहर से अध्यापक द्वारा मस्तिष्क में भरा जाता है।

• भारतीय ज्ञान परंपरा का समन्वय

एन.ई.पी. 2020 ई. के अन्तर्गत पारंपरिक कला, गणित एवं विज्ञान, साहित्य, राजनीति, न्याय और दर्शन सहित कई अन्य समृद्ध भारतीय ज्ञान परंपरा को पाठ्यक्रम में एकीकृत करने के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। जब हम श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं तो पाते हैं, कि दशकों पहले ही उन्होंने शिक्षा के अभिन्न घटक के रूप में वेद, योग, वेदांत, गीता और आयुर्वेद जैसी समृद्ध भारतीय ज्ञान परंपराओं के मूल्य पर बल दिया था।

• ज्ञान का सृजन करना

एन.ई.पी. 2020 ई. छात्रों में ज्ञान के सृजन की शिक्षण विधियाँ जैंसे, परियोजना आधारित शिक्षा, क्रियाविधि, करके सीखो आदि व्यावहारिक गतिविधियों द्वारा अनुभवात्मक शिक्षण विधियों को बढ़ावा देता है और जिसके केन्द्र में हमेशा छात्र ही होता है। श्री अरविन्द का चिन्तन, सृजनात्मकता चिन्तन, आलोचनात्मक चिन्तन, अभिसारी-अपसारी चिन्तन और व्यावहार में प्रयोग होने वाले कौशल को बढ़ावा देने के एक साधन के रूप में अनुभव जनित शिक्षा को प्रोत्साहित करती है, जिससे छात्रों को व्यावहारिक जीवन के साथ सक्रिय रूप से जुड़ने और संसार के साथ वास्तविक संदर्भों में अपने ज्ञान को उपयोग करने की समझ का विकास होता है।

• शिक्षक प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक विकास

एन.ई.पी. 2020 ई. शिक्षकों के प्रशिक्षण और उनके व्यावसायिक विकास के महत्व पर बल देती है, ताकि इस क्रियाविधि से यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षक शिक्षा के लिये शिक्षार्थी-केन्द्रित और समग्र दृष्टिकोण को क्रियान्वित करने के लिये आवश्यक ज्ञान, कौशल और दक्षताओं से प्रवीण हो सके। श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन, सीखने के लिये सुगमकर्ता के रूप में शिक्षकों की जो केन्द्रीय भूमिका है, उसको रेखांकित करते हैं और उनको उनकी भूमिकाओं को प्रभावी ढंग से पूर्ण करने में सहायता करने के लिये निरन्तर प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक विकास का समर्थन करते हैं।

निष्कर्ष : श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन शिक्षा के क्षेत्र में एक बहुत ही मूल्यवान, अंतर्दृष्टि और सिद्धान्त प्रदान करता है, जो भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.ई.पी.) 2020 ई. के दृष्टिकोण और लक्ष्यों के अनुरूप है। श्री अरविन्द की एकीकृत शिक्षा, व्यक्तिगत शिक्षा, अंतर्विषयक शिक्षा, अनुभवात्मक शिक्षा पर उनका जोर, सर्वांगीण विकास, बहु-विषयक शिक्षा और भारतीय ज्ञान परंपरा के एकीकरण पर विचार, एन.ई.पी. 2020 ई. के लक्ष्यों को पूर्ण करता है। श्री अरविन्द के शिक्षा संबन्धी चिन्तन दर्शन को अपनाकर, शिक्षण-अधिगम नीति निर्माता, शिक्षक और इससे जुड़े अन्य विद्वानजन, ये सभी मिलकर सीखने एवं सीखाने का एक अद्वितीय पर्यावरण बनाने के लिए काम कर सकते हैं, जो प्रत्येक छात्र की पूर्ण क्षमता को पोषित करने और समग्र रूप से समाज की उन्नति में योगदान देने में सामर्थ्यवान हो सकें। एन.ई.पी. 2020 ई. का विजन है, एक ऐंसी शिक्षा व्ययस्था, जिसमें बच्चों में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करके 'विश्वशक्ति भारत' का मार्ग प्रशस्त हो सके और इसके साथ-साथ एक ऐसी समग्र शिक्षा का विकास हो, जो ऐसे भारतीयों को विकसित कर सकने में समर्थ हो, जो जीवन के हर क्षेत्र में भारत और भारतीयता पर गौरवान्वित हों एवं वास्तविक जीवन में इन्हें क्रियान्वित करें। इस सन्दर्भ में श्री अरविन्द का सम्पूर्ण चिन्तन एक प्रकाश पुंज की तरह है। अन्त में भारत सरकार में गृहमन्त्री श्री अमित शाह के विचारों से इस आलेख को यहीं पर विराम देते हैं, ''यदि भारत को समझना है, भौगोलिक रूप से नहीं, कानूनी दृष्टि से नहीं, यदि भारत की आत्मा को समझना है, तो श्री अरविन्द को पढ़ना पढ़ेगा और सुनना पढ़ेगा। ढेर सारे पचड़ों में पड़े बगैर, वेद, उपनिषद, गीता, बहुत सारे महाकाव्य, बहुत सारे साहित्य, इन सबको पढ़े बगैर, श्री अरविन्द को ध्यान से पढ़ लोगे तो भारत की आत्मा का परिचय सबसे अच्छा हो जायेगा और भारत को आप आत्मसात कर लोगे।''

सन्दर्भ

1. श्री अरविन्द, 'मानव चक्र', प्रकाशक : श्री अरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग, पाँडिचेरी, 2018, पृ. 32-33
2. श्री अरविन्द ने अपने अनुयायी को तब यह बात कही थी, जब उनके अनुयायी ने उनसे उनकी जीवनी लिखने की जिज्ञासा प्रकट की थी। प्रस्तुत कथन, विजय, द्वारा
3. https://www.nobelprize.org/prizes/literature/1915/rolland/facts/
4. दास, मनोज, सदाशिव द्विवेदी (अनुवादक), 'भारतीय साहित्य के निर्माता : श्री अरविन्द', 1992, पृ. 66
5. विजय, श्री अरविन्द तथा श्री माँः एक संक्षिप्त परिचय, 2019, पृ. 11
6. विजय, पूर्वोक्त, पृ. 13

7. विजय, पूर्वोक्त, पृ. 19
8. https://integraledu.in/vision-aims/
9. पूर्वोक्त
10. सी.डब्लू.एम. 12, प्रकाशकः श्री अरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग, पाँडिचेरी, पृ. 9
11. डॉ. अनिल बाजपेयी (संकलन एवं संपादन), भारत की नियति (श्री अरविन्द की वाणी), प्रकाशक : श्री अरविन्द सोसायटी हिन्दी क्षेत्रीय समिति, नोएडा, 2015, पृ. 11
12. पी.डब्लू.एम.- कलक्टेड वर्कस् ऑफ द मदर
13. श्री अरविन्द, 'राष्ट्रीय शिक्षा के आयाम व शिक्षण पद्धति', प्रकाशक : श्री अरविन्द आश्रम
14. पूर्वोक्त, पृ. 3
15. एन.ई.पी. 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पृ. 7 @https://ncert.nic.in/pdf/nep/NEP_final_HINDI.pdf
16. http://www.sriaurobindoinstitute.org/saioc/educational/integral_education
एन.ई.पी. 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पृ. 6-7 @https://ncert.nic.in/pdf/nep/NEP_final_HINDI.pdf
17. गृहमन्त्री भारत सरकार, अमित शाह का आधिकारिक यूट्यूब चैनल- https://www.youtube.com/watch?v=kP2DsODAt8kg

डॉ. सुलोचना सजवाण
असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड. विभाग
बीहाईव ग्रुप ऑफ कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड
फोन : 9557888206

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्येतिहास दृष्टि : विशेष संदर्भ

–माया

आदिकाल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल का समय सवंत् 1050 से लेकर संवत् 1375 तक अर्थात् महाराज भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय के कुछ पीछे तक मानते हैं। शुक्ल जी हिन्दी साहित्य की शुरुआत प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से मानते हैं तथा गाथा को प्राकृत का तथा दोहा या दूहा को अपभ्रंश भाषा का छंद कहते हैं।[1]

आचार्य शुक्ल अपने इतिहास में हिंदी साहित्य के प्रथम कालखण्ड को वीरगाथा काल कहते हैं और इसमें अपभ्रंश काव्य और देशभाषा काव्य की वीरगाथात्मक रचनाओं के साथ फुटकल रचनाओं का विवेचन करते हैं। आचार्य शुक्ल जी काल विभाजन और नामकरण दो बातों को ध्यान में रखकर करते हैं-पहली बात विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता और दूसरी बात ग्रंथों की प्रसिद्धि। किसी काल विभाग के भीतर विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता के आधार पर काल निर्धारण किया गया है और उन रचनाओं के स्वरूप के आधार पर काल का नामकरण किया गया है। प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना को उस काल का लक्षण माना गया है। शुक्ल जी ग्रंथों की प्रसिद्धि के संदर्भ में लिखते हैं-''प्रसिद्धि भी किसी काल की लोकप्रवृत्ति की प्रतिध्वनि है।''[2] यहाँ पर 'लोकप्रवृत्ति' शब्द 'जनता की चित्तवृत्ति' का पर्याय मालूम पड़ता है।

वीरगाथा काल का नामकरण शुक्ल जी ने जिन बारह ग्रंथों के आधार पर किया है उसमें से नौ पुस्तकें वीरगाथात्मक हैं। अतः वीरगाथा रचनाओं की प्रचुरता और जनमानस में उनकी प्रसिद्धि को देखकर शुक्ल जी ने आदिकाल को वीरगाथा काल कहा है। शुक्ल जी कालों का नामकरण प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर करते हैं और प्रवृत्तियों का निर्धारण प्रसिद्ध रचनाओं की प्रचुरता के आधार पर करते हैं।

आचार्य शुक्ल जी कालों का नामकरण भले ही रचना की विशेष प्रवृत्ति के आधार पर करते हैं किन्तु वह उसी काल में अन्य प्रकार की रचनाओं के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं। आचार्य शुक्ल ने जिन ग्रंथों के आधार पर वीरगाथा काल का नामकरण किया है, उन्हें वह खुद अप्रमाणिक मानते हैं। वीरगाथा काल के प्रकरण तीन के देशभाषा काव्य शीर्षक के अन्तर्गत वह लिखते हैं-''पहले ही प्राकृत की रूढ़ियों से बहुत कुछ मुक्त भाषा के जो पुराने काव्य-जैसे बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो-आजकल मिलते हैं वे संदिग्ध हैं।''[3] पृथ्वीराज रासो को वह जाली ग्रंथ कहते हैं-''उत्तरोत्तर भट्ट, चारणों की परम्परा में चलते रहने से उनमें फेरफार भी बहुत कुछ होता रहा है।''[4] आचार्य शुक्ल वीरगाथात्मक रचनाओं में होने वाले फेरफार से भली-भांति परिचित थे। वह कहीं भी इन ग्रंथों को प्रमाणिक सिद्ध नहीं करते किंतु अप्रमाणिक रचनाएं भी अगर इस तरह जनमानस में लोकप्रिय हो तो उनकी भी कोई परम्परा अवश्य रहती है। डॉ. रामविलास शर्मा इस संबंध में लिखते हैं-''इतिहास की दृष्टि से अप्रमाणिक रचनाएं आसमान से नहीं टपक पड़ती। उनके पीछे किसी साहित्यिक धारा की परम्परा रहती है। शुक्ल जी इस परम्परा का अस्तित्व सिद्ध कर रहे थे। विशेष रचनाओं की प्रमाणिकता नहीं।''[5] पीछे उद्धृत कथन ध्यातव्य है जिसमें शुक्ल जी ने प्रसिद्धि को लोकप्रवृत्ति की प्रतिध्वनि कहा है। इस काल में शुक्ल जी वीरगाथा ग्रंथों की रचना को लोकप्रवृत्ति मानते हैं।

आचार्य शुक्ल को भाषा विज्ञान की गहन जानकारी थी। ''आचार्य शुक्ल ने सन् 1899 ई. से 1928 ई. तक आनंद कादम्बिनी, सरस्वती, नागरी प्रचारिणी पत्रिका में हिंदी भाषा के स्वरूप, इतिहास, भाषा और साहित्य का संबंध आदि विषयों पर अनेक लेख लिखें।''[6] 'हिंदी शब्द सागर' के संपादन का कार्य किया और उसकी भूमिका के रूप में 'हिंदी साहित्य का इतिहास' का प्रारम्भिक रूप लिखा। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' केवल साहित्य का ही इतिहास नहीं है बल्कि वह भाषा का भी इतिहास है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में शुक्ल जी ने भाषा और साहित्य के आपसी संबंधों पर महत्त्वपूर्ण चिंतन किया है। आदिकाल का सामान्य परिचय वह भाषा पर विचार करते हुए देते हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास की एक बड़ी समस्या यह भी कि हिंदी साहित्य की शुरूआत कब से मानी जाये। शुक्ल जी हिंदी साहित्य की शुरूआत प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से मानते हैं।''[7]

आचार्य शुक्ल जी आदिकाल में दो भाषाओं में रचना होने की बात करते हैं। 1. अपभ्रंश 2. देशभाषा (बोलचाल की)। अपभ्रंश को वह उस समय के बोलचाल की भाषा नहीं मानते। यह उस समय के कवियों के द्वारा व्यवहृत होने वाली भाषा है जो जान-बूझकर कई सौ वर्ष पुरानी भाषा में रचना कर रहे थे। अपभ्रंश को वह प्राकृताभास हिंदी और देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश को पुरानी हिंदी कहते हैं। अपभ्रंश भाषा में जैनों और बौद्ध सिद्धों की रचनाएं मिलती हैं। जिसमें धर्म तत्व-निरूपण किया गया है। जिसे आचार्य शुक्ल साहित्यिक रचना नहीं मानते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि इनका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए हो रहा है कि अपभ्रंश भाषा का व्यवहार कब से हो रहा है। ''अपभ्रंश का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।''[8] बौद्ध सिद्धों की रचनाओं को वे साम्प्रदायिक रचनाएं कहते हैं और उन्हें शुद्ध साहित्य की कोटि से बाहर करते हैं। बौद्ध सिद्धों की रचनाओं के संदर्भ में उन्होंने पांच बार सांप्रदायिक शब्द का प्रयोग किया है। वह वीरगाथा काल के नामकरण में जिन चार अपभ्रंश ग्रंथों को आधार बनाते हैं व साहित्यिक रचना कहते हैं, वह वीरगाथात्मक ग्रंथ हैं। ये रचनाएं हैं- विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता और कीर्तिपताका।

आचार्य शुक्ल अनुभूति शून्य अध्यात्म व रहस्यवाद के विरोधी हैं। इसी अनुभूति की कसौटी पर कसकर वह नाथ सिद्धों की उपदेशपरक रचनाओं को असाहित्यिक कहते हैं। वह कविता में अध्यात्म, योग, दर्शन आदि जो जबरदस्ती भरा जा रहा था, जिसका हृदय की मार्मिकता से कोई मेल न था, उसका विरोध करते हैं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-''योग धारा काव्य या साहित्य की कोई नयी धारा नहीं मानी जा सकती।''[9] उनका कथन है कि- ''उनकी रचनाएं तांत्रिक विधान, योगसाधना, आत्मनिग्रह, श्वास-निरोध भीतरी चक्रों और नाड़ियों की स्थिति, अन्तर्मुख साधना के महत्व इत्यादि की सांप्रदायिक शिक्षा मात्र हैं। जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों और दशाओं से उनका कोई संबंध नहीं। अतः वे शुद्ध साहित्य के अंतर्गत नहीं आती।''[10] बौद्ध-सिद्धों की रचनाओं में इन्द्रिय निग्रह, प्राणसाधना, रहस्य-भावना, तंत्र साधना, मद्य और स्त्री का सेवन आदि से जुड़े पद भरे पड़े हैं। और शुक्ल जी द्वारा उन्हें असाहित्यिक कहने का सबसे बड़ा कारण 'जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों और दशाओं से उनका कोई संबंध न होना' है। किंतु इनकी रचनाएं हमें स्वाभाविक अनुभूतियों की प्रतिक्रिया के रूप में मिलती हैं। जिन पदों में बाह्य पूजा, जाति-पाति, तीर्थाटन आदि बाहरी कर्मकाण्डों के प्रति उपेक्षा भाव दिखाया गया है, वह उनकी निजी अनुभूति से उत्पन्न प्रतिक्रिया है। क्योंकि शुक्ल जी के ही कथनानुसार 84 सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी-डोम, कहार, लकड़हारे, दरजी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। अतः जाति-पाँति के खण्डन तो वे आप ही थे।[11] शूद्र कही जाने वाली इन जातियों को वेद-शास्त्रादि के अध्ययन का अधिकार नहीं था। इन्हें मूर्तिपूजा, तीर्थाटन का भी अधिकार न था। अतः उन्होंने उन चीजों की उपेक्षा की और खण्डन-मण्डन किया। ईश्वरोपासना के बाह्य विधानों के प्रति जो उपेक्षा प्रकट की, वेदशास्त्र के अध्ययन को व्यर्थ ठहराकर शास्त्रज्ञ विद्वानों के प्रति जो अश्रद्धा दिखाई वह उनके अनुभूति की प्रतिक्रिया थी। अतः उनकी रचनाओं को पूरी तरह अनुभूतिशून्य नहीं कर सकते और जो अनुभूतिशून्य नहीं है, वह साहित्य के बाहर की वस्तु नहीं है।

उस समय बौद्ध धर्म का प्रचार इतना बढ़ गया था कि एक क्रांति सी आ गई थी। लोगों के मुख से अनायास ही 'बुद्ध शरणं गच्छामि' निकल पड़ता था। लोग बौद्ध भिक्षुओं को भिक्षा देते डरते थे कि कहीं उनके मुख से भी 'बुद्ध शरणं गच्छामि' न निकल पड़े। आचार्य शुक्ल ने इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है-''कापालिक जोगियों से बचे रहने का उपदेश घर में सास-ननद आदि देती रहती थीं पर वे आकर्षित होती थीं-जैसे कृष्ण की ओर गोपियां होती हैं।''[12]

इसी बात की पुष्टि कुरअतुल ऐन हैदर के उपन्यास 'आग का दरिया' के इस संवाद से होती है- ''आजकल यहां शाक्यमुनि के भिक्षुओं की एक टोली आयी हुई है। मैं समझा तुम उन्हीं में से हो। गृहस्थ ने कहा। जब से यह नयी हवा चली है, लड़के तो लड़के लड़कियाँ भी घर-बार छोड़कर जंगल में बस रही हैं। इसी में आगे का कथन है- अच्छी हवा चली! मैं तो कहता हूँ माँ-बाप अब अपनी लड़कियों के ब्याह की चिंता से भी मुक्त हो गये।''[13]

आचार्य शुक्ल अपने इतिहास में साहित्यिक और असाहित्यिक रचनाओं को बिल्कुल अलग-अलग बांटते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने ठीक ही लिखा है- ''साहित्यिक और असाहित्यिक का भेद जानना हो तो काई शुक्ल जी के इतिहास से जाने।''[14] आचार्य शुक्ल आदिकालीन विवरण में 'साहित्य की कोटि में नहीं आती' वाक्य का पांच बार प्रयोग किये हैं। जिन रचनाओं को वह असाहित्यिक व सांप्रदायिक कहते हैं वह जैनों, बौद्धों, सिद्धों व नाथों की रचनाएं हैं। असाहित्यिक मानने के पीछे आचार्य शुक्ल जी के कुछ तर्क हैं जैसे इन रचनाओं में धर्म तत्व निरूपण या धर्मोपदेश है, योग धारा कोई साहित्य की धारा नहीं है। अटपटी बानी, जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों की कमी। जहां-जहां रचनाओं को सांप्रदायिक कहते हैं वहां उसके कारण स्वरूप इन्द्रियनिग्रह, योगसाधना, तांत्रिक विधान, अंतर्मुख साधना आदि का वर्णन करते हैं। आचार्य शुक्ल शुद्ध कविता को इतिहास में जगह देते हैं, अध्यात्म को नहीं। उनकी दृष्टि भौतिकवादी व विज्ञानवादी है।

इसलिए वह बाह्य जगत के बीच की बातें करते हैं। घट के भीतर की रहस्यमयी बातों से उनका विरोध है। आचार्य शुक्ल साहित्य में शिष्ट भाषा के प्रयोग के समर्थक हैं। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि काव्यभाषा में कृत्रिमता, शब्दक्रीड़ा, अलंकारवाद, चमत्कारवाद को पसंद करते हैं। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार-''आचार्य शुक्ल जिस साहित्यिकता की बार-बार बात करते हैं, वह रूपवादियों की भाषानिष्ठ साहित्यिकता नहीं है। वह जीवन की अनुभूतियों की व्यंजना में सक्षम काव्यभाषा की साहित्यिकता है। अनुभूति शून्य भाषिक साहित्यिकता के शुक्ल जी विरोधी हैं।''[15]

आचार्य शुक्ल आदिकाल में अपभ्रंश के अतिरिक्त जिस दूसरी भाषा का उल्लेख करते हैं-वह है देशभाषा। इसके अंतर्गत वह वीरगाथात्मक ग्रंथों का उल्लेख करते हैं। वह ''बीसलदेव रासों की भाषा को साहित्यिक नहीं मानते हैं। इसकी भाषा राजस्थानी है।''[16] रासो साहित्य के संदर्भ में वह डिंगल-पिंगल नामक दो साहित्यिक भाषाओं के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। आचार्य शुक्ल को देशभाषा शब्द संभवतः विद्यापति से मिला है। जिसे विद्यापति देशी भाषा कहते हैं, उसे शुक्ल जी देशभाषा कहते हैं-''विद्यापति ने अपभ्रंश से भिन्न, प्रचलित बोलचाल की भाषा को 'देशी भाषा' कहा है। अतः हम भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग कहीं-कहीं आवश्यतानुसार करेंगे।''[17]

आचार्य शुक्ल फुटकल रचनाओं में जिन दो कवियों को रखते हैं उनसे हिंदी साहित्य की असली परंपरा आगे बढ़ती है। ये दो कवि हैं-अमीर खुसरो और विद्यापति। इनकी भाषा को शुक्ल जी असली बोलचाल की भाषा कहते हैं। अमीर खुसरो ने दो भाषाओं में काव्य रचना की- ठेठ खड़ी बोलचाल और ब्रजभाषा। मुसलमानों के आने से पहले खड़ी बोली दिल्ली के आस-पास ही लोकभाषा बन चुकी थी। अमीर खुसरो से पहले भले ही यह कविता में प्रयुक्त नहीं हो रही थी किंतु जनता में उसका अस्तित्व अवश्य था। आचार्य शुक्ल के अनुसार-''अतः यह धारणा होती है कि खुसरो के समय तक बोलचाल की स्वाभाविक भाषा घिसकर बहुत कुछ उसी रूप में आ गयी थी जिस रूप में खुसरों में मिलती है।''[18] अमीर खुसरों ने पहेलियों, मुकरियों में खड़ी बोली और गीतों, दोहों में ब्रजभाषा का प्रयोग किया।

दूसरे कवि हैं विद्यापति जिन्होंने दो काव्यभाषाओं में साहित्य रचना की-1. पुरानी अपभ्रंश 2. बोलचाल की देशी भाषा। विद्यापति की बोलचाल की भाषा मैथिली है। ''आचार्य भरतमुनि (विक्रम तीसरी शताब्दी) ने अपभ्रंश नाम न देकर लोकभाषा को देशभाषा कहा है।''[19] विद्यापति की देशभाषा मैथिली है और भरतमुनि की देशभाशा अपभ्रंश है, दोनों भाषाओं में अंतर है। आचार्य शुक्ल विद्यापति की देशभाषा को उसी अर्थ में अपनाते हैं। शुक्ल जी विद्यापति को श्रृंगारी कवि मानते हैं भक्त कवि नहीं। उनका कहना है-''विद्यापति को कृष्ण भक्तों की परम्परा में नहीं समझना चाहिए।''[20]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी आलोचना के मूर्धन्य आलोचक हैं। उनके पास अपनी मौलिक इतिहास दृष्टि है। इसी मौलिक इतिहास दृष्टि के आधार पर वह हिंदी साहित्य का इतिहास लिखते हैं। हिंदी के आदिकाल को उन्होंने 12 पुस्तकों के आधार पर वीरगाथा काल कहा है। उनका अपना मानना है कि यदि किसी काल को समझना है तो उसकी लोक प्रवृत्ति को बारीकी से समझना होगा और रचनाओं की खास प्रकार की संख्या को भी। इसी आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल का विवेचन एवम् विश्लेषण करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल शिक्षित जनता और सामान्य जनता के आधार पर भी साहित्येतिहास का विवेचन करते हैं। वे साहित्य में योग, अध्यात्म और रहस्य की कोई आवश्यकता नहीं मानते हैं। इसी कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल के सिद्ध, नाथ, जैन की रचनाओं के प्रति उदासीन दिखाई देते हैं। जहां-जहां स्वाभाविक रहस्य आता है आचार्य रामचंद्र शुक्ल उसके रहस्य को रेखांकित करते हैं। विद्यापति को आचार्य रामचंद्र शुक्ल भक्त कवि मानने से साफ इन्कार कर देते हैं। उनकी नजर में आध्यात्मिक रंग के चश्मे से चीजों को नहीं देखना चाहिए। बल्कि रचनाओं और रचनाकारों के अंतःवृत्ति की गहरी छानबीन करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए। और विद्यापति को वह अपनी इतिहास दृष्टि के आधार पर श्रृंगारी सिद्ध करते हैं। कोई भी आलोचक आलोचना से परे नहीं होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के आदिकालीन विवेचन-विश्लेशण से बहुत से विद्वानों को असहमति भी है। बावजूद इसके आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का आदिकालीन मूल्यांकन बेहद महत्त्वपूर्ण है। जिसकी जमीन पर चलकर आगे कई महत्त्वपूर्ण हिंदी साहित्येतिहास लिखा गया है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 23
2. वही, पृ. 6
3. वही, पृ. 40
4. वही, पृ. 40
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 178-179
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 97
7. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 23
8. वही, पृ. 23
9. वही, पृ. 11

10. वही, पृ. 33
11. वही, पृ. 32
12. वही, पृ. 28
13. आग का दरिया, कुर्रअतुलऐन हैदर, अनुवादक-नंदकिशोर विक्रम, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 17
14. साहित्य और इतिहास दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 95
15. वही, पृ. 95
16. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 44
17. वही, पृ. 24
18. वही, पृ. 57
19. वही, पृ. 25
20. वही, पृ. 59

माया
पीएच.डी. (हिंदी)
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या
मो.-9919787865

मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि : एक समीक्षात्मक अध्ययन

–नितेश कुमार मौर्य
–डॉ. सुनीता सिंह

सारसंक्षेप -

व्यक्त्वि के विकास के लिये कई महत्वपूर्ण एवं सहायक कारक हैं, इन कारकों में मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि भी शामिल है। मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के कल्याण तथा शैक्षिक उपलब्धि ज्ञानकोश में वृद्धि, कौशलों, क्षमताओं एवं योग्यताओं को विकसित करके जीवन में सफलता प्राप्ति के लिये अति महत्वपूर्ण एवं प्रभाव शाली कारक है। इसीलिए इन दोनों कारकों के विकास में साधक एवं बाधक बनने वाले कारकों एवं इन दोनों के बीच के आपसी संबंधों के बारें जानना अति आवश्यक है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि के संप्रत्यय को स्पष्ट करते हुये इन्हें प्रभावित करने वाले सकारात्मक और नकारात्मक कारकों की पहचान करना है और साथ-ही-साथ इनके बीच के संबंधों को भी स्पष्ट करना है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये शीर्षक से संबंधित पूर्व में हो चुके शोधकार्यों को द्वितीयिक स्रोतों के रूप में संकलित करके उनका गहन अध्ययन किया गया और तत्पश्चात प्रस्तुत शोध अध्ययन को तैयार किया गया। अतः प्रस्तुत शोधपत्र गुणात्मक प्रकृति की है और इसमें 'विषयवस्तु विश्लेषण शोध विधि' के अनुरूप शोध पत्रों, शोध प्रबंधों, समाचार पत्रों आदि का विश्लेषण शामिल है।

मुख्य शब्द - शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षिक उपलब्धि, सकारात्मक कारक, नकारात्मक कारक।

परिचय - स्वास्थ्य से आशय शारीरिक के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य से भी है, क्योंकि यह स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण आयाम है। विद्यार्थी को विकास के लिये शारीरिक के साथ-साथ मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है। क्योंकि मानसिक स्वास्थ्य, मानव के ''कल्याण की स्थिति'' और ''सार्वभौमिक मौलिक अधिकार'' (डब्ल्यू.एच.ओ., 2023), ''सर्वांगीण विकास'', ''संतुलित विकास'' है। डब्ल्यू.एच.ओ. (2022) के अनुसार, "मानसिक स्वास्थ्य मनुष्य के 'कल्याण की स्थिति' है, जिसमें मानव अपने क्षमताओं का एहसास करता है, जीवन के सामान्य तनावों का सामना करने तथा उत्पाद और फलदायी तरीके से कार्य करने में सक्षम होने के साथ ही अपने समुदाय में एक अच्छा काम करने में भी सक्षम होता है।''

इसका संबंध 'मानव के सलामती' और 'व्यवहार में संतुलन', 'स्थिरता', 'पूर्ण सामंजस्य से कार्य करने', 'साम्यावस्था की स्थिति', 'संपूर्ण समायोजन की योग्यता', 'मनोदशा में संतुलन' एवं विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तिगत-सामाजिक सामंजस्य वाली 'मनोस्थिति' से है। इसके कारण ही व्यक्ति अपने जीवन में संतुष्टि के साथ आनंदित रहता है। इसमें, 'तर्क', 'निरीक्षण', 'अवबोध', 'विचार', 'चेतना', 'ध्यान केंद्रित करना', 'विचार', 'समस्या-समाधान' इत्यादि शक्तियां निहित है (यादव, 2018)। सामान्यतः, मानसिक स्वास्थ्य का निर्माण तीन तत्वों से होता है, 'अवसाद', 'चिंता' एवं 'तनाव', अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य विशेषतः 'अवसाद', 'चिंता' एवं 'तनाव' से प्रभावित होता है। वस्तुतः, जो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं रहते हैं वे परिस्थितियों का सफलता से समाना करने में असमर्थ होते हैं।

इसी प्रकार, शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों के भविष्य में सफलता हेतु बहुत ही महत्वपूर्ण है और इसकी महत्ता शिक्षा की रीढ़ के रूप में है (लाल एवं अन्य, 2007) । शैक्षिक उपलब्धि के संप्रत्यय को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से भी समझा जा सकता है, यथा-यह, जन्मजात न होकर एक 'अर्जित अभिप्रेरक' है। यह, विद्यालयी अध्ययन के दौरान अर्जित 'ज्ञान' अथवा 'शिक्षा क्षेत्र में ज्ञानार्जन' एवं सीखी गयी 'व्यवहार' की मात्रा है। यह, विद्यार्थियों में विकसित 'बोध या समझ' है; जिससे, विद्यार्थी में विषयी दक्षता एवं जीवन दक्षता के रूप में 'प्रवीणता' आती है। शैक्षिक उपलब्धि अर्जित, ग्रहण या विकसित अथवा प्राप्त करने की मात्रा का सूचक है, जो विद्यार्थियों में न केवल समझ विकसित होती है वरन, उनमें 'अनुप्रयोग' करने की क्षमताओं को बढ़ाती है (विश्वकर्मा एवं अन्य, 2011)। यह, शिक्षण के दौरान व्यवहार में

स्थायी परिवर्तन (अधिगम) है जोकि, विद्यार्थियों में विभिन्न तरह के 'कौशलों' को निखारने तथा मानसिक और शारीरिक 'क्षमताओं' को प्रोत्साहित करती है। यह, विद्यार्थियों के जीवन में लचीलेपन के रूप में 'कार्यकुशलता' को विकसित करता है। इसका संबंध, 'किसी विषय-विशेष या विभिन्न विषय' और परीक्षा में प्राप्त या अर्जित प्राप्तांकों (अंकों) अथवा, शिक्षा क्षेत्र में प्राप्त परिणाम एवं शिक्षा से संबंधित कारकों के परिणामों से है। इससे अभिप्राय, विद्यालय में अध्ययन के दौरान 'विषयों में सफलता प्राप्ति' से है। यह, शिक्षण (शैक्षिक) उद्देश्यों की प्राप्ति की सीमा है (दयाल, 2019)। यह, विशिष्ट विषय क्षेत्र में विवेक की पराकाष्ठा व योग्यता है।

अतः मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि के विषय में प्रस्तुत उपर्युक्त अवधारणाओं से स्पष्ट होता है कि ये दोनों ही विद्यार्थियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। जहाँ एक ओर मानसिक स्वास्थ्य विद्यार्थियों के संतुलित विकास और कल्याण से जुड़ा है तो वहीं दूसरी ओर शैक्षिक उपलब्धि उनके ज्ञान, बोध, अनुप्रयोग, कौशल, योग्यता एवं क्षमता से संबंधित है।

मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक -

मानसिक स्वास्थ्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कारकों को उनकी प्रभावशीलता के आधार पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. उच्च सकारात्मक कारक- इस वर्ग में ऐसे कारकों को रखा जा सकता है, जो उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के लिये प्राथमिक रूप उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है, ऐसे कारक निम्नलिखित हैं- 'पारिवारिक वातावरण', 'माता-पिता की वैवाहिक संतुष्टि', 'माता-पिता की निकटता', 'माता-पिता एवं दोस्तों का समर्थन'; 'माता-पिता का समर्थन', 'माता-पिता का सहयोग', 'पिता का सौहार्द', 'बहिर्मुखता', 'आत्म-सम्मान', 'अच्छा वातावरण', 'अनुशासन', 'नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा', 'व्यावसायिक निर्देशन', 'शिक्षकों का स्नेहपूर्ण व्यवहार', 'मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ से परामर्श', 'व्यक्तिगत निर्देशन', 'विद्यालयी परिवेश', 'शिक्षक का व्याख्यान' एवं 'आय'।

2. मध्यम सकारात्मक कारक- इसमें ऐसे कारकों को शामिल किया जा सकता है, जो बेहतर मानसिक स्वास्थ्य के लिये द्वितीयक स्तर के महत्वपूर्ण एवं उपयोगी साबित हो सकते हैं, ऐसे कारक इस प्रकार से हैं-'कोपिंग कौशल प्रशिक्षण' (एस्माएलिमोतलाघ एवं अन्य 2018), 'प्रशिक्षण हस्तक्षेप', 'योग शिक्षा', 'योग', 'अध्यात्मिक शारीरिक अभ्यास', 'शारीरिक गतिविधि', 'ज्ञान', 'शिक्षा' (लुगोगवाना, 2017), 'स्वाध्याय', 'शैक्षिक अभिप्रेरणा', 'संवेगात्मक बुद्धि', 'संवेगात्मक स्थायित्व', 'खुश रहना', 'यथार्थवादी', 'स्वायत्ता', 'सामाजिक परिपक्वता' (श्रीवास एवं कुमार, 2016), 'सकारात्मक स्व मूल्यांकन', 'समूहोन्मुख दृष्टिकोण', 'स्वायत्तता' एवं 'वातावरणीय योग्यता'।

3. निम्न सकारात्मक कारक- इसके अंतर्गत ऐसे कारक शामिल किये किये जा सकते हैं, जिनका योगदान अच्छे मानसिक स्वास्थ्य में उच्च और माध्यम कारकों की अपेक्षा कम होता है, ऐसे कारक हैं- 'वेतन वृद्धि', 'चिकित्सा एवं यातायात सुविधा', 'समय-समय पर पुरस्कार' (बाबू, 2014), 'व्यावसायिक संतुष्टि', 'नौकरी संवर्धन', 'लोकतान्त्रिक नेतृत्व शैली', 'एक खुला संगठन माहौल', 'निर्णय लेने में भागीदारी', 'टीम निर्माण गतिविधियाँ' एवं 'कार्यस्थल पर सहकर्मी के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध'।

मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कारक-

वे कारक जो खराब मानसिक स्वास्थ्य के लिये उत्तरदायी हैं, उन्हें उनकी प्रभावशीलता के आधार पर तीन वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है-

1. उच्च नकारात्मक कारक- इसके अंतर्गत ऐसे कारक सम्मिलित हैं, जो मानसिक स्वास्थ्य को खराब करने में सबसे अधिक प्रभावपूर्ण हैं, ऐसे कारक निम्नलिखित हैं- 'पारिवारिक संरचना', 'गरीबी', 'जेल में बंद माता-पिता', 'माता-पिता द्वारा अतिसुरक्षा, अल्पसुरक्षा, विभेदात्मक बर्ताव', 'शिक्षक का व्यवहार, अत्यधिक सख्ती, अनुशासनपालिता', 'अच्छे पाठ्यक्रम का अभाव' (राम एवं राम, 2018), 'गृह वंचनानुभूति', 'विद्यालयी वंचनानुभूति', 'विद्यालय का नियंत्रण', 'माता-पिता की आय कम होना', 'पारिवारिक कठिनाइयां' एवं 'असवाद'।

2. मध्यम नकारात्मक कारक- इसके अंतर्गत उन कारकों को शामिल किया जा सकता है, जो मानसिक स्वास्थ्य के खराब होने में उच्च कारकों की अपेक्षा कम जिम्मेदार हो सकते हैं, ऐसे कारक निम्नवत हैं- 'समाज में आदर का अभाव', 'कार्य की अधिकता', 'कठोर अनुसाशन' (कैब्रिज विश्वविद्यालय, 2023), 'पुराने शारीरिक विकार', 'चिंता', 'तनाव', 'मनोसामाजिक तनाव', 'शोक', 'मादक द्रव्यों का सेवन' एवं बुलिंग।

3. निम्न नकारात्मक कारक- ऐसे कारक जो मानसिक स्वास्थ्य की खराब स्थिति के लिये सबसे कम उत्तरदायी हो सकते हैं, वे हैं- 'अपर्याप्त वेतन', 'व्यावसायिक असुरक्षा', 'दोषपूर्ण प्रशासन', 'शैक्षिक उपकरणों का अभाव', 'परस्पर संघर्ष', 'विद्यालयों की स्वेच्छाचारी व्यवस्था', 'गतिहीन व्यवहार', 'नकारात्मक सामाजिक प्रतिक्रियायें', 'कम शैक्षिक उपलब्धियां', 'हिंसा', 'खराब प्रजनन', 'यौन अस्वस्थता' एवं 'नौकरी में असंतोष'।

शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारक -

शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करनेवाले एवं उसके लिये लाभप्रद कारकों को उनकी प्रभावशीलता के आधार पर

क्रमशः 'उच्च', 'मध्यम' और 'निम्न' वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. उच्च सकारात्मक कारक- वे कारक जो विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि हेतु सर्वाधिक उपयोगी एवं सहायक हो सकते हैं, निम्नलिखित हैं- 'सामाजिक-आर्थिक स्थिति', 'अच्छी आर्थिक स्थिति', 'माता-पिता की आय का स्तर', 'माता-पिता का शैक्षिक स्तर', 'माता-पिता का व्यवसाय', 'पारिवारिक वातावरण', 'गृह परिवेश', 'घर', 'विद्यालय', 'शैक्षिक सुविधाएं', 'शैक्षिक वातावरण', 'विद्यालयी वातारवण' (उपाध्याय एवं पाण्डेय, 2013), 'सीखने की गतिविधियों में माता-पिता की भागीदारी', 'अभिभावक-शिक्षक संबंध', 'अभिभावकों की भागीदारी', 'अभिभावकों का देखरेख' (परमार एवं नाथंस, 2022), 'अभिभावक का समायोजन', 'बुद्धि/बौद्धिक क्षमता/मानसिक योग्यता', 'तार्किक बुद्धि', 'ध्यान', 'रूचि', 'प्रतिभा', 'तैयारी' (कोर्नियावती एवं सिन्तावती, 2024), 'संज्ञानात्मक क्षमता', 'रचनात्मकता', 'विशिष्ट बौद्धिक जुड़ाव (बौद्धिक जिज्ञासा)', 'संवेगात्मक बुद्धि', 'जिज्ञासु प्रवृत्ति' एवं 'स्मृति'।

2. मध्यम सकारात्मक कारक- ऐसे कारक जो बेहतर शैक्षिक उपलब्धि के लिये उच्च कारकों की अपेक्षा थोड़ा कम महत्वपूर्ण हो सकते हैं, वे निम्नलिखित हैं-'संज्ञानात्मक व्यक्तित्व शीलगुण', 'चेतना', 'खुलापन' (नोविकोवा एवं वोरोबयेवा, 2017), 'परिपक्वता', (कोर्नियावती एवं सिन्तावती, 2024), 'कर्तव्यनिष्ठा', 'संवेगात्मक परिपक्वता', 'उपलब्धि अभिप्रेरणा', 'शैक्षिक अभिप्रेरणा', 'प्रेरणा', 'अधिक स्वायत्त रूप से प्रेरित', 'प्रेरित व्यवहार', 'आत्म संप्रत्यय/अवधारण' (कुमारी एवं चामुंडेश्वरी, 2013), 'आत्म सम्मान', 'अध्ययन आदत', 'आत्म-नियमन या आत्मानुशासन', 'अध्ययन कौशल', 'सकारात्मक शिक्षण वातावरण'।

3. निम्न सकारात्मक कारक- वे कारक जो शैक्षिक उपलब्धि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने में उच्च और मध्यम कारकों की अपेक्षा कम प्रभावशाली हो सकते हैं, वे निम्नलिखित हैं- 'पाठ्य सहगामी क्रियाएं' (रेणु, 2017), 'बहिर्मुखी व्यक्तित्व', 'निपुण एवं सफलता उन्मुख व्यक्तित्व', 'सफलता की आशा', 'दृढ़ता', 'यथार्थवादी दृष्टिकोण', 'स्कूल समायोजन', 'सामाजिक समायोजन', 'सामाजिक कार्यप्रणाली', 'नेतृत्व', 'सहकर्मी स्वीकृति', 'सामाजिक क्षमता', 'पुराने दुर्व्यवहार या शोषण को कम करना' एवं 'दैनिक जीवन कौशल पर क्षमता बढ़ाना'।

शैक्षिक उपलब्धि के नकारात्मक कारक -

विद्यार्थियों की खराब शैक्षिक उपलब्धि के योगदान देने वाले कारकों को भी उनकी प्रभावशीलता के आधार पर तीन वर्ग (उच्च, मध्यम और निम्न) में विभक्त किया जा सकता है-

1. उच्च नकारात्मक कारक- ऐसे कारक जो खराब शैक्षिक उपलब्धि के लिये प्राथमिक रूप से जिम्मेदार हैं, वे हैं- 'अवसाद', 'चिंता' (खेश्ट-मस्जेदी एवं अन्य, 2019), 'शैक्षिक चिंता' एवं 'भावनात्मक समस्याएं'।

2. मध्यम नकारात्मक कारक- वे कारक जो खराब शैक्षिक उपलब्धि में उच्च कारकों की अपेक्षा कम उत्तरदायी हो सकते हैं, वे निम्नलिखित हैं-'ध्यान की समस्या', 'अपराध', 'मादक पदार्थों का सेवन', 'सिगरेट का उपयोग', 'भौतिक एवं शैक्षणिक संसाधनों की खराब स्थिति', 'एडीएचडी (अटेंशन-डेफिसिट/हाइपरएक्टिविटी डिसऑर्डर) व सीडी (कंडक्ट डिसऑर्डर) के लक्षण' एवं 'सोशल मीडिया साइटों का उपयोग'।

3. निम्न नकारात्मक कारक- ऐसे कारक जो खराब शैक्षिक उपलब्धि के लिये निम्नस्तर के जिम्मेदार हो सकते हैं, वे हैं-'शारीरिक हिंसा' (अल्बूहैरन एवं अन्य, 2017), 'आचरण की समस्याएं', 'अति सक्रियता-असावधानी' एवं 'सहकर्मी समस्याएं'।

मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि में संबंध -

निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि के बीच के संबंधों को समझा जा सकता है, यथा-मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि एक-दूसरे से सहसंबंधित कारक हैं (सिंह एवं कुमार, 2010)। ये दोनों कारक आपस में धनात्मक रूप से सहसंबंधित है (नागमणी एवं शाहू, 2019)। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को उनकी मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित करता है (बंग एवं अन्य, 2016)। शैक्षिक उपलब्धि (शैक्षिक निष्पत्ति, शैक्षिक संप्राप्ति, शैक्षिक प्रदर्शन) के लिये मानसिक स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण सकारात्मक कारक है (गोस्वामी एवं अन्य, 2016)। विद्यार्थियों में, उच्च स्तर का मानसिक स्वास्थ्य होने से उनकी शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च स्तर की हो सकती है (बोस्तानी एवं अन्य 2014)। जिनमें मानसिक स्वास्थ्य निम्न स्तर का होता है, उन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि भी निम्न स्तर की प्राप्त हो सकती है (शाक्या, 2018)। उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिये विद्यार्थियों का मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है (नागमणी एवं साहू, 2019)। मानसिक स्वास्थ्य के लक्षणों (सामाजिक व्यवहार घटकों) और शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक संबंध है।

निष्कर्ष - निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि, व्यक्तित्व के विकास के लिये 'स्वस्थ मानसिक स्वास्थ्य' और 'उच्च शैक्षिक उपलब्धि' सहायक, आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कारक है। यह दोनों कारक एक-दूसरे से सहसंबंधित है। क्योंकि बेहतर मानसिक स्वास्थ्य बेहतर शैक्षिक उपलब्धि का सूचक प्रतीत होता है। वस्तुतः इन दोनों कारकों के लिये वर्तमान में सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं उत्तरदायी कारक 'माता-पिता या अभिभावकों की देखरेख', 'परिवार का वातावरण', 'परिवार

की आर्थिक-सामाजिक स्थिति', 'संगी-साथी', 'व्यक्तिगत समस्यायें', 'संवेगात्मक जागरूकता', 'विद्यालयी वातावरण', 'अवसाद', 'चिंता', 'तनाव' हो सकते हैं। अतः इस विषय पर अधिक से अधिक शोधकार्य किये जाने की आवश्यकता है, जिससे कि मानसिक स्थिति और शैक्षिक उपलब्धि के उत्तम एवं खराब होने से संबंधित अनेक जिम्मेदार कारकों की पहचान करके व्यक्तित्व के विकास में योगदान दिया जा सके।

संदर्भ

1. Albuhairan, F., Abou Abbas, O., EI Sayed, D., Badri, M., Alshahri, S., & De Vries, N. (2017). The relationship of bullying and physical violence to mental health and academic performance: A cross-sectional study among adolescents in Kingdom of Saudi Arabia. International journal of pediatrics and adolescent medicine, 4(2), pp.61.
2. Babu, D. R. (2014). Relationship between job satisfaction and mental helath among teacher educators of Andhra Pradesh. ZENITH International Journal of Multidisciplinary Research, 4(7), 45-56.
3. Bang, E.J., Kim, D.H., Roh, B. R., Yoo, H. S., Jang, J. H., Ha, K. H., …& Hong, H. J. (2016). Effect of Korean High School Students' Mental Health on Academic Achievement and School Dropout Rate. Journal of the Korean Academy of Child and Adolescent Psychiatry, 27(3), pp. 173.
4. Bennett, Eleanor Devis. (2012). Effects of A Mental Health Training Program On Health CareWorkers' Knowledge And Attitude And Practice In Belize. Faculdade de Ciencias Medicas. Universidade Nova de Lisboa. pp.78.
5. Bostani, M., Nadri, A., & Nasab, A. R. (2014). A study of the relation between mental health and acadmic performance of students of the Islamic Azad University Ahvaz Branch. Procedia-Social and Behavioral Sciences, 116, pp.63.
6. Esmaeilimotlagh, M., Oveisi, K., Alizabeh, F., & Asadollahi Kheirabadi, M. (2018). An investigation on coping skills training effects on mental health status of University students. J Humanit Insights, 2(01), pp. 37-42.
7. Harsh discipline increases risk of children developing lasting mental health problems (31 March, 2023). In University of Cambridge. Retrieved form https://www.cam.ac.uk/research/news/harsh-discipline-increases-risk-of-children-developing-lasting-mental-health-problemson 11 March, 2024.
8. Khesht-Masjedi, Mahnaz, M.F., Shokrgozar, S., Abdollahi, E., Habibi, B., Asghari, T., Ofoghi, R.S., & Pazhooman, S. (2019). The relationship between gender, age, anxiety, among teenagers. Journal of family medicine and primary care, 8 (3), pp.799.
9. Koerniaeati, A., & Sintawati, M. (2024). Exploring the relationship between academic achievement and emotional intelligence in upper primary school students. International Journal of Learning Reformation in Elementary Education, 3, (01), pp.29-24.
10. Kumari, Archana and Dr. S. Chamundeswari (2013). Self-concept and academic achievement of students at the higher secondary level. Journal of Sociological Research, ISSN-1948-5468., Vol. 4, No. 2, pp. 105-113.
11. Lugogwana, Pakama Linda. (2017). Attitudes of Undergraduate Psychology Students Towards Mental Illness. Psychology, Faculty of Health Science, Nelson Mandela University. pp. 82.
12. Mental health (2022). In World Health Organization (WHO), Retrieved from https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/mental-health-strengthening-our-response on 11 March, 2024.
13. Novikova, I.A., & Vorobyeva, A. A. (2017). Big Five Factors and academic achievement in Russian students. Psychology in Russia, 10(4). pp.93, 94.
14. Parmar, P., & Nathans, L. (2022). Parental warmth and parent involvement: their relationship to academic achievement and behavior problems in school and related gender effects. Societies, 12(6), 161, doi: 10.3390/soc12060161. pp. 1-20.
15. Singh, Manish and Singh, Girish (2006). Assessment of mental health status of middle-aged female school teachers of Varanasi City. The Internet Journal of Health, Vol. 5, No. 1, pp.1, 8. doi: 10.5580/ac7
16. World Mental Health Day, 10 October 2023, Our minds, our rights (2023). In World health organization (WHO), Retrieved from https://www.who.int/campaigns/world-mental-health-day/2023 on 05 February, 2024.
17. उपाध्याय, डॉ. मयानन्द एवं पाण्डेय, सुनील कुमार (2013), ''स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का बुद्धि एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संबंध में अध्ययन'', वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, पृ.सं. 16,17.
18. कुलदीप, डॉ. (2019), ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक

अध्ययन'' International Journal of Applied Research, ISSN- (Print)- 2394-7500. Vol. 5 (11), pp. 284-287.
19. गोस्वामी, प्रो.(डॉ.) वंदना, मित्तल, प्रो. (डॉ.) कविता एवं कंसल, ज्योति (2016), ''उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों का विलम्बन व्यवहार, मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि : एक अध्ययन'', वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान, पृ.सं. 97, 98.
20. दयाल, प्रभु (2019), ''माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन'', International Journal of Research in Social Sciences, ISSN- 2249-2496, Vol. 9 Issue 1, pp. 2649-2652.
21. नागमणी, डॉ. के. एवं साहू, श्रीमती मंजू (2019), ''उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा के अम्ध्य सहसंबंध का अध्ययन'', Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, ISSN-2349-5162, Vol. 6, Issue 3, pp. 487,490.
22. यादव, डॉ. वीरेंद्र सिंह (2018), ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन'', Journal of Educational & Psychological Research, ISSN-2230-9586, Vol. 8, No. 1, pp. 118.
23. राम, डॉ. सुरेन्द्र एवं राम, त्रिभुअन (2018), ''उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों के मानसिक स्वास्थ्य का उनके तनाव प्रबंधन एवं शिक्षण प्रभाविता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन'', महात्मा कशी विद्यापीठ, वाराणसी, पृ. सं. 29-33.
24. रेणु (2017), ''छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों तथा मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन : सहगामी पाठ्य क्रियाओं में भाग लेने के आधार पर'', International Journal of Advanced Educational and Research, ISSN-2455-5746, Vol. 2, Issue 2, pp. 46, 48.
25. लाल, डॉ. आर.एन., सिंह, डॉ. राम सेवक एवं वर्मा, प्रशांत कुमार (2007), ''लखनऊ मंडल के अंतर्गत हाईस्कूल स्तर के सामान्य वर्ग, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जाति वर्ग के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन'', वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, पृ.सं. 80, 81.
26. विश्वकर्मा, आशा, अग्रवाल, डॉ. रीता एवं उपाध्याय, डॉ. मयानन्द (2011), ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत वंचित छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि, मूल्यों एवं उनके शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन'', वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, पृ. सं. 41.
27. शाक्या, पूनम (2018), ''स्नातक स्तर पर अध्यनरत विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध का अध्ययन'', International Journal of Scientific Research in Science and Technology, Online ISSN- 2395-602X, Vol. 4, Issue 2, pp.1960, 1964.
28. श्रीवास, संदीप कुमार एवं कुमार, डॉ. अरुण (2016), ''माध्यमिक स्तर के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन'', Indian Stream Research Journal, ISSN-2230-7850, Vol. 6, Issue 11, pp. 4.
29. सिंह, डॉ. आर. के. एवं कुमार, आशीष (2010), ''माध्यमिक विद्यालयों में किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक वातावरण, समायोजन, मानसिक स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक परिपक्वता के प्रभाव का अध्ययन'', श्री छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर, पृ.सं. 197.

नितेश कुमार मौर्य
शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र,
राजकीय महिला महाविद्यालय, समदी, अहिरौला,
आजमगढ़ (उ.प्र.),
मोबाईल नं. 8115110307
इमेल- niteshsgm1997@gmail.com

डॉ. सुनीता सिंह
शोध निर्देशिका, शिक्षाशास्त्र विभाग,
राजकीय महिला महाविद्यालय, समदी, अहिरौला,
आजमगढ़ (उ.प्र.),
मोबाईल नं. 9305264064
इमेल- sunitasinghfd@gmail.com

एस. आर. हरनोट कृत 'हिडिम्ब' उपन्यास में किसान विमर्श

–सरबजीत कौर

सारांश- मानव सभ्यता के विकास में किसान और कृषि की अमूल्य भूमिका रही है। किसान को समाज का परोपकारी, कल्याण करने वाला और मित्र माना जाता है। किसान को देश की रीड की हड्डी कहा जाता है। किसान और जमीन का अटूट रिश्ता होता है और जमीन उसके लिए माता तुल्य होती है। जमीन ही किसान की रोजी-रोटी होती है। इस लिए किसान का जमीन के प्रति प्रेम स्वाभाविक है। जिस जमीन पर किसान का अस्तित्व और जीविका अवलंबित होती है, वह जमीन जब उसके हाथ से निकल जाती है तो उसकी अवस्था सोचनीय हो जाती है। वह अपनी जमीन को बचाने के लिए हर संभव प्रयास करता है। जब-जब उसकी मां समान जमीन को किसी ने छीनने की कोशिश की, तब-तब किसान ने उग्र रूप धारण किया। अपनी भूमि को बचाने के लिए वह आंदोलन के रास्ते पर उठ खड़ा हुआ।

कुंजी शब्द- किसान, विमर्श, शोषण, प्राकृतिक आपदाएं, अस्तित्व, दुर्दशा।

प्रस्तावना- किसान समूची मानव जाति को अन्न प्रदान करता है इसलिए उसे 'अन्नदाता' कहा जाता है। उसके जितना परिश्रमी और मेहनती कोई नहीं है। किसान की मेहनत पर यह समाज आगे बढ़ रहा है। वह समाज का मेरूदंड है। किसान की अच्छी या बुरी स्थिति पर ही समाज की आर्थिक स्थिति निर्भर करती है। डॉ. रामवक्ष कहते हैं कि, ''किसान समाज का आधार होता है। समाज का उत्पादक वर्ग किसान है उसी की उन्नति से देश की उन्नति संभव है। उसकी बदहाली देश की बदहाली है।''[1] जमीन तथा श्रम से किसान जीवन का गहरा लगाव है, जिससे जुड़कर किसान का जीवन सार्थक होता है। लेकिन आज पूरी दुनिया में सबसे ज्यादा दुर्दशा किसान की है। उसका जीवन बहुत ही दरिद्रता, ऋणग्रस्तता और असहनीय कष्टों से भरा हुआ है। किसानों की दशा दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही है। वह अपनी खेती से इतना नहीं कमा सकता कि अच्छी तरह अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण कर सके। कभी उसे प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है और कभी सरकारी और प्रशासनिक व्यवस्था का जो हमेशा उसका शोषण कर उसे लूटती है। वह सरकारी नीतियों से त्रस्त हैं और अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आंदोलन कर रहा है। लेकिन उसकी समस्याओं को सुनने वाला कोई नहीं है। उसका चालाकी से शोषण किया जा रहा है। आज के बाजारवादी दौर में वह हाशिए पर चला गया है।

हिन्दी उपन्यासकारों ने विभिन्न विषयों को लेकर उपन्यासों की रचना की है। जिनमें ग्रामीण जनजीवन से संबंधित उपन्यासों में किसान जीवन का बाखूवी चित्रण हुआ है। किसान को केन्द्रित करके कितने ही श्रेष्ठ उपन्यासकारों जैसे- मुंशी प्रेमचंद, शिवपूजन सहाय, निराला, अमृत राय, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, वीरेन्द्र जैन, संजीव, पंकज सुबीर, एस. आर. हरनोट आदि ने उपन्यासों की रचना की है। एस. आर. हरनोट ने सन् 2004 में 'हिडिम्ब' उपन्यास पहाड़ी किसान के जीवन को केन्द्रित करके लिखा है। 'हिडिम्ब' उपन्यास में एस.आर. हरनोट ने किसान जीवन की यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है। इस उपन्यास में लेखक ने किसान जीवन की दयनीय दशा, राजनेताओं के किसानों पर बढ़ते अत्याचार, प्राकृतिक आपदाओं द्वारा उनकी फसल का खराब होना, प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा उनका शोषण करना इत्यादि समस्याओं का चित्रण किया है। यह उपन्यास किसान जीवन से संबंधित समस्याओं को व्यापकता के साथ प्रस्तुत करता है।

वर्तमान समय में विकास के नाम पर या अपने निजी स्वार्थ के लिए किसानों की जमीन का अधिग्रहण कर लेना आम बात है। इस प्रकार के कुचक्रों को हम अपने आस-पास होते देख सकते हैं। 'हिडिम्ब' उपन्यास की कथा भी ऐसे ही कुचक्र पर आधारित है। उपन्यास में हम देखते हैं कि शावणू नाम का किसान अपने परिवार की मदद से खेती करता है, पर शासन की उसकी जमीन पर ऐसी कु-दृष्टि पड़ती है कि उसका पूरा परिवार बिखर जाता है। मंत्री को उसकी जमीन पसंद आ जाती है और वह उसे हथियाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है। मंत्री गरीब किसानों से अपने निजी स्वार्थ के लिए जमीन हथयाता है और जमीन हड़पने के किसी भी मौके को अपने हाथ से नहीं जाने देता। पटवारी, पुलिस और सभी सरकारी कर्मचारी उसका इस काम में सहयोग देते हैं। मंत्री ने किसी गरीब हरिजन की जमीन को पांच सितारा होटल बनाने के लिए गलत तरीके से अपने कब्जे में ले लिया था। इस काम में पटवारी और दूसरे अधिकारियों ने उसकी

मदद की थी। अब वह शावणू की जमीन को किसी भी कीमत पर प्राप्त करना चाहता था। वह शावणू को अपनी जमीन की कीमत बताने के लिए कहता है। लेकिन शावणू किसी भी कीमत पर अपनी जमीन मंत्री को नहीं देना चाहता क्योंकि जमीन और किसान का मां-बेटे का संबंध होता है। उसे जमीन अपनी जान से भी प्यारी है। वह मंत्री को कहता है कि ''माई बाप! यह जमीन तो मेरे पुरखों की है। बाप दादा की है। उन्हें बी ये देओ किरपा से परापत हुई थी। आज हमारी दोथ-सांझ है। रोजी रोटी है सरकार। मेरी माँ है। मैं अपणी माए को कैसे बेच सकता हूँ। मेरे को नी बेचणी है जमीन। नहीं बेचणी है।''[2]

उच्च वर्ग हमेशा निम्न वर्ग का शोषण करता है। निम्न वर्ग का साथ देने के लिए कोई भी तैयार नहीं होता और वह अकेला होने के कारण कुछ कर भी नहीं कर सकता। पुलिस और सरकारी कर्मचारी भी उच्च वर्ग का साथ देते हुए निम्न वर्ग पर अत्याचार करते हैं। जब शावणू जमीन देने से मना कर देता है तो मंत्री के उस पर अत्याचार शुरू हो जाते हैं। इस काम में पटवारी, प्रधान, सेक्रेटरी और ठेकेदार मंत्री का साथ देते हुए किसान शावणू का शोषण करते हैं। सेक्रेटरी शावणू के घर पड़े हुए अनारदाने को उसके परिवार के सामने ही पैरों से कुचल देता है। शावणू और उसका पूरा परिवार अपनी कड़ी मेहनत की कमाई को ऐसे बर्बाद होते देखते रहे। प्रधान उस मंत्री का पक्ष लेते हुए शावणू को कहता है कि, ''देख शावणू! तू जानता है म्हारे मंत्री को तेरी जमीन कितनी पसंद है। फिर उनकी पसंद सिर-माथे। बोल कितना पैसा लेणा है तेरे को। अभी बोलेगा तो शाम को मुँह मांगे दाम तेरे हवाले। बोल-बोल।''[3] वह मंत्री का खौफ दिखाते हुए उसे कहते हैं कि तुम्हें परमात्मा का धन्यवाद करना चाहिए क्योंकि तुम जिंदा हो क्योंकि निम्न नड़ जाति से संबंधित होने पर भी तुमने मंत्री को जमीन देने से मना किया था। जहां एक तरफ शावणू और उसके परिवार का सरकारी अधिकारियों द्वारा शोषण किया जा रहा है वहीं दूसरी तरफ वह अपने हक के लिए आवाज उठाते हैं। वह मंत्री और उन सबका विरोध करते हैं। जब ठेकेदार शावणू का कुरता पकड़कर उसे खींचता है तो उसकी घरवाली हाथ में दराट लेकर ठेकेदार को धक्का देकर खेत में गिरा देती है और कहती है कि, ''हरामजादे आ तो तू क्या कर लेता? बोल-बोल क्या कर लेता तू? जमीन हमारी है। तेरे और तेरे मंत्री के बाप की नी है ये जमीन। हमने इसको खून-पसीने से बाया-कमाया है।''[4]

किसान का जमीन के प्रति मोह अपने अस्तित्व को बचाने जैसा है। अपनी जमीन को बचाने के लिए वह कुछ भी कर सकता है। शावणू ने अपनी जमीन को बचाने के लिए अपनी और अपने परिवार की जिन्दगी को दांव पर लगा दिया। जब मंत्री की लाख कोशिश के बाद भी वह अपनी जमीन देने से इन्कार कर देता है तो मंत्री उसके पुत्र कांसी की हत्या करवा देता है। कुछ समय के बाद उसकी पत्नी की मृत्यु हो जाती है। उसका पूरा परिवार बिखर जाता है और वह अकेला रह जाता है। उसका दोस्त शोभा उसके हालात देखकर कहता है कि, ''देख शावणू तू निपट अकेला रह गया। उस मंतरी की आंख अभी भी तेरी जमीन पर टिकी है। उस कमीणे ने इतना कुछ कर दिया कि कोई तेरी जगह और होता तो कभी का मर खप जाता। या जमीन छोड़ कर भाग गया होता। मैं तेरी हिम्मत को मान गया शावणू।''[5] वह शावणू को समझाते हुए कहता है कि तुम इस जमीन को बेच डालो। हम किसी दूसरी जगह पर भूमि खरीद लेंगे। वह कहता है कि हम पटवारी के पास चलते हैं और मैं अपनी जमीन में से पांच-दस बीघे तेरे नाम कर दूँगा। लेकिन शावणू किसी भी कीमत पर अपनी जमीन को बेचने के लिए राजी नहीं होता। वह मंत्री के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाता है। अपनी जमीन को बचाने के लिए और अपने हक को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है। अंत में वह अपनी जमीन अस्पताल बनाने के लिए दान करके मंत्री को मुंह तोड़ जबाब देता है।

पशुपालन किसान जीवन का आधार है। गाय को किसान के घर मां के समान पूजा जाता है। किसान के घर घी, दूध की कभी कमी नहीं होती। पशुओं के गोबर को खेत में खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, जिससे फसल की पैदावार में वृद्धि होती है। 'हिडिम्ब' उपन्यास में किसान के घर का चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया है, "घर के दाईं तरफ एक कमरे वाली गोशाला थी जिसकी छत घास की बनी हुई थी। पशुओं में एक जर्सी गाय। दो पहाड़ी गाएं। एक जोड़ी बैल। एक बकरी और एक भेड़ थी। बकरियां पहले काफी थीं लेकिन जरूरत पड़ने पर शावणू उन्हें बेच देता था।''[6]

किसान जीवन की समस्याएँ कभी भी खत्म नहीं होती जैसे-कभी सूखा पड़ जाता है, कभी पाला, कभी बेमौसमी बरसात और कभी फसलों को बिमारी पड़ जाती है। अर्जुन प्रसाद सिंह कहते हैं कि, ''भारतीय खेती आज भी काफी हद तक मानसून पर निर्भर है और हर साल बाढ़, सूखे और कीड़ाखोरी जैसी प्राकृतिक विपदाओं से भारी पैमाने पर किसानों की फसलों और अन्य संपत्तियों का नुकसान होता है।''[7] किसानों को केवल प्राकृतिक आपदाओं से ही खतरा नहीं होता अपितु जानवर भी कई बार पकी-पकाई फसल को नष्ट कर देते हैं। ऐसी बहुत सारी समस्याएं किसान को कभी चैन की सांस नहीं लेने देती। शावणू को भी इन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अपनी फसल को बन्दरों, भालू, गीदड़ों, कौवों आदि पशु-पक्षियों से बचाने के लिए शावणू और उसका पूरा परिवार फसल की रखवाली करता था। इसका वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है, ''उन्होंने खेतों के बीच खड़े पेड़ में काफी ऊपर एक कनस्तर और दो-चार टीन के डिब्बे टांग दिए थे, जिसकी

रस्सी घर की खिड़की में बांधी थी। उसे रात को कई बार खींचते थे। कनस्तर और डिब्बे आपस में टकराते और बजने लगते। जोर की टनटनाहट होती। खूब शोर होता। खेत में घुसे जानवर भाग जाते थे।''[8] लेकिन जानवर मौका मिलने पर उसकी फसल को खराब कर देते हैं। वह अपनी फसल की जब ऐसी हालत देखता है तो उसकी पीड़ा बहुत गहरी हो जाती है, ''बन्दरों ने दो-तीन खेत लगभग आधे-आधे उजाड़ दिये थे। सूत पड़ी मक्कियों को झंझोड़ दिया था। कच्ची-दुधली मक्कियों के डंठल और छिलके खेतों की मुंडेर पर और घासणी के बीच बिखरे पड़े थे। देखकर कलेजा बाहर निकल आया।''[9] जानवरों द्वारा फसल खराब कर दिए जाने पर चिंतित किसान की दशा को लेखक ने जहाँ चित्रित किया है कि कैसे इतनी मेहनत से पाली फसल को जानवर कुछ ही समय में नष्ट कर देते हैं।

नशा एक ऐसा जहर है जो मनुष्य के जीवन को बर्बाद कर देता है। नशा करने वाला व्यक्ति अपना कितना धन और समय नशे में खो देता है उसको स्वयं मालूम नहीं होता। नशे के लिए वह अपनी जमीन तक को बेच देता है। 'हिडिम्ब' उपन्यास में लेखक ने किसान जीवन में नशे की समस्या को भी उठाया है कि आर्थिक स्थिति कष्टप्रद होने पर दुखी किसान कैसे नशे का आदी हो जाता है। नशे की लत को पूरा करने के लिए कैसे वह अपनी जमीन को बेच देता है, ''अब उनको शराब, सुल्फा और भांग की लत पड़ गई थी। वे दिन रात इसी में मस्त रहते। उन्हें न काम की फिक्र थी न अपने परिवार की परवाह। नशे की जरूरतों को पूरा करने के लिए, टुकड़ा-टुकड़ा जमीन, भू-के-भाव बेचते चले गए। इस मीठे जहर ने उन्हें इस तरह बेहोश किए रखा कि वे अपने- पराए की पहचान ही भूल गए थे।''[10] किसानों के ऐसे हालात के देखकर शावणू को दुख होता है। वह सोचता है कि इन लोगों कि पास इतनी-इतनी जमीनें थीं लेकिन अब वह एक-एक दाने के लिए तरस रहे हैं। उन्होंने सारा पैसा शराब, चरस-भांग में ही गवा दिया है। वह शोभा को कहता है कि, ''मैंने तो सुणा है शोभा जे म्हारे लोगों ने बहुत जमीने बेच दी। म्हारे लोग सोचते नी कि धरती तो म्हारी माए है। मैं तो देखता हूं कि म्हारे छोकरे-छल्ले तो दारू-भांग में ही मस्त हैं।''[11] शोभा के बेटे और पोते भी नशे के आदी हो गए थे। उसके बेटों ने नशे की जरूरत को पूरा करने के लिए उसकी जमीन तक को बेच डाला। अपने छोटे बेटे की मौत का कारण शावणू को बताते हुए वह कहता है कि, ''कुछ नशा वशा करता था वो। स्कूल के मास्टर ने एक दिन बुलाया था। सफेद-सफेद पुड़िया दिखाई कि ये खतरनाक चीज है। ये हिप्पी लोग लाते हैं इसको। बोले कि लड़का खाता भी है और बेचता भी है।''[12]

फसल की रोपाई और कटाई के समय स्त्री और पुरुष दोनों कंधे से कंधा मिलाकर खेत में काम करते हैं। जब वह अपने हरे-भरे लहलहाते खेतों को देखते हैं तो उनका मन भी हरा-भरा हो जाता है। उनके मुख से स्वाभाविक ही गीत के बोल निकलने लग जाते हैं। जब शावणू और उसका परिवार गांव वालों के साथ मिलकर धान की रोपाई का काम कर रहे थे, उस समय वह सब मिलकर 'ओबू' और 'ओबी' का गीत गाते हैं-

''खेता लागी आज रूहणी म्हारे
हो रूहणी म्हारे...रूहणी म्हारे
हांइए ओबीए
ओबे हो....।''[13]

****

''आज के बिछुडे, होरी तुआरे
खेता निभी ऐबे, रूहणी सारे
खेता रे पूजे, दूजे कनारे
म्हारे जुआरे, म्हारे जुआरे।''[14]

निष्कर्ष- जमीन किसान जीवन की धुरी ही नहीं उसकी अस्मिता का आधार भी है जिसके बिना किसान का जीवन पेड़ के सूखे पत्ते की तरह होता है। अंतः हम कह सकते हैं कि 'हिडिम्ब' उपन्यास किसान जीवन का बेजोड़ नमूना है। लेखक ने किसानी जीवन से संबंधित उन सभी समस्याओं को उठाया है जो आज भी कहीं न कहीं हमारे समाज में मौजूद हैं। किसान को कभी प्रशासनिक अधिकारियों व राजनीतिक नेताओं की कुदृष्टि का सामना करना पड़ता है और कभी प्राकृतिक आपदाओं का। समय और समाज बदल गया है लेकिन किसानों की स्थिति-परिस्थिति में अब भी कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। किसान के संघर्ष, त्याग का बाखूबी चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

सन्दर्भ

1. रामवक्ष, ''प्रेमचंद और भारतीय किसान'', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 176
2. हरनोट, एस.आर, ''हिडिम्ब'', आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2004, पृष्ठ 22
3. वही, पृष्ठ 34 4. वही, पृष्ठ 35 5. वही, पृष्ठ 248
6. वही, पृष्ठ 9
7. सिन्हा, प्रीति (संपा.), ''फिलहाल'', फिलहाल ट्रस्ट स्वास्तिक प्रेस काजीपुर, पटना, जनवरी-फरवरी, 2018, पृष्ठ 16
8. हरनोट, एस.आर, "हिडिम्ब'', आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2004, पृष्ठ 30
9. वही, पृष्ठ 50 10. वही, पृष्ठ 63 11. वही, पृष्ठ 68
12. वही, पृष्ठ 70 13. वही, पृष्ठ 143 14. वही, पृष्ठ 143

सरबजीत कौर
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला
डॉ. कुलदीप कौर (शोध निर्देशिका)

नरेन्द्र मोहन का नाटक-नो मैंस लैंड

–डॉ. पुष्पा देवी

शोध सारांश - डॉ. नरेन्द्र मोहन आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उनका जन्म 30 जुलाई, 1935 ई. में लाहौर की बस्ती धर्मपुरा में हुआ था। स्वातन्त्र्योतर हिन्दी नाटक को नई दिशा देने में डॉ. नरेन्द्र मोहन की अहम् भूमिका रही है। नरेन्द्र मोहन का नाट्य सृजन सन् 1988 ई. में शुरू होकर 2011 ई. तक रहा। उनका नाटक नो मैंस लैंड 1994 ई. में प्रकाशित हुआ। यह नाटक देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। उन्होंने विभाजन की त्रासदी में होने वाली लूट-पाट, मार-काट, यौन शोषण के कारण असन्तुलित एवं असामान्य-सी जिन्दगी जी रहे लोगों की मनोदशा का चित्रण बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार डॉ. नरेन्द्र मोहन ने, न केवल हिन्दी कविता लिखी बल्कि हिन्दी नाटक, पंजाबी नाटक, पंजाबी कविता, डायरी संस्मरण, आलोचनात्मक पुस्तकों के साथ-साथ कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया। 1961 ई. में पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त इन्होंने लम्बे समय तक कई विश्वविद्यालयों में अपनी सेवाएं प्रदान की। उन्होंने लम्बे समय तक कई नाटक देखे और पढ़े, परन्तु नाटक लिखना काफी समय बाद शुरू किया। इनके मन में बहुत कुछ कुलबुलाता रहता था। इनके भीतर की अकुलाहट-सुगबुगाहट किसी नये कला रूप में अभिव्यक्त होने के लिए तड़पती रही और वहीं से इनका रुझान नाट्य लेखन के रूप में सामने आया। स्वातन्त्र्योतर हिन्दी नाटक को नई दिशा देने में डॉ. नरेन्द्र मोहन की अहम् भूमिका रही। हिन्दी साहित्य जगत् में उनका नाम बहुचर्चित एवं बहुआयामी है। सबसे अधिक सफलता उन्हें नाटककार के रूप में प्राप्त हुई। उनके अब तक नौ नाटक प्रकाशित हो चुके हैं जो विभिन्न प्रसिद्ध नाट्य संस्थाओं द्वारा मंचित हुए हैं। उन्होंने अपने नाटकों के लिए नए-नए विषयों को चुना था। वे हमेशा समाज की किसी समस्या को लेकर नाटक लिखते थे। उनके सभी नाटक पाठकों और दर्शकों को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। उनके नाटक विभाजन की त्रासदी, समसामयिक यथार्थ, आज की विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, मानवीय विडंबनाओं, धर्मोन्माद, सम्प्रदायवाद, आतंकवाद, आम आदमी का संघर्ष और आज के ज्वलंत प्रश्नों से जुड़ने वाले हैं।

डॉ. नरेन्द्र मोहन का नाटक 'नो मैंस लैंड' 1994 ई. में प्रकाशित हुआ। यह नाटक देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। यह नाटक मंटो की अत्यंत प्रसिद्ध और मिथ बन चुकी कहानी 'टोबा टेक सिंह' से प्रेरित है। जिसमें मंटो की दो अन्य मार्मिक कहानियाँ 'खोल दो' और 'ठण्डा गोश्त' के संदर्भ-संकेत शामिल हैं। टोबा टेक सिंह की कहानी जहाँ समाप्त होती है, वहीं से नाटक की शुरुआत होती है। 'नो मैंस लैंड' नाटक इन कहानियों का रूपांतरण नहीं है।

'नो मैंस लैंड' नाटक में भारत-पाक विभाजन की त्रासदी के कारण असंतुलित मनोविकार वाले हिन्दू और मुसलमान एक ही पागलखाने में रहते थे। विभाजन के पश्चात् हिन्दू पागलों को हिन्दुस्तान और मुस्लिम पागलों को पाकिस्तान भेजना था। परन्तु हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच कुछ भूमि ऐसी है जो बंजर है, वहाँ कोई नहीं रहता। वह न ही हिन्दुस्तान की है और न ही पाकिस्तान की, उसी भूमि को नो मैंस लैंड कहते हैं। यह नाटक मूलतः भारत-पाक विभाजन के समय हुई अमानवीय घटनाओं को उजागर करता है, जो आम-आदमी के अस्तित्व को झकझोर कर रख देती है। इस नाटक का मुख्य आधार पागलों का तबादला है। इस नाटक को पाँच दृश्यों में विभाजित किया गया है। प्रथम दृश्य का आरंभ इस प्रकार होता है।

जैसे कि-मंच पर पहले धुंधली आकृतियाँ दिखती हैं जो धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगती हैं। ये आकृतियाँ पेड़ तक फैली दिखती हैं। ये हिन्दुओं, सिखों, मुसलमानों और ईसाईयों जैसे दिखती हैं पर हू-ब-हू वैसी भी नहीं हैं।

****

वे जहाँ खड़े हैं या टहल रहे हैं वह एक पागलखाने का खुला अहाता है। उनमें से कुछ पागलों जैसी हरकरते करते दिखते हैं। अन्य सामान्य से!

मंच के पिछले हिस्से में से किसी की बेलौस, भेदती हंसी।[1]

पागलखाने के दफेदारों के संवादों द्वारा दृश्य आरम्भ होता है। विभाजन के समय हुए दंगों में लूट-पिट जाने पर बिशन सिंह, सुराजुद्दीन, वकील सोमनाथ, हीरा, अब्दुल (अंधा पागल) गायक, भजन सिंह आदि सब मानसिक रोग के शिकार होकर पागलखाने में इकट्ठे हो गये हैं।

जैसे कि-दफेदार-एक (कठोर आवाज में) किससे बचने को कह रहा है? कहाँ है खूंखार शिकारी कुत्ते? (बिशन सिंह पत्थर के बुत की तरह खड़ा रहता है जैसे उसका किसी चीज से वास्ता ही न हो) हीरा, तू बता क्या हुआ?

हीरा- मुझे क्या पता? कभी इसे कुत्ते दिखते हैं। कभी भेड़िए ... इसकी आदत है। कभी पत्थर की तरह बेहिस और बेजान, कभी जिन्न की तरह तेज अन्धड़[2]-

यह मानसिक विकार विभिन्न पात्रों का दायित्व निभा रहा है। उन सब पागलों में स्वस्थ मनुष्य गायब है, सभी आपे में न होकर किसी और ही दुनियाँ के परिन्दे बने हुए हैं।

जैसे कि- रामकिशन कहता है-''आदमी गुम... खुल जा सिम सिम... देख, मैं समझता हूँ-तू है तू नहीं है। जरा सोच, असल में तू क्या है? (सुराजुद्दीन से) किसी और की मुट्ठी में बन्द तेरा आपा और तू चीखता रहता है मैं ...मैं... मैं... (भजन सिंह से) नाम ही नाम... आदमी गायब...।[3]

नाटक में सभी पागलों की बातें प्रतीकात्मक होकर देश विभाजन की त्रासदी को बयान करती हैं जब भजन सिंह अखबार पढ़ता है तो उसमें यह खबर है कि हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के कैदियों के तबादले के बाद पागलखानों के पागलों का तबादला किया जायेगा। यह तबादला धर्म के आधार पर होगा। हिन्दू हिन्दुस्तान जायेगा और मुसलमान पाकिस्तान जायेगा लेकिन एंग्लो इंडियन की परिस्थिति कुछ और ही है।

जैसे कि एंग्लो इंडियन कहता है (तल्खी से) हिन्दू हिन्दुस्तान जायेगा, मुसलमान पाकिस्तान जायेगा, वेयर विल आई गो- बोलो वेयर विल आई गो। आई विल टॉक टु हिज मैजस्टी- आई विल सी टु इट यू आर सस्पेंडिड।[4]

एंग्लो इण्डियन का यह कथन धर्म, जाति एवं भूगोल के आधार पर मानवीय मूल्यों को तोड़कर बनाए गए मानदण्डों पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। मानवता को इस तरह प्रताड़ित करने के पीछे राजनीतिक सत्ता की क्रूर साजिश, अंधेरगर्दी अन्याय, स्वार्थान्धता बर्बरतापूर्ण नीतियाँ काम कर रही थी। इस नाटक का मुख्य पात्र बिशन सिंह है जो समूचे राजनीतिक षड्यंत्रों की मानसिकता के विरूद्ध खड़ा होता है। जो विक्षिप्त होते हुए भी अपनी जमीन को नहीं भूलता और अपनी उस जमीन के लिए अपनी जान भी दे देता है। भारत-विभाजन की परिस्थितियों को भी नाटककार ने बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया है। यहाँ साम्प्रदायिक दंगे और हिंसा से जुड़ी घटनाएं हैं। स्त्रियों का यौन उत्पीड़न है। तत्कालीन यथार्थ पागल कर देने वाला यथार्थ है। पूर्व दीप्त शैली से ज्ञात होता है कि बिशन सिंह एक सच्चा देश भक्त था, वह सभाएं करता, जुलूसों की अगुवाई करता था। उसकी पत्नी परमिन्दर को सभाओं में जाना और सभाएं करना बिल्कुल भी पसन्द नहीं था। फिर भी बिशन सिंह, फजलुद्दीन, असद और अब्दुल सभी मिलकर जुलूस निकालते हैं।

जैसे कि-''सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है/ देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है।''[5]

आजादी का तराना गाते हुए सभी आगे बढ़ते हैं। उसी समय अंग्रेज अफसर जुलूस पर लाठियाँ बरसाने लगते हैं उसके बाद गोलियाँ चलती हैं। गोली लगने से असद बुरी तरह जख्मी हो जाता है और असद की मृत्यु हो जाती है। अब्दुल जैसे उन अफसरों और अंग्रेज सिपाहियों को सम्बोधित करते हुए गीत गाता है।

सोजे निहाँ की बिजली, सर पर गिरेगी तेरे,
जलिम! तू मर मिटेगा, बदलेगा यह जमाना।[6]

पागलखाने में बिशन सिंह अपने चारो तरफ आए पागलों को झकझोरने लगता है। सभी पागल डरकर सहमे हुए दिखते हैं और फिर ठहाका मारकर हँसते हैं। इस प्रकार आजादी प्राप्त करने के लिए लोगों को जो यातनाएँ झेलनी पड़ी। उनका साफ-साफ चित्र इन पागलों के माध्यम से नाटककार ने चित्रित किया है।

दृश्य दो में विभाजन की त्रासदी को मुख्य रूप से दिखाया गया है। यह विभाजन मात्र भौगोलिक विभाजन नहीं था बल्कि भारत और भारतवासियों के हृदय, उनके आपसी सुख-दुख, प्रेम भावनाओं का विभाजन भी था। उनको शारीरिक पीड़ा के साथ-साथ मानसिक पीड़ा भी बहुत अधिक थी। वो खून के आँसू रोये थे। चारो तरफ मार-काट, लूट-पाट थी।

जैसे कि - अंधा पागल गायक- देखा कभी तुमने ज्वालामुखी दिल्ली/ देखा कभी तुमने / सुलगता अंबरसर और जलता लाहौर/ ओ सैया की कि कहाँ/ लाहौर के/

****

गोली के मैदान में/ सारे साब कट गये/ लाहौर के मैदान में/ लक्क बन्द्ध के तोप चलाइये।[7]

इस प्रकार अंधा पागल गायक देश में हो रहे दंगे-फसाद का हाल बयान करता है। देश विभाजन ने सबके सपने छिन लिये हैं। वकील से उसकी महबूबा छिन ली जो अमृतसर में है और बिशन सिंह से उसका टोबा टेक सिंह छिन लिया गया है। परिस्थितियों ने नाटक के पात्रों को दिमागी तौर पर असंतुलित बना दिया है। परन्तु वे बददिमाग नहीं हैं। सभी को अपनी भूमि, मिट्टी एवं परिजनों से अलग

होने का दुःख दर्द है।

तीसरे दृश्य में बिशन सिंह अपने ख्यालों में खोया हुआ एक पैर पर खड़ा है। उसे याद आता है कि उसके बड़े भाई ने उसे धोखा देकर उसकी जमीन हड़प ली है। उसके भाई उसे पागल समझने लगते हैं और उसे मोटी-मोटी जंजीरों से बांधकर पागलखाने में छोड़ गए हैं। बिशन सिंह अपने मित्र असद को याद करते हुए विभाजन के समय हुए दंगे-फसादों को भी याद करता है। उसने अपनी पीठ पर अपनी पत्नी परमिंदर को लाद रखा है और वह धधकती आग में फुंकराते हुए सांपों की तरह लड़ता रहता है। उसे याद आता है कि सब कुछ जल कर राख हो गया है उसके शोर में भजन सिंह जाग जाता है। भजन सिंह, बिशन सिंह को चुप रहने को कहता है। दफेदार- दो - भजन सिंह को बताता है कि बिशन सिंह छः महीनों से सोया नहीं है। अब तो किसी को पहचानता भी नहीं है। दफेदार दो बताता है कि कुछ दिन पहले बिशन सिंह की बेटी रूपा अपने चाचा फजलुद्दीन के साथ अपने पिता से मिलने आती है। परन्तु बिशन सिंह अपनी बेटी रूपा को पहचान नहीं पाया।

जैसे कि : रूपा (उद्विग्न सी उसकी तरफ देखती हुई) दारजी, घर चलो!

बिशन सिंह : (जैसे दौरा पड़ गया हो) ओ पड़ दी, गिड़ गिड़ दी, एक्स दी बेध्याना दी (रूपा की तरफ देखता है पर कोई पहचान नहीं उभरती) मुँग दी दाल ऑफ दी लालटेन-लालटेनों की रोशनी में चमकता मेरा पिंड-मेरा पिंड ...।[8]

इसी प्रकार सुराजुद्दीन अपनी बेटी सकीना और सकीना की माँ को याद करते हुए रोने लगता है।

जैसे कि - सुराजुद्दीन : (सुबकते हुए) सकीना, सकीना. ... सकीना की माँ- मेरी बीबी- एक हिचकी के साथ जमीन पर गिरी और बाहर उछल पड़ी अंतडियाँ अंतड़ियों का जाल- दफेदार दो- (उसके साथ में मुचड़े हुए दुपट्टे को देखकर) यह दुपट्टा ....।

सुराजुद्दीन : हाँ, यह दुपट्टा सकीना का (याद करता हुआ) मैं और सकीना आगे-आगे, बलवाई हमारे पीछे-पीछे. ... जैसे हम तेजी से एक मोड़ काटते वैसे ही वे तेजी से वही मोड़ काटते। मैं और सकीना चलते-चलते भागने लगे थे। भागते-भागते उसका दुपट्टा गिरा और पलक झपकते झुककर मैंने उठा लिया और वह कहती ही रह गई- 'भागो, तेज भागो (सुबकते हुए) सकीना, कहां है सकीना (एक तरफ लुढ़क जाता है)[9]

जिस मनुष्य की पत्नी को उसकी आँखों के सामने ही मौत के घाट उतार दिया जाए और जिसकी जवान बेटी को कोई उठाकर भाग जाए, तो वह मनुष्य पागल नहीं होगा तो क्या होगा। बँटवारे के समय कोई एक सुराजुद्दीन नहीं बल्कि हजारों सुराजुद्दीन की पत्नियों, बेटियों की इज्जत लूटी गई थी। हजारों बिशन सिंह अपने बीबी-बच्चों को पहचान नहीं पाये, अली, रामकिशन, अब्दुल वकील, हज़ारों हीरा जैसे अपने बीबी-बच्चों का सामना करने से डरते हैं और अपनी करतूतों पर शर्मिन्दी जाहिर करते हुए दिखाई देते हैं। चारों तरफ पशुता का नंगा नाच दिखाई देता है। कौन ऐसा पत्थर दिल है जो ऐसी परिस्थितियों में अपने होश-हवास को कायम रख सकता है।

चौथे दृश्य में सुराजुद्दीन, भजन सिंह, रामकिशन, वकील और हीरा पेड़ के करीब खड़े हैं। सुराजुद्दीन को लगता है कि आसमान जमीन पर उतर रहा है और वकील को आसमान में इश्क का घोडा पंख फड़फड़ाता हुआ दिखाई दे रहा है। अचानक सुराजुद्दीन का ध्यान इंजीनियर अली पर पड़ता है जो तार को पेचकस से जोड़कर रेडियो की तरह बुलवाना चाहता है। अली कहता है कि जब आजादी का बल्ब जला तब आदमी नंगा हो गया। अली को अचानक दौरा पड़ता है और वह कपड़े फाड़ने लगता है। उसकी देखा-देखी रामकिशन, सुराजुद्दीन और अली कपड़े फाड़ने लगते हैं। एक कोहराम सा मच जाता है। हीरा सबको चुप करवाकर कहते हैं कि कपड़े फाड़ने से कुछ नहीं होगा। वह कहता है आदमी नंगा होने पर दंगा करता है या दंगा करने पर नंगा हो जाता है। हीरा को लगता है कि नंगा होना लाश होना है। अली कहता है नहीं, नंगा होना आजाद होना है- और रोते हुए कहता है मैं आजाद हूँ। उसी समय दफेदार एक आकर कहता है कि आज तुम सब आजाद हो रहे हो। आज तुम सबको अपने-अपने मुल्क भेज दिया जाएगा। लेकिन अली और बिशन सिंह को अपने दोस्तों के साथ पागलखाने में ही रहना है। सभी एक दूसरे के करीब आकर सिमट जाते हैं।

दफेदार एक दफेदार दो को बताता है कि पाकिस्तान से हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान से पाकिस्तान आने-जाने वालों की अदला-बदली की कार्यवाही पूरी हो गई है और अब पागलों की अदला-बदली भी हो जायेगी। दफेदार एक कहता है कि पाकिस्तान के पागलखानों में जो हिन्दू-सिख पागल हैं उन्हें हिन्दुस्तान भेज दिया जाएगा और जो हिन्दुस्तान के पागलखानों में मुसलमान पागल हैं उन्हें पाकिस्तान भेज दिया जाएगा। थोड़ी देर बाद बिशन सिंह का दोस्त फजलुद्दीन उससे मिलने आता है और उसे बताता है कि तुम्हारे सारे रिश्तेदार राजी-खुशी हिन्दुस्तान पहुँच गए हैं। फजलुद्दीन कहता है बिशन सिंह तुम भी हिन्दुतान जा रहे हो। उसी समय अंधा पागल गायक (अब्दुल) फजलुद्दीन को उसकी आवाज से पहचान लेता है और उससे लिपट जाता है। अब्दुल फजलुद्दीन से टोबा टेकसिंह का हाल पूछता है तभी बिशन सिंह को दौरा पड़ने के आसार दिखाई देने लगते हैं। उसी समय अंधा पागल

गायक (अब्दुल) भारत और पाकिस्तान के टुकड़ों को जोड़कर एक बनाने की बात करते हैं।

जैसे कि रामकिशन : धरती बंटी, बंटा आकाश/ नदियाँ बंटी, बंटा इतिहास/ संस्कृति बंटी, बंटा परिवार/ यह कैसा पहिसार हुआ रे।

****

फजलुद्दीन : भाई थाम के रखो/ हाँ भाई जोड़ के रखो/ टुकड़े-टुकड़े, टुकड़े-टुकड़े, टुकड़े..... ।[10]

तभी वहाँ हीरा आता है। हीरा वकील से फाँसी की सजा से बचने के लिए उसक केस लड़ने के लिए कहता है। वकील हीरा से केस की फीस मांगता है। वकील काम करने को तैयार हो जाता है। वकील हीरा से कहता है कि तू उसकी महबूबा को भगाकर ले आ। परन्तु हीरा डरता है कि रास्ते में कोई उसका कत्ल न कर दे। हीरा खुद गुनाहगार है इसलिए उसे चारों तरफ लाशें ही लाशें दिखाई देती हैं। उसी समय दफेदार आकर बताता है कि आजादी की लड़ाई खत्म हो गई है, सरकार तुम्हें भी आजाद कर रही है तभी बिशन सिंह और रामकिशन दफेदार से कहता है कि हमें आजाद मत करना। हमें इसी जमीन पर एक साथ रहने दो। इस बात से पता चलता है कि राजनीतिक साजिशों ने मानव को मानव से जुदा कर दिया। परन्तु मनुष्य एक दूसरे से अलग होना नहीं चाहते थे। यहाँ तक कि पागल भी मिलकर रहना चाहते हैं। सभी एक-दूसरे की तरफ प्यार और हसरत से देखते हुए कहते हैं, हमें इसी जमीन पर एक साथ रहने की आजादी दो।

अंत में पांचवें दृश्य में रामकिशन हिन्दुस्तान- पाकिस्तान के मसले पर भाषण दे रहा है।

जैसे कि रामकिशन : (भाषण देने के अंदाज में) पाकिस्तान क्या है- एक माने में वह हिन्दुस्तान ही है रूह की ओर से देखें तो (सुराजुद्दीन, वकील हँसते हैं) हँसों- नक्शे से बड़ा दिलों का तार (झाड़ू देता हुआ अली अपने तार को हिलाता है और फिस्स से हँस देता है) नक्शे में वह तार बेशक नहीं। नक्शे में दोनों अलग-अलग हैं।[11]

इस प्रकार हम कहते सकते हैं कि हिन्दू और मुसलमान कोई दो जातियाँ नहीं थीं। दोनों अपने आपको एक जिस्म मानते हैं, नक्शे में भले ही दो हो गये हों परन्तु दिलों से दो नहीं हो सकते थे। वो तो राजनीतिक साजिशों के कारण भारत-पाक विभाजन जैसे त्रासदी को झेलना पड़ा।

पागलखाने का सुपरिटेंडेंट वहाँ आता है और कहता है सरकार ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के पागलखानों के पागलों को उनकी मर्जी के अनुसार हिन्दुस्तान या पाकिस्तान भेजने का फैसला लिया है। सभी पागल हिन्दुस्तान, पाकिस्तान की सरहद पर हैं। बीच की जमीन पर दोनों दफेदार खड़े हैं जो न ही हिन्दुस्तान की है और न ही पाकिस्तान की। उस नो मैंस लैंड पर दोनों इंस्पेक्टर खड़े हैं और पहला नाम रामकिशन का आता है।

जैसे कि - इंस्पेक्टर-एक : बोल इधर जाना चाहता है या उधर ?

रामकिशन : इधर, उधर क्या होता?

भजन सिंह : (इंस्पेक्टर से) रौब न झाड़, सीधी-साफ बात कर।

इंस्पेक्टर-एक : ओए, मैं पूछ रहा तू पाकिस्तान जाना चाहता है कि हिन्दुस्तान.....

(रामकिशन और भजन ठोढ़ी पर हाथ रखकर सोचने लग जाते हैं-हिन्दुस्तान-पाकिस्तान, पाकिस्तान-हिन्दुस्तान)[12]

इसके बाद बिशन सिंह का नाम पुकारा जाता है और उसे आगे बढ़ने के लिए कहा जाता है। बिशन सिंह उनसे पूछता है कि यह जगह कौन सी जगह है। इंस्पेक्टर बिशन सिंह को बताता है यह बार्डर है- दो मुल्कों की हदबंदी। बिशन सिंह हैरानी से पूछता है दो मुल्क कहाँ हैं?

जैसे कि - इंस्पेक्टर -दो - एक हिन्दुस्तान, दूसरा पाकिस्तान ! मेरी पीठ के पीछे पाकिस्तान। मेरे सामने, मेरी उंगली की सीध में हिन्दुस्तान ! तु किधर जाना चाहता है।

बिशन सिंह : जहाँ तुम खड़े हो।

इंस्पेक्टर एक : मैं.... मैं... यह नो मैंस लैंड है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बीच की बंजर लावारिस जगह.. . यहाँ से तुम हिन्दुस्तान जा सकते हो या .... ।[13]

इन सब बातों से बिशन सिंह अपना आपा खो देता है और चीखते हुए कहता है मैं कहीं नहीं जाऊंगा- न पाकिस्तान न हिन्दुस्तान। मैं यहीं रहूंगा। यह मेरी जमीन है मुझे यहाँ से कोई नहीं हटा सकता और अंत में दफेदार दो बिशन सिंह के करीब आकर कहता है।

जैसे कि - दफेदार-दो : (बिशन सिंह के करीब पहुँचकर) चल बिशना, अब चल।

(बिशन सिंह को हाथ से छूता है तो वह वहीं ढेर हो जाता है। उसे इस तरह गिरते देख दफेदार-दो पागल-सा अहसास करने लगता है। इंस्पेक्टर-एक, इंस्पेक्टर-दो, सिपाही-एक, सिपाही-दो, दफेदार - एक दौड़ते हुए वहाँ पहुँचते हैं। वे देखते हैं कि बिशन सिंह औंधे मुँह पड़ा है। उसकी टांगों के पीछे हिन्दुस्तान के पागलों का दायरा है, उसके सिर की ओर पाकिस्तान के पागलों का। बीच में जमीन के उस टुकड़े पर जिसे नो मैंस लैंड कहते हैं, बिशन सिंह पड़ा है।)[14]

निष्कर्ष : नो मैंस लैंड नाटक में देश विभाजन की त्रासदी के कारण असन्तुलित मानसिकता वाले लोगों की मनोदशा का चित्रण बड़ी बारीकी से किया गया। ये असन्तुलित मानसिकता वाले प्राणी पागलखाने में रहते हैं। परन्तु ये सभी पागल किसी न किसी अच्छे व्यवसाय से तालुक रखते हैं। कोई इंजीनियर है, कोई वकील है तो कोई

मास्टर जी है तो कोई सच्चा देशभक्त है। सभी के हृदय में ममता, संवदेना, दया, करुणा, नैतिकता सौम्यता समाई हुई है। राजनीतिक साजिशों एवं राजनेताओं की स्वार्थान्धता के कारण मानव को मानव से अलग कर दिया। उस पर जाति, धर्म, वर्ग का लेबल लगाकर उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। देश विभाजन की त्रासदी इतनी भयानक थी कि आम आदमी उस मार-काट, लूट-खसोट को देखकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। यह नाटक हमें आजादी को एक नए दृष्टिकोण से देखने का प्रयास भी है।

संदर्भ

1. गुरचरण सिंह, सुमन पंडित, नरेन्द्र मोहन रचनावली, 2, पृ. 229
2. वही, पृ. 233
3. वही, पृ. 234
4. वही, पृ. 239
5. वही, पृ. 242
6. वही, पृ. 243
7. वही, पृ. 248
8. वही, पृ. 252
9. वही, पृ. 254
10. वही, पृ. 266
11. वही, पृ. 271
12. वही, पृ. 274
13. वही, पृ. 278
14. वही, पृ. 280

डॉ. पुष्पा देवी
एसोसिएट प्रो. हिंदी विभाग,
फ़तेहचन्द महिला महाविद्यालय,
हिसार-125001, हरियाणा
मो. : 9215512414

रामचरित मानस में शिक्षा दर्शन का समालोचनात्मक अध्ययन

–डॉ. गिरीश कुमार वत्स

प्रस्तावना :- तुलसीकालीन समाज में सामन्तवादी विचारधारा पनप चुकी थी। उच्चासन रूढ़ व्यक्ति सर्वेसर्वा बन गया था। समाज की दशा दयनीय बन गई थी। ऐसे समय में जनता को समाज को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करने के लिए एक ऐसे चरित्र का चित्रण करना आवश्यक हो गया था। जिसे आदर्श की कोटि में रखा जा सकें। गोस्वामी जी ने राम के चरित्र में उन सब विशेषताओं को अंकित किया है जो एक आदर्श पात्र में होनी चाहिए। तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस' में तत्कालीन समाज का शिक्षा दर्शन का वर्णन इस प्रकार किया है-

कलियुग में चारों वर्णों और आश्रमों के किसी धर्म का कोई पालन नहीं करता। सभी स्त्री पुरूष वेद के विरूद्ध आचरण करने वाले हैं। राजा प्रजा का शोषण करते हैं, जो डींग मारे वहीं पंडित समझा जाता है, जो मिथ्याडम्बर युक्त है उसे ही लोग सन्त मानते हैं, जो पराया धन हड़प बैठे उसे ही लोग चतुर कहते हैं, जो झूठ बोलता रहे और हंसी-ठिठोली करता रहे वही कलियुग में गुणी कहलाता है, जो नख और जटाएँ बढ़ाए घूमता रहे वही तपस्वी समझा जाता है। अमंगल वेशधारी तथा भक्ष्याभक्ष्य खाने वाला ही योगी है। सभी पुरुष नटमर्कट की भांति स्त्रियों के अधीन है। स्त्रियाँ पथ भ्रष्ट हैं, सुहागिने आभूषणों से रहित तथा विधवाएँ शृंगार किए बनी-ठनी घूमती है।

ऐसे समाज से भयभीत होकर उन्होंने एक नवीन आदर्श समाज की कल्पना 'राम राज्य' में की। राम राज्य एक आदर्श राज्य था। वहाँ का समाज एक ऐसा समाज था जहाँ कोई किसी से शत्रुता नहीं करता था तथा समाज सब प्रकार की विषमता से रहित था। सब लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते थे तथा वे सब प्रकार के भय, रोग तथा शोक से मुक्त थे।

इस प्रकार रामचरित मानस ने एक आदर्श समाज की रचना को दृष्टि में रखते हुए वर्णाश्रम, माता-पिता, पुत्र, भ्राता, स्वामी-सेवक, गुरू, शिष्य, मित्र नारी तथा संत-असंत से सम्बन्धित शिक्षा दी है।

वर्ण व्यवस्था :- समाज के अन्तर्गत तुलसी ने वर्ण-व्यवस्था को माना है तथा उन्होंने प्रत्येक वर्ण का सामाजिक दृष्टि से वैशिष्ट्य स्वीकार किया है। तुलसीदास की दृष्टि में अपने कर्तव्य पालन करने वाला वर्ण ही समाज के लिए हितकर हो सकता है। इस प्रकार उन्होंने प्रत्येक वर्ण को अपने कर्त्तव्य-पालन की शिक्षा दी है।

आश्रम-व्यवस्था :- भारतीय मान्यता व्यक्ति को केवल भौतिक तत्वों का सम्मिश्रण मात्र न मानकर एक उच्चतर मानवेतर शक्ति का अंग मानती है। उस असीम शक्ति तथा उसकी पूर्णतया का तात्पर्य को प्राप्त कर लेना है। मनुष्य की आयु को 100 वर्ष की कल्पित कर उसे चार आश्रमों की संतुलित व्यवस्था में विभाजित किया है। ये चार आश्रम है, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। ब्रह्मचर्याश्रम में नैतिक, मानसिक तथा शारीरिक क्षमताओं की वृद्धि करके, गृहस्थाश्रम में धर्मार्थमूलक प्रवृत्यात्मक काम की तृप्ति धरा आत्मविकास करता हुआ व्यक्ति वानप्रस्थ में लौकिकता से पृथक रहकर अलौकिक प्रतीति एवं आत्मानुभूति का अभ्यास करता हुआ चतुर्थाश्रम सन्यास में वैराग्य द्वारा निवृत्तिमार्ग का पूर्ण अनुयायी बनता था। इस प्रकार नैतिक व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णतया तथा उसकी सामाजिकता के परिवेश में क्रमिक विकास प्रवृत्ति की मुख्य साधिका थी।

ये चार आश्रम जीवन को सुव्यवस्थित रूप में क्रमेण सुसंस्कारित करते है। सनातन काल से यह व्यवस्था चली आ रही है। लेकिन मध्यकाल में यह व्यवस्था शिथिल हो गयी। मानव जीवन भर अनेक कठिनाइयों में पिसता जा रहा था। इस प्रकार न उसकी बुद्धि संस्कार पा सकती थी और न वह मोक्षगामी हो सकता था। अतः इस अधःपतित समाज को फिर से व्यवस्थित करने के लिए रामचरित्र के बहाने महाकवि तुलसी ने आश्रम धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। मानस में गोस्वामी जी ने आश्रम-व्यवस्था से सम्बन्धित शिक्षा दी है।

ब्रह्मचर्याश्रम :- उपनयन संस्कार के बाद श्री राम को भाईयों सहित गुरु वशिष्ठ के आश्रम में भेजा जाता है। वहाँ वे चारों बालक गुरू की आज्ञा का पालन करते हुए, सेवा करते हुए, शिक्षा प्राप्त करते हैं। तुलसी ने इस व्यवस्था को राम

के आदर्श चरित्र के माध्यम से व्यक्त करते हुए तात्कालीन शिक्षा-व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। वे वेद-पुराण मन लगाकर सुनते थे तथा अपने छोटे भाईयों को उसका अर्थ समझाते थे।

वेद पुरान सुनहिं मन लाई।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।

गृहस्थाश्रम :- तीनों आश्रमों को धारण करने वाला यह आश्रम सबसे श्रेष्ठ है। तुलसी ने इस गृहस्थाश्रम को अत्यधिक महत्व दिया है। क्योंकि मानव के सम्पूर्ण चरित्र का संस्कार इसी आश्रम में होता है। गोस्वामी जी ने श्रीराम को आदर्श गृहस्थ के रूप में चित्रित कर गृहस्थाश्रम विषयक शिक्षा दी है। मानस में राम का आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श स्वामी तथा आदर्श मित्र के रूप में चित्रण है।

गृहस्थाश्रम के धर्म और कर्म की अवहेलना करने वालों के प्रति तुलसी अत्यन्त व्यथित है-

सोचिअ गृही जो मोहबस करई करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंचरत विगत विवेक विराग।।

वानप्रस्थ :- वानप्रस्थ का अर्थ होता है वन के लिए प्रस्थान करना। वानप्रस्थ की अवस्था पचास वर्ष की आयु के पश्चात् आती है। राजा के विषय में कहना हो तो अपने राज्याधिकार को अपने पुत्र को सौंपकर नगर छोड़कर वनवास करना ही इस आश्रम का धर्म है। राजा के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति इस आश्रम को अपने जीवन के तीसरेपन में अपना सकता है। यहाँ निश्चिंत रहकर सारे भोगों से विरक्त होकर, कंद-मूल फल आदि का सेवन करते हुए जीवन बिताना पड़ता है। तुलसी ने मनु और शतरूपा दोनों का वानप्रस्थाश्रम में रहकर तप करना लिखा। महर्षि वशिष्ठ, तपोनिष्ठ नीति का एक समुज्ज्वल उदाहरण है। तुलसी ने इस आश्रम के धर्म का पालन न करने वालों के विषय में इस प्रकार उदासीनता प्रकट की है-

''बैखानस सोई सोचइ जोगू।
तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू।
सेचिअ पिसुन अकारन क्रोधी
जननि जनक गुरबंध विरोधी।।

सन्यासाश्रम :- अन्त में सन्यासाश्रम आता है जो कि 75 वर्ष की आयु के बाद माना गया है। सन्यासी का अपना पराया कोई नहीं होता। उसका नाता पूरे विश्व से है। सदैव चिन्तन करना ही सन्यासी का कार्य है। मानस में वशिष्ठ, बाल्मीकि, भारद्वाज आदि श्रेष्ठ सन्यासी है। सन्यासाश्रम में व्यक्ति संसार, घर, राजकाज आदि से निर्लिप्त होकर सम्पूर्ण जीवन ईश-स्मरण तथा तपादि में व्यतीत करता है। वह समस्त अनुराग को विषयों से समेटकर ईश्वरोन्मुख कर देता है, जो ऐसा नहीं करता तो उसकी दशा शोचनीय है-

''सोचअ जती प्रपंचरत विगत विवेक विराग।''

पारिवारिक शिक्षा :- भारतीय संस्कृति में पारिवारिक जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। एक आदर्श परिवार में सदस्य मिल जुलकर रहते हैं। आत्मीयता का दर्शन केवल इसी संस्था में देखने को मिलता है। परिवार के सभी सदस्य प्रेम के बन्धन में बंधे रहते तथा एक दूसरे के सुख-दुःख का ध्यान रखते हैं। यह परिस्थिति तभी उत्पन्न होती है, जब परिवार के सभी लोग अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते है। तुलसी ने तात्कालिक पारिवारिक स्थिति का चित्रण मानस में अत्यधिक कुशलतापूर्वक किया है। दशरथ परिवार का प्रत्येक व्यक्ति समाज के सामने कोई न कोई आदर्श प्रस्तुत करता है। राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई और आदर्श पति के रूप में आज्ञा पालन, भातृ स्नेह और पत्नी प्रेम की शिक्षा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

माता-पिता :- आर्ष ग्रन्थों में पितृ-ऋण से मुक्ति प्राप्त करने पर बल देते हुए कुमार ने माता-पिता को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव', उपनिषद् वाक्य क्रमशः माता-पिता तथा आचार्य के महत्व पर बल देते हैं। तुलसीदास भी माता-पिता, गुरू तथा स्वामी के प्रति आदर की भावना रखने की शिक्षा देते हैं।

मातु-पिता गुरू प्रभु की बानी।
बिनहि विचार करिअ शुभ जानी।।

वन जाने के समय राम माता कैकेयी से कहते हैं कि वही पुत्र भाग्यशाली है जो माता-पिता के वचनों का पालन करता है।

सुनु जननी सोई सुतु बड़ भागी।
जो पितु मातु वचन अनुरागी।।

अपने व्यवहार से माता-पिता को सब प्रकार से संतुष्ट रखने वाला पुत्र इस संसार में कोई बिरला ही मिलता है।

तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

इस पृथ्वी पर उसी का जन्म सार्थक है जिसके चरित्र को सुन माता-पिता को परम सुख हो।

धन्य जनमु जगती तल तासू।
पितहि प्रमोदु सुनि जासू।।

पुत्र :- पुत्र परिवार का दीपक कहा जाता है। राजा दशरथ के चारों पुत्र आदर्श पुत्र हैं। वे सब प्रकार से पुत्र के रूप में माता-पिता तथा गुरू की आज्ञा का पालन करते हैं। आदर्श पुत्र में जो गुण होने चाहिए वे सब श्रीराम तथा उनके भ्राताओं में समाविष्ट हैं।

जिस पुत्र को माता-पिता प्राणों के समान प्रिय है, उसके हाथ में चारों ही पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) रहते हैं।

चारि पदारथ कर तल ताकें।

प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।।

जो पुत्र उचित-अनुचित का ध्यान रखते हुए पिता के वचनों का पालन करते हैं वे ही सुयश, सुख और ऐश्वर्य-प्राप्ति के अधिकारी है-

अनुचित उचित विचारू तजि, जे पालहि पितु बैन
ते नर पावहिं सुजस जसि, बसहिं अमरपति ऐन।

गुरू माता, पिता, स्वामी तथा अपना हित चाहने वालों की आज्ञा का पालन करना एक आदर्श पुत्र के लिए श्रेयस्कर है-

गुरू पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।।

माता-पिता, गुरू और स्वामी की शिक्षा के अनुसार आचरण करने में जीवन की सार्थकता की शिक्षा का भाव राम के कथन में दृष्टव्य है-

मातु पिता गुरू स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरू जनमु जग जायँ।।

भाई-भाई :- पारिवारिक व्यवस्था के औचित्य को दृष्टि में रखते हुए गोस्वामी जी ने भाई के साथ व्यवहार के सम्बन्धों पर बड़ा बल दिया है। त्याग, सहानुभूति, विश्वास, वात्सल्य आदि गुण ही भ्रातत्व व्यवहार के पोषक होते हैं। मानस में तीन परिवार के भाईयों के आचरण देखने को मिलते हैं-

1. राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुधन
2. बालि और सुग्रीव
3. रावण और विभीषण

रघुवंशी भ्राताओं का भ्रातृ-प्रेम आदर्श भ्रात-प्रेम है। जिस राज्य की सत्ता को प्राप्त करने के लिए संसार में नाना प्रकार के कुचक्र रचे गए उस राज्य की सत्ता को रघुवंशी भ्राता गेंद के समान ठुकराते हैं। वहाँ केवल ज्येष्ठ भ्राता की पादुकाएँ शासन करती हैं। भ्रातृ प्रेम के माध्यम से राम ने समस्त कठिनाई को अपने नियंत्रण में कर लिया जबकि उसके अभाव में बालि और रावण ने अपना विनाश कर लिया।

रघुवंश की कुल रीति के अनुसार बड़े भाई को स्वामी और छोटे भाई को सेवक मानने की शिक्षा गोस्वामी जी ने दी है-

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।
यह दिन कर कुल रीति सुहाई।।

राम को अपने भाइयों से अत्यधिक प्रेम था। उनको दिन-रात भाई भरत की चिन्ता उसी प्रकार लगी रहती थी जिस प्रकार कछुवे को अपने अण्डों की चिन्ता लगी रहती है।

रामहिं बंधु सोचु दिन राती।
अंडन्हि कमठहृदय जेहि भांती।।

भरत की त्यागशीलता का चित्रण मानस में हुआ है। वे सम्पूर्ण वैभव को त्याग कर चीर वल्कल पहने पैदल राम से मिलने के लिए परिजन और परिवार सहित वन गमन करते है। भगवासी दूर से ही भरत को देखकर शंका करते है कि ये राम लक्ष्मण है या नहीं-

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं।
राम लखनु सखि होंहि कि नाहीं।
बय बपु बरन रूपु सोइ आली।
सीलु सनेहु सरिस सम चाली।।

लक्ष्मण के द्वारा भरत के प्रति कहे गये आवेशपूर्ण कथन को सुनकर राम भरत के गुणों का बखान करने लगते हैं। अपने भ्राता भरत के प्रति उन्हें शंका नहीं होती। भरत के चरित्र से भाई के प्रति भाई के विश्वास की शिक्षा तुलसी इस प्रकार देते हैं-

सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
विधि प्रपंच मह सुना न दीसा।।

राम और भरत के उत्कृष्ट भ्रातृ-प्रेम की शिक्षा का भाव तुलसी ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

अगम सनेहु भरत रघुवर को।
जहं न जाइ मनु विधि हरि हर को।

श्रीराम को जिस प्रकार भरत पर विश्वास था वैसा ही भरत में राम के प्रति भरोसा था कि राम कभी भी उन्हें दोषी नहीं ठहरायेंगे। शुक्ल जी के अनुसार, ''राम की सुशीलता पर भरत को इतना अधिक विश्वास है। वह सुशीलता धन्य है जिस पर इतना विश्वास टिक सकें और वह विश्वास धन्य है जो सुशीलता पर इस अविचल भाव से जमा रहे। भरत की आशा का एकमात्र आधार यही विश्वास है।''

पति-पत्नी :- परिवार में पति-पत्नी का सम्बन्ध एक घनिष्ठ और पवित्र बंधन है। पति-पत्नी जीवन रथ के दो चक्र है। रथ की ठीक गति दोनों के ऊपर समान रूप से अवलम्बित है। गोस्वामी जी ने राम और सीता के माध्यम से आदर्श दाम्पत्य प्रेम की शिक्षा दी है। इसी आदर्श को अपना कर संसार का जीवन व्यवहारिक और धार्मिक दृष्टि से सुव्यवस्थित और श्रेष्ठ बन सकता है।

पत्नी को पति का संकेत जानने वाली होना चाहिए। केवट-प्रसंग में गोस्वामी जी इसी शिक्षा पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-

पिय हिय की सिय जान निहारी।
मनिमुंदी मन मुदित उतारी।।

पारिवारिक जीवन में पत्नी के कर्त्तव्यों की ओर संकेत करते हुए गोस्वामी जी ने अभिमुनि की धर्मपत्नी अनुसूया की पतिव्रत्य विषयक शिक्षा में चार प्रकार की पतिव्रताओं का वर्णन करते हुए कहा है-

एकै धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पतिपद प्रेमा।।
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं।

वेद पुरान संत सब कहंही।।
उत्तम के अस बस मन माही।
सपनेहु आन पुरूष जग नाही।।
मध्यम परपति देखे कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।

तुलसी ने मानस में नारी के मनुष्यत्व की ओर ले जाने वाले रूप की प्रशंसा की है। उन्होंने राम के एक पत्नीव्रत को समुचित एवं आदर्श माना है। राम राज्य में समस्त लोक ही इस शिक्षा का अनुभागी था।

''एक नारि व्रत रत सब झारी।''

गुरू-शिष्य :- भारतीय संस्कृति में गुरू का स्थान सर्वोच्च माना गया है। माता-पिता तो हमें जन्म देते हैं। किन्तु इस संसार में सफलतापूर्वक जीवन मापन की योग्यता गुरू द्वारा ही प्राप्त होती है। हमारे जीवन में वास्तव में गुरू ही सम्यक प्रकार का मार्ग दर्शन कर सुख-शान्ति प्रदान करता है। गुरू की इस महत्ता को दृष्टि में रखते हुए गोस्वामी जी सर्वप्रथम गुरू की वन्दना करते हुए गुरू महिमा के विषय में कहते हैं-

''गुरू पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अभिअ दृगदोष विभंजन।।''

स्वामी-सेवक :- अपने स्वार्थ को त्याग कर अपने स्वामी के लिए सर्वस्व अर्पण करने के धर्म वाले सेवक का कार्य अत्यन्त कठिन माना गया है। तुलसीदास जी इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

''सब तै सेवक धरमु कठोरा''

सब प्रकार के छल-कपट का त्याग करना स्वामी सेवा के लिए आवश्यक बतलाया है। स्वामी की सेवा किस प्रकार करनी चाहिए। इसके विषय में तुलसी लिखते हैं-

''भानु पीठि सेइअ उर आगी।
स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी।।''

मित्र :- व्यावहारिक जीवन में मित्र का महत्व बहुत अधिक होता है। मानस में राम एक आदर्श मित्र है। जिनकी मित्रता का आदर्श अपनी श्रेष्ठता के कारण प्रत्येक मानव के लिए अनुकरणीय है। राम सुग्रीव को अच्छे मित्र के गुणों के विषय में बतलाते हुए कहते हैं कि जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते उन्हें देखने से भी भारी पाप लगता है :-

''जै न मित्र दुःख होहि दुःखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।

मित्र के कर्तव्य के विषय में प्रकाश डालते हुए राम कहते हैं कि पर्वत के समान अपने भारी दुःख को धूल के समान समझें तथा मित्र के धूल के समान दुःख को भी सुमेरू पर्वत के समान समझें। जिनमें ऐसी बुद्धि कि अपने भारी दुःख को भी कुछ न समझें तथा मित्र के रजकण जैसे कष्ट को भी पर्वत के समान भारी समझें स्वाभाविक ही नहीं है, वे मूर्ख हठ करके किसी से मित्रता करते ही क्यों हैं-

निज दुःख गिरि सम रज करि जाना।
मित्रक दुःख रज मेरू समाना।।
जिन्ह के असि मति सहज न आई।
ते सठकत हठि करत मिताई।।

संसार में सच्च मित्र का मिलना अत्यन्त कठिन होता है। मित्रता के पीछे व्यक्ति की स्वार्थ भावना निहित होती है। तुलसीदास का यह कथन स्वार्थी मित्र के विषय में दृष्टव्य है-

''स्वारथ मीत सकल जग माही।
सपनेहु प्रभु परमारथ नाहीं।।

मित्र की परख आपत्ति पड़ने पर होती है। स्वार्थी मित्र आपत्ति के समय साथ छोड़ देते है। इसीलिए गोस्वामी जी आपत्ति को मित्र की कसौटी मानते हैं।

''धीरज धर्म मित्र अरू नारी।
आपद काल परिखिअहिं चारी।।''

मनोविज्ञानपरक शिक्षा :- तुलसीदास जी मनोजगत के विषय में तथ्यों को प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि संतोष के बिना कामना का नाश नहीं होता तथा कामनाओं के रहते हुए स्वप्न में भी सुख प्राप्त नही होता-

''बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।

दुष्ट से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। दुष्ट से न तो झगड़ा ही मोल लेना अच्छा है न प्रेम करना ही।

''खल सन कलह न भल नहि प्रीति।

कृषि-शिक्षा :- भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है। कृषि पर सभी की दृष्टि रहा करती है, विशेष रूप से कार्य में लगे व्यक्तियों की नजर अधिक रहती है। कृषि की सफलता मुख्यतः वर्षा समय पर होने पर निर्भर रहती है। खेती के सूख जाने पर वर्षा का होना व्यर्थ है। समय चूक जाने पर पश्चाताप करना निरर्थक है-

''का वर्षा जब कृषी सुखाने।
समय चूकि पुनि का पछताने।।''

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में उन सभी विशेषताओं का चित्रण किया है जो कि एक आदर्श चरित्र एवं शिक्षा दर्शन में होनी चाहिए।

संदर्भ

1. भारतीय दर्शन
2. रामचरित मानस में शिक्षा दर्शन - डॉ. दीपचन्द
3. तुलसीदास कृत रामचरित मानस
4. मासिक पत्रिका - मानस संदेश
5. मासिक पत्रिका - नमो राघवाय

डॉ. गिरीश कुमार वत्स
प्राचार्य, श्री द्रोणाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय
दनकौर (गौतम बुद्ध नगर)

हिन्दी काव्य में ब्रज संस्कृति का माधुर्य एवं श्री कृष्ण

–डॉ. देवानन्द सिंह

शोध सारांश : प्रस्तुत शोध शीर्षक ''हिन्दी काव्य में ब्रज संस्कृति का माधुर्य एवं श्री कृष्ण'' हिन्दी काव्य के कृष्ण काव्य तक सीमित है। इस कार्य के अंतर्गत ब्रज एवं 'संस्कृति' को परिभाति करते हुए ब्रज संस्कृति के तत्वों पर संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इसके बाद हिन्दी कृष्णकाव्य धारा के काव्य में ब्रज संस्कृति के लोक जीवन तथा लोकपरम्परा का भी वर्णन किया गया है तथा हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य में ब्रज संस्कृति के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, व्यवहार, आचार-विचार, भाषा, धर्म, दर्शन, रीति तथा कृषि जीवन से संबंधित कार्यों तथा मूल्यों को खोज गया है जिसमें ब्रजमण्डल की भाषा ब्रज भाषा की शब्दावली में देशज शब्दों का वर्णन तथा विवेचन किया गया है तथा गोवर्धन पूजा, गायों का चराना, दूध दोहन, लोकगीत, लोकनृत्य, होरी अथवा फाग का खेलना, झूला झूलना आदि ब्रज संस्कृति के तत्वों का वर्णन तथा विवेचन किया गया है। भक्तिकालीन अष्टछाप के कवियों सूरदास, नंददास, चतुर्भुजदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी के काव्यों में उपलब्ध ब्रज संस्कृति के तत्वों का वर्णन किया गया है तथा रसखान, मीराबाई आदि अन्य कवियों के काव्य में वर्णित ब्रज संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी साहित्य का कृष्ण काव्य ब्रज संस्कृति का बहुमूल्य कोश कहा जा सकता है। ब्रज संस्कृति में प्रचलित लोकोक्ति तथा मुहावरों का वर्णन करके ब्रज संस्कृति में कृष्ण के माधुर्य का वर्णन भी किया है।

प्रमुख शब्द- ब्रज संस्कृति, भक्तिकालीन काव्य, माधुर्य, भक्तिकालीन अष्टछाप, लोकपरम्परा।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन काव्य में ब्रज संस्कृति का माधुर्य अधिकांश रूप में देखा जा सकता है। भक्तिकाल की सगुण काव्य धारा के कृष्णाश्रयी शाखा के कवियों ने अपनी रचनाओं में ब्रज संस्कृति का समावेश किया है। हिन्दी काव्य में ब्रज संस्कृति का माधुर्य एवं श्री कृष्ण विषय पर विस्तार से चर्चा करने से पहले ब्रज और संस्कृति शब्दों के अर्थ एवं स्वरूप का अध्ययन करना अपेक्षित है। 'ब्रज' की उत्पत्ति संस्कृत के 'ब्रज' शब्द से हुई है। 'ब्रज' का अर्थ वैदिक संहिताओं तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों में गोशाला, गो-स्थान तथा गोचर भूमि के लिए प्रयुक्त हुआ है। ब्रज वर्तमान समय में मथुरा मंडल के लिए प्रयुक्त होता है। मथुरा का पुराना नाम शूरसेन था तथा शूरसेन में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रयोग होता था। शोरसैनी अपभ्रंश से ही पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा का विकास माना गया है। इस तरह से ब्रज आधुनिक समय में आगरा मण्डल के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। 'संस्कृति' संस्कृत शब्द से बना है। संस्कृत का अर्थ है परिमार्जन, परिकृत तथा विकास है। इस तरह से मनुष्य अपना जो विकास करता है तथा अपनी उन्नति करता है, उसे संस्कृति कहते हैं। धर्म और दर्शन का योग संस्कृति कहलाती है। रामधारी सिंह ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में संस्कृति को इस प्रकार परिभाति किया है- ''संस्कृति जीवन जीने का तरीका है जो उस समय में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।'' संस्कृति में किसी भी देश या क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के आचार-विचार, रहन-सहन, बोली-भाषा, कला, धर्म, दर्शन, वेश-भूषा, तीज-त्यौहार, गीत-नृत्य, खान-पान, व्यवहार तथा विभिन्न संस्कार आदि सभी आ जाते हैं। हिन्दी कृष्ण काव्य धारा के अंतर्गत जिन कवियों ने अपना स्थान सुनिश्चित किया है, उनके काव्य में बल्लभाचार्य द्वारा स्थापित दर्शन की अभिव्यक्ति मिलती है। बल्लभ संप्रदाय के अंतर्गत शंकर के मायावाद की उपेक्षा हुई तथा इस सम्प्रदाय में ब्रह्म (परमात्मा) के अवतारों के लिए श्रद्धा तथा विश्वास के दर्शन हुए। बल्लभाचार्य के ब्रह्म के अवतारों में जिन कवियों ने श्रद्धा और विश्वास किया है, वे सगुण काव्य धारा के अंतर्गत समावेषित हुए। ब्रज क्षेत्र में भक्त कवियों ने कृष्ण भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। बल्लभाचार्य के मत को शुद्धाद्वैतवाद कहा गया तथा इसके अंतर्गत परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग पुष्टिमार्गीय भक्ति बताया। भक्ति काल के कवियों ने इसी पुष्टिमार्ग को अपनाकर अपने आराध्य श्री कृष्ण की भक्ति की है। भक्तिकालीन कृष्णाश्रयी धारा का पुष्टिमार्गीय कवि अपना तन, मन, धन सर्वस्व श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित कर देता है। विद्वानों ने सामान्य रूप से भक्ति के पाँच भेद माने हैं :-

1. शांतभाव की भक्ति

2. वात्सल्य भाव की भक्ति
3. दाम्पत्य या माधुर्यभाव की भक्ति
4. दास्य भक्ति
5. सख्य भक्ति

पुष्टिमार्गीय भक्ति में वात्सल्य सख्य तथा माधुर्यभाव की भक्ति को स्थान दिया गया है। अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में वात्सल्य, शांतभाव तथा माधुर्य भाव की भक्ति का समन्वित रूप मिलता है। इन कवियों के अतिरिक्त रसखान, बिहारी, मीराबाई, जगन्नाथदास रत्नाकर, विद्यापति आदि कवियों के काव्य में माधुर्यभाव भाव, दाम्पत्य भाव तथा शांत भाव की भक्ति की सुन्दर छटा दृष्टव्य होती है।

ब्रज संस्कृति का हिन्दी के भक्तिकाल के कवियों ने वर्णन अपने काव्य में अधिकांश रूप में किया है। सूरदास ने अपनी काव्य रचनाओं में ब्रजवासियों के खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, तीज-त्यौहार, लोकगीत, नृत्य, भाषा, संस्कार, पूजा-स्थल, व्यवहार तथा विभिन्न कार्य व्यापारों का बड़ा ही विषद् वर्णन किया है। ब्रज की लोक कथाओं का वर्णन भी सूरदास के काव्य में हुआ है। सूरदास की 'सूरसागर' रचना में ब्रज संस्कृति के तत्व भरे हुए हैं। सूरदास के साथ ही अन्य अष्टछाप के कवियों ने भी अपने काव्य में ब्रज संस्कृति का बड़ा ही सुन्दर समायोजन में किया है।

सूरदास के काव्य में ब्रज संस्कृति के तत्वों को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है :-

(1) पशुपालन तथा चारागाह :- ब्रज क्षेत्र में गोचारण की संस्कृति रही है। ब्रजवासी गाय पालते हैं। श्रीकृष्ण तथा अन्य ग्वालों को गायों को चराते एवं दूध निकालते हुए सूरदास जी ने सूरसागर में वर्णित किया है। यथाः-

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
वृन्दावन के भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहों।[1]
मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु।
कैसें गहत दोहनी घुटुवनि, कैसें बछरा थन लैं-लावहु।
कैसें धार दूध की वाजति,
सोई सोई विधि तुम मोहिं बतावहु।[2]

सूर के काव्य में ब्रज संस्कृति में बच्चे के जन्म के अवसर पर बधाइयाँ देने का वर्णन हुआ है। कृष्ण के जन्म के अवसर पर नंद के घर में बधाइयाँ देने वालों का ताँता लगा रहता है, यथाः-

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसौदा ढोटा जाया, घर-घर होति बधाई।
द्वारैं भीर गोप-गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई।
अति आनंद होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई।[3]

ब्रज क्षेत्र की संस्कृति में गोवर्धन पूजा होती है। आज के आधुनिक समाज में भी गोवर्धन पूजा का महत्व है। सूरदास के काव्य में यही पूजा मिलती है यथा :-

विप्र बुलाइ लिए नँदराइ।
प्रथमारंभ जज्ञ कौ कीन्हौ, उठे वेद-धुनि गाइ।
गोवर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ।[4]

ब्रज मंडल में झुला का झूलना तथा होली पर्व या फाग बड़ी ही धूम-धाम से मनाया जाता है। सूरदास के सूरसागर में फाग तथा झुले का वि ाद वर्णन दृ ष्टव्य है, यथा :-

झूलत स्याम स्यामा संग।
निरखि दंपति अंग सोभा, लजत कोटि अनंग।।
मंद त्रिविध समीर सीतल, अंग अंग सुगंध।
मचत उड़त सुबास सँग, मन रहे मधुकर बंध।।
तैसियै जमुना सुभग जहँ, रच्यौं रंग हिडौल।[5]
नंद-नंदन वृषभानु-किसोरी, मोहन राधा खेलत होरी।
श्रीवं दावन अतिहिं उजागर, बरन वरन नव दंपति भोरी
एकनि कर है अगरू कुमकुमा, एकनि कर कैसरि लै घोरी।
स्यामा उतहिं सकल ब्रज-बनिता,
इतहिं स्याम रस रूप लहौरी।
कंचन की पिचकारी छूटति घिरकत ज्यौं सचुपावैं गोरी।।
अतिहिं ग्वाल दधि गोरस मात्रे, गारी देत कहौ न कारौरी।[6]

सूर के समान ही छीतस्वामी के काव्य में ब्रजमंडल के पर्वों, वाद्य यंत्रों, स्थलों, संगीत का वर्णन हुआ है। ब्रज संस्कृति में संगीत का विशेष महत्त्व रहा है। इसकी पुष्टि निम्नलिखित उदाहरण से की जाती है :-

मोहन प्रात ही खेलत होरी।
चोबा चंदन अगर कुमकुमा, केसरि अवीर लिए भीर झोरी।।
कंचन की पिचकारी भरि-भरि छिटकीं सकल किसोरी।
मुख मॉडत, गारी दै भॉडत, पहिरावत बरजोरी।।
बाजत ताल मृदंग अधोटी, विच मुरली धुनि थोरी।[7]

अटछाप के कवि नंददास ने कृष्ण काव्य की रचना की है। इनकी रचनाओं में ब्रज संस्कृति के लोकजीवन की छाप दृष्टित होती है। नंददास की लगभग सभी काव्यकृतियाँ कृष्ण पर या कृष्ण से संबंधित घटनाओं पर आधारित है। इनकी काव्य कृतियाँ हैं :- रासपंचाध्यायी, श्रीकृष्ण-सिद्धांत, पंचाध्यायी, अनेकार्थ-ध्वनि मंजरी, नाममाला, रूपमंजरी, रसमंजरी, विरहमंजरी, भ्रमरगीत, गोवर्द्धनलीला, स्याम सगाई, रूक्मिणी-मंगल, सुदामा चरित, भाषा-दशम स्कंध, पदावली आदि। इन सभी रचनाओं में ब्रजसंस्कृति से संबंधित तत्व मिलते हैं। ब्रजमंडल में विवाह से पूर्व सगाई, गोद भरायी आदि की रस्में चलन में है। इसके साथ गोपाष्टमी, होरी, ऋतुपर्व एवं अन्य उत्सव मनाये जाते हैं। नंददास की काव्यकृतियों में उपर्युक्त सभी पर्व एवं रस्मों का वर्णन हुआ है। सगाई एवं गोदभराई आदि से संबंधित उदाहरण दृष्टव्य है :-

"सुनति सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले।
नाचत गावत चले, प्रेमरस में अनुकूले।
जसुमति रानी घट सज्यौं मोतिन चौक पुराइ।

वजति बधाई नंद के 'नंददास' बलि जाइ।''[8]

चतुर्भुजदास के काव्य में ब्रज संस्कृति के खान-पान, रहन-सहन, वेश ाभूषा, भाषा तथा कार्यकलापों की छठा दिखाई देती है। खानपान से उदाहरण, दृष्टव्य है :- दारभात घृत की कड़ी संधानौ, रूचिकर मुख सो मांगौ दास चतुर्थभुज के प्रभु दै जूठन सब जन बड़ भागो।[9]

''आजु छठी छबीले लाल की
उबटि-हवाइ भूषन बसन दिए
सुन्दर स्याम तमाल की।।[10]

भक्ति काल के कृष्णकाव्य में ब्रजभाषा का माधुर्यरूप में प्रयोग हुआ है। ब्रजमण्डल में प्रयुक्त सरल, सुबोध्य, मधुर शब्दावली इनके काव्य में मिलती है। इसके साथ ही ग्रामीण शब्दावली, मुहावरे तथा लोकोक्ति भी इनके काव्य की भाषा में मिलती है। इनके काव्य की भाषा में ब्रजमण्डल में रहने वाले किसान, ग्वाले आदि के जन-जीवन में होने वाले कृषि से संबंधित शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। सूरदास के भ्रमरगीत में अधिकांश रूप में ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग हुआ है तथा लोकोक्ति एवं मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं। अन्य अष्टछाप के काव्य में भी ऐसी ही शब्दावली प्रयुक्त हुई है। इस तरह से सूरदास के काव्य में ब्रज के ग्रामीण या देशज शब्दावली का प्रयोग हुआ। अतः कहा जा सकता है कि सूरदास के काव्य की भाषा ब्रज संस्कृति से संबंधित ब्रज भाषा हिन्दी है। इसकी पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जाती है :-

काहे जो **झाला** लै मिलवत, कौन चोर तुम **डाँड़े**।
सूरदास तीनों नहिं उपजत **धनिया धान कुम्हाँड़े**।[11]
फाटक दैकर **हाटक** माँगत भोरै निपट सुधारी।[12]

भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि रसखान ने भी अपनी रचनाओं में ब्रज संस्कृति का समावेश प्रचुर मात्रा में किया है। इनके काव्य में ब्रजमण्डल के खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोल-चाल की भाषा, ब्रज क्षेत्र के स्थानों आदि का वर्णन हुआ है। रसखान की भक्ति माधुर्य भाव की रही है। रसखन के काव्य में माधुर्य के तीनों पक्षों रूप वर्णन, विरह वर्जन तथा पूर्ण-आत्म समर्पण का प्रयोग हुआ है।

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौ गुंज की माला गरे पहिरौगी।
ओढि पिताम्बर लै लकुटी वन,
गोधन ग्वारिन सग फिरोगी।।[13]

निष्कर्ष :- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी कृष्ण काव्य में ब्रजसंस्कृति का माधुर्य प्रचुर मात्रा में है। हिन्दी काव्य में ब्रजसंस्कृति के लोकजीवन, आचार-विचार, भाषा, वेशभूषा, धर्म-दर्शन, रीति-रिवाज, कृषि व्यवस्था, गोपालन की चारन व्यवस्था, गायों के दूध का दोहन, लोकनृत्य तथा संगीत आदि तत्वों का प्रयोग हुआ है। अतः अंत में यही कहा जाता है कि हिन्दी कृष्ण काव्य में ब्रज संस्कृति का माधुर्य प्रचुर मात्रा में समाहित है।

संदर्भ

1. सूरसागर-सार, धीरेन्द्र वर्मा-साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद-संवत 2011, पृ. सं. 41
2. वही, पृ. सं. 41
3. वही, पृ. सं. 23
4. वही, पृ. सं. 55
5. वही, पृ. सं. 113
6. वही, पृ. सं. 115
7. छीत स्वामी- जीवन और पद संग्रह सं. गो. श्री ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग (अष्टछाप-स्मारक समिति) कांकशेली राजस्थान- पृ. सं. 26
8. स्याम-सगाई, नंददास ग्रन्थावली-ब्रजरतनदास, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा (काशी)- पृ. सं. 174
9. चतुर्भुजदास (जीवन-झांकी तथा पद संग्रह) सं.-श्री ब्रजभूषण शर्मा, प्रकाशक विद्या-विभाग (अष्टछाप-स्मारक समिति, कांकरोली, पृ. सं. 142
10. वही, पृ. सं. 10
11. भ्रमरगीत सार, सम्पादक-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-पृ. सं. 70
12. वही, पृ. सं. 69
13. रसखान ग्रंथावली सटीक-प्रो देशराजसिंह भाटी, प्रकाशक-अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली (सन 1966), पृ. सं. 233

डॉ. देवानन्द सिंह
हिन्दी प्राध्यापक
श्री द्रोणाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दनकौर, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

मैत्रेयी पुष्पा एवं प्रभा खेतान की आत्मकथाओं में चित्रित नारी : एक दृष्टि

–डॉ. अल्पना मिश्रा

सारांश - हिन्दी में स्त्री के दुःखों, तनावों एवं संघर्षों का रचनात्मक प्रतिफलन मुख्यतः कथा साहित्य एवं कविताओं में प्रकट हुआ। यह माना गया कि ''जाके पैर न फटी बिवाई'' मुहावरे के अनुरूप स्त्री का दुख दर्द पुरुष सम्पूर्णता में न समझ सकता है और न ही एकाएक उसे मुक्त करने के लिए शताब्दियों से संचित पुरुष संस्कार पतित्व/स्वामित्व के सुख को तिलांजलि दे सकता है। जैसे-जैसे सामाजिक जागरूकता जहां भी जिन अंशों में बढ़ी है। स्त्रियां भी शिक्षित होकर वैज्ञानिक एवं रैशनल विचारों से संपृक्त हुई। फलतः मुक्ति की छटपटाहट पैदा होनी शुरू हुई। उनकी अकुलाहट, बेचैनी विभिन्न माध्यमों में प्रस्फुटित होने लगी। उन्होंने महिला अधिकारों के लिए संघर्ष शुरू कर दिया। साहित्य चूंकि जनता का चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, ऐसे में साहित्य को भी औरतों की आजादी के लिए हथियार रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने स्त्री विमर्श शुरू कर विशेषांक निकाले। इसी क्रम में सदियों से दबाई हुई आवाज उभर कर सामने आई। 'हंस' जैसी साहित्यिक पत्रिका ने वर्ष 2001 में तीन विशेषांक केवल 'नारी विमर्श' पर निकाले। 20वीं सदी के अन्तिम दशक में रचनात्मक लेखन के अन्तर्गत नए-नए नाम सामने आए। जहां लेखकों ने नारीवादी लेखन को प्रमुखता दी। वहीं लेखिकाओं ने साहसिक लेखन द्वारा पुरुष सत्ता को चुनाती दी। उन्होंने अपनी जिन्दगी के तमाम कडुवे अनुभवों को रचनात्मक उत्स के रूप में इस्तेमाल किया। इन महिलाओं की आपबीती ने साहित्य की मुख्य धारा को मोड़ दिया। साहित्य की केन्द्रवर्ती धारा में दलितों एवं स्त्रियों की अंतहीन दारूण गाथाएं शामिल हुईं। आत्मकथा जैसी साहित्यिक विधा अत्यंत जीवंत हो उठी। प्रस्तुत लेख में महिला कथाकार मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' व 'गुड़िया भीतर गुड़िया' एवं प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या' को आधार बनाकर औरतों की समस्याओं को उद्घाटित किया गया है।

भारतीय सामाजिक संरचना में सदियों से दलितों एवं स्त्रियों को गुलाम बनाकर रखा गया है, न उनके लिए शिक्षा जरूरी समझी गई न उनका मुखर होना। उन्हें बोलने ही कब दिया गया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता न होने से वे घुट-घुटकर जीती रही। कोई भी गुलाम जाति शासक से बगावत अनायास नहीं कर सकती। उसके लिए चाहिए-शिक्षा, संगठन और संघर्ष। शिक्षा से विचार शक्ति उत्पन्न होती है। तद्नुरूप संगठन के जरिये निरन्तर संघर्ष से गुलामों में मुक्तिकामी चेतना विकसित होती है, परिणामस्वरूप शासक का पराभाव और शासित को स्वतंत्रता प्राप्त होती है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति और जनतंत्र की बहाली ने भारतीय जन को मुक्ति का अहसास कराया। स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा जैसे मूलाधिकारों ने सभी वर्गों को सचेष्ट किया। कई सामाजिक संगठन अधिकारों की प्राप्ति हेतु सक्रिय हुए। दलितों की लड़ाई को सरकार सहित अनेक संगठनों ने लड़ना शुरू किया। उसके आशातीत परिणाम भी सामने आए पर स्त्री के अधिकारों के लिए उसकी मुक्ति के लिए आखिरकार कौन बिगुल बजाता? शुरू में समाज को संचालित करने वाली धार्मिक व्यवस्था में स्त्री की मुक्ति के लिए कोई अवसर नहीं था। उसने ऐसी आचार संहिता विकसित की थी। जिसके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक रूप से स्त्रियां पुरुषों के प्रति इतनी समर्पित हो जाएं कि उन्हें अपनी पराधीनता में ही सुख का अनुभव हो। शास्त्रवाद एवं पितृसत्तात्मक विचार से मुक्त होकर मानवतावादी विचारकों ने समानता के आधार पर आधी आबादी के बारे में स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किया। सीमोन द बोउवार की 'द सेकेण्ड सेक्स', जर्मेन ग्रीयर की 'बधिया स्त्री', जेम्स स्टुअर्ट मिल की 'सब्जेक्शन ऑव वूमेन' (स्त्रियों की पराधीनता), जैसी पुस्तकों ने स्त्री विमर्श को एक दिशा प्रदान की।

मैत्रेयी जी का बचपन एवं युवावस्था का प्रारम्भ बुंदेलखण्ड में व्यतीत हुआ। डी.वी. इण्टर कालेज से इण्टर तथा बुंदेलखण्ड कालेज झांसी से स्नातक-परास्नातक करके अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) में डाक्टर रमेशचन्द्र शर्मा की पत्नी बनकर अलीगढ़ तथा दिल्ली में रहने वाली मैत्रेयी का अनुभव संसार काफी व्यापक है। तमाम उतार चढ़ाव

उनकी जिन्दगी में आए है। गांव की जड़ परम्पराएं बुंदेली लोक मान्यताएं तथा कस्बे से लेकर देश की राजधानी तक लोगों के तमाम चेहरों से उनकी मुठभेड़ आत्मकथा को दिलचस्प बनाती है। डेढ़ वर्ष की मैत्रेयी पितृविहीन होकर विधवा मां कस्तूरी के संरक्षण में पलती-बढ़ती है। माँ समाज सेविका (ए.डी.ओ.) के रूप में कार्यरत है, किन्तु पुरुष विहीन परिवार की त्रासदी जगह-जगह व्यक्त हुई है। मैत्रेयी विषयक महत्वाकांक्षाएं और डाक्टर-इंजीनियर जैसा वर न ढूंढ पाना, इधर ढूंढा भी तो मैत्रेयी के विवाह के लिए लोग तैयार नहीं होते। वह सुयोग्य एवं शिक्षित तो हैं पर हैं तो राँड़ की बेटी।

''इस समाज में वे मनुष्य तो क्या औरत भी नहीं है, राँड़ है। विधवा, बस! ऊपर से निपूती। साख के लिए कोई रूख तो क्या, कोंपल तक नहीं। पुरुषों के जैसे काम करने से पुरुष जैसी मान ली जाती स्त्री। सामाजिक कामों के चलते उसे किसी पुरुष की जरूरत होती है, भले वह पांच या दो साल का हो। पति और बेटा कहां से लाए कस्तूरी।''[1]

यत्र-तत्र पुरुषों की लोलुप दृष्टि और उनके गंदे इरादे स्थान-स्थान पर व्यक्त हुई है। विद्या मन्दिर में प्रधानाचार्य सहित अध्यापक विशेषज्ञ की गिद्ध दृष्टि और छेड़छाड़ को मैत्रेयी बेबाकी से व्यक्त करती है। मैत्रेयी जैसी नारी जब चुप्पी तोड़ती है तो तथाकथित पुरुष वर्ग की असलियत सामने आने लगती है। प्रश्न यह है कि लावा मैग्मा का पृथ्वी की ऊपरी सतह पर आना ही 'अस्ति' का प्रमाण क्यों माना जाता है? उसे भलीभाँति मालूम है कि-''सौ अनजान लोग कुछ नहीं बिगाड़ सकते किसी लड़की का। कपड़े उतारने के लिए परिचित हमदर्द ही काफी है। अपनापन ही तो आसानी से फरेब दे जाता है।''[2]

लेखिका को इस बात का बराबर बोध है कि सामर्थ्य औरत और मर्द में अलग-अलग नहीं होती, जो जुटा ले उसी की हो जाती है। यह बात दीगर है कि महिलाओं के व्यक्तित्व को विकसित होने का अवसर ही कहाँ मिला? जेम्स स्टुअर्ट मिल के अनुसार-''स्त्री व पुरुष के बीच अधिकारों की असमानता का स्त्रोत मात्र 'ताकत' का नियम ही है, जिसमें ताकतवर ही सब कुछ हथिया लेता है।''[3]

स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों के अनेक सूक्ष्म पहलुओं को मैत्रेयी जी ने सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। मैत्रेयी ने विवाह संस्था को जहाँ चुनौती दी वहीं भारतीय समाज में उसके विकल्पों पर विचार भी किया है। उन्होंने पतिव्रत धर्म अथवा सतीत्व को निरर्थक सिद्ध करते हुए मुक्तिवादी स्त्रियों के लिए उसे रोड़ा माना है।

उनका मानना है-''यदि कोई पति अपनी पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है तो पत्नी को पतिव्रत के नियमों का उल्लंघन हर हालत में करना होगा।''[4] यह पति-पत्नी के सम्बन्धों का नया शास्त्र है, जिसे स्वतंत्रचेता लेखिका द्वारा रचा गया है। इसके पहले शायद ही ऐसी आत्मस्वीकृति देखने को मिली होगी।

वे लिखती है - ''सतीत्व के दम पर मुझे स्वर्ग मिल जाए (अगर मिलता हो तो) यह स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, जिससे मैं भविष्य की दिशाएं और रास्ते तय कर सकूँ। मैं अपनी जिन्दगी के निर्णायक मण्डल की अध्यक्ष या जूरी की जज का खुद को फैसला दे रही थी।''[6]

लेखिका पारम्परिक सोच को हर स्तर पर चुनौती देती है। वह इस मान्यता का प्रतिवाद करती है कि लड़कियों का जन्म केवल बच्चे पैदा करने और चूल्हा-चौका के लिए होता है। वास्तव में गृहस्थी के बोझ तले स्त्रियों के मकसद दब जाते हैं। वे व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि किताबों का गृहणियों के घर क्या काम? इससे परिवार के हर सदस्य की सुविधाएँ छिन जाती हैं।

लेखिका क्षोभग्रस्त होती है यह देखकर कि घरेलू महिला बनकर उसकी डिग्रियाँ/योग्यताएँ कैसे व्यर्थ हो रही हैं, एम.ए. में प्राप्त पदक कैसे बक्शे में पड़ा हुआ है। योग्यता चूल्हे चौके में घिसट रही है। वह भाषा विज्ञान में कोर्स करना चाहती है, आवेदन करती है, इंटरव्यू लेटर आता है, पति डॉक्टर साहब द्वारा छिपा लिया जाता है। वह फूट-फूट कर रोती है और माँ के उस कथन को याद करती है - लाली तेरे हाथ में ज्ञान का दीपक है, तू अपना रास्ता खुद बनाती जाएगी।

उधर सर्वोच्च चिकित्सा संस्थान का डॉक्टर पति जले पर नमक छिड़कता है - ''बहुत रोई हो जानता हूँ मुझसे नाराज हो, पर इतना जरूर कहूँगा, मैं तो जो करता हूँ तुम्हारे भले के लिए करता हूँ। तुम परेशान होती फिरोगी, मुझे चैन नहीं आएगा।''[7]

आज की स्त्री आहार, निद्रा, भय, मैथुन से आगे बढ़कर वृहत्तर उद्देश्यों के लिए जीना चाहती है। उसे जहाँ यह प्रतीत होता है कि वह सजावट के जाल में फंस रही है। वहीं वह यह जानती है कि बिना ज्ञान के मुक्ति सम्भव नहीं है। मैत्रेयी जी मर्द और औरत के अलग-अलग सामाजिक मानदण्डों को ललकारते हुए कहती है - ''राजा शुद्धोधन का बेटा सिद्धार्थ अपने बीबी बच्चे को छोड़कर भागा था। नल दमयंती को जंगल में सोती छोड़कर भागा था। लोक कथाओं के गोपीचन्द थे। इतिहास का राजा रतनसेन नागमती को छोड़कर भागा था। गांधी कस्तूरबा से बेफिक्र कहीं भी चले गये। यह सब महान हो गये। इनकी वीरगाथाएँ बनीं। इनके चलाए धर्म स्थापित हुए। आम आदमी भी घर से भागता है, कहता है साधु हो गया, लेकिन औरत....वह घर छोड़ जाए तो बस एक ही बात कि रंडी, वेश्या हो गयी।''[8]

भारतीय स्त्री अपनी हिम्मत का रेशारेशा पति के

वजूद में जमा कर देती है। मैत्रेयी पुष्पा दृढ़ आश्वस्त है कि गुलामी के प्रति एहसास ही प्रतिरोध का आरम्भ है। वे परिवारों के खम्भे हिलाने के लिए पुरुषों की इज्जत खतरे में डालने के लिए लिखती हैं। वे ऐसा लिखना चाहती हैं और लिखती हैं जिसे देखकर पुरुषों में स्त्रियों के प्रति समानता का भेदभाव रहित होने का विचार उत्पन्न हो।

इदन्नमम, बेतवा बहती रही, झूलानट, अल्मा कबूतरी, अगनपाखी आदि कृति पर बड़ा हो हल्ला हुआ। होना स्वाभाविक भी था। ईसुरी को 'लुच्चा' लिखना और 'चाक' में उसकी नायिका सारंग नैनी विवाहित होते हुए गैर मर्द श्रीधर को अपनी देह समर्पित कर देती है। यह दिखाना लेखिका के व्यक्तिगत जिन्दगी में भी खलल पैदा करने वाला सिद्ध हुआ। पर मैत्रेयी पुष्पा बतौर लेखिका अपने उसूलों से प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने 'चाक' में उक्त दृश्य दिखाने का तार्किक पक्ष रखते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा - ''यह कथा एक ऐसी स्त्री की आत्म स्वीकृति का आख्यान है, जो रिवाजों को स्त्री के लिए स्त्री की तरह बदलना चाहती है, वह भी स्त्री उद्धार के लिए नहीं, उसके कर्मक्षेत्र का विस्तार के लिए।....मैंने पुरुष के समकक्ष अपनी भावनाओं को बराबरी से रखा है, कि मैंने अपने समाज में लोकतांत्रिक विधान की घोषणा की है कि औरत को हर तरह से सहनागरिक का दर्जा चाहिए। मैं इन सारी बातों को इसलिए नहीं लिख रही कि अपने लिए एक ऐसी दुनिया की कल्पना कर रही हूँ जिसमें अनैतिक सुख और अभद्र इच्छाओं वाली जिन्दगी के चित्र है, बल्कि इसलिए सब कुछ रचा है कि प्रेम की सहभावना में 'अनैतिक और अभद्र' भी उदात्त रूप धारण कर लेता है, क्योंकि नफरत वाले हिस्से वहां कहीं नहीं होते।''[9]

मैत्रेयी पुष्पा ने जोखिम भरा लेखन-धर्म स्वीकार किया। जिसके बदले में जीवन साथी ने भी उन पर शक सुबहे किए और कई समकालीन लेखक लेखिकाओं ने राजेन्द्र यादव और मैत्रेयी के सम्बन्धों को लेकर आरोप प्रत्यारोप भी लगाए। किसी ने उन्हें सनसनी फैलाने वाली लेखिका कहा तो किसी ने कहा कि उनका स्त्री विमर्श एकमात्र देह और सेक्स पर खड़ा है पर इन सब प्रतिक्रियाओं से अविचलित मैत्रेयी ने लिखा...यह आत्मकथा उन मंजरो को खोलेगी, जिन पर मुझे शारीरिक रूप से बेइज्जत किया गया और मानसिक प्रताड़ना दी। यही साक्षी बनेगी कि मैंने स्त्री का जीवन सम्पूर्ण रूप से खोलकर क्यों किताब के पन्नों पर फैला दिया। बस इसलिए कि पुरुषों ने मुझे जैसी जिन्दगी दी थी, उसके चलते लाज-शर्म के पर्दे फट गये। तन के साथ मन चिथड़ा-चिथड़ा...।''[10]

पहले तद्भव और बाद में हंस के नौ अंकों में प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या' से 'अनन्या' धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी। बाद में पुस्तक रूप में राजकमल से प्रकाशित हुई। इस कृति का आस्वाद पूर्ववर्ती कृतियों से भिन्न है। पहली बार आत्म स्वीकृति के जरिये हिन्दी की पारम्परिक दुनिया में प्रभाजी द्वारा अपने से बीस वर्ष बड़े विवाहित पुरुष से प्रेम और अवैध संतति के गर्भपात का दृश्य प्रस्तुत कर उक्त पत्रिकाओं को विस्फोटक सामग्री दी गयी थी। यह आत्मकथा स्मृति के आधार पर किया गया लेखन नहीं, भोगे हुए सच का प्रकटीकरण है।

बाईस वर्ष की उम्र में प्रभा खेतान का कई बच्चों के पिता डॉ. सर्राफ से वह रिश्ता बना था, जिसे प्रेम कहा जाता है। प्रेम अगर विवाह में परिणत न हो तो भारतीय समाज में अवैध रिश्ता माना जाता है। पर प्रभा खेतान और डॉ. सर्राफ ने इस सम्बन्ध को तब तक कायम रखा, जब तक डॉ. सर्राफ (1993 तक) जीवित रहे। यद्यपि यह सम्बन्ध एक सा नहीं रहा। पति न सही, प्रेमी के रूप में ही पुरुष अपने वर्चस्व को बनाकर रखता है। जिससे प्रभा जी का सामना हुआ। शक-सुबहे, अपराध बोध, कड़ुवाहटें सम्बन्धों से आई, रिश्तों की ऊष्मा छीजती गई पर सम्बन्ध बने रहे। एक स्त्री की स्वतंत्रता सामाजिक दबावों की स्थिति और व्यावसायिक हौंसलों को देखना हो तो प्रभा खेतान की आप बीती मर्म स्पर्शी कहानी के रूप में सामने है। अमेरिका में जैसन हाइट पर दौड़ती हुई गाड़ियाँ, प्रभा जी का 250 डॉलर में सैंपल हेतु निवेश की मानसिकता से नार्थ-साउथ बैग खरीद कर डॉक्टर साहब को होटल में दिखाना, डॉ. सर्राफ का गुस्से में आकर झल्लाना, प्रभा से पैकेट छीनकर फुटपाथ पर फेंक देना और पासपोर्ट लेकर टैक्सी द्वारा चले जाना। प्रभा का एक मकान की सीढ़ी पर बैठकर घण्टो रोते रहना, एक औरत द्वारा सांत्वना दिया जाना आत्मकथा का आरम्भिक प्रसंग है। वह कथित पगली औरत जो विलपती प्रज्ञा को समझाती है लेखिका के शब्दों में क्या फर्क पड़ता है वह चाहे पति हो या दोस्त तुम्हें छोड़कर चला गया ना। वैसे जानती हो मर्द को पैदा हम औरतों ने ही किया है, नौ मिनट का सुख....और नौ महीने का पेट...ही...ही...ही।''[11]

सेन्ट लुइस में डॉक्टर केड़िया की पत्नी के व्यंग्यात्मक प्रश्न प्रभा खेतान और डॉक्टर सर्राफ के रिश्तों की पड़ताल ही नहीं कर रहे। बल्कि यह दिखाते हैं कि हम उत्तर आधुनिकता के युग में अमेरिका जैसे देश में भी मुक्त भाव से सोचने वाले लोग बहुत कम पाते हैं। क्या हर लड़की की नियति विवाह ही है? क्या विवाह संस्था को चुनौती नहीं दी जा सकती? क्या समाज एक लड़की को विकसित होने का अवसर सही मायने में प्रदान नहीं कर सकता? ऐसे कई सवाल यह आत्मकथा पाठकों के सम्मुख छोड़ जाती है। इसका उत्तर भी हमें ही ढूंढता है तथा पुरुषवादी नजरिये में तब्दीली भी हमें ही करना है।

जेम्स स्टुअर्ट मिल के शब्दों में - 'स्त्रियों के बारे में

पुरुषों की जो जानकारी है वह नाकाफी और सतही है और रहेगी, जब तक स्वयं स्त्रियाँ ही अपने बारे में खुलकर न बताएँ।....सर्वप्रथम बात तो यह है कि महिलाएं महिलाओं की मुक्ति के प्रति तब तक समर्पित नहीं हो सकतीं जब तक कि स्वयं पुरुष उनका इस आन्दोलन में पूरी तरह साथ न दें।''[12]

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा और प्रभा खेतान ने अपनी-अपनी आत्मकथा के माध्यम से अनेक नारी-समस्याओं पर प्रकाश डाला जो कि आज के परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक है।

सन्दर्भ

1. कस्तूरी कुंडल बसै - मैत्रेयी पुष्पा, हंस, मार्च 2001, पृ. -213
2. वही, पृ.-228
3. स्त्री की पराधीनता के कारण - जेम्स स्टुअर्ट मिल - अनुवादक प्रगति सक्सेना, हंस, मार्च 2001, पृ.-91
4. गुड़िया भीतर गुड़िया - मैत्रेयी पुष्पा, पृ.-15
5. वही, पृ.-18
6. वही, पृ.-25
7. वही, पृ.-60
8. वही, पृ.-246
9. वही, पृ.-329
10. हंस, मार्च 2006, पृ.-25
11. हंस, स्त्री भूमण्डलीकरण : पितृसत्ता के नए रूप-मार्च 2001, पृ.-93-94

डॉ. अल्पना मिश्रा

636/43, 2ए, महामाया नगर,
तकरोही, इंदिरा नगर, लखनऊ

शोध के अनुसार स्थान, परिवार और पाठ्यक्रम के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा

–शशिकला यादव
–डॉ. हलधर यादव

शोध सार - शोध के अनुसार स्थान, परिवार और पाठ्यक्रम के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा निर्धारित होती है। किसी भी क्षेत्र में एक शिक्षित बालिका की दिशा भविष्य को तय करती है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो किसी भी क्षेत्र में अपना स्थान बनाने के लिए दिशा निर्देशित करती है। एक शिक्षित बालिका परिवार को भी दिशा निर्देशित करती है। बालिका की शिक्षा की दिशा प्राप्त करने के लिए परिवार की अहम् भूमिका है। परिवार एकल हो या संयुक्त, शिक्षा की दिशा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। किसी भी प्रकार के परिवार में बालिकाओं को शिक्षित किया जा सकता है। पाठ्यक्रम के बारे में बालिका शिक्षा की दिशा निर्देशित होना अति आवश्यक है। सभी पाठ्यक्रम का अपना अलग-अलग भूमिका व महत्व है। व्यवसायिक पाठ्यक्रम का चयन एक भविष्य निर्माता के रूप में कार्य करता है। पाठ्यक्रम का चयन रूचि के अनुसार होना चाहिए। आज के समय में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ बालिकाओं का प्रदर्शन उत्कृष्ट न हो। इस प्रकार पाठ्यक्रम का चयन रूचि अनुसार होना चाहिए।

शब्द संकेत :- शिक्षा, दिशा, स्थान, परिवार, पाठ्यक्रम।

प्रस्तावना :- बालिकाओं का शिक्षित होना आदि से लेकर आज तक महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षा के अभाव में बालिकाओं का जीवन निर्जीव है। जैसे एक शरीर को जीवित रखने के लिए आत्मा की जरूरत होती है, उसी प्रकार बालिकाओं का अपने सम्मान, भविष्य व करियर के लिए शिक्षित होना अति आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से बालिकाओं की समानता व सशक्तीकरण के अर्थपूर्ण प्रयासों को सुनिश्चित किया जाना बालिका शिक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। बालिका शिक्षा की दिशा किसी भी स्थान के लिए महत्वपूर्ण है।

परिवार में शिक्षित बालिका का महत्व अत्यधिक है क्योंकि शिक्षित बालिका परिवार को कदम-कदम पर दिशा निर्देशित करके अपने दिशा को तय कर सकती है। परिवार की मुखिया के रूप में शिक्षित बालिका परिवार को दिशा दिखा सकती है। पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में शिक्षा की दिशा अलग-अलग है। सभी पाठ्यक्रम की अपनी दिशा निर्धारित है। शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम का चुनाव रूचि के अनुसार किया जा सकता है। सभी पाठ्यक्रम शिक्षा से सम्बन्धित होते हैं। कुछ पाठ्यक्रम डिग्री स्तर के होते हैं, तो कुछ पाठ्यक्रम व्यवसायिक स्तर के होते हैं। पाठ्यक्रम का चयन बालिकाओं को अपने रूचि व दिशा या भविष्य के अवसर के अनुसार करना चाहिए। इसीलिए नई शिक्षा नीति में कौशल पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। नई शिक्षा नीति कहती है कि पाठ्यक्रम कौशल से सम्बन्धित होना चाहिए, जिससे शिक्षा की दिशा निर्धारित किया जा सके। जब पाठ्यक्रम व्यवसायिक स्तर के चुनने या निर्धारित किये जायेंगे तो बालिकाओं को आगे भविष्य निर्धारित करने का कार्य कर सकेंगे। शोध में स्थान, परिवार व पाठ्यक्रम के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा निर्धारित करने का कार्य निम्नवत् है-

स्थान के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा :- स्थान के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा को तीन-तीन भागों में बाँटा गया है- 1. शहरी क्षेत्र, 2. मेट्रो शहरी क्षेत्र, 3. ग्रामीण क्षेत्र।

1. शहरी क्षेत्र :- शहरी क्षेत्रों से कुल 189 बालिका छात्रों का सर्वे किया गया। जो कुल न्यादर्श का 47.3 प्रतिशत है। शहरी क्षेत्रों से आने वाली बालिका विद्यार्थियों की संख्या कुल न्यादर्श से 50 प्रतिशत से कम है। शहरी क्षेत्रों का स्थानीयता के आधार पर देखा गया कि बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अर्थात् स्थानीयता शिक्षा की दिशा को प्रभावित नहीं करती है। शिक्षा की दिशा पर शहरी क्षेत्र से आने वाली बालिकाओं का कोई विशेष अन्तर नहीं दिखायी देता है।

2. मेट्रो शहरी क्षेत्र :- मेट्रो शहरी क्षेत्र से आने वाली बालिका विद्यार्थियों की संख्या 135 है जो न्यादर्श का 33.8 प्रतिशत है। यह कुल न्यादर्श का 50 प्रतिशत से कम है। मेट्रो शहरी क्षेत्रों या स्थानीयता के आधार पर देखा गया है कि बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात् स्थानीयता शिक्षा की दिशा को प्रभावित नहीं करते हैं। शिक्षा की दिशा स्थान से प्रभावित नहीं होता है।

3. ग्रामीण क्षेत्रः- ग्रामीण क्षेत्र से आने वाली बालिका विद्यार्थियों की संख्या सबसे कम 76 है जो न्यादर्श का 19 प्रतिशत है सर्वे के अनुसार देखा गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी शिक्षा की दिशा को लेकर जागरूकता कम है। ग्रामीण क्षेत्रों से शिक्षा की दिशा प्रभावित होती है। तुलनात्मक रूप में देखा जाये तो शहरी और मेट्रो क्षेत्रों का शिक्षा की दिशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों का भी शिक्षा की दिशा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन मेट्रो और ग्रामीण क्षेत्रों का शिक्षा की दिशा पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि मेट्रो और ग्रामीण क्षेत्र के रहन-सहन, विचार, उद्देश्य आदि प्रभावित करते हैं, जिससे शिक्षा की दिशा पर भी प्रभाव पड़ता है।

पाठ्यक्रम के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा :- पाठ्यक्रम के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा को पाँच भागों में बाँटा गया हैः-

1. बी.एड. पाठ्यक्रम।
2. डी.एल.एड. पाठ्यक्रम।
3. बी.एस.सी. (नर्सिंग) पाठ्यक्रम।
4. बी.कॉम. पाठ्यक्रम।
5. बी.ए. पाठ्यक्रम।

1. बी.एड. एवं डी.एल.एड. पाठ्यक्रम- बी.एड. पाठ्यक्रम में 237 बालिका विद्यार्थियों का सर्वे किया गया जो कुल न्यादर्श का 59.3 प्रतिशत है। डी.एल.एड. पाठ्यक्रम में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 31 है, जो न्यादर्श का 7.8 प्रतिशत है। बी.एड. एवं डी.एल.एड. पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों की शिक्षा के दिशा पर प्रभाव पड़ता है अर्थात् पाठ्यक्रम बी.एड. अलग दिशा तय करता है और पाठ्यक्रम डी.एल.एड. अलग दिशा तय करता है। दोनों पाठ्यक्रम का शिक्षा की दिशा को प्रभावित करते हैं।

2. बी.एड. एवं बी.एस.सी. (नर्सिंग) पाठ्यक्रमः- बी. एड. में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 237 है तथा बी. एस.सी. (नर्सिंग) में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 26 है जो कुल न्यादर्श का 6.5 प्रतिशत हैं बी.एड. और बी.एस. सी. पाठ्यक्रम के आधार पर देखा गया कि शिक्षा की दिशा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ये पाठ्यक्रम शिक्षा की दिशा को प्रभावित नहीं करते हैं।

3. बी.एड. एवं बी. कॉम. पाठ्यक्रम- बी.एड. पाठ्यक्रम में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 237 है। जबकि बी. कॉम. पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों की संख्या मात्र 3 है जो कुल न्यादर्श का .8 है। इससे स्पष्ट होता है कि बी.एड. व बी.कॉम. पाठ्यक्रम बालिका शिक्षा की दिशा को प्रभावित करते हैं।

4. बी.एड. व बी.ए. पाठ्यक्रम- बी.एड. पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों की संख्या 237 है जबकि बी.ए. पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों की संख्या 103 है जो कुल न्यादर्श का 25.8 प्रतिशत है। दोनों पाठ्यक्रम के अनुसार बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

5. डी.एल.एड. व बी.एस.सी. (नर्सिंग)- डी.एल.एड. पाठ्यक्रम में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 31 है जो कुल न्यादर्श का 7.8 प्रतिशत है तथा बी.एस.सी. (नर्सिंग) विद्यार्थियों की संख्या 26 है जो कुल न्यादर्श का 6.5 प्रतिशत है। दोनों पाठ्यक्रम का बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

6. डी.एल.एड. व बी.कॉम. पाठ्यक्रम- डी.एल.एड. पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों की संख्या 31 है जो कुल न्यादर्श का 7.8 है तथा बी.कॉम. में बालिका विद्यार्थियों की संख्या मात्र 3 है जो कुल न्यादर्श का .8 है जिससे स्पष्ट होता है कि दोनों पाठ्यक्रम से बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं अर्थात् शिक्षा की दिशा प्रभावित नहीं होती है।

7. बी.एस.सी. (नर्सिंग) व बी.कॉम. पाठ्यक्रमः- बी. एस.सी. (नर्सिंग) में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 26 है तथा बी.कॉम. में मात्र 3 विद्यार्थी हैं जिसका प्रतिशत .8 है। ये दोनों पाठ्यक्रम शिक्षा की दिशा को प्रभावित करते हैं। दोनों पाठ्यक्रम का अपनी अलग-अलग दिशाएं हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बी.एस.सी. (नर्सिंग) व्यवसायिक पाठ्यक्रम है जबकि बी.कॉम. डिग्री स्तर का पाठ्यक्रम है। दोनों की दिशाएं अलग है।

*8. बी.एस.सी. (नर्सिंग) व बी.ए. पाठ्यक्रम-*बी.एस. सी. (नर्सिंग) पाठ्यक्रम में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 26 है जो कुल न्यादर्श का 6.5 है तथा बी.ए. पाठ्यक्रम में बालिका विद्यार्थियों की संख्या 103 है जो कुल न्यादर्श का 25.8 प्रतिशत है। दोनों पाठ्यक्रम के अनुसार बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा प्रभावित नहीं होती है अर्थात् इन दोनों पाठ्यक्रम का शिक्षा की दिशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

परिवार के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा :- परिवार के आधार पर बालिका शिक्षा की दिशा दो भागों में वर्गीकृत है- 1. एकल परिवार, 2. संयुक्त परिवार।

1. एकल परिवार- सर्वे के आधार पर एकल परिवार की बालिका विद्यार्थियों की संख्या 212 है जो कुल न्यादर्श का 53 प्रतिशत है। एकल परिवार की संख्या संयुक्त परिवार के लगभग है। सर्वे से ऐसा देखा गया है कि एकल

परिवार में रहने वाली बालिका विद्यार्थियों की रूचि ज्यादा है।

2. संयुक्त परिवार- संयुक्त परिवार की बालिका विद्यार्थियों की संख्या 188 है जो न्यादर्श का 43 प्रतिशत है। सर्वे में पाया गया कि संयुक्त परिवार में बालिका विद्यार्थियों की रूचि कम है। लेकिन शिक्षा की दिशा पर परिवार का कोई प्रभाव दिखायी नहीं देता है अर्थात् बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा परिवार में रहने के आधार पर प्रभावित नहीं होती है। विद्यार्थी एकल परिवार में रहें या संयुक्त में, शिक्षा की दिशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

निष्कर्षः- निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा पर स्थान या क्षेत्र, परिवार व पाठ्यक्रम का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। स्थान के अनुसार शहरी और मेट्रो शहरी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि ग्रामीण और शहरी क्षेत्र का भी प्रभाव शिक्षा की दिशा पर नहीं पड़ता है। मेट्रो व ग्रामीण क्षेत्र के प्रभाव से शिक्षा की दिशा बदल जाती है। परिवार के आधार पर शिक्षा की दिशा प्रभावित नहीं होती है। परिवार एकल हो या संयुक्त बालिका शिक्षा की दिशा पर कोई असर नहीं डालता है। अब बात आती है पाठ्यक्रम की तो व्यवसायिक पाठ्यक्रम का शिक्षा की दिशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि डिग्री स्तर के पाठ्यक्रम से शिक्षा की दिशा प्रभावित होती है। अर्थात् शिक्षा की दिशा क्षेत्र व परिवार से प्रभावित न होकर पाठ्यक्रम से प्रभावित होती है।

पाठ्यक्रम के आधार पर विद्यार्थियों की दिशा निर्धारित होती है। सही मार्गदर्शन से विद्यार्थियों को अपने योग्यता के अनुसार अग्रसर होने का अवसर मिलता है। प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की सही दिशा में मार्गदर्शन करने से वे अपने-अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थियों को अपने लक्ष्य प्राप्त करने में परिवार की अहम भूमिका होती है। विद्यार्थी के अनुसार परिवार को उन्हें उचित वातावरण प्रदान करना आवश्यक है। परिवार को अपने बच्चों के रूचि के अनुसार पाठ्यक्रम चुनने के लिए अवसर देना चाहिए, जिससे छात्र अपने लक्ष्य को स्वेच्छा से प्राप्त कर सकें। स्थान या क्षेत्र विशेष का भी विद्यार्थियों पर गहरा असर पड़ता है। बहुत पिछड़े क्षेत्र के विद्यार्थी को मेट्रो क्षेत्र के विद्यार्थियों तक पहुँचने में अधिक समय लगता है।

बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा विभिन्न दिशाओं में निर्धारित है। बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा को अधिकार एवं स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में प्रोत्साहित किया जा सकता है। बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा को स्वायत्तता एवं आत्मनिर्भर के रूप में प्रोत्साहित किया जा सकता है। बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा के निर्णय क्षमता को विकसित करने के लिए किया जा सकता है। बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा को भागीदारी के रूप में प्रोत्साहित किया जा सकता है। बालिका शिक्षा की दिशा को क्षमता विकास के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। क्षमता के विकसित होने से शिक्षा की दिशा निर्धारित हो सकती है। बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा को सामाजिक, राजनीतिक व कानूनी जागरूकता के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। बालिका विद्यार्थियों को वर्तमान समय में सभी क्षेत्रों में जागरूक होना चाहिए जिससे उन्हें किसी भी दिशा का चयन करने में कठिनाई का सामना न करना पड़े। बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा सूचना माध्यम की उपयोगिता के लिए प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि बालिका विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा किसी एक क्षेत्र पर निर्भर नहीं करती है। बालिका विद्यार्थियों को सही अवसर व सही दिशा में मार्गदर्शन की आवश्यकता है, जिससे वे अपने सपने को ऊँची उड़ान दे सकें। बालिका विद्यार्थियों को उनके सपने को पूर्ण करने में परिवार क्षेत्र व पाठ्यक्रम का विशेष योगदान होता है। परिवार क्षेत्र व पाठ्यक्रम का सहयोग बालिका विद्यार्थियों की दिशा को निर्धारित करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता, एस.पी. (2015) भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
2. लाल, रमन बिहारी (2011) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, रस्तोगी पब्लिकेशन्स।
3. परमार शुभ्रा (2015) नारीवादी सिद्धान्त और व्यवहार, ओरियंट ब्लैकश्वान प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद।
4. श्रीवास्तव रश्मि (2021) भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, राजस्थान।
5. पाठक, सुमेधा (2012) स्त्री शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
6. https://www.drishtiias.co/daily-udates/daily-newseditorials/woman-education
7. www.jseps.org
8. www.msde.gov.in
9. www.scotbuzz.org
10. www.91sarkariyojana.in
11. उपकर, सीमा कुमार, महिला अधिकार और भारतीय प्रावधान, उपकार प्रकाशन, आगरा-2
12. प्रकाश, डॉ. अल्का (2007), नारी चेतना के आयाम, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज।
13. सिंह, अरूण कुमार (2015), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
14. गुप्ता, डॉ. एस. पी., डॉ. अलका (2015), सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

शशिकला यादव
शोधार्थी, शिक्षा विभाग,
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ
डॉ. हलधर यादव
प्रोफेसर, शिक्षा विभाग,
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रवाद

–डॉ. कोकिल

शोध-सार राष्ट्र प्रत्यक्ष जीवनमात्र सत्ता स्वराष्ट्र की भावानुभूति राष्ट्रीयता है। राष्ट्र के प्रति एकात्म अनुभूति, राष्ट्रभक्ति है और इसी की वैचारिक अभिव्यक्ति राष्ट्रवाद है। राष्ट्रीयता की जड़ें राष्ट्र की भूमि में जितनी गहरी होंगी राष्ट्रीय भावों को अंकुर उतना ही पल्लवित होगा। राष्ट्रवाद सतत् चलने वाली प्रक्रिया है, जो विमर्शित विषयों को कई रूपों के माध्यम से किसी लक्ष्य तक पहुँचाने का कारण बनता है। प्रसाद के नाटकों को हिन्दी में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपने नाटकों में नायक-नायिका के माध्यम से समाज के भटके हुए लोगों को मार्ग प्रदान कर राष्ट्रीयता का संदेश दिया है। उनके नाटकों में पुनरूत्थान तथा राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति बड़ी सजग रहती है। जब प्रसाद ने देखा कि हमारा वर्तमान ही नहीं भूत इतिहास भी विदेशी छाया प्रभाव की छाया में मलीन हो गया है तब वह देशवासियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य रात के अंधकार को समाप्त करता है, उसी प्रकार तुम भी जागो और पराधीनता रूपी रात को समाप्त करो। प्रसाद ने प्रकृति के माध्यम से तो कभी अपने नाटकों में नायक-नायिका के माध्यम से राष्ट्रवाद को वर्णित किया है तथा यह भी स्पष्ट किया है कि जब मानव चाहेगा तभी उसके लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। उनके समस्त नाट्य साहित्य का प्राण राष्ट्रीय जागरण है। ध्रुवस्वामिनी नाटक में भी प्रसाद जी ने राष्ट्र प्रेम का महान संदेश दिया है। प्रस्तुत आलेख द्वारा मैं जयशंकर प्रसाद के नाटकों में 'राष्ट्रवाद' को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही हूँ।

बीज शब्द पुनरूत्थान, राष्ट्रीय जागरण, स्वाधीनता, राष्ट्रीयता, राष्ट्र प्रेम, साम्प्रदायिकता, सांस्कृतिक, स्वराष्ट्र, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय चेतना।

'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किसी देश तथा उसमें रहने वाले नागरिक दोनों के लिए होता है। अपने राष्ट्र की भक्ति ही विभिन्न भाषा-भाषियों को एक सूत्र में बांधे रखती है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'[1] के अनुसार स्पष्ट होता है कि भारतवासी माता के समान ही जन्मभूमि को भी प्रेम करते थे जन्म भूमि को मातृतुल्य को समझते हुए इसकी रक्षा करना पुत्र का धर्म स्वीकार किया गया है। वह राष्ट्र जो हमारी जन्मभूमि होती है, वह राष्ट्रीय जिसमें हम विकसित होते है जिसमें हम शिक्षा पाते हैं तथा जिसमें हम प्रतिपल जीवित रहते हैं, वह हमारा अपना राष्ट्र कहलाता है और उसकी पराधीनता व्यक्ति की परतंत्रता की पहली सीढ़ी होती है। ऐसे हर स्वतंत्र राष्ट्र के सम्बन्ध में उसकी सीमाओं में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति से भले ही उसमे धर्म कुछ हो, जाति कुछ हो, वह श्वेत अथवा अश्वेत स्नेह हो जाना स्वाभाविक है। राष्ट्र के लिए जीना और काम करना उसकी स्वतंत्रता और भलाई के लिए प्राणों को हँसते-हँसते त्यागने की भावना को ही राष्ट्रवाद कहा जाता है। हमारे धर्म ग्रन्थों में कहा गया है 'सत्यमेव जयते नान्तृम' अर्थात् सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं, यह हमारे राष्ट्र का आदर्श वाक्य भी है। सत्याचरण से हमारे सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं, सत्याचरण से रहित व्यक्ति भ्रष्टाचरण का आश्रय ग्रहण करता है। यही भ्रष्टाचार राष्ट्र की समृद्धि को समाप्त कर उसे रसातल की ओर ले जा रहा है, राष्ट्रीय चरित्र को समूल नष्ट कर रहा है। भ्रष्टाचार राष्ट्र को प्रगति नहीं करने देता राष्ट्र को घुन के समान खोखला कर देता है।

राष्ट्र प्रत्यक्ष जीवनमान सत्ता स्वराष्ट्र की भावानुभूति राष्ट्रीयता है। राष्ट्र के प्रति एकात्मक अनुभूति राष्ट्रभक्ति है और इसी की वैचारिक अभिव्यक्ति राष्ट्रवाद है। राष्ट्रवाद के अभाव में व्यक्ति अभिव्यक्ति का कोई केन्द्र नहीं होता। 'रिचर्ड वीवर' ने आइडियाज हैव कांसीक्वेसंज लिखा था- ''विचार परिणाम भी होते हैं भाव विचार के ऊपर होते हैं लेकिन विचार न हो तो भाव का अभाव होगा। भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद और देशभक्ति एक साथ है, परस्पर अनुषंगी है।''[2] राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयत्नशील होने से पूर्व हमें राष्ट्र का स्वरूप भी जान लेना चाहिए। राष्ट्र की भूमि उसके निवासी और निवासियों की संस्कृति से राष्ट्र का स्वरूप निर्मित होता है। यह भारत भूमि सच्चे अर्थों में समस्त राष्ट्रीय विचारों की जननी है। राष्ट्रीयता की जड़ें राष्ट्र की भूमि में जितनी गहरी होंगी राष्ट्रीय भावों का अंकुर उतना ही पल्लवित होगा, राष्ट्र

की भूमि पर निवास करने वाले मनुष्य राष्ट्र का दूसरा अंग है। पृथ्वी और उसके निवासियों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का स्वरूप बनता है, राष्ट्र के स्वरूप निर्माण में तीसरा अंग संस्कृति है जब तक संस्कृति का विकास होता है, राष्ट्र का वास्तविक विकास नहीं होता। 'रॉस' द्वारा राष्ट्रीयता एक प्रेरणा है जिससे प्रभावित होकर एक देश के रहने वाले आपस में एक दूसरे से एक राष्ट्र के नागरिक होने के नाते सद्भावना रखते हैं, और मिल जुलकर देश की उन्नति सुरक्षा एवं कल्याण के लिए संक्रिय रहते हैं।

'राष्ट्रीयता'- राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक भावना है। किसी प्रदेश विशेष के निवासियों की यह भावना और विश्वास है, कि वे एक हैं और अपना भविष्य उज्ज्वल करने के लिए उनका दृढ़ संकल्प है। इसका नाम ही राष्ट्रीयता है जो साहित्य रूपी सरिता से निकलकर मानवता के मैदान को सींचती हुई अनंत में विलीन हो जाती है। भारत के 'राष्ट्रवाद' को समझना है तो पहले भारत के प्रति अपनत्व और भक्ति का भाव रखना होगा मनुष्यता का बोध रखना होगा। भारत का राष्ट्रवाद भारत के राष्ट्र की संकल्पना मनुष्यता के संवर्द्धन पर टिकी है। भारत की जो सांस्कृतिक चेतना रही उसमें 'तुलसीदास' ने कहा-

''जड़ चेतन जल-जीव नभ
संकल राम मै जान।''[3]

इसमें जाति मजहब का भेद नहीं है। इसमे भाषा क्षेत्र का भी भेद नहीं है सब कुछ जिसे ऋषियों ने कहा खलविदम ब्रह्म सब एक ही तत्व है और यही संस्कृति की पहचान है, मार्क्सवादी विद्वान 'डॉ. रामनिवास शर्मा' ने भारतीय नवजागरण और यूरोप ने लिखा है ''जिस देश में ऋग्वेद के कवि रहते हैं उस पर दृष्टिपात करें। जहाँ ऋग्वेद की सात नदियाँ बहती हैं यह वही देश है जिसमें जलप्रलय के बाद भरत जनों के विस्थापन के बाद हड़प्पा सभ्यता का विकास हुआ। ऋग्वेद के कवियों के लिए राष्ट्र केवल भूमि नहीं है उस पर बसने वाला जनराष्ट्र है।''[4] भारतीय राष्ट्र गठन मुख्य प्राण संस्कृति है, सांस्कृतिक निरन्तरता है। इस संस्कृति में सारी दुनिया के लोक मंगल की शपथ है। यूरोपीय नेशनलिज्म की तरह यहाँ स्वदेश को ही श्रेष्ठ और श्रेष्ठ देशों को असभ्य मानने का अहंकार नहीं है। यूरोपीय राष्ट्रवाद साम्राज्यवादी था, तभी वहाँ युद्ध भी हुए।

राष्ट्रवाद ही वह भावना है जो सैनिकों को देश की सीमा पर डटे रहने की ताकत देती है। राष्ट्रवाद की वजह से ही देशों के नागरिक अपने देश के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने से पीछे नहीं हटते और वह अपने धर्म भाषा जाति इत्यादि सभी संकीर्ण मनोवृतियों को पीछे छोड़कर देश हित में एक साथ खड़े होने की प्रेरणा देते हैं और यही अपने देश की एकता अखंडता को बढ़ावा देती है। 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान' के डायरेक्टर 'नन्दकिशोर पाण्डे' ने राष्ट्रवाद के विषय पर कहा है कि ''राष्ट्रवाद की जरूरत हर समय रहती है। राष्ट्रवाद और देशभक्ति को अलग नहीं रख सकते।'' साहित्य आज तक 2017 के सत्र 'साहित्य और राष्ट्रवाद' में ''नेशनल बुक ट्रस्ट'' के अध्यक्ष बलदेव शर्मा और लेखक कवि पत्रकार राजेश जोशी ने साहित्य में राष्ट्रवाद के विषय में कहा कि-'राष्ट्रवाद के बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं है किसी भी देश के अस्तित्व के लिए राष्ट्रवाद आवश्यक है।'

राष्ट्रवाद सतत चलने वाली प्रक्रिया है। जो विमर्शित विषय को कई रूपों के माध्यम से किसी लक्ष्य तक पहुँचाने का कारण बनता है इस सन्दर्भ में यह अपने परम्परागत स्वरूप या पहचान से अलग एक नई पहचान को, छवि को स्थापित करता है। राष्ट्र का अस्तित्व राष्ट्र में रह रहे लोगों के अधिकार और उसकी अस्मिता आदि के प्रति गम्भीर तथा चिंतित होना राष्ट्रवादी होने का परिचायक है। 'इक्कीसवीं सदी में राष्ट्रवाद को लेकर पूरी दुनिया में हाय-तोबा मचा हुआ है। राष्ट्रीयता को सामान्यतः राजनैतिक परिदृश्य में ही व्याख्यायित करने की कोशिश की जाती है। जब तक राष्ट्रवाद के केन्द्र में धर्मजाति जैसी समस्या रहेगी, एक मानव केन्द्रित लोकतंत्र का पूर्ण विकास संभव नहीं है राष्ट्रवाद के कई रूप है लेकिन अपने सम्पूर्ण रूप में राष्ट्रवाद एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। भारतीय राष्ट्र का मूल घटक संस्कृति है। भारत की राष्ट्रीयता का बोध तो ऋग्वेद में भी बताया गया है। भारत का राष्ट्रवाद पश्चिम का या दूसरों का उत्पीड़न करने वाला राष्ट्रवाद नही है। यह भारत की सांस्कृतिक अवधारणा पर टिका हुआ है।

एक उदाहरण-

खुद कमाकर खाना ये प्रकृति है मनुष्य की, कमाओ खाओ
लेकिन दूसरे का छीनकर खाना ये विकृति है, मनुष्य की
लेकिन खुद कमाकर दूसरों को खिलाना, ये संस्कृति है।
ये भारत की राष्ट्रीयता का बोध, इसी संस्कृति पर है।

''डी.डी. कोशंबी'' प्रतिबद्ध मार्क्सवादी थे। उन्होंने प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता में लिखा है- ''विश्व की महान अफ्रीकी संस्कृति में वैसी निरंतरता नहीं मिलती जैसी भारत में पिछले तीन हजार या इससे भी ज्यादा बर्षों से है। बिना बल प्रयोग ही भारतीय दर्शन संस्कृति का चीन और जापान में स्वागत हुआ इन्डोनेशिया वर्मा और वियतनाम श्रीलंका के सांस्कृतिक इतिहास पर भारत का प्रभाव पड़ा।''[5] हजारों वर्ष की सांस्कृतिक निरंतरता की वैचारिक अभिव्यक्ति ही राष्ट्रवाद है।

हिन्दी नाटक साहित्य के इतिहास में प्रसाद का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रसाद का राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण हिन्दी नाटक की विशिष्ट उपलब्धि

है। आर्य संस्कृति के प्रति उनकी अटूट आस्था थी इसलिए प्रारम्भ से अन्त तक उनकी रचना का आधार भारतीय पौराणिक आख्यान तथा वैदिक वाङ्मय रहा है। अतीत उनकी कर्मभूमि है जिसके पुनरुत्थान में उन्होंने वर्तमान का समाधान ढूँढने का प्रयत्न किया। प्रसाद जी ने अपने गहन अध्ययन और गूढ़ ज्ञान के आधार पर उसका विश्वसनीय चित्र उपस्थित किया और उसे प्राणवत्ता भी प्रदान की। डॉ. गुलाबराय के अनुसार- ''प्रसाद के सभी नाटकों का आधार सांस्कृतिक है। आर्य संस्कृति में उन्हें गहन आस्था थी इसलिए उनके नाटकों में भारत के इतिहास का प्रायः वही परिच्छेद है जिसमें उनकी संस्कृति अपने पूर्ण वैभव पर थी ब्राह्मण और बौद्ध संस्कृतियों के संघर्ष से जब उसका स्वरूप प्रखर हो उठा था।'' प्रसाद के नाटकों को हिन्दी में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उन्होंने अपने नाटकों में नायक-नायिका के माध्यम से समाज के भटके हुये लोगों को मार्ग प्रदान कर राष्ट्रीयता का संदेश दिया है इसलिए इनके नाटक आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। प्रसाद अपने सभी नाटकों में संकुचित राष्ट्रीयता अथवा प्रान्तीयता के स्तर से बहुत ऊपर उठकर सम्पूर्ण आर्यावर्त के महत्व-गान का लक्ष्य लेकर आगे बढ़े। प्रसाद के इस सांस्कृतिक जागरण से अन्धकाराछन्न स्वर्णिम अतीत पुनः प्रकाशित हो उठा है और उन्होंने इसके माध्यम से जीवन की सर्वव्यापी समस्याओं का समाधान खोज निकाला। प्रसाद जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य पर मुग्ध थे। स्वभाव से चिन्तनशील और कल्पनाप्रिय होने के कारण उसी युग में रहते थे। कोलाहल की अवनी तजकर जब वे भुलावे का आह्वान करते हुये विराम स्थल की खोज करते होंगे उस समय यह रंगीन अतीत उन्हें सचमुच बड़े वेग से आकर्षित करता होगा इसलिये उनके नाटक में पुनरुत्थान तथा राष्ट्रीयता की प्रवृति बड़ी सजग रहती है वे विदेशी छाया से आच्छादित जीवन को फिर से उसी स्वर्ग की ओर प्रेरित करने की बात सोचा करते थे उन्होंने देखा कि हमारा वर्तमान ही नहीं भूत इतिहास भी विदेशी प्रभाव की छाया में मलीन हो गया है। जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य आन्दोलन के प्रथम और महत्वपूर्ण कवि है। काव्यधारा के रूप में छायावाद को एक निश्चित आकार देने में प्रसाद की विशिष्ट भूमिका रही है। प्रसाद की राष्ट्रीयता अधिक रूप से उनके नाटकों में व्यक्त हुई है। छायावादी काव्य में राष्ट्रीय जागरण सांस्कृतिक जागरण के रूप में आता है कवि जयशंकर प्रसाद प्रस्तुत पंक्ति के माध्यम से देशवासियों को जगाने की बात कर रहे हैं-

''अब जागों जीवन के प्रभात
वसुधा पर ओस बने बिखरे।
हिमकन आंसू जो क्षोभ भरे
उशा बटोरती अरुण गात।।''[6]

वह देशवासियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित करते हुए कह रहे कि जिस प्रकार सूर्य रात के अंधकार को समाप्त करता है उसी प्रकार तुम भी जागो और पराधीनता रूपी रात को समाप्त करो। 'बीती विभावरी जागरी' पंक्ति के द्वारा प्रसाद कहना चाहते हैं कि अब आजादी रूपी उषा का फैलना है। अतः सभी देशवासी एक साथ मिलकर विदेशियों का सामना कर उन्हें अपने देश से भगा दे और सूर्य की तरह अपनी मातृभूमि पर फैल जायें। प्रसाद विषमता रहित समाज की स्थापना चाहते थे। प्रसाद प्रकृति के माध्यम से तो कभी अपने नाटकों में नायक-नायिका के माध्यम से राष्ट्रवाद को वर्णित किया है तथा यह भी स्पष्ट किया कि जब मानव चाहेगा तभी उसके लिये कोई कार्य असंभव नही है-

''मानव जब जोर लगाता है पत्थर पानी हो जाता है।''

प्रसाद जी भारत की राष्ट्रीय आस्था को जगाने का कार्य करते हैं। उन्होंने अपने नाटकों में भारत भारती और भारतीयता के प्रति अपनी गहरी निष्ठा का निदर्शन किया है। दर्शन और प्रेम के दायरे से मुक्त होकर व राष्ट्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इस संवेदनओं की अभिव्यक्ति कर रहे हैं-

''जिये तो सदा इसीलिए
मही अभिमान रहे यह हर्ष
निछावर कर दे हम सर्वस्व
हमारा प्यारा भारत वर्ष''[7]

प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी नाटक के माध्यम से वर्तमान भारत की दो समस्याओं को उठाया है- (1) नारी जागरण, (2) राष्ट्र प्रेम। उन्होंने इनका समाधान भी देने का प्रयत्न किया है। युग-युग से अभिशप्त शोषित पद दलित नारी जाति के अधिकारों को ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से उठाया है। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से स्त्री अधिकारों की ही बात इन शब्दों में कहती है ''पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है। वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते।''

इस प्रकार पराधीन भारत में नारी प्रसाद जी के माध्यम से स्वाधीनता की पुकार करती है। दूसरी ओर ध्रुवस्वामिनी नाटक में देश प्रेम का महान संदेश चन्द्रगुप्त एवं मंदाकिनी के माध्यम में दिया गया है। जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों में देश प्रेम की भावना अत्यन्त मुखर रूप से प्रकट हुई है-उनका समस्त नाट्य साहित्य का प्राण राष्ट्रीय जागरण है, ध्रुवस्वामिनी नाटक में भी प्रसाद जी ने राष्ट्र प्रेम का महान संदेश प्रदान किया है। मन्दाकिनी और चन्द्रगुप्त दोनों राष्ट्रप्रेमी हैं। जयशंकर प्रसाद जी मूल रूप से एक कवि थे। उनका कवि रूप उनके नाटकों पर छाया हुआ है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक भी उनकी कवि कल्पना के रंगीन पंखों की छाया में साँस ले रहा है। इस नाटक में प्रसाद जी को जहाँ कहीं भी अवसर मिला है, वही उनके कवि रूप ने मधु उड़ेल दिया है।

''अरूण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ बिभा पर नाच रही तरूशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुमकुम सारा।
लघु सुर धनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुहँ किये समझनीड़निज प्यारा।
बरसाती ऑखो के बदले बनते जहॉ भरे करूणा जल।
लहरे टकराती अनन्त की पाकर जहॉ किनारा।''[8]

चन्द्रगुप्त में राष्ट्र की मंगलकामना के साथ एक संदेश यह भी निहित है कि हम उन भूलों को बार-बार न दोहराए जो हमारे पतन और सुदीर्घ पराधीनता का कारण बनी है। नाटक की पात्र अलका देश के वीरों को जागृत करते हुए कहती है कि-

''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है-बढ़े चलो, बढ़े चलो।''[9]

अजातशत्रु नाटक द्वारा प्रसाद जी ने स्वाधीनता और अपने राष्ट्र कल्याण के लिए सभी भारतवासियों को अपने प्राणों की आहुति देने के प्रति जाग्रत किया है। राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राण तक विसर्जन किया जा सकता है और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं। चन्द्रगुप्त में राष्ट्र की मंगल कामना के साथ एक संदेश यह भी निहित है कि हम उन भूलों को बार-बार न दोहराए जो हमारे पतन और सुदीर्घ पराधीनता का कारण बनी है। यह अजातशत्रु नाटक द्वारा प्रसाद जी ने स्वाधीनता और अपने राष्ट्र कल्याण के लिए सभी भारतवासियों को अपने प्राणों की आहूति देने की प्रति जाग्रित किया है और कहा है-''राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राण तक विसर्जन किया जा सकता है, और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।''[10] बद्रीनाथ भट्ट चन्द्रगुप्त में क्रान्ति का उद्घोष करते हुये लिखते हैं कि-

''मातृ-भूमि के शत्रु को दंड न देना पाप है,
है वहीं धन्य निज देश का हरता जो संताप है।''[11]

प्रसाद जी के लगभग सभी नाटक अतीत कथाचित्रों के द्वारा तत्कालीन राष्ट्रीय संकट को पहचानने और सुलझाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा जनता में जागृति करने वाले थे। इसमें सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चरित्र तथा मनोभाव स्पष्ट दिखायी देता है। ''जनमेजय का नागयज्ञ'' में एक समूहगान के अन्तर्गत उनकी इस भावना को देखिए-

''क्या सुना नहीं अभी पड़े सोते हो।
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो।।''[12]

निष्कर्ष :- 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' का सत्ता संघर्ष राष्ट्रीय-सुरक्षा के प्रश्न से जुड़ा हुआ है। प्रसाद जी की जीवन की आस्थाओं के कवि हैं। राष्ट्रीय चेतना उनकी दार्शनिक चेतना के भीतर अन्तर्मुक्त रहने वाली रचनात्मक संवेदना है। 'अरूण यह मधुमय देश हमारा', 'बीती विभावरी जागरी', 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग' से जैसी अनेक प्रसाद की रचनाओं में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी है। संस्कृति और मनुष्यता की पुर्नरचना करते हुए प्रसाद जी अपने नाटकों में आर्यावर्त के इतिहास और सांस्कृतिक भूगोल की जैसी प्रेरणा दायक संरचना प्रस्तुत करते है। वह उनकी राष्ट्रीयता को प्रमाणित करने में पूर्ण समर्थ है।

सन्दर्भ

1. रामायण - बाल्मीकि
2. आइडियाज हैव कासीक्वेसेज - रिचर्डवेवर
3. रामचरितमानस - तुलसीदास
4. भारतीय नव जागरण और यूरोप - डॉ. रामविलास शर्मा
5. प्राचीन भारतीय संस्कृति व सभ्यता - डी.डी. कोशंबी
6. लहर - जयशंकर प्रसाद
7. स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, पृ.सं. 163
8. चन्द्रगुप्त मौर्य - जयशंकर प्रसाद, पंचम संस्करण स. 2002 वि. भारती भण्डार, इलाहाबाद, पृ.सं. 57
9. अजातशत्रु - जयशंकर प्रसाद, पृ.सं. 63
10. चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद, पृ.सं. 179
11. बद्रीनाथ भट्ट - चन्द्रगुप्त, पृ.सं. 29
12. जनमेजय का नाग यज्ञ - प्रसाद, पृ.सं. 75

डॉ. कोकिल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग),
श्री द्रोणाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय
दनकौर (गौतम बुद्ध नगर)

लोहिया का सामाजिक न्याय एवं उसकी अवधारणा

–डॉ. ममता यादव

शोध सार भारत के सामाजिक न्याय में डॉ. राममनोहर लोहिया का स्थान अत्यन्त गौरवशाली है। वे जीवन पर्यन्त अपने विचारों एवं मान्यताओं के लिए समाज में संघर्ष करते रहे। उन्होंने आजीवन समता, शोषण, रंगभेद, नारी का सम्मान, जाति-प्रथा और उत्पीड़न आदि के विरोध में संघर्ष किया। लोहिया के चौखम्भा राज्य का विचार, सप्त क्रांतियों का आह्वान तथा कई अन्य सामाजिक न्याय एवं उसकी अवधारणा से सम्बन्धित विचार यद्यपि कुछ प्रश्नों को उठाते हैं तथा वे व्यावहारिक कठिनाइयों से पूर्ण है, उनमें एक नई दृष्टि और विचार मिलते हैं। उनके व्यक्तित्व पर महात्मा गाँध ी का प्रभाव प्रमुख रूप से देखने को मिलता है।

प्रमुख शब्द- चौखम्भा राज्य का विचार, सामाजिक न्याय, नारी का सम्मान, जाति-प्रथा।

पिछले कुछ दशकों से सामाजिक न्याय का सवाल भारतीय राजनीति के केन्द्रीय सवाल के रूप में उभरा है। नई सामाजिक शक्तियों के उदय तथा विकास की प्रक्रिया तो काफी पहले शुरू हो गयी थी लेकिन इस दौर में वे एक मजबूत ताकत के रूप में उभरी है। आज भी भारतीय समाज में सबरीमाला के मन्दिर में महिलाओं का प्रवेश निषेध तथा उपेक्षित वर्गों के शोषण की निरन्तरता ने सामाजिक न्याय के सवाल को ज्वलन्त बना दिया। डॉ. राममनोहर लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन में निहित सामाजिक न्याय के विचार चिन्तन को इस लेख में विवेचित किया गया है। लोहिया की सामाजिक न्याय की विचारधारा स्त्रियों, जाति प्रथा, आर्थिक विकेन्द्रीकरण के विचार को वर्तमान भारतीय समाज की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों को समझने का दृष्टिकोण देती है। भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु किए गए संवैधानिक प्रावधान के साथ-साथ लोहिया के सामाजिक आर्थिक विचार भी सकारात्मक प्रयास है जिसके माध्यम से सामाजिक न्याय पर आधारित भारत में एक ऐसे सच्चे लोकतन्त्र जो सामाजिक आर्थिक समानता से परिपूर्ण हो तथा भारतीय समाज में महिलाओं श्रमिकों निम्न वर्गों को उचित सम्मान दिला सके और सामाजिक न्याय की स्थापना में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सके। तभी डॉ. लोहिया के सपनों का भारत उनके सप्तक्रान्ति के माध्यम से साकार किया जा सके।

सामाजिक न्याय का विचार एक गतिशील विचार है जिसने प्राचीन सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन से लेकर आधुनिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चिन्तन को निरन्तर प्रभावित किया है। समकालीन भारतीय समाज में यदि सामाजिक न्याय के चिन्तन की बात की जाए तो हम डॉ. राममनोहर लोहिया के सामाजिक और आर्थिक चिन्तन को अनदेखा नहीं कर सकते हैं। लोककल्याणकारी राज्य के साथ-साथ लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त आज के लोकप्रिय ही नहीं व्यापक रूप से स्वीकृत और मान्यता प्राप्त राजनीतिक अवधारणाएं हैं। यह सब अवधारणाएं मूलतः राज्य में सामाजिक न्याय की दार्शनिक अवधारणा के साथ गहराई से जुड़ी है।[1] सैकड़ों वर्षों के औपनिवेशिक और राजतन्त्रतात्मक शासन के उपरान्त भारतीयों को अपनी इच्छा के अनुकूल राज्य और समाज की व्यवस्था करने का अवसर प्राप्त हुआ है।[2] भारतीय स्वतन्त्रता से जुड़े नेताओं में भारतीय संविधान में शासन और राज्य की रूपरेखा के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों की प्रेरणा देने वाले तत्वों को भी सम्मिलित किया है। डॉ. लोहिया उन अग्रणी नेताओं में थे जो भारतीय समाज में अपने सामाजिक एवं आर्थिक चिन्तन के माध्यम से सामाजिक न्याय की अवधारणा को धरातल में लाना चाहते थे।

शताब्दियों से हमारे समाज में मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का चक्र निरन्तर जारी है और इस चक्र में बुद्धिजीवी-सामान्य जनता का, अमीर-गरीब का, शासक-प्रजा का, उच्च वर्ण निम्न वर्ण का, राजनीतिक दल अपने मतदाताओं का, पुरुष-स्त्रियों का और यहां तक कि स्त्रियाँ भी एक-दूसरे के शोषण से जुड़ी है। सैकड़ों वर्षों के शोषण के इतिहास के फलस्वरूप असंख्य मनुष्य निम्न स्तरीय जीवन जीने के लिये बाध्य है। शायद इसी कारण सैकड़ो वर्षो तक हमें राजनीतिक दासता में रहना पड़ रहा है।

डॉ. राम मनोहर लोहिया आधुनिक भारतीय इतिहास के वह युग पुरुष हैं जिन्होंने समाज में व्याप्त शोषण अन्याय साम्राज्यवाद एवं पूँजीवादी का घोर विरोध किया और अपने जीवन का लक्ष्य अहिंसात्मक और सत्याग्रह के माध्यम से शोषण की ऐतिहासिक शृंखला पर आघात करना निर्धारित किया था। जब तक हमारे समाज में जाति, धर्म, सम्प्रदाय, लिंग एवं व्यवसाय के आधार पर सामाजिक आर्थिक भेदभाव रहेगा तब तक हम सामाजिक न्याय की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

डॉ. लोहिया ने अपने सामाजिक आर्थिक चिन्तन के लिए महात्मा गाँधी एवं कार्लमार्क्स के विचारों को प्रेरणास्रोत बनाया। लोहिया के चिन्तन में गाँधी जी के विचारों का गहरा प्रभाव है। अहिंसा के प्रति डॉ. लोहिया की आस्था, सिविल नाफरमानी और सत्याग्रह के व्यापक प्रयोग में उनका विश्वास रचनात्मक कार्यक्रमों में उनकी निष्ठा, विकेन्द्रीकरण के आधार पर देश की राजनीति और अर्थनीति में गुणात्मक सुधार लाने का उनका संकल्प गाँधी की वैचारिकी विरासत का प्रमाण है।[3] डॉ. लोहिया का चिन्तन नमक और सत्याग्रह, मार्क्स गाँधी और समाजवाद, समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, जाति प्रथा, भारत में समाजवाद आदि ऐसी ग्रन्थियाँ हैं जिसमें उनके सामाजिक न्याय की अवधारणा के प्रमाण मिलते हैं। डॉ. लोहिया भारतीय समाज में व्याप्त शोषण और अन्याय को निकटता से देखा तथा उसके उन्मूलन के लिए उन्होंने निरन्तर संघर्ष किया उनके विचार में एक मनुष्य को दूसरे से छोटा समझना, उसका शोषण करना उस पर अपना आधिपत्य जमाना मानवीय मूल्यों का अपमान और ईश्वर के प्रति पाप है वे लोकतान्त्रिक मूल्यों के प्रबल समर्थक और सामाजिक न्याय के महान चिंतक थे। वे सामाजिक न्याय के आदर्श को अहिंसात्मक तथा सत्याग्रह से प्राप्त करना चाहते थे।[4]

डॉ. लोहिया ने भारतीय समाज में नारी की दयनीय और दुरावस्था को भी पहचाना। नारी मानव समाज की महत्वपूर्ण घटक होती है। वह दोहरी भूमिका का निर्वाहन करती है। परन्तु प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारत से स्त्री जाति की जो दयनीय, पाशविक एवं नारकीय स्थिति रही है उसका श्रेय मनु और कवि तुलसीदास को भी जाता है। मनु ने स्त्रियों को शिक्षा व सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया, महिला समाज की समानता और स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत जो प्रावधान किए गए हैं वे भी महिलाओं के साथ भेदभाव पूर्ण थे।[5] डॉ. राममनोहर लोहिया ने अपने सामाजिक विचार को सप्तक्रान्ति में नर-नारी के बीच समानता पर बल दिया है। स्त्रियां उनकी दृष्टि में शोषित हैं। प्राकृत भेद नहीं मिटाया जा सकता। यह भेद उन्हें अधिक आदर देकर भी नहीं मिटाया जा सकता। स्त्री को पुरुष के अर्थ पर निर्भर रहना ठीक नहीं। अर्थ के क्षेत्र का अधिकार स्त्री को मिले। वह पुरुष की दासी नहीं सखी है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसे स्थान देना चाहिए, लोहिया स्त्री के प्रति उदार दृष्टि की आशा करते है।[6]

डॉ. लोहिया ने स्त्री के शोषण के प्रति अपनी जागरूकता प्रकट करते हुए कहा-''संसार में जितने भी प्रकार के अन्याय इस पृथ्वी को विषाक्त कर रहे हैं उनमें सबसे बड़ा अन्याय नर और नारी के भेद का है। संसार की विशाल मानवता नारी की स्वतन्त्रता में बाधक रही है। पूरा संसार किसी न किसी रूप में समता का इच्छुक तो है लेकिन आधी से ज्यादा मानवता नारी की स्वतन्त्रता के प्रति उदासीन है। आज भी स्त्रियों को सामूहिक जीवन में भाग लेने का अधिकार नहीं है।''[7] डॉ. लोहिया ने भारतीय समाज में व्याप्त जातिप्रथा का विचार अपने सप्तक्रान्ति अवधारणा में समाहित किया, उनके अनुसार भारत के जिन क्षेत्रों में जाति व्यवस्था अधिक जोर पर है वहां छुआछूत भी प्रबल रूप से विद्यमान है। जो असमानता का परिणाम है। डॉ. लोहिया जाति को नष्ट करने के सम्बन्ध में आशावादी थे। उन्होंने लिखा क्या इस तरह का विद्रोह संभव है, अगर विद्वान इससे इन्कार करते हैं तो उनका यह अधिकार है परन्तु जो लोग कार्य करने में विश्वास रखते हैं वे इसकी पुष्टि करेंगे। आज के समय में सफलता की आशा और बड़ी है।[8]

जाति के विरुद्ध संघर्ष में लोहिया अम्बेडकर से भी प्रेरणा ग्रहण करते थे, उनके शब्दों में मेरी दृष्टि में अम्बेडकर भारतीय राजनीति के एक महान व्यक्तित्व है और गांधी को छोड़कर वे महानतम हिन्दुओं जितने ही महान है यह तथ्य मुझे हमेशा यह आत्म विश्वास और सांत्वना देता है कि हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था को किसी न किसी दिन नष्ट किया जा सकता है। डॉ. लोहिया ने राष्ट्र की प्रगति के लिए विभिन्न समुदायों की एकता पर जोर दिया, उन्होंने लिखा देश पर उदासी की एक काली छाया छाई हुई है क्योंकि यहां कुछ भी नया नहीं है। पंडित और जूते बनाने वाले के बीच खुली बातचीत की कोई सम्भावना नहीं है।[9] डॉ. लोहिया का तर्क था कि जाति ने लोगों की जिंदगी से रोमांच और आनन्द गायब कर दिया और इसलिए भारतीय इस धरती के सबसे उदास और सबसे गरीब लोग है। लोहिया के अनुसार, ''मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच जिससे आय की विषमता जन्म लेती है, इस देश के सामाजिक ठहराव के लिए जिम्मेदार है। जाति व्यवस्था में नवाचार और वैज्ञानिक समझ के लिए कोई स्थान नहीं है और ये दोनों ही प्रगति ही कुंजिया है (लोहिया 1964)।[10] डॉ. राममनोहर लोहिया का मानना है कि जाति पर आधारित असमानता का अन्त तभी हो सकता है जब जाति व्यवस्था को ही समाप्त कर दिया जाए, उनका मुख्य

लक्ष्य जाति का उन्मूलन या जिसके बिना आमजनों के लिए स्वराज्य अर्थहीन होता है। डॉ. लोहिया के विचार से जाति उन्मूलन के लिए शास्त्रों की सत्ता को नष्ट करना और रक्त की शुद्धता की भांति के निवारण के लिए विभिन्न जातियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। जिसका प्रभावी माध्यम अन्तर्जातीय विवाह है, जिसके द्वारा जाति और लिंग पर आधारित भेदभाव को समाप्त किया जा सकता है। जाति के विरुद्ध असली लड़ाई तभी शुरू होगी जब हरिजनों, शूद्रों, आदिवासियों और महिलाओं को प्रशासन न्यायपालिका सेना और उद्योगों में 60% आरक्षण दिया जाएगा जाति के उन्मूलन से समाज के एक बड़े वर्ग में स्वाभिमान का भाव उत्पन्न होगा और आर्थिक उन्नति से विभिन्न वर्गो के बीच अन्तर कम होंगे, इस तरह जाति और वर्ग दोनों की समस्याएं समाप्त हो जाएंगी।[11]

डॉ. रामनोहर लोहिया जातीयता तथा रंगभेद को पसंद नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने अनेक आन्दोलन चलाए और जनजाग्रति की। वह संसार में काले लोगों के साथ किए जा रहे अन्याय और अत्याचार को सम्पूर्ण मानव सभ्यता पर अमिट कलंक कहते हैं। उन्होंने अपने लन्दन प्रवास काल में काले-गोरे का भेद के दंश को सहा। इंग्लैण्ड में वे जहां कहीं भी जाते उन्हें गुलाम और जंगली कहकर आग्लबन्धु सम्बोधित करते। लोहिया ने इस भेद को मिटाने के लिए कालों को सुन्दर कहकर गोरी सभ्यता के मुकाबले काली सभ्यता की श्रेष्ठता स्थापित करने की कोशिश की। उन्होंने अंग्रेजी हटाओ, रामायण मेला के मध्यम तकनीकी जैसे कार्यक्रमों का दूरगामी प्रभाव गोरी सभ्यता की समाप्ति के लिए किया।

डॉ. राममनोहर लोहिया ने आर्थिक समानता के विचार के लिए महात्मा गांधी के सत्याग्रह-ट्रस्टीशिप आदि की अवधारणा को आधार बनाया और अपने सप्तक्रान्ति के माध्यम से व्यवहारिक धरातल पर लाने का प्रयास किया। उन्होंने अमीरी-गरीबी के भेद को मिटाने का प्रयास किया। जब वे सहरसा स्टेशन बिहार पर अपने साथी का इन्तजार कर रहे थे, उस समय आर.एम.एस. के डाकिये का थैला बिखर गया, बिखरी हुई चिट्ठियों को समेटने के लिए डॉ. लोहिया स्वयं उस डाकिए की सहायता करने लगे तो डाकिए ने कहा कि हम गरीब हैं और हमारा अपमान मत कीजिए। जिस पर लोहिया ने कहा, ''पोस्टमैन देश के प्रधानमंत्री से बड़ा होता है। यह वास्तविकता है और रहा गरीब होना यह मनुष्य की नियति है समाज का अभिशाप है। इसमें गरीब का क्या दोष है।''[12]

डॉ. राममनोहर लोहिया ने आर्थिक समानता के लिए गांधी के लघु उद्योग पर आधारित समाजवाद का समर्थन किया। उनके विचार में पूंजीवाद की बुराइयों आर्थिक असमानता को केवल कुटीर उद्योग सहकारी संस्थाओं तथा छोटी-छोटी मशीनों के द्वारा ही रोका जा सकता है। इस प्रकार निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज में गरीब स्त्रियों तथा वंचित वर्गों में चेतना भरने का कार्य डॉ. लोहिया ने किया था। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था, शोषण तथा अत्याचार सामाजिक न्याय की स्थापना में सबसे बड़ी बाधा है। सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लिए लोहिया का सप्तक्रान्ति की अवधारणा एक सशक्त माध्यम है।

संदर्भ

1. सीताराम शर्मा, 19वीं सदी के धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन, हिन्दी ग्रन्थावली, भोपाल 1997, पृ. 40
2. डॉ. चक्रधर नलिन, युगदृष्टा डॉ. राम मनोहर लोहिया, राष्ट्रीय प्रकाशन, लखनऊ 2005, पृ. 10
3. डॉ. युगेश्वर, भारत का समाजवादी आन्दोलन, यश पब्लिकेशन्स, मुम्बई 2004, पृ. 36
4. श्री ओंकार शरद, लोहिया के विचार, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद 2005, पृ. 10
5. मनोज सिन्हा : समकालीन भारतीय समाज एक परिचय, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान 2012, पृ. 226
6. डॉ. लोहिया : इतिहास चक्र, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1963, पृ. 25
7. डॉ. राम मनोहर लोहिया, कास्ट सिस्टम, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1964, पृ. 46
8. पटनायक अरुण कुमार, 2008 लोहियाज इमेनेंट क्रिटीक ऑफ माय सोसायटी खण्ड (1-4), पृ. 35
9. डॉ. नरेन्द्र मोहन भटनागर : समग्र लोहिया, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 36
10. लक्ष्मीकान्त वर्मा, समाजवादी दर्शन और लोहिया, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, लखनऊ 2005, पृ. 80
11. डॉ. लोहिया : समाजवाद के आर्थिक आधार, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद 2004, पृ. 40
12. डॉ. लोहिया : क्रान्ति के लिए संगठन, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1963, पृ. 42

डॉ. ममता यादव

एसोसिएट प्रोफेसर

राजनीति शास्त्र एवं लोक प्रशासन विभाग,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,

लखनऊ

भवभूति के नाटकों में 'कर्मफल सिद्धान्त' : एक दृष्टि

–डॉ. नीलिमा चौधरी

भारतीय दर्शन के प्रत्येक सम्प्रदाय प्रायः कर्मवाद को स्वीकार करते हैं। कर्मवाद के अनुसार प्रत्येक प्राणी को उसके द्वारा किए गए कर्मों का फल अनिवार्य रूप से भोगना ही पड़ता है, कोई भी कर्म कभी भी फल प्रदान किए बिना नष्ट नहीं होता। 'क्रियते इति कर्म' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो कुछ भी किया जाये वह कर्म है, चाहे वह कायिक हो, मानसिक हो अथवा वाचिक सभी कर्म की परिधि में परिगणनीय होते हैं। श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार प्राणी त्रिगुणात्मिका अविद्या से अवश होकर कर्म करते ही हैं बिना कर्म किए कोई भी नहीं रह सकता।[1] भवभूति के अनुसार 'कर्मफल सिद्धान्त' का स्वरूप प्रस्तुत करने के पूर्व कर्मफल सिद्धान्त को सुस्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय दर्शन के प्रत्येक सम्प्रदायों में कर्मफलवाद को मान्यता प्राप्त होने के बावजूद योग दर्शन में 'कर्मफल सिद्धान्त' का अत्यन्त स्पष्ट और विशद स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। पातञ्जल योग सूत्रों में कर्मफल सिद्धान्त का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया है, कि प्रत्येक प्राणी के द्वारा किए गए कर्मों का चित्त में एक संस्कार सा बन जाता है, जिसे 'कर्माशय' या 'कर्म संस्कार' कहा जाता है। ये कर्माशय ही फलभोग प्रदान करते हैं। कर्म दो प्रकार के होते हैं। शुभकर्म तथा अशुभ कर्म। इन्हें ही धर्म तथा अधर्म, पुण्य तथा पाप के नाम से भी अभिहित किया जाता है। ये शुभाशुभ कर्म सुख दुःख मोहात्मक फल प्रदान करते हैं। शुभाशुभ कर्मों की अनिवार्य फलप्रदता के बारे में कहा भी गया है कि ये कर्म करोड़ों कल्पों में भी फलभोग दिए बिना शान्त नहीं होते।[2] अब प्रश्न यह है कि ये शुभाशुभ कर्म और उनसे बनने वाले कर्माशय या कर्म संस्कारों का क्रम जो 'वटबीजन्याय' से अनवरत चलता रहता है उसका कारण क्या है? और उससे मुक्ति कैसे मिल सकती है? इस जिज्ञासा का समाधान योगशास्त्र में इस प्रकार किया गया है कि शुभाशुभ का मूल केन्द्र अविद्या ही है, क्योंकि अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश इन पूच क्लेशों[3] से युक्त चित्तवृत्ति वाले व्यक्ति के द्वारा किए गए कर्म ही संस्कार उत्पन्न करते हैं, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अविद्या, अहंकार, राग, द्वेष और मोह से उपरञ्जित मन से ही सारे कर्म करता है और फल भोग पाता है। पातञ्जल योग के अनुसार ये 'कर्माशय' या कर्म संस्कार क्लेशमूलक होते हैं और दृष्टजन्म (वर्तमान जन्म) तथा अदृष्टजन्म (भविष्यज्जन्म) में फल भोगने योग्य होते हैं।

अगले सूत्र में महर्षि पतंजलि ने कर्माशयों का मूल कारण पञ्च क्लेशों का होना स्पष्ट स्वीकार करते हुए बताया है कि जब तक चित्त में पञ्चक्लेशों की सत्ता है, तभी तक किए गये कर्म फलभोग के बन्धन होते हैं, अन्यथा नहीं।[4] ये कर्माशय जन्म, आयु अथवा जीवनावधि और सुख-दुःख मोहात्मक फलभोग-तीन प्रकार से फल प्रदान करते हैं। कुछ कर्माशय केवल जन्मनामक फल देते हैं। कुछ कर्माशय जन्म और आयु दोनों का निर्धारण करते हैं और कुछ कर्म संस्कार जन्म, आयु तथा फलभोग तीनों का निश्चय करते हैं। इसी आधार पर इन्हें क्रमशः एक विपाक, द्विविपाक तथा त्रिविपाक कर्माशयों की भी संज्ञा दी जाती है। ये सभी कर्माशय पञ्चक्लेशों की चित्तवृत्ति में विद्यमानतः रहने तक ही फल देते हैं अन्यथा नहीं। जैसे जौ के दाने तुषा (भूसी) से ढके रहने पर ही अंकुरित होने की क्षमता रखते हैं और तुषा रहित होने पर उनकी अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है, ठीक इसी तरह कर्माशय पञ्चक्लेशों के होने तक ही फल देने की सामर्थ्य रखते हैं। निरासक्त अथवा क्लेश शून्य मन से कर्म किए जाने पर फल भोग नहीं दे सकते, इसीलिए गीता में 'निष्काम' अथवा निरासक्त होकर कर्म करने पर बल दिया गया है। यही कर्मयोग बन जाता है।[5] पातञ्जल योग सूत्र की व्याख्या करते समय व्यासमुनि ने भाष्य में उल्लेख किया है कि प्राणी के द्वारा जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त किए गए शुभाशुभ कर्मों का एक गठ्ठर जैसा चित्त में बन जाता है, जो मत्स्य ग्रन्थि सदृश अत्यन्त सूक्ष्म रूप में बना होता है। ये ही कर्म संस्कार या कर्माशय कहलाता है। जो मृत्यु के समय खुलकर अगले जन्म की योनि, आयुसीमा और सुखदुखादि की न्यूनाधिक्य भाव निश्चय करता है। वर्तमान जन्म और भविष्य जन्मों में फल भोगने की स्थिति को ध्यान में रखकर कर्माशयों को तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है-प्रारब्ध, संचित तथा क्रियमाण कर्म। जो कर्म किए गए हैं और जिन कर्मों का फल प्राप्त नहीं हुआ है वे संचित कर्म हैं। वे कर्म जो किए जा रहे हैं, वे क्रियमाण कर्म कहलाते हैं और जो कर्म पूर्वजन्मों में किए

गए हैं तथा जिनका फलभोग नहीं हो सका है, वे प्रारब्ध कर्म कहे जाते हैं। प्रारब्ध कर्मों का भाग्य, दैव, विधि आदि भी कहा जाता है।

गीताकार ने तत्त्वज्ञान से अविद्यानाशपूर्वक कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त होने का वर्णन किया है। गीता के अनुसार 'ज्ञानाग्नि सारे कर्मों को भस्म कर देती है।'[6] यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि ज्ञानाग्नि केवल संचित तथा क्रियमाण कर्मों को ही दग्ध कर सकती है, प्रारब्ध कर्मों को नहीं, क्योंकि जो कर्म अपना फल देना शुरू कर चुके हैं उनकी फल प्रदता को तत्त्व ज्ञान रूपी अग्नि भी समाप्त नहीं कर सकती। यही कारण है कि तत्त्व साक्षात्कार होने के बाद तत्त्वज्ञानी पुरुषों को भी प्रारब्ध फल भोग होने पर शरीर धारण करना पड़ता है। उनकी यह दशा 'जीवन्मुक्ति' अवस्था कहलाती है। प्रारब्ध भोग समाप्त होने पर 'विदेहमुक्ति' प्राप्त होती है। इस प्रकार पातञ्जल योगसूत्र में कर्मफल परम्परा का नाश एकमात्र तत्त्वज्ञान से ही माना गया है, क्योंकि अज्ञान या अविद्या के द्वारा संचालित कर्म-फल-परम्परा तो केवल ज्ञान से ही नष्ट हो सकती है। ज्ञानप्राप्ति से कर्मफल परम्परा के नष्ट होते ही प्राणी आवागमन चक्र से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार कर्म-फल सिद्धान्त तथा पुनर्जन्मवाद दोनों एक तथ्य को सुस्पष्ट करते हैं, क्योंकि कर्मफल भोग के लिए बारम्बार शरीर धारण करना पड़ता है। कर्मफल शृंखला का नाश होते ही बारम्बार संसार में आवागमन होने की समाप्ति हो जाती है और प्राणी मुक्त हो जाता है। संक्षेप में कर्मफल सिद्धान्त का स्वरूप प्रतिपादन करने के पश्चात् अब विवेचन का विषय महाकवि भवभूति के नाटकों में कर्मफल सिद्धान्त प्रतिपादन का विचार किया जाना अपेक्षित है। भवभूति शुभाशुभ कर्म तथा कर्मफल सिद्धान्त के समर्थक जान पड़ते हैं।

'मालतीमाधवम्' में भी भवभूति ने मालती से कहलवाया है कि मन्दभाग्य के लिए अपने दुःखों से छुटकारा पाने के लिए मरना भी इतना आसान नहीं होता, क्योंकि कर्म के प्रभाववश वह अपने कृत्य-अकृत्य को भोग रहा होता है।[7] महाकवि कर्म तथा तज्जन्य फल के दार्शनिक सिद्धान्त को मानते हैं। उनके विचार से भवितव्यता या होनी बड़ी बलवान होती है, जिसे किसी भी प्रकार से नष्ट या परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उनकी इन मान्यताओं का मूल आधार प्राणी के द्वारा कृत कर्म ही हैं। भवभूति ने अपने नाटकों में प्रारब्ध कर्मों के विपाकाभिमुख होने की स्थिति को दुनिवार्य बताया है। उनके अनुसार प्राणी भवितव्यता से नियन्त्रित होकर शुभाशुभ कर्मों को करने में प्रवृत्त होता है।[8] उन्होंने 'मालतीमाधवम्' में इसी तथ्य को अभिव्यक्त करते हुए मकरन्द के मुख से कहलवाया है कि यह मेरा चित्त सन्ताप परम्परा रूप महाविपत्ति के लिए किसी कारण के अपेक्षा न करता हुआ उस (ललना) में आसक्त हो गया है। सबको पीड़ित करने वाली भगवती भवितव्यता (नियति) ही प्रायः प्राणी का शुभाशुभ का विधान करती है।[9] महाकवि भवभूति के अनुसार संसार में सभी प्राणियों को पापकर्म करने से उस पाप का दुखद फल भोगना ही पड़ता है। मालती का सान्त्वना देते हुए माधव कहता है-हे महाभागे! डरो मत। मृत्यु के समय में अशंका छोड़कर किये गए प्रलाप के सुनने से निष्प्रतिबन्ध रूप से अपने प्रेम को प्रकाशित करने वाला वह यह तुम्हारा प्रणयी सामने ही है। हे सुन्दरी! कम्प का परित्याग करो। इस समय यहाँ पर यह पापी विपरीत परिणाम वाले पाप के भंयकर फल का अनुभव करेगा।[10]

नियति मनुष्यों के प्रयत्नों के विपरीत शुभ तथा अशुभ का विधान करती है। किसी व्यक्ति विशेष के प्रति अतिशय प्रगाढ़ प्रेम भी नियति का ही परिणाम होता है *सन्तापसन्तति महाव्यसनाय तस्या-मासक्तमेतदनपेक्षित हेतु चेतः। प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव।।*[11] पूर्वजन्मार्जित शुभाशुभ कर्मों की फलोन्मुखता 'प्रारब्ध' कहलाता है, जिसकी फलप्रदता का नाश तत्त्वज्ञान से भी सम्भव नहीं हो पाता और यह प्रारब्ध फलभोग कब कहाँ और किस प्रकार प्राप्त होता है? इसका अनुमान कर पाना असम्भव होता है। भवभूति ने 'मालती माधवम्' में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है कि भाग्य पर विश्वास तथा पाप करने वाले को उसका परिणाम भी भोगना पड़ता है, यह मत दृढ़ शब्दों में अभिव्यक्त हो रहा है। भाग्य का दयाशून्य यह कौन सा अपराध है? फूलों के समान कोमल मालती की मौत सामने है, यह भाग्य या क्रूर नियति का कोई दैव प्रक्रम है। माधव अपने कथनों से मालती को सान्त्वना तो देता है; परन्तु पाप करने वाले को उसका परिणाम भी भोगना होता है। यह मत भी दृढ़ शब्दों में व्यञ्जित कर रहा है। कृत्य कर्म के द्वारा ही पुनर्जन्म व मोक्ष की प्राप्ति होती है। भवभूति ने यह भी स्वीकारा है कि सत्पुरुषों के सम्पर्क से होने वाले मरण भी तरने वाले होते हैं। शम्बूक शूद्र मुनि राम द्वारा मारे जाने पर दिव्य रूप में राम से कहता है, यमराज से भी अभय देने वाले आपके दण्डधारी होने पर यह ब्राह्मण पुत्र जीवित हो गया है। यह मेरी दिव्य रूप प्राप्ति हुई है, इसलिए यह शम्बूक नामधारी शूद्रमुनि शिर से आपके चरणों पर प्रणत है। सत्पुरुषों के सम्पर्क से मरण भी मोक्षदायी होता है।[12] इससे प्रतीत होता है कि सत्पुरुषों द्वारा यदि मृत्यु भी हो तो मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इससे दो तथ्य सामने आते हैं, कि सत्कर्म से शुभफल की प्राप्ति होती है, चाहे वह शूद्र ही क्यों न हो, शम्बूक को तप का शुभ फल ही मिला।

राम ने ब्राह्मण पुत्र को पुनःजीवित कर दिया। इससे स्पष्ट होता है कि भवभूति पुनर्जन्म पर विश्वास करते थे। वेदों तथा स्मृतियों में नितान्त निष्ठा रखने वाले भवभूति

भारतीय दर्शन के कर्म एवं पुनर्जन्मवाद सिद्धान्त में दृढ़ आस्था रखते हैं। 'उत्तरराम-चरितम्' के द्वितीय अशंक के निम्नलिखित श्लोक में कहा गया है कि शम्बूकवध के पश्चात् उत्पन्न दिव्य पुरुष को राम उसकी तपस्या के परिणाम स्वरूप आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि हे दिव्य रूप धारी शम्बूक! अब तुम उग्र तपस्या का फल भोगो।[13] पुनः यही उल्लिखित एक श्लोक से यह भी स्पष्ट होता है कि कठोर तपस्या, रूप, पुण्य कर्म का फल वैराज नामक तैजस लोक की प्राप्ति है। जहाँ पहुँचकर प्राणी आनन्द आमोद का अनुभव करता है।[14] यहाँ भाव यह है कि राम ने प्रसन्न होकर शम्बूक के पुण्यों के रूप में स्वर्ग लोक तथा वैराज नाम के सदा प्रकाशमान लोक प्रदान कर दिये जो कल्याणकारी हैं। उल्लेखनीय है कि इस श्लोक से भवभूति का स्वर्ग-नरक तथा परलोक पर विश्वास भी अभिव्यक्त होता है। स्वर्ग तथा नरक मानने से यह स्पष्ट होता है कि शुभ कर्मों से पुण्य फल तथा अशुभ कर्मों से पाप फल की प्राप्ति होती है। इस लोक के अतिरिक्त परलोक में कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इस मान्यता पर भी प्रकाश पड़ता है।

अधोलोक तथा नरकलोक भी होता है। अपने-अपने कर्मों के अनुसार यह प्राप्त होता है। इस प्रकार का कथन भवभूति ने एक वाक्य में इङ्गित किया है।[15] अर्थात् ऋषिजन ऐसा मानते हैं कि जो लोग आत्महत्या करने वाले होते हैं, उन्हें मरने पर अन्धतामिस्त्र अर्थात् गाढ़ अन्धकार से युक्त तथा असूर्यलोक अर्थात् सूर्य के प्रकाश से रहित लोक मिलते है।[16] अन्धतामिस्त्र से अभिप्राय है, अन्धा बना देने वाले अन्धकारमय तथा असूर्या का तात्पर्य है, सूर्य के प्रकाश से रहित लोक। भवभूति का यह कथन श्रुतियों में आए इस तथ्य का ही प्रतिपादन करता है, जिसके अनुसार उन्होंने अपनी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उन दो उद्धरणों को तो लिया ही है, साथ ही अपने स्वर्ग-नरक तथा लोक-परलोक के प्रति विश्वास को भी प्रकाशित किया है। यत्रानन्दाश्च मोदाश्च ---- इत्यादि पद्य में जिन लोकों में आनन्द (आध्यात्मिक सुख) आमोद दिव्य विषयों का सुख तथा जहाँ पवित्र सम्पत्तियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व) हैं। वे ज्योतिर्मय मङ्गलकारी वैराज[17] नामक प्रसिद्ध लोक अर्थात् ब्रह्मलोक तुम्हें प्राप्त हों और तुम वहाँ निवास करो। राम द्वारा दिये गए इस आशीर्वाद में 'यत्रानन्दाश्च' का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। निष्कर्षत : यह स्वीकार किया जा सकता है कि महाकवि भवभूति ने अपने नाट्य साहित्य में कर्म-सिद्धान्त का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट स्वीकृत किया है कि प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों के अनुसार ही उसके फल का भागी होता है। इसलिए मनुष्य को श्रेष्ठ फल हेतु उत्तम कर्म ही करने चाहिए।

संदर्भ

1. गीता नहि कश्चित क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्।
   कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। गीता 3/5
2. अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम् नाभुड्.क्तं
   क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि।। महाभारत
3. अविद्या स्मिता रागद्वेषभिनिवेशाः पंचक्लेशाः।। योगसूत्र
4. क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टा दृष्टजन्मवेदनीयः। यो. सू.
5. मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
   निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्ध्यस्व विगतज्वरः।। गीता 3/30
   तथा
   न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
   इति मां योभिजानाति कर्मभिर्नस स बध्यते।। गीता 4/14
6. यस्य सर्वे समारम्भाः काम-सङ्कल्पवर्जिताः।
   ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।। गीता 4/19
   तथा
   यथैधांसि समिद्धोऽग्नि-भस्मसात्कुरुतेर्जुन।
   ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। गीता 4/37
7. मरणमपि मे मन्दभागधेयाया अभिमतमति दुर्लभं भवति।
   मा. मा. 6/7 का उत्तरांश
8. को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तो
   र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे।। उ.च. 7/4 तथा मा.मा. 10/13
9. प्रायः शुभं च विद्धात्यशुभं च जन्तोः
   सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव।। मा. मा. 1/24
10. मरण समये त्यक्ताशङ्कं प्रलापनिरर्गल
    प्रकटित निजस्नेहः सोयं सखा पुर एव ते।
    सुतनु! विसृजोत्कम्पं संप्रत्यसाविह पाप्मनः
    फलमनुभवत्युग्रं पापः प्रतीपविपाकिनः।। मा. मा. 5/26
11. द्रष्टव्य 'मालतीमाधवम्' 1/24
12. दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे
    संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।
    शम्बूक एष शिरसा चरणो नतस्ते
    सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति।। उ. च. 2/11
13. तदनुभूयतां उग्रस्यतपस्या परिपाकः। द्रष्टव्य उ. च. द्वितीयो ङ्कः, पृ. सं. 178
14. यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च संपदः।
    वैराज नाम ते लोकास्तैजसा सन्तु ते शिवाः।। -उ.च. 2/12
15. नाद्यापि मम दग्धदेहः पतति। अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोका-
    स्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यते।
    उ. च. 4/3 का उत्तरार्ध, पृ. सं. 330
16. असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
    तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः।।
    यजु./ईशा./40/3
17. वैराजाः - ये ब्रह्मलोक अथवा सत्यलोक भी कहलाते हैं, जिसे प्राप्त करने वालों का पुनर्जन्म नहीं होता है।
    द्र. उ. च., पृ. सं. 109

डॉ. नीलिमा चौधरी

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

ज्वाला देवी विद्या मन्दिर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर

'आधा गाँव' विभाजन की त्रासदी और 'गंगौली' गाँव का दर्द

–डॉ. प्रकृति राय

'आधा गाँव' राही मासूम रज़ा द्वारा लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जो अपने अंदर आत्मकथात्मक स्वरूप को समेटे हुए हैं। जिसका नायक कोई व्यक्ति न होकर उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले का 'गंगौली' गाँव है। शुभाशिनी अली लिखती हैं ''आधुनिक हिन्दी साहित्य में आधा गाँव का अद्वितीय स्थान है....।''[1] यह कहानी किसी विशेष व्यक्ति या धर्म की नहीं है बल्कि गंगौली गाँव के 15 वर्ष के उस समय की है, जिसने कितने जवानों को बूढ़ा होते देखा, बच्चों को जवान होते देखा, जिस मोहर्रम पर 'गंगौली' गाँव के लोगों का उत्साह अपने चरम पर होता था उपन्यास के अन्त तक आते-आते उसी मोहर्रम पर ढंग से मातमपुर्सी करने वाला भी कोई नहीं रह जाता। राही मासूम रजा लिखते हैं ''यह गंगौली से गुजरकर जाने वाले समय की कहानी है। कई बूढ़े मर गए, कई जवान बूढ़े हो गए, कई बच्चे जवान हो गए और कई बच्चे पैदा हो गए। यह उम्रों की इस हेर-फेर में फंसे हुए सपनों और हौसलों की कहानी है। यह कहानी है उन खंडहरों की जहाँ कभी मकान थे और यह कहानी है उन मकानों की जो खंडहरों पर बनाए गए हैं।''[2]

यह उपन्यास भारतीय सामासिक संस्कृति का एक उदाहरण है, विभिन्न धर्मों के लोग, धर्मों के अंदर विभिन्न जातियों के लोग, भाषा का विभाजन, बोलियों का विभाजन परंतु इन विभिन्नताओं के बावजूद इनको एकसूत्र में पिरोने वाला जो एकमात्र तत्व है वह है भारतीयता, जो सबको जोड़ती है। यह उपन्यास अपने अंदर गंगा-जमुनी तहज़ीब को समेट हुए है, जहाँ हिन्दू-मुसलमानों के सुख-दुःख साझा हुआ करते थे, जो एक-दूसरे के त्योहारों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे, कंधे से कंधा मिलाकर चलने की संस्कृति थी। ताजिया निकलता तो उसके सामने चलने वालों में हिन्दुओं की एक लम्बी कतार होती, कब्रिस्तान में मुसलमानों के साथ-साथ हिन्दुओं की भी मन्नत की चादर चढ़ी होती। सम्पूर्ण उपन्यास 'गंगौली' की कथा मुस्लिम बस्ती (उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी) से सम्बद्ध है जिसमें कहीं-कहीं हिन्दू पात्रों का प्रवेश भी हो जाता है। राही मासूम रज़ा यह स्वीकार करते हैं कि शायद यह पहला उपन्यास है जिसमें शिया मुसलमानों तथा सम्बद्ध लोगों का ग्रामीण जीवन अपने समग्र यथार्थ में पूरी तीव्रता के साथ सामने आता है और यह कथन समीचीन भी प्रतीत होता है क्योंकि जितनी गहराई से मुस्लिम मानसिकता और साम्प्रदायिकता का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है उतना विभाजन पर आधारित अन्य उपन्यासों में देखने को नहीं मिलता है और शायद यही एक तत्त्व है जो इस उपन्यास को कालजयी भी बनाता है।

'आधा गाँव' में उस आधे गाँव की कहानी है जिसका सम्बन्ध लेखक के साथ है और पूरा गाँव शिया और सुन्नी मुसलमानों, सैयदों, जुलाहों, राकियो, जमींदारों, आसामियों, छूतों-अछूतों में बंटा हुआ है। इस उपन्यास में कई हिस्से हैं प्रारम्भ में गाँव की विभिन्न परम्पराओं, संस्कृतियों का चित्रण किया गया है जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है लगभग तीन-चौथाई हिस्से के बाद विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार होने लगती है और गंगौली के लोगों के मन में विभिन्न प्रकार की शंकाएं और डर अपना स्थान बनाने लगते हैं। जिस गाँव में मोहर्रम के अवसर पर ताज़िया उठाने वालों में मुसलमानों के साथ हिन्दू भी हुआ करते थे, मुस्लिमों की पीर-फकीरों की मजार और हिन्दुओं के मंदिरों के समक्ष दोनों की बराबर आस्था होती थी। जहाँ पीर-फकीरों की मजार पर हिन्दू आस्था के साथ चादर चढ़ाता था तो मंदिरों के लिए जमीन देने में मुस्लिम जमींदार सबसे आगे होते थे। वहाँ अलगाववादी तत्वों द्वारा देश-विभाजन की भूमिका तैयार करना गंगौली के लोगों के लिए अप्रत्याशित था।

'गंगौली' का जो कम पढ़ा-लिखा मुसलमान है वह यह समझने में असमर्थ है कि देश विभाजन के बाद ऐसा क्या हो जाएगा कि एक ही गाँव में एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहने वाले हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाएंगे। अलीगढ़ से आए हुए कुछ पढ़े-लिखे युवक कम्मों को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि विभाजन के बाद मुसलमान हिन्दुस्तान में अछूत होकर रह जाएंगे और हिन्दू-मुसलमानों के दुश्मन बन जाएंगे। वह कहता है-''हिन्दुस्तान के आजाद होने के बाद इ गयवा अहीर, इ छिकुरिया या लखना चमार या इ हरिया बढ़ई हमरे दुश्मन काहें को हो जइहें,

यानी बिना वजहे?''[3] जिस गंगौली में हिन्दू-मुसलमानों की मिली-जुली संस्कृति है, मुसलमानों के बच्चे हिन्दू बुजुर्गों की गोद में खेलते हैं और मुल्ला-फकीर हिन्दू-मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं करते। एक-दूसरे की बहन-बेटियों को बराबर का सम्मान दिया जाता है, वहाँ यह कैसे सम्भव है कि जिसे अपनी बहन या बेटी माना गया उसे घर से उठवा लिया जाएगा। कम्मो के प्रश्न पर एक हिन्दू जवाब देता है-''तनी सोची कि हमनी के जीयत कोउ मियाँ लोगन की बहन-मतारी की तरफ देख सकेला''[4] फुन्नन मियाँ की बेटी की मृत्यु के बाद जब कोई मुसलमान उसे कब्र में उतारने को तैयार नहीं होता तो ठाकुर पृथ्वीपाल, झिंगुरिया और कुंवरपाल सिंह का पूरा परिवार उनके साथ हो जाता है 'रजिया का जनाजा निकला तो ताबूत फुन्नन मियाँ ठाकुर पृथ्वीपाल सिंह झिंगुरिया और अनवारुल हसन के कंधों पर था और ठाकुर कुंवरपाल सिंह का सारा परिवार जनाजे के साथ।'[5]

गाँव के इस सहज माहौल को असहज बनाने के लिए मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता सक्रिय हैं। पाकिस्तान बनने के बाद मुसलमानों की जमींदारी चली जाएगी, भारत में जो आठ करोड़ मुसलमान बच जाएंगे उनके साथ अछूतों जैसा व्यवहार किया जाएगा, इसलिए उन्हें लीग को ही वोट देना चाहिए, उनके मन में हिन्दुओं को लेकर अनेक प्रकार की शंकाएं पैदा की जा रही हैं लेकिन फिर भी ग्रामीण मुसलमान यह नहीं समझ पा रहा है कि भारत विभाजन और हिन्दुस्तान-पाकिस्तान नामक अलग-अलग देशों के निर्माण की आवश्यकता ही क्या है? हाजी साहब कहते हैं-''हम तो अनपढ़ गँवार हैं। बाकी हमरे ख्याल में निमाज खातिर पाकिस्तान-आकिस्तान की तनिको जरूरत ना है। निमाज के वास्ते खाली ईमान की जरूरत है।''[6]

गाँव के हिन्दू और मुसलमान साम्प्रदायिकता का जहर घोलने वाली राजनीतिक गतिविधियों से बेखबर हैं। लीग के भेजे हुए आदमी जब देश विभाजन के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत करते हैं और यह बताते हैं कि पूरे देश में मुसलमानों की जिन्दगी और मौत की लड़ाई छिड़ी हुई है। उन्हें एक ऐसी जगह की आवश्यकता है जहाँ उन्हें सम्मान प्राप्त हो सके तो कुछ मुसलमान लीग को वोट देने के लिए तैयार हो जाते हैं लेकिन उन्हीं में से कुछ सोचते हैं ''मुसलमानों को एकदम पनाहगार की जरूरत क्यों आ पड़ी है और अंग्रेजों का वह साया कहां है जिसकी बात इन लड़कों ने धूम-धाम से की थी। गंगौली में तो अब तक देखा नहीं गया था और जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे, तब आखिर हिन्दुओं ने मुसलमानों को क्यों नहीं मार डाला और बुनियादी सवाल यह था कि जिन्दगी-मौत खुदा के हाथ में है या अंग्रेजों और जिन्ना के हाथ में है।''[7] गंगौली के लोगों को अपने पुरखों की कब्र, अपनी जमीन, खेती-बाड़ी, घर-आंगन सब से प्रेम है, फुन्नन मियां कहते हैं ''कहीं इस्लामू है कि हुकूमते बन जैय हैं। ऐ भाई! बाप-दादा की कबुर हियां है, चौक इमामबाड़ी हियां है खेती-बाड़ी हियां है। हम कौनो बुरबक हैं कि तोरे पाकिस्तान जिन्दाबाद के नारे में फंस जाएं।''[8] मौलवी बेदार को इस पाकिस्तान नाम के देश पर ही सन्देह है, उन्हें सन्देह है जिन्ना पर जिसने पाकिस्तान की बात निकाली है, उन्हें डर है कि कहीं कलकत्ता और छपरा में होने वाला दंगा गाजीपुर तक ना पहुंच जाय ''बाकी ई पाकिस्तान में कौनो-ना-कौनो गड़बड़ जरूर है। जेह दिन से ई जिन्नवा मलउन पाकिस्तान की बात निकालिस है, तेही दिन से माथा ठनक रहा। अब देख ल्यो। कलकत्ते में बलवा भया। छपरे में भया। दू-चार दिन में गाजीपुर में हो जय हें।''[9]

एक तरफ मुसलमानों को भड़काने का प्रयास मुस्लिम लीग द्वारा किया जा रहा था तो दूसरी तरफ हिन्दुओं को भड़काने वाले अलगाववादी तत्व भी सक्रिय थे। उन्हें मुगल आक्रमणकारियों का स्मरण कराया जा रहा था कि किस तरह मुगलों ने भारत में आने के बाद यहाँ की संस्कृति और परम्परा को तहस-नहस कर दिया, मंदिरों को गिराकर उसके स्थान पर मस्जिदें बना दी। बारिखपुर में हिन्दुओं के मन में नफरत भरने का कार्य स्वामी जी कर रहे होते हैं तो छिकुरिया को भी मुसलमानों के खिलाफ भड़काने का प्रयास किया जाता है जबकि उसका मन यह मानने को कतई तैयार नहीं है कि जिन मियाँ लोगों ने मठ के लिए पाँच बीघे जमीन दान कर दी वे मंदिर तोड़ कैसे सकते हैं? धीरे-धीरे साम्प्रदायिक शक्तियां हावी होती हैं और ना चाहते हुए भी हिन्दू-मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक दंगे भड़क जाते हैं और गांव का हिन्दू यह समझने में असमर्थ था कि जो अपराध बाहर के मुसलमान कर रहे हैं उसकी सजा गांव के मुसलमानों को देने की क्या आवश्यकता है ''कई स्वामियों के दौरा करने के बाद भी उनकी समझ में नहीं आई कि अगर गुनाह कलकत्ता के मुसलमानों ने किया है, तो बारिखपुर के बफाती, अलावपुर के घुरउ, हुडरही के घसीटा को, यानी अपने मुसलमानों को सजा क्यों दी जाय उनकी समझ में यह भी नहीं आ रहा था कि जिन मुसलमानों के साथ वह सदियों से रहते चले आ रहे हैं उनके घरों में आग क्यों और कैसे लगा दी जाय।''[10]

आम हिन्दू-मुसलमानों को आपस में लड़ाकर एक विशेष राजनीतिक वर्ग अपनी रोटियाँ सेंककर अपनी स्वार्थ की पूर्ति कर रहा था। 'गंगौली' के लोगों के लिए हिन्दुस्तान-पाकिस्तान से बढ़कर 'गंगौली' था तन्नू कहता है-''मैं मुसलमान हूँ। लेकिन मुझे इस गाँव से मुहब्बत है, क्योंकि मैं खुद यह गाँव हूँ। मैं नील के इस गोदाम, इस तालाब और इन कच्चे रास्तों से प्यार करता हूँ क्योंकि ये मेरे ही मुख्तलिफ रूप हैं। मैदाने-ए-जंग में जब मौत बहुत करीब

आ जाती थी तो मुझे अल्लाह जरूर याद आता था, लेकिन मक्कर-मुअज्जमा या कर्बला-ए-मुअल्ला की जगह मुझे गंगौली याद आती थी।''[11]'गंगौली' के लोग इसी बात से परेशान हैं कि आखिर क्या आवश्यकता थी धर्म के नाम पर देश को बाँटने की और इस बंटवारे के फलस्वरूप जो मारकाट हो रही है वह क्यों हो रही है आखिर इससे फायदा किसका होना है? परशुराम से जब फुन्नन मियाँ पूछते हैं कि ''सुन रहे की बंगाल, बिहार, पंजाब अउर कानी कहाँ-कहाँ मार हिन्दू- मुसलमान में मार-कटाई हो रही है। तैं त गाँधी पार्टी का है। कउनो दिन उनसे पूछ, की ई सब का हो रहा?''[12] तो परशुराम इसका कोई उत्तर नहीं दे पाता। गांव का हर व्यक्ति कहीं न कहीं भीतर से डरा हुआ है कि आखिर देश के विभाजन के बाद क्या होने वाला है? गंगौली का मुसलमान असमंजस में पड़ा हुआ है कि हिन्दुओं की मंशा क्या है? पाकिस्तान के बिना बने ही अगर देश का यह हाल है तो पाकिस्तान बन जाने के बाद क्या दशा होगी?

फुन्नन मियां मिगदाद से कहते हैं ''अउर कुछ समझो में ना आ रहा कि आखिर किया क्या जाय। पाकिस्तान ना बने पर हाल है; अउर जो ई बहनचोद कहीं बन गया, तो हम समझ रहे कि गंगौलियो में खून-खराबा हो जयूयहें।''[13] साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा फैलाई जा रही अफवाहों के फलस्वरूप आखिर गांव में भी दंगे भड़क जाते हैं, हिन्दू मुसलमानों के खून के प्यासे हो जाते हैं लेकिन फिर भी गांव में कुछ ऐसे लोग हैं जो धर्म के बन्धन से परे होकर मानव धर्म को सर्वोच्च स्थान देते हैं। जहाँ एक तरफ बारिखपुर के मुसलमानों को बचाने के लिए ठाकुर जयपाल सिंह खड़े होते हैं वहीं फुन्नन मियां सैय्यदों के खिलाफ होकर ठाकुरों का साथ देते हैं, उनके लिए धर्म से ज्यादा पुराने सम्बन्ध मायने रखते हैं।

मुसलमानों पर हमला करने के लिए इकट्ठी हुई भीड़ का सामना जब ठाकुर जयपाल सिंह से होता है तो वह यह नहीं समझ पाती कि आखिर ठाकुर साहब मुसलमानों को बचाना क्यों चाहते हैं, भीड़ उनपे मुसलमान होने का आरोप लगाती है तो ठाकुर साहब कहते हैं ''खैरियत यही में बाय कि चल जा लोग! का नवाखाली मां हई, बफतिया अउरी हई, दिलदरवा अउरी हई, कलुआ हिन्दू इसत्रियन के खराब किहले बाये ! बड़ बहादुर हव्वा लोग अउर हिन्दू मरियादा के ढेर खयाल बाये तुहरे लोगन के त कलकत्ते-लाहौर जाये के चाही। हियां का धरल बाये, की चढ़ आइल बाड़ा तूं लोग।''[14]

गंगौली के मुसलमानों (जिनमें ज्यादातर जमींदार थे) के मन में मुस्लिम लीग द्वारा यह डर पैदा किया गया कि देश के विभाजन के बाद उनकी जमींदारी चली जाएगी क्योंकि कांग्रेस जमींदारी प्रथा तोड़ देगी इसलिए उन्हें लीग को वोट देना चाहिए। तमाम राजनीतिक कुचक्रों के फलस्वरूप देश का विभाजन हो जाता है, राजनीतिक पार्टियों की स्वार्थ सिद्धि हो जाती है। गंगौली के लोगों का दुःस्वप्न सच हो जाता है जिसकी कल्पना कभी तन्नू ने की थी ''नफरत और खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज मुबारक नहीं हो सकती। पाकिस्तान बन जाने के बाद भी गंगौली यहीं हिन्दुस्तान में रहेगा और गंगौली फिर गंगौली है। तब अगर गयवा अहीर, लखवा चमार और छिकुरिया भर ने आपसे पूछा कि उन्होंने तो कभी आपसे दुश्मनी नहीं की थी, फिर आपने पाकिस्तान को वोट क्यों दिया, तो आप क्या जवाब देंगे।''[15]

भारत के विभाजन की सोची-समझी चाल सफल हुई। उधर पाकिस्तान में हिन्दुओं के साथ मार-काट की जा रही थी तो यहां मुसलमानों की जान मुश्किल में थी। शहर के शहर धांय-धांय जल रहे थे। किसी की सुधि लेने वाला कोई नही था ''चारों तरफ इतने बड़े-बड़े शहर धांय-धांय जल रहे थे कि उस आग में बच्छन और सगीर फातमा एक तिनके की तरह पड़ी और भक से उड़ गई। दिल्ली, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता, ढाका, जलियावाला बाग, हाल बाजार, उर्दू बाजार। अनारकली का नाम सगीर फातमा था या रतनी कौर या नलिनी बनर्जी था। अनारकली की लाश खेत में थी, सड़क पर थी और उसके नंगे बदन पर नाखूनों और दांतों के निशान थे। और लोगों ने खून से भीगे हुए गरारों, सलवारों और साड़ियों के टुकड़ों को यादगार के तौर पर हाफ्जे के संदूकों में सैंत-सैंतकर रख लिया था। मदीना दिल्ली था। मदीना लाहौर था। मदीना पाकिस्तान था और मदीना लूट रहा था।''[16]

राही मासूम रजा 'आधा गाँव' के माध्यम से उस 'गंगौली' का दर्द बयाँ करते हैं जिसके अपने इस विभाजन की वजह से बिछड़ गए। राजनेताओं द्वारा स्वार्थपूर्ति हेतु विभाजन का जो खेल खेला गया उसने उनके सहज जीवन में उथल-पुथल मचा दी, बच्चे अपने बुजुर्गों को यहाँ छोड़कर पाकिस्तान चले गए और एक बार जो पाकिस्तान गए उन्होंने लौटकर कभी अपने परिवार की खोज खबर नहीं ली। राजनेताओं ने इन मासूम, भोले-भाले मुसलमानों की मासूमियत का फायदा उठाकर इनके साथ छल किया। अब्बू मियाँ कहते हैं ''पाकिस्तान बनने के वास्ते वोट दें हिआँ के मुसलमान, अउर जब पाकिस्तान बने तब जिनवा कहे कि हिआँ के मुसलमान जायें चूल्हे-भाड़ में।''[17]

विभाजन के बाद गंगौली की तस्वीर ही बदल जाती है, अब पहले वाला जोश और उल्लास कहीं देखने को नहीं मिलता जो गंगौली की पहचान हुआ करता था। अब्बू मियाँ जैसे कई, ऐसे मुसलमान 'गंगौली' में हैं जिन्हें अपने गाँव से अत्यधिक प्रेम है जो तमाम प्रलोभन दिए जाने के बाद भी पाकिस्तान नहीं जाते क्योंकि उन्हें प्रेम है गंगौली

से, गंगौली के लोगों से और अपने इस देश 'भारत' से।

संदर्भ

1. "Aadha Gaon occupies a unique place in modern Hindi literature. Its language, idiom, humour, and its insights into the lives of a small group of Shia Muslim zamindar families and their relationships with other people of different castes and religions in a tiny village, Gangauli, in what is now the Ghazipur district of eastern Uttar Pradesh, contribute to its significant status in the literature of Hindi-speaking rural India."
   Decline of a Social Order : The End of Zamindari Rule in Northern India: IN FOCUS, Shubhashini Ali, पृ. 28
2. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-वी, नेता सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, चौबिसवाँ संस्करण, 2021, पृ. 11
3. उपरोक्त, पृ. 240
4. उपरोक्त, पृ. 240
5. उपरोक्त, पृ. 166
6. उपरोक्त, पृ. 242
7. उपरोक्त, पृ. 250
8. उपरोक्त, पृ. 155
9. उपरोक्त, पृ. 267
10. उपरोक्त, पृ. 275-76
11. उपरोक्त, पृ. 250
12. उपरोक्त, पृ. 269
13. उपरोक्त, पृ. 270
14. उपरोक्त, पृ. 275
15. उपरोक्त, पृ. 251
16. उपरोक्त, पृ.282-83
17. उपरोक्त, पृ. 284

डॉ. प्रकृति राय
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, सिवान
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

बिदेसिया में चित्रित स्त्री की पीड़ा

–डॉ. राम किशोर यादव

शोध-सार : 'बिदेसिया' भिखारी ठाकुर द्वारा रचित 'लोकनाट्य' है। इस नाटक में संवेदना के विविध रूप विद्यमान हैं। समाज में घटित हो रहे यथार्थ को भिखारी ठाकुर ने हमारे सामने लाया है। यह जीवन के हर पक्ष पर दृष्टि डालती है। समाज में व्याप्त वर्गीय संरचना, समाज में नारी की स्थिति एवं उनके जीवन संघर्ष को मुखरित करना ही भिखारी ठाकुर का लक्ष्य है। भिखारी ठाकुर ने नृत्य, गीत एवं अभिनय के साथ इस पीड़ा की प्रस्तुति की है जो जीवन को प्रभावित करती है। जीवन में सुख, जीवन में उमंग, जीवन में चुनौतियां सुब कुछ आती हैं। इन सभी रूपों को प्रत्यक्ष दर्शन करके नाटक के रूप में पेश करना चुनौतिपूर्ण कार्य है। इस चुनौती को बखूबी भिखारी ठाकुर ने स्वीकार किया। उन्होंने समाज के हर पक्ष पर दृष्टि डाली है। इनमें स्त्री का पक्ष प्रबल है।

भिखारी ठाकुर ने भारतीय नारी के रूप को सामने लाया है। प्यारी सुंदरी ग्रामीण स्त्री हैं। पति के परदेस जाने पर वह श्रम करती हैं। घर की सभी जिम्मेदारियां उठाती है। इसके माध्यम से भिखारी ठाकुर ने समाज के भीतर स्त्री की स्थिति का विश्लेषण किया है। वह एक ऐसी स्त्री है जो पति को परमेश्वर मानती है। वह उनका पूरा सम्मान करती है। हर संकट में उनका साथ देती है पर पति उसको पूरी तरह समझ नहीं पाता है। वह भी बिना बताये बिदेस चला जाता है। भिखारी ठाकुर ने स्त्री की मौन मधि पुकार को सामने लाया है। उन्होंने उसके दुखों को सामने लाकर सम्पूर्ण स्त्री की पीड़ा को उजागर किया है। 'बिदेसिया' में ग्रामीण स्त्री के रूप में प्यारी सुंदरी का चित्रण है। उसके जीवन के विविध पक्षों पर दृष्टि डाली गयी है। शहरी स्त्री के रूप में रखैलिन (रंडी) का चित्रण किया गया है। दोनों के विलाप के गीतों के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने सम्पूर्ण स्त्री की पीड़ा को सामने लाया है। यहां जीवन में आने वाली स्त्री के समक्ष चुनौतियों का वृतान्त है। इसमें एक अकेली स्त्री का संघर्ष दर्ज है जो चाहकर भी अपने दायित्व से मुंह नहीं मोड़ सकती है। 'बिदेसिया' में चित्रित स्त्री की पीड़ा का स्वरूप अलग है। इसमें ग्रामीण स्त्री से लेकर शहरी स्त्री की पीड़ा का मार्मिक विश्लेषण किया गया है। इसमें स्त्री के माध्यम से स्त्री की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है। स्त्री को सशक्त बनाकर भिखारी ठाकुर ने समाज में नई क्रांति लाने का कार्य किया है।

'बिदेसिया' भिखारी ठाकुर द्वारा रचित 'लोकनाट्य' है। इस नाटक में संवेदना के विविध रूप विद्यमान हैं। समाज में घटित हो रहे यथार्थ को भिखारी ठाकुर ने हमारे सामने लाया है। यह जीवन के हर पक्ष पर दृष्टि डालती है। समाज में व्याप्त वर्गीय संरचना, समाज में नारी की स्थिति एवं उनके जीवन संघर्ष को मुखरित करना ही भिखारी ठाकुर का लक्ष्य है। भिखारी ठाकुर ने नृत्य, गीत एवं अभिनय के साथ इस पीड़ा की प्रस्तुति की है जो जीवन को प्रभावित करती है। जीवन में सुख, जीवन में उमंग, जीवन में चुनौतियां सुब कुछ आती हैं। इन सभी रूपों को प्रत्यक्ष दर्शन करके नाटक के रूप में पेश करना चुनौतिपूर्ण कार्य है। इस चुनौती को बखूबी भिखारी ठाकुर ने स्वीकार किया। उन्होंने समाज के हर पक्ष पर दृष्टि डाली है। इनमें स्त्री का पक्ष प्रबल है। भिखारी ठाकुर ने लोक में विद्यमान स्त्री की पीड़ा को सामने लाया है। बिदेसिया लोक संस्कृति का एक विशिष्ट रूप है। इसमें सरलता, सहजता, निश्छलता एवं व्यापकता है। स्त्री सभी कुछ सहती है। स्त्री कुछ बोलती नहीं है पर अपना दुख वह गीतों के माध्यम से व्यक्त करती है। अपने दैनिक जीवन के संघर्ष को सामने लाती है। यह एक व्यक्ति का नहीं बल्कि समूह की पीड़ा को दर्शाता है। एक ऐसे श्रमशील स्त्री का जीवन्त दास्तान है जो पति के बिना जीवनयापन करती है। वह सभी जिम्मेदारियों को उठाती है। 'बिदेसिया' के नामकरण को लेकर डॉ. धनंजय सिंह ने लिखा है, ''बिदेसिया लोक संस्कृति औपनिवेशिक श्रम प्रवसन की देन है। वह जितनी बड़ी आर्थिक फेनोमिना है उतनी ही बड़ी सामाजिक सांस्कृतिक फेनोमिना है। दरअसल बिदेसिया शब्द उस पुरुष को सम्बोधित था, जो अपनी पत्नी को गाँव छोड़कर बाहर कमाने चला गया था। बिदेसिया अपने पति को पत्नी द्वारा दिया गया एक लोकप्रिय शैली का सम्बोधन है, जिसे एक नई लोक संस्कृति की संज्ञा मिली।''[1]

भिखारी ठाकुर ने भारतीय नारी के रूप को सामने लाया है। प्यारी सुंदरी ग्रामीण स्त्री हैं। पति के परदेस जाने पर वह श्रम करती हैं। घर की सभी जिम्मेदारियां उठाती है। अपने मेहनत के बल पर अपना जीवन जीती है। वह एक ऐसी स्त्री है जो पति को परमेश्वर मानती है। वह उनका पूरा सम्मान करती है। हर संकट में उनका साथ देती है पर पति उसको पूरी तरह समझ नहीं पाता है। वह भी बिना बताये बिदेस चला जाता है। भिखारी ठाकुर ने स्त्री की मौन मधि पुकार को सामने लाया है। उन्होंने उसके दुखों को सामने लाकर सम्पूर्ण स्त्री की पीड़ा को उजागर किया है। 'बिदेसिया' में ग्रामीण स्त्री के रूप में प्यारी सुंदरी का चित्रण है। उसके जीवन के विविध पक्षों पर दृष्टि डाली गयी है। शहरी स्त्री के रूप में रखैलिन (रंडी) का चित्रण किया गया है। दोनों के विलाप के गीतों के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने सम्पूर्ण स्त्री की पीड़ा को सामने लाया है। यहां जीवन में आने वाली स्त्री के समक्ष चुनौतियों का वृतान्त है। इसमें एक अकेली स्त्री का संघर्ष दर्ज है जो चाहकर भी अपने दायित्व से मुंह नहीं मोड़ सकती है। बिदेसिया की नायिका प्यारी सुंदरी एक खेतिहर मजदूर की स्त्री है। प्यारी सुंदरी की शादी जिस युवक से होती है वह मझोले कद का है, गेहुंआ रंग वाली प्यारी सुंदरी उससे स्नेह करती है। जब प्यारी सुंदरी का विवाह होता है। पंडित जी सुगली के अन्तिम मंत्र जब पढ़ते हैं तो वह सोचती है कि उसका भाग्योदय हो गया है। भिखारी ठाकुर ने जतसारी के गीत के माध्यम से उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन किया है *''जवना जूने भइल सामी से सुमंगली त, जनलीं जे भाग जागल हो राम/ए सामी जी, नइहर से नेह तूरी दिहलीं तऽ, ससुरा सुहावन लागल हो राम/ए सामी जी, धरवा-भीतरवा बइठाइके त, गइल कवना दो मुलकवा भागल हो राम/ए सामी जी, खतवा में पतवा पेठइत तऽ, सुनिके अगरइती पागल हो राम/ए सामी जी, हाथवा-गोड़वा चउरि के, लोहवा लाल कइके, ईहे हवे देहिया दागल हो राम/ए सामी जी, सुसुकि-सुसुकि लोरवा पोंछत बानी तऽ, केहू नइखे सुनत रागल हो राम/ए सामी जी, कहत भिखारी नाई, पतइन खाइ के, गुनलऽ ना, मिमिआली छागल हो राम/''*[2]

विवाह के बाद प्यारी सुंदरी की गवना कराके बिदेसी अपने घर ले जाता है। पति-पत्नी में बहुत प्रेम है। वह पत्नी को प्यारी सुंदरी नाम से पुकारता है। दोनों का दाम्पत्य जीवन कुछ दिन तो सुखपूर्वक गुजरता है। विवाह के बाद युवक पर घर की जिम्मेदारी आती है। घर की हालत और आर्थिक तंगी ने युवक की बाहर जाकर कमाने के लिए बाध्य कर दिया। बेरोजगारी और आर्थिक स्थिति ने युवक को प्रभावित किया। गांव के आसपास के लोग कलकत्ता एवं असम जाकर कमाते थे। उनके मन में बाहर जाकर कमाने की लालसा पैदा हुई। वह सोचता है कि कलकत्ता जाकर कुछ रूपये कमाकर घर आकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करे। युवक अपनी पत्नी से कलकत्ता जाने का प्रस्ताव रखता है। युवक की पत्नी यह सुनकर बेचैन हो जाती है। उसके मन में कही गई बातें आने लगती हैं कि पति कहीं जाय पर कलकत्ता न जाय क्योंकि वहां जो जाता है लौटकर वापस नहीं आता है। वह मायावी नगरी है जो जाता है वहाँ दूसरी औरत के फेर में पड़ जाता है। वह युवक के प्रस्ताव का तीव्र विरोध करती है। इसका यथार्थ चित्रण 'बिदेसिया' में मिलता है।

प्यारी सुंदरी किसी भी हालत में युवक को बंगाल जाने देना नहीं चाहती है। ऐसी स्थिति में युवक एक तरकीब निकालता है। वह बहाना बनाकर चुपचाप घर से भागकर कलकत्ता जाने का मन बना लेता है। युवक घर से भाग जाता है। घर से भागने से पहले का दृश्य भिखारी ठाकुर ने दिखाया है। उन्होंने लिखा है कि युवक के रहने पर घर और आंगन में आनन्द का वातावरण रहता है। समग्र खुशी का माहौल बना रहता है। इसका एक रूप बिदेसिया में द्रष्टव्य है *''अँगना आनन्द लागत दुअरा बधाव बाजत/जाय के बिदेस रउआ कबहूँ मत भाखिये/धोती ओ कमीज, टोपी आसकीट सिलाइ देहब/इतर के बास तेल भूतनाथ माखिये/बिबिध मिठाई, पकवान, तरकारी, दधी, निमिकी/मोराबा, पापड़, घरहीं सब चाखिये/कहत 'भिखारी' पिया हिया में छमा करके/हम से गरीबनी पर दया नित राखिये/''*[3] भिखारी ठाकुर ने गृहस्थ जीवन की सच्ची तस्वीर पेश की है। इससे ज्यादा ग्रामीण जीवन का चित्रण शायद ही किसी रचनाकार ने किया है। प्यारी सुंदरी हर प्रकार के प्रयत्न करती है ताकि युवक बिदेस न जा पाये। युवक तो कलकत्ता जाने के लिए कृतसंकल्प है। वह किसी भी तरह वहाँ जाना चाहता है। वह पत्नी से चुपके भागकर जाने का निर्णय ले लेता है। अपनी पत्नी को घर की चाबी भी नहीं देता? अपने दोस्त के माध्यम से चाभी भिजवाता है। प्यारी सुंदरी पूछती है-चल गइलन का। प्यारी सुंदरी और दोस्त के संवाद प्रभावी हैं :

''सुंदरी : ए रवों, उहौं के देखलीं हॉ!
दोस्त : केकरा के?
सुंदरी : रउआ अपना दोस्त के?
दोस्त : हँ, देखलीं हाँ।
सुंदरी : कहाँ देखली हाँ तनी बताई ना।
दोस्त : टीसन पर देखलीं हा, टिकट कटा के रेल में बइठल।''[4]

युवक प्यारी सुंदरी को छोड़कर चुपके से कलकत्ता चला जाता है। यहीं से प्यारी सुंदरी का जीवन संघर्ष आरंभ हो जाता है। वह अपने श्रम के बल पर जीवन व्यतीत करती है। प्यारी सुंदरी का संघर्ष दो स्तरों पर है, एक पति

के बिना जीवन जीने का और दूसरा, अपनी स्त्रीत्व बनाने का। इस प्रकार ग्रामीण स्त्री का संघर्ष पीड़ा और दुख में गुजरता है। उसका हर प्रयत्न विफल हो जाता है। हर समय संकट झेलने के लिए विवश रहती है। वह अपनी व्यथा किससे कहे? कैसे कहे? पति के बिना उसका जीवन रुक सा गया है। वह अपनी व्यथा को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती है। जिस समय वह सुनती है-उसका पति परदेस चला गया है उसकी हालत पागल जैसी हो गई है। इसका एक रूप 'बिदेसिया' में दृष्टव्य है *''समाजी : सुनि प्यारी पिउ गये परदेस/ तेहि छन हो गई पागल भेस/याद परे जब पति पेयाना/ स्वांस लेत लागे धनु बाना/रोवन लागे धुनि-धुनि छाती/ सूझे तनिक दिन ना राती/''*[5] *(चौपाई)* यहां प्यारी सुंदरी का विलाप वर्णित है। प्यारी सुंदरी के माध्यम से संपूर्ण स्त्री के दुखों को भिखारी ठाकुर ने चित्रित किया है। वह रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाती है। वह निरन्तर विलाप करती रहती है। यह स्त्री के पीड़ा का उत्कृष्ट रूप है। वह अपने जीवन में झाँककर देखती है। विलाप करते हुए पति को याद करती है। वह कहती है कि पति से उसे कोई सुख नहीं मिला। वह छटपटाती है। वह क्या करे। एक स्त्री की कारुणिक दशा का चित्रण 'बिदेसिया' में किया गया है *''सुंदरी : करि के कहाँ गइलनऽ बलमू निरासा/गवना कराके सँइया घरे छोड़ि दिहलनऽ/गइलन बिदेस हमें करि के बेकासा। निरासा..../सँइयाँ के सुख हम कुछुओ ना जनलीं/बिचहीं बिधाता बितवलन तमासा/ निरासा... सतदेव सत राखऽ अरज करति हूँ/दुख में दया करऽ शंकर जरा सा। निरासा. ...कहत 'भिखारी' भगवती सहाय होखऽ/सँइयाँ मिला के पुरा देइ आशा/ निरासा...''*[6] *(गीत-1)*

बिदेसी के बिना प्यारी सुंदरी का जीवन कष्टमय है। वह विलाप करती रहती है। उसकी पीड़ा को कौन समझेगा। इसी बीच एक 'बटोही' उसके घर के पास से गुजरता है। वह स्त्री को रोते हुए सुनता है। वह रुककर पता लगाना चाहता है कि आखिर यह कौन सी स्त्री है जो लगातार रो रही है। प्यारी सुंदरी घर में दरवाजा बंद करके रो रही थी। बटोही दरवाजे पर जाता है। स्त्री के रोने की आवाज तेज सुनाई देने लगती है। वह अपना दुख बटोही से कहती है। बटोही को धर्म का भाई बताती है। वह निवेदन करती है कि कलकत्ता से ढूँढ़कर मेरे पति को वापस भेज देना। बटोही को अपने पति का रूप वर्णन करके सुनाती है। वह अपना दुख विलाप करके सुनाती है *''करि के गवानावाँ भावनावाँ में छोड़िकर, अपने परइलऽ पुरुबबा बलमुआँ/अखियाँ से दिनभर गिरे लोर ढ़र ढ़र बतिया जोहत दिन बीतेला बलमुआँ/*

बटोही : आरे हमार बाबू चूप रहऽ/गइल बाड़न, त ओतही रहिहन ना नूँ/ अइहन नू।

सुंदरी : गुलमा के नतिया, आवेला जब रतिया त, तिलभर कल ना परत बा बलमुआँ।

बटोही : आ का कल परी हो दादा।''[7]

प्यारी सुंदरी के जीवन में दुःख व्याप्त है। वह अपनी पीड़ा को अकेले झेल रही है। यह स्त्री का जीवन है जो हर प्रकार के दुखों को सहन करके भी परिवार को बचाने की कोशिश करती है। वह बटोही से निवेदन करती है। वह कहती है कि मेरा दुःख अपने आँखों से देख लीजिए। इसका यथार्थ चित्रण भिखारी ठाकुर ने किया है। सुंदरी बटोही से कहती है *''कहाँ जइबऽ भइया? लगावऽ पार नइया/ तूँ मोर दुख देखि ल नेतर से बटोहिया/सुनऽ हो गोसइयाँ, परत बानीं पइयाँ/ रचि-रचि कहिहऽ बिपतिया बटोहिया/छोड़िकर घरवा में, बीच महधारवा में/ पियवा बहरवा में गइलनऽ बटोहिया/जइबऽ तूँ ओही देस, देखि लऽ नीके कलेस/ इहे सब हलिया सुनइहऽ बटोहिया/नइहर ईयवा, देयागि देलन पियवा/ तु असमन जनिहऽ जे धियवा बटोहिया/कइसे के कहीं हम, नइखे धरात दम/ सरिसो फुलात बाटे आँखि में बटोहिया/कहत 'भिखारी' नीके मन में बिचारी देखऽ/ चतुर से बहुत का कही हो बटोहिया/''*[8] *(गीत पूर्वी)*

प्यारी सुंदरी की पीड़ा का यथार्थ चित्रण करके भिखारी ठाकुर ने ग्रामीण स्त्री की व्यथा को ही सामने लाया है। भिखारी ठाकुर की स्त्री श्रम करती है। अकेलेपन की पीड़ा झेलती है। बटोही से संदेश भेजती है। बटोही से अपने पति का रूप वर्णन करती है। यह बारहमासा के रूप में चित्रित है *''सुंदरी : करिया ना गोर बाटे, लामा नाहीं हउवन नाटे/ मझिला जवान साम सुंदर बटोहिया/घुठी पर ले छोती कोर नकिया सुगा के ठोर/ सिर पर टोपी छाती चाकर बटोहिया/पिया के सकल के तूँ मन में नकल लिखऽ/ हुलिया के पुलिया बनाई लऽ बटोहिया/''*[9] प्यारी सुंदरी के जीवन में दुःख ही दुःख है। वह निरन्तर रोती रहती है। उसे सान्त्वना देनेवाला कोई नहीं है। बटोही ही उसे सान्त्वना देता है। उसे वचन देता है कि वह खोजकर उसके पति को वापस जरूर भेजेगा। बटोही प्यारी सुंदरी के द्वारा बताये गये रूप के अनुसार कलकत्ता पहुँचकर बिदेसी को खोजने लगता है। इस प्रक्रिया में वह एक युवक को देखता है जो सलोनी स्त्री के साथ बैठकर ताश खेलता मिल जाता है। बटोही मन ही मन उसे पहचान लेता है। वह सोचता है कि यही बिदेसी है। इसका यथार्थ रूप 'बिदेसिया' में विद्यमान है *''बटोही : (बिदेसी से) सुनि लऽ बिदेसी बात/ कइलऽ तू बहुत घात/अबहूँ से चेतऽ दीन दुनियाँ बिदेसिया/तोर कुलवंती नारी, रोअतारी फुका फारि/ काटि के तू डालि दिहलऽ कुआँ में बिदेसिया/ध्यान धके पति पर, फेंकरि फेंकरि कर/ मनि बिनु फनिक बेहाल बा बिदेसिया/खेलतारऽ जुआसार, छोड़िकर घर द्वार/*

घरनी, लोटत बिआ धरनी बिदेसिया/जल्दी से घर चेतऽ दुखित नारी के हेतऽ/ अतने गरज के अरज बा बिदेसिया/कहत 'भिखारी' फुलवारी के उजारि देलऽ/ पुत होके भइलऽ जमदूत तूँ बिदेसिया/''[10]

बटोही बिदेसी को तरह-तरह से समझाता है कि उसकी पत्नी प्यारी सुंदरी बहुत दुखी है। पति के बिना उसका जीवन संकट में है। वह किसी प्रकार जी रही है। उसकी हालत दयनीय है। प्यारी सुंदरी निरन्तर विलाप करती रहती है। उसकी सुध लेनेवाला कोई नहीं है। भिखारी ठाकुर ने विभिन्न प्रकार के गीतों और लय में प्यारी सुंदरी की पीड़ा का चित्रण किया है। बटोही जोर देकर कहता है कि भगवान का नाम लेकर तुम अपने घर वापस लौट जाओ। बिदेसी को विश्वास नहीं हो रता है। तब बटोही उसे उसके घर का वर्णन करता है ताकि उसे विश्वास हो जाये। इसका यथार्थ चित्रण 'बिदेसिया' में है। उदाहरणस्वरूप *''बटोही : कायापुर घर हउए, पानी से बनावल गउए/ अचरज अकल ह नाम हो बिदेसिया/चलली बहरवा से कानवाँ परल मोरा सत्ती के विपति के मोटरिया बिदेसिया/हउई बटोहिया लागल जव मोहिया/ त जोहिया लगाई कर अइलीं बिदेसिया/तोहरा जनानावाँ के आसरा लागल बाटे/कब आइ के देबऽ दरसनवाँ बिदेसिया/मोरवा मचावै जइसे सोरवा गरज सुनि/ प्यारी छपटाली राही देखि के बिदेसिया/छोड़िकर घरवा के बाहरी ओसरवा में/ जल बिनु मछरी के हलिया बिदेसिया/बीसवा बरिवा के अबही ना केस पाके/ साँवर बरन प्यारी धनियाँ बिदेसिया/माथवा के बारवा भँवर समान बाटे/ मुँहवाँ दीपकवा बरतबा बिदेसिया/फुलवा सरिस जगदीस जी बनाई कर/ पति के वियोग देह दिहलन बिदेसिया/सुनिकर कानवाँ में गुनिकर मनवाँ में/ कहत भिखारी घरे चलि जा बिदेसिया/''*[11] बटोही के द्वारा वर्णित यथार्थ को सुनकर बिदेसी को प्यारी सुंदरी की याद आ जाती है। प्यारी सुंदरी के बारे में सोचने लगता है। वह उसके दुःख से अवगत हो जाता है। जिस स्त्री के साथ वह रह रहा है उससे घर लौटने के लिए निवेदन करता है। रखैलिन इसका विरोध करती है। वह कहती है कि ऐसे राहगीर की बातों में आकर आप परेशान क्यों हो गये हैं। अगर वह घरवाली है तो मैं कौन हूँ? बटोही भी पूछता है कि यह स्त्री कौन है? बिदेसी कहता है कि यह वही स्त्री है जिससे मैंने यहाँ विवाह किया है। रखैलिन बटोही से लड़ जाती है। वह बटोही के माथे पर प्रहार कर देती है। उसे आभास हो गया है कि उसके कारण ही मेरे जीवन में विपत्ति आ गई है। वह बिदेसी से कहती है कि आपको जाने नहीं दूंगी। चाहे लाख प्रयत्न कर लीजिए। मैं किसके साथ रहूंगी? भिखारी ठाकुर ने रखैलिन (रंडी) के माध्यम से शहरी स्त्री की पीड़ा का चित्रण किया है। वह निर्भीक है, संघर्षशील है, चालाक है, पर पति को नहीं छोड़ना चाहती। वह पति को समझाती है कि स्त्री के दुःख का पाप भोगना पड़ता है। अगर आप चले गये तो मैं प्राण त्याग दूंगी। बिदेसी के लिए यह गंभीर स्थिति है। इसका यथार्थ रूप 'बिदेसिया' में वर्णित है *''रंडी : नाहीं कहब जाये के/ हम रहब केकरा पास? राजा/जहाँ-जहाँ जइबऽ तहाँ जवरे लिअवले चलऽ/माई बाप छूटल आखिर भइल उपहास, राजा/ नाहीं....तिरिया के बध होई, पातक से धर्म खोई/सुनिलऽ लिखल बा, एकर मानऽ विश्वास, राजा/ नाहीं.....''*[12]

उपरोक्त पंक्तियों में रखैलिन की पीड़ा का चित्रण हुआ है। भिखारी ठाकुर ने दिखाया है कि स्त्री चाहे शहरी हो या ग्रामीण पति की जरूरत सभी को है। वह अपना जीवन निर्वाह कैसे करेगी। स्त्री की पीड़ा का चित्रण स्त्री के नजरिये से किया गया है। जीवन के संघर्ष को, बदलते समय में उसकी दशा का चित्रण करके भिखारी ठाकुर ने नये क्लेवर प्रदान किये हैं। स्त्री अपनी पीड़ा किससे कहे? उसकी कौन सुननेवाला है? उसकी तरफ ध्यान किसका है? वह निरन्तर प्रताड़ित है। समाज में शोषित है, पीड़ित है। बिदेसी कलकत्ता से भी भागकर घर जाने का निर्णय लेता है। वह अकेले भाग जाता है। रास्ते में चोर डाकू लोग उसे लूट लेते हैं। यहां तक कि शरीर के कपड़े भी नहीं छोड़ते। वह गमछी पहनकर घर जाता है। जब बिदेसी भाग जाता है तो रखैलिन (रंडी) पर विपत्ति आ जाती है। वह कह रही है कि जरूर किसी ने मेरे पति के विवेक को फेर दिया है। किसी के प्रभाव में आकर ही उन्होंने यह कदम उठाया है। वह निरन्तर विलाप करती है। उसके विलाप को भिखारी ठाकुर ने निर्गुण के रूप में प्रस्तुत किया है *''ए किया हो रामा, पियऊ के मतिआ केइ हरल हो राम/ए किया हो रामऽ, कहिया के पापवा आई के परल हो राम/ए किया हो रामऽ, मुदई के मनवा खूब तरे फरल हो राम/ए किया हो रामऽ, एह से बा नीमन हेमार मरल हो राम/ए किया हो रामऽ, आजुए से उढ़री नँइयाँ परल हो राम/ए किया हो रामऽ, कहत भिखारी उपजल झरल हो राम/''*[13]द रखैलिन के विलाप के द्वारा शहरी स्त्री की पीड़ा को ही रेखांकित किया गया है। यह जीवन के संघर्ष का बृहद रूप है। वह निरन्तर अपने गार्हस्थ जीवन को बचाने के लिए प्रयत्नशील है पर वह सफल नहीं हो पाती है। अन्ततः वह निर्णय कर लेती है कि मैं भी बच्चों के साथ बिदेसी के घर जाऊंगी। घर के सारे सामान बांधकर बच्चों के साथ निकल जाती है। बाड़ी वाला से भाड़ा के लिए रखझक होता है। वह कहती है कि आपसे मेरी कोई बातचीत नहीं है। बीच रास्ते में चोर-डाकू इस स्त्री का भी सामान लूट लेते हैं। अंततः विपन्न अवस्था में वह बिदेसी के घर पहुँचती है। बिदेसी जब घर पहुंचता है तो आधी रात का समय है। वह पत्नी प्यारी सुंदरी को दरवाजा

खोलने के लिए कहता है। आधी रात्रि में कोई भी स्त्री दरवाजा कैसे खोलेगी। वह डर जाती है। वह सोचती है कि भगवान बहुत कठोर हो गये हैं जो मेरे परीक्षा ले रहे हैं। उसे दिया जलाने तक का समय नहीं मिलता। वह बहुत परेशान है। इसका चित्रण 'बिदेसिया' में मिलता है *''सुंदरी : हाय दइब अब केहि गोहराई, अइले महलिया में चोर/सँइयाँ घरे रहितन, घई बान्हि मारितन, केकरा से कही करी सोर/प्रीतम पिउ बिनु प्रान छूटत नइखे, हिरदयवा बहुत कठोर/त्राहि रमापति, त्रहि उमापति अब धरम बचाबहु मोर/''*[14]

यहाँ स्त्री की पीड़ा गंभीर है। इसका चित्रण करके भिखारी ठाकुर ने ग्रामीण स्त्री की पूरी कलई खोल दी है। भिखारी ठाकुर ने स्त्री की पीड़ा का मार्मिक वर्णन किया है। जब बिदेसी दरवाजे पर खड़ा होकर प्यारी सुंदरी को आवाज लगाता है कि मैं कोई चोर-डाकू नहीं हूँ। मैं तुम्हारा पति हूँ। दरवाजा खोलिए। वह सशंकित होकर ही दरवाजे के पास खड़ी है। वह डरती है। जब उसे विश्वास हो जाता है कि उसका पति ही दरवाजे पर खड़ा है तब वह दरवाजा खोलती है। उसकी आँखों से आसुंओं की धारा बहने लगती है। 'बिदेसिया' में भिखारी ठाकुर ने इसका मार्मिक चित्रण किया है *''बिदेसी : खोलऽ खोलऽ धनिया! से बजर केवरिया हो/ हम हईं पियवा तोहार रे सँवरिया/नाहीं हम हईं राम ठग-बटवारवा से/ नाहीं हम हईं डाकू-चोर रे सँवरिया/पूरब से आवतानी, करऽ पहिचान बानी/ मुदित ना बहरे बीतल प्यारी धनिया/समाजी : अतना सुनत धनी, खोलली केवरिया से/ दुअरा पर देखे पिया ठाढ़ रे सँवरिया/तुरते खोलि के पट, प्यारी ताके पति झट/ पपिहा का स्वाती बूँद मिललन बलमुआँ/सुंदरी : सन्मुख परल हो रजउ चारो हो नजरिया से/ बहे लागल प्रेम जलधार हो बिदेसिया/''*[15]

अन्ततः बिदेसिया में पति पत्नी का मिलन हो जाता है। यह लोक और शास्त्र के संघर्ष में शास्त्र की विजय हुई है। पतिव्रता विवाहिता स्त्री की विजय हुई है। रखैलिन की हार हुई है। यहां भिखारी ठाकुर ने भारतीय स्त्री की गरिमा को ही महिमामंडित किया है। हर प्रकार के दुःख झेलकर अन्त में वह पति को प्राप्त कर लेती है। यह विवाहिता स्त्री की विजय है। 'बिदेसिया' का अन्त सुखान्त है। रखैलिन भी अपने बच्चों के साथ बिदेसी के घर आ जाती है। इसका यथार्थ रूप भिखारी ठाकुर ने उजागर किया है :

''रंडी : यह गाँव में कोई बहरा से अइल हा?
समाजी : हाँ, बिदेसी अइले हा।
रंडी : उनका घरे कवन राह जाई?
समाजी : इहे गलि धइले चल जा।
बिदेसी : (देखी के चिन्हा तान) तोहरा का दसा भइल।
रंडी : रउआ छोड़ के चल अइलीं। लइकन के साथे समान लेके आवत रही कि डाकू सब लूट लेलस।
बिदेसी : अच्छा जाये दय, हमार-तोहार जिनगी रही, त घर भर जाई।
रंडी : एहिजा केहु के चीन्हत नइखीं।
बिदेसी : कइसे चिन्हबू देखऽ दुमँहा में सवतिन खाड हव।
(रंडी सवतिन के गोड़ लागतारी)
रंडी : (लड़का से) ए बबुआ, माई बाडी, गोड़ लागऽ।
(लइका माई के गोड़ लागत बाड़न। सकल परिवार के मिलन हो जाता।)
समाजी : बोलिए वृन्दावन बिहारी लाल की जय।''[16]

'बिदेसिया' का अन्त सुखान्त है। विवाहिता स्त्री बिदेसी की शहरी पत्नी को बहन बनाकर रख लेती है। दोनों स्त्रियों के साथ बिदेसी सुखपूर्वक रहने लगता है। यह भारतीय नाट्य पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें स्त्री के माध्यम से स्त्री की सम्पूर्ण कथा कही गई है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह, धनंजय, पुरबियों का लोकवृत्त वाया देस परदेस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2020, पृ. 144
2. सं. प्रो. सिंह, राम बुझावन एवं मिश्र, मिथिलेश कुमारी, भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, द्वितीय संस्करण, पृ. 25
3. वही, पृ. 30
5. वही, पृ. 33
6. वही, पृ. 33
7. वही, पृ. 37
8. वही, पृ. 38
9. वही, पृ. 38
10. वही, पृ. 40
11. वही, पृ. 42
12. वही, पृ. 44-6
13. वही, पृ. 50
14. वही, पृ. 57
15. वही, पृ. 57
16. वही, पृ. 58

डॉ. राम किशोर यादव
एसोसिएट प्रोफेसर
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में नारी का बदलता परिवेश

–नाइराह कुरेशी

सार : ईश्वर ने सृष्टि-निर्माण के लिए पुरुष एवं नारी की अनुपम सृष्टि की है। प्रकृति की इस अद्‌भुत क्रिया करुणा, ममता, त्याग का सशक्त रूप है तो पुरुष वीरता, शौर्य, बलवान, नेतृत्व का प्रबल रूप है। नारी माँ, पत्नी, बेटी, बहन आदि रूपों में समाकर लक्ष्मी, रमा, अन्नपूर्णा, जगदम्बा आदि नामों से अभिहित हुई है। समाज में नारी आदर तथा सम्मान की पात्र थी परंतु जैसे-जैसे समय बढ़ता गया नारी की दशा में भी परिवर्तन होता गया। उसकी स्थिति दयनीय होती गई। उसे मानव न मानकर वस्तु मात्र समझा जाने लगा। इसीलिए वर्तमान संदर्भ में नारी की स्थिति को समझने के लिए अतीत में झांकना आवश्यक है।

प्रागैतिहासिक युग का इतिहास अवशेषों, चित्रों तथा चिह्नों द्वारा प्राप्त जानकारी पर आधारित है। इसीलिए इससे प्राप्त जानकारी केवल अनुमान पर आधारित है जिससे यह ज्ञात होता है कि उस समय नारी माता के रूप में अभिहित होकर सम्पूर्ण सत्ता तथा शक्ति का केंद्र थी। कई इतिहासकारों ने ऋग्वेद से प्राप्त जानकारी के आधार पर वैदिक युग को नारी जीवन का 'स्वर्ण काल' माना है। आर्यों ने स्त्री को सम्मान देते हुए उसे आश्चर्यजनक शक्तियों का प्रतीक माना और देवी नाम से संबोधित भी किया। ऋग्वेद में आर्यों द्वारा पूजित इन देवियों की संख्या बीस के आस-पास मानी गई है जिन्हें 'ब्रह्म वादिनी' भी कहा जाता था। इंद्राणी, उर्वशी, सावित्री, सरस्वती, अदिति, सूर्या, प्रभात, भारती आदि ऐसी ही वैदिक ऋषि/देवियाँ हैं जिन्हें दिव्य शक्ति का प्रतीक माना गया।

शोध पद्धति : आलोच्य शोधपत्र में विश्लेशणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। जिसमें प्राथमिक स्रोत हेतु हिन्दी साहित्य के आदिकाल से रीतिकाल तक के पद्य साहित्य अथवा आधुनिककाल के गद्य अथवा पद्य दोनों प्रकार के साहित्य का गहन अध्ययन किया गया है तथा माध्यमिक स्रोत हेतु हिन्दी साहित्य पर आधारित अंग्रेजी की प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तकों क अध्ययन किया गया है।

भूमिका : वैदिक युग में पितृसत्तात्मक समाज की प्रधानता थी। पुत्र जन्म के लिए 'पुंसवन संस्कार' किया जाता था परन्तु सुसंस्कृत परिवार विद्वान पुत्री के जन्म की भी आकांक्षा किया करते थे और उसको सुनिश्चित करने के लिए वह यज्ञ भी किया करते थे। ऐसी पुत्रियाँ अपने परिवार के लिए वैभव एवं गौरव का प्रतीक सिद्ध होती थीं। स्त्रियाँ को शिक्षा दी जाती थी, पुरुषों की तरह उनका भी उपनयन होता था। स्त्री विद्यार्थियाँ को दो वर्गों में बांटा गया था---ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाह। ब्रह्मवादिनी जीवन भर धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने में कार्यरत थीं। वह पूर्व मीमांसा में भी विशेषज्ञता प्राप्त करने में समर्थ थीं। गार्गी, मैत्रेयी, अत्रेयी ऐसे ही कुछ विद्वान स्त्रियों के उदाहरण हैं। सद्योद्वाह 15 से 16 वर्ष की आयु तक ही धार्मिक विधाएँ तथा मंत्रों को सीख कर गृहस्थ जीवन व्याप्त करती थीं। एकपत्नीत्व की प्रथा थी। घर को संभालने का पूरा दायित्व स्त्री का था। विवाह से पहले वह अपने माता-पिता और विवाह के बाद अपने ससुराल की देख-रेख में रहती थी। पति के छोटे भाई-बहनों को संभालने की पूरी जिम्मेदारी भी उसकी थी। दहेज प्रथा विद्यमान थी। स्त्री को स्वयं अपना पति चुने का पूर्ण अधिकार था। पति की मृत्यु के बाद उसे दूसरी शादी उसके देवर के साथ की जाती थी।

Freedom of choice in marriage was given[x, 27,12]. Girls lived under the protection of their parents, and after their death, of their brothers [ii, 17, 7, and iv, 5, 5]. Dowry at marriage was usual [I, 109, 2]. The Rigvedic Marriage Hymn, x,85, shows that the bride after marriage was conveyed from the house of father to that of her husband and that in her new home, she had an honored place as mistress with authority over her aged father-in-law, mother-in-law, her husband's brothers and sisters. There is a reference [x, 40, 2] to the widow married to the brother of her husband who died without issue (Mookerji 72-73).

पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने में निपुण थीं। उन्हें ललित कलाएँ तथा काव्य रचना भी सिखाई जाती थीं। अल्टेकर के अनुसार ऋग्वेद के दसवें मण्डल की 39 तथा 40 सूक्तियों की रचना लोपामुद्रा, विश्ववरा, सिक्ता निवारी और घोषा जैसी बुद्धिमान कवयित्रियाँ ने की हैं। 'Lopamudra, Visvara, Sikata Nivavari and Ghosha are undoubtedly the authors of the Rigveda 1-179, V.28.VIII- 91, IX. 81.11-20, and X.39, and 40 respectively' (Altekar 12).

हिन्दी साहित्य का वीर काव्य केवल वीरों के लिए नहीं अपितु सुंदर नारियों की संहार लीला को दर्शाने के लिए लिखा गया। वीर काव्य में नारी के दो रूपों का स्पष्ट चित्रण मिलता है- वीर एवं श्रृंगारी रूप। युद्ध-वर्ण सुनकर वह भयभीत नहीं होती, पति की गौरवमयी मृत्यु होने पर कामिनी शोक नहीं मनाती अपितु उसे अपना स्वाभाग्य समझकर उसे अपने प्रताप एवं शौर्य का उदाहरण देकर समाज में अपने विशाल एवं गौरवम्य सत्ता का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वीर काव्य में नारी महान, क्षत्राणी, पवित्रता एवं कल्याण का प्रतीक रही है।

वीरकाव्य में कवियों ने साहित्य की सृजना अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में की। यह रासो काव्य मूलतः आश्रयदाताओं की प्रशंसा का काव्य है जिसमें प्रेम एवं युद्धों का वर्णन है। पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, बीसलदेवरासो तथा खुम्माणरासो आदि रासो ग्रंथों में नारी के सौन्दर्य रूप, गुणों, पतिव्रत्य तथा उनके सत्ती स्वरूप का बड़ा मनोहारी चित्रण है परन्तु कहीं-कहीं इन नारियों के नारी-जीवन की करुणा का भी चित्रण हुआ है। यहाँ तक कि भूषण भी जो श्रृंगार की ध्वनि में वीरतत्व का सिंहनाद सुनाते थे वह भी नारी को विलासता से अधिक किसी ओर रूप में न देख सके।

'बीसलदेवरासो' की नायिका राजमती का माना है कि ईश्वर चाहे जितने मनुष्य बनाए पर किसी को स्त्री न बनाए

अस्त्री जनम काई दीयउ से महेश,
अवर जनम थारइ धणा से नरेश्।
भक्ती दाष विजोरडी
तइतउकाइ सिरजो उलगाणा की नारि।।

हिन्दी साहित्य में संत-काव्य विराग, तप-तपस्या, त्याग, सदाचार जैसी भावनाओं को लेकर समृद्ध हुआ। ईश्वर को पति मानकर और स्वयं पत्नी के हृदय के अनुराग, कोमल भावनाओं से उसकी उपासना करके नारी को कामिनी, वासना की छाया, पतनकारिणी, माया का शस्त्र, अविद्या का प्रतीक, व्याभिचारिनी मानकर उसकी भर्त्सना भी की। संत-काव्य में आदर्श नारी केवल पतिव्रता को ही बताया गया है और पतिव्रता शब्द को दो विभिन्न अर्थों में अभिहित किया गया है एक लौकिक पतिव्रता, जो सामान्य स्त्री है और अपने पति-धर्म एवं परिवार धर्म का पालन करती है और दूसरी अलौलिक पतिव्रत्ता जो ईश्वर से निश्छल भाव से हृदय की कोमल अनुभूतियों से उसकी उपासना करती है। परन्तु संतों ने नारी को अविद्या का प्रतीक और मोह-माया का घड़ा मानकर उसकी भर्त्सना भी की। दादूदयाल ने नारी को नागिन बताकर उसकी निन्दा की। सुन्दरदास ने केवल नारी शरीर को सुन्दर बताकर उसकी तुल सघन वन से की है-

कामिनी की देह मानौ कहिए सघन वन
उहाँकोउजाइअ सो तौभूलि के परतु है। (पाण्डे, पृ.84)

निर्गुण कवयित्रियों ने तो नारी निन्दा पर चुपी साधी है। ''पार्वती ने चित्त को कामिनी के पास रखने का निषेध किया है-

धन जोबन की करै न आस,
चित्त न रखै कामिनी पास'' (पाण्डे, पृ. 84)

सूफी-कवियों ने अपने काव्य में तत्कालीन नारी-स्थिति तथा नारी-भावना को दर्शाने के लिए अनेक नारी-विषयक उक्तियों का प्रयोग किया। यह उक्तियाँ ही उनके विचारों का वाहक है। रत्नसेन पद्मावती के रूप का चित्रण सुनकर उस पर मंत्र-मुग्ध हो जाता है और उसे प्राप्त करने के लिए सिंहल द्वीप चला जाता है। नागमती, उसकी विवाहिता उसे राम और सीता का उदाहरण देकर उसे साथ ले चलने का अनुरोध करती है पर रत्नसेन उसके अनुरोध को ठुकरा कर सम्पूर्ण नारी-जाति को बुद्धिहीन कहकर चला जाता है।

तुम्हतिरिआमतिहीन तुम्हारी,
मुरुख सो जो मतै घर नारी (पाण्डे, पृ. 105)

नारी को भोग-विलास की वस्तु मानकर उसे योगियों के लिए बाधा माना गया है।

जोगिन्ह कहा भोग सों काजू
चहे न मेहरी चहे न राजू (पाण्डे, पृ. 104)

रणोद्यत बादल नारी को अबला तथा बुद्धिहीन बताते हैं। उसे अचेतन भूमि मान कर, तिरिया और भूमि दोनों को ही खड्ग की अनुगामिनी बताया है।

तिरियापुहूमिखरग की चेरी।
जोतैखरगहोदतहि फेरी (पाण्डे, पृ. 104)

मध्ययुगीन काव्य में जहाँ संतों ने निराकार एवं निर्गुण ब्रह्म को कौतूहल का विषय बनाया वहीं सूफियों ने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम का एकीकरण कर हृदय को स्पर्श किया किन्तु सामाजिक विषमता, धार्मिक विशृंखलता एवं नैतिक पतन के मध्य रामकवियों ने सगुण ब्रह्म के लोक-रक्षक रूप को अवतरित किया। तत्कालीन समाज में फैली अनैतिकता, कम्पित होती हुई मानसिक्ता ने इन उदात्त आदर्शों को जन्म दिया। राम-काव्य के कवियों ने राम को

मर्यादा पुरषोत्तम एवं लोक-संग्रहकारी रूप के आलोक में निर्देशित किया। रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसी का विश्लेषण से ही रामकाव्य में नारी की अवधारणा स्पष्ट हो सकेगी। तुलसीदास की नारी-भावना आदर, श्रद्धा एवं सम्मान से ओत-प्रोत है। पतिव्रता नारी को गृहस्थ-जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण माना। उन्होंने अपने काव्य में नारी के सत्-चरित्रों के मनोहारी-रूपों का अंकन करने के साथ-साथ उसकी निन्दा भी है और निन्दा वहीं पर हुई है जहाँ उसने धर्म-विरोधी आचरण ग्रहण किया हुआ है। तुलसीदास ने नारी जाति के लिए बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसूया, कौशल्य, सीता, ग्रामवधू आदि की चरित्ररेखा पवित्र और धर्मपूर्ण विचारों से निर्मित हुई हैं। कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निन्दा की और ढोल गंवार की कोटि में रक्खा। परन्तु आदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किए गए जबकि नारी ने धर्म विरोधी आचरण किए। (वर्मा, पृ.494)

शुक्ल जी के मतानुसार तुलसीदास ने नारी के उस रूप की भर्त्सना की जो तप एवं त्याग में बाधा बनी। माताप्रसाद गुप्त ने तुलसीदास की अनुदारता को ही उनकी नारी निन्दा का कारण माना। मिश्रबंधुओं ने तुलसीदास को नारी-निन्दक माना पर सीता, कौशल्य आदि जैसे चरित्रों को पवित्र बताया जिसका कारण उनका राम से संबंध है। शेष नारियों को सहज, जड़, अपावन तथा स्वतंत्र होने के अयोग्य माना है। कई साहित्यकारों का मानना है कि तुलसीदास के नारी निन्दा का कारण उनका नारी सम्पर्क का अभाव है।

केशव ने रामचंद्रिका में उसी नारी को श्रेष्ठ माना जो पतिव्रता है। अपने जीवन युग में नारी को विलासता का कारण बता कर अपनी और पराई नारी के त्याग का निर्देश दिया। ''उन्होंने भी पातिव्रत पर अधिक बल दिया तथा स्त्री को ही भोग का कारण बता कर अपनी एवं पराई नारी के परित्याग का निर्देश किया है'' (पाण्डे, 120) तुलसी के युग में नारी आदर तथा सम्मान से वंचित रही। उसका जीवन औरों के लिए बलिदान देने में ही व्यतीत होता है। वह चारों ओर से बंदिनी थी। शिक्षा और ज्ञान से वंचित नारी मूर्ख समझी जाती थी।

कृषण-काव्य में सूरदास नारी-निन्दा की ओर अग्रसर रहे हैं। कवि नारी स्वभाव को नागिन विष के समान समझते हैं। उसे हृदय-हीन तथा कठोर बताया गया है।

सुकदेवकह्योंसुनौहौ राव, नारी नागिन एक सुभाव।
नागिन के काटे विष होइ, नारी चितवत नर रहै मोह।।

स्वयं कृष्ण दान-लीला में नारी के प्रति हीन भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि नारी और बालक को अधिक सिर नहीं चढ़ाना चाहिए।

कबहूँ बालक मुँह न दीजियौ, मुँह न दीजियौ नारी।
जोई मन करै, सोइकरिडारै, मूड़चढ़त हैं भारी।।

नारी को उन्होंने माया, मिथ्या, गहिंत का प्रतीक माना है परन्तु उपास्य रूप में कृष्ण के साथ रास इनका काम्य रहा है। वास्तव में कृष्ण भक्त कवियों को नारी के दो रूप मान्य हैं। एक रूप सामान्य रूप है जिसमें वह लौकिक नारी है और माया का प्रतीक है जिसमें वह कुलमर्यादा और बंधनों का अनुसरण करने पर विवश है। दूसरा रूप विशेष रूप है जो गोपियों का है जो अलौकिक नारी को दर्शाती हैं। ''विशेष रूप गोपियों का है, जो पार्वत्य सरिता के समान अप्रतिहत वेग वाली है। मार्यादा के कगारे, लोक-कानि और कुल-कानि के तटीय वृक्ष कृष्ण-प्रेम की प्रचण्डता के समक्ष नष्ट हो जाते हैं।'' (पाण्डे, पृ. 146)

रीति-काव्य में नारी कवि समस्त भावनाओं का केंद्र रही है। रीतिकाल के कवि अपनी प्रतिभा, कल्पना अथवा अपनी सम्पूर्ण दृष्टि नारी-चित्रण में लगा देते थे जिससे नारी-जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों का परित्याग हुआ। सुकुमारता और कमनीयता ही उसका गुण मान गया। ''श्रृंगाररसमयी क्रीड़ा करना, नित नूतन प्रसाधन कर पुरुष को विमोहित करना ही उसका एकमात्र कर्तव्य है।'' (पाण्डे, पृ.163) रीतिकाव्य में नारी कवि की समस्त भावनाओं की केंद्र है जिसमें केवल उन्हें नारी का कामिनी रूप ही काम्य है। नारी के विमोहक सौंदर्य का अंकन, उसके मनोविज्ञान का निरूपण, श्रृंगार-सज्जा का अदभुत वर्णन ही कवि का कार्य रहा है। ''नारी के रूप-चित्रण में उनकी सूक्ष्मदर्शिनी कल्पना, वर्णनात्मक प्रतिमा और रसपूर्ण दृष्टि उसके शरीर की मांसलता और कमनीयता पर ही फिसल गई। उसके अभ्यंतर तक पहुँचने में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली।'' (पाण्डे, पृ.161)

आधुनिक-काल में नवीन चेतना का विकास हुआ। अनेक धर्म-सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ जिनका मुख्य उद्देश्य था नारी जाति का उद्धार करना। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, केश्वचंद्रसेन, एनीबेसेण्ट जैसे धर्म-सुधारकों ने सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, देवदासी प्रथा जैसी सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों पर कड़ा प्रहार किया।

भारतेन्दु स्त्री-शिक्षा के समर्थक थे इसीलिए उन्होंने 'बाल-बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। वह स्त्री शिक्षा को समाज की उन्नति के लिए आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि जिस प्रकार अंग्रेज स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती हैं, बच्चों को शिक्षा देती है, अपने घर, समाज तथा देश की संपति-विपति को समझती है। वह अपना सम्पूर्ण जीवन घर की दासी तथा कलह में नहीं व्यर्थ नहीं करती। यह परिकल्पना 19वीं शताब्दी के नवजागरण का प्रमुख आयाम है। 'कवि वचन सुधा' पत्रिका के माध्यम से

उन्होंने नारी प्रगति को एक नई दशा प्रधान की और स्त्री-पुरुष समानता पर विशेष बल भी दिया जिसकी पंक्ति इस प्रकार है-

''खल गगन सो सज्जन दुखि मति होंहि, हरि पदमतिरहै
अपधर्मछुटें, स्वत्व निज भारत गहे, कर दुख बहै।।
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होहि, जग आनंद लैह,
तज ग्राम कविता सुकवि जनकी, अमृत बानी सब कहै।। (शम्भूनाथ, पृ. 96)

भारतेन्दु ने अपने नाटकों के माध्यम से भी नारी शक्ति को सिद्ध किया। नील देवी नाटक में एक ऐसी नारी को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है जो पतिव्रता है, धर्म का पालन करने वाली है और स्त्री क्षमता को स्वर देने वाली आदर्श नारी है। वैदिकीहिंस हिंसा न भवति में भी भारतेंदु ने हिन्दी प्रदेश की जनता के बीच विधवा-विवाह के प्रचार का प्रयास किया।

बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंध 'हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा' में स्त्रियों की दुर्दशा का प्रमुख कारण 'हिन्दुस्तान की परिवर्तन विमुखता' को माना है। आधुनिकता तो पनप रही थी पर केवल पुरुष ही इसका लाभ उठाने में स्मर्थ थे। स्त्रियों का अशिक्षित होना था तथा घर की चार दीवारियों में केद होना ही मूल कारण है। बालकृष्ण भट्ट निबंध में लिखते हैं-

श्रीनिवासदास ने भी अपने नाटकों में रणधीर प्रेम मोहिनी और संयोगिता स्वयंवर में प्रेम-विवाह का समर्थन इस उद्देश्य से किया है ताकि स्त्री की रुचि को महत्त्व दिया जाए।

द्विवेदी-युग में मानवतावादी विचारधारा का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा। इस युग तक आते-आते नारी उच्च भावना का प्रतीक बन गई थी। राजनीतिक कारणों से स्त्री पुरुष के समान अधिकारों को प्राप्त करने में सक्ष्म हो रही थी। वह पुरुषों की भाँति स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग ले रही थी। द्विवेदी-युग के रचनाकारों ने नारी के महान रूप का चित्रण करते हुए स्त्री-शिक्षा, स्त्री श्रम, उसके अधिकार, स्त्री-पुरुष समानता आदि को वाणी दी। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका में भी स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हुए 'स्त्री-शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खण्डन' नामक निबंध में लिखा-

''पढ़ने लिखने में स्वयं कोई बात ऐसी नहीं जिससे अनर्थ हो सके। अनर्थ का बीज इसमें हरगिज नहीं। अनर्थ पुरुषों से भी होते हैं, अपढ़ों और पढ़े लिखे दोनों से। अनर्थ दुराचार और पापाचार के कारण और ही होते हैं और वे व्यक्ति-विशेष का चाल-चलन देखकर जाने भी जाते हैं। अतएव स्त्रियों को अवश्य पढ़ना चाहिए।'' (चतुर्वेदी, पृ 45)

मैथिलीशरण गुप्त ने समाज की उन्नति के लिए स्त्री-शिक्षा, स्त्री स्वतंत्रता, समानता और न्याय को आवश्यक माना। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री पात्रों में युगानुरूप परिवर्तन कर नारी का आदर्श रूप की संकल्पना की।

छायावाद पर सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव प्रखर रूप से पड़ा। सांस्कृतिक नवजागरण ने समाज की युगीन व्याख्या की और नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा की। जिसके फलस्वरूप छायावादी रचनाकारों ने स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, नारी मुक्ति तथा अन्य स्त्री संबंधी समस्याओं को गंभीरता से दर्शाया। निराला ने अपने काव्य में स्त्री की विवश्ता, उसकी दयनीय दशा, वैषम्यों तथा कुरीतियों का जमकर विरोध किया। वह उच्च वर्ग की नारी शिक्षा के साथ-साथ निम्न वर्ग की नारी शिक्षा के समर्थक थे। वह लिखते हैं-

''जो संपन्न हैं, जिन्हें दोनों वक्त मजे से भोजन मिल जाता है, वे भी बालिकाओं की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते, बल्कि उच्च स्वर से यही घोषणा करते हैं कि लड़कियों को शिक्षा देना पाप है, वे बिगड़ जाती हैं। पीछे माता-पिता को समाज में रहने लायक भी नहीं रखती'' (चतुर्वेदी, पृ 170)

पंत भी स्त्री के परम्परागत रूप का निषेध करते हैं-

योनि नहीं है रे वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में चित्रित नारी को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है एक वर्ग में नारी प्रताड़ित है, दूसरे वर्ग में नारी स्वाभिमानिनी एवं विद्रोहणी बनी जो सामाजिक कुरीतियों व शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती है पर यह संघर्ष अपनी चरम सीमा तक नहीं पहुँच पाता तथा तीसरे वर्ग नारियों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखता। अतः प्रेमचंद युग में नारी का मानसिक विकास हुआ।

प्रेमचंदोत्तर युग के साहित्य में नारियों का अहंवाद प्रबुद्ध है, विसर्जन की वृति प्रबल रही और उनका चरित्र आदर्शों की भाव भूमि पर आधारित रहा। इस अवधि में मार्क्सवादी और मनोविशलेषण विचारधारा का प्रभाव पड़ा। नारी पर होने वाले अत्याचार एवं शोषण का तीव्र विरोध हुआ। धीरे-धीरे नारी पुरुषों के समान सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने लगी। आज की नारी तीन श्रेणियों में विभक्त है-उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथ निम्न वर्ग। उच्च वर्ग की नारी शिक्षित है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र है, उच्च पदों पर कार्यरत है, पुरुष वर्चस्व को त्याग चुकी है। मध्य वर्ग की नारी जो शिक्षित है, आर्थिक स्वतंत्र के लिए प्रयास कर रही है, वह पुरुष वर्चस्व को ढोती है तथा मूलभूत अधिकारों को भाग्य मानकर संतुष्ट है। निम्न वर्ग की नारी अशिक्षित है जो परिश्रम करके घर के आर्थिक स्वतंत्रता में सहभागिता करती है फिर भी दयनीय जीवन जीने पर विवश है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि आधुनिकता

एक संकल्पना है, विचारधारा है जिसके परिणामस्वरुप मनुष्य अपने उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं। आधुनिकता के परिणामस्वरूप ही सामाजिक रूढ़ियों तथा परम्पराओं का दमन हुआ और स्त्री की दशा को सुधारने हेतु प्रेरित किया।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. Mookerji, RadhaKumud. *HindiCivilization*, Stephen Austin & sons, Hertford, 1936
2. Altekar, (Dr.) A.S.*The Position of Women in Hindu Civilisation*, Banaras Hindu University, 1938
3. पाण्डेय, (डॉ.) उषा. *मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना,* हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1959
4. वर्मा, (डॉ.) रामकुमार. *हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,* रामनारायणलाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, 2010
5. कौर, (डॉ.) अरविन्द. *महादेवी वर्मा के साहित्य में स्त्री छवि,* संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016
6. शम्भूनाथ (प्रो.). *भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण,* प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2009
7. चतुर्वेदी, जगदीश्वर. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018

नाइराह कुरेशी
शोधार्थी/असिस्टेंट प्रोफेसर
कश्मीर विश्वविद्यालय
जम्मू व कश्मीर

राजेंद्र बड़गूजर का काव्य : दलित जन जागरण का अभियान

–डॉ. बिजेंद्र कुमार

शोध आलेख सार : हम सब यह जानते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य के माध्यम से ही समाज की स्थिति का पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार साहित्य के द्वारा समाज को नई दिशा प्रदान कर, उसमें जन-जागरण का कार्य किया जा सकता है। प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य अपने इस महान कार्य को करता आ रहा है, इसकी भाषा चाहे कोई भी रही हो। प्राचीन काल में संस्कृत भाषा से होते हुए साहित्य की यह परंपरा हिंदी भाषा के साहित्य में पहुंचकर एक विस्तृत फलक को ग्रहण करने लगी है। यहां साहित्य केवल मनोरंजन की वस्तु न होकर आम जनता तक गहरे रूप में प्रवेश करता चला गया। मध्यकाल से होते हुए और आधुनिक काल में प्रवेश करते हुए हिंदी साहित्य पूर्णतया सामान्य जन के मार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया है। 20वीं शताब्दी में आकर हिंदी साहित्य की विधा काव्य में अनेक वाद एवं धाराएं बह निकलीं जो विभिन्न वर्गों, समुदायों, धर्म, पंथों आदि की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। उनमें एक महत्वपूर्ण धारा है- दलित साहित्य की। जिसने सदियों से दबे-कुचले, पीड़ित-प्रताड़ित, शोषित समाज को अपना दर्द व्यक्त करने के लिए मंच एवं वाणी प्रदान की। जिस समाज को शूद्र या दलित समझ लिए जाने के कारण हाशिए पर धकेल दिया गया था उस समाज के मनुष्य को शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध जागरूक कर, उनके अधिकार दिलाने का पावन कार्य भी दलित समाज के कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से किया है और निरंतर इस कार्य में आहुति डाल रहे हैं। यूं तो अनेक दलित हस्ताक्षर हुए हैं, जिन्होंने दलित समाज को जागरूक करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इनमें मोहनदास नैमिशराय, हरकिशन संतोषी, सूरजपाल चौहान, श्योराज सिंह बेचैन, डॉ. कुसुम वियोगी, एन. आर. सागर, लक्ष्मीनारायण सुधाकर, मलखान सिंह, हीरा डोम, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, तुलसीदास, रजनी तिलक, धर्मवीर भारती आदि के साथ डॉ. राजेंद्र बड़गूजर भी दलित साहित्य के बड़े हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से दलित जन-जागरण का अभियान चलाया। प्रस्तुत शोध आलेख का विषय भी राजेंद्र बड़गूजर का काव्य : दलित जन-जागरण का अभियान लिया गया है, ताकि दलित जन-जागरण के इस महान कार्य में राजेंद्र जी की भूमिका को विद्वत जनों एवं सामान्य जनों के सम्मुख रखा जा सके।

बीज वाक्य : राजेंद्र बड़गूजर, काव्य, दलित जन-जागरण, सामाजिक सौहार्द, शिक्षा, समानता आदि।

राजेंद्र बड़गूजर का काव्य : दलित जन जागरण का अभियान

प्रस्तावना : हिंदी काव्य अपने प्रारंभ से ही सामान्य एवं विशिष्ट जनों की आवाज बनकर उभरा है। कुछ हिंदी साहित्य अवश्य ऐसा रहा है जिसमें सामान्य जन की अवहेलना की और राजा अथवा आश्रयदाता की प्रशंसा में ही सम्मिलित रहा है। यह साहित्य ऐसे कवियों द्वारा लिखा गया है जो धन, यश और सम्मान आदि के लिए लिखते थे। जिनका संभवतः सामान्य जन से कोई सरोकार नहीं था। इसे वास्तव में कवि कर्म नहीं कहा जा सकता। मध्यकाल के रीतिकाल में संभवतः यह दौर ऐसा था जहां कुछ कवियों का अपना कोई नैतिक एवं सामाजिक दायित्व नहीं रह गया था। इसी का परिणाम था कि आधुनिक युग में जो कवि हुए वह परआश्रित ना होकर स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य करने लगे और सामान्य जन के साथ राष्ट्र की भी आवाज बने। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा पीड़ितों, प्रताड़ितों, शोषितों, दलितों, किसानों तथा मजदूरों की आवाज बने। इस दृष्टि से मुंशी प्रेमचंद जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो गरीबों, मजदूरों एवं किसानों की आवाज बनकर उभरे। जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से शोषित एवं पीड़ित सामान्य जन को अपने अधिकार के प्रति जागरूक किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भी जब यह शोषण एवं दमन का चक्र निरंतर चलता रहा तो अनेक कवि हुए जो दलितों एवम् शोषितों की आवाज बनकर उभरे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो अधिकार दलितों एवं शोषितों को मिलने चाहिए थे, जागरूकता के अभाव में वे उन्हें न मिल सके। बल्कि इसके विपरीत उन्हें शूद्र या दलित घोषित कर, समाज की मुख्यधारा से दूर कर हाशिए पर धकेल दिया गया। उन्हें जो

रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा का अधिकार मिलना चाहिए था, वह भी विशेष वर्ग द्वारा उनसे छीन लिया गया। हालांकि भारतीय संविधान में दलितों एवम् शोषितों को अनेक अधिकार दिए गए थे, लेकिन अशिक्षा, अज्ञानता और जागरूकता की कमी के कारण यह समाज अपने लिए उन्नति के मार्ग खोज नहीं पाया और तथा-कथित श्रेष्ठों द्वारा हेय दृष्टि से देखे जाने के कारण भी दलित जनमानस स्वयं को निकृष्ट समझने लगा तथा इसे ही अपना भाग्य मानने लगा। ऐसे में अनेक दलित कवि हुए जिन्होंने हाशिए पर गए समाज में आत्मविश्वास पैदा करने का महान कार्य किया। दलित या शूद्र समझे जाने वाले व्यक्ति को अपने काव्य के माध्यम से यह समझाने का कार्य किया कि व्यक्ति अपने कर्मों से महान होता है ना की जाति से श्रेष्ठ होता है। इस दलित जन-जागरण के पवित्र कार्य में प्रसिद्ध दलित हस्ताक्षर डॉ. राजेंद्र बड़गूजर ने विशेष भूमिका निभाई है। चूंकि वह स्वयं दलित समाज से आते हैं तो उन्होंने स्वयं दलित होने की पीड़ा को भोगा है। इस दलित होने की पीड़ा को भोगते हुए भी उन्होंने अपने आत्मविश्वास को नहीं खाया और स्वयं को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया। इसी व्यक्तिगत जागरूकता को उन्होंने अपने काव्य में व्यक्त कर दलितों के जन-जागरण का अभियान चलाया। उनका मानना है कि पहले हमें स्वयं को जागरूक करना होगा और शोषण के विरुद्ध खड़ा होना। 'आवाज' कविता में कवि संदेश देता है कि यह जीवन जीने के लिए मिला है, इसको स्वतंत्रतापूर्वक जीना चाहिए। उदाहरण देखिए-

''कल तक शोषण के घुट पिये
पर अब तो सह ना पाऊंगा
जीवन जीने को आया हूं
जीवन जीकर ही जाऊंगा
बैठ हमारी गर्दन पर
तूने जीना दुश्वार किया
पर अब तो हे शोषण वालों
मैंने भी सीना तान लिया।''[1]

'मुझे परवाह नहीं है' कविता में से एक अन्य उदाहरण देखिए जहां कवि स्वयं के जागरण द्वारा दलित व्यक्तियों को जागना चाहता है। वह स्वयं कह रहा है कि यह जीवन एक बार ही मिलता है इसलिए इसको किसी के डर से व्यर्थ मत गवाओ। बल्कि सभी मुश्किलों एवं बाधाओं को पीछे छोड़कर जियो, तभी जीवन की सार्थकता है। यथाः

''सुनो- / मैंने भी ठान लिया है
जीवन एक बार ही मिलता है।
मैं / अपने हिस्से का / उत्स / एवं
स्वाभाविकताएं / जीकर ही जाऊंगा
तुम कितनी ही वर्जनाएं ढाओ/अब
मुझे परवाह नहीं है।''[2]

कवि जानता है कि जब तक व्यक्ति अपने आप को नहीं पहचानेगा, उसे अपनी शक्ति का एहसास नहीं होगा, तो वह शोषण का प्रतिकार भी नहीं कर सकेगा। इसलिए दलित कवि दलित समझे जाने वाले जन मानस को जागृत करता है। राजेन्द्र बड़गूजर की ही भांति 'भीख नहीं अधिकार चाहिए' काव्य-संग्रह के रचयिता दलित कवि सुरेश पंजम दलितों को जगाने के लिए उन्हें, शेर कहकर पुकारता है और अपनी शक्ति को पहचानने का आह्वान करता है। उदाहरण देखिए-

''अपनी शक्ति को पहचानो
तुम शेर हो शेर की औलाद
तोड़ दो गुलामी की जंजीरें
खदेड़ दो गीदड़ों को गजराज।''[3]

इसी प्रकार कवि राजेंद्र बड़गूजर भी दलित जनों को जागरूक करते हुए कहते हैं कि हमें शाश्वत जड़ता से लड़ना है और गुलामी की मानसिकता को उखाड़ फेंकना है जो हमारी उन्नति में सबसे बड़ी बाधा है। उदाहरण दृष्टव्य हैः-

''मुझे लड़ना है / पस्त हो जाते रहने की
शाश्वत जड़ता से
मुझे लड़ना है / मालिक जमींदार से
जिसके समक्ष जाते ही
पिता की आंखों में / उभर आती
करुणा विवशता से
मुझे लड़ना है / हमेशा हार मान लेने वाली
आदतन मानसिकता से।''[4]

इस प्रकार कवि व्यक्तिगत जागरण की बात करता है। उनका मानना है कि आज के आधुनिक एवं तकनीकी युग में जब तक व्यक्ति स्वयं जागरूक होकर कार्य नहीं करेगा, तब तक उसके अधिकार सुरक्षित नहीं है। इसलिए कवि अपने काव्य के माध्यम से दलित जन मानस के जागरण का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। साहित्यकार एवं प्रोफेसर राजेंद्र बड़गूजर का विश्वास है कि जब मनुष्य स्वयं जागरूक हो जाता है, तभी वह समाज को जागरूक कर सकता है और समाज में फैली विषमता की खाई को मिटाकर, समता की भावना को स्थापित कर सकता है। इससे न केवल सामाजिक सौहार्द बनाए रखा जा सकेगा, बल्कि जीवन भी आनंदित हो जाएगा। आज वह अपने दलित भाइयों को यही संदेश दे रहे हैं। 'ये जाहिर है' कविता से एक उदाहरण देखिए जहां वह दलितों को जागरूक करते हुए कह रहे हैं कि 21वीं सदी हमारी होगी। यथा-

''यह जाहिर है / इक्कीसवीं सदी हमारी होगी
तुम यह जान लो।
तुम्हारी और हमारी के बीच का अंतर

मैं मिटा दूंगा...
तुम अगर साथ दोगे तो / तुम्हें भी
समता की भावना का पाठ पढ़कर
अपने साथ जोड़ूंगा / फिर देखना
एक दूसरे को बराबर समझते हुए
जिंदगी कितनी सरल हो जाती है
काम करने में कितना आनंद आता है।''[5]

राजेंद्र जी बताना चाहते हैं कि हम अपने आप को किसी से दीन-हीन ना समझे। वह दलित समाज के लोगों को जागरुक करते हुए कहते हैं कि प्रकृति सभी को समान भाव से सर्वस्व प्रदान करती चलती है। वह किसी से भेदभाव नहीं करती, सबके निर्माण में सहायक बनती है। इसलिए हमें प्रकृति से शिक्षा लेकर स्वयं को आगे बढ़ाना है। अपना निर्माण करना है। हम उस परम तत्व की संतानें हैं, दीन-हीन नहीं हैं। हीनता के इस भाव को हमें त्यागना होगा। उदाहरण देखिए-

''मेरी शिक्षा मुझको कहती है
सम प्रकृतिस्थ गंगा बहती है
इस धरती के हर जीवन को
रवि किरणें जिंदा रखती हैं
फिर मैं दीन किसी से क्यूं हूं
मैं खुद को गढ़ने लगता हूं
जब जब मैं बढ़ने लगता हूं।''[6]

दलित कवि का मानना है की प्रकृति किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं करती। भेदभाव केवल मानव करता है जो कि अनुचित एवं प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है। जब तक समाज में भेदभाव एवं शोषण का खेल चलता रहेगा, तब तक समाज उन्नति नहीं कर सकता। राष्ट्र की उन्नति एवं समृद्धि के लिए भी समानता का भाव आवश्यक है। इस समानता के लिए स्वयं के जागरण के साथ-साथ शिक्षा को ग्रहण करना अति आवश्यक है। दलितों को अगर शोषण से मुक्ति प्राप्त करनी है तो पहले उसे शिक्षित होना होगा। 'शोषण पीस नहीं सकता है' नामक कविता के माध्यम से कवि समझाना चाहता है कि शोषण की जड़ अज्ञानता है और भारतवर्ष की अवनति का कारण जातिवाद है। इसे शिक्षा द्वारा समाप्त करके भारत का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। बहुत ही सार्थक उदाहरण देखिए-

''पढ़ा लिखा कर बच्चे बच्चे को
फौलाद बना देंगे हम भाई
भीमराव भारत रत्न की सच्ची
औलाद बना देंगे हम भाई।
बंधी मुट्ठियों से शोषण के
नभ को फोड़ेंगे हम भाई
जय भारत का आगाज करेंगे
जाति को तोडेंगे हम भाई।''[7]

शिक्षा प्राप्त करके ही अज्ञानता एवं शोषण को समाप्त किया जा सकता है। इसलिए कवि स्कूलों को खोलने का आह्वान कर रहा है। शिक्षा के द्वारा ही सब भेदों को समाप्त किया जा सकता है। 'खोलो स्कूल' कविता से एक उदाहरण दृष्टव्य है।

''अब समय आ गया है / अंधकार छा गया है
अब तुम करो ना भूल / खोलो स्कूल! खोलो स्कूल!
सारे आंदोलन फीके पड़ते जाते हैं
कर विभाजित हमको वो आंखें दिखलाते हैं
शिक्षा ही है सब संघर्षों का मूल
खोलो स्कूल! खोलो स्कूल!''[8]

शिक्षा ही हमें तर्कशील बनती है, उचित अनुचित का भेद बताती है। इसलिए दलितों, शोषितों एवं हाशिए पर गए समाज के लिए प्रथम दलित महिला शिक्षिका सावित्री फुले ने शिक्षा की ज्योति जलाकर, उसे अज्ञानता से ज्ञान की ओर अग्रसर किया। उसके इस महान कार्य ने समाज से भेदभाव को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और दलित समाज में जन जागरण का आंदोलन खड़ा हो गया। जब हाशिए पर गया समाज शिक्षा ग्रहण कर मुख्य धारा में आएगा तो वह तर्कशील बनेगा। तब वह तर्कशील व्यक्ति अंधविश्वासों से दूर होकर राष्ट्र निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। जिससे सब ओर खुशियों के पुष्प महकेंगे। 'अब हो जाओ तैयार' कविता से एक उदाहरण देखिए-

''साथ हमारे मां सावित्री फुले /स्वर होंगे अपने मिले-जुले
शिक्षा से अंधकार भागता/जीवन बगिया में पुष्प खिले
करें हम तर्क का प्रहार / फिर कांपेगा अंधकार
एक दूजे का हाथ थामकर/मुश्किल को करना है पार।''[9]

इस प्रकार कवि शिक्षा के माध्यम से दलितों को जागरुक कर रहा है। साथ में वह समाज के उच्च एवं कुलीन जनों को संदेश भी दे रहा है कि हम सब भारत माता की संताने हैं, हम सब एक हैं, हमें आपसी संघर्ष एवं भेदभाव को छोड़कर समता, समानता आदि के भाव को अपनाना होगा। नहीं तो यह आपसी द्वेषभाव एवम् संघर्ष हमें विनाश की ओर ले जाएगा। वह समझता है कि सूर्य, चंद्रमा, हवा, पानी, भारत माता, धरती माता आदि किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं करते, सभी प्राणियों को समभाव से सब कुछ अर्पित करते रहते हैं। इसलिए स्वयं को श्रेष्ठ समझने वाले व्यक्तियों को भी इस तथ्य को समझना होगा, ताकि सभी भारतवासी भारत माता की सेवा में समर्पित होकर राष्ट्र के निमित्त कार्य कर सकें। 'कौन हैं वे' कविता से इसी श्रेष्ठ भाव का एक उदाहरण देखिए-

''क्या कहता है? / चंद्रमा - /कि /उसके लिए सब समान हैं
वह सभी को शीतलता देता है / वह नहीं करता

मानव-मानव में फर्क... क्या कहता है- /सूर्य?
वह सबको जलाने में/ या कि /सबको जिलाने में
समभाव रखना है
वह आदमी आदमी में कोई भेदभाव नहीं करता
वह मानव जाति की कश्ती में कोई छेद नहीं करता
क्या कहती है- / धरती? / माता है वह सबकी
माता के लिए तो उसकी सब संतानें
एक होती हैं।''[10]

इस प्रकार राजेंद्र बड़गूजर दलितों के जन-जागरण के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण हथियार मानते हैं और संपूर्ण समाज की उन्नति के लिए हाशिए पर गए समाज का जन-जागरण कर मुख्यधारा में शामिल करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। तभी समाज में समता का भाव पैदा होगा और इसके लिए अपने को श्रेष्ठ समझने वाले समाज को भी यह समझना होगा कि प्रकृति भी अपने संसाधनों को सबके लिए समान भाव एवम् उदारता के साथ समर्पित कर देती है और किसी के साथ वह कोई भेदभाव नहीं करती है। हमें भी इस भेदभाव को मिटाना होगा ताकि समाज का सर्वांगीण विकास हो और भारतवर्ष उन्नति के शिखर पर पहुंच सके।

उपसंहार : उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि प्रोफेसर राजेंद्र बड़गूजर ने अपने काव्य के माध्यम से हाशिए पर गए दलित समाज को जागरूक कर मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया है। उनका काव्य जहां अपने को श्रेष्ठ समझने वाले कुछ तथाकथित लोगों के विरुद्ध संघर्ष का बिगूल फूँकता है और उनको जाति, वर्ण, वर्ग, समुदाय आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करने के लिए प्रेरित करता है, वहीं दलित जनों को शिक्षा ग्रहण करने, स्कूल खोलने के लिए प्रेरित करता है। वह बताना चाहता है कि अज्ञानता, अंधविश्वास, पाखंड, भेदभाव आदि को समाप्त करने के लिए शिक्षा रूपी प्रकाश की आवश्यकता है। शिक्षा प्राप्त करके ही समाज से भेदभाव को समाप्त किया जा सकता है। डॉ. भीमराव अंबेडकर, शिक्षिका सावित्री फुले, मान्यवर ज्योतिबा फुले जैसे व्यक्तियों के महान होने का सबसे बड़ा कारण उनका शिक्षित होना ही है। इसलिए हाशिए पर गया दलित समाज शिक्षा की ज्योति द्वारा अपने आप को पहचान कर समाज, राष्ट्र एवं विश्वबंधुत्व के लिए कार्य करेगा, तभी भारतवर्ष उन्नति के नए शिखर को प्राप्त करेगा। जब संपूर्ण भारतवासी इस तथ्य को समझ जाएंगे कि 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' में ही सबका कल्याण है, तो समाज में समता का भाव स्थापित हो जाएगा। फिर ऐसे समाज का निर्माण होगा जहां ऊँच-नीच, जाति-पाति, पंथ-संप्रदाय आदि के लिए कोई स्थान नहीं होगा, यह सब दलित समाज को जागररूक कर मुख्यधारा में लाने से ही संभव होगा। ऐसा होने से ही भारत अपने विश्व गुरु के स्वप्न को साकार कर सकेगा। इसी के लिए कवि प्रयासरत है। हम सबको मिलकर इस पावन कार्य में अपने श्रेष्ठ होने, उच्च जाति का होने आदि के अहं का त्याग करके, समता, समानता, भाईचारे, बंधुत्व आदि के भाव को धारण करके, कर्मयोगी बनकर सच्ची श्रेष्ठता को प्राप्त करेंगे और तभी एक भेदभाव रहित उच्च कोटि के समाज का निर्माण कर सकेंगे। यही इस शोध आलेख को लिखने का उद्देश्य है।

संदर्भ

1. बड़गूजर, राजेंद्र, मनु का पाप (दलित कविता संग्रह), सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, 2003, पृष्ठ-24
2. बड़गूजर, राजेंद्र, कुछ मत कह देना, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2012, पृष्ठ-55
3. पंजम, सुरेश, भीख नहीं अधिकार चाहिए, संगीता प्रकाशन, लखनऊ, 1995, पृष्ठ-13
4. बड़गूजर, राजेंद्र, भीड़ी गलियाँ तंग मकान, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2010, पृष्ठ-43
5. बड़गूजर, राजेंद्र, कुछ मत कह देना, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2012, पृष्ठ-23
6. बड़गूजर, राजेंद्र, मनु का पाप (दलित कविता संग्रह), सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, 2003, पृष्ठ-71
7. बड़गूजर, राजेंद्र, भीड़ी गलियाँ तंग मकान, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2010, पृष्ठ-107
8. बड़गूजर, राजेंद्र, भीड़ी गलियाँ तंग मकान, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2010, पृष्ठ-81
9. बड़गूजर, राजेंद्र, कुछ मत कह देना, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2012, पृष्ठ-35
10. बड़गूजर, राजेंद्र, भीड़ी गलियाँ तंग मकान, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2010, पृष्ठ-83-84

डॉ. बिजेंद्र कुमार
सह-आचार्य,
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, साम्बा, जम्मू और कश्मीर
मोबाइल 9416678761
ईमेल- bijenderkumar30@gmail.com

युद्ध और विभाजन का स्त्री जीवन पर प्रभाव

–तसनीम कौशर

सारांश : साहित्य समाज और इतिहास के संबंधों के विभिन्न स्तर और आयाम का अवधारणात्मक अध्ययन और मानव जीवन के विविध परिप्रेक्ष्य में उसका समग्र विवेचन आज के साहित्यिक विमर्श की अनिवार्य जरूरतों में से एक है। इसी क्रम में विश्व में हुए युद्ध के फलस्वरूप स्त्रियों पर जो अन्याय और अत्याचार हुए उसको केंद्र बिंदु बनाकर साथ ही साथ विभाजन से उपजे पलायन के कारण भी स्त्रियों का शोषण और उत्पीड़न हुआ। उन विषयों पर अध्ययन करना इस शोध लेख का उद्देश्य रहेगा।

मुख्य शब्द :- युद्ध, स्त्री, त्रासदी, विभाजन, संघर्ष, शोषण, पलायन, बलात्कार

प्रस्तावना :- युद्ध का परिणाम ज्यादातर विनाशकारी होता है। लेकिन युद्ध कभी-कभी मजबूरी बन जाती है। ऐसा लोग कहते हैं। आत्म रक्षार्थ (अहम्) यह देश की सुरक्षा के लिए कभी-कभी युद्ध लड़ने पड़ते हैं लेकिन परिणाम....। एक वास्तविकता यह भी है कि युद्ध की स्थिति उस देश के लोगों में कर्तव्यपरायणता, राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत कर देती है। युद्ध के बाद की स्थिति का आकलन करते हुए जो स्थिति दृष्टिगोचर होती है। वह किसी भी रूप में वांछनीय नहीं होती। युद्ध से जो सामाजिक विघटन होता है उससे व्यक्ति, समाज और देश का संतुलन बनाना चुनौतीपूर्ण कार्य बन जाता है।

विज्ञान और तकनीक के विकास ने युद्ध को और विनाशकारी बना दिया। पहले जब दो सेनाएं आपस में लड़ा करती थीं तो उनका क्षेत्र सीमित होता था अब यह क्षेत्र असीमित हो गया है। अब युद्ध राष्ट्र के जनजीवन को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि प्रकृति का विनाश भी करता है। मानव जीवन ही नहीं संपूर्ण जीव जगत पर युद्ध का दुष्प्रभाव पड़ता है। युद्ध अनेकों जीवन को लील जाता है। परिवार चलाने वालों का खात्मा कर देता है। जिससे अपराध तथा वेश्यावृत्ति जन्म लेती है। आणविक प्रहारों से कितने कल कारखाने तबाह हो जाते हैं जिससे सामाजिक विघटन होता है और भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता का बाजार निर्मित होता है।

वर्चस्ववादी मानसिकता के कारण युद्ध होता है, जिससे विनाश ही मिलता है। युद्ध एक तरह से पुरुषों को सामाजिक तथा राजनीतिक रूप से पुष्ट करता है। युद्ध काल में यह नकारात्मक सोच उत्पन्न होती है कि स्त्रियां युद्ध नहीं लड़ सकती। वह प्रत्यक्ष रूप से युद्ध में सम्मिलित नहीं होती लेकिन उसी का बाप, भाई, पति, बेटा युद्ध लड़ रहा होता है। युद्ध ने सबसे ज्यादा प्रभावित स्त्रियों को ही किया है। युद्ध के कारण जो कुप्रभाव पड़ता है वह अनेक स्तरों पर होता है। परिवार से समाज तथा समाज से देश बनता है और स्त्री उसी परिवार की केंद्र बिंदु होती है। इस तरह युद्ध के कारण जो कुप्रभाव पड़ता है उसका सीधा असर स्त्रियों पर पड़ता है।

युद्ध विनाशकारी होता है मानव अस्तित्व को खत्म करने वाला। जहां पुरुषों की नियति में मौत लिखा होता है। इस मौत से सामाजिक अव्यवस्था फैलती है और अर्थव्यवस्था चौपट हो जाती है। युद्ध विश्व शांति के लिए घातक होता है जिसमें स्त्रियां चारों ओर से गिर जाती है और युद्ध की विभीषिका की सबसे ज्यादा भुक्तभोगी स्त्री ही होती है।

युद्ध के दौरान हिंसा, बलात्कार, यौन अपराध, लूटपाट, अपहरण जैसे अमानवीय कृत्य महिलाओं की अस्मिता को कुचल देते हैं। जिसके कारण मानसिक दिवालिया होने की कगार पर स्त्रियां पहुंच जाती है। विश्व स्तर पर अनेक संस्थाओं तथा संगठनों ने भी युद्ध के दौरान स्त्रियों की स्थिति पर अपने अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। संयुक्त राष्ट्र की मानवीय विकास रिपोर्ट के मुताबिक ''युद्ध के दौरान जनसंख्या के अस्त व्यस्त होने के संदर्भ में स्त्री और बच्चे शरणार्थी जनसंख्या का 80% हिस्सा होते हैं। विश्व स्तर पर होने वाले सशस्त्र विवादों के फल स्वरुप यह शरणार्थी जनसंख्या 1970 में 30 लाख से बढ़कर 1994 में 2 से 7 करोड़ तक पहुंच गई। यह रिपोर्ट बोस्निया में युद्ध के दौरान होने वाले बलात्कारों के विषय में अपने अनुभव प्रस्तुत करती है। इसके अनुसार युद्ध के दौरान बलात्कार सिर्फ एक दुर्घटना नहीं

होता वरन क्रमबद्ध युद्ध राजनीति का हिस्सा होता है।''[1]

बलात्कार एक ऐसा नृशंस कृत्य है जो स्त्री की पहचान को ही खत्म कर देता है। शांति काल में जो बलात्कार होते हैं उससे ज्यादा अमानवीय बलात्कार युद्ध काल में होते हैं। युद्ध काल में किए गए बलात्कार स्त्रियों को लंबी अवधि तक मानसिक प्रताड़ना पहुंचाती है। क्रिस्टीनटी हेगन अपनी शोध द नेचर एंड साइकोलॉजिकल कंसीक्वेंसेस ऑफ वार रेपफोर में युद्धकालीन बलात्कार की गहन पड़ताल करते हुए इसकी पांच विशेषताएं बताती हैं-(1) व्यापकता (2) सार्वजनिक घटनाक्रम (3) बर्बरता (4) दासता (5) नैतिक सफाई। यहां वह लिखती हैं-''द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान लगभग 19 लाख महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ। पाकिस्तानी सैनिकों ने बांग्लादेश की लगभग दो लाख महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किया। क्रोएशिया, बोस्निया तथा हर्जेगोविना में युद्ध के दौरान लगभग 60 हजार बलात्कार के मामले सामने आए। 1994 में रवांडा के गिरी युद्ध में लगभग 2.5 से 5 लाख महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किए गए। आगे वे बताती हैं एक अनुमान के अनुसार युद्ध के दौरान 91 प्रतिशत बलात्कार सामूहिक होते हैं।''[2]

गरिमा श्रीवास्तव 'देह ही देश' में लिखती है कि ''स्त्रियों के देह पर नियंत्रण करना युद्ध नीति का ही एक हिस्सा होता है। जिससे तीन उद्देश्य सधते हैं- पहला, आम नागरिकों में भय का संचार दूसरा, नागरिकों का विस्थापन और तीसरा, सैनिकों को बलात्कार की छूट देकर पुरस्कृत करना।''[3]

विभाजन एक त्रासदी होती है। जिसका सबसे ज्वलंत उदाहरण भारत का विभाजन है। विभाजन से उपजे त्रासदी ने हमारे साहित्यकारों को झकझोर दिया फलस्वरूप उनकी रचनाओं में स्त्रियों की स्थिति, उनकी दुरावस्था का कारुणिक तथा हृदय विदारक चित्र उभरकर सामने आया तथा स्त्रियों के संघर्ष की दास्तां तथा मानवीय पक्ष भी इतिहास के पन्ने में दर्ज हो गए। पितृसत्तात्मक या यूं कहिए पारंपरिक समाज मैं स्त्रियां आज भी अपना वजूद एक वस्तु के रूप में पाती है। इससे मुक्त होने की छटपटाहट तथा अपनी अस्मिता को स्थापित करने का यत्न दिखाई देता है। देह से परे इस समाज में स्त्रियों की कल्पना नहीं की जाती है। जो सिर्फ पुरुषों की इच्छा पूर्ति अर्थात कामवासना को तृप्त करने का एक माध्यम भर है। इस कारण स्त्रियों की अत्यधिक दुर्गति हुई। विभाजन या सांप्रदायिकता के दौरान इन स्त्रियों के पिता, भाई, पति, पुत्र ने संबंधों की आहुति दे दी। उन्हें सिर्फ उपभोग की वस्तु मानते रहे। जबरन सामूहिक बलात्कार किए जाते हैं दूसरे धर्म की स्त्री को उठाकर भोगने के लिए अपने घर में रखते। मन भर जाने पर या आर्थिक तंगी के समय उनको बेच दिया जाता। कुत्सित मनोरंजन के लिए उनके अंगों को काटा जाता।

विभाजन की यात्रा का स्वरूप पुरुषों और स्त्रियों पर भिन्न-भिन्न तरह से रहा। यह बात विभाजन केंद्रित उपन्यासों में बिल्कुल स्पष्ट है। इस संदर्भ में वीरेंद्र यादव ने लिखा है, ''पुरुषों के लिए जहां देश विभाजन अपने पतन और ईंट गारे की रिहाईश से दरबदर होना था, वहीं स्त्रियों के लिए यह दुहरी यातना थी। वे वतन और अपने शहर से दरबदर हुई हीं, उससे उसके अपने घर परिवार ने भी बहिष्कृत सरीखा सुलूक किया। विभाजन के महा त्रासदी के दौरान बिछुड़े मर्दों की परिवार में वापसी पर जश्न हुआ और खुशियां मनाई गई लेकिन स्त्री की वापसी पर मातम ही नहीं, बल्कि उसे घर की दहलीज से उल्टे पांव तिरस्कृत कर वापस कर दिया गया। विडंबना यह है कि पुरुष सत्ता के इस खेल में स्वयं स्त्रियां भी शामिल थीं। कभी सास तो कभी मां वह बहन होने के बावजूद भी विभाजन आजादी की खुशी के साथ-साथ अपने अंतर्विरोधों के कारण मानव अस्मिता के लिए कई सारे प्रश्न खड़े किए। विभाजन के पश्चात विस्थापित समाज को कड़े संघर्ष करने पड़े फिर भी अपनी पहचान को स्थायित्व देने में पूरी तरह आज भी कामयाब नहीं हो सके हैं।

'झूठा सच' एक अनुभवजन्य रचना है। जिसके माध्यम से यशपाल ने विस्थापित समाज का यथार्थ चित्र उकेरा है। 'झूठा सच' का नायक जयदेव पुरी जो विभाजन के झंझावात से गुजरते हुए लाहौर की भोलापांधे की गली से गुजरता हुआ जालंधर के सड़कों पर स्त्रियों को बिकते हुए देखता है ''पूरी का ध्यान बस्ती की दीवारों के समीप खड़े भीड़ के एक चक्कर की ओर चला जाता है। इस बीच से लोगों के बोलने पुकारने कि अस्पष्ट आवाजें आ रही थीं। चक्कर के बीच में कोई आदमी बांह उठाए पुकार रहा था

''पैंतीस, पैंतीस, पैंतीस रुपए। कोई और बोलो! पैंतीस रुपए में जाती है। पैंतीस रुपए एक, पैंतीस रुपए दो। और कोई बोलता है तो बोलो। नहीं तो जाती है, अच्छी तरह देख लो ! बोलो! पैंतीस रुपए तीन !''

पूरी ने समझ लिया नीलाम हो रहा था। सोचा स्टेशन तक 2 मील क्यों जाए। यहां ही बिस्तर नीलाम कर दे। पूरी भीड़ की ओर बढ़ गया। भीड़ के समीप पहुंचा तो नीलाम करने वाले का स्वर और स्पष्ट सुनाई दिया-

''अच्छा बादशाहो, अभी इसके लिए बोलो। नया, कोरा, बिना बर्ता माल! शक हो तो अपने हाथ से टटोलकर देख लो!'' भीड़ के लोग जोर से कहकहा लगा कर हंसे।

नीलाम करने वाले ने आवाज लगाई ''बोलो, पहली बोली बोलो!''

पुरी ने भीड़ की दीवार के भीतर झांका।

भीड़ के बीचोंबीच नीलाम करने वाला एक जवान लड़की को चुटियां से खींच कर खड़ा किया था। लड़की के

शरीर पर कोई कपड़ा ना था। माल ग्राहकों को अच्छी तरह दिखा देने के लिए उसने लड़की की कमर के पीछे अपने घुटने से ठेस देकर, उसके सब अंगों को सामने उभार दिया था। लड़की के आंसुओं से भीगे पलकें मुंदे चेहरे पर से उसके हाथ को भी खींच कर हटा दिया। लड़की के सूर्य की किरणों से अछूते शरीर के भाग छिले हुए संतरे की तरह चेहरे की अपेक्षा बहुत गोरे और कोमल थे। भीड़ के बीच धरती पर कुछ और भी लड़कियां चेहरे बांहों में छुपाए घुटनों को सिर दबाए बैठी थी। उनके कपड़े भी धरती पर पड़े थे। पूरी का कदम पीछे हट गया।''

शोध का अध्ययन क्षेत्र

शोध का अध्ययन क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय स्तर पर युद्ध के कारण स्त्रियों पर पड़ने वाले प्रभाव मसलन सोवियत यूनियन ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जर्मनी पर आधिपत्य जमाने के लिए बलात्कार का हथियार के रूप में इस्तेमाल, इसी तरह बांग्लादेशी स्त्रियों का पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा बड़े पैमाने पर घर्षण, युगांडा के सिविल वार और ईरान में स्त्रियों से जबरदस्ती यौन संबंध, चीन के नानकिंग में जापानी सेना द्वारा स्त्रियों का सामूहिक यौन उत्पीड़न, दमन, शोषण तथा श्रीलंकाई स्त्रियों के यौन शोषण ने कैसे साम्राज्यवाद को विस्तार दिया और विराट इन सब कारकों की पड़ताल करते हुए किस तरह बोस्निया और हर्जेगोविना की स्त्रियों के शोषण को छिपा लिया गया। उसकी पड़ताल करते हुए उसके पीछे के मंतव्यों तक पहुंचना उद्देश्य रहेगा।

धर्म-जाति और नस्ल के आधार पर दुनिया में बहुत विभाजन हुए। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा, भारत विभाजन के समय यहां की स्त्रियों की कैसी स्थिति रही इन सबकी पड़ताल करना भी इस अध्ययन में समाहित रहेगा।

संदर्भ

1. आरसी विरमानी, समकालीन अंतरराष्ट्रीय संबंध, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ 235
2. क्रिस्टनहेगन, द नेचर एंड साइकोलॉजिकल कॉन्शसनेस आफ वार रेपफार, पृष्ठ 15-16
3. गरिमा श्रीवास्तव, देह ही देश, राजपाल एंड संस, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ 11
4. वीरेंद्र यादव, उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, पृष्ठ 63
5. यशपाल, झूठा सच, भाग 1, लोकभारती, इलाहाबाद 1969, पृष्ठ 3

तसनीम कौशर

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

छत्तीसगढ़ी की लोक परंपरा में पंथी गीतों का महत्व

–पुष्कर बन्धु

लोकगीत, भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में जानी जाती है जो अपनी लोक संस्कृति और जीवनशैली को अभिव्यक्त करने का ही एक अनूठा माध्यम है। ये गीत विभिन्न समुदायों में बसे अमूल्य जीवन पद्धतियों, अनुभवों और परंपराओं आदि को व्यक्त करने का एक सामाजिक और सांस्कृतिक प्रयास है। जिससे न केवल उस समाज की बल्कि उस पूरे परिधि या क्षेत्र का बोध होता है।

लोकगीत हर प्रान्त, हर भाषा, क्षेत्र और समुदायों में विभिन्न रूपों में पाए जाते हैं, जिनमें मुख्य रूप से स्थानीय भाषा स्थानीय संगीत और लोककला को बताने वाले तत्वों का ज्यादातर प्रयोग होता है। ये गीत सामाजिक, सांस्कृतिक, और ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों को छूने का प्रयास करते हैं और अक्सर गायक या गीतकार की व्यक्तिगत भावनाओं और अनुभवों को अभिव्यक्त करने के एक सामाजिक माध्यम के रूप में कार्य करते हैं. 'लोकगीत जीवन का सुगंध कोष है। जयशंकर प्रसाद ने कहा है कि मोतिया, रातरानी, चमेली, चन्दन इनमें से किसी की सुगंध वायु के विपरीत कभी नहीं जाती लेकिन लोकगीत की सुगंध वायु के विपरीत भी फैलती है, सभी दिशाओं को अपनी सुगंध से भर दती है, रोम-रोम को पर्वगंधी बना देती है।'[1]

लोकगीतों के कई प्रकार हो सकते हैं जैसे कि भक्ति गीत, विवाह गीत, शोक गीत, वीर रस प्रधान गीत और किस्से, मुहावरों आदि के रूप में प्रयुक्त गीत। इनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं का परिचय देने वाली विभिन्न भावनाओं का समर्थन किया जाता है। छत्तीसगढ़ के लोक गीतों की बात की जाए तो 'छत्तीसगढ़ी लोक गीतों में प्रायः छत्तीसढ़वासियों की आत्मा अभिव्यंजित होती है। यहाँ के निवासी सीधे, सरल, उदार और आडम्बर से असंपृक्त रहते हैं तदनुरूप लोकगीत भी सरल, स्वाभाविक, मार्मिक और निश्छल है।'[2] लोकगीतों का संगीत आमतौर पर स्थानीय वाद्य और संगीत यंत्रों का उपयोग करके किया जाता है, जिससे या तो एकल रूप में या समूह गान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन लोकगीतों का अधिकतर प्रयोग आदिवासी लोग करते आए हैं, आदिवासी संस्कृति की पहचान बताने वाले गीत मूलतः समूह गान या नृत्य के रूप में देखने को मिलते हैं। हो सकता है ऐसा गीत लिखने/गाने के प्रति उनकी मंशा सामूहिकता और समानता का सन्देश देना हो। वहीं अभिजात्य वर्ग के कहे जाने वाले शास्त्रीय संगीत मूलतः एकल गान के रूप में देखने को मिलते हैं। इसे लोक गीत और शास्त्रीय गीत की एक बड़ी विशेषता के रूप में देखा जा सकता है।

प्रत्येक समाज में अपने इष्ट अथवा आराध्य की स्तुति हेतु विभिन्न गीतों, भजनों, पदों, जप, मंत्रों, नृत्यों आदि का विशिष्ट स्थान होता है। कहीं-कहीं यह परंपरा या तो अध्यात्मिक अनुष्ठानों, आयोजनों, प्रथाओं आदि तक सिमट कर रह जाती है या भक्ति की रूढ़ हो चुकी परंपरा का पालन करने में ही अपना व अपने परिजनों का कल्याण मानने लगती है। छत्तीसगढ़ी लोक गीतों में 'संस्कार गीत, पर्व-गीत, ऋतुगीत, व्रत-अनुष्ठान-गीत, जाति-गीत व्यवसाय व श्रम-गीत, भजन एवं जसगीत, नृत्य, हास-परिहास गीत एवं युग संदर्भों के गीत माने जाते हैं।'[3] यहाँ की लोक परंपरा में अनेक प्रकार के लोक गीतों-नृत्यों की तरह-तरह के वाद्य यंत्रों का प्रयोग कर गीत गाए जाने की परंपरा है। यहाँ ज्यादातर समुदायों की अपनी एक अलग गीत, गढ़ चिह्न, टोटम, डीह (कुल देवता/देवी), घोटुल, सेवादार, भंडारी आदि होते हैं, जिनका विशेष स्थान है.'कुछ विद्वान छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का वर्गीकरण नारी प्रधान, पुरुष प्रधान एवं समवेत गीत के अधर पर भी करते हैं. लोक गीत एवं नृत्य भी वर्गीकरण का आधार हो सकते है।'[4]

छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति में जिसे यहाँ की मूल संस्कृति कहना चाहिए, में आदिवासी गीतों का प्रधान स्थान है। ये मुख्य रूप से जंगलों अथवा पहाड़ी क्षेत्रों में गाये जाते हैं। इन गीतों में यहाँ के मूलनिवासियों का जन-जीवन, उनके तीज-त्यौहार, विवाह, देव-देवी (प्रकृति पूजा) की स्तुति के गीत शामिल हैं। इससे इतर छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्रों में कई लोक गीत जिसमे पंडवानी, ददरिया, रहस, गम्मद, नाचा, देवार गीत, सुवा गीत, देवी जस गीत, गऊरा-गऊरी गीत आदि की परंपरा के साथ ही सतनामी संप्रदाय जो एक समय तक सतनाम धर्म के रूप में जाना जाता था, कि भी अपनी लोक

गीत शैली है। जिसे पंथी गीत कहा जाता है। पंथी गीत मुख्य रूप से गायन और नृत्य दोनों एक साथ की जाने वाली एक मात्र विधा है। कहीं-कहीं इसे केवल बैठकर गया है। लेकिन आमतौर पर यह गायन-नृत्य द्वय शैली है।

यह पंथी गीत सामान्य या मनोरंजन प्रधान गीत नहीं है. पंथी गीत/नृत्य सतनाम-पंथ का एक आध्यात्मिक और धार्मिक गीत होने के साथ-साथ एक अनुष्ठान एवं सामूहिक अराधना है। यह गीत बाह्य-स्वरूप में मनोरंजन प्रधान लग सकता है लेकिन अन्तःस्वरूप में आध्यात्मिक साधना है। यह सतनामी संप्रदाय की छत्तीसगढ़ी शाखा और सतनाम को मानने वाली सबसे प्रमुख शाखा है। इसके पंथ प्रणेता गुरु घासीदास है। पंथी गीतों में गुरु घासीदास के जन्म से लेकर उनके अंतिम दिनों तक का वर्णन मिलता है। उनका जन्म छत्तीसगढ़ के एक छोटे से गांव गिरोधपुरी में हुआ था। जिसका प्रमाण भी पंथी गीतों से प्राप्त होता है। उसी तरह गुरु घासीदास के जीवन चरित्र और उनकी स्तुति में पंथी गीत गाये जाते हैं।

गिरौधपुरी के धरती तोला बंदव
मोर गुरुघासीदास जनम लेहें हो।
सोनाखान जंगल झड़ी डोंगरी पहाड़
पत पर मैदान छोर तारे के दे आड़ [5]

सतनामी धर्म, संस्कृति एवं साहित्य के जानकर डॉ. अनिल भतपहरी बताते हैं कि ''व्यवहारिक स्वरूप में व्यक्तिगत व सामूहिक आचरण के तहत इसे निभाने के लिए उन्होंने नित्य शाम को संध्या आरती, पंगत, संगत और अंगत का आयोजन गांव-गांव रामत, रावटी लगाकर किया। समाज में निरंतर इस व्यवस्था को कायम रखने के लिए साटीदार सूचना संवाहक अधिकारी और भंडारी चंदा-धन एवं अन्य सामग्री के प्रभारी अधिकारी के रूप में नियुक्त किया एवं महंत जो संत-स्वरूप और प्रज्ञावान थे, की नियुक्ति कर अपने सतनाम सप्त सिद्धांत और अनगिनत उपदेशों व अमृतवाणियों का प्रचार-प्रसार करते भारतीय संस्कृति में युगान्तरकारी महाप्रवर्तन किया।'' [6]

पंथी गीत व नृत्य दोनों है। जो दो शब्दों से मिलकर बना है. पंथ + ई = पंथी।

पंथ अर्थात् रास्ता व ई जिसका अर्थ हुआ स्मरण। अर्थात् वह रास्ता जो सतनाम का संस्मरण कराएँ।

पंथी गीतों में सतनाम से तात्पर्य जो सत के मार्ग बताए से है. नृत्य का अर्थ उन गीतों की शारीरिक अभिव्यक्ति से है।

अर्थात् जो सत के मार्ग का स्मरण नृत्य/गीत के माध्यम से, सद्गुणों को अपनाने की सिख दे, सामाजिक संदेश दे। उसे ही पंथी गीत/नृत्य कहते हैं।

''मानव जीवन सुख-दुःख के चक्र में आबद्ध होता है गीत का सृजन भी सुख-दुःख के ताने बानों से गूंथा होता है. गीत मानव हृदय का एक उच्छावस है जो आत्मानुभूति की सहज अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है।'' [7]

सतनाम पंथी गीत/नृत्य एक सामाजिक, आध्यात्मिक व मानवीयता का संदेश देता गीत है। यह बहुत ही सादगी पूर्ण गीत है। जो मांदर की थाप के साथ धीमी गति से शुरू होकर धीरे-धीरे चढ़ता चला जाता है। यह एक समूह द्वारा किया जाता है। अकेले या दो लोग मिलकर भी इसका गायन कर सकते हैं।

इसे समूह में करने की एक विशेष समय सीमा होती है जो पंथी नर्तक दल वालों पर निर्भर होती है। यदि अकेले करना चाहेंगे तो कोई समय सीमा नहीं आप जब चाहे।

गुरु घासीदास के सन्देश को जन जन तक पहुंचाने हेतु कई पंथी कलाकार हुए जिन्होंने एक विधा को देश-विदेश में फैलाया है। पंथी गीतों के सम्बन्ध में हीरालाल शुक्ल का मत है कि ''अमरदास ने सबसे पहले पंथी गीतों की रचना की होगी, जो आगे चलकर पंथ से जुड़े होने के कारन पंथी गीत कहलायें।'' [8] एक अन्य सतनामी विद्वान डॉ. अनिल भतपहरी ने भी अपनी किताब में गुरुपुत्र अमरदास को पंथी गीतों का प्रणेता स्वीकार किया है, ''संभवतः बाबाजी की प्रेरक वाणियों को गीतात्मक रूप देकर उन्होंने ही सर्वप्रथम प्रार्थना, गीतों या भजनों की रचना की'' [9] तात्कालिक समाज में न केवल मध्यभारत बल्कि पूरा भारत धार्मिक शोषण, जातपात-छुआछुत, पशुबलि-नरबलि अन्याय आदि मनुष्य विरोधी क्रियाओं से घिरा था। जिससे छत्तीसगढ़ ट्रस्ट थी। वैसे विकट समय से गुरु घासीदास का जन्म व उनके द्वारा चलाया धार्मिक सुधार आन्दोलन अति महत्वपूर्ण स्थान रखता है। घासीदास ने अपने उपदेश व पद लोक में प्रचलित भाषा छत्तीसगढ़ी में दिया। जिसका लाभ वहां की सम्पूर्ण जनता ने लिया। लोक की छत्तीसगढ़ी भाषा में दिए उनके उपदेश ही कालांतर से चलकर आज पंथी गीत के रूप में विद्यमान है। ''बाबा जी के बताये उपदेश गुरु वाणी को स्मृति एवं जीवंत बनाये रखने हेतु समाज के संत, महंतों, गुरु पुत्रों ने पंथी गीत एवं नृत्य का प्रचलन किया पंथी नृत्य एवं गीत में संत गुरु घासीदास जी के जीवन चरित्र, चमत्कार, मूर्तिपूजन विरोध, पशुबलि विरोध, मांस भक्षण प्रतिबन्ध एवं उपदेशों का गुणगान किया जाता है। 17वीं शताब्दी से पंथी गीत गया जाता था। 20वीं-21वीं सदी में बहुत लोकप्रिय हुआ है'' [10] पंथी गीत अपने पंथ से सम्बंधित धार्मिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक गीत है। सतनाम पंथ में पूर्व से ही मानव कल्याण व जन जागरूकता हेतु उनके उज्ज्वल एवं सुदृढ़ भविष्य के लिए निर्गुण भजन स्वरुप प्रचलित थे। पंथी गीत-नृत्य का विकास धार्मिक-सामाजिक प्रपंच के खिलाफ गुरु घासीदास के लोक में कहे उपदेश के रूप में चलायमान है।

नाम के मंदिर मा, सत्य नाम के मंदिर मा।

तोर दियां जलय हो, सतनाम के मंदिर मा।[11]

वर्तनाम में छत्तीसगढ़ शासन एवं कई पंजीकृत सतनामी संस्थाओं ने आलबरस निवासी पुराणिक राम चेलक को पंथी गीतों के पितामह के माना है। उन्होंने ही वर्तनाम दौर में काफी वृहत मात्र में सतनामी, पंथी गीतों की रचना की है। जिन्हें गाकर कई पंथी कलाकार विश्वप्रसिद्ध हुए। पुराणिक राम चेलक द्वारा लिखा/गाया गया एक पंथी गीत।

गीत के बोल :-

अमर रहिबे गुरु, जग दुनिया म ते अमर रहिबे...
आप अमर
जंगल झाड़ी, पहाड़ी से घिरे गाँव गिरौद म,
घिरे गांव गिरौद म
अमरौतिन महंगू के कोरा म आप जाना धरे
गुरु ते जनम घरे

टेक :-

जनम लिए गुरु अमरौतिन महंगू के कोरा म टे जनम धरे...2

उडान :-

खेलत कुदत छोटे पण म सेवा ल जताये.
सेवा ते जताये[12]

पंथी गीत के प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रिय बनाने का श्रेय ख्याति लब्ध कलाकार भिलाई इस्पात संयंत्र में कार्यरत श्री देवदास बंजारे को जाता है। जिन्होंने पंथी न केवल भारत के कोने-कोने में अपितु देश के बहार प्रसिद्ध किया। पंथी गीतों की लोकप्रियता 1976-77 से प्रारंभ हुई। श्री बंजारे द्वारा रायपुर रेडियो स्टेशन में प्रथम बार अपनी प्रस्तुति देकर इन गीतों को चार चाँद लगा दिए। देवदास बंजारे ही वो कलाकार हैं जिन्हें हबीब तनवीर ने अपने नाटक मंडली में शामिल किया व नाटक चरणदास चोर में पंथी नर्तक टीम के रूप में इन्हीं के दल को शामिल किया। तात्कालिक मुख्यमंत्री भूपेश बघेल ने 18 दिसम्बर 2020 गुरु घासीदास जयंती के शुभ अवसर पर स्व. देवदास बंजारे की स्मृति में पंथी नृत्य पुरस्कार ''देवदास बंजारे स्मृति पंथी नृत्य पुरस्कार'' स्थापित करने की घोषणा की जिसकी नियमावली का प्रकाशन 10 सितम्बर 2021 को राज-पत्र में हो चुका है। पुरानिक राम चेलक ने श्री बंजारे व उनके मांधर वादक स्व. बुधारू राम बंजारे के ऊपर भी एक पंथी गीत लिखा है।

मादल के किड कीड़ी ताल, धुन बजाये बुधारू ह।
झूमर ठुमक के देवा नाचे, पांव के छनके घुंगरू ह।।[13]

हीरालाल शुक्ल ने अपनी किताब स्वप्न संगर्ष और समन्वय में कई पंथी गीतों का संग्रह किया है। वे लिखते हैं कि ''चंदनिया निवासी नकेसर लाल टंडन के संग्रह से यहाँ कुछ पंथीगीत प्रस्तुत हैं, जो मुझे श्री दी.आर. धृतलहरे के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं''[14] एक उदाहरण :-

बोलो बोलो सतनाम, भजो भजो सतनाम।
मनखे के नोहय गा, ककरो गा नाम।।
भजो भजो सतनाम।

पंथी क्यों किया जाता है? पंथी में बाबा घासीदास के चरित्र एवं उपदेशों का बखान है, जो सदियों से गाया जाता रहा है। पहले लोग कम पढ़े-लिखे थे इसलिए इनका इतना प्रचार-प्रसार नहीं हुआ था। अब लोग पढ़-लिख गए हैं। अपने धर्म के बारे में, बाबा घासीदास के बारे में जानने लगे हैं।[15]

पंथी गीत/नृत्य से हमें बहुत कुछ सिखने को मिलता है जैसे..

1. एकता/समानता/संगठन
2. सियानी (जो सतनामी समाज का अभिन्न अंग है)
3. अनुशासन
4. सतनाम ज्ञान

1. एकता/समानता/संगठन :-जितने भी कलाकार पंथी दल में होते हैं वह सब एक मत होते हैं। एक सुमता में होते हैं। खासकर तब जब वह पंथी नृत्य कर रहे होते हैं।

सभी एक दूसरे के अनुसरण करते हैं। सभी लोग एक ही जैसे वस्त्र धारण किये होते हैं। सब एक-दूसरे का बराबर साथ देते हैं।

इस तरह मानव समाज को एक होकर और संगठित रहने का संदेश देते हैं। जैसे कि इस पंथी गीत में समस्त संत समाज के एक जगह एकत्रित होकर सतनाम को आत्मसात करने तथा उसका प्रचार करने की बात कही जा रही है

लगे हावय नाम के अखाड़ा संत घर
लगे हावय नाम के अखाड़ा।
साधु संत गुरु मिल गुल बैठे
नाम के करे परचारा हो
लगे हावय नाम के अखाड़ा।

2. सियानीः- सतनाम पंथी दल में कम से कम 15 लोगों का समूह होता है। जिसमें 10 नर्तक, 3 वादक, एक गायक व एक नृत्य निर्देशक अर्थात् सिटी मास्टर होते हैं व समूह के लोग केवल एक ही व्यक्ति को फॉलो करते हैं बिना किसी सवाल-जवाब के। एक ताल बजते ही सबके सब अपने लीडर के जैसे स्टेप बदल लेते हैं। जैसे-जैसे वह मुखिया नचाता है वैसे-वैसे बाकी सदस्य नाचते हैं।

अब इसमें मुखिया के ऊपर निर्भर करता है कि वो उसे किस तरह से मार्गदर्शन करते हैं और वे किस तरह से अगुवाई करते हैं।

इस तरह सतनाम पंथी नृत्य में सियानी करने का संदेश देता है और मुखिया कैसे होने चाहिए इसका भी।

लेकिन आज समाज मे मुखिया मोनिटरिंग करने वाले एक नहीं कई हैं और सब अपने-अपने मनमाने ढंग से कर रहे हैं। जिसका कोई सकारात्मक प्रभाव समाज पर नहीं पड़ रहा।

संत समाज को इस सतनाम पंथी नृत्य से सीख लेने चाहिए। जैसे इस पंथी गीत में देखिये

सुन ले बात मोर संगवारी, हवय घपते रात अंधियारी
सुन के गुण ले बात मोर अंचरा मं गठियाले...सुन ले.[17]

3. अनुशासनः-सतनाम पंथी नृत्य करने वाले सभी दल सदैव एक अनुशासन में होते हैं। दल/पार्टी के जो कायदे कानून होते हैं उसे उन्हें बखूबी निभाना होता है।

जैसे जिनका खान-पान रहन-सहन सादा हो, जो सतनाम के मार्ग पर चलता हो।

दल के लोग एक ही रंग के वस्त्र-स्वेत वस्त्र (धोती, कुर्ता, कंठी, जनेऊ)।

इस तरह के अनुशासन जो पार्टी या दल के हर एक सदस्य के लिए अनिवार्य होता है एवं सब के सब इसका पालन करते हैं।

लेकिन आज के समय में एक-दूसरे की बातें न सुनने की वजह से यह नियम कमजोर पड़ता जा रहा है। कहीं-कहीं पंथी नृत्य का उद्देश्य मनोरंजन होता जा रहा है जो तत्कालीन समय में गुरु घासीदास के संदेशों को जन-जन पहुंचना था।

परन्तु हमें याद रखना चाहिए जो व्यक्ति, परिवार, समाज, गांव, शहर, दल, संगठन, पार्टी जो भी हो अनुशासित होता है वही कामयाबी को प्राप्त होता है।

4. सतनाम ज्ञानः-

सत्यनाम सत्यनाम सत्यनाम सार गुरु महिमा अपार
अमरीत धार ला बहाई दे हो जाही बेडा पार,
मुक्ति के मारग ला बताई दे..[18]

सतनाम पंथी नृत्य के दौरान गीत गाया जाता है जिसे सतनाम पंथी गीत कहा जाता है। ये सतनाम पंथी गीत में ही जीवन का सार छुपा होता है। सतनाम ज्ञान की गंगा बहती है जब सतनाम पंथी गीत चलता है। जो मानव समाज को जागरूक करने के लिये, उन्हें समझाने के लिए, सतनाम का संदेश देने आदि के लिए किया जाता है। जिस तरह हमारे सतलोकि संत देवादास बंजारे जी जो 64 देशों में सतनाम पंथी नृत्य के माध्यम से सतनाम व गुरु वाणी अमर संदेशों का प्रचार किया। जिन्होंने इस एक पंक्ति को विश्व में प्रसिद्ध किया

''ये माटी के चोला
ये माटी के चोला
के दिन रहिबे
ते बता दे मोला..''[19]

इसी तरह का एक गीत हीरालाल शुक्ल किताब में मिलता है। जिसके संकलन का वर्णन ऊपर बताया जा चुका है। शुक्ल जी ने ये गीत चंदिनिया निवासी नाकेसरलाल टंडन से प्राप्त होना बताया है। गीत के बोल हैं...

आज आना होगे ग, कल जाना होगे ग
ये माटी के चोला हा पुराना होगे गा[20] . टेक.

ऐसा कहा जाता है कि इस लाइन को सुनकर देश-विदेश में लोगों के पैर अपने आप थिरकने लगते थे मांदर के थाप के साथ-साथ उनके शरीर में कम्पन होने लगता था। इसी तरह वास्तविकता को सतनाम पंथी गीत में दर्शाया जाता है जैसे बंजारे जी ने सजाया है। सतनाम पंथी गीत काल्पनिक तथ्यों पर आधारित नहीं होता यह सतनाम दर्शन पर आधारित वास्तविकता की लयात्मक प्रस्तुति है।

तोरे सत्य हे अपर, तोरे महिमा अपार,
गावें गांव मा दरस दिखाए घासीदास[21]

तर्क के अधार पर देखा जाये तो सतनाम पंथी नृत्य एक तरह का शारीरिक व्यायाम है, जो शरीर के लिए बेहद ही लाभदायक है। शरीर के प्रत्येक अंग का इसमें उपयोग होता और शरीर में स्फूर्ति आती है। तभी तो इसे (पंथी) संसार का सबसे तेज गति से किया जाने वाला नृत्य[22] कहा गया है। सतनाम पंथी नृत्य करने से शरीर हमेशा तरोताजा रहता है। अपनी सुविधा अनुसार पंथी गीत जरूर करना चाहिए।

पंथी नृत्य करने वालेः-पंथी नृत्य करने वाले व्यक्ति बहुत ही खास व्यक्ति होते हैं। खास इस मायने में कि ये लोग सतनाम के प्रहरी होते हैं। ये लोग ही सतनाम धर्म संस्कृति, गुरु ज्ञान, संदेश, अमरवाणी आदि को देश दुनिया में फैलाने वाले होते हैं। हर दल के हर व्यक्ति जो सतनाम पंथी दल में है उन सभी के खान-पान, रहन-सहन, बोली-भाखा, पहिनावा आदि सब सादा होने चाहिए। किसी भी व्यक्ति के कर्म में थोड़े से भी दाग नहीं होने चाहिए। पंथी गीतों/नृत्य में आध्यामिक सन्देश के साथ मानव जीवन की महत्ता भी होती है। अभी बीते वर्ष पंथी नृत्य में दिल्ली में विश्व कीर्तिमान भी स्थापित किया है। '11-13 मार्च 2016 को दिल्ली के यमुना तट श्री श्री रविशंकर जी द्वारा आयोजित आर्ट ऑफ लिविंग वर्ल्ड फेस्टिव (विश्व सांस्कृतिक महोत्सव) कार्यक्रम का आयोजन था जिसमें छत्तीसगढ़ के 1200 पंथी वादक, गायक एवं नर्तकों ने हिस्सा लिया और 58 मांदर, 116 झांज व झुमका के साथ 50 मीटर लम्बे मंच को 4 मिनट 58 सेकण्ड में ओजपूर्ण सबसे तेज पंथी नृत्य की छटा बिखेरकर155 देशों के कलाकारों के साथ ही अपनी प्रस्तुति से सारे विश्व को मंत्रमुग्ध कर दिए'।[23]

सतनाम पंथी नृत्य करने वालो की वेशभूषाः- जैसा कि मैंने बताया सतनाम पंथी नृत्य करने वाले लोग हमारे सतनाम धर्म संस्कृति के सजग प्रहरी होते हैं। जिनके माध्यम से हम सतनाम धर्म और संस्कृति को देश दुनिया

में पहुंचाते हैं। पंथी नृत्य करने वालों की वेशभूषा या कॉस्ट्यूम दो तरह की होती है-

1. सफेद धोती, सफेद कुर्ता या बनियान, कंठी, जनेऊ, सफेद कमरबंध, पैरों में घुंघरू। और 2. सफेद धोती, कंठी, जनेऊ, सफेद कमरबंध, पैरों में घुंघरू। इसमें सभी आभूषण वही होते हैं बस बदन में कोर कपड़ा या बनियान नहीं होता। लेकिन कुछ लोग अपनी सुविधानुसार या सामानों अनुपलब्धता के अनुसार इनमें से कुछ चीजों को घटा देते हैं या जोड़ देते हैं। आजकल देखने में मिल रहा है कि युवा पंथी नर्तक अपने सिर में एक सफेद रंग की पट्टी स्वरूप कपड़ा बांधते हैं। संभवतः यह महाराष्ट्र के गणपति विसर्जन या जन्माष्टमी में मटकी फोड़ को देखकर सतनामियों में आया हो।

अधिकतर पंथी दल के लोग सफेद वस्त्र के जगह रंगिया-चंगीया, जोक्कड़-परी (नाचा-पार्टी) वाले छिट की बुंदकी कपड़े पहनते हैं, जो की भ्रामक है।

सतनाम पंथी नृत्य में उपयोग होने वाले वाद्ययंत्रः-

1. मांदर, 2. झांझ, 3. खंझेरी, 4. झुमका

हालांकि अब समय के साथ नए-नए वाद्ययंत्र शामिल होते जा रहे हैं। पंथी नृत्य कैसे करते हैंः-

सतनाम पंथी नृत्य दो ही प्रकार से करते हैं-

1. खड़े होकर - जिसमें वाद्ययंत्र बजाने वाले से लेकर नाचने गाने वाले सभी लोग खड़े होकर नाचते, गाते और बजाते हैं,

2. बैठकर - जिसमें केवल नाचने वाले खड़े रहते हैं और वाद्ययंत्र बजाने व गीत गाने वाले बैठे रहते हैं। कहीं-कहीं अध्यात्म, धर्मोपदेश, लोकाचार्य, शौर्य, पराक्रम आदि की कथा का बखान किया जाता है। इस तरह की शैली पंडवानी की वेदमती शैली की तरह जान पड़ती है।

जैसा की ऊपर बताया गया पंथी नृत्य को विश्व के सबसे तेज नृत्य की उपाधि दिया गया है। इसे दल के साथ एक गोल घेरा बनाकर भी किया जाता है तथा एक कतार में खड़ा होकर भी किया जाता है। पंथी नृत्य के बीच-बीच मे कुछ करतब भी होते हैं। पंथी दल के लोग पिरामिड जैसे कई आकार बनाते हैं। जो बड़ा ही जोखिम भरा होता है। पंथी नृत्य का एक सुन्दर उदाहरण देखिये-

पंथी नाचते झमाझम झूम के
घुंघरू बाजथे छमाछम छूम के
कनिहा ल मटकावत हे भुजा हलाई कि
गोड़ ल कचारथय मेल बनाई के
नाच ल कराथय सिटी ल बजाई के
भजन ल गावत हे राग मिलाई के
महिमा ल गावत हे गुरु जी के
बाजा ल बजावय धुन मिलाई के[24]

पंथी नृत्य का इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र मिलना दूभर है.

एक सतनाम पंथी दल में निम्न लोग होते हैं।

1. मुखिया : जो सभी पंथी दल के लोगों को नचाता है।

2. सदस्य : जितने लोग होते हैं वे सभी सदस्य होते हैं लेकिन यहां सदस्य कहने का तात्पर्य केवल पंथी नाचने वालों से है जो दर्जनों से भी अधिक संख्या में होते हैं। हालांकि 15 की संख्या को आदर्श माना जाता है।

3. गायक : जो पंथी गीत गाते हैं। अपने गीतों के माध्यम से गुरु घासीदास के जीवन चरित्र तथा नैतिक व सामाजिक समरसता के गीत गाते हुए सतनाम की ज्ञान-गंगा बहाते हैं।

4. रागी : जो गायक के गीतों को झोकता है या दोहराता है तथा बीच-बीच मे हंसी ठिठोली कर अपने अंदाज कुछ प्रासंगिक मुहावरे आदि बोलता रहता है और बीच-बीच टोक लगाकर किसी बात को विस्तार से पूछते हैं। यह मुख्य रूप से पंथी की बैठकर गायी जाने वाली शैली में होता है। इसे सहयोगी भी कहते हैं।

5. मांदर बजाने वाला : ढोलक या पखावज की तरह दिखने वाला वाद्य बजने वाला? 6. झांझ बजाने वाला, 7. झुमका बजाने वाला, 8. मंजीरा बजाने वाला। बस इतने लोग होते हैं एक पंथी दल में। वर्तमान में केवल तीन अर्थात् गायक, मांदर बजाने वाले व रागी (सभी सदस्य) मुख्य रूप से अनिवार्य है बाकी की कोई अनिवार्यता नहीं।

वैसे तो पंथी नृत्य कभी भी किसी विशेष आयोजन पर किये जा सकते हैं पर अधिकतर गुरु घासीदास जयंती 18 दिसंबर के शुभावसर पर गांव-गांव में जहाँ भी जैतखाम स्थापित होता है पंथी नृत्य करना अनिवार्य होता है, खासकर जैतखाम में पालो (झंडा) चढ़ाते वक्त।

गुरु घासीदास कहै सुन, संतों ज्ञान हृदय में धार।
क्या खोजै बन पर्वत कंदर, क्या खोजै जलधार।
तेरे तन सत्पुरुष बिराजे, उलट सूरत संभार।[25]

यह पंथी गीत, सतनाम मंगल भजन के रूप में भी गए जाते हैं। घरों में होने वाले चौका आरती में इस तरह के गीतों को शामिल किया जाता है। ये गीत निर्गुण निराकार ईश्वर, सतनाम की व्याख्या करते हैं। इसी तरह का एक अन्य गीत देखिये-

यह घाट अगम अपारा, संतों बिरले जानन हारा
घट के भीतर बन अरु बस्ती, घट में झाड़ पहरा।[26]

इस तरह के कितने ही गीत हैं जिन्हें पंथी गीतों के रूप में विशेष आयोजनों, प्रवचनों के गाए जाते हैं।

पंथी नर्तक दलों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :-

1. अपना खान-पान, रहन-सहन सादा रखे, मंद, मांस से कोसों दूर रहे, जो इधर के दिनों में बहुतायत देखने को

मिल रहा है। रात को पंथी नाचते हैं और नाचने के बाद थकने का बहाना करके शराब पीते हैं। कहीं-कहीं तो शराब पीकर भी पंथी नाचने की घटना सुनने को मिली है। मुखिया को स्वयं के सुधार कर ऐसे लोगों को बाहर कर नए लोगों को रखना चाहिये।

2. जब भी पंथी नाचे तो रंगबिरंगे वस्त्रों के स्थान में केवल सफेद वस्त्र ही धारण करें।

3. जितना अधिक से अधिक हो सके आप लोग अपने धर्म-संस्कृति, गुरु संदेशों और गीतों कहे जाने वाले गान का ही चुनाव करें जिससे गुरु घासीदास का सन्देश पंथी के माध्यम से लोगों तक पहुंचें।

बाबा गुरु घासीदास खेतों में काम करते समय समाज के लिए मनन किया करते थे।

ये कइसे नागर चलाए घासीदास..

गलियार बैला ल बाबा हर रेंगाए गा

तात्कालिक समय में रंग भेद, वर्ण भेद व जातिवाद से बढ़कर छुआछूत जैसी घातक बीमारी समाज में बुरी तरह से व्याप्त थी। इस अमानवीय ब्यवस्था से वे काफी व्यथित थे एवं इसे सदा के लिए समाप्त करना चाहते थे। खेतों में काम करते-करते समय वे अक्सर सोचा करते थे कि इस समाज में कैसे जागृति लाई जाए।

उस जमाने में मनुस्मृति की लोगों को बांटने वाली व्यवस्था समाज पर लागू थी। मनुवाद के आधार पर समूचे शूद्र समाज को पढ़ाई-लिखाई करना तो दूर, ये बात सोचना भी पाप था। महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों में भी इनके अनेक उदाहरण मौजूद हैं। वैसे समय में गुरु घासीदास ने सुंदर रूपक का प्रयोग किया। कहा कि

अधरे नागर अधरे तुतारी हे

गलियार बैला ल बाबा हर रेंगाए गा[27]

अधर नागर : गुरु घासीदास जी ने समाज को एक अनजान, अज्ञानी और अजोता खेत की तरह के रूपक की तरह बता रहे हैं। जिस तरह खेत को हल से जोता जाता है, उसी तरह समाज को अधर अर्थात् होठ या मुख (वाणी) से जोता जा सकता है। जैसे बंजर जमीन को हल द्वारा जोतकर उपजाऊ बनाया जा सकता है। वैसे ही इस अमानवीय व्यवस्था, जो असत पर टिकी हुई है, को सतज्ञान के आधार पर जागृत कर सद्गुणी, सद्कर्मी बनाया जा सकता है। इस अमानवीय व्यवस्था को उखाड़ कर सत्य पर आधारित मानवीय व्यवस्था पुनःस्थापित किया जा सकता है। इसके लिए अधर या वाणी अथवा विचार रूपी नागर (हल) से जोतकर अर्थात् समाज को शिक्षित बनाकर जागृत किया जाना चाहिए।

अधर तुतारी यहां तुतारी का अर्थ अनुशासन से है। हल चलाते वक्त हल जोतने वाले के हाथ में तुतारी या डंडा होता है। जो हल चलाते समय बैलों को हांकने के लिए उपयोग में आता है। उसी लाठी रूपी तुतारी के इशारे पर बैल फुर्ती के साथ सही दिशा में चलता है। इस डंडा या तुतारी के कारण बैलों में फुर्ती व अनुशासन दोनों बनी रहती है। एक खेतिहर किसान होने के नाते गुरु घासीदास ने कृषि कार्य करते हुए एक नया रास्ता (पंथ) ढूंढ निकाला।

अतः जाति अथ्वा समाज को संगठित करने के लिए विचारधारा रूपी अनुशासन का होना बहुत जरूरी है न कि दंडात्मक अनुशासन का।

वे नागर और तुतारी से सीख लेकर समाज को जोड़ने की एक वैज्ञानिक तकनीक खोज निकाले थे। उन्होंने सोचा कि समाज में न केवल जागृती और शिक्षा आए वरन उनमें संगठित होने की भी ताकत हो। और संगठन के लिए अनुशासन का होना नितांत आवश्यक है। अनुशासन के लिए सशक्त नियम, कानून या सही दिशा में मार्गदर्शन का होना बहुत जरूरी है। अनुशासित समाज ही संगठित होता है। उसका साधारण तरीके से कोई शोषण नहीं कर सकता। संगठित समाज ही शासनकर्ता होता है।

वे जानते थे कि चेतना के अभाव में अज्ञानतावश समाज जड़ता का शिकार हो गया है। अज्ञानता के लिए गलियार बैल की स्थिति को दिखाया गया है। समाज अचेतन अवस्था में गलियार बैल की तरह पशुवत जीवन बिताने को विवश होता है। इस तथ्य को समझाने के लिए सतनामी संतों ने एक सुन्दर रूपक का सहारा लिया है-जिस तरह नागर और तुतारी के सहारे गलियार बैल से भी काम लिया जा सकता है। उससे खेत जोतकर उपजाऊ बनाया जा सकता है। उसी तरह अनजानपन एवं अज्ञानता के अंधकार में फंसे बंजर जमीन जैसे अचेत समाज को, विचार रूपी नागर या हल के माध्यम से चेतना पैदा कर, वाणी रूपी तुतारी के सहारे जागृत एवं अनुशासित कर, संगठित किया जा सकता है। जन मानस में चेतना पैदा कर रूढ़िवादी ब्यवस्था के दलदल में फंसे समाज को मुक्ति दिलाई जा सकती है। इसी को उन्होंने सतनाम महामंत्र कहा है।

यह सामाजिक परिवर्तन की दिशा में दिया उनका एक उदाहरण है।

अंत मे संत समाज को संदेश दिया जाता है कि यदि आप अपने जाति/समाज/वर्ग को एक सूत्र में बंधना चाहते हैं तो अपने अधर, नागर, अधर तुतारी का बार-बार मूल्यांकन करते रहें और उसे परिष्कृत करने का प्रयास करें।

तैं तो रांधि डारे जेवन, बाबा आगी के बिना
तैं तो रांधि डारे जेवन, बाबा पानी के बिना
तन कर चूल्हा साहेब मन के आगी
ज्ञान के चढ़ तेलइया हो, देखो हमरे रसोइया हो
हिय कर हडिया साहेब, भक्ति कर भाता हो
चित्त के चटुवा, चलइहा हो साहेब[28]

इस पंथी गीत में उलटबासी का प्रयोग हुआ है। पाखंड या चमत्कार में विश्वास करने वाले इस गीत को बिना आगी-पानी के भोजन बनाने की बात कहेंगे, जबकि यहाँ घासीदास ने रूपक गढ़ा है, जिसमें इस शरीर को चूल्हा कहा गया है और इस आत्मा को आग की प्रज्ज्वलित होते रहने वाला कहा है। जिसमें साधक (संत समाज) सच्चे मन से सिद्धि - रूपी भोजन पका सकते हैं।

हंसा नई दिखथे
तोर अब ठिकाना हो
जा जा गुरु के चरण मा
नएते पाछू होही
पछताना हो।[29]

जो लोग इस सांसारिक मोह या वासनाओं में पूरी तरह फंस चुके हैं। जिन्हें इस आत्मकेंद्रित जीवन के दुखों से मुक्ति पाना है। उन्हें गुरु (सद्गुरु) के पास जाना चाहिए क्योंकि उन्हीं के मार्गदर्शन से यह संभव है।

त न न न न न हो न न बारे ललना
तोर मन मोहना कि मोर जग मोहना
एक पेड़ अवरा दूसर पेड़ धवरा साहब
तेहि मेर घासीदास धुनी ला रमाए साहब[30]

इस पंथी गीत में यह सन्देश दिया गया है कि तुम्हारा स्वरूप इतना मोहक है जिस पर यह पूरा संसार ही मोहित हो उठा है। एक वृक्ष आंवला का तथा दूसरा वृक्ष हर्रा का है। इन्हीं वृक्षों के नीचे बैठकर घासीदास को ज्ञान (सद्ज्ञान) की अनुभूति हुई। इसलिए सतनामियों के लिए इन वृक्षों का काफी महत्व है।

सत हा देवइया हे सत हा लेवइया हे
सते सत म रचे हावय, जग के जम्मो कम
सतनाम सतनाम कहे घासीदास[31]

अर्थात् सत या सतनाम की जग का कर्ता धर्ता-नियंता तीनों है। उसमें आसक्ति ही हमें सद्मार्ग में ले जा सकती है।

निष्कर्षः- अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति में पंथी गीतों का दीर्घ योगदान है। पंथी गीत न केवल गुरु घासीदास के जीवन चरित्र का अमर सन्देश देते हैं बल्कि समाज में व्याप्त कुरीतियों, गैर-बराबरी, पाखंडवाद, आडम्बर आदि का त्याग कर सत्य के मार्ग में चलने की भी प्रेरणा देते हैं। नित-प्रतिदिन निर्गुण, निराकार रूपी सतनाम का ध्यान लगा कर लोग अपने हृदय में ईश्वर की छाया देख सकते हैं। जिस तरह कबीरदास ने कहा, ''मोको कहाँ ढूंढे रे बन्दे मैं तो तेरे पास में'' उसी तरह गुरु घासीदास का कथन है ''मंदिरिवा में का करें जईबो अपन घट के ही देव ला मनईबो''। अर्थात् अपने घट (हृदय) के अन्दर ही ईश्वर या ब्रह्म के दर्शन हो जाते हैं, इसके लिए किसी मंदिर-देवालय आदि जाने की कोई जरूरत नहीं होती. पंथी गीत और इन्हीं गीतों के द्वारा किया जाने वाला पंथी नृत्य मुख्यतः सतनामी पंथ के लोगों के द्वारा सतनाम पिता (सद्गुरु) की स्तुति में गाया जाता है। जिसमें गुरु घासीदास के जीवन-चरित्र, सामाजिक-समरसता, नैतिकता आदि का वर्णन इन पंथी गीतों में किया जाता है। इस गीत में प्रयुक्त प्रमुख वाद्ययंत्र हैं झांझ, मंजीरा और माँदर या ढोलक। पंथी गीतों व नृत्य को स्व. देवदास बाजरे ने विश्व में ख्याति दिलाई है।

संदर्भ

1. डॉ. गौतम सुरेश, भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता-1, शब्द सेतु प्रकाशन, पृष्ठ सं. 23
2. वही, पृष्ठ सं. 267
3. मड़ई पत्रिका 2003 अंक, संपादक कालीचरण यादव, 'लोकगीतों का सदाबहार उपवन-छत्तीसगढ़' शीर्षक से डॉ. मृणालिका ओझा का लेख, पृष्ठ सं. 204
4. वही, पृष्ठ सं. 204
5. शुक्ल हीरालाल, गुरु घासीदास, संगर्ष, समन्वय और सिद्धांत, म. प्र. हिन्दीग्रन्थ अकादमी भोपाल पृष्ठ स. 248
6. डॉ. अनिल कुमार भतपहरी, साक्षात्कार से।
7. मिश्र उमाकांत, प्रसाद के नाटकों में गीत योजना, पृष्ठ सं. 71
8. शुक्ल हीरालाल, गुरु घासीदास, संगर्ष, समन्वय और सिद्धांत, म. प्र. हिन्दीग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृष्ठ स. 144
9. भतपहरी अनिल, गुरु घासीदास और उनका सतनाम पंथ, booksclinic publisihng, पृष्ठ सं. 284, संस्करण 2021
10. सोनी जे. आर., सतनाम के अनुयायी, वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृष्ठ सं. 101
11. वही, पृष्ठ सं. 104
12. पुराणिक राम चेलक रचित पंथी गीत, साक्षात्कार से।
13. पंथी गीत भाग-7, पुरानिक लाल चेलक, संन 2021 पृष्ठ सं. 19
14. शुक्ल हीरालाल, गुरु घासीदास, संगर्ष, समन्वय और सिद्धांत, म. प्र. हिन्दीग्रन्थ अकादमी भोपाल पृष्ठ स. 241
15. मड़ई पत्रिका 2003 अंक, संपादक कालीचरण यादव उषा वैरागकर आठले का लेख 'पंथी गीत-नृत्यः आस्था के प्रतीक' शीर्षक से, पृष्ठ सं. 215
16. वही, पृष्ठ सं. 244
17. भतपहरी सुकालूदास 'गुरूजी', हंसा अकेला संतनाम-संकीर्तन, वैभव प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ सं. 86
18. सोनी जे. आर., सतनाम के अनुयायी, वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृष्ठ सं. 12
19. मड़ई पत्रिका 2003 अंक, संपादक कालीचरण यादव उषा वैरागकर आठले का लेख 'पंथी गीत-नृत्यः आस्था के प्रतीक' शीर्षक से, पृष्ठ सं. 197
20. शुक्ल हीरालाल, गुरु घासीदास, संगर्ष, समन्वय और सिद्धांत,

म. प्र. हिन्दीग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृष्ठ सं. 255
21. सोनी जे. आर., सतनाम के अनुयायी, वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृष्ठ सं. 106
22. antaskegoth-blogspot.com/2017/08/blog-post_29-html\m¾1
23. antaskegoth-blogspot.com/2017/08/blog-post_29-html\m¾1
24. बलदेव प्रसाद/जयप्रकाश मानस/रामशरण टण्डन, तपश्चर्या एवं आत्म चिंतन गुरु घासीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ सं. 148
25. धृतलहरेभाऊराम, सतनाम साहेब, गुरुघासीदास साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, न्यू राजेंद्रनगर, पृष्ठ सं. 121
26. वही, पृष्ठ सं. 120
27. बलदेव प्रसाद/जयप्रकाश मानस/रामशरण टण्डन, तपश्चर्या एवं आत्म चिंतन गुरु घासीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ सं. 186
28. वही, पृष्ठ सं. 185
29. शुक्ल हीरालाल, गुरु घासीदास, संगर्ष, समन्वय और सिद्धांत, म. प्र. हिन्दीग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृष्ठ स. 190
30. वही, पृष्ठ सं. 259
31. बलदेव प्रसाद/जयप्रकाश मानस/रामशरण टण्डन, तपश्चर्या एवं आत्म चिंतन गुरु घासीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ सं. 187

पुष्कर बन्धु
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय
Email – pushkar.bandhu@gmail.com

कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज : एक अध्ययन

–डॉ. आसिया मकबूल
–डॉ. शाजिया
–डॉ. उमर

भूमिका : किशोरावस्था वृद्धि और विकास की महत्वपूर्ण अवस्था है। बच्चों के समग्र विकास में परिवार, देखभाल करने वाले और अभिभावक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किशोरों की वृद्धि और विकास पर्यावरण से अत्यधिक प्रभावित होता है, खासकर जब उन्होंने माता-पिता को खोने का अनुभव किया हो। किशोरों के लिए सामाजिक और भावनात्मक कौशल को एकीकृत करने के लिए परिवार और अन्य संस्थानों में एक सहायक वातावरण महत्वपूर्ण है। शोधकर्ताओं का मानना है कि माता-पिता के समर्थन और देखभाल की कमी वाले लोगों को अपने दैनिक जीवन में भारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तनावपूर्ण स्थितियों से निपटने के लिए कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता होती है।

उद्देश्य : कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज करना।

ध्येय : संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना और अवसाद पर संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना करना।

कार्यप्रणाली : वर्तमान अध्ययन एक वर्णनात्मक अध्ययन डिजाइन है। अनाथालयों को कश्मीर के चार जिलों से जानबूझकर चुना गया था। बेक की डिप्रेशन इन्वेंटरी और अर्ध संरचना साक्षात्कार का प्रबंधन किया गया। यादृच्छिक नमूनाकरण तकनीक द्वारा 200 अनाथ किशोरों (100 संस्थागत और 100 गैर-संस्थागत) का नमूना एकत्र किया गया। डेटा का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकीय विश्लेषण (प्रतिशत, स्कोर और एसडी का माध्य) और अनुमानात्मक डेटा विश्लेषण (टी परीक्षण) के अनुप्रयोग के माध्यम से किया गया था।

परिणाम : यह निष्कर्ष निकाला गया कि संस्थागत अनाथ किशोरों में मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की कमी है, जो हल्के और मध्यम स्तर के अवसाद जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को दर्शाता है। विशेष रूप से विश्राम, आत्म-चर्चा, संज्ञानात्मक रणनीतियों के मनोवैज्ञानिक कौशल के उपयोग में समूहों के बीच तीव्रता और दिशा चिंता और आत्मविश्वास में अंतर हैं। इससे पता चलता है कि संस्थागत अनाथों में सकारात्मक आत्म-चर्चा, आत्मविश्वास बढ़ाना, लक्ष्य निर्धारण और सबसे अधिक उत्पादक मानसिकता प्राप्त करने जैसे कौशल कम हैं। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की कमी बदले में शैक्षणिक प्रदर्शन और समग्र कल्याण को प्रभावित करती है। परिणाम आगे संकेत देते हैं कि गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों में संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में बेहतर दृष्टिकोण, स्वयं का ज्ञान, भावनात्मक स्थिरता, आत्म-स्वीकृति और उनकी उपलब्धि का सकारात्मक मूल्यांकन होता है।

निष्कर्ष: अध्ययन अनुशंसा करता है कि बच्चों के लचीलेपन पर माता-पिता के अभाव के प्रभाव की भरपाई के लिए अनाथालयों में अनुकूल वातावरण बनाया जाना चाहिए। अनाथ बच्चों की देखभाल में भोजन, आश्रय आदि जैसी अन्य जरूरतों की तरह मनोवैज्ञानिक चिंताओं को भी उचित महत्व दिया जाना चाहिए। स्कूलों और अनाथालयों ने योग्य स्कूल परामर्शदाताओं या बाल मनोवैज्ञानिक की भर्ती की संभावना पर विचार किया होगा। नियोजित मनोवैज्ञानिक के पास मनो-सामाजिक समस्याओं का निदान करने और जरूरतमंद बच्चों को मनोचिकित्सा प्रदान करने का कौशल होगा।

मुख्य शब्द : मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य, अवसाद, संस्थागत अनाथ, गैर-संस्थागत अनाथ, किशोर।

परिचय : किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें बढ़ती स्वतंत्रता, तेजी से होने वाले शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन, सामाजिक मुद्दों और चिंताओं की खोज, सहकर्मी समूह के साथ गतिविधियों पर अधिक ध्यान केंद्रित करना और एक बुनियादी आत्म-पहचान की स्थापना (हरलॉक, 1981) शामिल है। यह पाया गया है कि माता-पिता का लगाव जीवन संतुष्टि में सकारात्मक योगदान देता है और अवसाद, चिंता और अलगाव की भावना में नकारात्मक योगदान देता

है। समर्थन, निगरानी और अनुशासन माता-पिता के व्यवहार के केंद्रीय आयाम हैं जो किशोरों के समायोजन और कल्याण से जुड़े हुए हैं। सकारात्मक मनोविज्ञान में प्रगति ने विभिन्न विषयों में मनोवैज्ञानिक कल्याण में रुचि बढ़ा दी है। परिणामतः यह विशेष रूप से खुशी, जीवन संतुष्टि और सकारात्मक प्रभाव से संबंधित कल्याण के व्यक्तिपरक अनुभवों पर केंद्रित है। इसे स्थापित करने के लिए, एक व्यक्ति को सामाजिक अनुमोदन और समर्थन की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से माता-पिता से, जो आत्म-विकास की किशोरावस्था के दौरान महत्वपूर्ण है और इस पूरे चरण में कठिन समय से निपटने में मदद करता है (हार्टर, 1999; गार्बर और फ्लिन, 2001)। शोधकर्ताओं (कारबालो एट अल., 2000; वैन वेल एट अल., 2010) का मानना है कि माता-पिता के समर्थन और देखभाल की कमी वाले लोगों को अपने दैनिक जीवन में भारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और विभिन्न क्षेत्रों में तनावपूर्ण स्थितियों से निपटने के लिए कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिक स्थिति मानव गतिविधि ा के सभी पहलुओं में खुद को प्रकट करती है और यह समझने के लिए आवश्यक है कि क्या किशोरों जैसे युवा लोग जीवन संतुष्टि का अनुभव करते हैं और क्या वे परिपक्व हैं, कल्याण व्यक्तिगत स्वायतत्ता के विभिन्न स्तरों से जुड़ा हो सकता है। संस्थागतकरण बच्चों को अनाथालयों जैसे संस्थानों में रखना है। संस्थागतकरण का बच्चे के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रारंभिक महत्वपूर्ण विकास अवधि के दौरान और लंबी अवधि के लिए संस्थानों में बच्चों की नियुक्ति का विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। स्थायी माता-पिता की देखभाल हर बच्चे के लिए आदर्श स्थिति है। किशोरावस्था स्वयं और दूसरों से पूर्णता की मांग करने के बजाय पूर्ण या काफी अच्छा काम करने के बारे में अच्छा महसूस करना सीखने का समय है (नायर और मिनी, 2003)। अवसाद सबसे आम मनोवैज्ञानिक रूप से बढ़ने वाले विकारों में से एक है और यह सभी मनोवैज्ञानिक विकारों का पहला चरण है।

आवश्यकता एवं महत्व : पारिवारिक समर्थन, माता-पिता की देखभाल, सामाजिक प्रदर्शन और शिक्षा जैसे विभिन्न सुरक्षात्मक कारक आत्म-मूल्य, सामाजिक क्षमता आदि जैसी मनोवैज्ञानिक क्षमताओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (मीड, 1934; गेकास और सेफ, 1990)। परिवार समाज की प्रमुख सामाजिक संस्थाओं में से एक है। परिवार के भीतर बच्चा सामाजिक मानदंडों और मूल्यों को अपनाता है और समाज के अन्य सदस्यों के साथ संबंध बनाने में सक्षम हो जाता है। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इष्टतम प्रभावशीलता के साथ सकारात्मक भावनाओं और कामकाज के संयोजन के रूप में माना जा सकता है (डेसी और रयान, 2008; हुपर्ट, 2009)। माता-पिता का प्यार बच्चे के विकास के लिए ही नहीं बल्कि उसके अस्तित्व के लिए भी सर्वोच्च आवश्यकता है। घरेलू जीवन सभ्यता का सर्वोच्च और सर्वोत्तम उत्पाद है। यह मन और चरित्र को आकार देने वाली महान शक्ति है। माता-पिता की मृत्यु बच्चे के जीवन में बड़े बदलाव लाती है। अनाथ बच्चों में कई व्यक्तिगत, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक और शैक्षणिक समस्याएं होती हैं। वास्तव में, जिन बच्चों को माता-पिता की मृत्यु का अनुभव होता है, उनमें मनोरोग विकार से पीड़ित होने की संभावना दोगुनी होती है। अनाथ होने से किशोरों में भावनात्मक अशांति उत्पन्न होती है जो उनके आत्मसम्मान और स्वयं के मूल्यांकन के तरीके को प्रभावित कर सकती है। वर्तमान जांच का उद्देश्य कश्मीर डिवीजन के अनाथ किशोरों की मनोवैज्ञानिक स्थिति की जांच करना है। यह अध्ययन छात्रों को उचित तरीके से मार्गदर्शन करने के लिए शोधकर्ताओं, प्रशासकों और परामर्शदाताओं के लिए एक दिशानिर्देश बन जाएगा ताकि अच्छा आत्मसम्मान विकसित हो सके, अवसाद कम हो, चिंता कम हो और समग्र उपलब्धि में सुधार हो सके। इसके अलावा अध्ययन का उद्देश्य संस्थानों में रहने वाले अनाथ बच्चों की तुलना परिवारों के साथ, अभिभावकों के घरों में या अपने माता-पिता के घरों में रहने वाले अनाथों से करके बच्चों के आत्म विकास, उपलब्धि पर संस्थागत देखभाल के प्रभाव की जांच करना है। इसके अलावा, संस्थान, परामर्शदाता और शोधकर्ता इस अध्ययन के परिणामों को सूचना के स्रोत, समझने और छात्रों की मदद करने के साधन के रूप में उपयोग कर सकते हैं। परिणाम आगे की जांच के लिए एक कदम के रूप में भी काम कर सकते हैं।

समस्या का विधान : प्रस्तावित अध्ययन हेतु की गई चयनित समस्या इस प्रकार हैः

• कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज

उद्देश्य : प्रस्तावित अध्ययन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य तैयार किये गये हैंः-

1. संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।

2. अवसाद पर संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना करना।

परिकल्पना : प्रस्तावित जांच के लिए निम्नलिखित परिकल्पनाएँ तैयार की गई हैंः -

1. संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों के बीच अवसाद को लेकर महत्वपूर्ण अंतर है।

शर्तों और चरों की परिचालनात्मक परिभाषाएँ :

(क) *अवसाद :* प्रस्तावित अध्ययन में, अवसाद बेक की अवसाद सूची पर विषयों द्वारा प्राप्त अंकों को संदर्भित करता है।

(ख) *संस्थागत अनाथ :* प्रस्तावित अध्ययन के लिए संस्थागत अनाथालय में उन बच्चों को संदर्भित किया जाएगा

जिन्होंने अपने पिता को खो दिया है और समूह में रहने की व्यवस्था में देखभाल पाने के लिए संस्थान में रहते हैं।

(ग) *गैर-संस्थागत :* प्रस्तावित अध्ययन के लिए गैर संस्थागत अनाथ का तात्पर्य उन अनाथ बच्चों से होगा जिन्होंने अपने पिता को खो दिया है और परिवारों के साथ रहते हैं।

(घ) *किशोर :* प्रस्तावित अध्ययन के लिए किशोरों का तात्पर्य 13-15 आयु वर्ग के स्कूल जाने वाले बच्चों से है।

नमूना : प्रस्तावित अध्ययन के नमूने में कश्मीर घाटी के चार जिलों के विभिन्न मध्य विद्यालयों, माध्यमिक विद्यालयों और अनाथालयों में पढ़ने वाले 200 अनाथ किशोर शामिल हैं।

उपकरण : अन्वेषक ने प्रस्तावित अध्ययन के लिए आवश्यक डेटा एकत्र करने के लिए निम्नलिखित टूल का चयन किया बेक द्वारा अवसाद सूची।

अध्ययन का परिसीमन : प्रस्तावित अध्ययन का सीमांकन किया गया है

- अवसाद।
- कश्मीर प्रांत में संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोर।
- कश्मीर प्रांत के चार जिलेय अनंतनाग, बारामुल्ला, गांदरबल और श्रीनगर।

सांख्यिकीय उपचार : मीन, एसडी, टी-टेस्ट

विश्लेषण तथा व्याख्या : अवसाद पर संस्थागत अनाथ और गैर संस्थागत अनाथ किशोरों की औसत तुलना (प्रत्येक समूह में एन =100) पर एक त्वरित नजर डालने से अवसाद पर संस्थागत अनाथ और-गैर संस्थागत अनाथ किशोरों की औसत तुलना दर्शाती है। इसे पता चलता है कि किशोरों के दो समूह, संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ, अवसाद पर काफी भिन्न हैं। अवसाद पर संस्थागत और गैर संस्थागत अनाथों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है (टी = 6.99, पी = .0001)। इससे पता चलता है कि संस्थागत अनाथ गैर-संस्थागत अनाथों की तुलना में अवसाद से अधिक पीड़ित हैं। उपरोक्त परिणाम यह भी दर्शाते हैं कि गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों में संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में बेहतर दृष्टिकोण, स्वयं का ज्ञान, भावनात्मक स्थिरता, आत्म-स्वीकृति और उनकी उपलब्धि का सकारात्मक मूल्यांकन होता है। इस प्रकार उपरोक्त परिणामों की पुष्टि से परिकल्पना संख्या 1 जो इस प्रकार है, ''संस्थागत अनाथ और गैर संस्थागत अनाथ किशोरों में अवसाद पर महत्वपूर्ण अंतर होता है'' को स्वीकार किया जाता है।

निष्कर्ष : संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों में अवसाद दर कम होती है। संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में उनमें उच्च स्तर का आत्म-मूल्यांकन, भावनात्मक रूप से स्थिर, स्थिर भावना और उच्च आकांक्षा होती है। यह इंगित करता है कि तनावपूर्ण जीवन की घटनाओं जैसे कि माता-पिता को खोना और अनाथालय में रहना, विभिन्न प्रतिकूल मानसिक स्वास्थ्य परिणामों जैसे अवसाद, अकेलापन आदि का कारण बन सकता है। निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि पारिवारिक समर्थन की कमी मनोवैज्ञानिक कौशल के साथ-साथ सामाजिक कौशल के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। अनाथों की भावनात्मक क्षमताएँ, कम आत्म-सक्षमता उनकी दैनिक चिंताओं से निपटने की उनकी मनोवैज्ञानिक शक्तियों को प्रभावित करती है। अध्ययन से पता चलता है कि अनाथ किशोरों के साथ-साथ अनाथालयों के लिए भी व्यक्तिगत परामर्श कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए, जो उन्हें अपनी समस्या को दूर करने के लिए अपनी आत्म-क्षमताओं और क्षमताओं को पहचानने में मदद कर सकते हैं ताकि वे समाज के स्वतंत्र और साधन संपन्न व्यक्ति बन सकें।

ग्रन्थ सूची

1. अमाटो, पी. आर., और बूथ, ए. (1996).अ प्रोस्पेक्टिव स्टडी ऑफ पेरंटल डिवोर्स एंड पेरंट-चाइल्ड रिलेशनशिप्स. जर्नल ऑफ मैरेज एंड द फैमिली, 58, 356-365
2. अलोंजो, ए.ए. (1989). लोनलिनेस, थ्योरी, रिसर्च एंड एप्लीकेशन. कॉनटेमपोररी सोशियोलॉजी, 18 (3), 437-438
3. अवांग कादिर एट अल., (2016). अ स्टडी ऑन द साइको-सोशल प्रोब्लम्स ऑफ ऑर्फन्ज इन केरेला ओर्फनेज्ज. जर्नल ऑफ क्लिनिकल साइकोलॉजी, 2(1):36-44.
4. अज्जा इब्राहिम एट अल., (2012). अ स्टडी टुअस्सेस द प्रिवेलेंस एंड द प्रिडिक्टोर्स ऑफ डिप्रेशन अमंग ओर्फन्ज इन दखालिया गोवेर्नोरेट ओर्फनेज्ज. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कोलाबोरेटिव रिसर्च ऑन इंटरनेशनल मेडिसिन एंड पब्लिक हेल्थ, 4(12): 74-89.
5. कैसानो और फवा, (2002) फोस्टर, 2002. डिप्रेशन एंड पब्लिक हेल्थ एन ओवरव्यू. जर्नल ऑफ साइकोसोमेटिक रिसर्च, 53: 849-857.
6. फॉस्टर, 2002. d साइकोसोशल वेल-बींग ऑफ ओर्फंज इन सौदर्न अफ्रीका: द परसेप्शन ऑफ ओर्फंज एंड टीचर्स. द जर्नल फॉर ट्रांसडिसीप्लिनरी रिसर्च इन सौदर्न अफ्रीका, 6 (2): 461-477.

डॉ. आसिया मकबूल
सहायक आचार्य
स्कूल ऑफ एज्युकेशन एंड बिहेव्यरल साइंसेज,
कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल,
श्रीनगर-190006
ईमेल: aasiamaqboolku@gmail.com
डॉ. शाजिया
रीडर, हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
डॉ. उमर
रीडर, हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में गाँधीवादी चेतना

–डॉ. (श्रीमती) मंजू तिवारी
–ज्योति रावत

किसी भी रचनाकार की विचारधारा को समझने के लिए उस युग को विशेष परिस्थितियों से अवगत होना अत्यंत आवश्यक है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी के जन्म के समय राजनीतिक दृष्टि से देश परतंत्र था तथा भारतीयों द्वारा स्वतंत्रता की प्राप्ति के संघर्ष किये जा रहे थे। उनकी कल्पना ने ज्योंही जीवन के रंग पहचानने की चेष्टा की त्योंही उन्होंने देखा कि देश के दीवाने सिर पर कफन बाँधकर खून की होली से राष्ट्र के आँगन में बलिदान के महान यज्ञ के लिए चौक पूरे रहे है। देश का वातावरण राष्ट्रीय आन्दोलन के उमंग भरे कोलाहल से गूंज उठा था। गाँधी जी के नेतृत्व में भारत का वृद्ध और युवा रक्त अपने जन्म-सिद्ध अधिकार के लिए आकुल हो रहा है। अपनी मातृभूमि को अंग्रेजों की दासता से बंधन मुक्त करने के लिए देश को करना है- 'सम्मिलित संघर्ष' और हिन्दू-मुस्लिम एकता उस सम्मिलित संघर्ष की शक्ति है। जिस देश-भक्ति ने हिंदुत्व का रूप धारण करके भारतेंदु एवं प्रसाद जैसे मनीषियों को प्रेरित किया उसी राष्ट्रीय उत्थान की भावना ने 'प्रेमी' को हिन्दू-मुस्लिम एकता का चोला पहन कर ज्योति दिखाई। प्रेमी जी ने अपने नाटकों में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विशेष रूप से बल दिया है जिसका उदाहरण उनके नाटक में दृष्टव्य है- ''राजस्थान की एकता के लिए 'विषपान' की नायिका 'कृष्णा' ने विषपान किया था- और कल ही महात्मा गाँधी ने भारतीय एकता के बलिदान देकर भी हिन्दुस्तानियों ने राष्ट्रीय एकता का महत्व नहीं समझा। इसलिए मुझे सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता का बार-बार गान गाना पड़ रहा है।''[1] अपने स्वयं के जीवन की पीड़ा एवं उदासी में उन्होंने समस्त राष्ट्र की बेबसी और पीड़ा को महसूस किया। जैसा कि कहा गया है कि ''अपने को उसने सम्पूर्ण समाज का सजग और सम्पूर्ण प्रतिनिधि मानकर उन भीषण अभावों और विवश्ताओं, आर्थिक विषमताओं और किसी विशेष वर्ग को दी गयी शोषण की रियायतों का निराकरण राष्ट्रीय स्वाधीनता में पाने का प्रयत्न किया...प्रेमी के घायल मन को एक आदर्श का अवलम्ब मिल गया। उसी अवलम्ब को लेकर वह नाटकीय क्षेत्र में बहुत स्वस्थ लेखनी लेकर आगे बढ़े।''[2]

स्वतंत्रता सेनानियों एवं गाँधी जी के द्वारा अनेक आन्दोलन किये जा रहे थे। गाँधी जी ने भारतवर्ष के लिये अहिंसात्मक असहयोग का मार्ग अपनाया उन्होंने 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ करने का निश्चय करके दांडी-यात्रा प्रारम्भ की वहाँ पहुँच कर गाँधी जी ने 6 अप्रैल 1930 को नमक कानून भंग किया। इसके साथ ही साथ अछूतोद्धार-आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन का तीव्र गति से प्रचार किया। भारत छोड़ो आन्दोलन के सम्बन्ध में आचार्य नरेंद्र देव ने कहा है कि ''यह आन्दोलन स्वाधीनता आन्दोलन का सबसे बड़ा जनसंग्राम था।''[3] इन सभी राजनीतिक स्थिति का प्रेमी जी पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी के परिणामस्वरूप उनके मन में यह दृढ़ भाव उत्पन्न हुआ कि अंग्रेज ''फूट डालो और राज्य करो'' की नीति के अनुसार देश का विभाजन कर रहे हैं, अतः उन्होंने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय एकता व देशप्रेम के भाव व्यक्त किये। प्रेमी जी के सभी ऐतिहासिक नाटक इसी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। अमृतपुत्री, विदा, विषपान, कीर्ति-स्तम्भ, आन का मान, अमर बलिदान, शीशदान, बन्धु-मिलन, शतरंज के खिलाड़ी, भग्न प्राचीर आदि अनेक नाटकों में प्रेमी जी ने देश-प्रेम, राष्ट्रीय एकता, अतीत गौरव, गणतन्त्र की भावना, अहिंसा आदि का उल्लेख किया है। वास्तविकता तो यह है कि प्रेमी जी के सभी ऐतिहासिक नाटक भारत की राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त करने के लिए ही लिखे गये है।

गाँधी जी के दो अचूक अस्त्र सत्य और अहिंसा थे जिनका प्रयोग गाँधी जी ने अपने हर क्षेत्र में किया है। वैसे तो सामान्यता सत्य का अर्थ मात्र सत्य बोलने से लिया जाता है किन्तु गाँधी जी के विचार में वाणी में, आचार में सत्य होना ही सत्य है। इसी भावना को ध्यान में रखते हुए हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने नाटकों में सत्य को प्रदर्शित किया है। 'प्रतिशोध' नाटक में जब हीरा देवी चम्पतराय को मार डालने का षड्यंत्र करती है और यह बात शुभकरण को जैसे ही ज्ञात होती है

वह हीरा देवी को धिक्कारता हुआ कहता है ..."मायाविनी धिक्कार है तुम्हें! यह बात सोचते हुए तुम्हारी आत्मा काँपी नहीं जबान गिर नहीं पड़ी। तुम नारी हो नारी तो अधिष्ठात्री होती है, प्रेम, करुणा और ममता की सुर सरिता होती है। नारी होकर तुम किस नीचता के कलंक में पतित होने जा रही हो। पुरुष इतना नीच हो सकता है, किन्तु नारी..."[4] शुभकरण के इस कथन में सत्य का आभास हो रहा है। 'स्वप्न-भंग' नाटक में दारा जहाँ सत्य का अनुसरण करता है वहीं अहिंसा को भी गले से लगाता है। 'शपथ' नाट्यकृति में उज्जयिनी की नगर श्रेष्ठी भी अहिंसा में विश्वास रखती है। इसी प्रकार 'भग्न-प्राचीर' नाटक में भोजराज की मृत्यु के बाद मीरा अत्यंत भावविभोर हो जाती है। वह हिंसा मार्ग का विरोध करती हुई कर्मवती से कहती है, "युद्ध बहुत निष्ठुर कर्म है। मनुष्यता का ऊँचा गुण नहीं है। हिंसा का मार्ग आदर्श मार्ग नहीं है।"[5] 'शक्ति-साधना' नाट्यकृति में अंतिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ सम्राट अशोक के मार्ग का अवलम्बन करने हेतु अहिंसा को अपनाता है। रक्तरेखा, प्रतिशोध, बंधन, अमर आन, प्रवर्त्तन, स्वर्ण विहान (गीत नाटिका) आदि सभी नाटकों में प्रेमी जी ने सत्य एवं अहिंसा को वर्णित किया है।

गाँधी जी ने भारत से अंग्रेजों की सत्ता को समाप्त करने के लिए जिन अस्त्रों का सहारा लिया उनमें असहयोग एक प्रमुख अस्त्र था। प्रेमी जी ने भी अपने नाटकों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कहीं न कहीं असहयोग को वर्णित किया है। जहाँ-जहाँ असंतोष और अत्याचार दिखाई देता है उनके अन्दर अहिंसक विरोध की भावना भर देते हैं तथा उनके पात्र असहयोग के मार्ग को अपनाते हुए सफलता को प्राप्त कर जाते हैं। इसी का उदाहरण हम प्रेमी जी के गीत नाटिका 'स्वर्ण-विहान' में देख सकते हैं। राजा रणधीर जनता के इस असहयोग को अन्यायपूर्ण मानता हुआ अपनी पुत्री से कहता है–

''कैसा है अन्याय बनाते अपनी ही सरकार।
देते नहीं टैक्स भर डाले सारे कारागार।।"[6]

संवत प्रवर्त्तन, विदा, कीर्ति-स्तम्भ जैसे नाटकों में इस असहयोग भावना की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है।

महात्मा गाँधी के सत्याग्रह सिद्धांत के अंतर्गत सविनय अवज्ञा आन्दोलन का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यद्यपि प्रेमी जी के नाटकों में परोक्ष रूप से कुछ उदाहरण मिल जाते हैं जो इसी भावना के अनुरूप है। 'आन का मान' नाटक में सफियतुन्निसा का कथन दृष्टव्य है ''हिन्दू सैकड़ों की संख्या में बंदीगृह जाते, कोड़े खाते, सर कटवाते लेकिन जजिया नहीं देते तो मुझे भरोसा है। बाबा जान का हृदय भी काँप जाता होगा।"[7] निःसंदेह इस कथन में हिन्दू जनता की जिस हृदय भावना का दिग्दर्शन प्रेमी जी ने कराया है वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन की ही झलक है।

महात्मा गाँधी जी ने भारतीय संस्कृति के मर्म को गहनता के साथ समझकर उसको अपनाया। वे जानते थे कि उपवास का जीवन में अत्यंत महत्व है। उन्होंने इस उपवास को सत्याग्रह एवं आमरण अनशन का रूप प्रदान किया। प्रेमी जी ने महात्मा गाँधी के विभिन्न विचारों को अपने साहित्य में प्रतिपादित करते हुए उपवास का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है। जिसका ज्वलंत उदाहरन 'स्वर्ण-विहान' गीति नाटिका में देखा जा सकता है

''कोटि कोटि कठों से गूँजे,
यह गीत केवल यह तान।
अब स्वतंत्र जन ही बन लेगे,
अथवा हम देबेंगे प्राण।।"[8]

महात्मा गाँधी जी ने अपने सत्याग्रह के अंतर्गत हिजरत को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। हिजरत का शब्दकोश अर्थ होता है, देश छोड़ देना अथवा परदेश में बसना या प्रवास करना। गाँधी जी ने अंग्रेजी सत्ता के अत्याचारों का विरोध करने के लिए जनता को हिजरत करने की सलाह दी थी। प्रेमी जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में हिजरत का समावेश किया है। 'रक्षाबन्धन' नाट्यकृति में गुजरात के बादशाह बहादुर शाह का भाई चाँद खाँ अपने भाई बहादुर शाह के अत्याचारों से तंग आकर मेवाड़ में जा छुपता है। यद्यपि मेवाड़ को बाद में इसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है। चाँद खाँ का इस प्रकार पलायन करना हिजरत का ही उदाहरण है। 'आहुति' नाटक में दिल्ली के बादशाह का एक सिपहसालार मीर महिमा अपने राजा की गलत वक्तव्य का विरोध करता है इस पर राजा क्रोधित होकर उसे देश की सीमा से बाहर निकाल देता है। वह रणथम्भौर में महाराणा हम्मीर सिंह के पास शरण लेता है। मीर महिमा का प्रवास हिजरत का ज्वलन्त उदाहरण है। प्रेमी जी के 'भाई-भाई' नाट्यकृति में एक पात्र सूर्य कुमारी देश छोड़कर जाने का उद्वेग करती है किन्तु जब उसकी दासी चमेली उसे षड्यंत्रों के बारे में बताती है तो वह बालक मोकल के लिए जंगल में जाने का निश्चय करती है। वह कहती है- ''भोली हो राजमाता यह तो कर्तव्य से पलायन करना है। भारत की यही तो भूल है कि वह कर्तव्य से घबराकर वैराग्य के पथ पर अग्रसर होना चाहता है। जिस पर मनुष्य समाज के उद्धार का दायित्व है। वे अपने लिए मुक्ति का मार्ग खोजते फिरते है।"[9] प्रेमी जी ने अन्य नाटकों में भी इतिहास के अनेक ऐसे प्रसंग को वर्णित किया है। जहाँ किसी न किसी के अत्याचार से त्रस्त होकर या अत्याचारी से बदला लेने की भावना से लोगों ने अपने राज्य की सीमा का परित्याग किया है।

गाँधी जी के एक प्रमुख सिद्धांत हृदय परिवर्तन को भी प्रेमी जी ने अपने नाटकों में स्थान दिया है। 'प्रतिशोध' नाटक की हीरा देवी दृष्ट प्रकृति की महिला है वह दूसरों

को सदैव प्रताड़ित करती रहती है। चम्पतराय, पहाड़ सिंह और भीम सिंह बुन्देलखण्ड की स्वतन्त्रता के हितैषी हैं। इसलिए बुन्देलखण्ड में चम्पतराय का सम्मान किया जाता है। वह जहरवाला थाल भीम सिंह जानबूझकर स्वयं अपने लिए रखते हैं, जिससे भीम सिंह जी असमय ही काल कवलित हो जाते हैं। इस प्रकार के दृष्ट कृत्यों से उसका विश्वास जनता से उठ जाता है जिसके कारण हीरा देवी का हृदय परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार 'शपथ' नाटक में हूण सम्राट मिहिरकुल भारत विजय का स्वप्न देखता है किन्तु जब वह पराजित हो जाता है तो उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है। 'स्वप्न-भंग' नाट्यकृति में औरंगजेब का पुत्र अपने पिता की आज्ञा का अनुपालन करते हुए शाहजहाँ से शाही मुहर और राजमुकुट लेने आता है। लेकिन मुहम्मद को जब यह ज्ञात होता है कि इसी राजमुकुट के कारण ही गृह क्लेश मचा हुआ है तो उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। 'रक्षाबन्धन' नाटक में मुगलसेना का पोर्चगीन सेना अध्यक्ष का जवाहर बाई की तलवार संचालन तथा वीरता को देखकर हृदय बदल जाता है। वह एक पात्र मुलू खां से कहता है, ''कैसा प्यारा था वह नजारा। दोनों हाथों में नेकी की तरह खूबसूरत औरत तलवार चलाती हुई हमारी फौज पर टूट पड़ी। लड़ना छोड़कर मैं तो तमाशा देखने लगा। जी चाहा उसके कदमों में सर रख दूँ।''[10] 'आन का मान' नाटक में जीवन भर लूट-पाट, हिंसा आदि कुकृत्य करने वाला औरंगजेब अंतिम समय में उसका भी हृदय परिवर्तित हो जाता है। वह अपनी पुत्री जिनतुनिसा से इसी हृदय परिवर्तन से सम्बधित वार्तालाप करता है। गाँधी जी के हृदय परिवर्तन से प्रभावित होकर प्रेमी जी ने सामाजिक नाटक 'बंधन' की भी रचना की। इस नाटक में पूँजीपति का एक युवक किस प्रकार से हृदय परिवर्तित करता है इसको बड़े ही रोचक ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। हृदय परिवर्तन से क्रूर और निर्मम व्यक्ति भी कुत्सित मार्ग का त्याग कर सुमार्ग पर आ जाता है। जिसको प्रेमी जी ने अपने नाटकों में यथार्थ रूप में अपनाया है।

गाँधीवादी विचारधारा का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत पश्चाताप भी है। मनुष्य जब कोई गलती करता है और जब उसे यह ज्ञात होता है कि अमुक कार्य गलत किया तो उसके हृदय में जो ग्लानि का भाव जागृत होता है वह पश्चाताप है। प्रेमी जी के नाटकों में इस प्रकार के भाव देखने को मिलते हैं। 'शपथ' नाटक में एक पात्र मिहिरकुल है, वह धन्यविष्णु से कहता है मुझे कंचनी से अधिक आप पर रोष आया था। मेरा क्रोध आपकी काया के टुकड़े-टुकड़े करने को तत्पर हो गया था। धन्यविष्णु अपनी भूल पर पश्चाताप करता हुआ कहता है, ''मेरा निर्लज्ज अस्तित्व धरा की छाती पर व्यर्थ ही लदा हुआ है।''[11] 'ममता' नाटक में जब रजनीकांत की पत्नी लता अपने मायके चली जाती है तब रजनीकांत स्वयं को दोषी मानते हुए पश्चाताप की आग में जलता है। 'आन का मान' नाटक में औरंगजेब भी अंतिम समय में ग्लानि करता है। औरंगजेब का जीवन संघर्षमय रहा उसने आजीवन कोई मानवोचित कार्य नहीं किया अपने पिता के कृत्यों को याद कर वह अपने भूलों पर पश्चाताप करता है। अपनी धर्मान्धता के कारण अपने आत्मीयजनों के सुखों की भी चिंता न की। वह अपने पुत्रों से मिलने के लिए आतुर हो उठता है। अपने इस भूल को वह स्वीकार कर अंत समय में पश्चाताप करता है। 'प्रतिशोध' नाट्यकृति में भी हीरा देवी पश्चाताप करती हुई प्रस्तुत की गयी है। 'स्वप्न-भंग' नाटक में शाहजहाँ को जब औरंगजेब बंदी बना लेता है तब वह असहाय होकर पश्चाताप करता है। 'विदा' नाट्यकृति में प्रेमी जी ने इसी पश्चाताप को वर्णित किया है। इस प्रकार प्रेमी जी ने अपने अन्य नाटकों में भी यत्र-तत्र पश्चाताप का वर्णन करके पाठकों को भावविभोर किया है।

गाँधी जी ने समाज में साम्य स्थापित करने के लिए धन का समान वितरण करने पर जोर दिया। वे धन का आसमान वितरण को राम-राज्य का दर्शन करने में बाधक तत्व मानते थे। इसे भावना से प्रेरित होकर 'प्रेमी' जी ने धन के समान वितरण को अपने नाटकों में स्थान दिया है। 'शपथ' नाट्यकृति में विष्णुवर्धन कहता है, ''जिस प्रकार सूर्य की किरणों को थोड़े से व्यक्ति बना कर नहीं रख सकते उसी प्रकार उदार पृथ्वी माता द्वारा प्रदत्त धान्य-दृव्य रत्नादि को कोई बंदी बनाकर रख सकेगा।''[12] 'अमर-आन' नाट्यकृति में अहाड़ी रानी का वक्तव्य धन के समान वितरण की ओर संकेत करता है। 'बंधन' नाटक में समाज में व्याप्त धन की असमानता को चित्रित किया गया है। मजदूरों ने धन के समान वितरण के लिए जो भूख हड़ताल की किन्तु हड़ताल के विफल हो जाने पर मजदूरों के बाल-बच्चे भूखे मरने लगते हैं इस दयनीय दशा का चित्र प्रेमी जी ने यथार्थ रूप में पाठकों के सामने रखा है। 'नई राह', रक्तदान, अमर-आन आदि अनेक नाटकों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से धन के समान वितरण को स्थान देकर समतामूलक गाँधीवादी अवधारणा को ग्रहण किया है।

उपवास का प्रथम चरण होता है-अन्न का त्याग करना। इस सन्दर्भ में 'प्रतिशोध' नाटक में दृष्टव्य है- औरंगजेब जब अपनी मौसी से मिलने बुरहानपुर गया था तब उसके साथ उसकी बहिन जहाँनारा भी थी। औरंगजेब को मौसी की बांदी हीराबाई से मुहब्बत हो गई और वह उसको याद कर एकदम बेसुध और बैचेन हो उठता है साथ ही स्मृति आते ही मूर्च्छित हो जाता है। वह उसकी मुहब्बत में इतना डूब जाता है कि उसे पाने के लिए मान मर्यादा को ताक पर रखकर खाना पीना छोड़ देता है। अंत में हार मानकर

औरंगजेब की मौसी ने हीराबाई को उसको सौंप दिया इस सम्बन्ध में जहाँनारा कहती है- ''वह जिन्दगी के एक कुदरती जज्बे की सच्चाई थी। भैया वह इंसानियत थी। तुम खाना पीना छोड़ बैठे, तुम्हें दुनिया का शर्मो लिहाज न रहा। तब मौसी ने हीराबाई तुम्हारे हवाले करके तुम्हारी जान बचाई थी।''[13] जहाँनारा के इस कथन से उपवास की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है।

निष्कर्ष :- विश्व ने जिसे गाँधीवाद कहा, वह अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन नैतिक मूल्यों का सार तत्व माना जाता है। गाँधीवादी साहित्य लेखन की परम्परा में अनेक साहित्यकारों का नामोल्लेख किया जाता है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी भी इन साहित्यकारों में से एक है जिनके नाटकों में गाँधीवादी विचारधारा विद्यमान है। प्रेमी जी ने न केवल गाँधीवादी सिद्धांतों को प्रतिपादित किया अपितु वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में भी अंगीकार किया। उन्होंने गाँधी जी के सत्य, अहिंसा, हृदय परिवर्तन, पश्चाताप, सत्याग्रह आदि विचारों को अपने नाटकों में यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। जिसमे प्रेमी जी ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। गाँधी जी एक राजनैतिक व्यक्तित्व नहीं थे अपितु वे एक आध्यात्मिक पुरुष भी थे। उनके सिद्धांतों में पुनर्जन्म में विश्वास, अलौकिक सत्ता में आस्था, कर्मफल के सिद्धांत में विश्वास, ईश्वर की सत्ता सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक मानना आदि भी सम्मिलित है। प्रेमी जी ने गाँधी जी के इन सिद्धांतों एवं विचारों को अपने नाटक में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कहीं न कहीं स्थान दिया है। एकेश्वरवाद का समर्थन करते हुए 'विदा' नाटक में जेबुन्निसा कहती है, ''मनुष्य को केवल एक खुदा को ही मानना चाहिए, और किसी देवता पर विश्वास नहीं करना चाहिए।''[14] हरिकृष्ण प्रेमी जी ने केवल लिखने के लिए अपने कलम नहीं उठाई बल्कि अपने प्राणों का आसव पिलाकर मानवता, समाज और देश को नई स्फूर्ति देने का आयोजन किया। प्रेमी जी एक आदर्श भारत का रूप हृदय में संजोये थे और यह आदर्श भारत वहीं था जिसका स्वप्न गाँधी जी ने देखा था।

सन्दर्भ

1. नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी'- व्यक्तित्व और कृतित्व, विश्व प्रसाद दीक्षित बटुक, रघुवीर शरण बंसल, दिल्ली, प्रथम सं.-1960, पृ. 3
2. वही, पृ. 3
3. राष्ट्रीयता और समाजवाद, आचार्य नरेंद्र देव, पृ. 189
4. प्रतिशोध, हरिकृष्ण प्रेमी, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सं. 1972, पृ. 27
5. भग्न-प्राचीर, हरिकृष्ण प्रेमी, बंसल एंड कम्पनी, दरियागंज, दिल्ली-7, पृ. 103
6. स्वर्ण-विहान, हरिकृष्ण प्रेमी, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, पृ. 80
7. आन का मान, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 31
8. स्वर्ण-विहान, हरिकृष्ण प्रेमी, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, पृ. 64
9. भाई-भाई, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 9
10. रक्षाबन्धन, हरिकृष्ण प्रेमी, हिंदी भवन, इलाहबाद, सं. 1990, पृ. 55
11. शपथ, हरिकृष्ण प्रेमी, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सं. 1951 ई., पृ. 120
12. वही, पृ. 114
13. प्रतिशोध, हरिकृष्ण प्रेमी, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सं. 1972, पृ. 64
14. विदा, हरिकृष्ण प्रेमी, हिंदी भवन, जालन्धर और इलाहाबाद, पृ. 5

डॉ. (श्रीमती) मंजू तिवारी
शोध-निर्देशिका
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी साहित्य,
आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय
हर्षनगर, कानपुर

ज्योति रावत
शोधार्थिनी
नेट / जे. आर. एफ. (हिंदी साहित्य)
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

भारत के ग्रामीण समाज में युवा महिलाओं का सशक्तिकरण

डॉ. प्रियंका

सारांश : महिला-सशक्तिकरण का अर्थ ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं में अपने आपको संगठित करने की क्षमता बढ़ती है और सुदृढ़ होती है। वे लिंग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा परिवार व समाज में भूमिका के आधार पर निर्धारित सम्बन्धों को दरकिनार करते हुए आत्मनिर्भरता विकसित करती हैं। भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। विशेषकर युवा स्त्रियां भारत के आधुनिकीकरण और सामाजिक बदलाव में सबसे बड़ी भूमिका निभाने वाली हैं बशर्ते हम उन्हें इसके लिए अवसर प्रदान करें। देश की वर्तमान मोदी सरकार ग्रामीण समाज में युवा महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में सतत प्रयास कर रही है, जिसके फलस्वरूप युवा महिलाओं की स्थिति में निरन्तर सुधार हो रहा है।

प्रमुख शब्द- युवा महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण समाज, आधुनिकीकरण और सामाजिक बदलाव, स्त्री की भूमिका।

सन् 2019-2024 की वर्तमान सरकार ने राष्ट्रीय महिला नीति का जो प्रारूप जारी किया है। इसका उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक-आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है। स्त्रियों को लेकर बुनियादी अवधारणाओं में बदलाव लाना अत्यन्त आवश्यक है, वर्तमान में अब स्त्रियों की सामाजिक भागीदारी और अधिकारों की बात होनी चाहिए। भारत सरकार ने सन् 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित किया था एवं उसी वर्ष 'राष्ट्रीय महिला अधिकारिता नीति' लागू हुई थी। अब इस नीति को नया मोड़ देने का समय आया है। इसमें युवा वर्ग की महिलाओं की भूमिका को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने की जरूरत है। पिछले कुछ वर्षों में दुनिया बहुत बदली है। बीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में भारत के तकनीकी-आर्थिक एवं सामाजिक रूपांतरण में महिलाओं एवं लड़कियों की भागीदारी बढ़ी है।

भागीदारी के साथ-साथ लड़कियों के जीवन के जोखिम भी बढ़े हैं। खासतौर से दिल्ली में निर्भया कांड के बाद से स्त्रियों की सुरक्षा का सवाल उभर कर आया है। अपने घरों से निकल कर काम करने या पढ़ने के लिए बाहर जाने वाली स्त्रियों की सुरक्षा का सवाल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जब हम ग्रामीण युवा स्त्रियों के सशक्तिकरण के बारे में सोचते हैं तो यह पाते हैं कि उन्हें आगे बढ़ाने के लिए एवं उनको शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ग्रामीण समाज की युवा महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता शहरी महिलाओं की तुलना में कम है। उनके लिए घर से निकलना ही मुश्किल है, भले ही उनके घर वाले उन्हें पढ़ाना चाहें।

अनेक कठिनाइयों के बावजूद भारतीय ग्रामीण समाज की लड़कियों के हौंसलों में किसी भी तरह की कमी नहीं है। वे भी घर से बाहर निकल कर अपने सामाजिक विकास के रास्ते खोज रही हैं। सन् 2000 के एक नेशनल सैंपल सर्वे के मुताबिक देश में 15-32 आयु वर्ग के लगभग 74 फीसदी युवा पलायन करते हैं। पलायन के लिए बताए गए कई कारणों में से प्रमुख रोजगार, शिक्षा और शादी है। शुरुआती वर्षों में यह पलायन ज्यादातर लड़कों का था, पर अब लड़कियां भी शहरों का रूख कर रही हैं। और वे भी शादी के बंधन में जल्द नहीं बंधना चाहती हैं। वर्तमान सरकार नई महिला नीति लेकर आई है, जिस पर बदली हुई स्थितियों में विचार किया जाना चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में काफी सामाजिक बदलाव आया है। विशेषकर महिलाओं की जागरुकता और आकांक्षाएं बढ़ी हैं। उनकी सामाजिक-शैक्षिक स्थिति बदली है और निश्चित रूप से अगले कुछ सालों में उनके जीवन में परिवर्तन दिखाई देगा।

सन् 2019-2023 के वर्तमान सामाजिक जीवन में युवा महिलाओं की भूमिका पुरुषों से ज्यादा बड़ी है। देश का सामाजिक और आर्थिक विकास स्त्रियों के विकास पर निर्भर करता है। जब एक महिला सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त होती है तो न केवल उसका परिवार, गांव बल्कि देश भी मजबूती पाता है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 83.3 करोड़ आबादी गांवों में रहती है। इनमें लगभग 40.51 करोड़ महिलाएं हैं। इनमें एक तिहाई युवा महिलाएं हैं। अवसरों की कमी, कौशल न होने और अक्सर पैसे की कमी से इनकी

उत्पादन क्षमता का पूरा लाभ देश को नहीं मिल पा रहा है। स्त्रियों का सशक्तीकरण उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक-पारिवारिक स्थिति से सीधा जुड़ा हुआ है। भारत में इस वक्त किशोरों और युवाओं की दुनिया की सबसे बड़ी आबादी निवास करती है। सामान्यतः हम 13 से 19 वर्ष के व्यक्ति को किशोर और 16 से 24 वर्ष को युवा में शामिल करते हैं। यह परिभाषा कुछ आगे-पीछे हो सकती है। भारत में इस समय उपरोक्त आयु वर्ग में 21 करोड़ से ज्यादा किशोर और लगभग इतनी ही युवा आबादी है। इस आबादी में आधी के आसपास स्त्रियां हैं और इन स्त्रियों में 60 फीसदी ग्रामीण है, जिसमें तेजी से बदलाव आ रहा है।

सन् 2023 के वर्तमानकाल में युवावस्था से ज्यादा महत्वपूर्ण किशोरावस्था होती है, जो युवावस्था की बुनियाद है। उम्र का यह संधिकाल होता है, जब सब कुछ बदलता है। बच्चा एक सामान्य नागरिक बनने की दिशा में होती है, उसका शारीरिक बदलाव इसी दौरान होता (खासतौर से लड़कियों का) है। उसका व्यावसायिक जीवन इसी दौर में तय होता है।

नागरिक के रूप में अपनी जिम्मेदारियों का एहसास भी उसे इसी दौरान होता है। स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिहाज से यह उम्र ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि नए ज्ञान से परिपूर्ण लड़कियां अपने परिवार के दृष्टिकोण को बदलने में क्रांतिकारी भूमिका निभा सकती हैं। इसलिए ग्रामीण युवा बालिकाओं का सशक्तिकरण एक प्रकार से सामाजिक बदलाव का सबसे प्रभावशाली औजार साबित हो सकता है। पर लिंगानुपात बताता है कि हमारा समाज लड़कियों की उपयोगिता से परिचित नहीं है।

लैंगिक अनुपात से समाज में स्त्रियों की दशा का पता लगता है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल लैंगिक अनुपात 1000 पुरुषों में 943 स्त्रियों का है। ग्रामीण अनुपात 949 का और शहरी अनुपात 923 का है। देश के अलग-अलग स्थानों में यह अलग-अलग है, पर सबसे खराब स्थिति हरियाणा की है जहां नवीनतम आंकड़ों के अनुसर छह साल से कम की उम्र के बच्चों का लैंगिक अनुपात 843 का है। पंजाब में 846, जम्मू-कश्मीर में 862, राजस्थान में 888 और उत्तर प्रदेश में 902 है।

लैंगिक अनुपात बताता है कि समाज स्त्रियों को किस रूप में देखता है। भारत में 0-6 साल वर्ग में 1000 लड़कों के बीच लिंग अनुपात में लड़कियों की संख्या में गिरावट की प्रवृत्ति 1961 से लगातार देखी जा रही है। वर्ष 1991 में 945 संख्या के 2001 में 927 पहुंचने और 2011 में इस संख्या के 918 पहुंचने पर इसे खतरे की घंटी मानते हुए सरकार ने इसे सुधारने की कोशिशें शुरू की हैं। लिंग अनुपात में गिरावट सीधे तौर पर जन्म से पूर्व लिंग की पहचान करने वाली तकनीक के दुरुपयोग की ओर इशारा करती है। वर्तमान सरकार ने 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' योजना की शुरुआत की है जिसे खराब लिंगानुपात वाले 100 जिलों में प्रारंभ किया गया। सामान्यतः जिन सूचकांकों पर ध्यान देना चाहिए उनमें से कुछ इस प्रकार हैं- विवाह के समय की औसत आयु, बच्चे को जन्म देते समय माताओं की मृत्यु, बच्चों के जन्म के बीच की अवधि, परिवार के सदस्यों की संख्या, स्त्रियों के खिलाफ अपराध, साक्षरता दर, श्रमिकों में स्त्रियों की संख्या और बाल लैंगिक अनुपात। स्त्रियों के स्वास्थ्य का जिक्र किए बगैर उनके सशक्तिकरण की बात करना उचित नहीं होगा।

देश की लगभग 12 करोड़ युवा स्त्रियां यदि सही समय पर उत्पादक कार्यों में लग सकें तो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भारी बदलाव लाया जा सकता है। इन ग्रामीण महिलाओं को शारीरिक, शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से सशक्त बनाने की जरूरत है। इस साल अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के मौके पर 7 मार्च को दिल्ली में आयोजित एक कार्यक्रम में हारवर्ड विश्वविद्यालय से जुड़े अर्थशास्त्री रोहिणी पाण्डे ने एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि भारत में कामकाजी महिलाओं की संख्या में गिरावट आ रही है। उन्होंने दक्षिण एशिया के आंकड़े देते हुए बताया कि यहां के पांच देशों में नेपाल, बांग्लादेश और श्रीलंका के बाद 27 फीसदी महिलाएं कामकाजी हैं। पाकिस्तान में इससे भी कम 25 फीसदी। उनका कहना था कि भारतीय महिलाओं की संख्या में पाकिस्तान की तुलना में गिरावट आ रही है। कामकाजी से उनका आशय औपचारिक रोजगार से है, घरेलू कामकाज से नहीं।

सामान्यतः जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होता है, स्त्रियां मेहनत के छोटे कामकाज जैसे खेती और ऐसे ही दूसरे कामों से हटती जाती हैं। पर जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होता है और अर्थव्यवस्थाओं में गति आती है, कामकाजी तबके में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ती जाती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में घर से बाहर निकलकर काम पर जाना महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं। जो महिलाएं काम करती हैं उनका विवाह जल्दबाजी में नहीं होता, बाल-मृत्युदर कम होती है तथा उनके बच्चे अपेक्षाकृत बेहतर शिक्षा पाते हैं और सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के लिहाज से तमाम सकारात्मक गतिविधियां होती हैं। इस प्रकार के अध्ययन सामने आए हैं, जो बताते हैं कि महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में काम पाने के बाद महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। वर्तमान में स्त्रियों के साथ आज भी कामकाज में पूरी तरह समानता का व्यवहार नहीं हो पाता है, उन्हें पुरुषों से कम वेतन मिलता है और उनकी पारिवारिक भूमिका ज्यादा बड़ी होने के बावजूद कार्यस्थल

पर विपरीत स्थितियों में काम करना पड़ता है। यदि उन्हें उपयुक्त रोजगार मिले तो वैश्विक अर्थव्यवस्था में सुधार हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का अनुमान है कि दुनिया में आज भी स्त्रियों की 48 फीसदी उत्पादक क्षमता का इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है। महिलाओं का रोजगार में शामिल होना उनके सशक्तिकरण के लिए जरूरी है, साथ ही अर्थव्यवस्था के विकास में भी उसकी भूमिका है। प्रश्न यह है कि देश में माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का प्रसार बढ़ने के बावजूद महिलाओं की भूमिका बढ़ क्यों नहीं रही है? और वह कैसे बढ़ सकती है? इसके लिए जल्दबाजी में कोई निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा, पर कुछ मुख्य बातों की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है, जिनमें कारण और निवारण दोनों छिपे हैं।

भारतीय स्त्रियों में काम करने की ललक है और वह बढ़ ही रही है। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे (राउंड 68) के अनुसार 31 प्रतिशत स्त्रियां जिनका ज्यादातर समय घरेलू कामकाज में व्यतीत होता है, अब बाहर निकल कर काम करना चाहती हैं। पढ़ी-लिखी ग्रामीण स्त्रियों का यह प्रतिशत और भी अधिक यानी 50 फीसदी से ज्यादा है। काम करने की इच्छुक हर प्रकार की स्त्रियों को जोड़ा जाए तो देश में 78 फीसदी स्त्रियों की कामकाज में हिस्सेदारी हो सकती है। इसका दूसरा पहलू यह है कि स्त्रियां ज्यादातर घर के आसपास काम चाहती हैं। बहुत सी स्त्रियां इसलिए काम नहीं करतीं, क्योंकि घर या गांव के पास काम नहीं मिलता। इसके साथ अवसरों की बात भी है। सन् 1987 में 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' शुरू होने के बाद शिक्षकों का कोटा तय होने से महिलाओं के लिए अध्यापन का क्षेत्र खेती के बाद दूसरे नम्बर पर आ गया है। गांवों की पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिए एक दरवाजा खुला। इधर कौशल भारत, मेक इन इंडिया, महिलाओं के लिए शिक्षा और कुछ नौकरियों में कोटा या प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति ने युवा महिलाओं की भूमिका को बढ़ाया है। 21वीं शताब्दी में विनिर्माण के क्षेत्र में स्त्री श्रमिकों का प्रतिशत 15 से बढ़कर 25 हुआ है। महिलाओं के रोजगार में सबसे बड़ी बाधा है प्रवास। यानी दूसरे गांव, शहर या देश में जाकर काम करना आसान नहीं है। प्रवास मुश्किल है और हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियां पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों के प्रवास के प्रतिकूल है।

सामान्यतः राजनीति में स्त्रियों की भूमिका बहुत सीमित है। यह दुनियाभर की प्रवृत्ति है, पर भारतीय राजनीति में स्त्रियों की भूमिका और भी कम है। सामान्यतः संसद और विधानसभाओं में महिला सदस्यों की संख्या 10 फीसदी से ऊपर नहीं जाती। पर पंचायती राज ने एक रास्ता खोला है। 24 अप्रैल, 1993 को भारत में संविधान के 73वें संशोधन के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा हासिल कराया गया। यह फैसला ग्राम स्वराज के स्वप्न को वास्तविकता में बदलने की दिशा में एक कदम था, पर उतना ही महत्वपूर्ण महिलाओं की सामाजिक भागीदारी के विचार से था। इसमें महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों के आरक्षण की व्यवस्था थी। यह कदम क्रांतिकारी साबित हुआ। हालांकि इस कदम की प्रारम्भ में आलोचना की गई। आज भी बहुत सी महिला पदाधिकारियों के नाम से उनके पति, पिता या पुत्र काम कर रहे हैं, पर ऐसी महिलाओं की कमी नहीं है, जिन्होंने सफलता और कुशलता के साथ अपने काम को अंजाम दिया है। पंचायती राज में अब दूसरी पीढ़ी की युवा लड़कियां सामने आ रही हैं।

पंचायती राज के कारण गांवों में महिलाओं की भूमिका में युगांतरकारी बदलाव आया है। अब इस आरक्षण को बढ़ाकर 50 प्रतिशत किया जा रहा है। हालांकि कुछ राज्यों में 50 फीसदी आरक्षण शुरू हो चुका है, पर हाल में केन्द्र सरकार के पंचायती राज मंत्री ने कहा कि संविधान में संशोधन के बाद इसे पूरे देश में लागू कर दिया जाएगा। सरकार ने नई महिला नीति का जो दस्तावेज जारी किया है उसका एक लक्ष्य महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण करना भी है ताकि उनके लिए ऐसा सामाजिक-आर्थिक वातावरण तैयार हो, जिसमें वे अपने मूल अधिकारों को प्राप्त कर सकें। इस अधिकार को हासिल करने में युवा महिलाओं की भूमिका ज्यादा बड़ी है। वर्तमान सरकार ने कुछ राज्यों ने पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव लड़ने के लिए शैक्षिक योग्यता को भी अनिवार्य बनाया है। इसका कुछ विरोध भी हुआ है, पर इससे युवा स्त्रियों के लिए अवसर बढ़ेंगे। नई महिला नीति का दस्तावेज भी प्रशासन, लोकसेवा और कॉरपोरेट क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की बात करता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि युवा स्त्रियों के सशक्तिकरण की बात तब तक अधूरी है जब तक लड़कियों को लेकर सामाजिक दृष्टिकोण की बात नहीं की जाए। केवल लड़कियों की भूमिका बदलने का सवाल नहीं है, बल्कि उनके प्रति सामाजिक नजरिया भी बदलना चाहिए। उनकी सुरक्षा इसी नजरिए से तय होगी। असुरक्षित और भयभीत बालिका से हम बहुत ज्यादा की उम्मीद नहीं कर सकते। सुरक्षा का वातावरण बनाने की जिम्मेदारी पूरे समाज की है। यह काम सामाजिक शिक्षण से पूरा हो सकता है। हम परम्परा से 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते' जैसी बात कहते जरूर हैं, पर व्यावहारिक रूप से इसे लागू नहीं कर पाते हैं। जो लिंगानुपात देश के कई इलाकों में है, वह इस सामाजिक दृष्टिकोण पर मोहर लगाता है। कहना मुश्किल है कि 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का नारा हमारे दिलो-दिमाग में बैठा है या नहीं। पर हम व्यवहार रूप में इसे लागू कर सकें तो कहानी बहुत जल्द ही बदल जायेगी।

संदर्भ

1. डॉ. मनोहर अगनानी (अनुवादक- एस.के. सक्सेना), ''कहाँ खो गयी बेटियाँ'' - वाणी प्रकाशन 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्रण 2007
2. डॉ. वि. कुमार, डॉ. शिवनारायण गुप्त, ''जनांकिकी'', एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, संस्करण 2011-2012
3. सुधारानी व आशा श्रीवास्तव - महिलाओं के प्रति अपराध, अर्जुन पब्लिशर्स हाऊस, नई दिल्ली, 2003
4. नारी शोषण : समस्या और समाधान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2005
5. डॉ. वी. सी. सिन्हा, डॉ. पुष्पा सिन्हा, जनांकिकी के सिद्धान्त, प्रकाशक के.एल. मलिक एण्ड संस प्रा. लि. 23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
6. रवीन्द्र कुमार पाठक, जनसंख्या समस्या के स्त्री पाठ के रास्ते .... - राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. 7/31, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010
7. डॉ. निशान्त सिंह - औरत, अस्मिता और अपराध, राजभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
8. तिवारी एवं शुक्ला - भारतीय नारी : वर्तमान समस्याएं और भावी समाधान, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, 2022
9. बहोरा आशारानी - नारी शोषण : आईने और आयाम, नेशनल पब्लिशर्स हाऊस, नई दिल्ली-1994
10. प्रज्ञा शर्मा - महिलाओं के प्रति अपराध, पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर, 2021
11. कुरुक्षेत्र - ग्रामीण विकास की संभावनाएं अंक जनवरी 2023, सूचना भवन सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली
12. कुरुक्षेत्र - पंचायत योजना के माध्यम से नए भारत का निर्माण (लेखक के.के. त्रिपाठी), जनवरी 2021, सूचना भवन सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली।

डॉ. प्रियंका

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग,

नेहरू कॉलेज छिबरामऊ, कन्नौज, उ.प्र.

कामकाजी महिलाओं के लिए योगाभ्यास के लाभ : एक समीक्षात्मक अध्ययन

–दीप्ति मुदगल
–डॉ. शाम गनपत तिखे

सारांश : योग विभिन्न जनसांख्यिकीय व्यक्तियों के लिए कई लाभों के साथ एक लोकप्रिय स्वास्थ्य अभ्यास के रूप में उभरा है। विशेष रूप से, कामकाजी महिलाओं को योग को अपनी दिनचर्या में शामिल करने से महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं। इस समीक्षा लेख का उद्देश्य कामकाजी महिलाओं के लिए योग अभ्यास के विशिष्ट लाभों का पता लगाना है। मौजूदा साहित्य और शोध की जांच करके, हम कार्यबल में महिलाओं को योग द्वारा प्रदान किए जाने वाले शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक लाभों की पड़ताल करते हैं। तनाव में कमी और बेहतर एकाग्रता से लेकर कार्य-जीवन संतुलन और समग्र कल्याण तक, यह समीक्षा कामकाजी महिलाओं के लिए योगाभ्यास के परिवर्तनकारी प्रभावों पर प्रकाश डालती है।

मुख्य शब्द : योगाभ्यास, कामकाजी महिलाएं, शारीरिक लाभ, मानसिक लाभ, भावनात्मक लाभ, चुनौतियाँ।

परिचय : आज की तेज-तर्रार दुनिया में, जहाँ महिलाएँ घरेलू जिम्मेदारियों को संभालने के साथ-साथ विभिन्न व्यावसायिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से लगी हुई हैं, योग को अपनी दिनचर्या में शामिल करने के महत्व को कम करके आंका नहीं जा सकता है। योग समग्र कल्याण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरा है, जो कई शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक लाभ प्रदान करता है (जोहानसन, 2007)। इस लेख का उद्देश्य विशेष रूप से कामकाजी महिलाओं के लिए योगाभ्यास की उपयोगिता का पता लगाना, उनके शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक लचीलेपन और जीवन की समग्र गुणवत्ता पर इसके परिवर्तनकारी प्रभावों पर प्रकाश डालना है।

कामकाजी महिलाएं अक्सर खुद को कार्यालय में समय सीमा को पूरा करने से लेकर घर पर अपने परिवार की देखभाल करने तक कई भूमिकाएं और जिम्मेदारियां निभाती हुई पाती हैं। इन माँगों के बीच, आत्म-देखभाल को किनारे रख देना आसान है। हालाँकि, संतुलन बनाए रखने और बर्नआउट को रोकने के लिए व्यक्तिगत भलाई को प्राथमिकता देना आवश्यक है। योग कल्याण के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है जो शरीर और दिमाग दोनों की जरूरतों को पूरा करता है (खालसा, 2007)।

नियमित योगाभ्यास के माध्यम से, कामकाजी महिलाएं लचीलेपन, शक्ति और मुद्रा में सुधार सहित कई शारीरिक लाभों का अनुभव कर सकती हैं (क्विस्ट और अन्य, 2011)। हल्के स्ट्रेचिंग और मजबूत बनाने वाले व्यायाम तनाव और असुविधा को कम करने में मदद करते हैं जो कार्यस्थल पर लंबे समय तक बैठने या खड़े रहने से उत्पन्न हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, योग बेहतर परिसंचरण और हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है, पुरानी बीमारियों के जोखिम को कम करता है और समग्र जीवन शक्ति को बढ़ाता है।

अपने शारीरिक लाभों के अलावा, योग मानसिक लचीलापन और भावनात्मक कल्याण भी विकसित करता है (देसिकाचार और अन्य, 2005)। सचेतन श्वास और ध्यान का अभ्यास महिलाओं को तनाव को अधिक प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने में मदद करता है, जिससे दैनिक जीवन की चुनौतियों के बीच शांत और केंद्रित रहने की उनकी क्षमता बढ़ती है। वर्तमान क्षण की जागरूकता को बढ़ावा देकर, योग महिलाओं को अतीत या भविष्य के बारे में चिंताओं को दूर करने और वर्तमान क्षण में आंतरिक शांति पाने का अधिकार देता है।

योग आत्म-देखभाल और आत्म-चिंतन के लिए एक बहुत जरूरी अवसर प्रदान करता है (वॉल्श, 2023)। व्यस्त कार्यक्रम और प्रतिस्पर्धी मांगों के बीच, योग के लिए समय निकालने से महिलाओं को शारीरिक और मानसिक रूप से

तरोताजा और तरोताजा होने का मौका मिलता है। यह अभ्यास समुदाय और जुड़ाव की भावना को भी बढ़ावा देता है, क्योंकि महिलाएं अपनी कल्याण यात्रा में एक-दूसरे का समर्थन करने के लिए एक साथ आती हैं।

योग कामकाजी महिलाओं को कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है जो उनकी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक जरूरतों को पूरा करता है (गेसविंकलर और अनटेरेनर, 2016)। योग को अपनी दिनचर्या में शामिल करके महिलाएं अधिक संतुलन, लचीलापन और जीवन की समग्र गुणवत्ता का अनुभव कर सकती हैं। जैसे-जैसे हम आधुनिक जीवन की माँगों पर आगे बढ़ रहे हैं, योग महिलाओं को उनके जीवन के सभी पहलुओं में आगे बढ़ने के लिए सशक्त बनाने के लिए एक मूल्यवान उपकरण के रूप में सामने आया है।

कामकाजी महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियाँ को समझना : हालाँकि कामकाजी महिलाओं के लिए योग का अभ्यास करने के लाभ पर्याप्त हैं, लेकिन कुछ चुनौतियाँ और विचार भी हैं जिनके बारे में जागरूक होना आवश्यक है। कुछ महिलाओं के लिए, उनके समय और ऊर्जा की प्रतिस्पर्धी माँगों के कारण योग कक्षाओं में भाग लेने या घर पर अभ्यास करने के लिए समय निकालना मुश्किल हो सकता है (जैन, 2020)। इसके अतिरिक्त, पहुंच और सामर्थ्य भागीदारी में बाधाएं पैदा कर सकती हैं, खासकर सीमित वित्तीय संसाधनों या शारीरिक गतिशीलता वाली महिलाओं के लिए। इन चुनौतियों से निपटने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें लचीले योग कार्यक्रमों का विकास, कार्यस्थल पर आवास और समुदाय-आधारित पहल शामिल हैं जो कामकाजी महिलाओं की विविध आवश्यकताओं को पूरा करती हैं।

योगाभ्यास के शारीरिक लाभ : योग कामकाजी महिलाओं के लिए अत्याधिक शारीरिक लाभ प्रदान करता है, साथ ही गतिहीन जीवन शैली और कठिन कार्य शेड्यूल के कारण उनके शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को भी संबोधित करता है (सौलकर और कोल 2015)। यहां कुछ प्रमुख तरीके दिए गए हैं जिनसे योग कामकाजी महिलाओं की शारीरिक भलाई में योगदान देता है-

लचीलेपन में सुधार - कई योगासन मांसपेशियों को खींचने और लंबा करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिससे संपूर्ण शरीर के लचीलेपन में सुधार होता है (डलास और अन्य)। यह उन महिलाओं के लिए विशेष रूप से फायदेमंद है जो लंबे समय तक डेस्क पर बैठकर या दोहराव वाली गतिविधियों में व्यस्त रहती हैं, क्योंकि यह कठोरता और मांसपेशियों की जकड़न का प्रतिकार करने में मदद करती है (मस्त्रांगेलो और अन्य, 2007)।

उन्नत मुद्रा - खराब मुद्रा उन व्यक्तियों के बीच एक आम समस्या है जो डेस्क जॉब करते हैं या कंप्यूटर पर लंबे समय तक कार्य करते हैं। योग रीढ़ की हड्डी को सहारा देने वाली मांसपेशियों को मजबूत करके और उचित संरेखण को प्रोत्साहित करके मुद्रा संबंधी असंतुलन को ठीक करने में मदद करता है (कुकिया और कैराडोना, 2009)। बेहतर मुद्रा न केवल पुराने दर्द और मस्कुलोस्केलेटल समस्याओं के जोखिम को कम करती है बल्कि कार्यस्थल में आत्मविश्वास भी लाती है।

ऊर्जा स्तर में वृद्धि - योगाभ्यास से पूरे शरीर में रक्त परिसंचरण और ऑक्सीजनेशन बढ़ता है, जिसके परिणामस्वरूप ऊर्जा स्तर और जीवन शक्ति में सुधार होता है। यह उन महिलाओं के लिए विशेष रूप से फायदेमंद हो सकता है जो अक्सर कठिन कार्य शेड्यूल या घरेलू जिम्मेदारियों के कारण थकान या सुस्ती का अनुभव करती हैं (लाजारिडौ और अन्य 2019)। योग सत्रों में शामिल होने से, यहां तक कि छोटी अवधि के लिए भी, ऊर्जा को बढ़ावा मिल सकता है और पूरे दिन उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है (बनर्जी, 2019)।

बेहतर नींद की गुणवत्ता : उच्च स्तर के तनाव या चिंता का अनुभव करने वाले व्यक्तियों में नींद की गड़बड़ी आम है (वांग और अन्य, 2020)। योग की विश्राम तकनीकें, जैसे गहरी सांस लेना और ध्यान, मन को शांत करके और विश्राम की स्थिति उत्पन्न करके बेहतर नींद की गुणवत्ता को बढ़ावा देती हैं (वांग, और अन्य, 2020)। योग को अपनी शाम की दिनचर्या में शामिल करके, कामकाजी महिलाएं अधिक आरामदायक नींद का आनंद ले सकती हैं और आने वाले दिन के लिए तरोताजा और तरोताजा महसूस कर सकती हैं (तालिब और अन्य, 2020, अप्रैल)।

योगाभ्यास के मानसिक एवं भावनात्मक लाभ : काम, परिवार और व्यक्तिगत जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाने के दबाव के कारण कामकाजी महिलाओं को अक्सर महत्वपूर्ण मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियों का सामना करना पड़ता है (एस्ट्रिन-बिहार, 1990)। मानसिक थकान, तनाव और चिंता आम अनुभव हैं जो उनके समग्र कल्याण को प्रभावित कर सकते हैं (नेल्सन और हिट, 1992)। इस संदर्भ में, योग तनाव प्रबंधन और मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरता है।

योग विभिन्न प्रकार की तकनीकें प्रदान करता है जो विशेष रूप से मन को शांत करने और तनाव को कम करने के लिए डिजाइन की गई हैं (शेफील्ड और वुड्स-गिस्कोम्बे, 2016)। गहरी साँस लेने के व्यायाम, जैसे डायाफ्रामिक साँस लेना और वैकल्पिक नासिका साँस लेना, शरीर की विश्राम प्रतिक्रिया को सक्रिय करने में मदद करते हैं, जिससे तनाव हार्मोन में कमी आती है और शांति

की भावना आती है (मनकानी और येनागी, 2013)। सांस पर ध्यान केंद्रित करके, व्यक्ति मन को शांत कर सकते हैं और आंतरिक शांति की बेहतर भावना पैदा कर सकते हैं।

माइंडफुलनेस, योग का एक अन्य प्रमुख घटक, बिना किसी निर्णय के वर्तमान क्षण पर जानबूझकर ध्यान देना शामिल है। बॉडी स्कैन, माइंडफुल वॉकिंग और बैठकर ध्यान जैसी माइंडफुलनेस प्रथाओं के माध्यम से, कामकाजी महिलाएं अपने विचारों और भावनाओं के बारे में अधिक जागरूकता विकसित कर सकती हैं (शेफील्ड और वुड्स-गिस्कोम्बे, 2016)। यह बढ़ी हुई जागरूकता उन्हें अपने मानसिक पैटर्न और प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण करने की अनुमति देती है, अंततः उन्हें अधिक स्पष्टता और समानता के साथ तनावपूर्ण स्थितियों पर प्रतिक्रिया करने के लिए सशक्त बनाती है।

इसके अतिरिक्त, योग कामकाजी महिलाओं को दबी हुई भावनाओं और तनाव को दूर करने, भावनात्मक लचीलापन और कल्याण को बढ़ावा देने के लिए एक सुरक्षित स्थान प्रदान करता है (नेल्सन और हिट, 1992) योग निद्रा (निर्देशित विश्राम) और पुनर्स्थापनात्मक योग जैसी प्रथाओं के माध्यम से, व्यक्ति गहरी छूट और कायाकल्प का अनुभव कर सकते हैं, जिससे उन्हें मानसिक और भावनात्मक रूप से आनंदित होने की अनुमति मिलती है (शेफील्ड और वुड्स-गिस्कोम्बे, 2016)।

कार्य-जीवन संतुलन बढ़ाना : योग को दैनिक दिनचर्या में शामिल करने से कामकाजी महिलाओं को अपने पेशेवर और व्यक्तिगत जीवन के बीच संतुलन और सद्भाव की भावना पैदा करने में मदद मिलती है (लक्ष्मी और प्रशांत, 2018)। योग महिलाओं को काम की मांगों से अलग होने और गहरे स्तर पर खुद से जुड़ने का अवसर प्रदान करता है। समग्र कल्याण को बनाए रखने और बर्नआउट को रोकने के लिए आत्म-चिंतन और आत्म-देखभाल का यह समय महत्वपूर्ण है।

योगाभ्यास के माध्यम से सचेतनता और उपस्थिति विकसित करके, महिलाएं आत्म-देखभाल को प्राथमिकता देना और सीमाएँ निर्धारित करना सीखती हैं, जिससे दोनों क्षेत्रों में अधिक संतुष्टि और पूर्ति होती है (कुमारी, 2022)। योग के माध्यम से, महिलाएं अपने शरीर, भावनाओं और ऊर्जा के स्तर के प्रति अधिक अभ्यस्त हो जाती हैं, जिससे उन्हें यह पहचानने में मदद मिलती है कि उन्हें कब आराम करने और तरोताजा होने की जरूरत है। यह जागरूकता महिलाओं को स्वैच्छिक विकल्प चुनने में सक्षम बनाती है कि वे अपना समय और ऊर्जा कैसे आवंटित करें, यह सुनिश्चित करते हुए कि उनके पास अपने करियर में उत्कृष्टता प्राप्त करने के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन का भी पोषण करने के लिए संसाधन हैं (सुंदरेसन, 2014)।

योग तनाव प्रबंधन और विश्राम के लिए मूल्यवान उपकरण सिखाता है, जिससे महिलाओं को काम और घरेलू जीवन की अपरिहार्य चुनौतियों का सामना शालीनता और लचीलेपन के साथ करने में मदद मिलती है (उद्दीन, 2021)। गहरी साँस लेना और ध्यान जैसी तकनीकें महिलाओं को तनाव मुक्त करने, तनाव कम करने और दैनिक जीवन की उथल-पुथल के बीच शांति की भावना पैदा करने में मदद करती हैं। इन प्रथाओं को अपनी दिनचर्या में शामिल करके, महिलाएं कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखने और समग्र कल्याण को बढ़ावा देने के लिए एक सहायक आधार तैयार कर सकती हैं (भारती और माला, 2016)।

सशक्तिकरण और आत्मविश्वास : योग कामकाजी महिलाओं में सशक्तिकरण और आत्मविश्वास की भावना को बढ़ावा देता है, जिससे वे साहस और लचीलेपन के साथ चुनौतियों से निपटने में सक्षम होती हैं। योगाभ्यास में शामिल होने से, महिलाओं में आत्म-जागरूकता और आत्म-स्वीकृति की गहरी भावना विकसित होती है, जिससे उन्हें अपनी शक्ति और कमजोरियों को समान रूप से अपनाने की अनुमति मिलती है (अहमदोवा और अन्य, 2022)। यह आत्म-जागरूकता महिलाओं को कार्यस्थल में स्वयं का प्रतिनिधित्व करने, अपनी सीमाओं पर जोर देने और आत्मविश्वास के साथ अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाने का अधिकार देती है।

योग के माध्यम से, महिलाएं अपनी जन्मजात शक्ति और क्षमता का दोहन करते हुए, अपने शरीर, दिमाग और आंतरिक ज्ञान के साथ गहरा संबंध विकसित करती हैं (इलाही, 2018)। योग महिलाओं को खुद पर और अपने अंतर्ज्ञान पर भरोसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है, आंतरिक मार्गदर्शन और लचीलेपन की भावना को बढ़ावा देता है। जैसे-जैसे योगाभ्यास के माध्यम से महिलाएं अपने शरीर और भावनाओं के प्रति अधिक अभ्यस्त होती जाती हैं, उनमें सच बोलने, साहसिक निर्णय लेने और चुनौतियों का सामना शालीनता से करने का आत्मविश्वास बढ़ता है।

योग महिलाओं को उनकी पहचान और आकांक्षाओं का पता लगाने के लिए एक सहायक समुदाय और एक सुरक्षित स्थान प्रदान करता है। समान अनुभव और संघर्ष साझा करने वाली अन्य महिलाओं के साथ अभ्यास करने से, महिलाओं को एकजुटता और प्रोत्साहन में शक्ति मिलती है। समुदाय की यह भावना महिलाओं के आत्मविश्वास को बढ़ाती है और उनके अपनेपन की भावना की पुष्टि करती है, जिससे उन्हें अपने पेशेवर और व्यक्तिगत लक्ष्यों को दृढ़ विश्वास के साथ आगे बढ़ाने के लिए सशक्त बनाया जाता है (कटुवाल, 2020)।

सहायक समुदायों का निर्माण : योग कक्षाओं और

कार्यशालाओं में भाग लेने से कामकाजी महिलाओं को समान विचारधारा वाले व्यक्तियों से जुड़ने और सहायक समुदाय बनाने का मौका मिलता है (न्यूकॉम्ब, 2007)। ये नेटवर्क मैट से परे योग अभ्यास के लाभों को सुदृढ़ करते हुए प्रोत्साहन, प्रेरणा और सौहार्द प्रदान करते हैं। योग समुदाय एक ऐसा स्थान प्रदान करते हैं जहां कामकाजी महिलाएं एक सहायक और गैर-निर्णयात्मक वातावरण में अपने अनुभवों, चुनौतियों और जीत को साझा कर सकती हैं। अपने संघर्षों और आकांक्षाओं को समझने वाले अन्य लोगों के साथ जुड़कर, महिलाएं खुद को मान्यता प्राप्त और समझी हुई महसूस करती हैं, जिससे अलगाव और अकेलेपन की भावनाएं कम हो जाती हैं (बेरनबाम, और डीश्एंड्रिया, 2023)।

इसके अतिरिक्त, सहायक योग समुदाय नेटवर्किंग और सहयोग के अवसर प्रदान करते हैं, जिससे महिलाओं को अपने पेशेवर दायरे का विस्तार करने और नए अवसरों तक पहुंचने में मदद मिलती है (न्यूकॉम्ब, 2007)। साझा प्रथाओं और साझा अनुभवों के माध्यम से, महिलाएं मित्रता और आपसी सहयोग के बंधन विकसित करती हैं जो योग स्टूडियो से परे तक विस्तारित होते हैं।

ये नेटवर्क प्रेरणा और जवाबदेही के स्रोत के रूप में भी काम करते हैं, जो महिलाओं को अपने योगाभ्यास और व्यक्तिगत विकास लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्ध रहने के लिए प्रोत्साहित करते हैं (काउलिंग, 2014)। बाधाओं या असफलताओं का सामना करने पर, महिलाएं मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और व्यावहारिक सलाह के लिए अपने योग समुदाय की ओर रुख कर सकती हैं।

योग के माध्यम से सहायक समुदायों का निर्माण कामकाजी महिलाओं को व्यक्तिगत और व्यावसायिक रूप से आगे बढ़ने के लिए सशक्त बनाता है। संबंध, सौहार्द और आपसी सहयोग को बढ़ावा देकर, योग समुदाय महिलाओं को वे संसाधन और लचीलापन प्रदान करते हैं जिनकी उन्हें आधुनिक जीवन की चुनौतियों को शालीनता और आत्मविश्वास के साथ पार करने के लिए आवश्यकता होती है (डैनहाउर और अन्य, 2015)।

लैंगिक रूढ़िवादिता पर काबू पाना : योग महिलाओं को पारंपरिक लिंग रूढ़िवादिता और सामाजिक अपेक्षाओं को चुनौती देने के लिए सशक्त बनाता है, उन्हें अपनी भलाई को प्राथमिकता देने और अपराध या शर्म के बिना अपने जुनून को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करता है (फिननेगन, 2015)। ऐसी दुनिया में जहां महिलाओं से अक्सर अपनी जरूरतों से ऊपर देखभाल और पोषण की भूमिकाओं को प्राथमिकता देने की अपेक्षा की जाती है (हांग, 2010), योग महिलाओं को अपनी स्वायत्तता और आत्म-मूल्य को पुनः प्राप्त करने के लिए एक स्थान प्रदान करता है।

योगाभ्यास के माध्यम से, महिलाएं आत्म-जागरूकता और आत्म-स्वीकृति की गहरी भावना पैदा करती हैं, अपनी शक्तियों, कमजोरियों और खामियों को करुणा और अनुग्रह के साथ स्वीकार करना सीखती हैं (मुलहोलेम, 2021)। अपने आंतरिक स्व से जुड़कर और अपनी सहज ज्ञान का दोहन करके, महिलाएं बाहरी दबावों और अपेक्षाओं का सामना करने में अधिक लचीली बन जाती हैं।

योग महिलाओं को सामाजिक मानदंडों या अपेक्षाओं के अनुरूप होने के बजाय अपने शरीर और अंतर्ज्ञान को सुनना सिखाता है। अपने अनूठे अनुभवों और दृष्टिकोणों का सम्मान करके, महिलाएं सशक्तिकरण और समावेशिता की संस्कृति को बढ़ावा देते हुए दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करती हैं (विल्फ्रेड और अन्य, 2023)। जैसे-जैसे महिलाएं सीमित मान्यताओं से मुक्त होती हैं और अपनी प्रामाणिकता को अपनाती हैं, वे अधिक लैंगिक समानता और सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती हैं (हांग, के., 2010)। रूढ़िवादिता को चुनौती देकर और स्त्रीत्व और सफलता की पारंपरिक धारणाओं को फिर से परिभाषित करके, महिलाएं सभी व्यक्तियों के लिए प्रामाणिक रूप से जीने और निर्णय या भेदभाव के डर के बिना अपने सपनों को पूरा करने के लिए जगह बनाती हैं (मुलहोलेम, 2021)।

निष्कर्ष : कामकाजी महिलाओं के लिए योग का अभ्यास करने के लाभ बहुमुखी हैं, जिसमें शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक कल्याण, कार्य-जीवन संतुलन और कार्यस्थल की गतिशीलता शामिल है। एक सुलभ और अनुकूलनीय मन-शरीर अभ्यास के रूप में, योग कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है जो महिलाओं को उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन दोनों में आगे बढ़ने के लिए सशक्त बना सकता है। आत्म-देखभाल, तनाव प्रबंधन और लचीलापन-निर्माण के लिए योग को एक उपकरण के रूप में अपनाकर, कामकाजी महिलाएं अपने जीवन की समग्र गुणवत्ता को बढ़ा सकती हैं और अधिक सकारात्मक और समावेशी कार्य संस्कृति में योगदान कर सकती हैं। जैसा कि हम भविष्य की ओर देखते हैं, दुनिया भर में कामकाजी महिलाओं के स्वास्थ्य और कल्याण के समर्थन में योग की पूरी क्षमता को उजागर करने के लिए निरंतर अनुसंधान, वकालत और सहयोग आवश्यक है।

संदर्भ

- अहमदोवा, पी., डेलिक्टा डेमिरसी, ए., और काबुककुओग्लू, के. (2022)। तुर्की महिलाओं के मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण पर एक कार्य अध्ययन-मनोशिक्षा कार्यक्रम का प्रभाव जो महिलाओं की आत्म-जागरूकता पर आधारित है। तुर्किये क्लिनिकलेरी जर्नल ऑफ हेल्थ साइंसेज, 7(4)।

- इलाही, ए. (2018)। योग के माध्यम से महिला सशक्तिकरण, विचार-विमर्श अनुसंधान, 38(1), 70-72
- उद्दीन, एम. (2021), बांग्लादेश में COVID-19 के दौरान कामकाजी महिलाओं की कार्य-जीवन संतुलन चुनौतियों का समाधान करना। इंटरनेशनल सोशल साइंस जर्नल, 71 (239-240), 7-20
- कटुवाल, सी.बी. (2020), अध्यात्म योग एवं महिला सशक्तिकरण प्रक्रिया। रिसर्च नेपाल जर्नल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज (आरएनजेडीएस), 3 (2), 73-83
- काउलिंग, ए.ई. (2014), योग, महिलाएं और कैंसर : एक विशेष योग कार्यक्रम में अनुभव।
- कुकिया, ए., और कैराडोना, सी. (2009)। स्टामाटोग्नैथिक प्रणाली और शारीरिक मुद्रा के बीच संबंध, क्लिनिक, 64 (1), 61-66
- कुमारी, एस. (2022), कामकाजी महिलाओं के लिए योग-कैसे योग आपको जीवन में संतुलन हासिल करने में मदद कर सकता है। उन्नत आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 11 (1), 674-677
- कुमारी, एस. (2022), कामकाजी महिलाओं के लिए योग-कैसे योग आपको जीवन में संतुलन हासिल करने में मदद कर सकता है। उन्नत आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 11 (1), 674-677
- क्विस्ट, एन., बर्गस्ट्रॉम, आई., क्रोनहेड, ए.सी.जी., कार्लसन, एस., और फोर्स्स, ए. (2011)। नाजुक शरीर को सशक्त बनाना- रजोनिवृत्ति के बाद कशेरुक फ्रैक्चर वाली महिलाओं में पीठ की मांसपेशी समूह प्रशिक्षण कार्यक्रम के अनुभव। एक गुणात्मक साक्षात्कार अध्ययन, फिजियोथेरेपी में प्रगति, 13(2), 63-70
- खालसा, एस.बी. (2007), चिकित्सीय हस्तक्षेप के रूप में योग, तनाव प्रबंधन के सिद्धांत और अभ्यास, 3, 449-462
- गेसविंकलर, एल., और अनटेरेनर, एच. एफ. (2016)। योग की भागीदारी, सचेतनता और मनोवैज्ञानिक कल्याण के बीच संबंध। चिकित्सा में पूरक उपचार, 26, 123-127
- जैन, ए.आर. (2020), शांति प्रेम योग-वैश्विक आध्यात्मिकता की राजनीति, ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस।
- जोहानसन, जी., हुआंग, क्यू., और लिंडफोर्स, पी. (2007), महिलाओं के करियर, स्वास्थ्य और कल्याण पर एक जीवन-काल का परिप्रेक्ष्य। सामाजिक विज्ञान एवं चिकित्सा, 65(4), 685-697
- वॉल्श, जी. (2023), मातृत्व को उजागर करना, आत्म-चिंतन, आत्म-देखभाल और प्रामाणिकता के माध्यम से अपने अनुभव को समझना, हैदरली प्रेस.
- शेफील्ड, के.एम., और वुड्स-गिस्कोम्बे, सी.एल. (2016), महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण पर प्रसवकालीन योग की प्रभावकारिता, व्यवहार्यता और स्वीकार्यता-एक व्यवस्थित साहित्य समीक्षा। जर्नल ऑफ होलिस्टिक नर्सिंग, 34(1), 64-79
- सुंदरेसन, एस. (2014), कार्य-जीवन संतुलन - कामकाजी महिलाओं के लिए निहितार्थ। ओआईडीए इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सस्टेनेबल डेवलपमेंट, 7(7), 93-102
- सौलकर, एस.आर., और कोल, एच.पी.ई. (2015), क्लर्क कामकाजी महिलाओं के शारीरिक परिवर्तनों पर योग प्रशिक्षण का प्रभाव। एन इंटरनेशनल पीयर समीक्षित ई-जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी, 2, 31-38
- हांग, के. (2010). लैंगिक रूढ़िवादिता पर काबू पाने में व्यक्तिगत अनुभव की भूमिका। IACM 23वें वार्षिक सम्मेलन पेपर में।

दीप्ति मुदगल
शोधार्थी, योग एवं आयुर्वेद विभाग,
साँची बौद्ध - भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,
साँची, जिला रायसेन (म. प्र.)

डॉ. शाम गनपत तिखे
शोध निदेशक एवं सहायक प्राध्यापक,
योग एवं आयुर्वेद विभाग,
साँची बौद्ध - भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,
साँची, जिला रायसेन (म. प्र.)

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में डिजिटल शिक्षा : एक विश्लेषण

–सुश्री सीता पाण्डेय
–कुँवर संजय भारती

सारांश : वर्तमान युग परिवर्तन का युग है जिसमें तकनीकी और सूचना क्रांति महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यह वह युग है जिसे विद्वत समाज चतुर्थ औद्योगिक क्रांति तथा ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के रूप में देख रहा है। इस युग की आवश्यकता और मांग प्रौद्योगिकी का सार्वभौमिक विकास है। जिससे कि टेक्नोफ्रेंडली पारिस्थितिकी का निर्माण हो सके। समय की आवश्यकता और मांग तथा वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में शिक्षा का क्षेत्र भी तकनीकी से अछूता नहीं है। शिक्षा मात्र व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है बल्कि यह एक विश्वास है जो एक पीढ़ी दूसरे पीढ़ी को हस्तांतरित करती है। ऐसे में शिक्षा एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को ज्ञान से जोड़ती है क्योंकि कोई भी परिवर्तन नए और पुराने व्यवस्था के अच्छे गुणों का प्रकटीकरण होता है। वैश्विक महामारी कोविड-19 ने इलेक्ट्रॉनिक एजुकेशन, ई-एजुकेशन डिजिटल शिक्षा को सीखने के माध्यम के रूप में विस्तार दिया। डिजिटल शिक्षा का अर्थ है कि लर्नर जिस स्थान पर है उसी स्थान पर इंटरनेट व अन्य संचार उपकरणों की सहायता से प्राप्त की जाने वाली शिक्षा। डिजिटल शिक्षा क्या परंपरागत शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर स्थानापन्न होगी या शिक्षा का मिश्रित मॉडल विकसित होगा? डिजिटल शिक्षा शिक्षा के समावेशी स्वरूप तथा सार्वभौमिक पहुंच को विकसित कर पाएगी? इन्हीं संदर्भ में या शोध प्रपत्र तैयार किया गया है। इस शोध प्रपत्र में वर्णात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग करते हुए आंकड़ों तथा तथ्यों के संकलन के लिए अवलोकन प्रविधि प्रयोग में लाई गई है। आंकड़ों एवं तथ्यों का अनुभविक विश्लेषणात्मक एवं तर्कसंगत प्रयोग किया गया है। आवश्यकतानुसार अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति प्रयोग में लाई गई।

मुख्य शब्द : तुल्यकालिक-शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, ई-एजुकेशन, तुलनात्मक पद्धति।

सूचना और संचार क्रांति के इस युग में शिक्षा परिवर्तन का मध्य तथा मानव विकास का प्रथम सोपान है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा को मुक्ति दायिनी कहा गया है, जबकि वेदों में विद्या को अमरत्व की ओर ले जाने वाली कहा गया है। आधुनिक से उत्तर-आधुनिकता की और गतिशील होते समाज में ज्ञान की शक्ति को सर्वोच्च शक्ति माना जा रहा है। यदि शिक्षा को परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में देखा जाए तो प्राचीन काल में समय के सापेक्ष शिक्षा प्रणाली व्यावहारिक और मौखिक थी। भाषा और लिपि के विकास के साथ शिक्षा आश्रम पद्धति पर आधारित हुई, कालांतर में शिक्षा ने संस्थागत स्वरूप धारण किया और वर्तमान में शिक्षा के वैकल्पिक स्वरूप डिजिटल शिक्षा के रूप में शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अध्याय 24, पृष्ठ संख्या 95 से 98 तक डिजिटल शिक्षा की बात की गई है।

भारतीय दृष्टिकोण से शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के शिक्ष् धातु में अप्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना व सिखाना अर्थात् शिक्षा का अर्थ है सीखने वह सीखाने की प्रक्रिया। जबकि एजुकेशन जो लैटिन भाषा के Educatum शब्द से बना है का अर्थ है- बच्चे की आंतरिक शक्ति को बाहर की ओर प्रकट करना। जे.एस. मैकेंजी के अनुसार, ''व्यापक दृष्टि से शिक्षा जीवन पर्यंत चलने वाले प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव के द्वारा इसका विकास होता है।'' महात्मा गांधी के अनुसार, ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।'' स्वामी विवेकानंद का विचार है कि ''शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करती है।'' जगतगुरु शंकराचार्य की दृष्टि में-साविद्या याविमुक्तेय अर्थात् शिक्षा वह है जो मुक्ति दिलाये। शिक्षा को अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने वाली कहा गया है। ज्ञान के परिदृश्य में संपूर्ण विश्व तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। वर्तमान समाज में शिक्षा के दो स्वरूप दृष्टिगत हो रहे हैं-ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली तथा ऑफलाइन शिक्षा प्रणाली। ऑनलाइन शिक्षा के अंतर्गत इंटरनेट आधारित विभिन्न

प्रकार की शैक्षणिक प्रणालियों और सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है। जैसे- गूगल क्लासरूम, ई-कक्षा, टेलीएजुकेशन, विभिन्नपोर्टल, डिजिटल लाइब्रेरी, ब्लॉग, यू-टयूब, विविध वेबसाइट, वीडियो, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, वेब आधारित शिक्षा आदि ऐसे सशक्त डिजिटल प्लेटफॉर्म है जो शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य ज्ञान के संप्रेषण को सफल बनाते हैं।

नई परिस्थितियों और वास्तविकताओं के लिए नई पहल अपेक्षित होती है। जब शिक्षा के परंपरागत साधनों की पहुंच किसी कारणवश बाधित होने लगे तो ऐसे में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के वैकल्पिक साधन की आवश्यकता होती है। जिससे कि सीखने की प्रक्रिया अनवरत और अबाध्य गति से चलती रहे। डिजिटल शिक्षा इसी का एक स्वरूप है। डिजिटल शिक्षा-शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन उभरती शिक्षा प्रणाली है जो डिजिटल माध्यमों का उपयोग करके सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सशक्त बनाती है। इस प्रकार डिजिटल शिक्षा से अभिप्राय शिक्षा के उसे स्वरूप से है जहां सीखने वाले (लर्नर) अपने स्थान पर ही इंटरनेट व अन्य संचार उपकरणों की सहायता से शिक्षा प्राप्त करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि भारत जैसे विशाल देश में जहां विविध तरीके की विविधताएं विद्यमान हैं, इंटरनेट व डिजिटल सेवाओं की पहुंच सभी तक समान रूप से नहीं है। सभी शिक्षक भी टेक्नोफ्रेंडली नहीं है। डिजिटल डिवाइडेशन स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हो रहा है। ऐसे में ऑनलाइन शिक्षा क्या सभी के लिए सर्वसुलभ हो पाएगी? क्या डिजिटल शिक्षा से शैक्षिक असमानता में और अधिक वृद्धि नहीं होगी? इन्हीं उद्देश्यों को लेकर इस शोध पत्र के कुछ उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। जो इस प्रकार हैं-प्रथम उद्देश्य- क्या डिजिटल शिक्षा की पहुंच समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से है? द्वितीय उद्देश्य- क्या डिजिटल शिक्षा कक्षा शिक्षण का पर्याय हो सकती है तथा इससे समाज को क्या लाभ होगा? तृतीय उद्देश्य- डिजिटल शिक्षा के समक्ष कौन सी चुनौतियां हैं जो इसके सार्वभौमिक स्वरूप के विकास को कमजोर कर रही हैं? डिजिटल शिक्षा का वास्तविक लाभ तभी प्राप्त किया जा सकता है जब डिजिटल इंडिया अभियान तथा मितव्ययी कंप्यूटिंग उपकरणों की उपलब्धता के माध्यम से डिजिटल असमानता को समाप्त किया जाए तथा डिजिटल सेवाओं के सार्वभौमिक पहुंच को सुनिश्चित किया जाए। इंटरनेट तक जन सामान्य की पहुंच 15 अगस्त 1995 से प्रारंभ हुई तथा 2020 तक इंटरनेट का उपयोग करने वाले लोगों की संख्या लगभग 54.29 प्रतिशत थी, सिस्को ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि साल 2023 तक भारत में इंटरनेट यूजर्स की संख्या देश की आबादी का 64 प्रतिशत हो जाएगी। डिजिटल सेवाओं के सार्वभौमिक पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जिसका उद्देश्य भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना है। डिजिटल इंडिया में परिवर्तन का जो सूत्र अपनाया गया है वह-3 आईटी पर आधारित है। आईटी (इंडियन टैलेंट). आईटी (इनफार्मेशन टेक्नोल०जी) = आईटी (इंडिया टुमारो) अर्थात् भारतीय प्रतिभा को सूचना प्रौद्योगिकी से जोड़ देने से भविष्य के भारत का निर्माण होगा।

डिजिटल इंडिया का उद्देश्य है- उच्च गति का इंटरनेट सभी ग्राम पंचायतों को उपलब्ध कराना, डिजिटल आधार पर नागरिकों के मांग के अनुरूप सेवाओं और शासन की उपलब्धता जैसे-जाति प्रमाण पत्र, निवास प्रमाण पत्र और आय प्रमाण पत्र एवं डिजिटल इंडिया का उद्देश्य तकनीकी के सार्वभौमिक स्वरूप को विकसित करना है जिससे डिजिटल अंतराल को कम किया जा सके।

डिजिटल माध्यम से सीखने-सीखाने के दो प्रकार हैं-प्रथम समकालिक/तुल्यकालिक (सिंक्रोनस) यह वास्तविक समय में सीखने-सिखाने का वह माध्यम है जहां एक समय में ऑनलाइन छात्र और शिक्षक अलग-अलग स्थान से एक दूसरे से शैक्षिक संवाद करते हैं तथा त्वरित प्रतिपुष्टि के किसी तरीके से तत्काल प्रतिपुष्टि दी जाती है। इसके कुछ उदाहरण हैं-वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से ऑनलाइन शिक्षण, उपग्रह या दूरसंचार सुविधाओं का उपयोग करके ऑडियो कॉन्फ्रेंसिंग से ऑनलाइन शिक्षण, लाइवचैट तथा वर्चुअल क्लासरूम आदि। द्वितीय अतुल्यकालिक (नान-सिंक्रोनस) डिजिटल शिक्षा का यह प्रकार 'कभी भी, कहीं भी' सीखने की पद्धति पर आधारित है। इसमें शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य वास्तविक समय में शैक्षिक संवाद का कोई प्लेटफार्म उपलब्ध नहीं होता है। तुल्यकालिक व्यवस्था में पाठ्यक्रम से संबंधित जानकारी ईमेल, ब्लॉग, वेबसाइट, वीडियो, ई-बुक्स, एसएमएस, दीक्षा पोर्टल पर ई-सामग्री सर्फिंग, रेडियो, पॉडकास्ट सुनाना, टीवी चैनल आदि देखकर सीखा जाता है।

डिजिटल प्रौद्योगिकी के उद्भव और प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतर शिक्षा तक शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षण-अधिगम के लिए प्रौद्योगिकी के तेजी से उभरते महत्व को देखते हुए 'प्रज्ञाता' दिशा-निर्देश में डिजिटल शिक्षा के कार्यान्वयन के लिए आठ चरण की बात की गई है जो इस प्रकार हैं-योजना, समीक्षा, व्यवस्था, मार्गदर्शन, वार्ता (बातचीत), कार्य सौंपना, पता लगाना (ट्रैक करना) एवं सराहना।

बच्चों के संपूर्ण विकास को ध्यान में रखते हुए 'प्रज्ञाता' दिशा-निर्देश में स्क्रीन समय को बच्चों के लिए निर्धारित करने की बात की गई है। क्योंकि यदि बच्चे अधिक

समय तक स्क्रीन से जुड़े रहेंगे तो उनकी रचनात्मकता तथा स्वास्थ्य प्रभावित हो सकते हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करते हुए ऑनलाइन शिक्षा के लिए प्रत्येक चरण पर कक्षा और समय इस प्रकार है जैसे पूर्व प्राथमिक कक्षा का समय अभिभावकों के मार्गदर्शन में 30 मिनट से अधिक समय नहीं होना चाहिए, कक्षा 1 से 8वीं तक के लिए यह समय 30 से 45 मिनट की अवधि के दो ऑनलाइन सत्र से अधिक नहीं होना चाहिए तथा कक्षा 9 से 12वीं तक के लिए 30 से 45 मिनट की अवधि के चार ऑनलाइन सत्र से अधिक का आयोजन नहीं होना चाहिए। लगातार दो कक्षाओं के मध्य विद्यार्थियों को 10 से 15 मिनट का अल्प अवकाश दें, जिससे कि वह थोड़ा आराम कर स्वयं को अगली कक्षा के लिए तैयार कर लें और उनकी एकाग्रता और ध्यान बना रहे।

डिजिटल शिक्षा की प्रासंगिकता- डिजिटल शिक्षा इस थीम पर आधारित है कि 'किसी भी समय किसी भी जगह' सीखना। इसमें समय और स्थान की कोई बाध्यता नहीं होती तथा किसी भी समय लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। डिजिटल माध्यम से अध्ययन मितव्ययी होते हैं साथ ही यह पर्यावरण हितैषी भी है। वेब आधारित स्टडी मैटेरियल को लंबे समय तक एक्सेस किया जा सकता है। यदि कोई पक्ष अधिक कठिन और जटिल है तो उसे पुनः देखा व समझा जा सकता है। इससे सीखने की प्रक्रिया अधिक स्थाई होगी। ग्रामीण वंचित, शोषित तथा हाशिए पर जीवन यापन कर रहे समूह, जिनकी क्षमता ऐसी नहीं है कि वह अपने बच्चों को अध्ययन के लिए महानगरों में भेज सके, ऐसे लोगों के लिए डिजिटल शिक्षा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। वैश्विक महामारी कोविड-19 ने इस तथ्य का प्रकटीकरण किया है कि यदि देश के समक्ष ऐसी स्थिति कभी बनती है, तो हमारे पास शिक्षा के वैकल्पिक माध्यम होने आवश्यक है जिससे सीखने की प्रक्रिया बाधित न हो। डिजिटल शिक्षा वही विकल्प है।

डिजिटल माध्यम से लर्नर विश्व के किसी भी संस्थान से स्वयं को जोड़कर उसका लाभ प्राप्त कर सकता है। डिजिटल लाइब्रेरी तथा उत्तर प्रदेश डिजिटल लाइब्रेरी इस दिशा में एक बेहतर कदम है। डिजिटल शिक्षा के माध्यम से समय व सुविधा अनुसार कार्यरत रहते हुए भी बहुत से कोर्स किये जा सकते हैं, जो परंपरागत शिक्षा व्यवस्था में संभव नहीं था।

डिजिटल शिक्षा के सार्वभौमिक स्वरूप को विकसित किये जाने की आवश्यकता है। इसके लिए केंद्र सरकार ने वर्ष 2026 तक देश भर के विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले लगभग 4.06 करोड़ छात्रों को लैपटॉप और टैबलेट प्रदान करने की योजना बनाई है। इसके लिए 60900 करोड़ रुपए का बजट निर्धारित है। डिजिटल शिक्षा या ई-शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उपलब्ध कुछ महत्वपूर्ण साइट्स तथा पोर्टल स्वयं, स्वयंप्रभा, मानोदर्पण, कौरसेरा, उडेमी, उतावलापन, एडक्स, मास्टर क्लास, कौशल साझा करना, स्मृति, लिंक्डइन लर्निंग, एलिसन, खुली संस्कृति, शैक्षणिक पृथ्वी, हॉवर्ड एक्सटेंशन येल पाठ्यक्रम खोलें, कोड, लोगों का विश्वविद्यालय आदि कुछ महत्वपूर्ण साइट्स एवं पोर्टल हैं। उक्त डिजिटल प्लेटफॉर्म पर विभिन्न भाषाओं में ऑनलाइन अध्ययन सामग्री उपलब्ध है।

डिजिटल शिक्षा के समक्ष चुनौतियां- डिजिटल शिक्षा के समक्ष इंटरनेट कनेक्टिविटी की एक प्रमुख समस्या है। निरंतर प्रयास के बावजूद ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में डिजिटल डिसपैरिटी स्पष्ट दृष्टिगत हो रही है। सभी राज्यों तथा केंद्र शासित प्रदेशों के ग्रामीण क्षेत्रों में भी यह अंतर स्पष्ट देखा जा सकता है। एक तरफ केरल के ग्रामीण क्षेत्र हैं जहां नेट कनेक्टिविटी ठीक है तो वहीं दूसरी तरफ उत्तर प्रदेश और बिहार के ग्रामीण क्षेत्र हैं जहां अभी मुश्किल से 10 प्रतिषत परिवारों के पास नेट कनेक्टिविटी है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे ग्रामीण छात्रों के पास इंटरनेट की सुविधा पर्याप्त नहीं है। डिजिटल शिक्षा के अंतर्गत शिक्षक तथा छात्र के मध्य संवाद हीनता की स्थिति होती है। यह स्थिति छात्रों में अवसाद, अकेलापन तथा चिड़चिड़ापन की समस्या उत्पन्न करती हैं। भारत में बहुआयामी निर्धनता तथा बेरोजगारी के कारण भी बहुत से परिवारों के पास इंटरनेट लैपटॉप, टैबलेट तथा स्मार्टफोन आज भी उपलब्ध नहीं है। ऐसे में इन परिवारों से संबंधित छात्रों का ऑनलाइन व्यवस्था के साथ जुड़ना या अनुकूलन कर पाना एक बड़ी चुनौती है। डिजिटल शिक्षा एक नई विधा है इसका वैश्विक महामारी कोविड-19 से पूर्व कोई सार्वभौमिक अनुभव नहीं रहा है। ऐसे में शिक्षण संस्थाओं को डिजिटल शिक्षा के अनुरूप अवसंरचनात्मक व्यवस्था को विकसित करने तथा छात्रों को अधिक से अधिक शिक्षण सामग्री ऑनलाइन उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है। डिजिटल प्लेटफार्म पर सामग्रियों की कमी है। विशेष पाठ्यक्रमों एवं क्षेत्रीय भाषाओं से जुड़ी अध्ययन सामग्री की कमी है, जिससे छात्रों को समस्या का सामना करना पड़ता है। शिक्षकों के लिए भी तकनीकी एक बड़ी समस्या है क्योंकि अधिकांश शिक्षक जिस व्यवस्था में ढले हैं उसके अनुरूप कम टेक्नोफ्रेंडली है ऐसे में शिक्षकों को डिजिटल रूप से प्रशिक्षित करना भी एक बड़ी चुनौती है।

डिजिटल शिक्षा को समावेशी तथा सार्वभौमिक बनाने एवं इसके अवसंरचनात्मक विकास हेतु कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं- भारत में डिजिटल अवसंरचना को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। डिजिटल शिक्षा को सार्वभौमिक और सर्वसुलभ बनाने के लिए ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म और उपकरणों की आवश्यकता होगी। विद्यार्थियों की प्रगति के

निगरानी के लिए डिजिटल अवसंरचना की आवश्यकता है। ऑनलाइन कक्षाओं के आयोजन के लिए दो तरफा वीडियो व ऑडियो इंटरफेस जैसे उपकरणों की भी आवश्यकता है।

भारत विविधताओं से परिपूर्ण देश है जहां आज भी जनसंख्या के एक बड़े भाग की पहुंच डिजिटल उपकरणों तक नहीं है। ऐसे में उपलब्ध संचार माध्यम जैसे- टेलीविजन, रेडियो, व सामुदायिक रेडियो का उपयोग टेलीकास्ट व प्रसारण के लिए किया जा सकता है। शैक्षिक कार्यक्रमों को बदलते समय और विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न भाषाओं में 24×7 उपलब्ध करायें जाने की आवश्यकता है। डिजिटल अध्ययन सामग्री जहां तक संभव हो छात्रों और शिक्षकों के सीखने की भाषा में पहुंचे इससे सीखने की प्रक्रिया सरल हो जाएगी।

डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए तथा वर्चुअल लैब बनाने के लिए दीक्षा, स्वयं और स्वयंप्रभा जैसे उपलब्ध ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म का उपयोग किया जा सकता है। इससे विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण व्यावहारिक और प्रयोग आधारित सीखने का अनुभव व समान अवसर प्राप्त होगा।

डिजिटल शिक्षा को सुदृढ़ करने के लिए शिक्षकों को शिक्षार्थी केंद्रित अध्यापन में गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता है। शिक्षकों को इस विधा में भी प्रशिक्षित किया जाए कि वह डिजिटल प्लेटफॉर्म और उपकरणों का उपयोग करके उच्चतर गुणवत्ता वाले ऑनलाइन सामग्री का कैसे सृजन करें। डिजिटल शिक्षा के अंतर्गत ऑनलाइन मूल्यांकन और परीक्षाएं संपन्न करने के लिए मानकीकृत मूल्यांकन और मूल्यांकन विश्लेषण के डिजाइन की भी आवश्यकता होगी। इनके विकास पर बल दिया जाए। डिजिटल शिक्षा के अंतर्गत 21वीं सदी के कौशल की आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए शिक्षा प्रौद्योगिकी का उपयोग कर मूल्यांकन के नए तरीके का अध्ययन और उनका विकास करना।

डिजिटल शिक्षा में सीखने के मिश्रित मॉडल पर बल दिया जाए अर्थात् डिजिटल शिक्षा के साथ-साथ भौतिक रूप से आमने-सामने सीखने के महत्व को भी स्वीकार किया जाए और डिजिटल शिक्षा में पर्याप्त स्थान दिया जाए। डिजिटल शिक्षा को समाज उपयोगी बनाने के लिए लोगों के मनोवृति में भी बदलाव की आवश्यकता है। डिजिटल शिक्षा के अंतर्गत क्षेत्रीय भाषाओं को पर्याप्त स्थान दिया जाए। इससे स्थानीय, दूर दराज के क्षेत्रों तथा दुर्गम स्थानों पर निवास करने वाले विद्यार्थियों को नई व्यवस्था से अनुकूलन में सहायता मिलेगी।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि ऑनलाइन शिक्षा एक नवीन वैकल्पिक शैक्षणिक व्यवस्था है। परंतु डिजिटल शिक्षा को शिक्षा का आदर्श रूप नहीं कहा जा सकता है, यह क्लासरूम शिक्षण का पूरक तो हो सकती है परंतु विकल्प नहीं। भारत सरकार ने इंटरनेट आधारित पारिस्थितिकी तंत्र के विकास को गति देने के लिए भारत नेट, डिजिटल इंडिया, ब्रांड इंडिया और स्टार्टअप इंडिया जैसी परियोजनाओं को प्रारंभ किया है। इससे डिजिटल शिक्षा का समावेशी स्वरूप विकसित होगा।

संदर्भ

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
2. 'प्रज्ञाता', डिजिटल शिक्षा के लिए दिशा-निर्देश, विद्यालयी शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
3. Gond, R., and Gupta, R, (2017), A study on digital education in India: Scope and challenges of an Indian society. AIJRRLSJM, 2(3): 12-18.
4. Himanshu, R (2019) Digitalization of education in India - An analysis 6 (1): 160-167
5. Jha, Nivedita., Shenoy, Veena. (2016): "Digitization of Indian Education Process: A Hope or Hype" IOSR Journal of Business and Management, Vol. 18, Issue. 10, PP. 131 - 139.
6. Kamble, Avishkar D. (2013): Digital Classroom: The Future of the Current Generation, International Journal of Education and Psychological Research, Vol. 2, issue 2, PP. 41 - 45
7. Kaur, N. (2019). Higher education: Challenges, trends and issues in digitalization. Higher education.
8. Omer, Oz, (2018), Academicians view on Digital Transformation in Education. https:// www.researchgate.net/ publication/333354818_ Academicians'_views_on_digital_transformation_ in_education
9. https://uou.ac.in>slm
10. https://www.swaymprabha.gov.in

सुश्री सीता पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर-समाजशास्त्र विभाग
रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर

कुँवर संजय भारती
असिस्टेंट प्रोफेसर-लाइब्रेरी
रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर

सन् 1857 के विद्रोह में दलितों का योगदान एवं उसका महत्व

–डॉ. अजीत प्रताप सिंह
–सुनील कुमार निषाद

सारांश : सन् 1857 का विद्रोह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास की सर्वप्रमुख घटनाओं में से एक है यह विद्रोह भारतीय जनता के साहस और संघर्ष का प्रारम्भ मानी जाती है। 1857 का विद्रोह ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ने के लिये हमेशा से भारतीयों का प्रेरणा स्रोत रहा है। यह विद्रोह कोई अचानक आया हुआ उबाल नहीं था। बल्कि यह भारतीय जनता के उस संघर्ष की पराकाष्ठा थी जो 1757 ई. में ब्रिटिश राज की शुरूआत से ही भारतीयों में सुग्बुगाने लगी थी। 1857 के विद्रोह को ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकार मात्र एक सैनिक विद्रोह मानते हैं लेकिन बाद में राष्ट्रवादी इतिहासकारों के मजबूत तर्क ने यह साबित कर दिया कि यह विद्रोह सभी धर्मो, जातियों, महिला, पुरुष एवं किसानों का सम्मिलित विद्रोह था। इसलिये यह एक संगठित राष्ट्रीय विद्रोह था। रही बात इस विद्रोह में दलितों के योगदान की तो इस प्रश्न को अलग से नहीं देखा गया। मुख्य इतिहास लेखन में उच्च वर्ग के योगदान को प्रमुखतः से जगह मिली लेकिन भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे निचले वर्ग के योगदान को एकदम से अनदेखा कर दिया गया। बाद में दलितों में राजनीतिक चेतना जागृति के परिणामस्वरूप दलित एवं अन्य दलित चिन्तकों का ध्यान इस तरफ गया और तब जाकर 1857 के विद्रोह में उनके योगदान को देखने का प्रयास किया गया। इसमें प्रोफेसर बद्रीनारायण और चारू गुप्ता ने दलितों के योगदान पर गहन छानबीन की है। अभी तक सभी यह मानते हैं कि 1857 के विद्रोह की शुरूआत मंगल पांडे ने की थी लेकिन दलित साहित्य और मौखिक इतिहास प्रथम विद्रोह के प्रथम नायक मातादीन भंगी की एक अलग तस्वीर पेश करते हैं। 1857 की क्रान्ति का जनक मातादीन भंगी था, जो बैरकपुर छावनी की कारतूस फैक्ट्री में काम करते थे। उन्हीं से मंगल पांडे को क्रान्ति की प्रेरणा मिली। 1857 के विद्रोह से दलितों का गहरा भावनात्मक लगाव है। उनकी मान्यता है कि प्रथम विद्रोह महान दलित क्रान्तिकारियों एवं शहीदों से भरा पड़ा है। जिसमें झलकारी बाई, पन्नाधाई, अवन्तीबाई, उदा देवी, महावीरी देवी, मातादीन भंगी, भाउ बक्शी, पूरन कोरी, अमर शहीद बीरा पासी, चेत राम जाटव, बांके चमार, जैसे अनगिनत गुमनाम दलित क्रान्तिकारी थे। जो 1857 के विद्रोह में जी जान से लड़े और अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। उत्तर प्रदेश के दलितों में झांसी, लखनऊ, मेरठ, आगरा, जौनपुर, सुल्तानपुर, गोरखपुर आदि क्षेत्रों में अपने दम खड़े होकर विद्रोह के लिये संघर्ष किये। विद्रोह के माध्यम से दलितों ने अपने व्यवसायिक, सामाजिक और शैक्षिक अधिकारों की मांग भी उठाई। उन्होंने भारतीय समाज में नये विचारों के उद्गम की मांग की जो उन्हे स्वतंत्रता संग्राम के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाते, परन्तु अफसोसजनक है कि भारतीय समाज के मुख्यधारा में उनको योगदान को कभी सराहा नहीं गया। यद्यपि वर्तमान में कुछ दलित नायकों को मान्यता अवश्य मिली है।

प्रमुख शब्द- 1857 का विद्रोह, ब्रिटिश साम्राज्यवाद उपनिवेश, दलित, अस्पृश्यता, सामाजिक असमानता, महिला क्रान्तिकारी, आत्मनिर्भरता, आर्थिक हित, इतिहास लेखन, मौखिक इतिहास।

परिचय- 1857 का विद्रोह भारतीय इतिहास की एक अद्भुत घटना थी जिसमें दलितों ने महत्वपूर्ण योगदान दिये। विद्रोह में दलितों की भागीदारी ने विद्रोह को व्यापक और समावेशी आन्दोलन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दलित समुदाय के सदस्यों ने संघर्ष करते हुये अपने देश समाज और आर्थिक उत्थान की लड़ाई में बड़ा सहयोग प्रदान किया। 1857 के विद्रोह का स्वरूप क्या था? और साम्राज्यवादी इतिहासकार और भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकार इस विद्रोह को कैसे देखते हैं? हम इस प्रश्न पर विचार नहीं कर रहे हैं। क्योंकि इस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। हमारा अध्ययन सीमित है, उत्तर प्रदेश के दलितों का प्रथम विद्रोह में क्या योगदान था? और कौन-कौन से प्रमुख दलित क्रान्तिकारी थे? इस पर 1857 के विद्रोह में अनगिनत दलित क्रान्तिकारियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था इसलिये प्रथम विद्रोह से दलितों का गहरा भावनात्मक लगाव है। दलित मान्यताओं में यह स्वीकार किया गया है कि 1857 का

विद्रोह उन्हीं के द्वारा शुरू किया गया या उन्हीं से प्रेरणा ली गयी।[1]

1857 के विद्रोह के प्रथम नायक- 1857 का विद्रोह सवर्ण जाति के मंगल पांडे द्वारा शुरू नहीं किया गया, वास्तव में मंगल पांडे को इसकी प्रेरणा मातादीन भंगी से ही मिली। उनकी धारणा में मातादीन भंगी क्रान्ति का मुख्य स्रोत है। दलित कहानियों, कथाओं में मातादीन भंगी का विवरण इस प्रकार मिलता है। बैरकपुर की कारतूस बनाने वाली फैक्ट्री जिसमें दलित समुदाय के बहुत से लोग काम करते थे। एक दिन एक मजदूर ने एक सिपाही से एक मग पानी मांगा वह सिपाही मंगल पांडे था। मंगल पांडे ने मजदूर को पानी देने से मना कर दिया क्योंकि वह मजदूर दलित था। और उसे तिरस्कृत किया। फिर मजदूर मातादीन भंगी ने कहा, ''बड़ा आवा है ब्राह्मण का बेटा जिन कारतूसों का तुम उपयोग करते हो उन पर गाय और सूअर की चर्बी लबावल जात है जिन्हें तुम अपने दांतों से खींच कर बन्दूक में भरते हो वह समय तुम्हारी जात और धर्म कहां जावत है? धिक्कार है! तुम्हारे ब्राह्मणत्व का''[2] यह सुनकर सिपाही चकित हो गया और उसके बाद बैरकपुर छावनी में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी, यह मातादीन भंगी ही था जिसने भारतियों की आंखें खोल दीं। बाद में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और सभी लोगों को कोर्टमार्शल कर दिया गया। इसके लिये अंग्रेजों ने जो चार्जशीट तैयार की उसमें पहला नाम मातादीन भंगी का ही था। नाथ अपनी किताब ''1857 क्रान्ति के जनक'' में बिल्कुल ऐसी ही कहानी बताते हैं वह मातादीन भंगी को 1857 ''क्रान्ति का पिता'' मानते हैं।[3] सभी दलित समाचार पत्रों में मातादीन भंगी को 1857 की क्रान्ति का प्रथम विद्रोही के रूप में उल्लेखित किया गया है। अनार्य भारत मैनपुरी से, दलित केशरी इलाहाबाद एवं हिमायती इन सभी समाचार पत्रों में मातादीन भंगी को क्रान्ति का प्रथम नायक माना गया है। राजनीतिक एवं संस्कृतिक नाटकों, गीतों एवं कहानियों में दलित मातादीन भंगी के राष्ट्रीय आन्दोलन में उनके योगदान को याद करते हैं। सोहनपाल सुमन शंकर मजबूती के साथ लिखते है कि मातादीन भंगी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1857 क्रान्ति के बीज बोये। लेकिन दुर्भाग्यवश इतिहासकार उनके योगदान को भूल जाते हैं।

दलित स्मृतियों में 1857 की क्रान्ति के प्रमुख नायक झलकारी बाई, उदा देवी, अवन्ती बाई, महावीरी देवी, चेतराम जाटव, बालूराम मेहतार, बांके चमार, वीरा पासी था। लेकिन प्रभुत्व वर्ग के राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने उनकी उपेक्षा ही नहीं की बल्कि उन्हें पूर्णरूप से अनदेखा कर दिया। 1857 के अन्य क्रान्तिकारियों जैसे रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, बेगम हजरत महल, नानसाहब, वीर कुँवर सिंह इन क्रान्तिकारियों के साथ झलकारी बाई, उदा देवी पासी और मातादीन भंगी, वीरा पासी जैसे दलित क्रान्तिकारियों का नाम भी इनके साथ जोड़ा जा सकता था। ऐसा करने में तो कोई समस्या नहीं होनी चाहिये थी रही बात कि यदि राष्ट्रवादी इतिहासकारों को दलित क्रान्तिकारियों के योगदान पर सन्देह था तो यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि 1857 के अन्य क्रान्तिकारियों ऊपर से यदि राष्ट्रवाद का अमलीजामा हटा लिया जाये जो कि बहुत बाद में पहनाया गया तो सभी देख पायेंगे कि स्पष्ट रूप से लगभग सभी क्रान्तिकारी अपने-अपने व्यक्तिगत हितों के लिये लड़ते नजर आयेंगे। झलकारी बाई का नाम भी दलित स्मृतियों में गौरव के साथ लिया जाता है। मैं उन्हें ''झांसी का गौरव'' और ''झांसी की मुक्तिदाता'' नाम से सम्बोधित करना पसन्द करता हूँ। झलकारी बाई झांसी के भोजला गाँव के निवासी थी। वह बचपन से ही बहादुर एवं निडर थी उनका विवाह पूरनकोरी से हुआ जो खुद एक साहसी सैनिक थे। झलकारी बाई आगे चलकर रानी लक्ष्मी बाई की दुर्गादल की सेनापति बनी और अंग्रेजों से हिंसक संघर्ष में भाग ली।[4] रानी लक्ष्मी बाई को किले से बाहर ले जाने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। झलकारी बाई अपनी मातृभूमि के लिये अंग्रेजों से अपनी अन्तिम सांस तक अदम्य साहस के साथ लड़ती रहीं।

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त झलकारी बाई की बहादुरी को इस तरह उद्धृत करते हैं।[5]

आकर रण में ललकारी थी।
वह तो झांसी की झलकारी थी।।
गोरों से लड़ना सिखा गयी।
है इतिहास में झलक रही।।
वह भारत की नारी थी।।।

ऐसी ही दलित क्रान्तिकारी उदा देवी और उनके पति मक्का पासी थे जिन्होंने इस विद्रोह में अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। 10 जून 1857 को एक छोटी ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी जो बाराबंकी के रास्ते अवध से चिनहट जा रही थी। गाँव चिनहट में मक्का पासी ने 200 सहयोगियों के साथ बहुत से अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया। अन्त में हेनरी लॉरेंस ने उन्हे गोली मार दी।[6] उदा देवी ने भी असीम साहस का परिचय देते हुये एक पेड़ पर चढ़कर बहुत से अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया। और अन्त में एक गोली उन्हें भी लगी और वो शहीद हो गयी। पासी स्मृतियाँ इस बात का दावा करती हैं कि उदा देवी और उनके पति मक्का पासी ही दुनिया में एक मात्र शहीद पति-पत्नी हैं।[7] उनका त्याग और योगदान पासी समाज के लिये ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश के लिये एक आदर्श है। एक अन्य दलित क्रान्तिकारी वीरा पासी थे। जो राजा बेनी माधव सिंह के अंगरक्षक थे, जब अंग्रेजों ने राजा बेनी माधव सिंह को गिरफ्तार कर लिया तो एक रात वीरा पासी जी ने

कैदखाने में घुसकर राजा को छुड़ा लिये। जिसे अंग्रेजों ने अपना अपमान समझा और वीरा पासी को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने के लिये पचास हजार रूपये का ईनाम रख दिया, पर कभी वे वीरा पासी को पकड़ नहीं पाये। बालूराम मेहतार और चेतराम जाटव ने बैरकपुर की क्रान्ति में भाग लिया था। बाद में उन्हे काशगंज में फांसी दे दी गयी।

एक अन्य शहीद बांके चमार का नाम मिलता है, जो ग्राम कुँवरपुर, तहसील मछलीशहर, जनपद जौनपुर के निवासी थे। अंग्रेजों ने उन्हें और उनके 18 सहयोगियों को बागी घोषित कर दिया था। जब पूरे उत्तर भारत में क्रान्ति की आग फैल गयी थी तब जौनपुर जिले में बांके चमार ने भी अपनी अन्तिम सांस तक क्रान्ति का झण्डा उठाये रखा, और अन्त तक लड़ते रहे। विद्रोह के बाद उन्हें पकड़कर फांसी दे दी गयी।[8] कुँवरपुर गाँव के स्थानीय निवासियों की स्मृतियों में बांके चमार के साहस और बलिदान की कहानी आज भी प्रचलित है। उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के मझौना नामक गाँव में पत्थर की चार समाधियां बनी हैं। गाँव वाले इन्हें शहीद बाबा के नाम से जानते हैं। यहाँ के स्थानीय दलित शिक्षक बताते हैं, कि 1857 के विद्रोह में यहाँ के चार चमार क्रान्तिकारी शहीद हुये थे। उन्होंने गाँव को सभी अन्याय एवं ब्रिटिश शोषण से मुक्त कराने का संकल्प लिया था। अनन्य क्रान्तिकारियों के असीम योगदान के बाद यह सवाल तो जायज है कि फिर भी मुख्य इतिहास लेखन में और संस्थानों में उनके योगदान को पहचान क्यों नहीं मिली। हजारों दलित क्रान्तिकारियों को पेड़ों पर लटकाकर फांसी दे गयी, प्रोफेसर बद्रीनारायण का कहना है कि 1857 के विद्रोह के लिखित इतिहास में केवल सामान्तों, राजाओं एवं रानियों की कहानी मिलती है। आजादी के गुमनाम क्रान्तिकारी नायकों के योगदान का उल्लेख लिखित इतिहास के बजाय उत्तर भारत में मौखिक इतिहास, कहानियों एवं किस्सों के रूप में प्रसारित हुआ है।[9]

शोध विधि-

1. प्रस्तुत में शोध में अधिकांश शोध की मौलिक तथा आधारभूत शोध पद्धति का उपयोग किया है।
2. तथ्यों का संकलन मौखित इतिहास के माध्यम से संकलित करने का प्रयत्न किया है।
3. निगमम विधि से तथ्यों को संकलन किया गया है।
4. शोध की गुणात्मक पद्धति से कारणों का विश्लेषण एवं सत्यापन किया है।

निष्कर्ष- 1857 के विद्रोह में दलितों के योगदान से राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप भी बदल गया इसने ब्रिटिश शासन से लड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। दलितों ने आन्दोलन को हिंसक रूप प्रदान किया यह एक तरह से निम्न वर्ग में व्याप्त असंतोष का परिणाम था। अपने साहस से ब्रिटिश सरकार को गहरी क्षति पहुंचायी और झुकने पर मजबूर कर दिया था।

यद्यपि यह अवश्य है कि 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासन के नीति में व्यापक बदलाव आये। उन्होंने कई अवसरों पर क्रान्तिकारियों के प्रति अत्यन्त कठोर नीति अपनायी। 1857 के विद्रोह में दिखी एकता को भंग करने का प्रयास ब्रिटिश सरकार लगातार करती रही, लेकिन मातृभूमि के प्रति अपने प्रेम के कारण दलितों ने इसे कभी कमजोर नहीं होने दिया। कई अन्य महत्वपूर्ण सकारात्मक परिणाम भी सामने आये। विदेशी शासन को जबरदस्त टक्कर दी अपनी वीरता से अंग्रेजों को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। विद्रोह के दौरान दलितों ने सामाजिक समरसता और सम्मान का संदेश दिया। उन्होंने संघर्ष करते हुये गरीबी और असमानता के खिलाफ भी आवाज उठायी। दलित समुदाय का 1857 के विद्रोह में योगदान के परिणाम दूरगामी हुये। उनकी एकजुटता ने विद्रोह को पर्याप्त मजबूती प्रदान की।

1857 के विद्रोह में दलित वर्ग के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, यद्यपि यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि लम्बे समय तक दलितों के योगदान को भारतीय समाज की बहुसंख्यक आबादी उनके योगदान को महत्वहीन ही समझती रही, और कभी भी वह समाज के मुख्य धारा के आदर्श नहीं बन सके। यहाँ यह कह देने में कोई झिझक नहीं है कि 1857 के विद्रोह के दलित नायक भी भेदभाव का शिकार हो गये। जिस तरह भारतीय समाज की जाति व्यवस्था के सोपनाक्रम में दलित सबसे निचले पायदान पर गिने जाते हैं वैसे ही 1857 की क्रान्ति के दलित नायक भी समाज के अन्य वर्गों के लिये सबसे कम गौरवशाली माने गये जो कि अत्यन्त दुखद है। फिर भी अदम्य साहस, त्याग और मातृभूमि के प्रति उनका समर्पण आज दलित और अन्य वर्गों में भी जोश पैदा करता है और आदर्श माना जाता है। इन दलित क्रान्तिकारियों से दलित समाज में आत्मसम्मान की भावना जागृत होती है। राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी भागीदारी और वीरता की कहानियां दलित समाज भी अब गर्व से बताता है।

सन्दर्भ

1. Badri Narayan Tiwari, Reactivating the past Dalit and memories of 1857, Economic and Political weekly, Vol. 42, 12 may 2007
2. Charu Gupta Dalit Virangnas and reinvention of 1857, Article, Economics and Political Weekly, 2007
3. Sashi Bhusan Chaudhary, Civil rebilion of the Indian mustiness 1857-1857, the word press Private Ltd. 1957
4. S.N Sen, Eighteen fifty seven, the-9publication

division ministry of information and Broadcasting, government of India
5. Ranjit Guha, The small voice of history, collected essays, permanent black
6. Eric Stock, The peasant and the raj, Cambridge South, Asian studies, Internet Archives
7. Badri Narayan Tiwari, Women heroes and dalit assertion in North India: Culture, identity And politics, Sage publication, India, 2006
8. Badri Narayan Tiwari, the role of Dalit revolt of 1857
9. Rudranshu Mukherjee, Awadh in revolt of 1857-1858, Oxford University Press, Delhi, 1984, page. 9, 10

डॉ. अजीत प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
रमाबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, अकबरपुर,
अम्बेडकरनगर, उत्तर प्रदेश

सुनील कुमार निषाद
शोध छात्र, रमाबाई राजकीय महिला महाविद्यालय,
अकबरपुर, अम्बेडकरनगर, उत्तर प्रदेश

अम्बेडकर एवं सामाजिक न्याय

–डॉ. परवीन कुमार झा
–डॉ. संगीता

सारांश : सामाजिक न्याय एक गतिशील एवं व्यापक परिकल्पना है जो न्याय स्वतंत्रता एवं समानता के मूल्यों पर आधारित है। डॉ. अम्बेडकर इस विचार का प्रचार-प्रसार करते थे एवं वह ऐसे भारत की कल्पना करते थे जहाँ सामाजिक न्याय, समानता एवं बंधुत्व एक साथ सामाजिक उत्थान के लिए योगदान दे। इस सन्दर्भ म. यह भी समझना आवश्यक है कि लोगों के बीच एक दूसरे को बराबर समझने का भाव होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों का परिणाम ही था की भारत म. दबे-कुचले एवं कमजोर वर्ग को सशक्त किया गया है किन्तु उनके कल्पना पर आधारित समाज को स्थापित करने के लक्ष्य का पथ अभी भी बहुत लम्बा है।

कूट शब्द : न्याय, सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता, पिछड़ा वर्ग, संविधान, गरिमा पूर्ण जीवन, संवैधानिक मूल्य।

न्याय एवं सामाजिक न्याय की परिकल्पना : यदि हम प्राचीन भारत म. अथवा प्लेटो के न्याय को देखते हैं तो यह कहा जा सकता है कि न्याय का तात्पर्य व्यक्ति के कर्तव्यों के निर्वहन से सम्बंधित है। न्याय की संकल्पना को दो मुख्य पहलुओं से समझा जा सकता है "दण्डनीति" एवं "धर्म"। दण्डनीति न्याय को कानूनी दृष्टिकोण से देखता है, जहाँ नीतियों एवं दण्ड द्वारा न्याय निर्धारित किए जाते हैं। वहीं धर्म न्याय को व्यक्तियों द्वारा निर्वहन किए गये उनके कर्तव्यों के रूप म. देखता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति म. धर्म वो कर्तव्य है जो धर्म द्वारा निर्देशित किए गए हैं। न्याय, नैतिकता पर आधारित एक अवधारणा है जिसे विभिन्न प्रकार से समझा एवं व्याख्या किया जाता है। इसका उद्देश्य सामान्यतः सामाजिक संस्थानों एवं संरचनाओं, संसाधन के बँटवारे एवं मनुष्य के कर्म एवं चरित्र का आँकलन करना है। न्याय ऐसी अवधारणा नहीं है जिसे किसी सूत्र द्वारा समझा जा सकता है बल्कि यह एक गतिशील एवं जटिल प्रक्रिया है जो विभिन्न कारकों के मध्य संतुलन बनाए रखती है। इसका मुख्य कार्य फायदे एवं नुकसान का एक समान आबाँटन, शक्तियों का उचित प्रयोग एवं किसी भी प्रकार के भेदभाव को नकारना है।

सामाजिक न्याय की संकल्पना का विकास समाज के विकास के साथ-साथ हुआ। जब समाज के नियम, कानून, मूल्य, नैतिकता इत्यादि समय का साथ बदलने लगे तो इसके फलस्वरूप सामाजिक न्याय अस्तित्व म. आया। यह एक बहुआयामी अवधारणा है जिसके विषय म. प्राचीन काल से आधुनिक काल तक विश्लेषण किया जाता रहा है। इस विचार ने समाज के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक पहलुओं को सदैव ही प्रभावित किया है। सामाजिक न्याय सामाजिक समानता के सिद्धांत को मानता है एवं यह मानता है कि सामाजिक न्याय नीति-नियम एवं क़ानूनों द्वारा लाया जा सकता है। इसका यह मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक समान अवसर एवं संसाधन उपलब्ध कराया जाना चाहिए। यदि हम वर्तमान समय म. लिबरल या मार्क्सिस्ट दृष्टिकोण से न्याय को देखें तो लिबरल व्यक्ति विशेष के स्वाधीनता एवं अधिकारों के पहलू को देखता वहीं मार्क्सवाद समान समाज की बात करता है एवं यह मानता है कि जब तक समाज से असमानता समाप्त नहीं कर दिया जाता है तब तक हम न्यायपूर्ण समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। समानता, स्वाधीनता एवं अधिकार न्याय के तीन महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि सामाजिक न्याय के विषय म. चिंतन करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि समाज म. सामाजिक अन्याय का अस्तित्व है। अतः सामाजिक न्याय एवं अन्याय एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

बी.आर. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की परिकल्पना

बी.आर. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा का विश्लेषण करना एक चुनौतिपूर्ण कार्य है क्योंकि यह इतना गतिशील है कि शोधकर्ता इसे अपने अनुसार अलग-अलग दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करते हैं। बी.आर. अम्बेडकर ना केवल भारतीय संविधान के प्रमुख वास्तुकार, वकील, अर्थशास्त्री एवं राजनेता थे बल्कि वो एक महान

समाज सुधारक भी थे। उन्होंने समाज म. निहित असमानताओं, भेदभाव एवं अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई। अम्बेडकर ने दबे-कुचले लोगों, पिछड़े जाति एवं महिलाओं के अधिकारों के बारे म. आवाज़ उठाई। उन्ह. समाज म. सम्माजनक जीवन प्रदान करने का प्रयत्न किया। अम्बेडकर सामाजिक न्याय को कानून नैतिकता एवं व्यक्ति के अंतरात्मा के संदर्भ म. देखते थे। उनके लिए सामाजिक न्याय व्यक्तियों म. एकता एवं समानता का होना था। उनके अनुसार समाज म. न्याय के लिए पुरुषों एवं महिलाओं को एक समान महत्व देना एवं पिछड़े लोगों को उनके अधिकार प्रदान करना अति आवश्यक है। अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय के लिए व्यक्तियों के बीच आपसी सौहार्द, सहनशीलता, शिक्षा, सम्पत्ति के अधिकार एवं जाति के आधार पर भेदभाव का समाप्त होना, बहुत महत्वपूर्ण है।

अम्बेडकर हिन्दू सामाजिक प्रणाली एवं वर्ण प्रणाली के खिलाफ थे। उनका यह मानना था कि यह प्रणाली समाज म. असमानता स्थापित करती है एवं इसके फलस्वरूप पिछड़े जाति के लोगों का शोषण किया जाता है। बी.आर. अम्बेडकर के अनुसार, लोगों को इस प्रणाली को त्याग देना चाहिए एवं इसके बजाय बुद्ध धर्म को अपनाना चाहिए। अम्बेडकर हिन्दू धर्म के श्रेणीबद्ध संरचना को नकारते हुए यह कहते हैं कि मैं हिन्दू धर्म के किसी भी देवी या देवता को नहीं मानता हूँ एवं मैं बुद्ध धर्म के आष्टांगिक मार्ग को अपनाता हूँ, जो निम्नलिखित हैं; सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि। यह आष्टांगिक मार्ग मनुष्य को जीवन म. संतुलन बनाए रखने म. मदद करती है। अम्बेडकर का मानना था कि बुद्ध धर्म ही सच्चा धर्म है क्योंकि यह जीवन के तीन महत्वपूर्ण आधारों पर चलता है जो कि ज्ञान का सिद्धांत, सही मार्ग एवं करुणा की भावना है।

अम्बेडकर का यह मानना है कि वर्ण प्रणाली हर जाति के लिए एक श्रेणीबद्ध स्थान निर्धारित करती है जो कि समाज म. टकराव एवं असमन्वय को जन्म देती है क्योंकि इस प्रणाली म. उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों का शोषण करते हैं। वर्ण प्रणाली अलग-अलग जातियों के साथ विभिन्न व्यवहार करते हैं एवं सामाजिक न्याय के अवधारणा की अवहेलना करते हैं। बी.आर. अम्बेडकर यह भी कहते हैं कि छुआछूत वर्ण प्रणाली या जाति प्रणाली का परिणाम है। इसके द्वारा ना केवल निम्न जाति के लोगों का सामाजिक शोषण किया जाता है बल्कि आर्थिक शोषण भी होता है।

बी.आर. अम्बेडकर के बुद्ध धर्म को अपनाने की परिकल्पना के पथ की शुरुआत को एक धार्मिक क्रांति के रूप म. देखा जा सकता है किन्तु बाद म. यह सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति के रूप म. प्रचलित हुई। इस सन्दर्भ म. वह समानता पर ज़ोर डालते हैं एवं यह कहते हैं कि बंधुत्व एवं आज़ादी के बिना समानता का कोई मूल्य नहीं है। अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की परिकल्पना पर फ्रांस की क्रांति के मूल्य आधार; स्वतंत्र, समानता एवं बंधुत्व का प्रभाव देखने को मिलता है। डॉ. अम्बेडकर न केवल भारत म. बल्कि विश्व म. विख्यात दूरदर्शी प्रतिनिधि के रूप म. देखे जाते हैं। क्रिस्टाफ के अनुसार, डॉ. अम्बेडकर ने न्याय एवं समानता को प्राप्त करने के लिए अपने आंदोलन म. एक रणनीति उन्मुख रास्ता अपनाया एवं इसम. उनकी दूरदर्शिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा। न्याय एवं समानता के आंदोलन म. अम्बेडकर एक लक्ष्य से दूसरे लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहे। ज़ेफ़ेरलोट के अनुसार, डॉ. अम्बेडकर ने पहले अछूतों की स्थिति सुधारने के लिए सामाजिक सुधार पर ज़ोर दिया तत्पश्चात् राजनीति म. प्रवेश कर आवश्यक कदम उठाए। उन्होंने न्याय एवं असमानता के मुद्दे को केवल पार्टी एवं राजनीति तक सीमित नहीं रखा बल्कि आवश्यक कदम उठाने हेतु ब्रिटिश एवं कांग्रेस दोनों के साथ सहकार्यता पर ज़ोर डाला ताकि जहाँ शक्ति क.द्रित थी वहां से नए कदम की शुरुआत की जा सके।

अम्बेडकर समाज म. अछूतों के लिए समानता एवं एक समान अधिकार लाना चाहते थे। पहले उनका यह मानना था कि हिन्दू धर्म के अंतर्गत रहते हुए समझ सुधार द्वारा इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसके पश्चात् उन्होंने यह भी कहा कि यदि आवश्यक हो तो हिन्दू धर्म का त्याग करके भी इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि यह लक्ष्य लोगों के लिए गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करने के लिए है जिसे पाने के लिए यदि धर्म के परे जाना पड़े तो वह भी किया जाना चाहिए। 1935 म. महाराष्ट्र म. डिप्रेसड क्लास बैठक म. डॉ. अम्बेडकर ने बुद्ध धर्म को अपनाने की इच्छा प्रकट की। इस संदर्भ म. ज़ेफ़ेरलोट का यह विश्लेषण था कि एक तरफ डॉ. अम्बेडकर ने हिंदू धर्म म. सुधार लाकर न्याय एवं समानता को प्राप्त करने की आशा को त्याग दिया था। वहीं दूसरी ओर उन्होंने "आस्था" के वाद-विवाद के परे जाकर इस सामाजिक मुद्दे का समाधान ढूँढने का प्रयत्न किया।

किसी भी राष्ट्र के लिए एक ऐसी सामाजिक स्थिति बनाना अति आवश्यक है जहाँ कानूनों द्वारा लोगों को न्याय प्रदान कराया जा सके एवं न्याय समानता एवं एक समान अवसर पर आधारित हो। डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की परिकल्पना ऐसे समाज की स्थापना करने का लक्ष्य रखती है एवं यह संकल्पना भारत के संविधान के मूल्यों म. समाहित है। भारत का संविधान डॉ. अम्बेडकर की अध्यक्षता म. बना है एवं संविधान म. कई प्रावधान है

जो यह सुनिशचित करते हैं कि सरकार अपने सभी नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान करेगी। संविधान म. दबे-कुचले एवं कमजोर वर्ग के लोगों के लिए "तरजीहि व्यवहार" या "परेफ्रेंशीयल ट्रीटम.ट" का प्रावधान है। संविधान के अनुच्छेद 17 म. छुआछूत को समाप्त कर एक दण्डनीय अपराध घोषित किया है। इसके अनुसार किसी भी निम्न वर्ग के व्यक्ति को किसी भी सार्वजनिक स्थान पर जाने से रोका नहीं जाएगा। इसके अलावा संविधान म. आरक्षण का प्रावधान है ताकि इस वर्ग के लोगों का विकास हो सके एवं उन्ह. एक समान अवसर प्रदान कराया जा सके।

इनके अलावा, सरकार ने इस संबंध म. दो महत्वपूर्ण कानून अपनाए हैं। ये हैं–

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 को आगे बढ़ाते हुए अधिनियमित नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955, अस्पृश्यता की अवैध प्रथा की जाँच के लिए एक दंडात्मक कानूनी प्रावधान है और इसे क.द्र सरकार की सहायता से संबंधित राज्य सरकारों और क.द्र शासित प्रदेश प्रशासनों द्वारा देश भर म. लागू किया जाता है।
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम) 1989 को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के खिलाफ सामान्य आबादी द्वारा किसी भी अपराध और अत्याचार के खिलाफ कानूनी सुरक्षा प्रदान करने के लिए 30 जनवरी 1990 को लागू किया गया था। इस अधिनियम म. एक संशोधन, अर्थात् अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015, 26 जनवरी 2016 को लागू किया गया, जिसने मूल अधिनियम की कठोरता को बढ़ा दिया है।

अनुसूचित जाति की जनसांख्यिकी प्रोफ़ाइल (2011 की जनगणना के अनुसार)

2011 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, भारत की अनुसूचित जाति (एससी) की आबादी 20.14 करोड़ या देश की कुल आबादी का 16.63 प्रतिशत है। यह आंकड़ा 2001 की जनगणना के अनुसार 16.2 प्रतिशत से प्रतिशत दर म. मामूली वृद्धि दर्शा रहा है। ग्रामीण-शहरी वितरण के संदर्भ म., भारत की 76.4 प्रतिशत अनुसूचित जाति आबादी ग्रामीण क्षेत्रों म. रहती है, जो 2001 म. 79.6 प्रतिशत से घट गई है, जबकि शहरी क्षेत्रों के मामले म. यह 2001 म. 20.4 प्रतिशत से बढ़कर 2011 म. 23.6 प्रतिशत हो गई है। 2001-2011 के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों म. अनुसूचित जाति जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर कम (15.7 प्रतिशत) थी, जबकि शहरी क्षेत्रों म. यह बहुत अधिक (41.3 प्रतिशत) थी, जो शहरीकरण और गांवों से कस्बों और शहरों म. प्रवास के उच्च स्तर का संकेत देती है। अनुसूचित जाति की आबादी राज्यों म. उनके प्रसार के संदर्भ म. एक पैटर्न का संकेत देती हैः भारत की 60 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति की आबादी केवल छह राज्यों म. क.द्रित है, जिनम. उत्तर प्रदेश (4.14 करोड़), पश्चिम बंगाल (2.15 करोड़), बिहार (1.66 करोड़) राज्य शामिल हैं। तमिलनाडु (1.44 करोड़), आंध्र प्रदेश (1.38 करोड़) और महाराष्ट्र (1.33 करोड़)। जनसंख्या म. अनुसूचित जाति के उच्चतम अनुपात वाले राज्य हैं पंजाब (31.9 प्रतिशत), हिमाचल प्रदेश (25.2 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (23.5 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (20.7 प्रतिशत), हरियाणा (20.2 प्रतिशत) और तमिलनाडु (20.01 प्रतिशत)।

उनकी स्थिति को उन्नत करने की आवश्यकता को पहचानना

आरक्षण का लाभ देने और उनके उत्थान की दिशा म. लगातार प्रयास करने के बावजूद सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के कारण उच्च पद पर उनका प्रतिनिधित्व देखने को नहीं मिल रहा है। इस प्रकार सरकार द्वारा यह माना गया है कि अनुसूचित जातियों (एससी) के लिए एक अलग नीति साधन की आवश्यकता है ताकि वे विकासात्मक रणनीति के लाभों को अधिक न्यायसंगत तरीके से साझा कर सक.। इस रणनीति म. अंतिम संशोधन 2005 म. किया गया था, जिसम. अन्य बातों के अलावा सुझाव दिया गया था (2006 म. जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार):

- क.द्र और राज्य दोनों स्तरों पर अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) की आबादी के अनुपात म. योजना निधि का निर्धारण;
- अनुसूचित जाति उपयोजना (एससीएसपी) और जनजातीय उपयोजना निधि गैर-परिवर्तनीय और गैर-व्यपगत योग्य होनी चाहिए;
- उचित और उपयुक्त विकासात्मक कार्यक्रम/योजनाएँ/गतिविधियाँ डिज़ाइन करना;
- विभिन्न क्षेत्रों के लिए अलग-अलग बजट शीर्ष/उप-शीर्ष का निर्माण; और
- एक प्रभावी निगरानी तंत्र का निर्माण। 2010 म., एक टास्क फोर्स ने एसटी की आबादी के अनुपात म. आवंटन निर्धारित करने के दायित्व के संदर्भ म. 28 क.द्रीय मंत्रालयों/विभागों की पहचान की, और 2014 म. एससीएसपी और टीएसपी के लिए संशोधित दिशानिर्देश जारी किए गए।

2018 म., नीति आयोग ने एससी और एसटी के लिए धन निर्धारित करने की वैकल्पिक व्यवस्था की पहचान करने के लिए एससीएसपी और टीएसपी का एक और मूल्यांकन किया। नीति आयोग के विश्लेषण और हितधारकों

के साथ परामर्श के आधार पर, दिशानिर्देशों को आगे संशोधित किया गया, एससीएसपी और टीएसपी का नाम बदलकर एससी और एसटी (डीएपीएससी और डीएपीएसटी) के लिए विकास कार्य योजना कर दिया गया। संशोधित दिशानिर्देशों के हिस्से के रूप म., नीति आयोग ने संबंधित मंत्रालयों/विभागों द्वारा डीएपीएससी और डीएपीएसटी के लिए धन निर्धारित करने के लिए संशोधित मानदंडों के साथ-साथ कुछ मंत्रालयों/विभागों के लिए संशोधित योगदान दरों का भी प्रस्ताव रखा है। SCSP/DAPSC म. MWCD का संशोधित योगदान 20% पर अपरिवर्तित रहा, जबकि TSP/DAPST म. योगदान 8.2% से बढ़कर 8.6% हो गया।

रणनीति म. इस बदलाव का प्रभाव

सेक्टर के कुल AE म. से AE SCC की प्रतिशत हिस्सेदारी म. बदलाव				
सेक्टर	2017-2018	2018-2019	2019-2020	2020-2021
कृषि, पशुपालन और मत्स्य पालन	12%	13%	13%	14%
स्वास्थ्य	14%	11%	16%	16%
मानव संसाधन विकास	14%	15%	20%	12%
नौकरियाँ और कौशल क्षेत्र	15%	23%	16%	16%
ग्रामीण विकास	9%	9%	7%	8%
सामाजिक समावेश	44%	41%	44%	35%
शहरी परिवर्तन जल संसाधन,	7%	11%	9%	5%
पर्यावरण और वन	3%	2%	2%	4%
महिला बाल विकास	13%	12%	13%	63%

स्रोतः Niti Aayog, Social INCLUSION, https://dmeo.gov.in/sites/default/files/2022, October 2022.

कौशल विकास गतिविधियों के माध्यम से लाभार्थियों तक पहुँचने की संख्या म. परिवर्तन	
2014-15	69,127
2015-16	1,04,387
2016-17	1,02,595
2017-18	97,153
2018-19	41,353

स्रोतः Niti Aayog, Social INCLUSION, https://dmeo.gov.in/sites/ default/files/2022, October 2022.

सामाजिक न्याय की प्रासंगिकता

यदि अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के संकल्पना की प्रासंगिकता की बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि संवैधानिक विधियों द्वारा अम्बेडकर ने सामाजिक बुराइयों का अंत करने का प्रयत्न किया एवं उनके प्रयासों के फलस्वरूप समाज का कमजोर वर्ग एक बार फिर से शक्तिशाली बनने एवं महसूस करने लगा। उनके अथक प्रयासों द्वारा ही छुआछुत को समाज से समाप्त किया गया। आरक्षण के प्रावधान द्वारा दबे-कुचले एवं कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को एक समान अवसर प्रदान कराया गया एवं उनकी स्थिति म. सुधार लाया गया। इन वर्गों के लिए विभिन्न प्रकार के कानूनी व्यवस्थाओं की स्थापना की गयी ताकि उनके लिए न्याय सुनिशचित किया जा सके। राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर कई कार्य एवं नीतियों का निर्माण किया हुआ ताकि इन वर्गों का सम्पूर्ण विकास हो सके। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, जो कि पिछड़े वर्ग को अत्याचार एवं शोषण से सुरक्षा प्रदान करने का एक माध्यम है।

किन्तु यह भी तथ्य है कि सामाजिक न्याय एक ऐसी संकल्पना है जो निरंतर विकसित होती रहती है एवं उसने शिकायतों के लिए भी बहुत स्थान होता है क्योंकि यह एक प्रक्रिया है जिसका कोई अंत बिंदु नहीं है। समाज म. आज भी पूरी तरह से छुआछूत को समाप्त नहीं किया जा सका है। आज भी देश के लगभग हर कोने से निम्न जाति के लोगों के साथ दुर्व्यवहार एवं भेदभाव की घटना सुनने को मिलती है, चाहे वो निम्न जाति की महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न की घटना हो या किसी कमजोर वर्ग के व्यक्ति की सम्पत्ति हड़प लेना या उसे बेरहमी से मार देने की घटना हो। अपराध म. इस वृद्धि का विश्लेषण निम्नलिखित आंकड़ों से किया जा सकता है–

स्थिति रिपोर्टः मामले, जांच (अनुसूचित जाति के खिलाफ)			
वर्ष	**मामले दर्ज**	**आरोपपत्र दाखिल**	**जांच लंबित**
2018	42,793	34,838	16,323
2019	45,961	34,754	17,903
2020	50,291	39,138	19,825
SC के खिलाफ अपराध म. दर्ज मामलों म. टॉप 2 राज्य			
वर्ष	**उत्तर प्रदेश**	**बिहार**	
2018	11,924	7,061	
2019	11,829	6,544	
2020	12,714	7,368	

स्रोतः Telling Numbers | Crimes against SCs, STs: rise in cases, and trends by state http://indianexpress.com/article/explained/

आज भी इन वर्गों को समाज म. गरिमापूर्ण स्थान नहीं दे पाए हैं जिसकी कल्पना डॉ. अम्बेडकर ने की थी।

ज़मीनी स्तर पर अभी अथक प्रयासों की आवश्यकता है जिसके द्वारा डॉ. अम्बेडकर द्वारा कल्पना किए गए समाज को स्थापित किया जा सके। यह करने के लिए एवं उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर के विचार एवं उनके मूल्यों का अनुसरण करना अति आवश्यक है।

निष्कर्ष

भारत के इतिहास म. डॉ. अम्बेडकर के योगदान हमेशा ही बहुत महत्वपूर्ण रह.गे, विशेषकर बात जब दबे कुचले एवं पिछड़े वर्ग के उत्थान की होगी। उन्होंने अपने जीवन का महत्वपूर्ण वक्त पिछड़े वर्गों के विकास एवं उनको न्याय प्रदान करवाने म. बिता दिया। उनके प्रयासों के फलस्वरूप ही भारत के संविधान म. सामाजिक न्याय, मानव गरिमा एवं एक समान अधिकार जैसे मूल्यों को समाहित किया गया है। वह कमजोर वर्ग के लोगों के सम्पूर्ण विकास पर ज़ोर डालते थे एवं उन्होंने इस विचार का प्रसार किया कि सामाजिक न्याय बिना स्वतंत्र एवं बंधुत्व के खोखला है। उनका यह विचार था कि जाति के आधार पर भेदभाव समाज की बुराइयों को समाप्त नहीं होने देगी एवं निम्न वर्ग के लोगों को नुक़सान पहुँचाती है अतः इसे जड़ से समाप्त करना अति आवश्यक है। डॉ. अम्बेडकर के मूल्यों एवं विचारों द्वारा ही सामाजिक बुराइयों को समाप्त कर सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सकता है। वर्तमान समय म. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के सिद्धांतों का प्रसार करने के लिए यह आवश्यक है हम उनके विचारों पर विचारधाराओं के माध्यम से आधिपत्य स्थापित करने कि बजाय वास्तविक स्तर पर उनके सिद्धांतों का अनुसरण कर. एवं समाज से उन कुरीतियों को समाप्त करने का प्रयत्न कर. जिसकी बाबा साहेब ने अभिलाषा की थी।

संदर्भ

1. कीर धनंजय, "डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर जीवन चरित", दिल्ली, 1996
2. शर्मा, सीता राम, "19वी सदी के धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलन" हिंदी ग्रंथावली, भोपाल, 1997
3. जाटव, डी. आर., "राष्ट्रीय आंदोलन म. डॉ. अम्बेडकर की भूमिका" प्रिज़म पब्लिकेशन, जयपुर, 1996
4. भटनागर, राज.द्र मोहन, "डॉ. अम्बेडकरः जीवन और दर्शन", दिल्ली, 1986
5. अम्बेडकर बी. आर., "एन्निहिलेशन ऑफ़ कास्ट (हिंदी संस्करण)" लखनऊ, 1986
6. रोड्रिगज, वेलेरियन, "आधुनिक भारत म. सामाजिक और राजनीतिक चिंतन", इग्नु, नई दिल्ली, 2013
7. गाबा, ओम् प्रकाश, "समकालीन राजनीतिक सिद्धांत", मयूर पेपरबक्स, नॉएडा, 2011
8. मझी, राजू, "कंटेम्परेरी इशूज़ इन लॉ एंड सोसायटी" अदया प्रकाशन, अहमदाबाद, 2016
9. वर्मा, अरुण कुमार, "डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन म. सामाजिक न्याय" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ पोलिटिकल साइयन्स एंड गवरनेनस, 2019, 1(1):18-20
10. भारती, राम विलास, "बीसवीं सदी म. दलित समाज, अनामिका पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010
11. सहारे, एम.एल., "डॉ. भीमराव अम्बेडकरः हिज़ लाइफ़ एंड वर्क" नई दिल्ली, 1988
12. भाटिया, के.एल., "सोशल जस्टिस ऑफ़ अम्बेडकर" नैशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995
13. Niti Aayog, Social INCLUSION, https://dmeo.gov.in/sites/default/files/2022, October 2022-
14. Telling Numbers, Crimes against SCs, STs: Arise in cases, and trends by state http://indianexpress.com/article/explained/

डॉ. परवीन कुमार झा
प्रोफेसर
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. संगीता
प्रोफेसर
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

महादेवी वर्मा के काव्य का वितान : एक आलोचनात्मक अध्ययन

–लक्ष्मण

शोध सारांश : दुनिया का कोई भी साहित्य हो दरअसल वह अपने समय और समाज की उपज होता है। इसमें उस देश की सामाजिक, सांस्कृतिक रीति-नीति के साथ-साथ उस समय और समाज की भिन्न-भिन्न परंपरा का विशेष योग होता है। किसी साहित्यकार की अपनी समकालीन भिन्न-भिन्न स्थितियां यथा - राजनीतक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक आदि स्थितियां उसके साहित्य सृजन को प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में प्रभावित करती रहती हैं। महादेवी वर्मा छायावाद के महत्वपूर्ण कवियों में से एक हैं। उनके काव्य-संग्रह- नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, यामा, दीपशिखा और सप्तपर्णा है। भिन्न-भिन्न आलोचकों ने उनके संपूर्ण काव्य पर लोकोत्तर और रहस्यवादी होने का आरोप लगाया है। यह शोध आलेख उनके काव्य के इहलौकिक और अपने समय और समाज की चिंताओं से ओत-प्रोत होने की एक संभव खोज भर है।

बीज शब्द :- साहित्येतिहास, श्रृंखला, लोकोत्तर, रहस्यवाद, पलायनवाद, कल्पना, यथार्थवाद, प्रकृति, लाक्षणिकता, वक्रता, अभिव्यंजना, स्वाधीनता, आंदोलन, समीक्षा, शक्ति, प्रत्याख्यान, ऐतिहासिक दृष्टि, व्यक्ति वैचित्र्य, समकालीनता, छायावाद, नवजागरण, अनुभूति व सहानुभूति, इहलौकिक व पारलौकिक, वेदना, कविता आदि।

मुख्य आलेख :-

26 मार्च का दिन हम सबके लिए बहुत महत्वपूर्ण दिन होता है क्योंकि आज ही के दिन हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा पाणि अर्थात् महीयसी महादेवी वर्मा का जन्म हुआ था। एक प्रकार से हमारे लिए यह एक त्योहार का दिन है। बस यह ध्यान रहे कि हम महीयसी को मिथक ना बना दे। उन्हें धीरे-धीरे ईश्वर न बना दें। उनकी पूजा न करने लगें। यदि हम थोड़ा सचेत एवं मेहनत करके इतिहास में झांक लें तो ऐसे तमाम उदाहरण हमें देखने को मिल सकते हैं जहां हम लोगों ने तमाम ताकतवर बुद्धिजीवियों को ईश्वर बनाकर; अतिश्रद्धा, अंधभक्ति रूप से उनकी पूजा करने लगे हैं। अब हम उनसे प्रश्न नहीं करते हैं, उनसे संवाद नहीं करते हैं। उनको अजीबोगरीब दुनिया की सत्ता बनाकर उनके आगे नतमस्तक होने लगे हैं। उदाहरण स्वरूप में बुद्ध, कबीर, तुलसी, विवेकानंद, गांधी, अम्बेडकर, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और अब नामवर सिंह जी भी। यदि इन्हें मार्गदर्शक, दोस्त यह कुछ और (इहलौकिक जो हो) समझकर; इनके बगल में बैठकर (इनके लिखे के साथ) इनसे संवाद करते तो हमें हमारे समय और समाज के जरूरी प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं। पर हमें तो पूज-पूज कर चीजों की, वस्तुओं की तथा व्यक्तियों आदि-इत्यादि की हत्या करने का शौक सा लग गया है। बहरहाल आज महादेवी वर्मा को पूरी तरह से समझने के लिए उनकी कविताओं के साथ-साथ उनके गद्य को विशेषतः 'श्रृंखला की कड़ियां' को रखकर पढ़ना होगा। आज बहुत सारे बुद्धिजीवी ऐसा कर भी रहे हैं। उदाहरण के रूप में मैनेजर पांडेय जी का नाम लिया जा सकता है।

महादेवी वर्मा जी का नाम लेते ही हमारे जेहन में छायावाद की एक तस्वीर उभर कर सामने आती है और उस तस्वीर में आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी भी नजर आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी छायावाद के प्रति उदासीन दिखायी देते हैं। और आलोचना के शिखर पुरुष आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने महीयसी को अपने साहित्येतिहास में केवल आधा ही पेज दे सके हैं। सभी छायावाद कवियों को देखें तो सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी को तीन पेज, जयशंकर प्रसाद जी को दस पेज और सुमित्रानंदन पंत जी को तेरह-चौदह पेज।[1] सुमित्रानंदन पंत जी को लगभग वही पेज दिए हैं जो गोस्वामी तुलसीदास जी को दिए हैं। और महादेवी वर्मा उनके लिए ''वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियां सामने रखी हैं जो लोकोत्तर है। कहां तक वे वास्तविक अनुभूतियां हैं और कहां तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।''[2]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार महादेवी शुद्ध रहस्यवादी हैं और लोक से इतर हैं। अर्थात् वे अपनी ही दुनिया अपने ही अज्ञात प्रियतम में डूबी हैं। शायद आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी उनके प्रियतम को ढूंढने की कोशिश नहीं की। न

ही उनके सामाजिक जीवन को उनकी कविताओं में खोजने की जरूरत समझें। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सामने, महादेवी वर्मा की रचनाएं यथा- नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और 'यामा' थीं। पर आचार्य शुक्ल जी ने उनकी दो-ढाई कविता वह भी दो-दो पंक्तियों से उद्धृत करके अपने आलोचना दायित्व से मुक्त हो गए। आलोचना के दूसरे शिखर पुरुष आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी; आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी को आधार बनाते हुए महादेवी वर्मा को केवल और केवल आधा पेज दे सकें। आचार्य द्विवेदी जी ने महादेवी वर्मा की तुलना घूमा-फिराकर जयशंकर प्रसाद से करते हुए प्रसाद जी को श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए महीयसी को लिखते हैं-

''महादेवी जी की कविताओं में 'चिरंतन' और 'असीम' प्रिय अत्यंत कोमल, मोहन और उत्सुक प्रणई के रूप में चित्रित हुआ है...।''[3] और इस तरह कोमल, मोहन लिखकर द्विवेदी जी भी अपने आलोचना कर्म-दायित्व से मुक्त हो गए।

व्यावहारिक समीक्षा जगत में तुलना एक जरूरी तत्व है। अंग्रेजी आलोचक कोलरिज से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल तक यह बराबर चलता रहा है पर आचार्य द्विवेदी जी को प्रसाद के साथ-साथ सुभद्रा कुमारी चौहान को भी महादेवी वर्मा के अलग-बगल रखना चाहिए था। तब यह अच्छी तरह भाषित होता है कि ये दोनों सहेली-कवयित्रियों में कितना ओज, तेज व राष्ट्रीय चेतना परिव्याप्त है। छोटे-बड़े लगभग सभी आलोचक महादेवी वर्मा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ही चश्मे से देखते रहें। और वह चश्मा रहस्यवादी रहा, लोकोत्तर का रहा, वेदना कर रहा है। जो कवयित्री जीवन भर अधिकार की लड़ाई लड़ती रही, शिक्षा की मुहिम चलाती रही; उसे लोगों ने लोक से इतर सिद्ध कर दिया। यह नहीं भूलना चाहिए कि महीयसी का समय स्वाधीनता आंदोलन का समय था। उस समय की सड़कें आंदोलनों से भरी थीं। चारों तरफ आजादी की चाह थी, उस खुले और स्वाधीन बसंत की चाह थी। बकौल महादेवी वर्मा-

''जो तुम आ जाते एक बार
हंस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता होठों से विषाद
छा जाता जीवन में बसंत
लुट जाता चिर संचित विराग
आंखें देती सर्वस्व वार
जो तुम आ जाते एक बार...।''[4]

आखिर महादेवी वर्मा किस बसंत की बात कर रही हैं? कहीं यह स्वाधीनता का बसंत तो नहीं। इसका एक पाठ स्वाधीनता आंदोलन-आजादी की चाह की कामना को केन्द्र में रखकर पढ़ना चाहिए और यहीं सुभद्रा कुमारी चौहान के 'वीरों का कैसा हो बसंत' और 'खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी' को भी साथ-साथ रखकर पढ़ने की जरूरत है। तब स्पष्ट होगा कि महीयसी महादेवी वर्मा किस बसंत की बात करती हैं। महीयसी का संपूर्ण जीवन, कथनी-करनी से कभी अलग हुआ ही नहीं। समाज कल्याण का उनका दायरा बहुत व्यापक था; जिसको शायद कलमबद्ध किया नहीं गया या बुद्धिजीवियों ने करना भी नहीं चाहा।

छायावादी काव्य एक बड़े रूप में स्वाधीनता से जुड़ा हुआ है। कुछ कवि (माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि) खुलकर लिख रहे थे तो कुछ शांत भाव से। प्रत्यक्ष-परोक्ष रुप में स्वाधीन राष्ट्रीय चेतना चारों ओर परिव्याप्त थी। एक तरफ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी लिखते हैं-

''है अमा-नशा; उगलता गगन घन अंधकार;
खो रहा दशा का ज्ञान : स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।''[5]

और दूसरी तरफ छायावादी बड़े कवि जयशंकर प्रसाद जी लिखते हैं-

''शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त।
विकल बिखरे हैं, हो निरूपाय;
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाए।''[6]

और महादेवी वर्मा जी लिखती हैं-

''बांध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?
जाग तुझको दूर जाना।''[7]

''प्रिय तेरे नभ-मंदिर की
मणि दीपक बुझ-बुझ जाते
जिनका कण-कण विद्युत है
मैं ऐसे प्राण जलाऊं
तुम सो जाओ में गाऊं''[8]

''यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो''[9]

''बीन भी मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ
आग हूँ जिससे ढुलकते बिंदु हिमजल के
शून्य हूँ जिसके बिछे हैं पावड़े जल के
पुलक हूँ जो पला है कठिन प्रस्तर में
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ''[10]

दरअसल तुलनात्मकता व्यवहारिक समीक्षा जगत की एक बेहद महत्वपूर्ण कड़ी है। जिसके सहारे समीक्षक-सर्जक व उसकी सर्जना की जमीन को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है और साहित्येतिहास को समृद्ध करते हुए उसे अग्रगामी प्रगतिशील बनाता है। यहां पर ध्यान से देखें तो निराला के पास 'अन्याय जिधर हैं उधर शक्ति' के बाद भी स्वाधीनता की ऊर्जा ब्रिटिश हुक्मरानों के खिलाफ

भारत वर्ष में बहुत कुछ बची है क्योंकि गगन अंधकार के बावजूद भी '...ध्यान मग्न केवल जलती मशाल है' वहीं जयशंकर प्रसाद के पास 'शक्ति के विद्युत्कण' हैं तो महादेवी वर्मा के पास भी 'मणि-दीपक' व 'कण कण विद्युत' है। इस दीप-दीपक को महीयसी चुपचाप जलने के लिए अपने काव्य-साहित्य से प्रतिबद्ध हैं। ये सारे कवि एक दूसरे से जुड़ते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं; पर इनकी कविता गहरे भाव रूप से स्वाधीनता के लिए व्याकुल है। साहित्य की अपनी शर्ते होती हैं। कवि, एक्टिविस्ट की भांति विशेषतः राजनीति की भांति सड़कों पर झण्डे लिए नहीं दौड़ा करते हैं। वह शांत भाव से अपने साहित्य कर्म, साहित्यिक संस्कार से बद्ध होकर जन सामान्य के लिए परिवर्तन चाहते हैं। इसका पूर्ण दायित्व महीयसी अपने काव्य साहित्य में निभाती हैं।

महादेवी वर्मा कभी भी लोकोत्तर नहीं रही हैं। वह इसी लोक की पीड़ा-श्रृंखला की बेड़ियों से आहत थीं। इसी से मुक्ति की कामना करती हैं। इस मुक्ति की कामना के लिए वे बीन-रागिनी बनती हैं तो कभी आग और दामिनी भी। इस मुक्त कामना के रूप को और खुले रूप में देखने के लिए महीयसी के गद्य-साहित्य को उनके काव्य-साहित्य के साथ रखकर पढ़ना होगा। 'श्रृंखला की कड़ियां' अपने गहरे तर्क संवाद और पूरी बौद्धिकता से बद्ध है। श्रृंखला की कड़ियां 11 अध्याय में बद्ध होते हुए अपने शुद्ध स्वस्थ विचारों से लिपिबद्ध है जो कवयित्री अपने समय और समाज में हो रही छोटी-छोटी घटनाओं पर अपनी पैनी दृष्टि रखी हुई हो; जिसको प्राचीन रोम, यूनान, टर्की, सोवियत रूस आदि देशों के इतिहास व वर्तमान की गहरी जानकारी हो, वह कवयित्री लोक से इतर कैसे हो सकती है, कैसे उसके काव्य के विषय रूप सीमित हो सकते हैं, साहित्येतिहास-इतिहासकार सुमन राजे की इस टिप्पणी ध्यातव्य है-

''यूं तो छायावाद को प्रारंभ से ही नवोदित हिंदी आलोचना ने लानत-मलानत पेश की है, परंतु स्त्री होने के नाते महादेवी पर कुछ अधिक प्रहार हुए हैं। शायद सबसे अधिक करकने वाली बात है, उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व मातृत्व के न होने की बात करना 'कुठांव' मारना ही है। संपादक की सम्पति में ''उनका दुख वैसा ही है जैसा किसी अमीर आदमी का मनोरंजन के लिए पैदल चलना। श्रीमीत का दुख उनका सैरगाह ही है।''[11]

कुछ आलोचक को काव्य-गीतात्मकता बहुत चुभती है। वे यह भूल जाते हैं कि काव्य में दर्शन और गीतात्मकता; काव्य की उम्र को और बढ़ा देते हैं। जनमानस के मन मस्तिष्क में लंबे समय तक बने रहते हैं। एक प्रकार से उसमें ताजगी बनी रहती है। उदाहरण स्वरूप कबीरदास, गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास की कविता को देखा जा सकता है। जिसमे दर्शन और गीतात्मकता पूरी तरह से भरी पड़ी है। और उनकी कविताएं आज भी जनमानस के लिए ताजगी से पूर्ण हैं। महादेवी वर्मा की कविताएं भी इसी परंपरा में देखी जा सकती है। उनके काव्य की यह गीतात्मकता लंबे समय तक उनकी कविताओं को ताजगी देती रहेंगी।

महीयसी के काव्य में विविध रूप और रंग तथा कहन एक साथ विद्यमान है। प्रकृति, स्त्री, स्वाधीनता, रहस्य, दर्शन आदि-इत्यादि सब कुछ विद्यमान है। बशर्ते शाब्दिक अर्थ से आगे कोई पाठक जाये। छायावाद के एक बड़े कवि; जिनको प्रकृति की भिन्न-भिन्न उपाधियां दे दी गई हैं अर्थात् सुमित्रानंदन पंत जी लिखते हैं-

''छोड़ द्रुमों की मृदुछाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?''

और महादेवी वर्मा जैसे इसी कविता का प्रत्याख्यान रचती हैं। प्रकृति का मानवीयकरण करते हुए स्त्री रूप में अद्भुत ढंग से उकेरती हैं। पूरी प्रकृति ही स्त्री बन गई है-

''रूपसि तेरा घन-केश पाश!
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश!
नभ गंगा की रजत धार में,
धो आई क्या इन्हें रात?
कंपित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात!

झुक सस्मित शीतल चुंबन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा देना बहला देना,
यह तेरा शिशु जग है उदास!''[12]

महादेवी वर्मा का समय नवजागरण का समय था और नवजागरण का प्रभाव-परोक्ष रूप में महादेवी जी पर भी पड़ा था। स्त्री चेतना की जो लहर नवजागरण से उठी थी वह महादेवी जी के यहां भी दिखाई पड़ती है। महादेवी जी तो दो कदम और आगे बढ़कर नवजागरण कालीन स्त्री विषयक चिंतन पर भी प्रश्न चिन्ह लगा देती हैं। इस चिंतन के संदभ में प्रो. सुधा सिंह लिखती हैं-

''महादेवी को आपत्ति इस बात पर है कि नवजागरण में जिस स्त्री, दलित, शोषित आदि के उत्थान का मयार खड़ा किया गया वह वास्तविक संवेदनाओं से युक्त नहीं था .... नवजागरण और उसके बाद के दौर में अगर स्त्री की सामाजिक अवस्था की गंभीर विवेचन होती है तो शायद महादेवी को श्रृंखला की कड़ियां लिखने की जरूरत नहीं पड़ती।''[13]

कहने का तात्पर्य यह कि जो कवयित्री अपने समय

के ज्वलंत प्रश्नों से जूझ रही है। उसका संपूर्ण काव्य रहस्यवादी और लोकोत्तर कैसे हो सकता है। कुछ कविताएं में यद्यपि यह भाव दिखायी देता है। वस्तुतः महादेवी वर्मा का काव्य लोक हित के अधीन है। उसमें छायावाद की बहुत सी प्रवृत्तियों की भांति यथा- कल्पना, लाक्षणिकता, व्यक्ति वैचित्र्य, वक्रता, स्वाधीनता, संस्कृतनिष्ठ भाषा और आदि के साथ रहस्यवाद भी है। पर उनका संपूर्ण काव्य न तो रहस्यवादी है और न ही पलायनावदी और न ही लोकोत्तर।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा (उ.प्र.), पृ. 444-470
2. वही, पृ. 469
3. हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 249
4. कविता कोश से उधृत
5. निराला : राम की शक्ति-पूजा, कर्मेदु शिशिर, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 13
6. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृ. 110
7. महादेवी साहित्य - 1, 1969 निमला जैन (सं.) वाणी प्रकाशन, संध्यगीत, पृ. 277
8. कविता कोश से उद्‌धृत
9. कविता कोश से उद्‌धृत
10. कविता कोश से उद्‌धृत
11. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 253
12. कविता कोश से उद्‌धृत
13. स्त्री संदर्भ में महादेवी, सुधा सिंह, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 24-25

लक्ष्मण
शोधार्थी
एस. एस. जे. परिसर, अल्मोड़ा,
उत्तराखंड-263601

जल विज्ञान में तालाबों का महत्व : जबलपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में

–पूजा दाहिया
–डॉ. अमित कुमार रवि

कूट शब्द : पर्यावरण संरक्षण, तालाब, गोंडवाना साम्राज्य, रानी दुर्गावती, ताल एवं तलैया

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में गोंडवाना साम्राज्य का अद्वितीय स्थान रहा है। रामनगर शिलालेख के अनुसार यहाँ पर 52 राजाओं ने राज्य किया है। इनकी प्रारंभिक सत्ता स्वतंत्र थी किंतु परिस्थिति वश पहले मुगल तत्पश्चात मराठा सत्ता से संघर्षरत रहे। शासकों द्वारा साम्राज्य के अस्तित्व की रक्षा के लिए युद्ध, स्थापत्य एवं कला संस्कृति का उपयोग किया गया। इसके तहत दुर्ग महल मंदिर और तालाबों का निर्माण हुआ जो आज भी गोंडवाना के समृद्ध इतिहास की गवाही देते हैं। वीरांगना रानी दुर्गावती की राजधानी रहा जबलपुर गोंड राजवंश के स्थापत्य का अनुपम उदाहरण है। इसे 52 तालाब एवं 40 तलैय्यों की भूमि कहा जाता है। तालाब निर्माण का एक उद्देश्य पहाड़ी क्षेत्रों से रिसने वाले पानी को सहेज कर जल संकट को दूर करना साथ ही भोजन उपलब्धता हेतु मछली पालन का विकल्प तैयार करना था। प्रस्तुत शोध पत्र में क्षेत्रीय इतिहास को ध्यान में रखकर जल विज्ञानं की महत्ता एवं स्थापत्य कला को सामने लाने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना : जल ही जीवन का आधार है और मध्यप्रदेश की भूमि हमेशा से ही जल संस्कृति को सहेजने वाली रही है। भारतीय सनातन परम्परा के अनुरूप यहाँ निवासियों ने नदियों, तालाबों, कुओं, चौपडों आदि को महज जल का स्त्रोत नहीं माना बल्कि उनके साथ आत्मिक आध्यात्मिक और धार्मिक भाव की स्थापना की इसीलिए नदियों को माँ तुल्य माना गया है।[1] जल स्त्रोतों के रूप में तालाब का विशिष्ट स्थान है। तालाब पर्यावरण सहेजने का एक अभिन्न अंग है। यह जल संरक्षण के साथ-साथ जैव विविधता संरक्षण और पर्यावरण संतुलन का आधार है। मध्यप्रदेश में जल संरक्षण के प्रतीक के रूप में वृहत स्तर पर मिले चंदेल, बुन्देल एवं गोंडों के द्वारा मिले हुए तालाब है। यह न केवल तकनीक में जल सुरक्षा को सुनिश्चित करती है वरन तकनीकी विकास की दृष्टि से भी आश्चर्यजनक माना जा सकता है। अतीत में यहाँ पर राज्य करने वाले तमाम तरह के राजाओं ने स्वयं के स्तर पर जल संरक्षण की विद्या को समझकर इसके लिए कार्य किये। इसी कड़ी में जबलपुर की बात की जाये तो यहाँ विभिन्न तालाब मिले हैं। ''गोंड समाज का तालाबों से गहरा सम्बन्ध है, महाकौशल में गोंड का यह गुणगान जगह-जगह तालाबों के रूप में बिखरा है।''[2]

जलाशय वावडी व अन्य स्थापत्य

गोंड काल में बने अन्य स्थापत्य स्मारक प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित हो सकते हैं। इन्हें जल संरक्षण के लिए बनवाया गया जो तत्काल समाज की आवश्यकता और दूरदृष्टि को भी प्रदर्शित करते हैं। ऐसा माना जाता है कि रानी माता दुर्गावती ने जल संरक्षण की अवधारणा पर करीब 52 ताल तलैयों का निर्माण करवाया था। नौ परिवहन की सुविधा के बिना भी गोंड राजाओं की छत्रछाया में अनेक व्यक्तियों ने कृषि व्यवसाय को अपनाया इसमें तालाबों का भी योगदान था।[3] इन तालाबों का मूल उद्देश्य जल संरक्षण की सुविधा को जल संरक्षण को प्रोत्साहन देना तथा शहर में पानी की समस्या से निजात पाना था।[4] चूँकि गोंडवाना का विस्तार पहाड़ी क्षेत्रों में हुआ था और पहाड़ी क्षेत्र में पानी की उपलब्धता इतनी आसानी से पूरी नहीं की जा सकती थी इसीलिए मदन महल की पहाड़ी के चारों तरफ छोटे-छोटे तालाबों का निर्माण करवाया गया।[5] नगर निगम विकास योजना 2021 के मुताबिक 52 तालाब हुआ करते थे इनके नाम इस प्रकार है संग्रामसागर तालाब, रानीताल, फूटाताल, हाथीताल, चेरिताल, हनुमानताल, सूपाताल, आधारताल, भंवरताल, कोलाताल, गुलौआताल, गंगासागर, देवताल, ठाकुरताल, बघातालाब, बसा ताल, बाल सागर, हिनौतिताल, सगड़ाताल, चौंकीताल, सूखाताल, महाराज सागर, कूदनताल अमखेराताल, बाबाताल, तिरहुतियाताल, गुड़हाताल, सूरजताल, अवस्थीताल, माढ़ोंताल, साईताल, नौआताल, खंभताल, गणेशताल, कटराताल, बनवाराताल और इमरती ताल, माढ़ोंताल। प्रमुख तलैया-ककरैया,

भान, बेनीसिंह, श्रीनाथ, जूडी, अलफ खां, सेवाराम, कदम भूमि, मुंडचरहाई, सूरज, फूलहारी, जिंदल, मछरहाई, आदि है।[6] ''कर्नल स्लीमन ने रानी चेरी और मंत्री के द्वारा बनवाए तालाबों का जिक्र करते हुए लिखा है कि, रानी दुर्गावती ने रानीताल बनवाया और बांदी ने चेरी ताल फिर दीवान साहब चुप क्यों बैठते।''[7] भले ही जबलपुर आज तालाबों के कब्रिस्तान पर बसा हो परन्तु मध्यकाल में इनकी मत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता।

विज्ञानं व तकनीक

तालाब प्रकृति की अनुपम देन है। यह मनुष्यों, जीव-जंतुओं, पक्षियों सभी की आवश्यकताओं को पूरा करके उनके आश्रय स्थल के रूप में भी कार्य करते हैं। जल प्रबंधन करने, पहाड़ों की मिट्टी को सुरक्षित रखने और इकोसिस्टम बनाए रखने में भी उपयोगी होते हैं। तालाब दो तरह के बनाये जाते हैं जल संग्रहण तालाब और रिसन तालाब। जलभरण तालाब में पानी अधिक समय तक भरा रहता है। इनका इस्तेमाल सामान्य घरेलु कार्यों में किया जाता है। ऐसे तालाबों की मिट्टी चिकनी और अपारगम्य रहती है। इन तालाबों में पानी रिसकर भूमि में कम जाता है। मानव निर्मित तालाब आम तौर पर समतल क्षेत्रों में होता है। इसके लिए सबसे निचले हिस्से का चयन करके सीमा निर्धारित करके खुदाई शुरू की जाती है। खुदाई के दौरान निकली मिट्टी का प्रयोग चारों तरफ मेड बनाने के लिए किया जाता है। तालाब के आसपास की आर्द्रभूमि चारा उपजाऊ हेतु उपयुक्त होती है। जिससे पशुओं के आहार की व्यवस्था होती है। तालाब की उपयोगिता वर्षा की अनिश्चितता के कारण भी है। खरीफ फसल के बाद कृषि की निरंतरता को बनाये रखने के लिए पानी की आवश्यकता होती है। साथ ही तालाब में मछली पालन जैसे आर्थिक गतिविधियाँ भी संपन्न की जाती हैं।

जबलपुर शहर विन्ध और सतपुड़ा के बीच पहाड़ियों पर बसा है, इन पहाड़ियों का ढाल पूर्व से पश्चिम की ओर है। इन्हीं के हिसाब सी तालाबों की संरचना की गयी है। तालाबों का निर्माण पंचसार योजना के तहत किया गया है। जिसमें तालाब भूमिगत रूप में एक दूसरे से जुड़े रहते थे। जिसके कारण एक तालाब का पानी दूसरे तालाब के जल स्तर को बनाये रखने एवं उसे पोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। फलस्वरूप बरसात के दिनों में पानी अधिक होने पर क्षेत्र विशेष में न बाढ़ आती थी न सूखा पड़ता था। इसके साथ सामान्य दिनों में जल की आपूर्ति सुनिश्चितता बनी रहती थी। गर्म दिनों में तालाब आसपास के क्षेत्रों को ठंडा रखकर आर्द्रता संतुलित करके अपना योगदान देते हैं। तालाब सौन्दर्य, शांति एवं अध्यात्म के प्रतीक भी हं। वर्तमान में यह तालाब विलुप्त होने की कगार पर है, कुछ विलुप्त भी हो चुके हैं। तालाब की विलुप्ति से कई सारी प्रजातियाँ नष्ट हो जाती हैं। समय पर सफाई न होने के कारण पूजन सामग्री, जवारे और मूर्तियों के विसर्जन से पानी का संचार अवरुद्ध हो जाता है, गंदगी होती है जो कई बीमारियों की जड़ है। जल में आर्सेनिक पारा कैडमियम जैसे विषाक्त तत्वों की अधिकता के कारण जल प्रदूषण बढ़ता है। अतः इनकी स्वच्छता हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है।

गोंड न सिर्फ खुद तालाब बनाते-बनवाते थे, बल्कि तालाब बनाने वाले लोगों का भी खूब सम्मान करते थे। गोंड राजाओं द्वारा उत्तर भारत से कोहली समाज के लोगों को महाराष्ट्र के भंडारा में लाकर बसाया इसीलिए यहाँ बहुत अच्छे तालाब मिलते हैं। जबलपुर शहर के कुछ तालाब वर्तमान में भी उपलब्ध हैं।[8] जो निम्नलिखित हैं:-

संग्राम सागर तालाब जबलपुर में बाजनामठ मंदिर के समीप स्थित एक विशाल तालाब है। इसका निर्माण संग्राम शाह ने सिंचाई के प्रयोजन से करवाया था। इस तालाब का क्षेत्रफल 15.855 हेक्टेयर है।[9] इस तालाब की संरचना प्राचीन वास्तु शास्त्र के अनुरूप ही हुई है। इस तालाब की संरचना प्राचीन वास्तु शास्त्र के अनुरूप ही हुई है। यह तालाब तीन ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। मठ तांत्रिक क्रिया हेतु भी प्रसिद्ध है मान्यतानुसार दर्शन करने से पूर्व स्नान करने के उद्देश्य से भी करवाया रहा होगा। इस तालाब के बीचों बीच में एक ऐतिहासिक महल भी है, जो आम्हन खास महल भी कहा जाता है।[10] यह तालाब उपेक्षा के कारण गंदगी से सटा पड़ा है। हालाँकि इसके अतिरिक्त तालाब की सुंदरता बढ़ाने हेतु वृक्षारोपण, साफ सफाई जैसे उपाय किये गये हैं। मंदिर के आस-पास चारों तरफ ग्रिल भी लगाई गई है, जिससे सौन्दर्य बढ़ता है।

रानी तालाब जबलपुर शहर का सबसे वृहत तालाब था जो जबलपुर के उत्तरी भाग में स्थित है। इसका निर्माण रानी दुर्गावती ने स्वयं के नाम 15वीं से 16वीं शताब्दी के मध्य करवाया था। तब इसका आकार 83.3 हेक्टेयर के आसपास था जो अब घटकर लगभग 10.25 हेक्टेयर के आसपास बचा है।[11]

आधार तालाब रानी दुर्गावती ने प्रधानमंत्री आधारसिंह के नाम पर आधार तालाब का निर्माण करवाया था। यह राष्ट्रीय राजमार्ग नागपुर से इलाहाबाद रोड पर स्थित है। तालाब के निकट गोंडवाना काल के मंदिर निर्मित है। साल भर पानी से लबालब रहने वाले इस तालाब का क्षेत्रफल 16.18 हेक्टेयर एवं गहराई 5 मीटर है।[12]

चेरी तालाब रानी की दासी चेरी के नाम पर ही चेरी ताल नाम रखा गया। कथाओं के अनुसार चेरी के निवेदन पर की रानीताल में काम कर रहे व्यक्तियों को प्रतिदिन शाम को अपने दिन भर का कार्य समाप्त करने के बाद एक भार ले जाने दिया जाये।[13]

देव तालाब मदन महल की पहाड़ियों के तलहटी पर गोंडकालीन यह तालाब स्थित है। तालाब 1.534 हेक्टेयर में फैला है एवं इसकी गहराई 7 मीटर है। इसमें एक गर्मपानी का कुआँ भी है।[14] मान्यता है कि यहां पर धार्मिक तथा सामाजिक क्रियाकलाप संपन्न किए जाते थे। इस तालाब के पानी का उपयोग पेट दर्द और चरम रोग ठीक करने वाली दवा रूप में होता है। तालाब के तट पर भगवान शिव को समर्पित 12 ज्योतिर्लिंग की स्थापना स्वरूप में 12 मंदिर स्थापित किये गये हैं। इन मंदिरों में नंदी सहित शिवलिंग विराजमान है। मंदिरों में प्रवेश पूर्व शुद्धिकरण हेतु तालाब की उपयोगिता रही होगी। मान्यता है कि दीपावली के दिन महिलाएँ इस तालाब की परिक्रमा करती हैं। गोंड काल में यह स्थान विष्णु ताल के नाम से प्रसिद्ध था। 1563 में गोस्वामी विट्ठलदास गढ़ा आकर इसी तालाब के किनारे ठहरे थे। उनके अनुयायियों द्वारा इस स्थान को बैठक जी नाम दिया गया। तब से यह देव का तालाब अर्थात् देवताल कहलाने लगा।

गंगा सागर गंगा सागर झील नागपुर रोड पर जिम्प्लेक्स फैक्ट्री के समीप स्थित है। इस तालाब का क्षेत्रफल 21. 666 हेक्टेयर था जो अब सिकुड़कर 18.636 हेक्टेयर रह गया है, साथ ही तालाब की गहराई 5 मीटर है।[15] इस तालाब का निर्माण गोंड शासक हिरदेशाह द्वारा कृषि कार्य जलापूर्ति तथा धार्मिक कार्य में लगने वाले जल की आपूर्ति के रूप में करवाया गया था।[16] यह शहर का एक मात्र तालाब है जिसकी पूजा होती है। लेकिन उपेक्षा के कारण यह गंदगी से पटा पड़ा है।

गोकुलपुर तालाब गवर्नमेंट इंजीनिरिंग कॉलेज के समीप स्थित इस तालाब का उपनाम जबलपुर तालाब भी है। इस का क्षेत्रफल 122.492 हेक्टेयर तथा गहराई लगभग 7 मीटर है। प्राचीन समय में यह तालाब एक प्रागैतिहासिक झील का हिस्सा है।[17]

हनुमान तालाब शहर के मध्य आयताकार शैली में बना हनुमान ताल, जबलपुर नगर की पहचान रहा है। इसका निर्माण 1794 में भोंसलों के शासनकाल में कराया गया था।[18] वर्तमान में इस तालाब का क्षेत्रफल 6.33 हेक्टेयर शेष है।[19] हनुमानताल का निर्माण वैज्ञानिक विधि द्वारा पहाड़ियों का जल संरक्षित करने के उद्देश्य से निर्मित किया गया था। संरचनानुसार पानी ओवर फ्लो होकर पहले गोपाल बाग की बावड़ी में आता तत्पश्चात बावड़ी के ओवर फ्लो होने पर पानी चेरीताल में आता था। लेकिन लगभग 60 साल से शहर की घनी बसाहट के कारण पहाड़ी का पानी इस तालाब तक नहीं पहुँच पा रहा है। इसके संरक्षण हेतु 1990 में जबलपुर विकास प्राधिकरण ने कार्य करना शुरू किया था और तालाब के चारों ओर सीमांकन कर दिया गया है।

गुलौआ तालाब गढ़ा में रेलवे ब्रिज के पास चावानपुर गाँव के समीप यह स्थित है। इस तालाब का क्षेत्रफल 5.3 हेक्टेयर था जो वर्तमान में 2.898 हेक्टेयर हो गया है।[20] तालाब के निकट ही बहुत प्राचीन मंदिर है। जिसमें गौतम की मढिया, हनुमान मंदिर, समेत अनेक देवालय है। तालाब के दोनों तरफ बहुत ज्यादा अतिक्रमण होने के कारण 6 वर्ष से इसका रख-रखाव जबलपुर विकास प्राधिकरण के पास है।

बाल सागर झील तालाब जबलपुर शहर में धनवंतरी नगर के समीप पुरवा ग्राम में स्थित इस ताल का निर्माण 1280 में 600 एकड़ में करवाया गया था। जो अब घटकर 23.057 हेक्टेयर रह गया है।[21] वर्षा जल संग्रहण के उद्देश्य से बना यह तालाब अपनी वृहदता के कारण इसकी तुलना छोटे समुद्र से भी की जाती है। इसलिए इसका नाम बाल सागर है। पंचसार स्वरूप में पहले इसका पानी सगड़ा तालाब में फिर संग्राम सागर तालाब से अतिशेष बहकर बाल सागर में झील जाता है। मान्यतानुसार पहले यहाँ पसाई धान की खेती होती थी, लेकिन अब सिर्फ सिंघाड़ा पैदा होता है। वर्तमान में प्रशासन की उपेक्षा के कारण इसकी सुन्दरता नदारद है।

इमारती तालाब ग्राम पुरवा में शाही नाका रानी दुर्गावती वार्ड में स्थित है। इस तालाब का क्षेत्रफल 1. 793 हेक्टेयर है तथा गहराई 5 मीटर है। यह तालाब भी पंचसार योजना के तहत निर्मित किया गया था। देवताल, सूपाताल और बघाताल से पानी ओवरफ्लो होकर इस तालाब में आता था। तालाब के तीन तरफ घनी बसाहट है। तालाब से जुडी ऐतिहासिकता भी दिलचस्प है। इस तालाब को रानी माता दुर्गावती ने अपने पुत्र वीर नारायण को एक युद्ध में सकुशल बचने वाली दाई माँ इमरती बाई की स्मृति में बनवाया था।[22] सन 1544 में मालवा के सुल्तान से दलपत शाह का युद्ध हुआ। जिसमें रानी माता ने भी युद्ध लड़ा युद्ध के दौरान रानी का पुत्र वीर नारायण केवल डेढ़ साल का था जिसकी देखभाल दाई माँ इमारती देवी करती और इन्होंने युवराज वीर नारायण को युद्ध क्षेत्र से सफलता पूर्वक बाहर निकला था। रानी माता ने अपनी दासी की सूझबूझ से प्रसन्न होकर ईनाम स्वरुप उनके नाम पर इमरती तालाब का नाम रखा गया था।

माढ़ोंताल जबलपुर दमोहनाका के ग्राम माढ़ोंताल के तहत स्थित है। इस तालाब का निर्माण रानी दुर्गावती ने मालवा के सुल्तान बाज बहादुर पर अपनी निर्णायक जीत के बाद 1560 के बाद किया था। इस तालाब का क्षेत्रफल 16.998 हेक्टेयर में फैला है एवं इसकी गहराई 7 मीटर है। इस तालाब का उपयोग सिंघाड़ा की खेती हेतु होता है एवं इस तालाब का पानी निस्तार व सिंचाई में भी होता है।[23]

सूरज ताल जबलपुर नागपुर राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित यह तालाब 5.504 हेक्टेयर में फैला हुआ है। यह तालाब ही पंचसार योजना का हिस्सा था। इस तालाब का निर्माण गोंड शासक चन्द्र शाह के छोटे पुत्र मधुकर शाह ने 1590 ई. में कराया था। यह तालाब भी मदन महल की पहाड़ियों से रिसकर आने वाले पानी से लबालब भर जाता था।[24]

गुल्लु की तलैया जबलपुर के ग्राम पुरवा के तहत आने वाली इस तलैया का क्षेत्रफल 0.648 हेक्टेयर है। यह तालाब मेडिकल कॉलेज के अधिपत्य में आता है।

अवस्थी तालाब ग्राम पुरवा के तहत आने वाले तालाब का क्षेत्रफल 0.866 हेक्टेयर है। यह तालाब मेडिकल कॉलेज के पीछे है। प्राचीन मान्यतानुसार इसका उपयोग कुष्ठ रोग के मरीजों को ठीक करने में किया जाता था। तालाब के किनारे स्थित दो प्राचीन मंदिर भी हैं। पंचसार योजना के तहत वर्षा जल बाल सागर से होकर अवस्थीताल में आता था। इससे ओवर फ्लो होने के बाद बाबा की तलैया मढफई तलैया से बकसेरा तालाब में जाता था।[25]

निष्कर्ष

गोंडवाना साम्राज्य की अद्भुत स्थापत्य कला सिर्फ मंदिरों तक सीमित नहीं थी अपितु यह जल संरक्षण के लिए भी उपयोगी थी। गोंडवाना मध्य भारत में जनजातीय समाज था। जिन्होंने पर्यावरण संरक्षण के साथ संस्कृति संरक्षण को भी महत्वपूर्ण माना। आज भी जबलपुर शहर में इसकी झलक देखने को मिलती है। इसी सिलसिले में अनुपम मिश्र ने लिखा है, ''सैकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैंकड़ों हजार बनती थी। पिछले दो सौ बरसों में नए किस्म की थोड़ी सी पढाई पढ़ गये समाज ने इस इकाई दहाई, सैकड़ा हजार को शून्य ही बना दिया।''[26]

संदर्भ

1. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ स्वराज संस्थान संचालनालय, संकृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2022, पृ 19
2. मिश्र अनुपम, आज भी खरे है तालाब, महेश वाणी प्रकाशन, संस्करण 2005, पृ 23
3. अर्ली योरोपियन ट्रेवलर्स इन दि नागपुर टेरिटरीज, संपादन गवर्नमेंट प्रेस नागपुर 1924, पृ 215
4. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ स्वराज संस्थान संचालनालय, संकृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2022
5. गुप्ता, एन. (2014)। मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में DRASTIC विधि का उपयोग करके भूजल भेद्यता मूल्यांकन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रीसेंट टेक्नोलॉजी एंड इंजीनियरिंग, 3(3), 36-43।
6. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ पृ 89
7. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ स्वराजसंस्थान संचालनालय, संकृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2022, पृ 88
8. मिश्र अनुपम, आज भी खरे है तालाब, महेश वाणी प्रकाशन, संस्करण 2005, पृ 23
9. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ स्वराजसंस्थान संचालनालय, संकृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2022, पृ 92
10. वही, पृ 92
11. वही, पृ 90
12. वही, पृ 91
13. श्रीवास्तव, प्रेमनारायण, जबलपुर गजेटियर पूर्वोक्त, पृ 78
14. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ स्वराज संस्थान संचालनालय, संकृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2022, पृ 94
15. वही, पृ 95
16. श्रीवास्तव, प्रेमनारायण, जबलपुर गजेटियर पूर्वोक्त, पृ 84
17. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ स्वराज संस्थान संचालनालय, संकृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2022, पृ 95
18. सक्सेना, पूजा, गोंड राजवंशों की स्थापत्य कला, धर्मपाल शोधपीठ स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2023, पृ 102
19. पटैरिया, शिव अनुराग, पृ 91
20. वही, पृ 93
21. वही, पृ 92
22. वही, पृ 94
23. पटैरिया, शिव अनुराग, जल संस्कृति मध्य प्रदेश की गौरवशाली जल परम्पराएँ स्वराज संस्थान संचालनालय, संकृति विभाग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2022, पृ 95
24. वही, पृ 98
25. वही, पृ 99
26. मिश्र अनुपम, आज भी खरे है तालाब, महेश वाणी प्रकाशन, संस्करण 2005, पृ 4

पूजा दाहिया
शोध छात्रा

डॉ. अमित कुमार रवि
सहायक प्राध्यापक
इतिहास विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, अनूपपुर

स्वदेश दीपक के नाटकों में अभिव्यक्त : व्यक्ति और समाज का द्वंद्व

–हिमांशु

–सिद्धार्थ शंकर राय

हिंदी नाट्य साहित्य का आरम्भ आधुनिक काल से होता है। हिंदी से पहले संस्कृत और प्राकृत में समृद्ध नाट्य-परंपरा थी, लेकिन हिंदी नाटकों का विकास आधुनिक युग में ही संभव हो सका। मध्यकाल में रामलीला, नौटंकी आदि का उदय होने से जन नाटकों का प्रचलन बढ़ा। ये लोक नाटक मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। इस दौर के सभी नाटकों पर संस्कृत नाट्य साहित्य की छाप नजर आती है। इनकी विषयवस्तु धार्मिक व पौराणिक है। इनके संवाद पद्यात्मक हैं। शृंगार इनकी मूल प्रवृत्ति है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है, ''विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ। भारतेंदु के पहले 'नाटक' के नाम से जो दो चार ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखे गए थे उनमें महाराज विश्वनाथसिंह के 'आनंद रघुनंदन नाटक' को छोड़ और किसी में नाटकत्व न था। हरिश्चंद्र ने सबसे पहले 'विद्यासुंदर नाटक' का बँगला से सुंदर हिंदी में अनुवाद करके संवत् 1925 में प्रकाशित किया। उसके पहले वे 'प्रवास नाटक' लिख रहे थे पर वह पूरा न हुआ। उन्होंने आगे चलकर भी अधिकतर नाटक ही लिखे। पं. प्रतापनारायण और बदरीनारायण चौधरी ने भी उन्हीं का अनुसरण किया।''[1]

सबसे पहले भारतेन्दुजी ने हिंदी नाटकों के लिए सृजनशील भाषा की तैयारी की। उनके पास संस्कृत नाटकों तथा लोकनाटकों की प्रसिद्ध परंपरा मौजूद थी। ऐसे में उन्होंने दोनों का समावेश करके खड़ी बोली हिंदी में नाटकों को लिखने का प्रयास किया। हिंदी नाटकों की शुरुआत में केवल संस्कृत के नाटकों की झलक मिलती हो ऐसा नहीं कहा जा सकता, बल्कि तत्कालीन अंग्रेजी नाटकों के साथ-साथ पारसी थियेटर का भी प्रभाव रहा है। नाट्यारंभ की लम्बी परंपरा के बावजूद हिंदी नाटकों की शुरुआत का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को ही जाता है। परंतु जब हम 1990 के दशक के बाद की बात करते हैं तो हमारे सामने भाषा का विकसित नाट्य इतिहास मिलता है। प्रसादोत्तर युग और स्वातंत्र्योत्तर काल में मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीशचन्द्र माथुर, भीष्म साहनी ने नाट्य शिल्प में बड़ा बदलाव किया और इसका भरपूर लाभ 1990 के बाद के नाटककारों को मिला, जिसका परिणाम भाषा के क्षेत्र में एक नई ऊर्जा देखने को मिली।

नब्बे के दशक को यदि हम वैश्विक स्तर पर देखें तो यह अनेक सकारात्मक-नकारात्मक परिवर्तनों का वाहक बना था। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। देवेन्द्र चौबे नब्बे के दशक के बारे में लिखते हैं, ''1990 के बाद परिवर्तन की जो प्रक्रिया दिखलाई पड़ती है उसकी एक अंतर्धारा पहले से ही चली आ रही थी जिसकी व्यापक परिणति साहित्य और विचारधारा की दुनिया में 90 के बाद दिखलाई पड़ती है। अगर हम ध्यान दें तो पता चलता है कि इन आंदोलनों और संघर्षों ने भारतीय समाज और राजनीति के क्षेत्र में कुछ ऐसे लोगों को जन्म दिया, जिन्होंने संरचनात्मक स्तर पर बदलाव लाने की प्रक्रिया शुरू की। चाहे वह दलित प्रसंग में कांशीराम हो या नक्सलवाद के संदर्भ में चारू मजूमदार अथवा पिछड़े वर्ग के सामाजिक परिवर्तन के एक मुख्य कारक के रूप में कर्पूरी ठाकुर। इस तरह के कई और लोग अथवा नायक हैं जिन्होंने भारतीय समाज, राजनीति, विचार और उसकी संरचना को बुनियादी स्तर पर बदलने की कोशिश की। इसी का परिणाम था कि 1990 तक आते-आते एक बड़े बदलाव के संकेत दिखलाई पड़ने लगे। मंडल कमीशन को लेकर हुआ आंदोलन, बाबरी मस्जिद का ध्वंस होना और आर्थिक उदारीकरण तथा भूमंडलीकरण की प्रक्रियाएं आदि इन बदलावों के प्रत्यक्ष कारक बने।''[2]

1990 ई. के बाद परिवेश और परिस्थितियाँ तेजी से बदलीं- राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक पारिवारिक और सांस्कृतिक सरोकार तेजी से बदले। व्यक्ति आदर्शों की स्वप्निल दुनिया से निर्मम सच्चाई के कठोर धरातल पर उतरा

और यथार्थ से उसका परिचय हुआ। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण और अर्थ-प्रधानता तथा औद्योगिक युग की यांत्रिक जिंदगी, जीवन की भागदौड़, आपाधापी आदि से गुजरने वाला व्यक्ति आत्म-केन्द्रित बन गया और इसी का परिणाम है- पारिवारिक विघटन और आपसी कलह। व्यक्ति संवेदनहीन हो गया। ऐसे माहौल में नाटककारों को कुछ नया करने अर्थात् ऐसी कथावस्तु जिसका रचाव अभी तक नाटकों में न हुआ हो पर वह व्यक्ति और समाज के मध्य का मुख्य विषय हो, ऐसे विषयों को नाटककारों ने नाटक का विषय बनाया। सन् 1990 ई. के दशक की जब हम बात करते हैं तब पाते हैं सन् 1990 के बाद आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्थितियों में बहुत तीव्र बदलाव आया, क्योंकि यह वो समय है जब हमारा देश राजनीतिक उथल-पुथल से गुजर रहा था और इसी समय भारत में वित्तीय सुधारों का दौर चला और आर्थिक उदारीकण की नीति आयी, जिसके तहत विभिन्न देशों की कम्पनियों को मुक्त व्यापार की इजाजत मिली। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने जोर पकड़ा जिसके तहत संसार एक वैश्विक गाँव बन गया।

नब्बे का दशक अपने आप में महत्वपूर्ण इसलिए भी है, कि इस काल खण्ड में ही उदारीकरण का दौर शुरू हुआ था। अचानक से, नई आर्थिक नीतियाँ आने लगी थी, उससे समाज और व्यक्ति में एक बहुत बड़ा बदलाव आया, जैसे कि उदारीकरण की नीति आने से जो हमारे परंपरागत क्षेत्र थे जैसे कि कृषि, प्रशासनिक सेवा इत्यादि के बीच एक नया क्षेत्र पनपा जो कि सेवा का था, जैसे- सर्विस-क्लास, बैंकर, एम.एन.सी. और बी.पी.ओ. जो सिर्फ सेवा प्रदान करते हैं, सेवा-प्रभाग एक नया क्षेत्र नब्बे के दशक में बना जो कि एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाने लगा। जो व्यवस्था कृषि आधारित थी अचानक कृषि की महत्ता कम होने लगी। दूसरी तरह के व्यवसाय व नीतियों में वृद्धि हुई, कृषि व्यवस्था का धीरे-धीरे ह्रास होना शुरू हुआ। साहित्य के क्षेत्र में भी नई चीज आयी। नब्बे के दशक से अचानक समाज में मूल्य और व्यक्ति की जो अर्थवत्ता थी वह अब परिवर्तित होने लगी। लोग उसे अच्छाई या खराबी में नहीं देखते हैं, जैसा कि साठ के दशक के नाटकों में देखने को मिलता है या तो पात्र अच्छा है या खराब। लेकिन नब्बे के दशक के बाद के नाटक व कहानियों में उसमें कोई पात्र प्योर (शुद्ध) नहीं है सभी (ग्रे -शेडली) हैं। सन् 1990 से आज तक के नाटकों का युगीन यथार्थ, सबसे त्रासदीपरक, वैचारिक द्वन्द्वों से घिरा विभिन्न दिशाओं में अभिव्यक्ति पाता है और जिसे हिंदी नाटकों में बखूबी प्रस्तुत किया गया है। नाटक की विशेषता कथ्य के साथ उसकी नाट्य-भाषा होती है। युगीन परिप्रेक्ष्य में हिंदी नाटकों की भाषा में प्रयोग, परिष्कार और बदलाव को देखा जा सकता है। सुदृढ़ कथानक के स्थान पर केवल क्रिया-व्यापारों और छोटे-छोटे सारगर्भित संवादों के माध्यम से समसामयिक परिवेश तथा परिस्थितियों और युगीन संवेदनाओं एवं समस्याओं को उभारना है और उसके कथ्य से बहुआयामी ध्वनियाँ उत्पन्न करना नये नाटकों की पहचान बन गई है। इन प्रवृत्तियों के प्रभावों के आलोक में स्वदेश दीपक का नाम उल्लेखनीय है।

स्वदेश दीपक एक भारतीय नाटककार, उपन्यासकार और लघु-कथा लेखक हैं। स्वदेश दीपक 1960 के दशक के मध्य से हिंदी साहित्यिक परिदृश्य पर सक्रिय हैं और उन्हें 'कोर्ट मार्शल' (नाटक) के लिए जाना जाता है, जो एक पथ-प्रदर्शक नाटक है जिसे उन्होंने 1991 में प्रकाशित किया था। स्वदेश दीपक प्रगतिशील चेतना के नाटककार है, उनकी यही चेतना उनके नाटकों में दिखाई देती है। उनके प्रमुख नाटक है-'कोर्ट मार्शल', 'जलता हुआ रथ', 'नाटक बाल भगवान', 'सबसे उदास कविता'। इन नाटकों का जब वैयक्तिक और सामाजिक परिवेश पर हम अध्ययन करते हैं तो हमारे समाज की जो एक संकल्पना है, जिसके अनुसार व्यक्ति अपने कार्यों को करता है या नहीं करता ऐसी स्थितियों के ही कारण कई बार व्यक्ति व समाज में सामंजस्य दिखता है। तो जब यह सामंजस्य नहीं हो पाता है, तब द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसा जरूरी नहीं है कि समाज की सारी ही व्यवस्थाएँ बहुत अच्छी हैं। हर वस्तु की तरह इसमें भी सकारात्मक और कुछ नकारात्मक बिन्दु हैं। जाति व्यवस्था जो कि समाज के द्वारा ही बनाई गई है, इसका किस तरह एक व्यक्ति के साथ-साथ स्वयं समाज पर बुरा असर पड़ता है। इसको 'कोर्ट मार्शल' में स्वदेश दीपक ने संवादों के माध्यम से समझाया है। वर्ग एवं जाति भेद के रोग से ग्रस्त देश की फौज भी इस रोग से मुक्त नहीं है। जाति व्यवस्था समाज का ही एक अंग है और जब जवान रामचंदर समाज की इस व्यवस्था को न मानते हुए उसका विरोध करता है तब वही उच्च वर्ग का दंभ भरने वाले मिस्टर कपूर और वर्मा, रामचंदर के साथ अनैतिक व्यवहार करते हैं। जिससे रामचंदर इतना ज्यादा द्वन्द्वग्रस्त हो जाता है कि वह मिस्टर खन्ना की हत्या व मिस्टर कपूर को गोली मारकर घायल कर देता है। वह खुद एक जवान से मुजरिम बन जाता है। ऐसे ही समाज व व्यक्ति के स्तर के और द्वन्द्व अन्य सभी पात्रों के अंतर्मन में चलते रहते हैं और सभी पात्र कहीं न कहीं उससे जूझते दिखाई पड़ते हैं।

स्वदेश दीपक पर वेबसाइट 'द वायर' लिखती है, ''1980 के अंतिम वर्षों में स्वदेश के नाटकों ने हिंदी के बेजान पड़ गए रंगमंच को एक नई ऊर्जा से आप्लावित किया। नाटक 'कोर्ट मार्शल' (1991) आधुनिक हिंदी रंगमंच की दृष्टि से स्वदेश की सफलतम रचना है, जिसके

हजारों प्रदर्शन देश-विदेश में हुए। सैन्य न्याय-व्यवस्था और भारतीय मानस में गहरे धंसे जातीय भेदभाव पर आधारित यह नाटक स्वदेश के ही नहीं बल्कि 20वीं शताब्दी के बेहतरीन नाटकों में भी एक है। इसके अलावा 'जलता हुआ रथ, काल कोठरी, सबसे उदास कविता' स्वदेश की प्रमुख नाट्यकृतियां हैं। नाट्य विधा और रंगमंच में अपने अमूल्य योगदान के लिए वर्ष 2004 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।''[3]

कोर्ट मार्शल की प्रशंसा करते हुए कई लेखक आचार्यों ने अपनी प्रतिक्रिया देते हुए इसके लिए अपनी लेखनी का इस्तेमाल बखूबी किया है। 'कोर्ट मार्शल' में आरोप के घेरे में न सिर्फ भारतीय सशस्त्र बलों की न्यायिक प्रक्रिया है, बल्कि पूरा समाज ही है, जहां भेदभाव हमें अपनी मानवता पर अमल करने से रोकता है। यहाँ समाज ही कठघरे में है। यह सिर्फ एक नाटक भर नहीं है, यह भारतीय समाज की जलती हुई सच्चाई है। इस बात को महसूस करते हुए कि भारतीय सेना अकेला सरकारी संस्थान है जहां जाति आधारित आरक्षण की व्यवस्था नहीं है, कोर्ट मार्शल प्राकृतिक और कानूनी न्याय के मेल को पेश करता है, जो न सिर्फ भारतीय सेना बल्कि पूरे भारतीय समाज की सच्चाई है और यह कि अपनी सभी योग्यताओं के बावजूद, एक व्यक्ति को प्रताड़ना झेलनी पड़ती है क्योंकि उसकी निचली-जाति का मूल न सिर्फ एक सामाजिक हिंसा है बल्कि इंसानियत के खिलाफ अपराध भी है। दैनिक समाचार पत्र 'दैनिक भास्कर' लिखता है, ''नाटक में दिखाया गया है कि किस प्रकार जातिवादी एवं सामंतवादी सोच निम्न वर्ग के प्रताड़ित लोगों का जीना मुहाल कर देती है। परिस्थितियां जब बर्दाश्त से बाहर होती हैं तो सिपाही रामचंदर अपने ही अधिकारी की गोली मारकर हत्या कर देता है। ऑफिसर की हत्या पर उस पर कोर्ट मार्शल होता है। अधिवक्ताओं और कर्नल आदि के बीच लंबी जिरह चलती है। लंबी कोशिशों के बाद जब हत्या का आरोपी सैनिक रामचंदर बोलता है तो पता लगता है कि अधिकारी द्वारा लगातार प्रताड़ित करने एवं अंत में उसकी मां के खिलाफ द्वेषभावना के चलते गलत शब्दों के प्रयोग से क्षुब्ध होकर सैनिक हत्या करने के लिए बाध्य हो जाता है। प्रोसीडिंग ऑफिसर एवं अन्य सलाहकार जज पूरा मामला सुनने के बाद रामचंदर के प्रति सहानुभूति रखते हैं, लेकिन फांसी की सजा भी सुना देते हैं। अंत में एक पार्टी के दौरान नाटक का समापन हो जाता है जो यह सवाल छोड़ जाता है कि जातिवाद एवं सामंतवादी सोच हर जगह आज भी विद्यमान है, जो समाज और व्यवस्था को खोखला कर रही हैं।''[4]

वहीं, अपने अगले नाटक 'जलता हुआ रथ' में नाटककार ने स्पष्टतः समाज के दो वर्गों में विभाजन दिखाया है। एक ओर शोषक शक्ति सम्पन्न हिंसक वर्ग है, जो अपने आन्तरिक दंभों के चलते और अधिक हिंसक बनता जा रहा है जिसके चलते उसके नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है तो वहीं दूसरी ओर रोटी के लिए तड़पता शोषित-पीड़ित वर्ग है, एक का द्वन्द्व सत्ता स्थापित करना है तो वहीं दूसरे वर्ग के द्वन्द्व का स्तर यह है कि वह रोटी तक ही अपनी सोच को विस्तृत कर पा रहा है। इसी नाटक का एक पात्र है काजमी। उसका कथन है, ''तीन नए नाटक हैं। पहला राजनीति के हाथों हथियार बन गया धर्म, दूसरा वोटों का दलाल धर्म। तीसरा नेताओं का नया हथियार धर्म। जब गलत लोग किसी अच्छी चीज का इस्तेमाल करें तो वह भी गलत हो जाती है यह शासक वर्ग का चरित्र है। साँप चाहे फूलों की बेल से लिपट जाए, रहेगा तो साँप ही। कभी नहीं बदलती उसकी फितरत और नतीजा। लोगों को गलती लख जाती है कि नेताओं के धर्मदूत आकाश से उतरेंगे, उनके दुखों को पोटली में बाँधेंगे और लौट जाएँगे वापस अपने स्वर्ग। धर्म, राजनीति, संस्कृति और साहित्य रंडी बन गए हैं इन पालीटीशेन्ज के हाथों में। इनका इस्तेमाल तिजारत बन गया है तिजारत। अपने घर में खून-खराबा, भुखमरी, बेरोजगारी और हाहाकार। विदेशों में हो रहे हैं भारत-उत्सव। फैस्टीवल ऑफ इंडिया। लोग इतने सुखी हैं कि बस दिन-रात नाचते हैं, गाते हैं और मस्त रहते हैं। बना दी है यह धरती शस्य श्यामला हमारे राजनीति के अवतारों ने।''[5] राजनीति पर इतनी मुखरता कम ही देखने को मिलती है। लेकिन अपने नाटकों में स्वदेश दीपक बार-बार ध्यान इस ओर ले जाते हैं। सत्ता और वर्ग-संघर्ष का द्वन्द्व यहाँ स्पष्ट दिखलाई देता है। अपने इसी वर्ग-संघर्ष के क्रम को आगे बढ़ाता है, उनका अगला महत्त्वपूर्ण नाटक 'सबसे उदास कविता' इसमें वर्ग-संघर्ष का खुलकर चित्रण किया गया है। लेखक की दृष्टि में आज के समय में औरत, मजदूर और निर्धनता सबसे उदास कविता है। इसी बात को उनका पात्र सुकांत कुछ इस प्रकार कहता है, ''(उठा। उसके पास थोड़ा रुका, लँगड़ाकर गया। कन्धे पर हाथ रखा) अब कहाँ है हमारे बस में तुम्हें रोकना। जाना होगा। तुम्हें जाना ही होगा। बन गयी हो अब तुम सबसे उदास कविता। औरत सबसे उदास कविता होती है। लगातार संघर्ष करता लेकिन लगातार पराजित होता मजदूर सबसे उदास कविता है। खेतों में शिशु को जन्म देती माँ सबसे उदास कविता है। निर्धनता सबसे उदास कविता है। बातूनी लड़की का अचानक चुप हो जाना सबसे उदास कविता है। मर रहे आदमी के बोले हुए अन्तिम वाक्य के जब अन्तिम शब्द याद रह जाते हैं, वह सबसे उदास कविता है।''[6] इनकी उदासी दूर करने के लिए वर्ग-संघर्ष का रास्ता ही एकमात्र विकल्प है। ये स्थितियाँ निदर्शित करती हैं कि किस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति कहीं न कहीं अपनी स्थितियों को लेकर द्वन्द्वग्रस्त है। यह द्वन्द्व एक

व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से, कभी समाज की मान्यताओं से, कभी अपने आप से है। नब्बे के बाद तेजी से बदलता हुआ समय और समाज मानव-जाति के सामने कई यक्ष-प्रश्नों के साथ खड़ा है। जिनसे रचनाकार सदैव जूझता रहता है। व्यक्ति और समाज के जटिल पक्षों को उजागर करने में स्वदेश दीपक की भूमिका उल्लेखनीय है।

संदर्भ

1. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1; सं.2012; पृ. 310
2. https://streekaal.com/2016/10/researcharticle-adwijwriting-pramodranjan/17.03.2024
3. https://thewirehindi.com/222709/remembering-the-writer-swadeshdeepak/17.03.2024
4. https://www.bhaskar.com/mp-sag-mat-latest-sagar-news-045003-1080242-nor.html/17.03.2024
5. दीपक, स्वदेश; जलता हुआ रथ; वाणी प्रकाशन, 21-।, दरियागंज रोड, दिल्ली; सं. 2020; पृ. 42
6. दीपक, स्वदेश; सब से उदास कविता; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज रोड, दिल्ली; सं.1998; पृ. 71

हिमांशु
शोधार्थी

सिद्धार्थ शंकर राय
सह-आचार्य, हिंदी विभाग
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय

हिंदी लोकनाट्य और रंगमंच

–शिवनाथ मिश्र

भारतीय कला का विकास राजमहलों और सामन्तों के आश्रय में हुआ। नाट्यकला और नाट्यसाहित्य उच्च वर्ग तथा पढ़े-लिखे समाज का नेतृत्व करता है। परन्तु यह कहना उचित नहीं होगा कि अशिक्षित समाज (निम्न वर्ग) कला से दूर रहा। लोक समाज में निम्न वर्ग का अपना कला का एक रूप था और वही उनके मनोरंजन का साधन भी था। राजमहलों और सामन्तों के आश्रय में पल्लवित एवं पुष्पित होने वाली कला साधारण जनसमाज से दूर रही; परन्तु उसके साथ ही दूसरी विधाए भी थीं जिनको समय-समय पर उच्च वर्ग की स्वीकृति मिल रही थी। वैदिक साहित्य में इसका उपयुक्त उल्लेख है। विद्वानों का मानना है कि ऋग्वेद उच्च वर्ग का साहित्य है तथा निम्न वर्ग के लिए अथर्ववेद का साहित्य है। पहले अथर्ववेद वैदिक साहित्य की परंपरा में नहीं था परन्तु बदलते समय के साथ वेद के रूप में मान्यता होने लगी। विद्वद्व वर्ग ने वेदत्रयी के स्थान पर वेद चतुष्टयी के रूप में स्वीकारा। ठीक उसी तरह लोकनाट्य उच्च वर्ग से पृथक लोक समाज में प्रतिष्ठित रहा। संस्कृत नाटक प्रायः उच्च वर्ग तथा राजमहलों के लोगों का मनोरंजन करने में बलवती रही। निम्न वर्ग अशिक्षित होने की वजह से संस्कृत नाट्य से प्रायः दूर रहा। आचार्य भरतमुनि को एक ऐसे वेद की आवश्यकता हुई जो सभी लोगों के लिए उपादेय हो। इसलिए आचार्य भरत ने सभी वेदों से कुछ न कुछ लेकर पंचम वेद के रूप में नाट्यशास्त्र की रचना की। यह पंचम वेद सभी लोकनाट्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

''नाट्यशास्त्र पांचवां वेद है। यही नहीं अपितु इस वेद में चारों वेदों के उत्कृष्ट और अनुकरणीय का समावेश भी है।''[1]

''भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को पंचम वेद के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए तीन बातों पर जोर दिया है। पहला शूद्र तथा वन जातियों के लिए ये वेद पाठ से वंचित थे, दूसरा सभी वेदों से रस का संग्रह किया। तीसरा यह वेद सभी प्रकार की कलाओं से संपन्न हो।''[2]

आचार्य भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र समाज के सभी वर्गों के लिए हितकर, धर्मप्रद होने के साथ बुद्धिविकास एवं लोकोपदेशक है। लोकनाट्यों का रंगस्थल संस्कृत नाटकों से अलग होता है क्योंकि इनके रंगमंच निर्माण के लिए लोक समाज के पास न तो उपयुक्त साधन होता है और न ही उपयुक्त नाट्यमण्डप उपलब्ध होते हैं। फिर भी यदि लोक समाज के पास उपयुक्त साधन और विशाल नाट्यमंडपों का निर्माण संभव भी हो, तो भी उन सभी के पास प्रत्येक दिन नाटक को देखने के लिए अवकाश नहीं है। जब कभी किसी प्रदेश से उनके गांव में चलती-फिरती नाट्य मण्डलियां आती हैं तो बड़े प्रेमपूर्वक गांव के लोग गांव के चौपाल में उनके रुकने की व्यवस्था कर देते हैं। उनकी भोजन की व्यवस्था भी गांव के सभी लोग करते हैं। इस पर देखा जाता है कि गांव के लोग नाट्य मंडलियों का देखभाल मेहमान की तरह करते हैं। समय मिलते ही किसी खुले मैदान या वृक्षों की छाया में दो चार तखत डालकर रंगमंच तैयार कर लिया जाता है। उसी रंगमंच पर सारे कलाकार एकत्रित हो जाते हैं। दर्शकों को बैठने के लिए सामान्य दरियां बिछा दी जाती हैं। नाट्य प्रदर्शन रात 8, 10 बजे से प्रारंभ होकर रात तक चलता रहता है। ऐसे रंगशाला के लिए न तो भरत के बनाए नाट्यमंडप की आवश्यकता है और न ही विशेष साधन की आवश्यकता है।

गांव में कई नाट्यमण्डलियां बन गई हैं जो व्यवसाय के रूप में दशहरा एवं मेला के अवसरों पर अपनी कला का प्रदर्शन करती हैं। लोकनाट्य इन नाट्य मण्डलियों की वजह से जीवंत है, जो एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को जोड़कर रखती है। लोकनाट्य एक तरफ धार्मिक भावना से जुड़े होते हैं, वहीं दूसरी तरफ जनसमाज के मनोरंजन का साधन होते हैं। इस प्रकार इन लोकनाट्यों से धर्म-प्रधान और रसास्वादन का जनसमाज आनंद लेता है। हिंदी क्षेत्र के ऐसे बहुत से लोकनाट्य हैं जो धर्म प्रधान एवं शुद्ध रसास्वादन का आनंद देते हैं। इन लोकनाट्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है - धर्म प्रधान एवं सामाजिक नाट्य।

डां. रामसागर त्रिपाठी का मानना है कि ''प्रथम प्रकार में रामलीला, कृष्णलीला, बंगाल का यात्रा नाट्य इत्यादि आते हैं और सामाजिक नाटकों में नौटंकी, नकल, स्वांग इत्यादि का समावेश होता है।''[3]

परन्तु धार्मिक लोकनाट्य में भी मनोरंजन का अंश होता है और लौकिकता की भी झलक दिखाई देता है। बहुत से सामाजिक लोकनाट्य ऐसे हैं जिनकी कथावस्तु का उपादान पौराणिक घटना से प्रेरित होता है। इस प्रकार दोनों विधाएं एक-दूसरे से जुड़ी हैं। सामान्य जनता अपने रूचि के अनुकूल मनोरंजन का साधन कहीं न कहीं से निकाल ही लेती है।

''किसी भी देश की सामान्य जनता अपने वातावरण तथा रूचि के अनुकूल विनोद का साधन स्वभावतः निकाल ही लेता है।''[4] हिंदी क्षेत्र के बहुत से ऐसे लोकनाट्य हैं जिनका सम्बद्ध मन्दिर से है या किसी फसल की कटाई-बुवाई इत्यादि से है। हिंदी क्षेत्र के धार्मिक लोकनाट्यों में रामलीला अत्यंत प्रसिद्ध नाट्य हैं। इसका आयोजन शरद ऋतु के प्रारंभ में गांवों तथा शहरों में होता है। रामलीला का समय आने के पूर्व ही गांव तथा शहर के लोग तैयारी शुरू कर देते हैं। सभी से चंदा वसूला जाने लगता है। इस धार्मिक नाट्य में गांव तथा शहर के सभी लोग चाहे किसी भी जाति के हों, बढ़-चढ़ कर सहयोग करते हैं। अभिनय करने वाले पात्रों के वस्त्र से लेकर आभूषण तक की व्यवस्था ये सभी लोग करते हैं। रामलीला रंगमंच के चारों तरफ दर्शकों के बैठने की व्यवस्था होती है और बीच में अभिनय के लिए अलग-अलग मंच बने होते हैं। उसी मंच में से कोई मंच अयोध्या का प्रतीक होता है, कोई लंका और कोई किष्किन्धा तथा चित्रकूट का मंच होता है। रामलीला का प्रस्तुतीकरण रामचरित मानस कथा के आधार पर प्रत्येक दिन होता है। अभिनय करने वाले पात्रों में अधिकांशः पुरुष पात्र ही होते हैं, जो स्त्री पात्र का भी अभिनय करते हैं। पात्रों की वेशभूषा विशेषताओं के आधार पर होता है। जैसे वानर सेना लाल वस्त्र धारण करते हैं और राक्षस गण काला कपड़ा।

इस धार्मिक लोकनाट्य की खास विशेषताएं हैं, रामलीला के अंतिम दिन जुलूस और झांकियां निकलती हैं। ऐतिहासिक वीर पुरुषों तथा पौराणिक कथानकों की झलकियाँ, झांकियों में देखने को मिलता है। यह धार्मिक लोकनाट्य इतना प्रसिद्ध है कि अंतिम दो दिन मेला भी लगता है। लोकप्रिय त्योहार दशहरा को मनाने की अन्य प्रथायें भी है। मैसूर में जुलूस एवं झांकी की जगह राजा की हाथी की सवारी निकलती है। यहाँ कुल्लू का दशहरा बड़े धूमधाम से मनाया जाता है, इनके प्रधान देवता के रूप में रघुनाथ जी मान्य है। कुल्लू के मेले के लिए प्रारम्भ में दिल्ली से कल्लू की हवाई यात्रा शुरू की गयी थी। यह धार्मिक नाट्य जितना गांव में प्रसिद्ध है उतना ही शहरों में भी प्रसिद्ध है। इसके लिए बड़ी-बड़ी व्यवसायिक कम्पनियां हैं जिनके पास नाट्य मण्डलियां हैं। ये व्यवसायिक कम्पनियां आर्डर लेकर रामलीला का आयोजन कराती है।

चलते-फिरते रंगमंच के अलावा स्थायी रंगमंच भी बने हैं, जिन पर रामलीला के अलावा अन्य नाट्यों का भी आयोजन होता है। दिल्ली का रामलीला इसी कड़ी में आता है जो राष्ट्रीय पर्व की तरह मनाया जाता है। दशहरा के उत्सव पर आयोजित दिल्ली की रामलीला को देखने के लिए राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री सम्मिलित होते रहते हैं। प्रतिवर्ष उच्चकोटि की रामलीला भारतीय कला केंद्र की ओर से फिरोजशाह कोटला ग्राउंड में आयोजित होता है। दिल्ली की रामलीला का मंच गोल दायरे में घूमता है, जिसका आनंद चारों ओर बैठे दर्शक लेते हैं।

कपिला वात्स्यायन का मानना है कि ''इसकी बहुआयामी विशेषता है और अभिव्यक्ति की अनेकता भारतीय समाज के सभी स्तरों पर देखी जा सकती है चाहे ग्रामीण हो, कस्बाई हो या नगरी''[5] वस्तुतः यह खुले रंगमंच का लोकनाट्य है, परंतु इसकी प्रसिद्धि ने उच्चकोटि के रंगमंच को अपनी तरफ आकर्षित किया और इसके लिए व्यवसायिक मण्डलियां बन गयीं। परिणाम यह हुआ कि जहाँ ग्रामों में खुले रंगमंच पर दिन में रामलीला आयोजित होता है यदि पैसे की व्यवस्था हुई तो नाट्य मण्डलियां बुला ली जाती है, रात्रि में अभिनय होता है और दिन में मेले का आनंद लेते हैं। अभिनय की दृष्टि से रामलीला में राम का चरित्र एक कथानक की दृष्टि से प्रस्तुत होता है। कृष्णलीला में अनेक लीलाएं प्रस्तुत होती हैं। कृष्ण की लीलाओं में कवियों को श्रृंगार लीला आकर्षित करती है। ठीक उसी प्रकार लोकनाट्य में कृष्ण श्रृंगार रूप प्रसिद्ध है। इस लोकनाट्य में कृष्ण चरित्र को लेकर रासलीला का आयोजन होता है। इसका मूल स्रोत श्रीमद्भागवत है।

''भागवत में कथा आई है कि आश्विन पूर्णिमा के दिन चंद्रमा के निर्मल प्रकाश मी भगवान कृष्ण ने नृत्य की इच्छा से बंसी बजायी और उसके कामोत्पादक संगीत को सुनकर बृज की अनेक रमणियां अपने-अपने कार्यों को छोड़कर कृष्ण की ओर दौड़ पड़ी। कृष्ण उन गोपियों के साथ नृत्य किया जो बाद में रासलीला के नाम से प्रसिद्ध हुआ।''[6]

श्रीमद्भागवत कथा में कृष्ण लीला का गान एवं संकीर्तन अत्युपयोगी बताया गया है। रासलीला आयोजित होने का आधार श्रीमद्भागवत के इसी कथन के द्वारा किया जाता है। रासलीला उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध लोकनाट्य है, श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में मंदिरों की सजावट के साथ झूले-पड़ते हैं तथा रात्रि में नृत्य-गान के साथ रासलीला का आयोजन होता है। इन सभी के अलावा देहातों या नगरों के किसी खुले मैदान या नदी किनारे किसी ऊंचाई वाले स्थान पर या दो वृक्षों की छांव में कुछ तख्त डालकर रंगमंच बना लिया जाता है। मंच पर कुछ कपड़े बिछा दिए जाते हैं और साथ में मंच पर दो कुर्सियां भी रख दी जाती हैं। मंच पर दर्शकों के बैठने के लिए तीनों तरफ से

व्यवस्था होती है। सुविधा अनुसार दरी या टाट बिछा दी जाती है। यदि दरी या टाट की व्यवस्था न हुई तो दर्शक लोग जमीन पर बैठ जाते हैं। मंच पर सभी साज समान, हारमोनियम, तबला आदि वाद्ययंत्रों को रख दिया जाता है। लीला प्रारंभ होने के पूर्व मंगलाचरण होता है।

''रास के मंगलाचरण की भी अपनी विशेष परिपाटी है। प्रारंभ में गुरु की वंदना, रासबिहारी की वंदना, व्रज वंदना एवं प्रभु स्वरूप की वंदना आदि''[7] मंगलाचरण की परिपाटी में सूर इत्यादि के गीत गाए जाते हैं। मंच पर रखी कुर्सी पर श्री राधा-कृष्ण को विराजते हैं, उसके पश्चात लीला आरंभ होता है। समूह में गोपियां रंगमंच पर आती है और राधा-कृष्ण के साथ नृत्य शुरू हो जाता है। प्रायः गोपियों का अभिनय करने वाले पात्र लड़के ही होते हैं। लगातार नृत्य चलता रहता है और दर्शकगण बड़े ही चाव से आनंद लेते हैं। इस खुले रंगमंच पर पर्दे की व्यवस्था नहीं होता है। परन्तु जब किसी पात्र की भूमिका बदलना होता है तो मंच पर एक लम्बा सा कपड़ा तान दिया जाता है जिससे दर्शकों की दृष्टि पात्रों पर न पड़े। इस कपड़े की आड़ में अभिनेता दूसरा रूप धारण कर मंच पर उपस्थित हो जाता है। यह धार्मिक लोकनाट्य ज्यादातर संगीत पर आधारित है। इन नाटकों के कथासूत्र को जोड़ते रहने के लिए सूत्रधार निरंतर कुछ न कुछ गाता है जिसका सहयोग बैठी वाद्य मंडलियां करती हैं। रासलीला प्रमुख रूप से ब्रज में आयोजित होता रहता है, यहाँ कई रास मंडलियां बनी हैं। वृंदावन में हमेशा रासलीला होते रहते हैं, जिनमें बृजभाषा के रास प्रमुख है।

हिंदी प्रदेश का धार्मिक लोक नाट्य यात्रा - नाटक अति प्राचीन है। भारतीय धार्मिक जीवन में यात्राओं की एक विशेष परम्परा रही है, जो जुलूस के रूप में जगन्नाथ की यात्रा, शक्ति की यात्रा, होली पर्व पर नैमिषारण्य यात्रा, वृंदावन तथा गोवर्धन की यात्रा आदि यात्राओं के रूप में प्रसिद्ध है। इन यात्राओं में सभी धार्मिक लोग एकत्रित होकर कीर्तन-भजन करते हुए चलते रहते है। किसी निश्चित स्थान पर पड़ाव डालकर नित्यकर्म एवं खानपान कर एक छोटा सा मंच बना लेते हैं और उस मंच पर अभिनय शुरू कर दिए जाते हैं। इन सभी यात्राओं में बंगाल की यात्रा प्रसिद्ध है। यात्रा नाट्यों का उल्लेख प्राचीन वैदिक साहित्य में मिलता है। वैसे 'ललित विस्तर' में यात्रा-नाट्य का प्रथम उल्लेख हुआ है। धीरे-धीरे इन नाट्यों में कृष्ण का स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ। कृष्ण रासलीला यात्रा नाट्य भक्तों को अत्यधिक प्रभावित किया, परिणाम यह हुआ कि बंगाल की यात्राओं में कृष्ण रासलीला अभिनय को बहुत आदर की नजर से देखा जाने लगा। जयदेव ने 'गीतगोविंद' में राधा-कृष्ण विहार लीला का गुणगान किया है, जिसको बंगाल की यात्रानाट्य में गाया जाता है। इनका गीत संगीत प्रधान हैं, भक्त लोग जयदेव के गीत को यात्राओं में गाते एवं अभिनय करते हुए चलते रहते हैं। जयदेव के साथ ही विद्यापति, चंडीदास आदि के गीत इन यात्राओं में गाए जाते हैं।

जयदेव के पश्चात यात्रा - नाट्य पर अत्यधिक प्रभाव चैतन्य महाप्रभु ने डाला। इनके प्रभाव से सारा देश 15वीं शती में कृष्णभक्ति में डूब गया। भक्ति के इस प्रभाव से उपासना और कर्म की पद्धतियां निष्कण्टक मार्ग के रूप में परिणत हुई। उस समय सारा समाज भक्ति धारा से तृप्त और सिक्त हो गया और बंगाल की जनता कृष्ण लीला से मंत्रमुग्ध हो गई। फलतः प्रभाव इतना पड़ा कि भक्तगण स्वयं विभिन्न पात्रों का अभिनय करने लगते थे। सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसके लिए किसी व्यवस्थित रंगमंच की व्यवस्था नहीं होती थी। आगे चलकर इन यात्रा-नाटकों में कृष्णलीला के साथ लौकिक गाथाओं का भी समावेश हुआ। कृष्ण लीला के व्यापक प्रभाव से दक्षिण भारत के राज्य मैसूर और आंध्र प्रदेश भी प्रभावित हुए। मैसूर और आंध्र प्रदेश के लोक नाट्य यक्षगान और कुचिपुड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। लोकनाट्य यक्षगान कर्णाटक की बहुत प्राचीन नाट्य है, जिसका अभिनय किसी खुले स्थान वाले चबूतरे को मंच बनाकर होता है। चबूतरे के तीन तरफ दर्शकगण बैठने की व्यवस्था होती है और चौथी दिशा की ओर वाद्य यंत्र लिए साजिंदे होते हैं। प्रधान गायक द्वारा पूर्ण अभिनय का संचालन होता है। यह लोकनाट्य वीररसात्मक है, इनके अभिनेतागण की वेशभूषा भी वीररसात्मक है। लोकनाट्य यक्षगान के समान ही कुचिपुड़ी लोकनाट्य है, इस मुक्ताकाशी लोकनाट्य का अभिनय केवल रात में होता है।

यह लोकनाट्य भक्तिभाव से ओतप्रोत है, इसमें भगवान की लीला होता है। गीत गोविंद के गीतों का प्रभाव कुचिपुड़ि लोकनाट्य में देखने को मिलता है। इस लोक नाट्य की प्रमुख विशेषता विदूषक है, जो अपनी कला प्रदर्शन के द्वारा दर्शकगण को हंसाकर शांत कर देता है। उसके पश्चात वास्तविक अभिनय शुरू किए जाते हैं। धार्मिक लोक नाट्य की परंपरा में केरल का कथाकली महाराष्ट्र का ललित और गुजरात का भवाड़ भी प्रसिद्ध है। इन धार्मिक लोक नाट्यों के अलावा कुछ ऐसे भौतिक प्रधान लोकनाट्य हैं जिनका संबंध मंदिर आदि से नहीं है। भौतिक प्रधान लोकनाट्यों में उत्तर प्रदेश की नौटंकी, स्वांग, संगीत, गुजरात का भवाई, महाराष्ट्र का तमाशा आदि अत्यधिक लोकप्रिय नाट्य है।

नौटंकी की लोकप्रियता उत्तर प्रदेश तक सीमित न होकर पंजाब और राजस्थान में भी लोकप्रिय है। जीवन में व्यस्तता होने की वजह से इसका प्रसार कम हो रहा है, परंतु अब भी इसकी ख्याति किसी न किसी रूप में बनी

है। आज से बहुत वर्ष पहले इसका प्रचार था और देहातों में आए दिन नाट्य मंडलियां आती रहती थी, और नाट्य कला का प्रदर्शन होता रहता था। इन नाट्य मंडलियों से प्रभावित होकर गांव के मनचले लोग स्वयं की मंडली बना लेते थे। दूसरे लोकनाट्यों की ही भांति नौटंकी की चलती-फिरती नाट्य मंडलियां देहातों में पहुँच जाती हैं, उन मंडलियों को गांव के लोग किसी चौपाल आदि में ठहरा देते हैं। सारा गांव इन नाट्य मंडलियों की व्यवस्था में लग जाता है, और चंदा एकत्रित कर उन्हें दिया जाता है। लोग खा-पीकर रात्रिकाल में एक जगह एकत्रित होकर, और तख्त डालकर मंच तैयार कर लिए जाते हैं। सभी कलाकार अपने साजो सामान के साथ मंच पर आ जाते हैं। इस लोक नाट्य के मंच पर पर्दा नहीं होता है। इस लोकनाट्य में मंडली प्रधान द्वारा दर्शकों को कथा सूचना दी जाती रहती है, जिससे दर्शक हर परिस्थिति से अवगत होते रहे। मंडली प्रधान को गुरु माना जाता है, जो नाट्य प्रस्तुति की व्यवस्था करता है। वहीं पूरे नाट्य को निर्देश करता है तथा मंच पर पात्रों के आने जाने की सूचना देता है। इस निर्देशक को रंगा के भी नाम से जाना जाता है। इस लोकनाट्य की प्रमुख विशेषता वाद्ययंत्र है, जिसके बजते ही पास तथा दूर के लोग खिंचे चले आते हैं। इन वाद्ययंत्रों से एक समा सी बंध जाती है। सभी वर्ग के लोग किसान, मजदूर, मिस्त्री, दलित, गरीब आदि सामान्य रूप से साथ में बैठकर नाट्य प्रदर्शन का आनंद लेते हैं।

''सर्वहारा वर्ग का मनोरंजन है नौटंकी। नौटंकी देखने वाले और खेलने वाले सामान्य रूप से किसान, मजदूर, मिस्त्री, गरीब और दलित वर्ग के होते आये हैं। कुछ कलाकार सवर्ण भी होते हैं।''[8]

इस लोकनाट्य में सबसे पहले नगाड़ा बजता है। जो नाट्य प्रदर्शन की सूचना देता है, फिर सारंगी, बाजे आदि वाद्य यंत्र के द्वारा समा-सी बंध जाती है। विदूषक अपने कला प्रदर्शन के द्वारा दर्शकों का अत्यधिक चहेता कलाकार होता है, जो विषय से हटकर ऊट-पटांग बातें कर दर्शकों को हंसाता रहता है। अपनी ऊट-पटांग बातों के माध्यम से समाज के उच्च वर्ग तथा सामाजिक कुप्रथाओं पर सरलता से व्यंग्य करता है। बड़ी ही आसानी से विदूषक समाज के इन आडंबरों का परिचय कराता है। हाथरस, मथुरा, कानपुर, बनारस, इलाहाबाद तथा लखनऊ की नौटंकी प्रसिद्ध है। गुजरात की भवाई और महाराष्ट्र का तमाशा लोकनाट्य भी गांव-गांव लोकप्रिय है। नौटंकी की भांति भवाई और तमाशा लोकनाट्य भी अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। नाट्य-मंडलियां गांव-गांव जाकर किसी खुले स्थान पर एक दो तख्त जोड़कर नाट्य- प्रदर्शन करती है। समाज के पिछड़े-दलित तथा कमजोर वर्ग के लिए यही लोकनाट्य मनोरंजन का साधन होता है।

निष्कर्षतः हिंदी का लोकनाट्य अत्यंत समृद्ध है, इसमें जन समाज का व्यापक प्रतिनिधित्व दिखाई देता है। यदि परिष्कृत नाट्य की अपेक्षा तुलना की जाए तो लोक नाट्य लोक समाज के अधिक निकट है, क्योंकि इसमें सामयिक प्रवृत्तियाँ उत्कटकोटि की पाई जाती है। वजह स्पष्ट है - परिष्कृत नाट्य शास्त्री बंधनों में बंधी रहती है, परिभाषा बदला नहीं जा सकता है। वही लोकनाट्य लोक समाज के बीच से ही उभर कर सामने आता है। परिष्कृत नाट्य में पौराणिक कथाएं ही आयोजित होते हैं, लोकनाट्य में काल्पनिक तथा ऐतिहासिक कथाएँ भी होती हैं। लोकनाट्य लोकनृत्य से युक्त तथा ढोल, नगाड़ा, तुरही, सारंगी वाद्यों से संयुक्त होता है। इसमें मनोरंजन का नैसर्गिक रूप विद्यमान रहता है। इन लोकनाट्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह स्वच्छंद होता है। किसी नियमों की जंजीरों से बंधा नहीं होता है और न ही परंपराओं की बोझ के नीचे दबा होता है। यह अपना मार्ग स्वयं बनाता है। एक नैसर्गिक धारा के रूप में चलता रहता है। इन लोकनाट्यों से जनसमाज आनंदित एवं सुखमय होता है। मखौलिया पात्र के द्वारा तीखी आलोचना से समाज के दुर्गुणों का परिचय होता है, जिसके निराकरण में यह सहायक होते हैं। लोकनाट्य में किसी भी को बख्शा नहीं जाता है, सभी का समान रूप से धज्जियां उड़ाई जाती है। बिना लागलपेट के की गई आलोचनाएँ समाज सुधार में सहायक होती है।

सन्दर्भ

1. डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी : भारतीय लोकनाट्य, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नयी दिल्ली, 2001, पृ. 26
2. जगदीश चंद्र माथुर : परम्पराशील नाट्य, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली, 2006, पृ. 15
3. डॉ. रामसागर त्रिपाठी : भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, अशोक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1971, पृ. 224
4. डॉ. दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास, राजपाल एण्ड सन्त कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2008, पृ. 35
5. कपिला वात्स्यायन : पारंपरिक भारतीय रंगमंच, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली, 1995, पृ. 90
6. डॉ. रामसागर त्रिपाठी : भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, अशोक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1971, पृ. 227
7. वसन्त यमदग्नि : रासलीला तथा रसानुकरण विकास, संगीत नाटक अकादमी, नयी दिल्ली, 1980, पृ. 189
8. नन्दलाल हितैषी : लोकनाट्य-नौटंकी एक विवेचन, राका प्रकाशन इलाहाबाद, 2018, पृ. 22

शिवनाथ मिश्र
शोधार्थी (पीएच.डी.), हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
shivnath.lu1989@gmail.com

प्रेम और विरह के आलोक्य में मीराबाई

–प्रिया दूबे

विरह प्रेम की एक मधुर टीस है, या कहे तो जीवन की निर्मल स्थिति है, जिसमें प्रिय एवं प्रियतम निर्मल एवं निश्चल भाव से एक दूसरे की समीपता को प्राप्त करते हैं।

आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।''[1]

मध्यकाल की संत भक्त कवयित्री मीरांबाई का नाम कृष्ण भक्ति शाखा के अंतर्गत उत्साह एवं गौरवान्वित पूर्वक लिया जाता हैं, जिन्होंने राजस्थान की रतेली भूमि पर अपने प्रेम एवं भक्ति रूपी बीज अंकुर कर, समस्त राजस्थान को अपनी स्नेहिल धरा में जगमगा दिया एवं संपूर्ण भारतवर्ष और विश्व के सहृदयों के हृदय में अपने पदों एवं काव्यों से आनंद विभोर कर दिया।

मीरा के काव्य में प्रेम एवं विरह का एक ऐसी कसक है, जो मीरा को गिरधर गोपाल की दीवानी कहलाने का सौभाग्य प्रदान करता है, मीरा के काव्य में प्रेम एवं विरह इस तरीके से घुल मिल गया है, कि दोनों में अंतर कर पाना नामुमकिन हैं, या कहे तो मीरां का काव्य रचना ही प्रेम एवं विरह हैं। मीरा की रचनाओं में नरसी जी का मायरा, गीत गोविंद का टीका, रास गोविंद, मीरानी गरबी, राग सोरठ के पद, आदि मानी जाती हैं। जिसके आधार पर पाठक मीरां को जानने समझाने का प्रयास करते हैं।

शुक्ल जी के अनुसार, ''मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में हैं और इनका गुणगान नाभा जी, ध्रुव दास, मलूक दास, आदि सब भक्तों पर सब में प्रेम की ताल्लीनता समान रूप से पाई जाती है।''[2]

मीरा का काव्य भक्ति काल के अन्य कवियों से बिल्कुल भिन्न हैं, क्योंकि मीरा प्रेम एवं विरह की स्वयं अनुभूति हैं, वहीं सूरदास की भ्रमरगीत में गोपिकाओं का विरह वर्णन सूर की अपनी निजी अनुभूति नहीं है। मीरा के हृदय में प्रेम का अंकुरण बालपन से ही हो चुका था। उनका प्रेम सावरे के साकार दंपति का प्रेम था शायद इसीलिए मीरा अपने प्रियतम को स्वयं से अलग नहीं मानती थी।

परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में-''मीरां को यह बात सिद्धांत रूप में स्वीकृत हैं, कि उनमें और उनके इष्ट देव व प्रीतम में जीवात्मा और मौलिक एकता के कारण कोई वास्तविक अंतर नहीं है।''[3]

कृष्ण के प्रेम में छटपटाती मीरा समाज की मान्यताएं एक झटके में तोड़कर कृष्ण को अपना सर्वस्व निछावर कर देती हैं अर्थात् तन, मन, धन एवं कृष्ण में ऐसे लीन हो जाती हैं जैसे नदी सागर में मिलकर अपने सार्थकता को पहचान लेती है। गिरधर गोपाल के सिवा मीरा का अपना कोई नहीं है, कृष्ण के प्रेम में उन्होंने अपने भाई बंधु, सगे संबंधी सभी को छोड़कर संतो संन्यासियों के साथ में बैठकर अपनी कुल की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को खो दी, जो तत्कालीन समय में एक महिला के लिए असोचनीय विषय था चारों तरफ से सामंतवादी व्यवस्था का वर्चस्व छाया हुआ था सभी रूढ़ियों एवं बंदिशों को नकारती हुई मीरा गिरधर गोपाल के प्रति स्वयं को समर्पित कर देती है।

''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई
जाकर सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई
छांडि दयी कुल की कानि कहां करिहैं कोई,
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोयी।''[4]

मीरा के हृदय में कृष्ण मिलन की कसक उन्हें आने वाली कई बाधाओं से दूर कर देती है। प्रेम में वशीभूत होकर राणा द्वारा भेजा गया विष का प्याला अमृत समझकर ग्रहण कर लेती है।

'विख रो प्यालों राणा भेज्या
पीवा मीरां हांसी रे।'

समाज हो या धर्म हो किसी ने मीरा को भटका नहीं पाया। कृष्ण के प्रति उनका प्रेम सुसाध्य था। उनका संपूर्ण जीवन गिरधर नागर के रंगों में रंगा हुआ था जिसकी झंकार से संपूर्ण हिंदी साहित्य एवं वर्तमान भी जगमगा रहा है। कृष्ण के सौंदर्य को मीरा अपने अंतर मन के हृदय में प्रतिष्ठित कर ली है एवं उनके मधुर रूप का बखान करती हुई करती हैं।

''बस्या म्हारे णेणण मा नंदलाल
मोर मुकुट मकरा कृत कुंडल अरुण तिलक सोहां भाल।
मोहन मूरत सांवरा सूरत णेणा बण्या विशाल।
अधर सुधा रस मुरली राजां उर वैजयंती माल।
मीरां प्रभु सांता सुखदायां भगत बछल गोपाल।''[5]

समाज के विरोध एवं पारिवारिक विरोध के कारण जब उनकी मिलन की आकांक्षा पूरी नहीं हो पाती तब वह स्वप्न में ही परिणय बंधन में बंध जाती हैं।

'माई री म्हारे सपने में परण्या दीनानाथ'

उनका प्रेम साकार दंपति या एकाकी प्रेम था, या उनके प्रेम में विरह का वर्णन ज्यादा या मिलन का कम, सब कुछ जानने के पश्चात मीरा का प्रेम सात्विक था।

संयोग के बाद वियोग की स्थिति अग्रसर होती है जहां प्रेम होता है वहां वियोग संभावित है। मीरा का विरह टीस नहीं है वरन स्वयं के भावनाओं एवं आंसुओं से अभिशप्त उनका काव्य जनमानस को अह्लादित कर रहा है।

सामान्यतः विरह की तीन अवस्थाएं मानी जाती हैं
1-प्रियप्रवास के कारण
2-वर्षा भाष के कारण
3-मधुमास के कारण

मीरा कृष्ण की प्रेम में ऐसी दीवानी बन गई है कि उनकी वेदना भरे स्वर को कोई न पहचान सकता है। वह कहती है कि मेरी विरह वेदना को कोई नहीं जानता उसे वही जान सकता है जिसकी प्रीति भगवान से जुड़ी हुई है विरह एवं वेदना की अनुभूतियों का वर्णन मीरा के पदों में मिलते हैं जो सहृदयों को स्वयं की पीड़ा का एहसास दिलाते हैं।

''हेरी म्हा दरद दिवाणा, दर्द न जाण्यां कोय।
घायल री गत घायल जाण्यां, हिबडों अगण संजोय।
जौहर की गति जोहर जाण्यां, क्या जाण्यां जिण खोय।
मीरां री प्रभु पीर मिटांगा जब वैद्य सांवरो होय।''[6]

कृष्ण विरह वेदना में मीरा व्यथित रहती हैं, विरह की आकुलता उनके हृदय में रात दिन टीस बनकर चक्कर लगाती रहती हैं, ऐसी लाचार हो गई है, कि बेचैन होकर प्रीतम की प्रतीक्षा कर रही हैं। बावरी बनी प्रीतम को स्मरण करते हुए जगह-जगह भटक रही हैं, और कहती हैं कि मेरे इस प्रेम रूपी घाव का उपचार वैद्य रूपी श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं तब जाकर मेरे कष्ट का प्रभाव कम होगा यदि मुझे पता होता की प्रेम में असहनीय पीड़ा होती हैं, तो मैं सबको पहले से ही अवगत करा देती।

'जो मैं जानती रे प्रीत, किया दुख होय
नगर ढिढोरा फेरती, प्रीत करो मत कोय'।

प्रिय के बिना उस विरहनी को गांव, नगर, कस्बे, गली, चौबारे, कोठी, अटारी सभी सूने एवं निस्तार दिखाई देते हैं-

'प्रिय बिन सूनौ हमारौ देश'

उनकी विरह वेदना के संदर्भ में वर्तमान आलोचक परंपरागत दृष्टिकोण से अलग सोच रखते हैं-

विश्वनाथ जी का वक्तव्य है- ''मीरां की रचनाओं में जो प्रधानता विरह भावना की अभिव्यक्ति है पति की मृत्यु और उनकी मृत्यु के बीच लिखी गई है। मीरां ने जो अलौकिक विरह का वर्णन किया है उसका कोई लौकिक आधार अवश्य होगा। मीरां ने अपने पदों में अज्ञात प्रीतम का जो रूप उभारा है उसमें कहीं ना कहीं उनके मृत पति का रूप भी घुल मिल गया है।''[7]

जहां तक रहा प्रश्न मीरा की भक्ति का तो वह पठन-पाठन करने से पता चलता है, कि मीरा स्वतंत्र भक्त थी वह किसी भी संप्रदाय को स्वीकार नहीं की थी परंतु गुरु के रूप में रविदास को मानती थी शायद इसी कारण उन पर गोपी भाव एवं मधुर भाव का प्रभाव दिखाई पड़ता है तो, कहीं निर्गुण धारा एवं नवधा भक्ति का, परंतु गिरधर नगर उनके आराध्य केंद्र में हैं, मीरा के पदों में कहीं-कहीं जोगी, चेरी जैसे शब्द भी आए हैं वह कहती हैं कि मुझे पता था कि योगी मेरे साथ चलेगा, यह संग रहेगा ,परंतु वह आधे रास्ते में छोड़कर चला गया।

''जोगी मत जा मत जा मत जा, पायं परू मैं तेरी चेरी हो।
प्रेम भगति को पैडो ही न्यारो, हमकूं ठौर बता जा।
अगर चंद्रपाकी चिता रचाऊं, अपने हाथ जल जा।
जल बल भई भस्म की टेरी, अपने अंग लगा जा।
मीरा कहे प्रभु गिरिधर नागर, जोत में जोत मिल जा।''[8]

मीरा ने प्रेम और विरह का बड़ा ही हृदय विदारक एवं मर्मज्ञ रेखांकन किया है। वह अपने पदों में कहती है कि प्रीतम कृष्ण की मनमोहिनी सूरत मेरे हृदय के अंतर मन में व्याप्त हो गई है। उनके बिना मेरी जीवन नैया का बेड़ा पार करने वाला कोई नहीं है। मैं स्वयं को कृष्णा में समाहित कर ली हूं उनके हाथों अपना सर्वस्व निछावर कर दी हूं।

अब बिल्कुल भी विवश हूं परंतु लोग, समाज, कुटुंब कह रहा है कि मैं बिगड़ गई हूं, चरित्रहीन हो गई हूं, विद्रोही हो गई हूं, सांवरे रंग में रगी कृष्ण की मनमोहन मूरत देखने की आदी हो गई हूं, परंतु उसे देखे बिना मुझे एक पल भी चैन नहीं पड़ता अतः मेरे प्रिय मुझे दर्शन दिए हैं।

''चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर विच आन पड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखू, जीवन मूर जड़ी।
मीरा प्रभु के हाथ बिकानी, लोग कहे बिगड़ी।
नैना मोर बान पड़ी, साईं मोहि दरस दिखाई।''[9]

अतः मीरा के पीड़ा का अंत हुआ कृष्ण दीवानी को उसका प्रिय मिल गया, सच्चा भक्त ही भगवद्प्रेम को सफल एवं दृढ़ बनता है, उनके प्रियतम अविनाशी पुरुष हैं जो उन्हें सहज रूप हर जगह प्राप्त दिखाई देते हैं। उन पर वह अपना सर्वस्व लुटा देना चाहती है। इस सौभाग्य के अवसर पर पंच चोला पहन कर अर्थात् पांच इंद्रियां मंगल गान कर रही है। ऐसा आनंद उन्हें कभी ना मिला उनके अंग अंग सुवासित फूल की तरह मंद-मंद महक रहा है, जिसके सुगंध से सहृदयों का हृदय आनंद एवं रस से लीन हो जा रहा है, राजस्थान की धरा पर अपनी प्रेम एवं विरह की कसौटी को पल्लवित करने वाली मीरा आज संपूर्ण संसार में कृष्ण दीवानी के रूप में जानी जाती हैं।

''सहेलियां सजन घर आया हो।
बहोत दिनां की जोवती, विरहिन पिव पाया हो।
रतन करूं नेछावरी ले, आरती साजू हो।
पिव का दिया सनेहडा, ताहि बहुत निवाजू हो।
पांच सखी इकठीभई, मिलि मंगल गावै हो।
पिय की रली बधावणा, आनंद अंग न भावै हो।
हरि सागर सू नेहरो, नैणां बध्यां सनेह हो।
मीरां सखी के आंगणैं दूध बूठा मेंह हो।''[10]

प्रेम का पहला अनुभव विरह से होता है और इस अनुभव की पूर्णता मिलन से आती है। मीरा के काव्य में विरह वेदना एवं मिलन का बसंत भी है

'मीरां के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनाशी।'

निष्कर्षता कहा जा सकता है कि मीरा के काव्य में प्रेम एवं विरह की गंभीर अभिव्यंजना है। उनकी विरह में कष्टों की तीव्रता है, जो तत्कालीन परिवेश में स्त्री संबंधी रूढ़ियों पर आधारित है। उनकी कविता का प्रधान गुण सादगी एवं सरलता है। उन्होंने मुक्तक गेय पदों की रचना की, भाषा उनकी राजस्थानी हैं परंतु कहीं-कहीं ब्रजभाषा, गुजराती, पंजाबी का भी प्रभाव दिखाई देता है। मीरा प्रिय गिरधर को प्राप्त करके आनंद विभोर होकर, समाज की मान्यताएं एक क्षण में तोड़कर, अपने कृष्ण में समा जाती है, उनकी आत्मा रूपी ज्योति परमात्मा रूपी कृष्णा में विलीन हो जाती है, उनकी विरह वेदना को जन्म जन्मांतर से मुक्ति मिल जाती है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 42
2. वही, पृष्ठ 124
3. मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 45
4. सात भारतीय संत : जीवन दर्शन और संदेश, पृष्ठ 55
5. मीराबाई की संपूर्ण पदावली, रामकिशोर शर्मा एवं सुजीत कुमार शर्मा, पृष्ठ 73
6. मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 116
7. वही, पृष्ठ 72
8. वही, पृष्ठ 114
9. सात भारतीय संत : जीवन दर्शन और संदेश, पृष्ठ 49
10. वही, पृष्ठ 50

प्रिया दूबे
शोधार्थी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (हिन्दी विभाग)
महिला छात्रावास, हाल ऑफ रेसिडेंस, कमरा नं. 115,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.
ईमेल – priyadubey4466@gmail.com

अज्ञेय की आधुनिकता

–चंद्रशेखर शर्मा

आधुनिक काल में पाठ के अनुकूल दृष्टि और पद्धति विकसित करने वाले कवि अज्ञेय हिंदी साहित्य में परंपरा के बरक्स आधुनिकता को महत्त्व देने वाले रचनाकार है। वह आधुनिकता को किसी निश्चित ढाँचे में ढाले जाने की प्रवृत्ति को खारिज कर देते हैं। आधुनिकता का निश्चित पैमाना न निर्धारित करते हुए अज्ञेय उसे अपरिभाषित मानते हैं तथा आधुनिकता के केन्द्र में संवेदना, काल बोध, प्रश्नाकूलता, परंपरा का निर्वाहन व सर्जानात्मक दृष्टिकोण को केन्द्र में रखते हैं। छायावादी काव्य में प्रयुक्त हो रहे प्रतीकों व उपमानों के साथ-साथ पुरानी इस्तेमाल की जा रही पद्धति को नकारकर या कहें कि सिरे से खारिज ही कर देते हैं। वह लगातार परीक्षण अथवा मूल्यांकन के कारण नएपन को बचाए रखने का प्रयास करते हैं। आधुनिकता को अपरिभाषेय मानने वाले अज्ञेय प्रश्नाकूलता की भावना को ही आधुनिकता के आगमन का लक्षण स्वीकारते हैं। प्रश्न पूछने का यह लक्षण आधुनिकता की देन है। प्रश्नाकूलता की यह प्रवृत्ति हमेशा साहित्य को समकालीन बनाए रखेगी। अज्ञेय अपने निबंध 'आधुनिकताः संवेदना और संप्रेषण' में शुरुआती तौर पर आधुनिकता की तुलना समकालीनता से करते हुए आधुनिकता को निरंतर समकालीन बताते हैं-

"आधुनिक होना किसी न किसी विशेष अर्थ में युगीन अथवा समकालीन होना ही है।"[1]

समकालीन होना हमेशा नया होना भले नहीं होता है परंतु नएपन का बोध अवश्य होता है। इस तरह के नएपन में नए संबंधों का निर्माण होता है तथा विभिन्न विचारों, वस्तुओं व दृष्टियों का अध्ययन नवीनता को केन्द्र में रखकर किया जाता है। यह नयी दृष्टि पूर्व निर्मित समाज को मात्र नए ढंग से न देखकर नए यथार्थ का भी उद्‌घाटन करती है। अज्ञेय के साहित्य में नएपन को केन्द्र में रखा गया है और यही वजह है कि आधुनिकता संबंधी अपने विभिन्न विवेचनों में अज्ञेय नवीनता के संस्कार को बढ़ावा देते हैं। 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय लिखते भी हैं कि-

"कवि नए तथ्यों को उनके साथ नए रागात्मक संबंध जोड़कर नए सत्यों का रूप दें, उन नए सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे। यही नई रचना है जिसे नयी कविता का कवि नहीं भूलता।"[2]

अज्ञेय आधुनिकता में मात्र नए प्रकार के संबंधों व नयापन को केंद्र में ही नहीं रखते बल्कि वह संवेदनात्मक स्तर पर नयापन की बात करते हैं। वह उस तरह की आधुनिकता का विरोध करते हैं जिसमें परिवर्तन मात्र ऊपरी तौर पर होता है। बाहरी आवरण को बदलने तथा उसे समकालीन लुक देने से आधुनिकता का विचार दूषित हो जाता है तथा जमीनी स्तर पर परिवर्तन का प्रभाव नहीं दिखलायी पड़ता। ऊपरी तौर पर दिखने वाली यह आधुनिकता मात्र क्षणिक होती है। यह मध्यकालीन विचारों का प्रभाव अंतर्मन पर पड़ने देती है और बाहरी दुनिया में आधुनिक विचारों को ढोने का कार्य करती है। अज्ञेय आधुनिकता के अंतर्गत संवेदना को घोलने का कार्य करने की हिमायती दिखलायी पड़ते जिससे पुरानी या पूर्वानुभूति का ही अधिक नूतन रूप में कवि लेखक पर साहित्यकार प्रस्तुत कर सके। अज्ञेय इस संबंध में 'त्रिशंकु' में लिखते हैं कि-

"कवि का कार्य नये अनुभवों की नये भावों की खोज नहीं है, प्रत्युत पुराने और परिचित भावों के उपकरण से ऐसी नूतन अनुभूतियों की सृष्टि करना जो इन भावों से पहले प्राप्त नहीं की जा चुकी है। वह नयी धातुओं का द्योतक नहीं है, हमारी जानी हुई धातुओं से ही नया योग टालने में और उससे नया चमत्कार उत्पन्न करने में उसकी सफलता और महानता है।"[3]

पूर्वानुभूति को जब नवीन संवेदनात्मक दृष्टि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो यहाँ पता चलता है कि नये ढंग का कालबोध उसके लिए बेहद आवश्यक है। नया कालबोध न होने पर प्रयोग होना संभव नहीं होगा। प्रयोग न होने से वही पुरानी परिपाटी बनी रहेगी तथा नवीन संबंधों, नवीन विचारों का प्रचार-प्रसार नहीं हो पायेगा जो साहित्य के साथ-साथ नवीन समाज के निर्माण में बाधा के रूप में दिखलायी पड़ेगा। नवीनता के साथ-साथ संवेदना व काल का बोध

होना अत्यावश्यक है। 'आधुनिकताः संवेदन व संप्रेषण' निबंध में अज्ञेय लिखते भी हैं कि-

"प्रत्येक क्षेत्र में नया कालबोध यथार्थ की नयी पहचान कराता है, उसके साथ नये संबंध जोड़ता है, और उन संबंधों की पहचान कराने की, उनके सम्प्रेषण की नयी समस्या खड़ी करता है, हर विधा का आधुनिक कलाकार अपनी विधा के भीतर इन नयी चुनौतियों का सामना करने और अपनी कठिनाइयों का हल निकालने के लिए नयी शिल्प विधियों का आविष्कार करता है, नये समय स्थापित करता है।"[4]

आधुनिकता का विवेचन करने के दौरान अज्ञेय बार-बार नएपन की बात करते हैं जिसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह अपने अतीत को खारिज कर देते हैं और एकदम नवीन रचने की बात करते हैं। अज्ञेय मात्र पुरानी परंपराओं, प्रवृत्तियों के निरंतर मूल्यांकन की बात करते हैं। समाज तथा साहित्य में विद्यमान प्रवृत्तियों का निरंतर मूल्यांकन किया जाना आधुनिकता का प्रमुख लक्षण है। निरंतर मूल्यांकन के परिणामस्वरूप प्राचीन या अतीत का साहित्य भी समकालीन बना रहता है तथा समय-समय पर उसका परिमार्जन होता रहता है। परिमार्जन होने का सबसे बड़ा लाभ यही होता है कि साहित्य की प्रासंगिकता बरकरार रहती है और साहित्य में तब मनुष्य व समाज का विकास स्पष्ट रूप में दिखलायी पड़ता है। 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय लिखते हैं कि परंपरा को ठोक-बजाकर जाँच लेना चाहिए अन्यथा इसका कोई अर्थ नहीं रह जाता है-

"परंपरा का कवि के लिए कोई अर्थ नहीं है जब तक वह उसे ठोक बजाकर, तोड़-मरोड़कर, देखकर आत्मसात नहीं कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा संस्कार नहीं बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर इसका निर्वाह करना अनावश्यक न हो जाए।"[5]

अज्ञेय की आधुनिकता प्राचीन तथा नवीन को सापेक्ष रखकर अध्ययन किए जाने की पक्षधर है जिसमें मूल्यों को नष्ट कर देना प्राथमिकता नहीं होती है बल्कि बदलते पैमानों पर उसकी पैमाइश प्राथमिकता होती है। अज्ञेय द्वारा विवेचित इस आधुनिकता में जहाँ पैमाना ही निरंतर परिवर्तित हो रहा हो तो मूल्यों के स्थिर होने को कोई सवाल ही नहीं उठता है। मूल्य भले ही स्थिर न हो पर उनको नष्ट कर देना आधुनिक बिल्कुल नहीं है। मूल्यों को अपनाते समय निरंतर उसके प्रति सतर्क रहना ही आधुनिक होना है-

"मूल्यों के प्रति सतर्कता की हमारी जिम्मेदारी बढ़ जाती है- लगातार उनका परीक्षण करते रहना हमारा कर्तव्य हो जाता है। जिससे ऐसा न हो कि हम ऐसे मूल्यों की दुहाई देते रहें या उनके अनुशासन में जीने का उपक्रम करते रहें जो गतिहीन होकर निष्प्राण हो गए है और अब धारा को अवरुद्ध ही करते हैं।"[6]

प्राचीन तथा नवीन मूल्यों के प्रति सर्तकता का सामान्य सा अर्थ है कि अज्ञेय आधुनिकता के अंतर्गत सर्जनात्मकता को विशेष महत्त्व देते हैं। सर्जनात्मकता के परिणामस्वरूप साहित्य में विषय को विभिन्न आयाम से देखने को प्रवृत्ति विकसित होती है। किसी भी विषय को विभिन्न आयाम से देखने की स्वतंत्रता के मिलने पर रचनाकर प्रयोग के रास्ते पर चलते हैं और विभिन्न सड़ी गली मान्यताओं को त्याग देते हैं। एक ही प्रतीक, प्रवृत्तियों व मान्यताओं को अपनाने तथा उनका अनुकरण करने से अनुभूति समाप्त हो जाती है, चमत्कार खो जाता है। अज्ञेय कहते भी है कि बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है। नवीन संस्कार तथा अर्थ के आगमन की आशा में ही अज्ञेय प्रयोग को रचना केंद्र में रखते हैं। 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में तो वह उद्घोषित करते हुए कहते हैं कि-

"प्रयोग निरंतर होते आए हैं और प्रयोग के द्वारा ही कविता या कोई भी कला, कोई भी रचनात्मकता आगे बढ़ सका है। जो कहता है कि मैंने जीवन भर कोई प्रयोग नहीं किया, वह वास्तव में यही कहता है कि मैंने जीवन भर कोई रचनात्मक कार्य करना नहीं चाहा, ऐसा व्यक्ति अगर सच कहता है तो यही पाया जाएगा कि उसकी कविता कविता नहीं है, इसमें रचनात्मकता नहीं है, वह कला नहीं, शिल्प है, हस्तलाघव है।"[7]

निरंतर प्रयोग तथा रूढ़ियों का त्याग तो अज्ञेय द्वारा व्याख्यायित आधुनिकता के प्रमुख तत्वों में समाहित है। प्रयोग की क्षमता खोकर परंपरा की बैसाखी मात्र से साहित्य रचना संभव तक नहीं है और ऐसी परिस्थिति में आधुनिकता की कल्पना करना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। साहित्य के इस आधुनिकतम समय में प्रयोग की निंदा करने वालों आलोचकों को लताड़ते हुए अज्ञेय दूसरा सप्तक की भूमिका में ही लिखते हैं कि-

"जो लोग प्रयोग की निंदा करने के लिए परंपरा की दुहाई देते हैं वह भूल जाते हैं कि परंपरा कम-से-कम कवि के लिए कोई ऐसी पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है, जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले।"[8]

अज्ञेय आधुनिकता पर विचारने के दौरान जिस तरह बगैर मूल्यांकन के आधुनिकता को परंपरा से अलग रखते हैं तथा सतर्क परीक्षीय दृष्टि का परिचय देते हैं उसी तरह अज्ञेय विदेशी मॉडल्स के अनावश्यक प्रयोग का भी विरोध करते हैं। मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, टी.एस. इलियट के सृजन सिद्धांत और फ्रायड व एडलर की विभिन्न मान्यताओं का प्रभाव उनकी प्रमुख रचनाओं 'शेखरः एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी', 'असाध्य

वीणा' इत्यादि में स्पष्ट रूप में दिखलायी पड़ता है। पाश्चात्य विचारकों से अत्यधिक प्रभावित होने के बावजूद भी वह यथावत साहित्य में प्रयोग करने के पक्षधर नहीं, बल्कि विरोधी है। विदेशी मॉडल्स का प्रयोग करने से पहले अज्ञेय उसके परिमार्जन की सलाह देते हैं। आधुनिकता के इस दौर में अज्ञेय कोई विचार तभी अपनाते जब वह उसे अपनी कसौटियों पर जाँच परख लेते थे। हिंदी साहित्य के अन्यतम आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल पाश्चात्य विचारकों के संबंध में अज्ञेय की प्रश्नाकूलता दृष्टि पर टिप्पणी करते हुए हिंदी आलोचना के नए वैचारिक सरोकार में लिखते हैं कि-

"अज्ञेय ने पाश्चात्य विचारों, वादों, सिद्धांतों, मान्यताओं, शैलियों, प्रवृत्तियों, प्रविधियों, पद्धतियों को सर्वाधिक दुहने का कार्य किया है। बड़ी बात यह भी है कि प्राच्य तथा पाश्चात्य विचारधाराओं और साहित्य पर धैर्य और तार्किकता से सोच विचार किया है।"[9]

अतीत के साथ-साथ पाश्चात्य परंपरा के मूल्यांकन का अज्ञेय की दृष्टि में यह कदापि अर्थ नहीं है कि उसका समर्थन या विरोध निष्कर्ष रूप में किया जाए। आधुनिकता तो अपने साथ विविधता लेकर आती है जिसमें वह सबकुछ समाहित करने के साथ-साथ प्राचीन तथा नवीन के मध्य तारतम्य बनाने का प्रयास करती है। आधुनिकता परंपरा को खारिज करने के बजाय परंपरा के प्रवाह को बनाए रखने का प्रयास करती है। आधुनिकता के इन तत्त्वों के माध्यम से विश्लेषण के माध्यम से जो नयी दृष्टि बनती है वह बेहद उपयोगी होने के साथ-साथ नवीन यथार्थ की निर्मिति करती है। अज्ञेय लिखते हैं कि-

"नयी दृष्टि एक और समाज को नये ढंग से देखती है समाज में नयी चीजों की ओर देखती है अर्थात् नया यथार्थ देखती है, दूसरी ओर वह उसे संप्रेषण करना चाहती है- संप्रेषण तो उसका अनिवार्य कर्तव्य है बल्कि संप्रेषण ही तो साहित्य है।"[10]

समग्रतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय द्वारा पारिभाषित या कहें कि विवेचित आधुनिकता में संवेदना तथा काल के नवीन बोध का होना आवश्यक है जिससे प्रश्नाकूलता की संभावना बरकरार रहे। प्रश्नाकूलता तथा परिमार्जन को आधुनिकता के अंतर्गत स्थान देकर अज्ञेय कहीं-कहीं लेखक की सर्जनात्मकता, विविधता तथा नवीनता को बचाए रखने का कार्य करते हैं। अज्ञेय द्वारा प्रवर्तित आधुनिकता के संदर्भ में एक तत्व स्थिर है कि इसमें कुछ भी स्थिर नहीं है बल्कि सबकुछ निरंतर परिवर्तनीय है।

संदर्भ

1. आधुनिकताः संवेदन और संप्रेषण, अज्ञेय रचनावली, खंड-11, कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 361
2. भूमिका, दूसरा सप्तक, अज्ञेय, पृ.
3. त्रिशंकु, अज्ञेय, पृ. 39
4. आधुनिकताः संवेदन और संप्रेषण, अज्ञेय रचनावली, खंड-11, कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 363
5. भूमिका, दूसरा सप्तक, अज्ञेय, पृ.
6. आधुनिकताः संवेदन और संप्रेषण, अज्ञेय रचनावली, खंड-11, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ. 365
7. भूमिका, दूसरा सप्तक, अज्ञेय, पृ.
8. भूमिका, दूसरा सप्तक, अज्ञेय, पृ.
9. हिंदी आलोचना के नए वैचारिक सरोकार, कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, पृ. 64
10. अज्ञेय, आधुनिकताः संवेदन और संप्रेषण

चंद्रशेखर शर्मा
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
ई-मेलः munna8744du@gmail.com

लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा और चंदायन की भाषा

–डॉ. रीता दूबे

उत्तर भारत में भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का प्रश्न थोड़ा सा उलझा हुआ है। इस संदर्भ में यह आम मान्यता है कि 500 ई.पू. से 1000 ईस्वी तक पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का समय रहा है। 500 ई.पू. तक संस्कृत का प्रभाव समाप्त हो जाता है। इस मान्यता से दो सवाल खड़े होते हैं पहला यह कि क्या संस्कृत के प्रभाव के समाप्त होने के बाद इन भाषाओं ने संस्कृत का स्थान ग्रहण कर लिया। और अगर ऐसा है तो क्या ये सारी भाषा पहले से ही अस्तित्व में थी या इनकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। इस सवाल के उलझे होने का कारण इस प्रश्न से होकर गुजरता है कि भाषाओं की उत्पत्ति कैसे होती है और साहित्यक भाषा और जनभाषा में क्या सम्बन्ध होता है।

भाषाओं की उत्पत्ति से सम्बन्धित पहली मान्यता यही कि क्लासिकल भाषाओं के ध्वनि और रूप तत्वों में क्रमशः क्षय, ह्रास और परिवर्तन से परवर्ती भाषाओं का विकास होता रहा है। शलाइखर का मानना है कि एक सजीव वस्तु की तरह भाषा का अपना जीवन होता है, वह युवा होकर संतति उत्पन्न करती है और वृद्ध होकर विनाश को प्राप्त हो जाती है।[1] 'भाषा और समाज' में रामविलास शर्मा लिखते हैं, ''यह एक पुरानी प्रचलित धारणा रही है कि संस्कृत ही बिगड़कर प्राकृत बनी है। यह धारणा सही है। क्योंकि संस्कृत-प्राकृत का मुख्य भेद ध्वनि-सम्बंधी है। संस्कृत से भिन्न प्राकृतें जन-साधारण की स्वतंत्र भाषाएँ थीं या नहीं, इसकी कसौटी यह है कि उनकी अपनी व्याकरण व्यवस्था और अपना मूल शब्द भण्डार है या नहीं। प्राकृतों का शब्द भण्डार और व्याकरण मूलतः संस्कृत का है। यदि वे वास्तव में प्राकृतें-बोलचाल की भाषाएँ होतीं तो उनमें व्याकरणगत भेद बहुत ज्यादा होते।''[2] हेमचंद ने भी अपने ग्रन्थ में इस मत को प्रकट किया है कि 'संस्कृत प्रकृति है और प्राकृत उससे उपजी है'। पिशेल ने अपने व्याकरण में हेमचंद के अतिरिक्त धनिक, नरसिंह, मार्कन्डेय, वासुदेव और नारायण के ऐसे ही मतों को उधृत किया है, जिनमें कहा गया है कि 'प्राकृत प्रकृति अथवा एक मूल तत्व या आधारभूत भाषा से निकली और यह आधारभूत भाषा संस्कृत है।'[3] दूसरा मत यह है कि किसी समाज में एक ही समय में अनेक बोलियों का अस्तित्व होता है, विभिन्न कारणों के संयोग से कोई एक बोली संपर्क भाषा के रूप में विकसित होती है। उसमें साहित्य रचना होती है और वह परिनिष्ठित रूप ग्रहण करती जाती है। इस विषय में मैक्समूलर का कहना था कि ''यह धारणा ही गलत है कि सर्वत्र बोलियाँ किसी न किसी साहित्यिक भाषा का अपभ्रष्ट रूप होती हैं।... विभिन्न बोलियाँ वस्तुतः साहित्यिक भाषा अनेक बोलियों में से एक बोली होती है। इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन हो जाने पर तुर्की के सुल्तान के भाइयों अथवा क्रीड़ा-सखाओं की भांति अन्य बोलियों का गला घोट दिया जाता है। इसके विपरीत ये बोलियाँ भी अपनी पूर्ण शक्ति से जीवित रहती हैं, यद्यपि सापेक्षिक दृष्टि से उनका महत्व नहीं रहता। यदि साहित्यिक एवं दरबारी भाषा इन सहयोगिनी बोलियों के सतत संसर्ग से शक्ति नहीं प्राप्त करती तो जनप्रिय भाषा उस पर हावी हो जाती है।''[4]

पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने भाषा के विकास को नदी के प्रवाह से समझने की कोशिश की है। इनके अनुसार, ''जैसे पहले गंगाप्रवाह में से संस्कृत का नरौने का बाँध बांधकर नपे-कटे किनारों कि नहर बना ली गई थी वैसे फिर मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री की नहरें छांट ली गई, जिसके किनारे भी संस्कृत की प्रकृति की तरह काटे तराशे गए... बाँध से बचे हुए पानी की धाराएँ मिलकर अब नदी का रूप धारण कर रही थीं। उनमें देशी की धाराएँ भी आकर मिलती गईं। देशी और कुछ नहीं, बाँध से बचा हुआ पानी है या वह जो नदी मार्ग पर चला आया बाँधा न गया। उसे भी कभी-कभी छानकर नहर में ले लिया जाता था। बाँध का जल भी रिसता रिसता इधर मिलता आ रहा था। पानी बढ़ने से नदी की गति वेग से निम्नाभुमिखी हुई, उसका अपभ्रंश (नीचे को बिखरना) होने लगा...इस तरह भाषाप्रवाह सच्ची गंगा-अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के रूप में बहता गया।''[5] गुलेरी जी के अनुसार- विक्रम की सातवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही। इनका यह भी मानना था कि अपभ्रंश के कई भेद नहीं बल्कि वह देश भर की भाषा थी जिसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। वास्तव में वह मानते थे की एक समय में एक ही भाषा ही

साहित्यिक और संपर्क भाषा के रूप में प्रभुत्व की स्थिति में रही है। धीरे-धीरे अपभ्रंश में देशज तत्वों का प्रभाव बढ़ता गया और ग्यारहवीं शताब्दी के बाद यह 'पुरानी हिन्दी' में परिणत हो गई। माँ और बेटी के रूपक का सहारा लेता हुए बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में अपभ्रंश और आधुनिक आर्यभाषाओं के सम्बन्ध पर अपना मत स्पष्ट करते हुए तेसितोरी के अनुसार- 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' शौरसेनी अपभ्रंश की पहली संतान है और साथ ही उन आधुनिक बोलियों की माँ है जिसे गुजराती तथा मारवाणी नाम से जाना जाता है।'[6]

लेकिन वास्तविकता यह है कि भाषा का विकास इतना कृत्रिम नहीं होता है। शिवप्रसाद सिंह 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' में नव्यभारतीय आर्य भाषाओं के विकास के संदर्भ मे कहते हैं-'इस प्रकार बारहवीं से चौदहवीं तक के काल मे दो प्रकार की भाषायें प्रचलित थीं। मध्यदेश के अपभ्रंश का वह रूप जो सर्वमान्य साहित्यिक अपभ्रंश के रूप में विकसित हुआ था और जो अब प्राकृत पैंगलम् की भाषा की शैली मे एक नये प्रकार की कृत्रिम दरबारी भाषा का निर्माण कर रहा था और दूसरा वह रूप जो लोकभाषा से उद्भूत होकर जनता में व्याप्त हो रहा था। जिसका पता उक्तिव्यक्ति प्रकरण से चलता है। बारहवीं से चौदहवीं शती के काल मे ब्रजभाषा में ये दोनों रूप प्रचलित थे।...अवहट्ठ की रचनाओं मे प्राकृत पैंगलम, सन्देशरासक, कीर्तिलता, नेमिनाथ चौपाई, आदि अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं जिनकी भाषा में ब्रजभाषा के बीज वर्तमान है।'[7] भाषा एक लम्बे समय तक समाज में विद्यमान रहती है और एक समय आने पर वह साहित्यिक भाषा बन जाती है इस क्रम में वह अपने पूर्ववर्ती भाषा के व्याकरण रूप तत्व और ध्वनि, शब्द भण्डार आदि से प्रभावित होती है। इस बात को खड़ी बोली के उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। खड़ी बोली का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ लेकिन खड़ी बोली के नमूने अमीर खुसरो के समय से मिलने लग जाते हैं। एक समय पर अवधी जब साहित्यिक भाषा थी तब तक भी अपभ्रंश की रचनाएं लिखी जाती रही उसी के समान्तर ब्रज भाषा थी। विद्वानों ने चौदहवीं से लेकर सोलहवीं शताब्दी के बीच चार प्रकार की भाषाएं दिखाई पड़ती हैं-

1. सधुकड़ी कहे जाने वाली खड़ी बोली के ढाँचे पर राजस्थानी तथा पंजाबी मिश्रित भाषा।
2. पूरबी अवधी काशिका आदि।
3. काव्य भाषा यानी ब्रज।
4. चारणों की पिंगल भाषा।

सूरदास ने सूरसागर में जिस तरह की भाषा का प्रयोग किया है उसे देखकर आचार्य शुक्ल ने कहा था कि यह भाषा इतनी उन्नत और परिमार्जित है कि इससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इससे पहले भी ब्रजभाषा में रचनाएँ लिखी जाती रही होंगी। शुक्ल जी ने जिस समय सूरसागर की परिमार्जित भाषा को देखकर यह अनुमान किया था कि इस भाषा की कोई परम्परा जरूर रही होगी उस समय तक बहुत सारे ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आये थे इसलिए साक्ष्यों के अभाव में उन्हें यह बात कहनी पड़ी लेकिन उसके बाद विद्वानों ने ब्रजभाषा के विपुल भण्डार को खोज निकाला। ब्रजभाषा की सबसे पुरानी ज्ञात कृति प्रद्युम्नचरित है जिसकी रचना 1354 ईस्वी में हुई। 1396 ईस्वी में जाखू मनियार ने हरिश्चन्द्र पुराण लिखा। विष्णुदास की 'रुक्मिणीमंगल', 'सनेह लीला' इसी काल की लिखी हुई हैं जो अपने भाषा के रूप में ही नहीं अपने भाव के रूप में भी सूरदास के अग्रणी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

तब ऊधो आये यहाँ श्री कृष्ण चंद के धाम।
पाय लागि वंदन कियो बोलत ले ले नाम।
ग्वाल वाल सब गोपिका ब्रज के जीव अनन्य।
तुम्हीं पाय लागन कह्यो सुनो देव ब्रह्मान्य।
नन्द जसोदा हेत की कहिये कहा बनाय।
वे जानै कै तुम भले मो पै कह्यो न जाय।
(सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ 151)

वास्तव में यह कोई एक दिन की प्रक्रिया नहीं थी जिसके कारण लोकभाषा अस्तित्व में आयी। यह एक लंबी प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए शेल्डन पोलाक ने सुझाया है कि वर्तमान प्रभावकारी स्वरुप ग्रहण करने के लिए देशी भाषाओं को कई चरणों से गुजरना पड़ता है इसमें पहला चरण वह है जब इन भाषाओं में लेखन क्रिया प्रारम्भ हुई। दूसरा चरण वह है जब इन भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगा। पोलाक के अनुसार उपरोक्त दोनों चरणों के बीच समयांतराल देशी भाषाओं के विस्तार का एक प्रमुख अभिलक्षण है। पोलाक ने 1000 ईस्वी के बाद के समय को 'वर्नाक्यूलर मिलेनियम'[8] कहा है। यही कारण है कि अपभ्रंश साहित्य से ही देशी भाषाओं का रूप मिलने लगता है। 'उत्तरी भारत में प्रचलित नवीन भारतीय आर्य भाषाओं के पूर्व रूप का अनुसंधान हम प्राकृत और अपभ्रंश के छंदोंशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्राकृत पैंगलम्' में भी कर सकते हैं। प्राकृत पैंगलम् का संकलन काल चौदहवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है क्योंकि इस ग्रन्थ में विभिन्न छंदों के उदाहरण के लिए कुछ ऐसे पद्य रूप उधृत हैं जो चौदहवीं शताब्दी से पुराने नहीं हो सकते, फिर भी यह स्पष्ट है कि यह बात अन्य सभी पद्यों के लिए लागू नहीं हो सकती। ...व्यवहारिक निष्कर्ष यह है कि हमारे लिए प्राकृत पैंगलम् की भाषा हेमचंद के अपभ्रंश और आधुनिक भाषओं की प्रारंभिक अवस्था के बीच वाले सोपान का प्रतिनिधित्व करती है और इसे दसवीं से ग्यारहवीं अथवा संभवतः बारहवीं शताब्दी के आस-पास की भाषा कहा जा

सकता है।'[9] लेकिन व्यवस्थित रूप से देशी भाषा का प्रयोग चंदायन में देखने को मिलता है जहाँ पर भाषा रोड़े नहीं अटकाती, बल्कि अवधी का मिठास देती है। इससे पहले भी वर्ण रत्नाकर (14वीं सदी का पूर्वार्ध), 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण' और 'राउलवेल' जैसी कृतियों में भी अवधी का प्रयोग मिलता है और इसके लिए कई कारण उत्तरदायी हैं, परम्परा का विकास, तत्कालीन सामाजिक परिवर्तन, मुस्लिमों का आगमन, सूफी मुसलमान कवियों द्वारा एक भाषा का चुनाव करके उसमे साहित्यिक रचना के लिए प्रवृत होना। सूफी कवियों ने जब साहित्यिक लेखन का प्रारम्भ किया उस समय उन पर परम्परा का दबाव कम था इसलिये उन्होंने सहजता के साथ लोक कथाओं के साथ लोकभाषाओं को भी अपनाया। कम से कम अवधी भाषा के विकास में सूफी मुसलमान कवियों की भूमिका से किसी को इन्कार नहीं हो सकता है। इस रूप में भी अवधी के विकास को देखे जाने की जरूरत नहीं है। नव्य भारतीय भाषाओं के उद्भव का काल दसवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक माना जाता है। इस बात से किसी को इन्कार नहीं है। वास्तव में यह समय काफी उथल-पुथल का समय रहा है। लगातार होते रहने वाले आक्रमण और परस्पर राजाओं के बीच होने वाले युद्ध से समाज मे स्थिरता और स्थाईत्व नहीं हो पा रहा था ऐसे में कुछ विद्वान मुसलमानों के आक्रमण को नव्य भारतीय भाषाओं के विकास में सहायक मानते हैं। चाटुर्ज्या के मतानुसार अगर भारतीय जीवन धारा अपने स्वाभाविक गति से विकासशील रहती उसमें मुसलमान आक्रमण के रूप में किसी भी तरह का क्रमभंग न आया होता तो नव्य भारतीय भाषाओं का विकास दो, तीन शताब्दी बाद होता। कुछ विद्वान चाटुर्ज्या के इस मत से सहमत नहीं हैं पर इस बात से इन्कार नहीं किया जो सकता है कि भारतीय साहित्य के विकास की जो धारा प्रवाहमान थी उसमें हलचल मचाने का काम इन आक्रमणों ने किया जिसके फलस्वरूप भाषाओं का यह विकास कुछ तीव्र गति से हुआ। परन्तु उत्तर भारत में विकसित होने वाली नव्य भारतीय भाषा अवधी के विकास में जितना योगदान मुसलमान कवियों का है उतना किसी का भी नहीं। रामचरितमानस में प्रयुक्त भाषा अवधी भाषा का सर्वोत्कृष्ट नमूना है लेकिन भाषा को इस विकास को दाउद, मंझन, कुतुबन और जायसी के बिना समझा ही नहीं जा सकता है। हालांकि लोकभाषाओं का विकास केवल किसी आक्रमण के फलस्वरूप हुआ है, ऐसा नहीं है। भाषाओं में परिवर्तन इतनी सीधी प्रक्रिया नहीं है।

चंदायन की भाषा के संदर्भ में विद्वानों में परस्पर विरोध है। जहाँ एक वर्ग के विद्वानों का आग्रह चंदायन की भाषा को विशुद्ध ठेठ अवधी मानने के पक्ष में है वहाँ दूसरे वर्ग के विद्वानों का मत इसे मागधी, अर्ध मागधी और शौरसेनी अपभ्रंशों से प्रभावित विकासकालीन पूर्वी अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का मिश्र रूप मानने के पक्ष में है। पहले वर्ग में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय, शम्भूनाथ पाण्डेय, विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी और डॉ. माताप्रसाद गुप्त हैं। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने रामपुर पृष्ठ की चार पंक्तियों के आधार पर यह मत प्रकट किया कि 'मुल्ला दाउद ने 1370 ईस्वी में अपनी चंदायन नामक प्रेमगाथा की रचना शुद्ध अवधी में रामचरितमानस से लगभग दौ सौ वर्ष पूर्व और पदमावत से पौने दो सौ वर्ष पहले की थी।'[8] चंदायन की भाषा को अवधी मानते हुए डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय कहते हैं- 'डलमऊ क्षेत्र में अवधी बोली जाती थी। अतः जनता में अपने सन्देश प्रसारित करने के लिए मुल्ला दाउद ने अवधी का ही चयन करना उपयुक्त समझा होगा ...सूफी कवि जिस क्षेत्र में रहे हैं वहाँ की भाषा में काव्य लिखते रहे हैं। पंजाब के सूफी कवियों ने ससिपुन्नों, हीर-राँझा आदि कथाओं को सूफियाने ढंग से पंजाबी में लिखा। इसी प्रकार दौलत काजी, अलाउल आदि कवियों ने जो बंगाल के रहने वाले थे, बंगला में लिखा, अतः डलमऊ का कवि अवधी क्षेत्र में रहकर अवधी में लिखता है तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।'[9] 'आदिकालीन हिन्दी साहित्य' नामक अपनी पुस्तक में डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय चंदायन के संदर्भ में लिखते हैं, परमेश्वरी लाल गुप्त चंदायन की भाषा को दामोदर पंडित कृति उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण की भाषा से कुछ भिन्न पाते हैं और अब्दुर्कादिर बंदायूनी के कथन के आधार पर वे इसे हिन्दवी में रचित बताते हैं। परन्तु इसकी भाषा को अवधी से भिन्न नहीं माना जा सकता है।[10]

विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी ने अपने 'प्रारम्भिक अवधी' पुस्तक में चंदायन की भी चर्चा की है और अवधी भाषा की विशेषता बताते हुए प्राकृत पैंगलम के साथ लोरकहा में भी उन विशेषताओं को दिखाया है जैसे-

1. प्राकृतपैंगलम में अवधी के कई सर्वनाम प्रायः ज्यों के त्यों मिलते हैं-

उत्तम पुरुष हउं
जो हउं रंग सोई हउ राआ।
हउं अस बोलिउं चतुर सयानी। (लोरकहा)

2. अपभ्रंशोंत्तर भाषा में लुप्तविभक्तिक पदों का प्रयोग प्रचुरता से होने लगा था। ये प्रयोग अन्य कई नवीन भारतीय आर्य भाषाओं की भांति अवधी में भी मिलते हैं। प्राकृत पैंगलम में उधृत कई छन्द में .

कर्म - जे गांजिअ गोडाहिवइ राउ।
हाथ कारि किन्टा मुख करा। (लोरकहा)

माताप्रसाद गुप्त भी चंदायन की भाषा को अवधी मानते हैं। उनके अनुसार, ''इस रचना की भाषा अवधी है

और ठेठ अवधी है...दाउद की रचना में अवधी के अतिरिक्त किसी भी मध्ययुगीन या आधुनिक आर्य भाषा के तत्व ढूँढना बेकार होगा।'' चंदायन की भूमिका के अपने पाठ से चंदायन के कुछ व्याकरण रूपों को लेकर दामोदर कृत 'उक्तिव्यक्ति प्रकरण' और जायसी के पदमावत की तुलना में रचना की भाषा का रूप स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हुए डॉ. माता प्रसाद गुप्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि- ''चार छः रूपों में ही रचना की भाषा 'उक्तिव्यक्ति प्रकरण' से भिन्न दिखाई पड़ती है अन्यथा वह उसके समान अथवा उससे विकसित प्रमाणित होती है। जायसी की भाषा से ये मिलती-जुलती होते हुए भी किंचित पूर्व की स्थिति का आभास देती है।''[11]

दूसरे वर्ग के विद्वानों में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद ने लिखा है- 'चंदायन हिन्दी भाषा के विकास कई दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। भाषा का एक सर्वजन सुलभ और सुबोध रूप खड़ा करने के लिए इसमें विभिन्न भाषा क्षेत्रों में प्रचलित रूपों के मिश्रण का कुछ ऐसा ही आदर्श अपनाया गया है जैसा की कबीर आदि संत कवियों की परम्परा में भी हमें मिलता है। ...एक ओर कहंवा, हमार तोर, कतेत, जाई, फिन आदि भोजपुरी रूप हैं। तो दूसरी ओर जाइ, निसरह, आदि मगही रूप। यदि एक ओर आइन्ह, नाथ, हुत केर आदि अवधी रूप है तो दूसरी ओर का, कर रहा है, किया करूं, कहुं आदि शुद्ध खड़ी बोली रूप के रूप है।'[12] इस मत का समर्थन मनेर-शरीफ प्रति की खोज करने वाले प्रो. सैयद हसन अस्करी ने भी किया है। ''वह इसे मागधी अर्धमागधी ओर शौरसेनी प्राकृतों से प्रभावित, पूर्वी अवधी तथा खड़ी बोली के तत्वों से युक्त भाषा मानते हैं।''[13] चंदायन की भाषा को अवधी मानने वाले डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय के कथन का खंडन करते हुए डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त लिखते हैं-''चंदायन की रचना न तो अवधी वातावरण में हुई थी ओर न ही उसका आरंभिक प्रचार अवधी क्षेत्र के बीच था।' जिस 'उक्तिव्यक्ति प्रकरण' के साथ तुलना करते हुए डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने चंदायन की भाषा को प्रायः उसके समान अथवा उससे विकसित प्रमाणित किया है उसी से तुलना करते हुए डॉ. परमेश्वरी लाल ने कहा है कि- ''चंदायन कि भाषा 'उक्तिव्यक्ति प्रकरण' की भाषा से सर्वथा भिन्न है यदि 'उक्तिव्यक्ति प्रकरण' की भाषा अवधी है तो चंदायन की भाषा अवधी नहीं है। दाउद ने अपने काव्य के लिए ऐसी भाषा को अपनाया था जो अपभ्रंश साहित्य की शब्द परम्परा से विकसित होकर व्यापक रूप से देश के विस्तृत भू-भाग में प्रचलित थी।''[14] यह बात कितनी अजीब है की जिस 'उक्तिव्यक्ति प्रकरण' के सहारे माता प्रसाद गुप्त ने चंदायन की भाषा को अवधी माना है उसी ग्रन्थ के सहारे परमेश्वरी लाल गुप्त ने चंदायन कि भाषा को अवधी नहीं माना है। इससे यह तो स्पष्ट है कि तथ्यों को अपने विचारों के अनुरूप ढालने की कोशिश की गई है। फिर भी परमेश्वरी लाल गुप्त ने जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं उनकी संख्या बहुत कम है, इसके विपरीत माताप्रसाद गुप्त ने पर्याप्त उदाहरणों द्वारा अपने मत की पुष्टि की है। और इनके अवधी मानने का आधार केवल उक्तिव्यक्ति प्रकरण की भाषा ही नहीं है अपितु जायसी का पदमावत भी है जिसके बारे में तो विद्वानों को कोई मतभेद नहीं है सभी एकमत से इसकी भाषा को अवधी मानते हैं। 'चंदायन की भाषा' शीषर्क लेख में डॉ. कैलाश ने भाषा की दृष्टि से 'चंदायन को पदमावत और रामचरितमानस का पूर्वज मानते हुए, इसे अवधी भाषा के विकासक्रम की एक प्रारम्भिक कड़ी के रूप में देखा है।'[15] वास्तविकता क्या है, इसका निर्धारण रचना के पाठ के माध्यम से ही संभव है।

अवधी के सर्वनाम निम्नलिखित रूपों में मिलतें हैं- एक वचन में मइ, मो, हउं, माहिं, मोर का प्रयोग तथा बहुवचन में हम, हमहिं, हमइ, हमार का प्रयोग मिलता है-

जाति गुवार गोवरू मोर ठाऊं।
धनि चांदा मोहि लोरिक नाउं। (कड़वक 327)
चांद मोर होत परान।
मइं का करबि अपान (कड़वक 315)
नाग कीन्ह हम बारिन्ह।
पात लीन्ह सभ तोरि। (कड़वक 150)

जायसी में भी इसी तरह के प्रयोग मिलते हैं-

जोबन मोर,
पुरवहु मोरि दरस कइ आसाय। (पृष्ठ संख्या 370)

चंदायन में परिणाम विशेषण के लिए बहुल, सभ, बड, सभ, अउर का और संख्या वाचक विशेषण के लिए 'एक' तथा 'सात' का प्रयोग मिलता है-

देहौं (हउं) सभ बलिहारइं तोरि। (कड़वक 326)
पात लीन्ह सभ तोरि। (कड़वक 150)
कठ उंबरि पाकरि बहु तोरी। (कड़वक 150)

रचना में सम्बन्ध वाचक विशेषण जो का कई बार प्रयोग मिलता है।

जो रे बस्तु मईं बोली। (326)

दाउद ने प्रश्नवाचक विशेषण पुल्लिंग कवन स्त्रीलिंग में कवनि का प्रयोग किया है।

कवन लोग तुम्हं गारुरि पूछइ (कड़वक 327)
कवन देस हुत आए गोसाई (कड़वक 332)
कवनि निंदि तुम्ह सुतिहू चांदा। (कड़वक 319)

सामान्य भूत प्रथम पुरुष एकवचन पुल्लिंग में एउं लगाकर क्रिया बनाई गई है। तृतीय पुरुष एकवचन पुल्लिंग में आ, अ, एअ, एसि, आन, ईन्ह, इन, इत और उत लगाकर बने हैं तथा स्त्रीलिंग में अइ, अई, इसि, आनी लगाकर क्रिया बनाई जाती है।

पिता मोर जउ मोहि निसतारिस। (कड़वक 326)

गुनी कहा जिनि जीउ डुलावसि। (कड़वक 327)

अब जउ पिरिति नहिं ओर निरीबाहउं। (कड़वक 317)

चंदायन में सयोंजक अव्यय अउ, अरु, जनु, पइ, बरु, ओर, कइ का प्रयोग मिलता है।

कइ रे कुदिन हम पायंतु धरा।

कइ रे कलापु मांजरि कर परा। (कड़वक 319)

कालवाचक क्रिया विशेषण के लिए अब, जउ, फुनि तथा बहुरि का प्रयोग मिलता है।

हउं फुनि चांद हरी जउ पावउ।

लंका छाडि पलंका धावउं। (कड़वक 320)

चंदायन की उपरोक्त विशेषता अवधी भाषा की प्रमुख विशेषता है। यह विशेषता तुलसीदास के रामचरितमानस में भी मिलती है और जायसी के पदमावत में भी।

संदर्भ

1. मैक्समूलर, भाषा विज्ञान अनुवाद, उदयनारायण तिवारी, मोतीलाल बनारसीदास, 1970, पृष्ठ संख्या 34, रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 177 और 229-230
2. आर. पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, अनुवाद डॉ. हेमचंद्र जोशी, प्रकाशन 1958, पृष्ठ संख्या 1-2
3. मैक्समूलर, भाषा विज्ञान, अनुवाद उदयनारायण तिवारी, मोतीलाल बनारसीदास, 1970, पृष्ठ संख्या 34
4. गुलेरी रचनावली, खंड 2, डॉ. मनोहरलाल, जगतराम एंड संस, 2009, पृष्ठ संख्या 23 और 67
5. एल.पी. तेसितोरी, पुरानी राजस्थानी, अनुवाद नामवर सिंह, वाणी प्रकाशन, 1998, भूमिका 15-16
6. शेल्डन पोलाक, द लैंग्वेज आव द गाडस इन द वर्ल्ड आव मेन : संस्कृत कल्चर एण्ड पावर इन प्री मार्डन इण्डिया, परमानेंट ब्लैक, 2007
7. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पदमावत, भूमिका, पृष्ठ संख्या 28
8. डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यानक काव्य, पृष्ठ संख्या 259
9. शम्भूनाथ पाण्डेय, आदिकालीन हिन्दी साहित्य, पृष्ठ संख्या 145
10. माता प्रसाद गुप्त, चान्दायन, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ संख्या 72
11. परमेश्वरी लाल गुप्त, चंदायन, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1965, पृष्ठ संख्या 33
12. भारतीय साहित्य, आगरा, जनवरी 1956, पृष्ठ संख्या 190-191
13. परमेश्वरी लाल गुप्त, चंदायन, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1965, पृष्ठ संख्या 34
14. भारतीय साहित्य, आगरा, अंक 1-2

डॉ. रीता दूबे

असिस्टेंट प्रोफेसर,

सी.एम. कॉलेज, दरभंगा

कविवर गणेशदत्त सारस्वत का बाल-साहित्य

–डॉ. सन्ध्या राय
–जिज्ञासा तिवारी

बीजक शब्द : अक्षुण्ण, अभूतपूर्व, अप्रतिम, मर्मज्ञ, उपदेशित।

परिचय : सागर का नाम लेते ही उसका अगाध रूप मन में प्रतिबिम्बित हो उठता है। गंगा का स्मरण होने पर उसका मातृस्वरूप झलकने लगता है। गंगा जब भौतिक रूप से सागर में मिल जाती है तब भी अपने गौरव को अक्षुण्य रखती है। साहित्य के सागर में गणेशदत्त सारस्वत गंगा स्वरूप है। वे साहित्य के गद्य व पद्य दोनों में समान अधिकार रखते थे लेकिन वे मूलतः कवि-हृदय थे। उन्होंने विविध विषयों पर अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है और सम्पादक के रूप में भी अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की। हिन्दी साहित्य की ऐसी कोई विधा नहीं जिस पर उनकी लेखनी ने अपना जौहर न दिया हो। तब ऐसे बहुविधि प्रतिभा के धनी व्यक्ति से बाल-साहित्य का क्षेत्र कैसे अछूता रह सकता है। उनका बाल-काव्य संग्रह बाल मनोविज्ञान का अप्रीतम उदाहरण है।

बच्चे राष्ट्र के भावी नागरिक होते हैं, उन्हीं पर राष्ट्र का भविष्य निर्भर होता है। एक राष्ट्र चिंतक होने के कारण डॉ. सारस्वत बालकों के उचित मार्गदर्शन देना अपना नैतिक दायित्व मानते थे। बाल मनोविज्ञान के मर्मज्ञ डॉ. गणेशदत्त सारस्वत ने बालकों को उपदेशित एवं संस्कारित करने के लिए कई बालकाव्य-संग्रहों की रचना की। जिनमें प्रमुख हैं- ''जागो भैया', 'खेलें-खेल', 'करनी ठीक रखों', 'डाक्टर बाबा', 'गुड़िया है हो गयी सयानी' आदि।

कविवर गणेशदत्त सारस्वत के बाल-साहित्य के बारे में डॉ. कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह लिखते हैं कि ''डॉ. गणेशदत्त सारस्वत बहुमुखी प्रतिभा के धनी, समीक्षक, गहन अनुसंधानकर्ता एवं सांस्कृतिक विषयों के गम्भीर विचारक और लेखक हैं। डॉ. सारस्वत ने बालकों के लिए कवितायें लिखकर एक नवीन साहित्यिक क्षेत्र में सफल अभियान आरम्भ किया है। बालकों के लिए लिखी गई सभी कवितायें सरल और सरस हैं। सभी कविताओं में बालकों के हृदय को उल्लसित करने वाले भावों की अभिव्यंजना की गई है। सभी कवितायें बालकों के कोमल मानस में जीवन के उच्चतम मूल्यों और श्रेष्ठ आदर्शों को प्रतिष्ठित करने के लिए लिखी गई हैं।''

''जागो भैया' काव्य संग्रह[1], बालकाव्य संग्रह में संकलित कविता 'करें अर्चन हम' इसमें विद्या की देवी सरस्वती के रूप गुण की व्याख्या की गयी है। अति सरल भाषा में होने के कारण बच्चे बहुत आसानी से पढ़कर कण्ठस्थ कर सकेंगे, साथ माँ सरस्वती के रूप, गुण, वैभव से परिचित भी होंगे, जो एक दृढ़ एवं स्थायी संस्कार बनकर उनके मन-मस्तिष्क में विराजमान हो जायेगा।

''आओ, करें अर्चना हम।
जिसकी महिमा सब जन गाते।
भक्ति-भाव से शीश झुकाते।
जिसकी पूजा विफल न होती-
हंस कि जिसका चुगता मोती।''[2]

बच्चों को गिनती के माध्यम से विभिन्न आवश्यक जानकारी कैसे कराई जा सकती है, कैसे उन्हें संस्कारित किया जा सकता है। खेल-खेल में समाज की कुरीतियों को कैसे दूर किया जा सकता है। वर्तमान समाज में छोटे बच्चों पर अनावश्यक बोझ अथवा पूर्वाग्रहों का बोझ न डाला जाये, बल्कि उन्हें विकास का मार्ग स्वयं प्रशस्त करने का अवसर प्रदान किया जाये ऐसा मानकर कवि ने लिखो-

''दादा जी! चलकर मम्मी को- कुछ तो अब समझाओ।
बिना बात के बात न जाने- क्यों वे रूठी रहती?''[3]

''औरों की सुखी बनाओ' कविता के माध्यम से कवि ने बच्चों को सन्देश दिया है, प्रेम से रहो, किसी के बहकावे में

न आओ, घृणा छोड़कर प्रेम से रहो, सच्चे मार्ग पर चलो।

''आपस के झगड़े छोड़ो।
कटुता के घट को फोड़ो।
सब पर तुम स्नेह लुटाओ-
इन्सानी रिश्ते जोड़ो।''[4]

'शुचि वन्दन' कविता में देश की स्वाधीनता के लिए हँस-हँस कर बलिवेदी पर चढ़ जाने वाले अमर हुतात्माओं का पुण्य स्मरण करते हुए उनकी वन्दना की गयी है। बच्चों में देश-भक्तों के प्रति प्रेम और आस्था जगाने में यह कविता ही निश्चय की पूर्ण समर्थ है।

''सर पर बाँध कफन जो निकले,
आजादी के दीवाने बन।
ऐसे अमर शहीदों का हम,
आओ आज करें शुचि वन्दन।''[5]

शिक्षा के महत्त्व को बताते हुए शिक्षित होने के लिए प्रेरित करते हुए कवि डॉ. गणेशदत्त सारस्वत ने लिखा है-

''अगर तुम्हें बनना है कुछ तो-
पढ़ो-लिखो भरपूर।
जग में मान वही पाते हैं।
गान उन्हीं के सब गाते हैं।
पढ़े-लिखे जो होते वे ही-
दुनियाँ में पूजे जाते हैं।''[6]

'मेरी दादी' कविता शीर्षक स्वाभाविक तथा आकर्षक है। दादी की दिनचर्या दर्शाती हुई कुछ पंक्तियाँ-

''रोज सुबह उठ जाती जल्दी, वर्षा हो गर्मी या सर्दी।
कभी नहीं अलसाती हैं वे, मल-मल खूब नहाती हैं वे॥''[7]

'गुड़िया है हो गयी सयानी' कविता कवि ने शिशुओं की प्रबल स्वाभाविक सोच को चित्रित करते हुए लिखा है-

''गुड़िया है हो गयी सयानी, दादी जी।
जल्दी ही करवा दो इसकी, शादी जी।''[8]

डॉ. सरस्वती जी अच्छे संस्कारों से युक्त बच्चों को देखना चाहते हैं। टी.वी. जैसे लोकप्रिय संचार साधनों का कैसे सदुप्रयोग किया जाये। कवि ने 'अच्छे बच्चे' कविता के अन्तर्गत शिशु के माध्यम से कुछ ऐसे कहलावाया-

''हाँ यह मान अवश्य रहा हूँ, दीवानापन ठीक नहीं है।
पढ़ने का जो समय हमारा, उसे गँवाना ठीक नहीं है।
सीमा में ही सबकुछ अच्छा, होता है अनुभव बतलाता।
टी.वी. मम्मी! है भाता।''[9]

देश भक्त कवि ने कविता के माध्यम से बच्चों में देश भक्ति के भाव भरने का बड़ा ही सुन्दर और समुचित प्रयास किया है। 'देश हमारा' कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''जन्मभूमि जननी यह अपनी
हम इसकी सन्तान हैं।
यह भारत है देश हमारा-
हम इस पर कुर्बान हैं।''[10]

देश का यशोगान कर सारस्वत जी ने बच्चों के मन में देश के प्रति प्रेम-लगाव, उसके प्रति निष्ठा एवं आस्था के भाव भरने का प्रयत्न किया है। 'यह भारत है देश हमारा' शीर्षक की पक्तियाँ-

''इसकी नदियों का मीठा जल।
बहता रहता करता कल-कल।
स्वर्ग सरीखी इस धरती का-
हरा-भरा करता है आँचल।''[11]

मानवता से प्यार करने की प्रेरणा देने के क्रम में कवि आकाश में झिलमिलाते असंख्य सितारों, चाँद और सूरज का आदर्श बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। असंख्य सितारे आकाश में गतिमान हैं किन्तु कभी भी आपस में टकराते नहीं। मानों वे मनुष्य को निरन्तर अपने कार्यों में तत्पर रहने और आपस में भी न लड़ने का उपदेश दे रहे हैं।

''आसमान में देखो तारे, झिलमिल-झिलमिल करते हैं।
हिलमिल कर रहते आपस में, नहीं कभी भी लड़ते हैं।
चाँद और सूरज दोनों ही, बारी-बारी से आते।
भेदभाव के बिना रोशनी, सबको हैं, ये दे जाते।''[12]

व्यक्ति के जीवन में समय का बहुत महत्त्व होता जो समय के महत्त्व को नहीं समझता वह अपने जीवन पथ अग्रसर नहीं हो पाता। जो समय के महत्त्व को समझकर मेहनत करता है। वह व्यक्ति अपने जीवन में सफल होता है। गणेशदत्त सारस्वत कविता के माध्यम से बाल मन को समय के महत्त्व को बताते हैं-

''समय बताती हर प्राणी को
कहती व्यर्थ नहीं खोओ।
अगर तुम्हें बनना है कुछ तो
मेहनत की फसलें बोओ।''[13]

मानव स्वभाव होता है कि वह अपनी वस्तुओं को बहुत सहेज कर रखता है, लेकिन वह वस्तु किसी अन्य की या उसे पता चले की ये वस्तु सरकारी है तो वह उसकी कद्र नहीं करता है। कवि बच्चों को राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा की शिक्षा भी अपनी कविता के माध्यम से देते हैं-

''इसलिए कहती है मैया।
सुनो ध्यान से कुँवर कन्हैया।
रेल है सम्पत्ति राष्ट्र की-
रखो सुरक्षित इनको भैया।''[14]

राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति निरन्तर सजग एवं चिन्तन शील कवि भला अखबारों के महत्त्व को कैसे भूल सकता है।

'दुनियाँ भर के समाचार ले-
कर आता अखबार है।
ज्यों ही होती सुबह सभी को
लगती तलब विशेष है।''[15]

आज के समय के विद्यालय बच्चों पर पुस्तकों का भार बहुत बढ़ा दे रहे हैं। विषय की विविधता उससे

संबंधित पुस्तकों की संख्या अधिक हो जाने के कारण बच्चों के घर खेलने का अवसर नहीं मिल पा रहा है। आज की शिक्षा प्रणाली पर चुटीला व्यंग्य करते हुए कवि अपना भाव व्यक्त किया है-

''अगर विषय थोड़े होते तो, जल्दी छुट्टी मिलती।
नहीं रगड़ना पड़ता इतना, डाट न इतनी पड़ती।''[16]

कवि ने बच्चों के मन में डॉक्टर-वैद्य के प्रति स्वाभाविक प्रेम जगाने का प्रयास 'डॉक्टर बाबा' कविता में किया है-

''डॉक्टर बाबा हैं भैया ये-
इन्हें प्रणाम करो
कोट सफेद सदैव पहनते।
'बैग' दवाओं का हैं रखते।
आला लटकाये गदर्न में-
सबसे हँस-हँस बातें करते।''[17]

'करनी ठीक रखो' कविता के माध्यम से विद्वान कवि ने राम के गुणों को बताकर उनके जैसा बनने की प्रेरणा दी है-

''माँ बतलाओं राम किसलिए पूजे जाते हैं?
ऐसा क्या किया कि जो भगवान कहलाते हैं?
माँ बोली- अच्छे काम करोगे तो सम्मान बड़ा होगा।
पूजा जाओगे धरती पर नाम बड़ा होगा।
इसीलिए कहता हूँ करनी ठीक रखो सदैव रखो।
जीवन के चारो फल पाकर यश की सुधा चखो।''[18]

परिश्रम में इतनी ताकत होती है कि वह असम्भव कार्य भी परिश्रम के बल पर सम्भव हो जाता है। किसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर उसके प्रति समर्पित होकर पूर्ण निष्ठा के साथ किया गया श्रम सदैव फलीभूत होता है।

बाल-साहित्यकार गणेशदत्त सारस्वत बच्चों को परिश्रम करने की सीख अपनी कविता 'मेहनत का तुम पाठ पढ़ो' के माध्यम से देते हैं।

''अगर तुम्हें बनना है कुछ तो-
मेहनत का तुम पाठ पढ़ो।
जग में मान उसी का होता।
व्यर्थ समय जो कभी न खोता।
जिसे भरोसा निज बाहों का-
अपना बोझ स्वयं जो ढ़ोता।''[19]

'औरों को सुखी बनाओ' कविता के माध्यम से कवि ने बच्चों को सन्देश दिया है कि प्रेम से रहो, सच्चे मार्ग पर चलो। यथा-

''आपस के झगड़े छोड़ो।
कटुता के घट को फोड़ो।
सब पर तुम स्नेह लुटाओ-
इन्सानी रिश्ते जोड़ो।''[20]

बच्चों का बचपन में चन्दा मामा से बहुत लगाव होता है। माँ अपने बच्चे को चन्दा मामा की कहानियाँ, गीत सुनाकर उन्हें भोजन करवाती है, दूध पिलाती है। इससे बच्चों का चन्दा मामा के प्रति प्रेम भी होता है। पर इनके मन में ये बात रहती है कि माँ रोज चन्दा मामा को बुलाती है लेकिन वे आते नहीं है। इसी बाल सोच का वर्णन सारस्वत जी अपनी कविता में करते हैं-

''कैसे चन्दा मामा हो तुम
फिरते रूठे-रूठे।
या तुम झूठे या फिर-
मम्मी पापा झूठे।''[21]

छुट्टियाँ समाप्त होने के उपरांत जुलाई में जब विद्यालय खुलते हैं, तो बच्चों में एक नयी उमंग, प्रसन्नता दृष्टिगत होती है। नयी कक्षा, नया झोला, नयी पुस्तकें देखकर बाल मन प्रसन्न होता है। नये मित्रों से मिलने का उमंग साथ ही छुट्टियों में किये गये सैर-सपाटों की याद के साथ नये शैक्षणिक सत्र का स्वागत करते हैं।

''बीता जून, जुलाई आई।
फिर से चालू हुई पढ़ाई।
विद्यालय खुल गये हमारे।
छूटे सैर-सपाटे सारे।''[22]

'जीत उन्हीं की होती जग में, जो मन से हैं कभी न हारे' के माध्यम से कवि ने 'मनः एवं मनुष्याणाम् कारणं बन्धमोक्षयोंः' जैसे गूढ़ सिद्धांत को सरल भाषा में बच्चों को समझाया है।

''कदम बढ़े तो रहें बढ़े ही-
रूकने का तुम नाम न लो।
मंजिल तुम्हें बुलाती प्यारे।
खड़ी हुई है बाँह पसारे।
जीत उन्हीं की होती जग में-
जो मन से कभी न हारे।''[23]

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत का बाल साहित्य पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि सारस्वत जी बाल-हृदय को कितनी सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ा है, उन्हें समझा है। बाल साहित्यकार के अन्दर बाल मनोविज्ञान भी होता है वे जानते हैं बच्चों को कैसे संस्कारित किया जाय। उनकी पढ़ाई भी होती रहे साथ ही साथ उन्हें अपनी संस्कृति, धर्म, ईश्वर, प्रकृति आदि का ज्ञानावर्धन भी होता रहे। सारस्वत जी ने 'गिनती' कविता के माध्यम से ईश्वर, ऋतु, ग्रह, नक्षत्र आदि की जानकारी बच्चों को प्रदान किया है। यथा-

''आओ बच्चों, तुम्हें सिखाएँ गिनना गिनती।
लेकिन उसके पहले कर लें प्रभु की विनती।।
'एक' अंक कहता है, एक हमारा ईश्वर।
जिसकी रचना है दुनियाँ यह अति ही सुन्दर।''[24]

पर्यावरण की शिक्षा भी कवि अपनी कविता के माध्यम से नैनिहालों को दिया है। पेड़-पौधे लगाने तथा नदियों को कैसे स्वच्छ रखा जाय, ये हमारे जीवन के लिए कितना उपयोगी हैं इसकी शिक्षा भी कविवर देते हैं। यों कह ले तो

बाल साहित्य के माध्यम से कवि बच्चों का सर्वांगीण विकास चाहते हैं।

''वायु-प्रदूषण अगर रोकना तो तुम वृक्ष लगाओ।
खाद और पानी देकर के छायादार बनाओ।
काटो नहीं कभी तुम इनको, सदा करो रखवाली।
हरा-भरा रखती है तन-मन को इनकी हरियाली।''[25]

बच्चों को गर्मी की छुट्टियों की प्रतीक्षा रहती है। जैसे-जैसे गर्मी की छुट्टी होने वाली रहती है, बच्चे प्रसन्न हो जाते हैं। उनको खुशी रहती है अब जाना है, पूरी छुट्टी पढ़ाई नहीं करनी पड़ेगी, सुबह जल्दी उठकर विद्यालय की चिंता भी नहीं रहेगी।

''गर्मी की छुट्टियाँ हो गई-
सैर सपाटे के दिन आये।
बस्ते में बँद हुई किताबें,
पढ़ने-लिखने से पिंड छूटा।''[26]

लोरी और माँ-बच्चे का गहरा रिश्ता होता है। माँ जब अपने बच्चे को सुलाती है, तब वह तरह-तरह के लोरी अपने बच्चे को सुलाती है।

प्रतिदिन वह एक नयी लोरी अपने बच्चे को सुनाती है। लोरी सुनते-सुनते बच्चे गहरी नींद में सो जाते हैं। कवि गणेशदत्त सारस्वत 'लोरी' कविता में अपने भाव व्यक्त करते हैं-

''निन्ना रानी आओ।
सपनों को संग लाओ।
बुला रही गुड़िया-
आकर उसे सुलाओ।''[27]

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत केवल प्रौढ़ साहित्य लेखन में ही हस्तसिद्धि नहीं हैं, वरन् उच्च कोटि के बाल साहित्यकार भी रहे हैं। भारत-भारतीयता ही कवि चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है। बच्चों की विकास यात्रा को सही दिशा प्रदान करना ही सच्चा राष्ट्र निर्माण है। कवि की चिन्तन-वीथी उक्त काव्य-संग्रहों में स्पष्ट है।

सन्दर्भ

1. 'जागो भैया', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, भूमिका भाग, पृ. 5
2. वही, पृ. 11
3. 'खेलें-खेल', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 1998, पृ. 19
4. 'खेलें-खेल', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 1998, पृ. 5
5. 'डॉक्टर बाबा', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 12
6. 'गुड़िया है हो गयी सयानी', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 1998, पृ. 2
7. 'डाक्टर बाबा', डॉ. गणेशदत्त, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 14
8. 'गुड़िया है हो गयी सयानी', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 1998, पृ. 6
9. 'खेलें-खेल' डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 1998, पृ. 32
10. 'जागो भैया', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 17
11. 'करनी ठीक रखो', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2000, पृ. 17
12. 'जागो भैया', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 35
13. 'खेलें-खेल' डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 1998, पृ. 22
14. 'करनी ठीक रखो', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2000, पृ. 11
15. 'डाक्टर बाबा', डॉ. गणेशदत्त, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 16
16. 'गुड़िया है हो गयी सयानी', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2002, पृ. 22
17. 'डाक्टर बाबा', डॉ. गणेशदत्त, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 23
18. 'करनी ठीक रखो', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2002, पृ. 18
19. 'डाक्टर बाबा', डॉ. गणेशदत्त, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 22
20. 'करनी ठीक रखो', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2000, पृ. 5
21. 'गुड़िया है हो गयी सयानी', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2002, पृ. 4
22. 'डाक्टर बाबा', डॉ. गणेशदत्त, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 27
23. 'जागो भैया', डॉ. गणेशदत्त, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 21
24. 'खेलें-खेल', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 1998, पृ. 11
25. 'करनी ठीक रखो', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2000, पृ. 22
26. 'डाक्टर बाबा', डॉ. गणेशदत्त, मीनाक्षी प्रकाशन, अजमेर, 1996, पृ. 35
27. 'गुड़िया है हो गयी सयानी', डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, रवि प्रिन्टर्स, सीतापुर, 2002, पृ. 12

डॉ. सन्ध्या राय
हिन्दी विभाग
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खलीलाबाद, संतकबीरनगर, उ.प्र.

जिज्ञासा तिवारी
पी.एच.डी. शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खलीलाबाद, संतकबीरनगर, उ.प्र.
E-mail :jigyasatiwari005@gmail.com

अलका सरावगी की कहानियों में नारी चेतना

–डॉ. सन्ध्या राय
–साधना मौर्या

बीजक शब्द : चेतना, द्वंद्व, विवशता, परम्परा, सशक्त।

परिचय : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक आदि स्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अस्सी के दशक के बाद नारी में चेतना का विकास होने लगा। नारी अपनी शक्ति और क्षमता को पहचानने लगी और समाज के विकास की प्रक्रिया में अपनी भूमिका को रेखांकित करने लगी। इसका प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी पड़ा। साहित्य में नारी चेतना से जुड़े नारी अस्मिता के संकट और व्यक्तित्व निर्माण के संघर्ष को व्यक्त करने वाली अनेक महिला कथा लेखिकाएँ हैं, जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से नारी की परम्परागत और मर्यादित छवि को तोड़कर उसे सम्मान और स्वाभिमान को महत्व देने वाली नारी बना दिया है। जिनमें मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मेहरून्निसा परवेज, दीप्ति खण्डेलवाल, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, अर्चना वर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, मालती जोशी, अलका सरावगी, वर्तिका अग्रवाल, सुधा अरोड़ा, अचला शर्मा आदि प्रमुख हैं। इन महिला कथाकारों में अलका सरावगी एक ऐसी लेखिका जिन्होंने अपनी कहानियों में नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं और आज के परिवेश में नारी की बदली हुई तस्वीर को सामने रखा है। अलका सरावगी अपनी कहानियों के माध्यम से समाज और परिवार में नारी की स्थिति का चित्रण करती हैं और नारी अस्मिता और चेतना के विभिन्न रूपों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। अलका सरावगी के दो कहानी संग्रहों 'कहानी की तलाश में' और 'दूसरी कहानी' में कुल मिलाकर 35 कहानियाँ संकलित हैं। उन्होंने नगरीय जीवन के वातावरण और परिवेश को लेकर कहानियाँ लिखी हैं। उनकी सभी कहानियाँ मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन को आधार बनाकर लिखी गई हैं। इसमें नारी के रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े अनेक दृश्य उभरकर सामने आते हैं।

अलका सरावगी की कहानी 'कहानी की तलाश में' मध्यवर्गीय परिवार की उस नारी की चित्रण किया है जो अपनी इच्छाओं और सपनों का गला घोंटकर अपना जीवन अपने परिवार के लिए समर्पित कर देती है। अलका सरावगी ने नारी की उस दशा को दर्शाया है जहाँ उसकी कोई अपनी पसंद नहीं होती है। वह पति की पसंद को ही अपनी पसंद मान लेती है। ''मौलश्री के फूल तो मौसम आने तक यूँ ही जमीन पर बिखरे रहते हैं और उनकी खुशबू भी तो मुझे अच्छी नहीं लगती ... परसों मैंने भी इधर-उधर देखकर कि कोई मुझे देख नहीं रहा है, जमीन से मौलश्री के फूल उठा लिए थे कि पत्नी से पूछूँगा कि उसे इनकी गंध कैसी लगती है। पर घर के नजदीक आते-आते मैं इतना परेशान हो गया कि मैंने वे फूल फेंक दिए।''[1] समाज में नारी को पुरुष के अनुसार ढलना पड़ता है। अलका सरावगी ने भारतीय नारी की सहनशीलता को इस तरह दर्शाया है। ''मैं मन-ही-मन कुढ़ता रहता हूँ अपनी पत्नी पर कि वह उस लड़की की तरह हर सोमवार को फूल बेचनेवाले से फूल क्यों नहीं खरीदती। पर मुझे याद आ जाता है कि शादी के तुरन्त बाद उसने जूही की माला खरीदकर अपने बालों में लगाने की जिद की थी, तो मैंने उसे यह कहकर रोक दिया था कि वह मदरासिन जैसी लगेगी और फूल इतने महँगे हैं और वे तुरंत मुरझा भी जाते हैं।''[2]

भारतीय समाज पुरुषसत्तात्मक समाज रहा है। पुरुषसत्तात्मक समाज में परिवार के सभी निर्णय पुरुषों के अनुसार होते थे। महिलाओं में पुरुषों के सामने अपनी बात रखने को सामर्थ्य नहीं होता था। 'ये रहगुजर न होती' कहानी नारी की इसी विवशता को प्रकट करती है। ''इस जिंदगी में एक बार बाबा से वह यह पूछ लेना चाहती है। पर वह बिना बोले पापा की तरह ही बैठी रहती है, जैसे उसके सिर्फ कान हों, जुबान नहीं।''[3] नारी के जीवन में पति के रहने पर ही सारे शृंगार और सुख मान्य है, पुरुष के न रहने पर उसके सारे शृंगार छीन लिए जाते हैं। नारी के जीवन के प्रत्येक क्षण पर पुरुष का अधिकार है। कहानी में नारी के जीवन में पति की अनिवार्यता को दिखाने का प्रयास किया गया है। ''दादी ने कभी ऐसी टिक्की नहीं लगाई। तब फोटो में किसने लगाई? क्या दादाजी ने खुद लगा दी है यह टिक्की? खुद को बताने के लिए कि मरी हुई दादी की फोटो में भी उनके होने का अर्थ है! क्या बाबा के मरने पर फोटो विधवा हो जाएगी?''[4]

स्त्री का जीवन द्वन्द्व और संघर्षों से भरा है। वह स्वयं के लिए कोई भी निर्णय नहीं ले सकती है। नारी को शुरू से ही बन्धनों में रखा गया। उनके घर से बाहर जाने से लेकर उनके कपड़े, यहाँ तक की उनके खाने-पीने तक का निर्णय उनके हाथ में नहीं होता था। 'बहुत दूर है आसमान' नारी की इस मनोदशा का चित्रण करती है जिसमें स्वतंत्र जीवन जीने की चाह है, लेकिन पिता द्वारा लिए गए निर्णयों को मानने के लिए वह विवश है। ''किस तरह वह घर से घंटों ऊबकर दूर आसमान में उड़ते पक्षियों को देखा करती थी। सबसे कहती- 'मैं अगले जन्म में चिड़िया बनूँगी। पापा को पसंद नहीं था कि वे लोग पार्क में खेलने जाएँ। आसपास के किसी घर में तो जाने का सवाल ही नहीं था। सहेलियों के घर जाना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता था। बड़े होने के बाद जब सहेलियाँ कभी एक-दूसरे के घर जाने का या पिक्चर या पिकनिक पर जाने का प्रोग्राम बनातीं तो वे दोनों बहनें जैसे सबसे अलग हो जाती थीं। सारी लड़कियाँ जानती थीं कि वे लोग नहीं जा सकती हैं।''[5] बीतते वक्त के साथ नारी की स्थिति में सुधार आया है। परिवार में नारी को लेकर विचारों में परिवर्तन हुआ है। आज माता-पिता द्वारा पुत्र की भांति ही पुत्रियों को समान शिक्षा व स्वतंत्रता दी जा रही है। पर आधुनिक युग के दौर में चाहे जितनी बराबरी की बातें कर लें लेकिन उस समाज को हम नहीं बदल सकते जिसमें हम जी रहे हैं, जहाँ हर बार किसी परेशानी की शिकार एक लड़की होती है और उसे ही गलत समझा जाता है। लेखिका ने बालिकाओं की स्वतंत्रता के प्रति समाज के उस रूप को प्रस्तुत किया है, जो आज भी सोचने पर मजबूर कर देता है-''तुम कितनी भी बात करो बराबरी की, पर आखिर बलात्कार, तो औरतों के साथ ही होता है न! औरत को सुरक्षा तो अधिक चाहिए ही। मैं भी नहीं चाहता कि ऐसी दुनिया हो, पर यह हकीकत है उस दुनिया की जिसमें हम और तुम रहते हैं।''[6]

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ पुरुष और नारी दोनों ही समाज में उत्पादन कार्य में लगे हुए हैं। लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष एक खास उत्पादन पद्धति को अपनाया हुआ है, इसलिए वह जो भी कार्य करता है उसका विशेष महत्व होता है और इसी वजह से विशिष्ट माना जाता है। जबकि स्त्री प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जगत में कार्यरत है वह श्रम करती है, लेकिन उसके श्रम का कोई मूल्य नहीं होता और यदि उसके श्रम का मूल्याकंन हुआ भी है तो वो पुरुष ने मनमाने ढ़ंग से किया है। नारी ने विभिन्न परिस्थितियों से संघर्ष किया और अपने आप को विकसित किया। नारी अपनी परम्परागत छवि को तोड़ती हुई उन मूल्यों को नकारती है जो उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। वह चाहती है कि नारी और पुरुष सभी के लिए एक ही कसौटी का निर्माण किया जाए। नारी यदि समाज में कुछ अच्छा करती है तो उसकी प्रशंसा होती है लेकिन यदि परिवार के प्रति दायित्व निभाने में कहीं कमी दिखाई दे जाए तो उसे गलत कहने लगते हैं, क्योंकि नारी समाज की वह धुरी है जिस पर परिवार के निर्माण की जिम्मेदारी होती है। नारी की कमजोरी का मापन उसके औरत के रूप में किया जाने लगता है और उसके मनोबल को गिराने का प्रयास किया जाने लगता है। 'मिसेज डिसूजा के नाम' कहानी में नारी की इसी संघर्षरत स्थिति का यथार्थ रूप उभरा है। जहाँ जीवन में काम और परिवार में सामंजस्य बैठाती हुई अपने दायित्व का निर्वहन करती हुई नारी की मनःस्थिति का चित्रण है। ''औरत को अपने लिए जीने का कोई अधिकार नहीं है? क्या मेरे जीवन में वंदिता और संगीत एक साथ नहीं रह सकते। ... मुझे लगता है, मिसेज डिसूजा कि सब लोग नतीजे तो चाहते हैं, उन पर पीठ भी थपथपाते हैं, उन नतीजों तक पहुँचने के लिए जो यात्रा करनी होती है, उनमें कांटे बिछाने से नहीं चूकते।''[7] समाज द्वारा नारी की योग्यता का मापन उसके औरत होने के रूप में किया जाता है उसकी बुद्धि के आधार पर नहीं। परिवार के निर्माण में पुरुष और स्त्री का योगदान समान रूप से होती है, पर उसे तर्क, सामर्थ्य और बुद्धि में पुरुषों से कम योग्य क्यों समझा जाता है। अलका सरावगी की नारी पात्र अपने सामर्थ्य को प्रकट करती हुई निर्भिकता से अपने मत को सबके समक्ष रखती है। ''अभी तक हम लोग जीवन को सही ढ़ंग से जीने का 'फार्मूला' नहीं पा सके हैं। जब तक हम उस नुस्खे को नहीं पा लेते, जिससे हम इस दुनिया को एक बेहतर दुनिया बना सकें तब तक हमें अपने प्रति एक सन्देह भाव रखना ही होगा। हमें यह मानकर चलना होगा कि हम गलत भी हो सकते हैं।''[8]

अलका सरावगी ने समाज द्वारा निर्धारित नारी की स्वतन्त्रता के मापदण्ड को चित्रित किया है। परिवार का कोई पुरुष स्वतंत्र जीवन जीने की चाह रखता है तो उसे कोई कुछ नहीं कहता है और यदि एक स्त्री यह चाह रखती है तो परिवार और समाज दोनों की नजरों में वह दोषी हो जाती है। समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के इस अन्तर को प्रदर्शित करती कहानी 'खिज़ाब' है, जिसकी नायिका दमयन्ती जी अपने अनुसार स्वतंत्र जीवन जीने का चुनाव करती हैं और अकेली रहती हैं वहीं दूसरी तरफ सुमन है जिसे किसी काम को करने के लिए अपने घरवालों की इजाजत लेनी पड़ती है। ''कभी-कभी वह यह सोचती थी कि दमयन्ती जी ने प्रेम और स्वतन्त्रता में रहने का चुनाव कर लिया है। अपने इर्द-गिर्द देखकर उसे कई बार महसूस होता था कि प्रेम सारी सहूलियतें और सुरक्षाएँ भले ही दे सकता है, पर स्वतन्त्रता छीन लेता है। सम्बन्धों की निकटता में सुरक्षा तो जरूर है पर उतनी ही घुटन भी है। उसकी एक बहुत गहरी मित्र सुमन गाड़ी और गाड़ी चलाने का लाइसेंस होते हुए भी गाड़ी नहीं चला सकती थी क्योंकि उसके घरवालों की इजाजत नहीं थी, न ही वह पहले से बिना पूछे अपने मन से किसी के घर जाने का भी कार्यक्रम बना सकती थी क्योंकि इससे घरवालों के नाराज होने का भय था।''[9] लेखिका ने नारी के स्वतन्त्रता के विषय में सोचने पर

मजबूर किया है। यदि नारी स्वतन्त्रता का चयन करती है तो वह परिवार के सारे रिश्तों से अलग हो जाती है और यदि वह रिश्तों का चयन करती है तो वह परिवार में प्रतिबन्धित जीवन जीने को विवश हो जाती है। नारी की इस दुविधापूर्ण स्थिति का चित्रण कहानी में दिखाई देता है। ''वह सुमन को देखकर अक्सर सोचा करती कि इस प्रेम और सुरक्षा का क्या अर्थ है जो मनुष्य को इतने बन्धनों में बाँध दे, जो उसके चलने, खाने, सोने, जागने, सब पर प्रतिबन्ध लगा दे। उसे समझ में नहीं आता था कि सब्जी खरीदने, खराब पंखे के लिए मिस्त्री खोजने-जैसी छोटी-मोटी बातों का फिक्र करती हुई दमयन्ती जी अधिक सुखी है या उसकी सहेली सुमन जैसे लोग जिन्होंने मन की उड़ान का सुख जाना ही नहीं है।''[10]

भारतीय समाज में आध्यात्मिक शक्तियों पर अटूट विश्वास रहा है। यह अटूट विश्वास ही धर्म है। प्रारम्भ से ही नारी को धर्म के नाम पर बहुत सारे बन्धनों में रखा गया जैसे- पति की सेवा करना, पति के खाने के बाद भोजन करना आदि। नारी के इस सहनशील व्यक्तित्व को 'एक व्रत की कथा' कहानी में अलका सरावगी ने इस प्रकार प्रदर्शित किया है। ''औरतों का धर्म पुरुषों से पहले खाना नहीं है और इससे वे पाप की भागी बनती हैं।''[11] महिलाओं ने इसे धर्म समझकर व्यक्तिगत स्तर पर उतार लिया था। उसे इस बात का भय रहता कि कहीं इसको न मानने से कुछ गलत न हो जाए क्योंकि हर कर्म को न मानने के पीछे कई सारी कहानियाँ उसे बतायी जाती थीं। पर आज की नारी ने इसका विरोध किया है। उसने अपने को इस सांस्कृतिक और मानसिक पिछड़ेपन से स्वतन्त्रता दिलायी है। आज नारी ने उस सबका विरोध किया है जो धर्म, व्रत-उपवास आदि के नाम पर शरीर का कष्ट पहुचाँते हैं। उसने यह जान लिया है कि धर्म सबको मुक्त रखता है, बाधँता नहीं है। धार्मिक रुढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध नारी की चेतना विकसित हुई है। ''ये सब कहानियाँ और पूजा-पाठ इसीलिए किए जाते होंगे कि यह सिखाया जा सके कि सामूहिक जीवन के लिए अपने स्वाभाविक प्रकृत धर्म को आदमी को छोड़ देना चाहिए, अपने अंदर उठने वाली इच्छाओं को मार देना चाहिए। ...किंतु उसके मन में रह-रहकर यह सवाल उठता है कि यह जानते हुए कि मेरे साथ अन्याय हो रहा है, उसे बरदाशत करना क्या सही है? क्या अपने को शहीद मानने से इतना सुख होता है कि उसके लिए तमाम उम्र बेकार की जा सकती है।''[12] आज नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है। नारी में नवीन मूल्यों का विकास हुआ है। अपने अधिकार के लिए पत्नी के रूप में वह परिवार के पुरुषों के समक्ष खड़ी हुई है, तो माँ के रूप में अपनी संतान के लिए संसार के समक्ष खड़ी हो जाती है। 'दूसरी कहानी' की अपर्णा माँ के इसी सशक्त रूप का चित्रण है। अपर्णा का पुत्र सुदर्शन मेंटली रिटार्डेड बालक है, परन्तु वह यह स्वीकार नहीं करती है। वह हर प्रयास करती है कि सुदर्शन सामान्य बच्चों की तरह हो जाए, इस कोशिश में सुदर्शन के पिता कभी-कभी निराश हो जाते हैं पर वह हिम्मत नहीं हारती है। सुदर्शन के साथ जब कोई सहानुभूति दिखाता है तो वह क्रोधित हो जाती है इसलिए वह दोस्तों, रिश्तेदारों सभी को छोड़कर सारा ध्यान उस पर देती है। वह किसी को यह हक नहीं देती कि कोई उसका हौंसला पस्त करें।''अपर्णा की कहानी में उसके सबसे नजदीक के वे लोग नहीं घुस पाए, जो उसके बेटे सुदर्शन को बेचारा, अपंग या ऐसा ही कोई लुंज-पुंज शब्द कहकर उसके जीवन में देर तक घुसे रह जाते थे। वे अपने लोग भी बाहर रह गए, जो उसकी तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देते थे, जैसे कि लोग गरीबों के गंदे, फटेहाल बचपन नहीं देखते।''[13]

अलका सरावगी ने अपनी कहानियों में नारी की प्रचलित छवि को तोड़ा है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर हो रहे शोषण और उनकी स्थिति को सोचने पर मजबूर कर दिया है। उनके नारी पात्र आत्मनैतिकता की कसौटी पर स्वयं को परखते है और साथ ही अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष भी करते हैं। अलका सरावगी के कहानियों की नारी पात्र नये के प्रति जागरुक है और घर परिवार के प्रति मोहग्रस्त भी। वह परम्पराओं को नये रूप में स्वीकार करती है, साथ ही पुरानी परम्पराओं पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं।

संदर्भ

1. कहानी की तलाश में, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2019, पृ. 12
2. वही, पृ. 12-13
3. दूसरी कहानी, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 12
4. वही, पृ. 13
5. कहानी की तलाश में, पृ. 46
6. वही, पृ. 48
7. वही, पृ. 30
8. वही, पृ. 32-33
9. वही, पृ. 78
10. वही, पृ. 79
11. वही, पृ. 51
12. वही, पृ. 54-55
13. दूसरी कहानी, पृ. 16

डॉ. सन्ध्या राय
हिन्दी विभाग
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खलीलाबाद, संतकबीरनगर, उ.प्र.

साधना मौर्या
पी.एच.डी. शोध छात्र, हिन्दी विभाग
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खलीलाबाद, संतकबीरनगर, उ.प्र.
E-mail : ksmaurya2019@gmail.com

हिन्दी दलित साहित्य पर वैचारिकता का प्रभाव

–हेमलता

आधुनिक हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। वह सदैव सनातनी हिन्दू व्यवस्था की संकीर्ण और षड्यंत्रकारी व्यवस्था का विरोध करते रहे हैं। इस अन्यायी व्यवस्था के खिलाफ शायद सर्वप्रथम विरोध महात्मा गौतम बुद्ध ने किया। उन्होंने भारतीय समाज की तर्कहीन असगंत वर्णवादी-व्यवस्था के विरोध में नए भारतीय समाज की नींव रखने का सतत प्रयास किया जिस समाज में समानता, स्वतन्त्रता, भाईचारा, सामाजिक न्याय मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की। उनकी इस चेतना का प्रखर रूप कालान्तर मे पेरियार, महात्मा फुले व बाबा साहेब अम्बेडकर में मिलता है। इन सभी विचारकों ने समाज में व्याप्त असमानता का विरोध करते हुए समतामूलक नए समाज के निर्माण की बात कही। वर्तमान समय में दलित साहित्य की वैचारिकता पर प्रश्न करना विचारणीय होगा।

वैचारिकता के स्तर पर देखें, तो भारतीय समाज में दो विचारधाराएं स्पष्ट नज़र आती हैं। पहली विचारधारा में वेद, पुराण, उपनिषद आदि शामिल हैं। इसका मूल आधार धार्मिक ग्रन्थ हैं। यह धारा जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था व जाति व्यवस्था पर टिकी है। इसमें व्यक्ति का अस्तित्व व विकास की सभी संभावनाएं उसकी जाति पर निर्भर हैं। दूसरी विचारधारा गौतम बुद्ध की है, जो व्यक्ति में उसके विकास की संभावनाएं देखते हैं। वह तर्कसंगत तरीके से 'देखो, विचार करो' और भविष्य में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। वह मानव कल्याण एवं उन्नति के समान अवसरों की बात करते हैं। डॉ. शत्रुघ्न कुमार ने अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा, ''बौद्ध दर्शन स्वतन्त्र, बुद्धि, स्वतन्त्र विचार या चिन्तन पर आधारित है। यह बौद्धिक, तार्किकता पर आधारित है, जबकि हिन्दू धर्म अन्धविश्वास एवं आडम्बर पर आधारित है। इसमें स्वतन्त्र चिन्तन के लिए कोई स्थान नहीं, क्योंकि वह उन पोथियों मे लिखी कपोल-कल्पित बातों को मानकर चलता है। वह उससे आगे बढ़कर सोच ही नहीं सकता, जहाँ चिन्तन का मार्ग बन्द हुआ, वहीं विकास की गति रूक जाती है।''[1]

गौतम बुद्ध ने समाज में व्याप्त असमानता, जाति व्यवस्था व भेदभाव को जड़ से समाप्त करना चाहते थे जिससे समाज के दलित तबके के जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

भारत की प्रमुख इतिहासकार रोमिलाथापर ने कहा, ''भारत में जन्मे किसी भी अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति ने विश्व का बलात इतना अधिक ध्यान आकृष्ट नहीं किया है जितना बुद्ध ने किया है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि गौतम बुद्ध ने अपने समय के तेज़ी से बदलते समाज का विश्लेषण करने तथा मनुष्य जाति के लिए एक स्थाई समाजदर्शन प्रदान करने का अत्यंत गहन और व्यापक प्रयास किया था। बौद्ध धर्म में एक वैकल्पिक व्यवस्था का खड़ा कर दिया था। उसने उस समय अपनी जड़ जमाती असमानतावादी विचारधारा और व्यवहारों से भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित समाज को संगठित करने की संभावना खड़ी कर दी थी।''[2]

महात्मा गौतम बुद्ध ने समाज को संगठित करने के लिए कुछ सिद्धान्त बनाएं -

1. ईश्वर को नहीं मानना होगा, अर्थात् वह ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं, और कहते हैं कि व्यक्ति अपना स्वयं का मालिक है।

2. आत्मा को नित्य नहीं मानना, अन्यथा उसकी मुक्ति की गुंजाइश नहीं रहेगी।

3. किसी अन्य को स्वतः प्रमाण नहीं मानना, बल्कि तर्क के आधार पर सदैव जांचना चाहिए।

4. जीवन-प्रवाह को इसी शरीर तक परिमित नहीं मानना चाहिए।

इन चार नियमों पर ही बौद्ध सिद्धान्त आधारित है।

बौद्ध चिंतन में तो वह ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करते हैं। वह बुद्धि और अनुभव की प्रमाणिकता पर बल देते हुए उसे सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं। डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' की पुस्तक 'मीडिया : उत्तर आधुनिक अस्पृश्यता के दौर में' एक लेख में राजेश कुमार गौतम लिखते हैं-''बौद्ध धर्म एक मानवतावादी एवं तार्किक धर्म है, जिसे अपनाने से व्यक्ति

अंधविश्वासों, आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म, पाखंडों, हिंसा, व्यभिचारों, अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी और जात-पांत के भेदभाव से मुक्त हो सकता है और अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक तरक्की कर सकता है। महिलाओं को सम्मान दिला सकता है। वैसे दलितों द्वारा अपनाया जाने वाला बौद्ध धर्म भी हिंदू धर्म का अंग समझा जाता है, लेकिन हिंदू धर्म एवं बुद्ध के सिद्धान्तों में काफी भिन्नता है।''[3]

बौद्ध दर्शन वैसे तो हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है, परन्तु उनमें आधारभूत भिन्नता है। स्वामी पेरियार ने दलित जातियों के आत्मसम्मान के लिए स्वाभिमान आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य भारतीय सामाजिक वर्णवादी-जातिगत संरचना में मूलभूत परिवर्तन करना है। इस आन्दोलन में नए भारतीय समाज की कल्पना की जो जाति-विहीन, हिन्दू-धर्म रहित हो। इस आन्दोलन की शुरुआत द्रविड़ जातियों के आत्मसम्मान के लिए सन 1925 में हुई।

नाथ और सिद्ध साहित्य में बौद्ध चिन्तन के विद्रोही तेवर देखने को मिलते हैं। गोरखनाथ और सरहपा ने दलितों के दुखः-दर्द को समझते हुए उनके अस्तित्व पर अस्मिता की लड़ाई को आगे बढ़ाया। संत कवि कबीर ने अछूतों को सीधे संबोधित नहीं किया, अपितु वह समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था और सवर्णवादी व्यवस्था के षड्यंत्र पर सीधा प्रहार करते हैं। वह ईश्वर के विषय में कहते हैं-

''पाहन पूजे हरि मिले, मैं तो पूजूं पहार।
याते चाकी भली जो पीस खाय संसार।''[4]

अर्थात् मनुष्य को पत्थर की पूजा करने से ईश्वर मिलते तो मैं पहाड़ पूजता इसलिए इसका कोई लाभ नहीं होगा, बल्कि यदि वह चक्की की पूजा करें, तो उसे आटा अवश्य मिलेगा जिससे संसार का पेट अवश्य भरेगा।

वह समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था के विषय में रहते हैं-

एक बूँद एक मल मुतर,
एक चाम एक गुदर।
एक जोति से सब ऊपजा,
को बामन को सूदर।[5]

भक्तिकालीन संत कवि कबीरदास का यह मानना है कि एक बूंद, एक मल-मूत्र, एक चाम, एक गूदर से सब उत्पन्न हुआ, तो कौन बामन और कौन शूद्र अर्थात् सभी जीवों के अंदर परमात्मा का निवास आत्मा के स्वरूप में रहता है। उन्होंने ईश्वर का वास प्राणी की हर सांसों की सांस में रहता है। वह हमें बाहरी दुनिया में नहीं मिलेगा बल्कि उसे हमें अपनी अंदर ढूंढना होगा।

परवर्ती संतों में रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, मलूक, सेना, पीपा सहजोबाई आदि ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। भक्तिकाल में रैदास ने वर्ण व्यवस्था के विषय में लिखा-

''रैदास एक ही बूंद सौं, सब ही भयो वित्थार।
मूरिख हैं जो करत हैं वरन विचार।।''

* * * * * * * * * * *

''रैदास एक नूर ते जिमि उपज्यौ संसार
ऊंच-नीच किहि विध भये ब्राह्मण और चमार।''[6]

भक्तिकालीन साहित्य और सामंतवाद की समीक्षा करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं-

''सामंती व्यवस्था में धरती पर सामंतों का अधिकार था, तो धर्म पर उन्हीं के पुरोहितों का। संतों ने धर्म पर से पुरोहितों का इज़ारा (एकाधिकार) तोड़ा। खासतौर पर जुलाहों, कारीगरों, गरीब किसानों और अछूतों को सांस लेने का मौका मिला, यह विश्वास मिला कि पुरोहितों और शास्त्रों के बिना भी उनका काम चल सकते हैं।''[7]

आधुनिक कवि भारतेन्दु ने भी अपने नाटकों में अस्पृश्यता का विरोध किया-

''बहुत हमने फैलाए धर्म,
बढ़ाया छुआछूत का कर्म।''[8]

उसी क्रम हिन्दी साहित्यकारो में नाथूराम शर्मा शंकर, रुपनारायण पाण्डेय ने भी जात-पांत का विरोध किया-

''साधना स्वराज की, सफल कभी होगी नहीं
अगर अछूतों को न आप अपनाएंगे।''[9]

युगीन समस्याओं में 'अछूत की आह', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'प्रभु तुम मन की जानो', मैथिलीशरण गुप्त के काव्य 'महाभिनिष्क्रमण में अछूत', सोहनलाल द्विवेदी कृत 'हरिजनों का गीत', हरिकृष्ण प्रेमी की 'हरिजन बंधु' आदि कविताओं में राष्ट्रीय जागरण के प्रथम दौर में दलित समस्या का चित्रण किया है।

'अछूत की शिकायत' कविता 'हीराडोम' की 'सरस्वती' में 1914 ईस्वी में प्रकाशित हुई। स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' भी एक अच्छे कवि के रूप में उभरे, और उन्होंने अपनी एक गज़ल में हिंदू धर्म की विसंगतियों पर चोट की है-

''मैं अछूत हूं, छूत न मुझ में,
फिर जग क्यों ठुकराता है।
छूने में भी पाप मानता, छाया से घबराता है।।
मुझे देख नाक सिकोड़ता, दूर हटा वह जाता है।
हरिजन भी कहता है मुझको, हरी से विलग कराता है॥
फिर जब धर्म बदल जाता है, मुसलमान बन जाता हूं
अथवा ईसाई बनकर के हैट लगाकर आता हूं।
छुआछूत सब मिट जाता है, साहब मैं कहलाता हूं
उन्हीं मंदिरों में जा कर के उन्हें पवित्र बनाता हूं॥''[10]

भारतीय नवजागरण के जनक राजा राममोहन राय और महात्मा फुले रहे हैं। हिंदुओं का धार्मिक ग्रंथ 'मनुस्मृति'

है, और फूले ने उसी तर्ज पर 'गुलामगिरी' के माध्यम से दलित मुक्ति का घोषणा पत्र बनाया था। फुले 'गुलामगिरी' में कहते हैं, ''हर मनुष्य को आजाद होना चाहिए, यह उनकी बुनियादी जरूरत है। जब व्यक्ति आजाद होता है, तब उसे अपने मन के भावों और विचारों को स्पष्ट रूप से दूसरों के सामने प्रकट करने का मौका मिलता है। आजाद होने से मनुष्य अपने सभी मानवीय अधिकार प्राप्त कर लेता है, और असीम आनंद का अनुभव करता है।''[11]

महात्मा फुले ने 'गुलामगिरी' में शूद्रों की दासता का मार्मिक चित्रण किया है। वह कहते हैं, ''इन बातों को जानकर शूद्रों-अति शूद्रों को अन्य लोगों की तुलना में बहुत ही ज्यादा खुशी होगी, क्योंकि गुलामी की अवस्था में गुलाम लोगों को गुलाम जातियों को कितनी यातनाएं बर्दाश्त करनी पड़ती हैं, इसे स्वयं अनुभव किए बिना अंदाजा करना नामुमकिन है। जो सहता है, वही जानता है।''[12]

यानी भुक्तभोगी ही अपना दुख जानता है।

दलित साहित्य की वैचारिकी में तमिलनाडु के प्रसिद्ध विचारक रामास्वामी नायकर पेरियार का भी योगदान रहा है। उनके सिद्धांतों में-

1. ईश्वर और शास्त्र को अस्वीकार किया गया,
2. दलितों के सम्मान की लड़ाई,
3. शुद्रों और अतिशूद्रों, पिछड़े वर्ग और स्त्रियों के लिए शिक्षा की बात उठाई गई।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कुशल रणनीतिकार सेनानायक और सिद्धांतकार के समान उसे आगे बढ़ाया।

महात्मा गांधी ने अछूतों को 'हरिजन' की श्रेणी में रखा, लेकिन बाबा साहेब अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था पर गंभीरता से विचार करते हुए कहा, ''हिन्दू सोसायटी उस बहुमंजिली मीनार की तरह है, जिसमें प्रवेश करने के लिए न कोई सीढ़ी है, न दरवाजा। जो जिस मंजिल में पैदा हो जाता है उसे उसी मंजिल में मरना होता है।''[13]

बाबा साहेब ने भारतीय-समाज का सूक्ष्म विश्लेषण किया। उन्होंने इस विषय पर जाति विनाश, शुद्र कौन, अस्पृश्य, बुद्ध और उनका धर्म इत्यादि महत्वपूर्ण कृतियां लिखीं। उन्होंने दलितों की समस्या को जड़ से समझने का प्रयास और इसका समाधान राष्ट्रीय समस्या के समाधान में शामिल किया, इसलिए वह राजनीति सत्ता में परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार करते हुए कहते हैं, ''किसी भी दिशा में मुड़े, जाति का राक्षस रास्ता रोके खड़ा मिलेगा। इस राक्षस को मारे बगैर न तो कोई राजनीतिक सुधार संभव है, न आर्थिक।''[14]

उनके चिंतन का मुख्य आधार सत्ता स्वतंत्रता बंधुत्व का भाव था। ये सभी तत्व बौद्ध दर्शन के लिए गए हैं। उन्होंने सन् 1916 ईस्वी में 'कास्ट इन इंडिया' में जाति की उत्पत्ति, जाति के उत्पत्ति के प्रेरक तत्व और जाति व्यवस्था के फैलने के कारणों का वर्णन।

सारांश रूप में कह सकते हैं कि दलित साहित्य की वैचारिकता के बीज हमें स्पष्ट रूप में गौतम बौद्ध के चिन्तन में देखने को मिलते हैं जो पूर्णतः मानवतावादी एवं तार्किक है। आधुनिक प्रसिद्ध विचारकों जैसे स्वामी पेरियार और महात्मा ज्योतिबा फुले आदि ने वर्णवादी-जातिगत व्यवस्था को असंगत और तर्कहीन बताया और उसमें आमूलचूल परिवर्तन की बात करते हुए दलितों के स्वाभिमान व अस्मिता के लिए स्वाभिमान आन्दोलन चलाया। हिन्दी साहित्य की परम्परा में भी समय-समय पर वर्णवादी-जाति व्यवस्था पर प्रहार किए गए हैं। अंत में यही कामना कर सकते हैं कि हम बाबा साहब के स्वपन को साकार करने का प्रयास करें वर्णवादी-जातिगत व्यवस्था विहीन हो, साथ ही तार्किक हो, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित हो।

सन्दर्भ

1. दलित आन्दोलन के विविध पक्ष-डॉ. शत्रुघ्न कुमार, पृष्ठ-44
2. प्राचीन भारत-रोमिला थापर, पृष्ठ संख्या-35
3. अगर बुद्ध का धर्म दलितों का धर्म नहीं है, तो दलितों का धर्म क्या है (लेख)- राजेश कुमार गौतम- मीडियाः उत्तर आधुनिक अस्पृश्यता के दौर में-डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', पृष्ठ संख्या-180
4. नए संदर्भ में दलित विमर्श, डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', पृष्ठ संख्या-91
5. इंटरनेट से साभार
6. दलित साहित्य परंपरा और विन्यास-डॉ. एन. सिंह, पृष्ठ भूमिका
7. परम्परा का मूल्यांकन- रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या-48
8. दलित साहित्य एक मूल्यांकन- प्रो. चमनलाल, पृष्ठ संख्या-56
9. वही, पृष्ठ संख्या-56
10. हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा : माताप्रसाद, पृष्ठ संख्या-339
11. महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली - अनुवाद एवं संपादन, एल.जी. मेश्राम, विमल कीर्ति, पृष्ठ संख्या-138
12. दलित विमर्श की भूमिका- कंवल भारती, पृष्ठ संख्या-37
13. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर-सम्पूर्ण वांग्मय, खंड 16, पृष्ठ संख्या-36
14. सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्य शास्त्र- सूरज बड़त्या, पृष्ठ संख्या-114

हेमलता
शोधार्थी
असिस्टेंट प्रोफेसर - हिन्दी
वीरांगना रानी अवन्तीबाई राजकीय महिला
महाविद्यालय, बरेली (उत्तर प्रदेश)

श्यौराज सिंह बेचैन के कथा साहित्य में स्त्री एवं पुरुष संबंध

–डॉ. मनुप्रताप

स्त्री और पुरुष सामाजिक संरचना के दो महत्त्वपूर्ण घटक हैं, जो मानव-जाति में प्रजनन की प्रक्रिया के आधार पर विभाजित होते हैं। उन्हें एक दूसरे के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है। यह सभी भलीभांति जानते हैं कि युग्मक के भोग से ही नये जीवन का निर्माण होता है। अतः प्रजनन-प्रक्रिया स्त्री और पुरुष के संयोग से ही सम्भव होती है। संसार की कोई भी सभ्यता स्त्री-पुरुष के संबंधों के बिना अपना अस्तित्व नहीं रखती है। प्रकृति ने प्रत्येक प्रकार के जीवों में भी नर एवं मादा का अस्तित्व बनाया है। संसार में स्त्री एवं पुरुष पर ही सब कुछ आधारित होता है और आनुवंशिक परिस्थितियाँ इसी प्रकृति के नियम से संचालित होती रहती हैं। स्त्री-पुरु ा एक दूसरे के अनुपूरक हैं। संभवतः जब से इस संसार में मनु य-जाति का आविर्भाव हुआ होगा, तभी से दोनों युग्मक का अस्तित्व भी रहा होगा। वास्तविकता यह है कि मनुष्य की अपनी अलग प्रकृति के चलते भी स्त्री-पुरुष को एक दूसरे की ओर आकृष्ट होना एक नियति के समान है। स्त्री और पुरु ा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं। इतना ही नहीं एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व भी संभव नहीं है। विज्ञान के अनुसार संसार से यदि कोई एक युग्म अस्तित्व में नहीं रहेगा तो मनुष्य-जाति का विकसित होना असंभव होगा।

हिन्दी कथा-साहित्य में स्वतन्त्रता के बाद स्त्री-पुरुष संबंधों में तीव्र गति से परिवर्तन देखने को मिलता है। स्त्री-पुरुष के संबंध ही सर्वाधिक जटिल और संघर्ष से परिपूर्ण होते हैं। इसी कारण स्त्री-पुरुष संबंधों में समस्याओं का उद्‌भव होता है। स्त्री और पुरुष भावनाओं के स्तर पर परस्पर दूर होते हुए भी पास होते हैं। स्वतंत्रता-पूर्व अंग्रेजों द्वारा शिक्षा के प्रचार-प्रसार, आवागमन की सुविधाएँ, समाचार, पत्र-पत्रिकाओं का विकास, प्रेस की स्थापना आदि के कारण भारत में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में विकास देखने को मिलता है। स्त्री-शिक्षा, समानता, जाति-सद्‌भाव, राष्ट्रीय प्रेम, संस्कृति आदि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। ये परिवर्तन सुविधावादी आन्दोलनों के कारण सामने आया।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री की बौद्धिक परिस्थितियाँ तेजी से परिवर्तित होती हैं। एक समय था जब स्त्री का कर्तव्य परिवार की मर्यादाओं तक सीमित था। आज की स्त्री सोचने पर विवश दिखाई देती है। स्त्री पुरुष को प्रेरणा प्रदान करती है। आर्थिक रूप से भी स्त्री की स्थिति में वृद्धि देखी जा सकती है। कुछ लेखकों का कहना है कि स्त्री को अभी वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ है, जो पुरुषों को प्राप्त है। नारी के दुर्बल पक्ष के विषय में आशा रानी व्होरा ने लिखा है- ''प्रत्येक परिस्थिति में नारी की स्वभावगत दुर्बलता ही उसे समस्याग्रस्त बनाती है। सर्वेक्षणों से सिद्ध हुआ है, कि पूर्ण स्वतंत्रता किसी नारी को संतुष्ट नहीं कर पायी। भय और सुरक्षा की भावना से मुक्ति असंभव है। सहारा देने और लेने के अन्तर को मिटाया नहीं जा सकता। नारी का कामिनी भाव जब तक उसमें विद्यमान है, भक्ति-आन्दोलन का भी कोई अर्थ नहीं है।''[1]

प्रेमचन्द भारतीय समाज की वर्गीय स्थिति से अच्छी तरह से परिचित थे। अपने उपन्यासों में वर्ग-चेतना को रेखांकित करते हुए उन्होंने भारत के विभिन्न वर्गों के नारी-पुरुष सम्बन्धों की स्वरूपगत भिन्नता को भी स्पष्ट किया है। सामन्तों और जमींदारों को यहाँ जिस प्रकार से स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है, वह गरीब किसानों और खेत मजदूरों के मध्य भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की भिन्नता को देखा जा सकता है। मध्यवर्गीय नारी-पुरुष सम्बन्धों में अन्य वर्गों से पर्याप्त अन्तर मिलेगा। इस अन्तर को शिक्षित तथा अशिक्षित नारियों में भी हम देख सकते हैं। वैसे तो पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारी अधिकांतः पुरुषों द्वारा शोषित-उत्पीड़ित ही दिखाई देती है, लेकिन उनकी वर्गीय स्थितियों के अनुसार शोषण की यह मात्रा कम या अधिक भी है। इसे उपन्यासकारों ने स्पष्ट रूप से संकेतित किया है। उनके उपन्यासों में जिस तरह शोषित-उत्पीड़ित, किसान-मजदूर निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है, लेकिन दलित साहित्यकारों में सहानुभूति नहीं बल्कि दलितों को समस्याओं से निकलने का रास्ता सुझाया, क्योंकि दलित साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों, कहानियों एवं कविताओं में दलितों के दर्द को महसूस ही नहीं किया बल्कि उस दर्द को भोगा भी। इसी कारण दलित साहित्यकारों का साहित्य सहानुभूति परक नहीं स्वानुभूतिपरक है। दलित साहित्यकारों ने प्रायः दलित वर्ग की नारियों के

प्रति अधिक संवेदनशील रहे क्योंकि दलित नारी अन्य वर्ग की नारी से अधिक शोषित रही है क्योंकि दलित नारी अधिकांशतः सामाजिक विकृतियों का शिकार बनती है।

प्रेमचन्द जैसे स्त्री पक्षधर लेखक के स्त्री पात्रों में अपनी हीन स्थिति से उबरने का प्रयास भी दिखाई देता है। चाहे वह शहर की 'सुखदा' हो या गाँव की 'धनिया' सभी में जागृति तथा स्वाभिमान की झलक मिलती है। धनिया एक ऐसी ग्रामीण नारी पात्र है, जो हमेशा सत्य और न्याय का पक्ष लेती है। उसके इस स्वभाव ने इसे इतना संघर्षशील बना दिया है कि वह किसी से भी नहीं डरती, चाहे वह गांव का मुखिया हो या पटवारी हो, जागीरदार हो, चाहे हल्के का दरोगा ही क्यों न हो? इसके विपरीत उसके पति का स्वभाव दब्बू है, वह सत्य कहने में झिझकता है, जिसके कारण पति-पत्नी में बहुत सी बातों में सहमति नहीं हो पाती। फिर भी दोनों के बीच आदर्श पति-पत्नी सम्बन्ध बना रहता है। झुनिया एक आदर्श कृषक नारी और पूर्ण पतिव्रता के रूप में हमारे सामने आती है। सिलिया हो, चाहे उसकी विजातीय पुत्र-वधू झुनिया-सबको उसका उदार आश्रय प्राप्त है। वह पति के रूप में होरी की आश्रिता नहीं सहचरी है। घर के कामों में वह बराबर का हिस्सा लेती है। उसके माध्यम से प्रेमचन्द ने किसान-मजदूर वर्ग की नारी का एक प्रतिनिधि चरित्र प्रस्तुत किया है।

पति पत्नी सम्बन्ध पारिवारिक जीवन का मूलाधार है। पति-पत्नी के सहयोग और सद्भाव से परिवार की प्रगति होती है। दोनों में प्रेम, त्याग, सेवा, समर्पण की भावना होती है। दोनों एक-दूसरे के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने की प्रस्तुत रहते हैं। उनके सहयोग से परिवार की गाड़ी व्यवस्थित चलती है।

परिवार मानव-जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि और सर्वोत्तम व्यवस्थित सामाजिक संस्था है।

परम्परागत भारतीय समाज में परिवार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। परिवार में ही सदस्यों के वैयक्तिक मूल्यों, प्रेम, सौहार्द, सहयोग आदि का विकास होता है।

पति-पत्नी अलग-अलग कुलों, परिवारों, संस्कारों से एकत्र आकर दाम्पत्य जीवन की स्थापना करते हैं। वे अपने संस्कारों, मतभेदों, रीति-रिवाजों, अहंभावों का त्याग कर पारिवारिक-जीवन की नींव रचते हैं। कौशल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) के माँ-बाप गरीब थे। परन्तु दोनों में आपसी समन्वय होने के कारण वे अपनी गरीबी में बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सके। दोनों कड़ी मेहनत करते हुए अपने परिवार को सुख शान्ति देने की सफल कोशिश करते हैं। उनमें कभी झगड़ा नहीं हुआ। दोनों में अच्छा तालमेल होने के कारण वे सभी निर्णय एक-दूसरे की राय जानकर विचार-विमर्श से करते हैं।

भारतीय समाज-जीवन में पति को परमेश्वर मानकर उसकी सेवा में श्रद्धापूर्वक जीवन-यापन करने वाली नारी त्याग, सेवा, प्रेम, ममता की अखण्ड सरिता है।

श्यौराज सिंह बेचैन ने अपने कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों के प्रत्येक पक्ष पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति दी है। ये विचार बदलते सामाजिक परिवेश को दृ टगत रखकर किए गये हैं, जो आधुनिक समाज की यथार्थ प्रस्तुति है। निश्चित है कि पश्चिमी प्रभाव से मीडिया के खुलेपन, उदारीकरण आदि के चलते तीव्र गति से परिवर्तन दिखाई देते हैं। इन परिवर्तनों से समाज में विकृतियां भी उत्पन्न हुईं हैं तथा समाज में संबंधों की टूटन सामने आयी है।

श्यौराज सिंह बेचैन की कहानी 'बस्स इत्ती-सी बात' में कहानीकार ने स्त्री-पुरुष संबंधों के विषय में कहते हैं, ''कीर्ति और बीना दो सच्ची सहेलियाँ थीं। स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर वे आपस में बातें कर रही थीं, बीना कह रही थी, 'रिश्ते तो ऊपर से बन कर आते हैं। जो किस्मत में लिखा होता है मिल जाता है। ऊपरवाला सबके साथ न्याय करता है।' 'न्याय! मुझे तो नहीं लगता कि कोई न्याय करता है ऊपरवाला, स्त्री और पुरुष की देह रचना में ही स्त्री को मार कर रख दिया है ऊपर वाले ने। सारी लोकलाज, कुल-खानदान की मान-प्रतिष्ठा स्त्री के जिम्मे है। सारी गालियाँ स्त्री के अंगों को लेकर हैं। अपहरण और बलात्कार जैसे अपराध स्त्री के हिस्से ही आते हैं और तुम समझती हो कि बनाने वाले ने स्त्री को कुछ विशेष बना दिया है।' कीर्ति के कथन से सहमत होते हुए बीना बोली कि इसमें क्या शक है कि स्त्री सृष्टि में श्रेष्ठ है। पर कीर्ति का तर्क जारी था। 'शादी करके स्त्री-पुरुष दोनों साथ-साथ रहते हैं। विशेष सम्बन्धों में भी दोनों एक दूसरे पूरक होते हैं, परन्तु साल-दो साल में ही पहिए पटरी से उतरने लगें तब गाड़ी को रोक देना ही समझदारी होती है। ऐसे में पुरुष का तो कुछ नहीं बिगड़ता, वह हाथ झाड़कर बेदाग बना, दूसरी गाड़ी में सवार हो सफर पर निकल पड़ता है। यानी दूसरी शादी के मंडप में जाकर खड़ा हो जाता है और स्त्री बेचारी आधी भी नहीं रह जाती। इस बीच यदि कहीं माँ बन गई तो उसके बाद तो उसे गौरव मिलने के बजाय, गर्दिशों घेर लेती हैं। और यदि जिन्दगी की गाड़ी फिर से आरम्भ करे तो पुनर्विवाह के रास्ते में उसका लख्ते जिगर उसका बच्चा ही सबसे बड़ी रुकावट बनता है। बच्चे की वजह से उसकी माँ को कोई स्वीकार नहीं करता और यदि स्त्री को बच्चा न हो, वह बांझ निकल आए तो उसे कोई रद्दी अखबार के भाव भी नहीं पूछता, कुल मिलाकर आशय यह कि कुदरत ने औरत में हजार खूबियाँ बख्शी हों, पर मर्दों की व्यवस्था ने उसे दो कौड़ी का नहीं समझा है।''[2] यह भाव सुनकर बीना को लगा जैसे कीर्ति ने अपने अनुभव को कहा है। ऐसे न जाने कितने उदाहरण बेचैन की कहानियों में भरे पड़े हैं। नारी संघर्ष करती दिखती है। इसी कहानी की पात्र कीर्ति स्त्री और पुरुष की बराबरी की बात कहती है, ''नहीं, बिलकुल नहीं, बल्कि मैंने ही संभावित

शंकाओं को कुरेद-कुरेद कर जवाब लिए। मसलन मैं नहीं जानती कि माँ बनूँगी या नहीं मैं अपने दिल-दिमाग पर किसी तरह के मेल-डॉमिनेशन (पुरुष वर्चस्व) का बोझा नहीं उठा सकूँगी। तुम अगर मुझे अपने जैसा इंसान समझ सको, बराबरी का व्यवहार कर सको तो मैं तुम्हारे साथ कदम-से-कदम मिलाकर जीवन सफर पर निकल सकूँगी, वरन् तुम्हारा रास्ता अलग मेरा अलग।''[3]

भारतीय समाज में विवाह सोलह संस्कारों में प्रमुख संस्कार माना जाता है तथा इस संस्कार को सबसे पवित्र कहा गया है। इस संस्कार के बिना समाज सही प्रकार से संचालित नहीं हो सकता है। जब कोई लड़की किसी पुरुष को भाई बोल देती है तो वह पुरुष जीवन पर्यन्त उसे बहिन मानता रहता है। श्यौराज सिंह बेचैन की कहानी 'सिस्टर' इस संस्कार को परिभाषित करती है। कहानी की पात्र सिस्टर का विवाह 'चचा' के साथ हुआ था। अपनी सहेलियों के कहने पर 'सिस्टर' ने सुहागरात की रात 'चचा' पान से उपहास में कह दिया, ''बहन, यानी सिस्टर!'' चचा ने दोहराया और तुरन्त बिस्तर से उठे और घर से बाहर चले गये। उसके बाद वे कभी भी पत्नी के पास नहीं गए। पत्नी ने यह बात सास, ननद सभी को बताई उनके पिता तक बात गयी। चाचा को समझाया गया, ''यह मजाक है, मजाक को दिल से नहीं लगाते हैं।''[4] सभी ने समझाया, पर पाल चचा के निर्णय को कोई हिला नहीं सका। ''सिस्टर को सिस्टर कह दिया तो कह दिया। अब उसके साथ हमबिस्तर होने का तो सवाल ही नहीं था।'' यहां स्त्री-पुरुष सम्बंधों में गहराई तथा मूल्य स्थापित होते दिखाई देते हैं। किसी ने मजाक में ही भाई या अपने आप को बहिन कह दिया तो भारतीय संस्कृति के पोषक पुरुष जीवन भर उसे हाथ नहीं लगाते बल्कि उसकी जीवन भर रक्षा करने का संकल्प ले लेते हैं। मगर इस कहानी में तो केवल मजाक के लिए ही सिस्टर कह दिया गया था। पति के द्वारा बहिन मान लिया तो फिर सिस्टर भी जीवन भर पुनः शादी न करने का संकल्प ले लेती है और चर्च में जीवन भर सेवा करती है।

श्यौराज सिंह बेचैन की कहानी 'सन्देश' अन्तर्जातीय प्रेम विवाह की समस्याओं को उद्घाटित करती कहानी है। इस कहानी का नायक भीमसिंह अपने ही गांव की उच्च वर्ग की लड़की से प्रेम विवाह कर लेता है। इस कारण गांव की उच्च वर्ग के लोग उसके मां-बाप एवं बहिन के साथ अत्यधिक अमानवीय व्यवहार करते हैं। घर को जला दिया जाता है तथा मां-बाप को गाय का गोबर चटाया गया तथा बाप को गांव में नगा कर घुमाया गया था। गांव एवं रिश्तेदार भीमसिंह जो एस.डी.एम. बन गया है उसकी काफी बुराई करते हैं। इसके उपरान्त वह अपनी पत्नी का साथ नहीं छोड़ता है बल्कि उसे भी काफी मेहनत तथा परिश्रम से आगे की पढ़ाई करवा कर जज बनने तक उसका साथ निभाता है। जैसे ही पत्नी जज बनती है तथा अपने सजातीय लोगों के सम्पर्क में आकर उसे तथा उसकी जाति पर व्यंग्य करती है तथा उसे अपनी जाति छोड़ने का दबाव भी बनाती है। अपने पिता के चढ़ाने पर वह अपने पति से तलाक लेकर अपने बेटे को अपने बाप के घर चली जाती है। भीम सिंह शादी के तलाक का कारण मैत्रेयी को बताता है, ''नजर-बजर कुछ नहीं, यह जाति व्यवस्था एक सच्चाई है, जिसे जवानी की नशीली आंखें देख नहीं पाती हैं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, वक्त गुजरता है, असलियत अपना रूप सामने लाने लगती है। यूटोपियाई अभेदों के पर्दे उठते हैं और यथार्थ के विभेद दृश्यमान होने लगते हैं। "... तो सुनों एक रात वह तलाक के बाद गुण्डे लेकर आ गयी। उसने मुझे उनसे पकड़वा कर कहा इसके गुप्तांग काट लो, यह किसी दूसरी के काबिल न रह जाए। वो तो मेरा बेटा मेरे ऊपर मुसीबत आती देख 'पापा को बचाओ, पापा को बचाओ' कहता-चीखता और शोर मचाता कालोनी मे भा। उसका शोर सुन कर कुछ लोग आ गए और वह गुण्डों को लेकर वापस चली गयी।''[5] ऐसे दृश्य अन्तर्जातीय विवाह जहां उच्च वर्ग की लड़की और निम्न वर्ग के लड़के के साथ हुआ हो अधिकांशतः मिल जाते हैं। अन्त में विनीता को उसके बाप तथा भाई मार देते हैं यह कहकर कि उसने एक नीच जाति के लड़के से शादी कर मेरी बेइज्जती की है। उसका बेटा यह देखकर भाग निकलता है और उसके पापा की जानने वाली प्रोफेसर मैत्रेयी को मिल जाता है जो उसे अपने गाड़ी में लेकर उसके पापा तक पहुंचाती हैं और अपनी मम्मी के बारे में बताता है कि मेरी मां को मेरे नाना और मामा जी नहीं ही मारा है और अब मेरे पापा को भी यह लोग मार देंगे। इस प्रकार यह कहानी स्त्री-पुरुष के संबंधों को उजागर करती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि श्यौराज सिंह बेचैन के कथा साहित्य में स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की समस्या को प्रमुखतः से चित्रित किया गया है।

सन्दर्भ

1. आशारानी ब्होरा, भारतीय नारी दशा और दिशा, जैनेन्द्र के उपन्यास में नारी की परिकल्पना, अतुल प्रकाशन, कानपुर-2002, पृ. 87
2. मेरी प्रिय कहानियां, श्यौराज सिंह बेचैन, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृ. 27-28
3. वही, पृ. 31 4. वही, पृ.75
5. भरोसे की बहन, श्यौराज सिंह बेचैन, पृ. 16

डॉ. मनुप्रताप

डी.लिट, एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, सम्बद्ध एम.जे. पी.रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली-243005 उ.प्र.
Email-- dr.manu_pratap@rediffmail.com

वृद्ध जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करता इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यास

–अजीत कुमार

साहित्य में रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से मनुष्य के जीवन में घटित स्मृतियों का लिपिबद्ध रूप प्रस्तुत करता है। साहित्य जन जीवन की छाया में ही फलता-फूलता सरल शब्दों में कहें तो साहित्य यदि पौधा है तो मनुष्य के जीवन की घटनाएं खाद एवं पानी जिसके, बगैर उसके अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में मानव जीवन का भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न प्रकार से चित्रण हुआ है, विशेष रूप से उपन्यास विधा के अंतर्गत यह चित्रण अत्यंत विस्तृत एवं सटीक रूप से प्रस्तुत हुआ है। साहित्य में उपन्यास को मानव जीवन की सबसे करीबी विधा कहा जा सकता है। समाज एवं सामाजिक प्रवृत्तियां सदैव गतिशील रहती हैं, वह स्थिर नहीं होती हैं। साहित्य समाज के परस्पर चलता है तो स्वाभाविक है साहित्य और साहित्यिक प्रवृत्तियां भी गतिशील रहेंगी। यही वजह है कि साहित्य में समाज और सामाजिक प्रवृत्तियों का सच्चा स्वरूप दिखाई देता है, साहित्य की उपयोगिता ऐतिहासिक समाजों में जितनी अधिक थी, आधुनिक समाजों में उससे भी और अधिक हो गई है।

वर्तमान इक्कीसवीं सदी के समाज में बदलाव की प्रक्रिया जिस तेज गति से हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं थी। आज का समाज प्रतिक्षण बदल रहा है और इस बदलाव की प्रक्रिया से मनुष्य की मनोवृत्तियां पूर्ण रूप से प्रभावित हो रही हैं, परिणामस्वरूप मनुष्य के संबंधों और जीवन मूल्यों में भी निरंतर परिवर्तन की बयार सी देखी जा सकती है। इन बदलते जीवन मूल्यों की छाप इक्कीसवीं सदी के साहित्य में साफ दिखाई देती है। ''परिवर्तित परिवेश में व्यक्ति की जीवन-पद्धति, मूल्य दृष्टि, रिश्ते-नातों आदि में जो बदलाव आया, साहित्य का इस सबसे गहरा संबंध रहा है, इस सब स्थितियों में मनुष्य के मनुष्यत्व को बचाने की चिंता और व्याकुलता पूरे साहित्य में निर्णायक रूपों में चित्रित हुई है।''[1] वर्तमान सदी में पूंजीवादी सभ्यता का बोलबाला है, जिसमें मध्यवर्ग सर्वाधिक पिस रहा है। मध्यवर्गीय पारिवारिक स्थिति को देखें तो वहां दो पीढ़ियों के मध्य एक वैचारिक खाई सी दिखाई देती है, जो उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की अपेक्षा कहीं अधिक है। आज युवा पीढ़ी तरक्की की दौड़ में निरंतर भागी जा रही है, किंतु वृद्ध पीढ़ी उस दौड़ में निरंतर पिछड़ रही है। युवा पीढ़ी वैचारिक, सामाजिक इत्यादि सभी आयामों में अत्यधिक विस्तारित हो चुकी है, वह वृद्ध पीढ़ी के दायरे से ही बाहर है। ''समाज में आने वाले हर बदलाव को सबसे पहले मध्य वर्ग ही अंगीकार करता है। पिछली आधी सदी में समाज जितना बदला है उतना सदियों में नहीं बदल सका है, इस बदलाव को साहित्य की हर विधा दिखा रही है, लेकिन उपन्यास में इस बदलाव को स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है, समाज में वृद्ध हाशिये पर जीते रहने को अभिशप्त है। बेटा बड़ा होकर इतना अधिक विस्तार पा जाता है कि वह मूल घर में ही नहीं समा पाता या घर के मुखिया को ही मूल से बेदखल कर देता है। इस दौर की मुख्य समस्या और आने वाले समय में बड़ी विकट होने वाली है।''[2]

पूर्व के हिंदी उपन्यासों को देखें तो वहां वृद्ध जीवन की समस्या या तो केंद्रीय रूप से चित्रित नहीं है, यदि है भी तो वह समस्या शारीरिक और मानसिक ही अधिक है, वहां इक्कीसवीं सदी के पूंजीवाद और भूमंडलीकरण से उपजे मानवीय मूल्यों के अलगाव का चित्रण नहीं है, जिसे वृद्ध पीढ़ी सर्वाधिक झेल रही है। इक्कीसवीं सदी का उपन्यास पूर्व के शारीरिक, मानसिक वृद्ध समस्याओं सहित वर्तमान सूचना और प्रौद्योगिकी के युग की नवीन वृद्ध समस्याओं को भी उद्घाटित करने का प्रयास कर रहा है। भूमंडलीकरण से प्रभावित वर्तमान सदी के दो दशकों के संक्रमण काल को देखें तो पता चलता है, कि इसने एक नई संस्कृति को जन्म दिया है। यह संस्कृति मध्यकाल की धार्मिक प्रवृत्ति पर आधारित न होकर यांत्रिक प्रवृत्ति पर आधारित है। ''आज उपन्यास के केंद्र में भूमंडलीकरण का दुर्धर्स आक्रमण है, जिसका सामना करना हमारे बस की बात नहीं रह गई है, हम केवल उसके लिए अपने को विविध रूपों में अनुकूलित किये जा रहे हैं।''[3] वृद्धावस्था मानव जीवन एवं उसके शारीरिक विकास की प्रमुख अवस्था है, व्यक्ति का जन्म हुआ है तो उसका शारीरिक

विकास भी स्वाभाविक है, जिसमें वृद्धावस्था को प्राप्त होना भी तय है। बीसवीं शताब्दी के अंत में जिस उपभोक्तावाद का उदय हुआ उसमें सुरक्षा-संस्कार और माता-पिता का ज्ञान पीछे छूट गया। युवा पीढ़ी ने इसकी चकाचौंध के क्षणिक सुख और ज्ञान को वरीयता दी। दो पीढ़ियों के इस द्वंद्व को ममता कालिया जी इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में प्रकाशित अपने लघु उपन्यास 'दौड़' के माध्यम से प्रस्तुत करतीं हैं, जहां संतान मां-बाप को ही ज्ञान का मतलब समझाती है-''आप बचपन में शंकर का अद्वैतवाद समझाते थे। मेरी कुछ पल्ले नहीं पड़ता था। आपने जीवन में मुझे बहुत कंफ्यूज किया है। सरल मार्ग में एकदम सीधी सच्ची यथार्थवादी बातें करते हैं।''[4]

वैश्वीकरण ने वर्तमान युवा पीढ़ी को भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा के विपरीत पश्चिमी संस्कृति की एकल परिवार प्रणाली की ओर अग्रसारित किया है। इसका दूसरा पक्ष या भी कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर में रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन बढ़ा है, किंतु रोजगार की तलाश का एकाकीपन धीरे-धीरे उनकी मनोवृतियों और खुशियों का एकाकीपन बनता जा रहा है। वहीं वृद्ध पीढ़ी आज भी पारिवारिक सुख की तलाश में है, जबकि युवा पीढ़ी अपनी खुशियों और स्वतंत्रता के समक्ष किसी को नहीं चाहती, अनुशासन उनके लिए गुलामी का पर्याय हो गया है। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास के नायक रघुनाथ को यह उम्मीद थी कि उनके बच्चे बुढ़ापे का सहारा बनेंगे पर उनके बेटे और बेटी दोनों ने विवाह के लिए अपने मां-बाप से बगावत कर ली-''रघुनाथ कई रातों तक सो नहीं सके उन्हें नींद ही नहीं आ रही थी जाने किन जन्मों का पाप था जो इस जन्म में भोग रहे थे। बच्चों को ऐसे संस्कार कहां से मिले उनकी समझ से बाहर था।''[5] यूं तो विश्व की आबादी 8 अरब को पार कर गई है, किन्तु इनमें से अधिकांश लोगों का जीवन मानसिक रूप से स्वयं तक ही सीमित है, जिसका प्रभाव वृद्धजनों में देखने को मिल रहा है। बदलती जीवन शैली के अनुरूप वे तालमेल बैठाने में असफल हुए हैं। परिवार से सहयोग और प्रेम की आकांक्षा कि तो वहां भी असफलता ही हाथ लगी। परिवार या तो पास नहीं है यदि पास है भी तो उसके पास इतना समय नहीं है, कि वह बुजुर्गों के साथ कुछ देर बैठ सके उनकी हाल खबर ले सके। परिवार से अपनत्व की तलाश पूरी न होने पर वे गैरों में इस अपनत्व को तलाशने के लिए मजबूर हैं, जबकि इसके लिए उनकी शारीरिक शक्ति भी पूरी तरह साथ देने में अक्षम है, हालात यह है कि व्यक्ति की वृद्धावस्था का जीवन भगवान भरोसे ही हो गया है। ''घर पर कोई अपना तो है नहीं जो बांधे जोड़े....जब तक पौरुख है घंटे डेढ़ घंटे के लिए चला जाता हूँ, अपने जाने पहचानों के बीच बैठकर दीन दुनिया की खबर मिल जाती है, मन थोड़ा बहल जाता है। बूढ़े लोग अपना भला बुरा ऊपर वाले पर छोड़ देते हैं।''[6] अकेलापन वृद्धावस्था की प्रमुख समस्या बन गई है, जिसने वृद्धों के जीवन को बोझ बना दिया है। यह बोझ तब और अधिक हो जाता है, जब वह अपने जीवनसाथी से भी बिछड़ जाते हैं, उनके बगैर वह स्वयं में ही खीझते हैं। यह समस्या वृद्ध महिलाओं की अपेक्षा वृद्ध पुरुषों में कहीं अधिक है ''मेरी पत्नी के रहते घर में ऐसी अराजकता तो न थी, अब किसी को क्या फर्क पड़ता है। उसके लिए मेरी झुलझुलाहट भी कोई मतलब रखती थी, वह मतलब भी उसी के साथ चला गया अब मैं अपने सिवा किस पर झुलझुलाऊं?''[7]

बदलते परिवेश में माननीय मूल्य का क्षरण भी तेज गति से हो रहा है। संतानों के लिए वृद्ध माता-पिता सम्मान के पात्र न होकर उपेक्षा के पात्र हो गए हैं। जो कभी घर के मुखिया हुआ करते थे, आज उनकी ही संतानें उनके साथ घर के जानवर और नौकरों सा सुलूक करती हैं। पत्नी की मृत्यु के पश्चात कानपुर से बेटे के पास दिल्ली आए बाबू जसवंत सिंह कहते हैं-''इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं- एक टॉमी दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह!... टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनका का रुतबा बढ़ाता है, उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ है। कलंकित होकर अक्षत चंदन क्यों चढ़ाएं?''[8] इसी प्रकार से रामधारी सिंह दिवाकर अपने उपन्यास 'दाखिल खारिज' में वृद्ध पीढ़ी के मानवीय उपहास का सटीक चित्रण करते हैं। उपन्यास के पात्र लाली यादव कहते हैं-''परिवार में एक्को पैसा का इज्जत है मेरी समझिए फेंका हुआ ठूंठ झाड़ू हूँ प्रोफेसर साहब! दुआर की एक कोने में फेंका हुआ, पुरैनिया वाली बहू आज जाने के लिए जीप में बैठी तो ऑर्डर देती गई दिन भर घर में ठेहुना पकड़ के बैठे रहते हैं, फिर एक दिन कड़क आवाज में बोली जैसे मालिक नौकर को डांटता है।''[9] मानवीय मूल्यों का क्षरण कई बार तो इस तरह बढ़ता है, कि वह मानसिक स्तर से बढ़कर शारीरिक स्तर पर पहुंच जा रहा है। जहां युवा पीढ़ी संपति के लालच में वृद्धों के प्रति हिंसक प्रवृत्ति अपनाने में भी पीछे नहीं हटती फलतः माता पिता जो अपनी संतान को बुढ़ापे का सहारा समझते हैं, उनकी ऐसी स्थिति को देखकर आज के बेऔलाद माता-पिता स्वयं को अधिक सुखी महसूस करते हैं। 'गिलीगडु' उपन्यास के पात्र कर्नल विष्णु स्वामी की पत्नी की मृत्यु हो जाने के पश्चात उनके बेटे और बहू ने उनसे दूरी बना रखी है। वह नोएडा की एक फ्लैट में अकेले रहते हैं। अब बच्चों की नजर उस फ्लैट पर भी है, जिसे बेचने के लिए कर्नल विष्णु स्वामी द्वारा मना करने पर बेटे श्रीनारायण ने उन्हें लहूलुहान कर दिया, जिसे देखते हुए कर्नल स्वामी की पड़ोसी मिसेज श्रीवास्तव बाबू जसवंत सिंह से कहती

हैं-''ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं...।''[10]

इक्कीसवीं सदी को मानवीय संबंधों के अंतर्द्वंद्व की सदी कहा जा सकता है। आधुनिक समाज में निरंतर प्रगति और सामाजिक प्रतिष्ठा मानव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है, तो सामाजिक और मानवीय संबंधों के लिए रिश्तों की गर्माहट परंतु दोनों का परस्पर मिलन संभव नहीं हो पा रहा है। 'पत्थर ऊपर पानी' और 'दौड़' जैसे उपन्यास इस अंतर्द्वंद्व को सटीकता से प्रस्तुत करते हैं। युवावस्था में व्यक्ति तरक्की की भाग दौड़ में निरंतर आगे रहना चाहता है, इसके लिए वह बड़े से बड़ा सुख त्यागकर क्षणिक सुखों की ओर लालयित होता है, किंतु वृद्धावस्था में उसे एहसास होता है, कि जिन्हें वह सुखों की खान समझ रहा था वह तो क्षणिक था। असल सुख तो वही था जिसे वह बहुत पीछे छोड़ आया है। वृद्धावस्था के एकाकीपन और हताशा से निराश होकर जब वह पीछे लौटता है तो पाता है, अतीत तो छोड़ों वर्तमान भी पहचानने से इन्कार कर रहा है। 'पत्थर ऊपर पानी' उपन्यास के पात्र रामचंद्र तरक्की की जद्दोजहद और आगे बढ़ने की आकांक्षा में अपना झांसी का मकान बेच देते हैं, किंतु जब बरसों बाद झांसी वापस आते हैं तो घर अजायबघर लगने लगता है। ''जब आदमी सैलानी सा मुक्त हो जाता है तो घर अजायबघर हो जाता है।''[11] सूचना और प्रौद्योगिकी के युग का बदलाव यंत्रवत है, जो कि सामाजिक परिस्थितियों और मनुष्य की मनोवृत्तियों को स्वतः बदल रहा है। वर्तमान युग में मनुष्य की मनोवृत्तियां स्वयं उसके नियंत्रण से बाहर हैं, जिसका प्रभाव मानवीय संबंधों में दिखाई देता है। अज्ञेय अपने उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' की वृद्ध पात्र सेल्मा के माध्यम से इसी ओर इशारा करते हैं-''कुछ भी किसी के बस का नहीं है योके एक ही बात हमारे बस की है- इस बात को पहचान लेना कि इसके आगे कुछ नहीं जानते।''[12]

इस प्रकार हम देखें तो पाते हैं कि इक्कीसवीं सदी का वर्तमान दौर वह समय है, जब सूचना और प्रौद्योगिकी का विस्फोट हो चुका है। जिसके प्रभाव में आधुनिक युवावों के साथ-साथ वह नवजात शिशु भी आ गए हैं, जो अभी तक अपने पैरों से चलना भी नहीं सीखे जबकि वृद्धजन जो पहले से ही हाशिए पर थे वह इस विस्फोट से और दूर जा गिरे। वृद्धों का भरा-पूरा परिवार भी अब उनके अकेलेपन को भरने में असफल है, क्योंकि परिवार की युवा पीढ़ी आभासी दुनिया की पर्यटक हो गई है, और वृद्ध इससे अछूते ही रहे परिणाम यह हुआ कि उनका समय व्यतीत करना कठिन हो गया है। इक्कीसवीं सदी का उपन्यास वृद्ध जीवन इन सभी परिस्थितियों को साथ लेकर चलता हुआ दिखाई देता है। वह मनुष्य की जीवन का सीधा सपाट चित्रण ही नहीं कर रहा बल्कि वह मनुष्य जीवन की उन सभी अवस्थाओं में जांचने-परखने के साथ-साथ उसके यथार्थ रूप को भी प्रस्तुत करने का प्रयास करता दिखाई दे रहा है। अस्मितामूलक वर्ग का चित्रण इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य का प्रमुख वर्ण्य विषय है। वृद्ध पीढ़ी की अस्मिता जिसकी ओर किसी का ध्यान आसानी से नहीं जाता है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास ने न सिर्फ इस ओर ध्यानाकर्षित किया बल्कि उन समस्याओं को भी चित्रित किया है, जिनसे आज की वृद्ध पीढ़ी हर समय दो चार हो रही है।

संदर्भ

1. 'सिंह', पुष्पपाल, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2021, पृष्ठ सं. 43
2. 'मीणा', रमेश चंद्, समकालीन विमर्शवादी उपन्यास, दिल्ली, अनुज्ञा बुक्स, 2020, पृष्ठ सं. 144
3. 'सिंह', पुष्पपाल, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2021, पृष्ठ सं. 44
4. 'कालिया', ममता, दौड़, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2023, पृष्ठ सं. 46
5. 'सिंह', काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, नई दिल्ली, राजकमल पेपरबैक्स, 2022, पृष्ठ सं. 54
6. हृदयेश, चार दरवेश, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2013, पृष्ठ सं. 70
7. 'शाह', रमेशचंद, सफेद परदे पर, नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2011, पृष्ठ सं. 10
8. 'मुद्गल', चित्रा, गिलीगडु, नई दिल्ली, सामयिक पेपरबैक्स, 2022, पृष्ठ सं. 96
9. 'दिवाकर', रामधारी सिंह, दाखिल खारिज, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृष्ठ सं. 139
10. गिलीगडु, पृष्ठ सं. 136
11. 'वर्मा', रवींद्र, पत्थर ऊपर पानी, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2000, पृष्ठ सं. 64
12. अज्ञेय, अपने अपने अजनबी, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2022, पृष्ठ सं. 21

अजीत कुमार
शोधार्थी
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
Email- ajitkumar226001@gmail.com

शैलेश मटियानी के कथा साहित्य में दलित विमर्श

–दिव्यांशु

उत्तराखण्ड की भूमि पर कई प्रसिद्ध साहित्यकारों ने जन्म लिया है, जिनमें से एक शैलेश मटियानी भी हैं। इन्होंने उत्तराखंड राज्य के साथ-साथ हमारे पूरे भारत देश को गौरवान्वित किया है। उन्होंने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में लगभग 30 उपन्यास तथा 250 कहानियां दी हैं। इनकी कथाओं में दलित वर्ग की वेवस लाचारी और आक्रोश को दर्शाया गया है।

शैलेश मटियानी एक महान आंचलिक उपन्यासकार हैं। इनका जन्म 1931 में उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले के बाड़ेछीना गाँव में हुआ। शैलेश मटियानी को 'उत्तराखण्ड का प्रेमचंद' भी कहा जाता है। शैलेश मटियानी ने लेखनकार्य 1950 ई. के आस-पास शुरू किया। उनकी शुरूआती कहानियाँ 'रंगमहल' और 'अमर कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई। उनका सबसे पहला उपन्यास 'शक्ति ही जीवन' (1951) में प्रकाशित हुआ। इन्होंने महानगरीय जीवन और पहाड़ी ग्रामीण जीवन की स्त्रियों एवं दलितों की सूक्ष्म संवेदना को प्रमुख अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में मिली है, इसके साथ ही पहाड़ी परिवेश को लेकर अपने कथा-साहित्य में दलितों एवं स्त्रियों की समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। इसके बाद भी शैलेश मटियानी ने अपने कथा-साहित्य में भारतीय समाज को बहुत कुछ दिया है। जिसमें से दलित विमर्श को उजागर किया है।

''डॉ. आरती झा के शब्दों में दलित विमर्श का अर्थ है 'दरिद्र या उत्पीड़न'। जिसे दबाया गया हो, शोषित किया हो, घृणित किया हो वह सब दलित माने जायेंगे।''[1] लेकिन आजकल दलित अनुसूचित जातियों और जन जातियों को माना जाने लगा है। इसकी स्थापना अम्बेडकर जी की दलित सामाजिक क्रांति से प्रभावित होकर महाराष्ट्र में दलित साहित्य संघ ने 1950 में अपने पहले सम्मेलन किया था। जिसमें बाबूराव बागुल का पहला कहानी संग्रह 'जेव्हा मि जट चोराली' आया और रामजी लाल सहायक का पहला दलित उपन्यास 'बंधन मुक्ति' (1954) में प्रकाशित हुआ। किंतु वर्तमान समय में भारतीय समाज के दलितों की स्थिति स्थिर बनी हुई है। जिसमें से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कहीं-कहीं तो धार्मिक स्थिति भी सोचनीय है कुछ इस तरह हमारे उत्तराखंड व उत्तर प्रदेश की स्थिति भी बिगड़ी दिखाई दे रही है। शैलेश मटियानी जी ने दलितों की स्थिति में परिवर्तन लाने की दृष्टि से अपनी अंचल प्रधान कथा साहित्य में यथार्थ एवं सच्चाई से पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थिति के साथ-साथ धर्म-कर्म, जातीय दर्पण व झूठ-पाखंड को दिखाने वाले पहलुओं को उजागर कर जोरदार विरोध व परिवर्तन लाने का कार्य किया है। मटियानी के पिता ईसाई महिला से विवाह कर लेते हैं और वह अपने परिवार को छोड़कर दूसरी जगह चले जाते हैं। पिता के छोड़ जाने के बाद मटियानी ने अपने इस संघर्ष को 'कठफोड़वा' कहानी में चित्रित किया है-''यह भी नहीं सोचा कि संबंध विच्छेद के बाद जीवन क्या होगा, ब्राह्मण समाज तो अब उन्हें स्वीकार करने से रहा।''[2]

शैलेश मटियानी ने दलितों व निम्न वर्ग के समाज को ध्यान में रखते हुए कई कथाओं की रचना की जिनमें से 'रामकली', 'सावित्री', 'नागवल्लरी', 'दुरगुली' एवं 'सतजुनिया आदमी' आदि दलित प्रधान कहानी हैं। इनके कथा साहित्य से यह पता चलता है कि समाज के प्रत्येक वर्ग जाति व धर्म को व्यक्त करने का एक बहुत सहज साधन माना जा सकता है वही लेखक दलितों के प्रति संवेदनशील दिखाई दे रहे हैं तथा मानवीय अधिकारों के प्रति जागरूक करते नजर आए हैं कहीं एक ओर उच्च समाज व उच्च वर्ग की संवेदनहीनता व शोषण की झलकता को उजागर किया है तथा ''दूसरी ओर दलित समाज व निम्न वर्ग की सामाजिक स्थिति, बहिष्कार, मंदिरों में प्रवेश, अस्पृश्यता और विडंबना को दूर करने का प्रयास किया है।''[3]

शैलेश मटियानी ने दलितों पर अत्याचार शोषण के बारे में 'दुरगुली' कहानी में छलक दिखाई पड़ती है। 'दुरगुली' कहानी में दलित स्त्री दुरगुली अपने परिवार के पालन पोषण के लिए ठाकुर ब्राह्मणों के सामने लाचार और बेबस दिखाई देती है तथा उनके द्वारा किए जा रहे शारीरिक शोषण तथा दुर्व्यवहार के बदले प्राप्त अन्न और धन से अपने परिवार को चलाते दिखाया गया है। वही 'लाटी' कहानी में दलित लाटी की प्रेमी डिबरूआ की मृत्यु पर उसका करुण क्रंदन भविष्य

की चिंता व दिशाहीन होने की ओर दिखाता है वहीं समाज के सभ्य लोगों की यही विडम्बना है कि गरीब व दलितों की स्थिति को दरकिनार कर अपना उल्लू सीधा करने में लग जाते हैं इससे समाज पर कुप्रभाव दिखाई दे रहा है 'दुरगुली और लाटी' कहानी में जो स्थिति दलितों की है ठीक वैसे ही पात्र हमारे आस-पास भी देखने को मिल जाते हैं।

''प्रेम मुक्ति' कहानी के माध्यम से समाज में दलितों की समस्या को जन-जन पहुंचाने का कार्य किया है जिस कहानी में दलित किसान किशनराम की आत्मा के मुक्ति के बारे में बताया गया है केवल पांडे संध्या काल के सूर्य देवता को नमस्कार कर रहे हैं इतने में उन्हें उत्तर की ओर जो शूद्रों के श्मशान से धूआं उठता दिखाई दिया। उसके बाद उन्हें लगा नदी में किसी अछूत के शव की अस्थि-मज्जा को अधजला ही बहा दिया होगा। इतने में होने अछूत लाचार और गरीब किशनराम की प्रेत आत्मा पेड़ पर उल्टी लटकी दिखाई देती है और पांडे जी अछूत किशनराम का तर्पण चोरी-चोरी करना चाहते थे क्योंकि हमारा समाज अछूत का तर्पण वो भी एक पांडे के हाथों कतई स्वीकार नहीं करेगा उनको यही चिंता सता रही थी।''[4] पांडे जी अपने पिता के श्राद्ध के साथ उसका तर्पण करना चाहते थे लेकिन उनके मन में ख्याल आया रामकिशन का तर्पण हो गया होगा इतने में रामकिशन अपनी सौतेली मां को फूँककर आते हुए पांडे जी को रास्ते में दोनों हाथ दंडवत में जोड़ें और जमीन यथावत झुका था उसके बाद पांडे जी ने कहा जीता रहे मानो किसी प्रेत के बंधन से अपने को मुक्त कर रहे हो। इस प्रकार हमारे समाज में शूद्रों, दलितों के प्रति विचारधारा पनप रही है। शैलेश मटियानी जी ने इस कहानी से हमारे समाज के पाखंड और विडंबना को उजागर किया है।

'नागबल्ली' उपन्यास में जाति व्यवस्था को दर्शाया है इस उपन्यास में दलित वर्ग अपने पिछड़ेपन से चिंतित है इसमें पात्र नारायण का उच्चारण है-''जब तक हरिजन समाज अपने बीच से अपने नेता खुद पैदा नहीं करेगा, तब तक पिछड़ापन मिटाना मुश्किल रहेगा।''[5]

और इसमें दलित वर्ग संगठित होने तथा नवीन चेतना और जागरुकता होने की बात कही है। इसी उपन्यास के पात्र जनार्दन के शब्दों में-''महर्षि वाल्मीकि का नाम सुझाकर उन्होंने हरिजन एकता का आह्वान किया हरिजनों में ही टम्टा, लोहार, ओढ़े-ढोली, मोची-चमार, भंगी-कंजड़ जैसी फिरकापरस्ती की भावना रहेगी तो हरिजन एकता की बात करना व्यर्थ है।''

शैलेश मटियानी जी की कथाओं में दलित नारी के जीवन का चित्रण देखने को मिलता है जिसमें नारी को समाज के सामने जूझते हुए दिखाया गया है। ऐसे नारी पात्रों में 'पत्थर कहानी की गफूरन', 'नंगा की रेवती', 'रामकली उपन्यास में रामकली', 'चील की सत्यनारायणी', 'मिट्टी की गणेश' और 'सावित्री की सावित्री मिरासिन' आदि दलित नारी पात्रों की परिगणना कर सकते हैं।

मटियानी जी ने बहुत से उपन्यास लिखे हैं, उनके एक उपन्यास का नाम 'चौथी मुट्ठी' है जो कि नारी समस्या के साथ- साथ दलित समस्या पर आधारित है। इस उपन्यास में मटियानी जी ने बड़े कौशल से कौशीला की पीड़ा को व्यक्त किया है। कौशिला मिथिला अंचल की एक ऐसी ग्रामीण नारी है जो सौतिया आग की दाह में अपने पति के नाम पर ही मुढ डालने जाती है किंतु वह चौथी मुट्ठी पति के नाम पर निकालकर फेंक नहीं पाई क्योंकि उसी समय यह सोचती है कि उसका सुहाग तो उसके पति के कारण ही है। इसी उपन्यास में मौत में मोतिमा मस्तानी का जीवन आनंद दुख दर्द से भरा हुआ है। दलित होने के बाद भी उसका पति उसे वेश्या जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर करता है पर जब वह यह देखती है कि उसका पति उसकी बेटी से भी वही करना चाहता है तो उसका महाकाली का रूप प्रकट होता है। ''एक मूड सरसों'' में देवकी नामक स्त्री की करुण कहानी है। उसके जीवन में अपनी मां के समान ही दुखों के पहाड़ है वह भी अपने पति के घर से विवश होकर आत्मघात करने के लिए निकल पड़ती है। ''उगते सूरज की किरण'' में दो विभिन्न प्रवृत्तियों को लेकर चलने वाली दलितों का चित्रण किया गया है। ''गोपुली गफूरन एक ज्वलंत समस्या को लेकर चलने वाला शैलेश मटियानी का उपन्यांस है। 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' उपन्यास में भी वेश्याओं की जीवन समस्या का चित्रण किया गया है। इसी तरह 'किस्सा नर्मदा बेन गंगुबाई' मे भी कोठे पर जाने वाली बेबस नारियों की जीवनगाथा को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में मुंबई जैसे महानगर में फुटपाथ पर जीने वाले लोगों के जीवन का चित्रण किया गया है जो दलितों की समस्याओं को चित्रित करता है। यह उपन्यास नारी समस्या प्रधान रचना है। जिसमे नर्मदा बेन जैसे नारी चरित्र अर्थलोलुप्त के कारण अत्यंत घिनौना जीवन बिताने को विवश हैं तो दूसरी ओर गंगुबाई जैसी विधवा स्त्री है जो विधवा होकर भी अपने वैध्व का रक्षण करती है। 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' उपन्यास में मछुआरों और दलितों के जीवन का चित्रण के साथ नारी समस्या का भी चित्रण किया है। 'कबूतरखाना' मुंबई महानगरी के एक प्रसिद्ध मोहल्ला भूलेश्वर को कथा के केंद्र में रखा गया है। उपन्यास में निम्नवर्ग और शोषित वर्ग के बीच दलितों की जिंदगी को पंख नोचे कबूतर की तरह प्रस्तुत करता है। 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' उपन्यास के समान इस उपन्यास में भी वेश्याओं की जीवन समस्या का चित्रण किया गया है। इस प्रकार से 'किस्सा नर्मदा में

गंगूबाई' में भी कोठे पर जीने वाली बेबस नारियों के जीवन की गाथा को दर्शाया गया है। लेखक होने का समस्याओं के मूल कारण आर्थिक असमानता को मानता हैं, कुमाऊं अंचल प्रचलित दलितों के विवाह की समस्या को मटियानी जी ने अपने रचनाओं में उठाया। इसके साथ ही मटियानी जी ने छोटे-छोटे गांव में प्रचलित प्रेम विवाह पद्धति को भी उभारा है। कुमाऊं आंचल में प्रेम को दो स्त्रियों से और फिर दो पुरुषों से होते दिखाया गया है। किंतु जहां दलित व्यक्ति किसी अन्य स्त्री से प्रेम करता है, तो समाज इसे स्वीकार नहीं करता। अतः स्त्री को समाज में अपमान, तिरस्कार और उपेक्षाओं की शिकार होना पड़ता है। पति के लिए सब कुछ समर्पित करने वाली स्त्रियां मटियानी जी के उपन्यास में दिखाई देती हैं।

'रामकली' उपन्यास में रामकली एक तरफ ही प्रेम करते हुए अपने पति के लिए अपनी सारी इच्छाओं का गला घोंट देती है। आर्थिक विषम स्थिति का शिकार नारी पात्रों के साथ-साथ पुरुष पात्र भी होते हैं। 'कबूतरखाना' उपन्यास में दलित गणपत और आर्थिक विषम स्थितियों से गुजरने वाले वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेकर पूंजीवादियों पर कड़क प्रहार करते हैं। वह बताना चाहते हैं ''कि आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने पर अपने निर्धनता के कारण अपनी मां बहनों की रक्षा नहीं कर सकता। जिनके पास अत्यधिक धन है वह नारी को मात्र भूखविलास की सामग्री समझते हैं।''[6] लेखक ने स्वाधीनता के पश्चात समाज में जागी सामाजिक, राजनीतिक चेतना का चित्रण किया है। शैलेश मटियानी जी ने अनेक गैर आंचलिक उपन्यास लिखे हैं 'कोई अजनबी नहीं' उपन्यास में दिल्ली जैसे शहरों में दलित मजदूर की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

शैलेश मटियानी जी महान कथाकार माने जाते हैं। उन्होंने अपने साहित्य लेखन से दलितों की पीड़ा तथा उत्पीड़नता को बहुत ही मार्मिक ढंग से दर्शाया है और इसके साथ-साथ समाज को जागरूक तथा उसके समाधान के बारे में इंगित किया है जिससे समाज को जागरूकता व नवीनता में वृद्धि का स्तर दिखाई दे रहा है तथा इनकी कथाओं में प्रतीत होता है कि उन्होंने दलित वर्ग के प्रत्येक पहलू को सशक्तता के साथ लेखबद्ध किया है उनकी कहानियों तथा उपन्यासों में दलित के अंतरंग व बहिरंग जीवन का संघर्ष देखने को मिलता है। जिनमें आंचल प्रधान कथा साहित्य दुरगुली, परिवर्तन, सतजुनिया, प्रेत-मुक्ति कहानियां तथा नागबल्ली जैसे उपन्यास में दलितों की स्थिति को उजागर किया है। इस प्रकार मटियानी जी ने हिंदी साहित्य में अपनी छाप छोड़ने के साथ-साथ समाज की स्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है।

संदर्भ

1. डॉ. आरती झा, (2012) ''भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना'', लेख, नवविकाष (शोध विशेषांक), पृ-60
2. जन कथाकार शैलेश मटियानी एक संक्षिप्त परिचय-विद्याधर शुक्ल मटियानी की संपूर्ण कहानी-भाग-5, पृ-496
3. वही, भाग-5, पृ-499
4. मटियानी शैलेश, (2008) ''शैलेश मटियानी की संपूर्ण कहानियां'', भाग-2, प्रकल्प प्रकाशन इलाहाबाद, पृ- 20-45
5. वही, नागबल्ली, भाग-2, पृ-459
6. वही, कबूतरखाना, भाग-2, पृ-474

दिव्यांशु
शोधार्थी, हिंदी विभाग
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय,
(हरिद्वार)

डॉ. कालीचरण 'स्नेही' के काव्य है दलित समाज का संघर्ष

–वीर पाल

सारांश : आधुनिक हिन्दी दलित कविता अभी जिस मुकाम पर है। उनमें हिंदी दलित कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी साहित्य में, दलित कविता अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके माध्यम से दलित कवियों ने समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों का यथार्थ चित्रण किया है। इन साहित्यकारों की कविता सहानुभूति परख रही है। डॉ. कालीचरण 'स्नेही' इसी परम्परा के कवि माने जाते हैं, जो बिना लागलपेट से कविता करते हैं। यह पेपर दलित समाज द्वारा किए गए श्रम-संघर्ष और दलित समाज पर हुए अमानवीय व्यवहार, यातनाओं और उत्पीड़न को व्यक्त करता है।

मुख्य शब्द : दलित, मुक्ति, जाति धर्म, समस्याएँ, अत्याचार, शोषण, घृणा, भेद-भाव, भूख, गरीबी, अमानवीय व्यवहार, परिवर्तन।

प्रस्तावना : आधुनिक कविताओं के प्रसिद्ध लेखक कालीचरण स्नेही का जन्म 20 मार्च 1957 ईस्वी में मध्य प्रदेश में हुआ है। कालीचरण स्नेही जी के पिता का नाम श्री गंगूराम था और माता जी का नाम श्रीमती रानी बहू था। इन्होंने भारतीय समाज में हिंदी कविताओं के माध्यम से दलित साहित्य को उजागर किया है।

दलित शब्द एक अहसास है इसे जाति नहीं माना जा सकता है। यह समाज के सबसे निचले तबके के व्यक्तियों के सुख-दुख, संघर्ष और अनुभवो से संबंधित है। दलित शब्द टूटे, अछूत उत्पीड़ित शब्द का पर्यायवाची है। इससे मालूम होता है कि भेदभाव ऊँची जातियों द्वारा दिया गया अभिश्राप है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से अछूत शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। ऋवेद में अछूतों को एक बहिष्कृत समाज का दर्जा दिया गया है। अंग्रेजों ने इसे अनुसूचित जनजाति का दर्जा दे दिया, फिर विस्तार होता गया इससे दलित साहित्य की उत्पत्ति हुई दलित साहित्य, दलित और दमित लोगों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार और अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाने का माध्यम है। समाज को संघर्षशील बनाने में रैदास, कबीरदास, दादू दयाल, तुकाराम, गुरु नानक, सहजोबाई प्रेमचंद, नरसिंह मेहता लेखकों के साथ-साथ बाबा साहेब अम्बेडकर, जोतिबा फुले, मार्टिन लूथर किंग एवं ब्लैक पैंथर्स से प्रेरित माना जाता है। इन विद्वानों ने दलित समाज को उनके अधिकारों से जागरूक कर उन्हें हासिल करने के लिए प्रेरित किया एवं संघर्षशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके साथ-साथ कई आधुनिक कवि भी हुए हैं, जो दलित समाज से संबधित कई लेखक और कवि हुए हैं जिनमें एक नाम, कवि कालीचरण 'स्नेही' का भी आता है। 1977 से इन्होंने गांव के ही स्कूल में पढ़ना शुरू कर दिया। नौकरी के साथ-साथ इन्होंने प्राइवेट तौर पर स्नातक की पढ़ाई पूर्ण की और उसके बाद इन्होंने अपनी परास्नातक की शिक्षा अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय से प्राप्त की, तथा इसी विश्वविद्यालय से, 'पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी के व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और इन्होंने सात साल तक प्राइमरी स्कूल में पढ़ते रहे। इसके बाद 1988 में 'काणठर' क्षेत्र से निकालकर उन्हें चंबल क्षेत्र में 12 वर्ष तक सरकारी कॉलेज में प्रवक्ता के पद पर नौकरी करने का अवसर प्राप्त हुआ, उसके बाद सन 2000 ई. में लखनऊ आ गए तथा हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहे। इनकी कविताएँ दलित समाज के लिए कई मापदंडों पर खरी उतरती हैं, और दलित समाज के यथार्थ को चित्रित करने में सहायक हैं।

हमारे देश की विडंबना रही है, कि कुछ लोग पुनर्जन्म और धर्म की लालसा देकर, दलित समाज को डराते और धमकाते आए हैं, जिससे पाखंड को और रफ्तार मिलती गई, इसका परिणाम यह निकला कि जाति व्यवस्था हमारे देश में अब भी कायम है, क्योंकि कवि का मानना है कि जाति व्यवस्था को फैलाने में धार्मिक संस्थानों का अधिक रोल रहा है। कवि कविता के माध्यम से यही व्यक्त करने का प्रयास करता है-

''गंगा किनारे, कोई वट वृक्ष ढूँढ़कर, भगवान का पाठ कर लो,
आत्मतुष्टि के लिए, कहीं अकाल मृत्यु के बाद, भयभीत आत्मा भटकते-भटकते
किसी कुत्ते या सुअर की मृत देह में, प्रवेश न कर जाये या फिर

पुनर्जन्म की लालसा में, किसी डोम या चूहड़े के घर पैदा न हो जाये

चूहड़े या डोम की आत्मा, ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है,
मैं नहीं जानता, शायद आप जानते हों!''[1]

कवि कालीचरण 'स्नेही' जी ने कविता 'बस बहुत हो चुका' के माध्यम से बताने का प्रयास किया है कि दलित समाज को किस तरह से प्रताड़ित किया जाता रहा है और दलित समाज हजारों वर्षों से गुलामी सहता आया है,

उसके मन की पीड़ा को व्यक्त किया गया है-

''जब भी देखता हूँ मैं,
झाड़ू या गन्दगी से भरी बाल्टी कनस्तर किसी हाथ में
मेरी रंगों में, दहकने लगते हैं,
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ
जो फैले हैं इस धरती पर, ठण्डे रेत कणों की तरह।
मेरी हथेलियाँ भीग-भीग जाती हैं,
पसीना, आँखों में उतर आता है
इतिहास का स्याहपन,
अपनी आत्मघाती कुटिलताओं के साथ।
झाड़ू थामे हाथों की सरसराहट,
साफ सुनायी पड़ती है।''[2]

कवि 'स्नेही' जी ने 'वे नहीं जानते' कविता के माध्यम से अनेक दलित ममताओं का दुःख व्यक्त किया है कि, किस तरह से दलित समाज की स्त्रियां मजबूरन अपने छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर गली मोहल्ले की गंदगी साफ करती हैं, और उनके बच्चे किस तरह से घर के अंधेरे कोने में मां का इंतजार करते हैं। इससे पता चलता है, कि दलित समाज की स्त्रियां कितनी बेबस और लाचार हैं। इन पर किस तरह से अत्याचार किया जा रहा है-

''हाथ में लिये झाड़ू और टूटा-फूटा कनस्तर,
सुबह मुहँ अँधेरे,
घर से निकलती माँ को देखकर,
कभी नहीं रोया बच्चा, दलित विमर्श और हिन्दी,
डरा नहीं अकेले घर में,
अँधेरे कोने से या गली में गुर्राते कुत्ते से,
सूखे स्तन में नहीं अकुलाती दूध की गंगा,
गली-मुहल्लों की गन्दगी ढोते ढोते,
भूल जाती हैं माँ, पीछे छोड़ आयी दो मासूम आँखों को,
जो टकटकी लगाये देख रही है राह,
उसके लौट आने की, सुबह घर से निकलती मां,
और शाम को निढाल थकी, अँधेरे में घर लौटती स्त्री,
एक-सी दिखायी पड़ती है,
इतिहास खामोश है। खामोश है।''[3]

कविता 'ठाकुर का कुआ' में कवि दलित समाज की स्थिति को उजागर कर, उच्च वर्गीय समाज की पोल खोलता है कि, किस तरह से हमारे देश में उच्च वर्गीय समाज का एकाधिकार स्थापित है-

''चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की,
तालाब ठाकुर का।
भूख रोटी की, रोटी बाजरे की, बाजरा खेत का,
खेत ठाकुर का
बैल ठाकुर का, हल ठाकुर का,
हल की मूठ पर हथेली अपनी, फसल ठाकुर की।
कुआ ठाकुर का, पानी ठाकुर का खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के फिर अपना क्या?
गाँव?, शहर?, देश?''[4]

कवि 'स्नेही' जी अपनी कविता 'आखिरी जंग' में दलित समाज के यथार्थ को समझाने का प्रयास किया है। इस कविता को पढ़ने के बाद मालूम होता है कि दलित समाज को प्राचीन काल से ही पशुओं की तरह रौंदा जाता रहा है और अत्याचार किया जाता रहा है। फिर भी दलित समाज संघर्ष करता आया है-

''ओ परमेश्वर!, कितनी पशुता रौंदा है हम,
तेरे इतिहास ने, देख, हमारे चेहरों को देख
भूख की के निशान साफ दिखाई देंगे तुझे।
हमारी पीठ को सहलाने पर हम जब भी
तेरे कदमों में सर रखने की सोचते हैं।
तेरा धरती में गडा स्थूल लिंग
अग्रज एकलव्य का कटा अंगूठा प्रतीत होता है, हमें।
तेरे आंगन में घुमड़ते धूम झुंड
पुरखों की सिलगती चिता की याद दिलाते हैं
और तेरी अर्द्ध कुम्भाकार योनि पर
बिखरी लाल गुलाबी पंखुड़ियां रोती बिलखती
आँखों से छीने गये सपने प्रतीत होते हैं।
लीलाथर! हम जहाँ खड़े हैं वहाँ,
हर तरफ बहेलिये का ही बसेरा है।''[5]

'मुझे गुस्सा आता है' कविता के माध्यम से कवि ने बताने का प्रयास किया है कि, दलितों की स्थिति में क्या-क्या परिवर्तन आए हैं, लेकिन अभी तक वर्ण व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया है। प्राचीन काल से जस की तस बरकरार है। इस बात पर कवि गुस्सा करते हुए कहता है-

''मेंरी मां मैला कमाती थी। बाप बेगार करता था,
और मैं मेहनताने में मिली जूठन को
इकट्ठा करता था, खाता था।,
आज बदलाव इता आया है
कि जोरू मैला कमाने गई है बेटा स्कूल गया है
और मैं कविता लिख रहा हूँ।
इस तथ्य को बचपन में ही जान लिया था
मैंने कि पढ़ने लिखने से
कुजात सुजात नहीं हो जाता,
कि पेट और पूँछ में एक गहरा सम्बन्ध है।

कि पेट के लिए रोटी जरूरी है।
और रोटी के लिए पूँछ हिलाना उतना ही जरूरी है
इसीलिए जब किसी बात पर बेटे को मूँछ ताने
देखता हूँ पूँछ मुझे गुस्सा आता है।
साथ ही साथ डर भी लगता है,
योंकि गुर्राने का सीधा सपाट अर्थ बगावत है
और बगावत महाजन की रखैल नहीं,
जिसे जी चाहा नाम दे दो रंग दे दो।''[6]

कवि 'स्नेही' जी ने अपनी कविता 'न्याय की पुकार' में बताने का प्रयास किया है कि किस तरह से दलित समाज ने संघर्ष किया है न्याय की पुकार की है, इतिहास गवाह है कि, किस तरह से अत्याचार किया गया है, अतः आप दलित समाज आपके अत्याचार और उत्पीड़न नहीं सहने वाला है। समय के साथ परिवर्तन लाना है-

''अन्याय उत्पीड़न के खिलाफ, दलित प्राज बोलता है।
देश में, किसी न किसी कोने में,
इसीलिए उनका खून होता है।
मारो तुम कितनों को मारोगे,
मानव-मुक्ति के आन्दोलन में
कितनों को मौत के घाट उतारोग,
अब उन्नीसवीं सदी चली गई
बीसवीं सदी की बात करो,
जो कल तक गुलाम तुम्हारे थे
अब उनके मालिक बनने की बात करो।
याद रहे जैसे दो हाथ तुम्हारे हैं
वैसे ही दो हाथ हमारे हैं, वो जो अत्याचार को उठाते हैं
वे अब काटे भी जा सकते हैं।
बहुत कर चुके सेवा तुम्हारी
फिर भी, तुममें अभी तक अहंकार भरा है।
जाति, धर्म और धन का।''[7]

डॉ. कालीचरण 'स्नेही' अपनी साखियों में धर्म के पाखंड को उजागर करने का प्रयास किया है कि मंदिर, मस्जिद और देवी देवताओं के नाम पर जाति बाद को किस तरह से विस्तारित किया जा रहा है। और इससे मानव सदियों से जूझता आया है, फिर भी यह पाखंड का नहीं हो पा रहा है यह हमारे देश की विडंबना है-

''तप अनुभव की आँच में, पी जगती का ताप।
करत उजागर लेखनी, सदियों का सन्ताप॥
मानवता का पक्ष ले, जूझ रहा जो नित्य।
समता का साहित्य ही, है असली साहित्य॥''[8]

'स्नेह' जी की साखियों की यह विशेषता रही है कि दलित समाज को संघर्षशील बनाने के साथ-साथ कवि अपने इतिहास पुरुषों और वर्तमान समय की राजनीतिक हस्तियों का भी गुणगान करता है। संत रविदास से लेकर गौतम बुद्ध, भारत रत्न बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले, मान्यवर काशीराम तथा बहन कुमारी मायावती के राजनीतिक और सामाजिक महापुरुषों का गुणवान करते हुए संदेश देना चाहता है कि हमें इन महापुरुषों पर गर्व होना चाहिए और इनसे प्रेरित होकर श्रम और संघर्ष करते रहना चाहिए। जिस देश को एक नई दिशा और दशा प्राप्त हो और दलित समाज के साथ-साथ पूरे देश का विकास सुनिश्चित हो और कवि इन सखियों से अभिव्यक्त करता है-

''दिया उजाला जगत को, जले आप ज्यों मोम।
नत मस्तक सब हो गए, क्या वसुधा ब्योम॥
विफल किए निज बुद्धि से, उनके सब षड्यन्त्र।
तुम लाए इस धरा पर, फिर असली गणतंत्र॥
समता-ममता मैत्री, संविधान का मूल।
तेरे इस उपकार को, सबने किया कबूल॥''[9]

निष्कर्ष- हमारे देश में मानव मूल्यों, लोकतांत्रिक विचारों, समानता, प्रेम-भाव भाई-चारा और स्नेह आदि से आमजन को जागरूक किया जाता रहा है, फिर भी देश में यह विडंबना है कि छुआ-छूत तथा जाति-वाद हमारे समाज का अभिन्न अंग बना हुआ है। इसके लिए कई लेखकों ने कहानी, उपन्यास और आत्मकथाओं के साथ-साथ दलित संघर्ष को अपने लेखन से तेज धार देने का प्रयास किया है, तथा कई कवियों ने कविताओं के माध्यम से इसे गति देने का कार्य किया है, इसमें एक नाम दलित कवि कालीचरण 'स्नेही' का भी आता है। 'स्नेही' जी की कविताओं का परम लक्ष्य दलित समाज के प्रति सुधार और परिवर्तन लाना है। इतने संघर्ष के बावजूद भी हमारे देश में वर्ण व्यवस्था अथवा जाति व्यवस्था और भेद-भाव ने अपने पैर जमा रखे है। यह विचारणीय प्रश्न है? इसे टाला नहीं जा सकता।

सन्दर्भ

1. डॉ. कालीचरण 'स्नेही' (2022). दलित विमर्श और हिंदी दलित काव्य. साहित्य संस्थानः प्रकाशन, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, गाजियाबाद-201102 प्र, स. 164
2. वही, पृ.सं. 166
3. वही, पृ.सं. 173
4. वही, पृ.सं. 174
5. वही, पृ.सं. 182
6. वही, पृ.सं. 184
7. वही. पृ.सं. 246
8. डॉ. कालीचरण 'स्नेही' (2008). जय भारत जय भीम ('स्नेही' की साखियाँ). अम्बेडकर्स विजन : प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स नं.- 9173, वही. पृ.सं. 13
9. वही, पृ.सं. 119

वीर पाल
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली
महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय,
बरेली, उ.प्र.

किसान जीवन का यथार्थ : अगम बहै दरियाव

–डॉ. नमिता जैसल
–चन्द्रावती

शोधसार : भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की अर्थव्यवस्था खेती किसानी पर आधारित है। जनसंख्या के कुल 70-80 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। गाँव के लोगों की आजीविका का मुख्य साधन खेती-बाड़ी ही है। भारत की पहचान उसकी सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तार ग्राम जीवन में ही निहित है। कृषक जीवन का सम्पूर्ण रूप गाँव में ही परिलक्षित होता है। जिन ग्रामीण किसानों के परिश्रम के बल पर देश की अर्थव्यवस्था संचालित व नियंत्रित होती हैं, उन किसानों की दशा सदैव दोयम दर्जे की रही है। स्वतंत्रतापूर्व किसान कृषि कार्य हेतु जमींदार, साहूकार, सामंती महाजनी जैसी कुव्यवस्था में फँसकर दरिद्र होता रहा है। उसके सिर का ऋण जीवन भर चैन से रहने नहीं देता। नाना रूपों में आकर तंग करता और एक दिन जान माल लेकर ही मानता है। स्वतंत्रता पश्चात भी सरकारें आती-जाती रहीं लेकिन किसानों की आर्थिक हालातों में विशेष परिवर्तन नजर नहीं आता है। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से खेती किसानी हेतु नवीन यन्त्रों को बढ़ावा दिया गया। भूमि सुधार कार्यक्रम द्वारा बटाइदारों, भूमिहीन किसानों की स्थितियों में सुधार का प्रयास किया गया। ट्रैक्टर, पम्पिंग सेट, उन्नत किस्म के बीज, कीटनाशक रासायनिक खादों आदि का प्रचलन आरम्भ किया गया। इन सभी सरकारी सुविधाओं के बावजूद भी किसानों को आसमानी एवं सरकारी आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। लोन, आत्महत्या जैसी समस्याएँ आज भी किसानों के जीवन से गहरे जुड़ी हुई है। किसानों के समुचित विकास के बिना देश का समुचित विकास संभव नहीं है। शिवमूर्ति का उपन्यास 'अगम बहै दरियाव' के माध्यम से उपर्युक्त स्थितियों को नये नजरिए से समझने का प्रयास है।

सूचक शब्द : ग्राम जीवन, किसान, लोन, किसान आंदोलन, आत्महत्या।

प्रस्तावना : स्वतंत्रता पश्चात् किसानों की दशा में कुछ अंश तक परिवर्तन हुआ है। कृषि हित में निर्मित योजनाओं का लाभ बड़े जोतदार व धनाढ्य किसानों को तो मिल जाता है लेकिन, आम किसानों तक यह सुविधाएँ पहुँच नहीं पाती हैं। गाँव अभी भी परम्परागत ढंग से चलायमान है। आपसी मनमुटाव, जातिवाद जैसी तमाम कुरीतियों से चिपटा गाँव, लोगों के परस्पर एक होने के सदैव विरुद्ध रहा है।

''किसानों का दुर्भाग्य यह है कि वे पढ़े-लिखे अर्थशास्त्र के ज्ञाता नहीं हैं। बाजार की नियंत्रक शक्तियों की लूट पर आधारित पूँजीवादी षड्यंत्रों से वे वाकिफ नहीं है। जिस पर किसान पूरे देश में असंगठित हैं। जातियों की भिन्नता उन्हें एकजुट नहीं होने देती।''[1]

समाज के इस अलगाव का फायदा राजनेता व राजनीतिक दल उठाते ही रहे हैं। नवीनीकरण व पूँजीवादी दौर में किसान कहीं से भी प्रगतिशील नहीं नजर आता है। दिन ब दिन बढ़ती मंहगाई खेतिहर किसानों की कमर तोड़ रही है। ग्लोबलाइजेशन ने सम्पूर्ण देश को प्रभावित किया है लेकिन किसान कहीं से भी इसके दायरे में नहीं आते हैं। हाँ इसका विपरीत असर जरूर पड़ा है।

''आज का युग बाजारीकरण का है यानी बाजार की वस्तु घर में आकर पनप रही है। नये युग की नई विचार शैली, नई दृष्टि, नई योजना के चक्र में समायी हुई है। किसान अपनी खोखली प्रतिष्ठा बचाने के लिए हर समय संघर्ष करता रहा है।''[2]

पूँजीवादी व्यवस्था के तहत किसानों की स्थिति में संकट ही नजर आता है। स्मार्ट सिटी एवं एक्सप्रेस वे के नाम पर किसानों की जमीनों को तहस-नहस किया जा रहा है। सीमांत किसानों की जमीनों पर अब कोई सेठ, साहूकार, जमींदार नहीं बल्कि देश का कर्त्ता-धर्ता ही काबिज हो रहा है। बढ़ती लागत, घटते मुनाफे से तंग आकर गाँव का किसान या तो शहर की तरफ रूख करता है या फिर चुनता है आत्महत्या।

कृषक जीवन से सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं को पहले भी 'गोदान', 'मैला आँचल', 'बलचनमा', 'गंगा मैया' जैसे उपन्यासों में देख चुके हैं। सभी समस्याएँ आमूल-चूल परिवर्तन के साथ आज भी मौजूद हैं। शिवमूर्ति का उपन्यास 'अगम बहै दरियाव' कृषक जीवन की समस्याओं को नई विचार शैली एवं नई दृष्टि के साथ प्रस्तुत करती है। शिवमूर्ति कृषक जीवन के सिद्धहस्त विश्वसनीय कथाकार हैं। वे श्रम के समान वितरण के पक्षधर हैं। इस उपन्यास में पहलवान, संतोखी, भगवत पाड़े मुख्य कृषक पात्र हैं। सभी किसानों की अपनी अलग-अलग समस्याएँ हैं, जिनसे पार पाने को कोई आत्महत्या करता है तो कोई आत्महत्या के विरुद्ध उठ खड़ा होता है।

पहलवान कुश्ती चैम्पियन हैं। गाँव-जवार में उनकी काफी इज्जत व ख्याति है। पाँच-छः एकड़ जमीन के किसान हैं। बेटा इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है। बेटी का ब्याह तय करना है। इसके लिए खेती की उपज से निर्वहन करना मुश्किल पड़ रहा है। सोसायटी से कर्ज लिया है। कर्ज चुकाना भी है और खर्च चलाना भी है। तीन साल से उन्हें गन्ने का बकाया नहीं मिला है। बेटी के रिश्ते के लिए जहाँ भी जाते हैं, दहेज का सुनकर बेरंग लौट पड़ते हैं। ''खेती-किसानी की आमदनी खेती-किसानी के खर्चे भर को भी नहीं अटती और कहाँ से अटे! डीजल, बिजली, खाद, कीटनाशक, जोताई, मड़ाई, मजूरी-सबका रेट तो हर साल दस पाँच रुपये बढ़ जाता है। नहीं बढ़ता तो किसानों की पैदावार का दाम।''[3]

कर्ज की किश्त न भर पाने की वजह से अमीन उन्हें भरे बाजार, पहचान वालों के बीच से पकड़ ले जाता है। पहलवान को यह अपमान असहनीय लगता है। वे इसे बाप-दादाओं की इज्जत पर कलंक मानते हैं। ''अखाड़े से सीखे सारे दाँव जिंदगी के रणक्षेत्र में बेकार साबित हो गए।''[4]

बढ़ती महंगाई व बढ़ती मजूरी के चलते भगवत पाड़े लोन पर ट्रैक्टर लेने को विवश होते हैं। उन्हें पता है कि लोन के कितने नुकसान हैं। ''कर्ज लेने से खेत ही नहीं गिरवी होता, कर्जदार की देह भी गिरवी हो जाती है।''[5] बावजूद इसके वे बैंक मैनेजर तिवारी व फील्ड अफसर रस्तोगी के फेंके गए लम्बे चौड़े बातों के जाल में फँसकर लोन पर ट्रैक्टर खरीद ही लेते हैं। अपनी खतौनी पर्याप्त न होने पर वे अपने समधी की भी खतौनी लगा देते हैं। वे सोचते हैं कि उनके दो बेटे हैं, दोनों मिलकर ट्रैक्टर चलायेंगे तो सोलह घंटे रोज चलेगा तो पैसा ही पैसा बरसेगा। छोटे बेटे ने पुलिस में भर्ती पक्की करने के लिए 1 लाख रूपया दे दिया। फसलों में खास इजाफा न था। ऊपर से एक दिन ट्रैक्टर पलट गया/बिगड़ गया। आर्थिक हालात खराब होने की वजह से ट्रैक्टर की किश्ते भी रुकने लगी थी। जो बैंक मैनेजर तरह-तरह के प्रलोभन देकर लोन के लिए राजी किया था वही किस्त के रुक जाने पर पाड़े बाबा के पीछे पड़ गए।

''सरकार अपनी लेनदारी तो लेना जानती है, पर देनदारी देना नहीं जानती। हमें दो साल से गन्ने का बकाया नहीं मिला और तीन किस्तें रुक गई हैं। हम मिल का कुछ बिगाड़ नहीं सकते, लेकिन आप हमारा ट्रैक्टर नीलाम कर सकते हैं। खेती-बारी कुर्क कर सकते हैं।''[6]

पाड़े बाबा आखिर कब तक बचते। दूसरी बार पकड़ाये तो सीधा हवालात पहुँचा दिये गए। दो-तीन दिन बाद हवालात से जैसे-तैसे बाहर तो आ गए, लेकिन अपमान, तिरस्कार से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाए। कुछ समय पश्चात् बैंक द्वारा औने-पौने दामों में उनके खेती की नीलामी कर दी जाती है। वहीं जमीनें अगर सही दाम पर बेचे जाते तो पाड़े बाबा किश्त भी भर लेते साथ में सम्मान भी बचा लेते। अन्ततः भूमिहीन किसान पाड़े बाबा लाचारी व बेबस भरी जिंदगी से उकताकर एक रात महुए के पेड़ पर लटकर आत्महत्या कर लेते हैं।

एक किसान के लिए उसकी जमीन ही उसका सर्वोत्तम धन होता है। खेत की हरियाली से किसान प्रसन्न होता है। पहले बैंक वाले लुभाते हैं, फिर लूट लेते हैं। बैंक को अथाह पावर है। वह चाह ले तो कुछ भी कर सकता है। ऐसे ही नहीं बड़े-बड़े जालसाज उद्योगपतियों का कर्ज माफ कर देते हैं। पर क्या है न कि बलवान सदैव कमजोर का पिष्टपेषण करता है। बैंक वालों का सारा जोर ग्रामीण आम जन पर ही चलता है।

संतोखी को भूमिहीन हो जाने का दंश तिल-तिल कर मारता है। छत्रधारी सिंह जैसे सामंत शाही लोग किसानों की जिंदगी से आज भी जुड़े हैं। जिनके दिए 40-50 रूपये का कर्ज आम आदमी के सिर से कभी उतर ही नहीं पाता है। यही चंद रूपये बेल की तरह दिन-रात बढ़ता जाता है। मूल, शूद व ब्याज आदि जोड़कर वही रूपया अमुक व्यक्ति के बेटे पोते फिर परपोते तक जा पहुँचता है। तीन पीढ़ियाँ जीवन भर गुलामी व हलवाही करके भी चुका नहीं पाते हैं। कितना क्रूर कपट है। अशिक्षित, गरीब एवं भोले-भाले लोग इस मकड़जाल की गुत्थी को समझ ही नहीं पाते हैं। सबसे दुर्भाग्य की बात है जो लोग समझ भी जाते हैं, वे इस अन्याय के खिलाफ खड़े होने की हिम्मत नहीं करते हैं। इसलिए कि सामने वाला अत्यधिक शक्तिशाली होता है। खेती-बारी करने वाले लोगों के पास इतना धन व साहस नहीं की आगे की कार्यवाही कर सकें। कभी-कभी जो हिम्मत कर भी जाता है उसे दुगुना तिगुना लूटने को सरकारी आदमी रास्ते में बैठा मिलेगा।

संतोखी के पिता ने कभी छत्रधारी सिंह से 50 रूपया लिया होगा जिसका पता स्वयं संतोखी को भी नहीं होता

है। पिता के मृत्यु के बाद एक दिन अचानक छत्रधारी संतोखी के खेतों में कब्जा जमा लेता है।

संतोखी-''यह सब झूठ है मालिक। इतना अन्याय मत कीजिए। एक दो घर तो डाइन भी छोड़ देती है।''[7]

छत्रधारी के अनुसार-''मत्स्य न्याय ही प्राकृतिक है। कमजोर हमेशा बलवानों का आहार बनता है। ठाकुर न पूजा-पाठ, कथा भागवत बांचकर ब्राह्मण की तरह अजीविका प्राप्त कर सकता है, न वैश्य की तरह व्यापार करके। खेती में हाड़तोड़ मेहनत करके अजीविका कमाना भी उसके वश में नहीं।''[8]

संतोखी इस अन्याय से लड़ने की ठानते हैं। यह लड़ाई संतोखी को महंगी पड़ती है। कुछ समय पूर्व उनके जवान बेटे की लाश तालाब में उतराती मिली थी। दूसरे बेटे को ननिहाल भेज दिया गया था। छत्रधारी उनके घर को भी एक रात फुंकवा देते हैं। वे पस्त होते हैं लेकिन हार नहीं मानते हैं। गाँव में घूम-घूम कर अनुभवी सुधीजनों से सलाह-मशविरा करते हैं। विद्रोही जी कहते हैं-''घर न बैठिए। कानूनी लड़ाई लड़िए। यह जान लिजिए कि मगरमच्छ के जबड़े में फँस चुके हैं।''[9]

संतोखी दिन-रात थाना पुलिस, कोर्ट-कचहरी में दौड़ लगाते हैं। हर जगह हैसियत से अधिक चढ़ावा चढ़ाते हैं। काफी जद्दोजहद के बाद पूरे 21 वर्ष बाद वे हर जगह अपनी जीत सुनिश्चित करते हैं। कब्जे वाले दिन छत्रधारी सिंह कोर्ट से 'स्टे' ले लेते हैं। संतोखी का हकीकत सपना में तब्दील हो जाता है। आय का कोई स्रोत नहीं होने पर संतोखी कचहरी के सामने, बस स्टैंड में लाई चना बेचते हुए गाते फिरते हैं-

''हम लड़ि लड़ि भाय बिलाय गये।
दौड़त दौड़त बउराय गए।
जौ बीस साल मा जीते
तौ, फिर झाम फँसायेन, हर गंगा॥''[10]

किसी तरह जोड़-जाड़कर फिर से वहीं कार्यवाहियाँ, फिर से वहीं चढ़ावा। अबकी पूरे आठ साल बाद वे फिर जीते। इस बार छत्रधारी सिंह के दो भतीजे दुनाली के साथ, फायरबाजी करके खेत पर जबरदस्ती कब्जा कर लेते हैं। संतोखी को पानी भरे खेत में धक्का देकर गिरा देते हैं। वे गाँव वालों के सामने बेइज्जत तो होते ही हैं साथ ही खुद को बेबस व असहाय पाते हैं। वे अपनी पत्नी से कहते हैं-''चलो, यही यूरिया घोलकर दोनों लोग पी लें। 'मुक्ति' मिल जाय।''[11]

संतोखी अपनी सारी शक्तियों को समेट कर फिर फिर से उठ खड़े होते हैं। सरकारी व कानूनी कार्यवाही तो करते ही हैं, लेकिन इस बार गाँव के बुजुर्ग माठा बाबा के सुझाव पर 'जंगू' (न्यायी डाकू) की मदद लेते हैं। इस जटिल होते समय में किसानों की स्थिति सोचनीय है। सब जतन करके, कानूनी संघर्ष के बाद भी संतोखी को न्याय नहीं मिलता। जीवन जीने की इच्छा इतनी आसानी से कभी खत्म नहीं होती है। अपनी जान लगाकर हर इंसान जान बचा लेना चाहता है। हर तरफ से हारे संतोखी को 'जंगू' में न्याय नजर आता है। जंगू दुनिया की नजर में भले डाकू, बदमाश है लेकिन शोषितों वंचितों के लिए वह 'रॉबिनहुड' की तरह काम करता है। जंगू छत्रधारी की पोती को अगवा करके संतोखी का खेत बहाल कर देने को विवश कर देता है।

पहलवान चतुर्दिक समस्याओं से घिरे होते हैं। धीरे-धीरे खेत बेचने तक की नौबत आ जाती है। ''पिछले साल आलू बोया गया दस रूपये किलो का बीज खरीदकर। पैदा होने पर बिका तीन रूपये किलो। बोवाई, खुदाई, खाद और सिंचाई का दाम जोड़ दीजिए तो लागत आती है छः रूपये किलो। कैसे गुजारा होगा?''[12]

वे सोचते हैं कि अमेरिका अपने किसानों को सब्सिडी देता है, लेकिन भारत का किसान समझौता परस्त है। पहलवान इन सबको लाठी से पीट डालना चाहते हैं जो लोग उनके हिस्से की बिजली, पानी अनावश्यक खर्च कर रहे हैं। जो लोग बीज में मिलावट करते हैं। जो लोग लागत का दाम तक नहीं देते हैं। मंडियों में उन्हें बिचौलियों से जूझना पड़ता है। किसानों की खून पसीने की कमाई को कम से कम दाम में खरीद कर चार-गुने दाम पर बेच देते हैं। बड़े-बड़े व्यापारियों या फैक्ट्रियों में बेचकर मुनाफा कमाते हैं।

''सबसे बड़ा कारण है हमारी उपज का सही मूल्य न मिलना। सरकार हमारी फसल का जो समर्थन मूल्य तय करती है वह हमेशा किसान की लागत से कम होता है। उसका पैदा किया हुआ अनाज, गल्ला व्यापारियों के लिए अमीरी पैदा करता है लेकिन खुद उसके लिए गरीबी पैदा करता है।''[13]

यह समस्या क्या आज नहीं मौजूद है। न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) के लिए किसान आज भी संघर्षरत है। सरकारें इन समस्याओं को हल करने के बजाय तरह-तरह की अवैध गतिविधियों में संलिप्त संगठनों से आंदोलनरत किसानों का सम्बन्ध जोड़ देती है और स्वयं को इन मसलों से आसानी से दूर कर लेती है।

आत्महत्या कर चुके पाड़े बाबा पहलवान के सपनों में आते हैं। वे सभी शोषण तंत्रों से मुक्ति चाहते हैं। पाड़े मरकर पहलवान की चेतना बन जाते हैं। 'अगम बहै दरियाव' उपन्यास में रामखेलावन, राजेश व पहलवान जैसे सचेत जागरूक लोग भी मौजूद हैं जो इस कष्टकारक स्थितियों से निपटने के लिए आंदोलनरत होते हैं।

''शिवमूर्ति का किसान यहाँ आकर मौत से समझौता नहीं करता, वह जीवन से हारा नहीं है, वह बेफिक्र होकर

जीना सीख गया है। उसने समस्या के समाधान को खोजने का प्रयास किया है, उसे एहसास हो चुका है कि 'आत्महत्या' किसी समस्या का समाधान नहीं है।''[14]

देश का चौथा स्तम्भ मीडिया व समाचार पत्रों में पहले तो ऐसी घटनाओं के लिए जगह नहीं होती। मानो ये तो रोज का है। कौन सी बड़ी बात है। और कभी बहस हुई भी तो मुख्य मुद्दे से इतर। उन्हें लगता है कि किसान आत्महत्या 'डिप्रेशन' की वहज से कर रहे हैं। इसके पीछे जरूर कोई विदेशी साजिश होगी। सरकारें अपनी दुर्बलता का ठीकरा आतंकवाद व नक्सलवाद जैसे संगठनों पर दे मारते हैं। वे इस समस्या से अपने तरीके से काम करते हैं। जिस पेड़ पर किसान आत्महत्या कर रहे हैं उस पेड़ को ही काट दो। तब से अब तक सरकारें यही करती आ रही हैं। सरकार की सारी व्यवस्थाएँ पूँजीपतियों के हित को मद्देनजर रख कर प्रस्तावित की जाती हैं। वहीं व्यवस्थाएँ, योजनाएँ किसानों को गर्त में ले जाती हैं।

शिवमूर्ति के अनुसार-''कर्ज और सब्सिडी की योजनाओं ने किसानों के दुख को उसी तरह बढ़ाया है जैसे कोढ़ में खाज बढ़ाती है।''[15]

किसानों की अनदेखी देशहित में कभी नहीं हो सकती। जिस तरह बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ वन-बाग, खेती-बारी उजाड़कर फैक्ट्रियाँ लगा रही हैं। उससे तो कुछ समय बाद कोई खेती करना पसंद ही नहीं करेगा। घाटे का सौदा आखिर कोई कब तक करेगा। कल के किसानों के आज के बच्चे यह समझ चुके हैं कि खेती-किसानी से कुछ हासिल नहीं होगा। वे बची-खुची जमीनों को बेंच कर शहरों की तरफ रूख कर रहा है। शिवमूर्ति कहते हैं कि किसानों को लड़ना होगा, डट कर खड़े रहना होगा वरना वह समय आते देर नहीं लगेगी जब किसान नाम की प्रजाति दुनिया से विलुप्त हो जाएगी। 'अगम बहै दरियाव' का किसान पाड़े की मौत से विचलित जरूर होता है लेकिन वह मौत से समझौता नहीं करता है। वह मौत के विरुद्ध आखिरी छलांग लगाता है।

सन्दर्भ

1. नवले संजय, वंचितों के प्रवक्ता शिवमूर्ति, अमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2019, पृ. 59
2. डॉ. सुभाष कुट्टे धनाजी, हिंदी उपन्यासों में चित्रित कृषक जीवन, पराग प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2018, पृ. 16
3. शिवमूर्ति, अगम बहै दरियाव, राजकमल पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण 2023, पृ. 426
4. वही, पृ. 363-64
5. वही, पृ. 313
6. वही, पृ. 430
7. वही, पृ. 13
8. वही, पृ. 21
9. वही, पृ. 14
10. वही, पृ. 295
11. वही, पृ. 368
12. वही, पृ. 402
13. वही, पृ. 442
14. नवले संजय, वंचितों के प्रवक्ता शिवमूर्ति, अमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2019, पृ. 112
15. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृ. 124

डॉ. नमिता जैसल
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर
केन्द्रीय विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)
मो.- 8318631875

चन्द्रावती
शोध छात्रा, हिंदी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर
केन्द्रीय विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

रैदास के काव्य में लोक जागरण

–डॉ. अजय कुमार

समाज के मूल्यांकन की जो कसौटी है वह है 'लोक' की कसौटी। लोक, 'यथार्थ' के बहुत समीप है। लोक अपने परिवेश में शास्त्र को कितनी छूट प्रदान करता है और शास्त्र अपने परिवेश में लोक को कितनी छूट देता है, यह शोध और आलोचना का विषय है। शास्त्र और लोक को अपने परिवेश में इतनी धार तो बनाये रखना होगा कि दोनों के बीच तालमेल बना रहे। दोनों की अपनी-अपनी लोकप्रियता समाज में निहित है। कभी-कभी देखने को मिलता है कि शास्त्र और लोक के मध्य द्वन्द्व की स्थिति आ जाती है। हिन्दी साहित्य में लोक जागरण की परम्परा बहुत प्राचीन है। हाँ यह बात और है कि समय-समय पर इसके स्वरूप और नामों में कुछ परिवर्तन अवश्य होते रहे हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास को यदि गहन नजरों से देखें जो पायेंगे कि प्रत्येक काल (समय) का विशेष महत्व है। यदि भक्तिकाल को इस नजरिये से देखें तो पायेंगे कि भक्तिकाल उथल-पुथल का काल है। नये प्रतिमानों को गढ़ने का काल है। भक्तिकाल को स्वर्ण काल कहे जाने के अनेक कारण होंगे पर उनमें शायद एक कारण यह भी रहा होगा है कि हिन्दी साहित्य में पहली बार आलोचना का लोकपक्ष खुलकर सामने आया। यद्यपि भक्तिकाल सामंती शक्तियों का प्रमुख केन्द्र है। इस काल में सत्ता का अंगीकरण करना ही सबसे प्रमुख कार्य है। जब बाहरी शक्तियों का प्रवेश भारत भूमि पर होता है, तब भारतीय धर्म और संस्कृति में अहम् परिवर्तन देखने को मिलते हैं। हिन्दू जनता के सम्मुख उनके प्रिय मन्दिर तोड़े जा रहे थे और वे इसे देखकर न तो अपने गर्व को बचा पा रहे थे और न ही अपनी लज्जा को छिपा पा रहे थे। एक अजीब सी स्थिति का वो सामना कर रहे थे। जिस भारतीय परिवेश में धर्म और संस्कृति को जीवन शैली का प्रमुख अंग माना जाता हो उसकी ऐसी दुर्दशा देखकर किसी का मन आहत हो उठेगा। इसी काल में शिष्ट और लोक साहित्य अपने-अपने ढंग से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, पाखण्डों के खिलाफ एकजुट नजर आते हैं। मध्ययुगीन काव्य चिंतन की एक मुख्य विशेषता यह भी है कि भारतीय समाज को हीनता के बोझ में दबने से कैसे बचाया जाये। इस बात पर सभी रचनाकारों का स्वर एक है। सभी रचनाकार समाज के प्रति अपनी चिंता को अपने स्तर से खत्म करने की बात करते हैं। भक्तिकाल में एक ओर जहाँ अवतारवाद और बहुदेववाद की प्राण-प्रतिष्ठा की जा रही थी, वहीं दूसरी ओर यथार्थ के प्रति लोक विश्वास पुष्ट हो रहा था। गौर से देखें तो पायेंगे कि यहाँ चिंतन की दो धाराएं परिलक्षित हो रही हैं-पहली धारा शास्त्र को मूल आधार मानती है तो वहीं दूसरी धारा लोक को मूल आधार मानती है। दोनों धाराओं में आपस में समन्वय बहुत कम है। शास्त्र सम्मत धारा अपने बधें-बधाये रूटीन पर चल रही है। कर्मकण्ड का बोल-बाला है। मनुवाद की सशक्त अभिव्यक्ति है। वेद और पुराणों के माध्यम से ईश्वर की महिमा का बखान बड़ी तेजी के साथ हो रहा है। ऊँच-नीच, छूआ-छूत का भेदभाव बना हुआ है। पाखण्ड और अंधविश्वास अपनी चरम सीमा पर था। धर्म की आड़ में भोली-भाली जनता अपनी नियति मानकर सब कुछ चुपचाप स्वीकार कर ले रही थी।

लोक सम्मत धारा में मानव समानता और व्यवहारिक पक्ष को अधिक महत्व दिया गया। अशिक्षित जनता अपने आपको इस धारा से अधिक जुड़ाव महसूस कर रही थी। क्योंकि अनुभवजन्य प्रमाणिक अनुभूति के साथ लोक का परिवेश स्वच्छन्द रूप से शास्त्र सम्मत धारा से अलग था। दोनों धाराओं ने अपने-अपने ढंग से समाज का जागरूक किया। गाँव की जनता अशिक्षित भले हो पर अनुभव से समर्थ बहुत रखती है। गाँव का वातावरण भक्ति के सन्दर्भ में कुछ अन्तर अवश्य हो सकता है पर यथार्थ की मनोभूमि का आयतन विस्तारित होता है। भारतीय समाज में लोक की अपनी एक अहम उपस्थिति है। वह विश्वास के धरातल पर सबसे मजबूत स्तभ पर टिका हुआ है। हम सभी जानते हैं, कि लोक समाज में विश्वास कमजोर पड़ गया तो अनुभव का आयतन बहुत छोटा हो जाता है। ''शास्त्र एवं लोक के ताल-मेल के काल में भी लोक के भीतर एक स्वतः स्फुर्त चेतना स्वाभाविक रूप से सक्रिय रहती है जो उसमें समय और दूरी के अनुपात में शास्त्र के प्रति आलोचनात्मकता की प्रवृत्ति बनाए यखती है।''[1] मध्यकाल में संतों ने गाँव-गाँव जाकर समाज में व्याप्त आडम्बरों, कुरीतियों के खिलाफ लोक जाागरण किया। संतों के जत्थे के जत्थे किसी गाँव में जाकर

महीनों-महीनो रूकते और आस-पास के गाँवों को मिलाकर भजन-कीर्तन के माध्यम से जागरूकता का प्रयास करते थे। इसका प्रभाव गाँव के लोगों पर सीधा पड़ता था। इस प्रकार गाँवों में जागरूकता बढ़ी और लोगों ने ईश्वर की आड़ में हो रहे पाखण्डों को पहचाना और खुलकर विरोध किया। इस विरोध का नतीजा यह हुआ कि संतों को भी सत्ता के विरोध का सामना करना पड़ा। रैदास भी इससे अछूते नहीं रहे। मध्यकालीन चेतना का सबसे अहम् तत्व है मानव विरोधी सत्ता का विरोध करना। एक प्रकार से संत काव्यधारा में संतों ने इन अताताईयों को खुलकर चुनौती दी है। सभी कवियों का मात्र एक लक्ष्य था, कि भारतीय समाज में मानवता की स्थापना हो और सभी लोगों का जीवन सुखमय हो। क्योंकि किसी भी समाज की नींव 'मानवता' ही होती है। निश्चित तौर पर मध्यकाल में मानव की चेतना का नया स्वरूप मिलता है। संत कवियों की वैचारिक संघर्ष की चेतना, और विश्व-बंधुत्व की भावना ने जनसमाज के लिए संघर्ष का एक नयी राह खोल दी। संतों की इस नवीन चेतना ने मनुष्य के चिंतन एवं मनन शक्ति को जागृत कर उसे सड़ी-गली मान्यताओं का विरोध करने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया। वस्तुतः संत साहित्य के लोकजागरण का आधार स्वानुभूति एवं अंतःप्रेरणा है। वे किसी परंपरावादी व्यवस्था के बंधन में न बँधकर अपनी वैयक्तिक अनुभूति एवं स्वतंत्र चिंतन से अपने परिवेश की सामाजिक एवं धार्मिक विकृतियों को सुधारने की जिद्दोजहद करते थे। अतः संत साहित्य से पूर्व नाथ साहित्य में भी बाह्याडंबरों, जातिवाद, ऊँच-नीच के भेदभाव का खंडन किया गया है। अतः हिंदी साहित्य में लोकजागरण की भावना को प्रादुर्भूत करने का श्रेय निर्गुण भक्ति धारा के कवियों को जाता है जिनमें कबीर, दादूदयाल, रैदास, गुरु नानकदेव, गरीबदास, सुन्दरदास, पलटूदास, दयाबाई, सहजोबाई आदि का नाम आदर से लिया जाता है।

संत रैदास का समय 15वीं शताब्दी के समय आस-पास का माना जाता है। यह एक ऐसा समय था जब हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम के आपसी नफरत का माहौल था। धर्म के ठेकेदार अपनी रोटियाँ सेकने के लिए क्या हिन्दू क्या मुस्लिम सभी को अपना शिकार बना रहे थे। तत्कालीन सत्ता अपने वैभव को बनाए रखने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार थी। सन्त रैदास ने हिन्दू और मुस्लिम को आपस में भाईचारे के साथ रहने का सन्देश दिया। उनकी नजर में कोई भी मनुष्य जन्म से हिन्दू या फिर मुसलमान नहीं होता है। बल्कि उसे परिस्थितियाँ बनने को मजबूर करती हैं। वे कहते हैं-

''मुसलमान सौ दोस्ती, हिन्दुअन सो कर प्रीत।
रैदास जोति, सभ हैं राम की, सभ है अपने मीत॥''[2]

रैदास ने अपने समय की प्रचलित रूढ़ियों पर जमकर प्रहार किया। वर्ण व्यवस्था को समाज के लिए अभिशाप माना। यह अभिशाप अक्सर नीची जातियों को सहन करना पड़ता है। रैदास निम्न वर्ग से आते हैं। इसीलिए उनके पदों में स्वानुभूति का तापमान अधिक है। वे भारतीय समाज में निम्न वर्ग के दर्द को अच्छी तरह जानते हैं। समाज में मानव-मानव से कैसे भेदभाव किया जा रहा है। मानव को देखने के पैमाने कैसे-कैसे गढ़े जा रहे थे। वे इस व्यवस्था से आहत होते हुए कहते हैं कि जब हम सभी का ईश्वर एक है। और उसी ने सभी को बनाया है। तो हमें आपस में भेद कैसा हम सभी को आपस में मिल-बैठकर आपस में भाईचारा कायम रखना होगा जिससे समाज में एकता का सन्देश जाये। अर्थात् उस परम पिता परमेश्वर की प्रत्येक सृजन का सम्मान करना चाहिए। मनुष्य की की केवल एक ही जाति है और वह है मनुष्य-

''रैदास एक बूँद सौ, सब ही भयो वित्थार।
मुरिख हैं जो करत हैं वरन अवरन विचार॥
रैदास एक ही नूर ते निमि, उपज्यों संसार।
ऊँच-नीच किहि विध भये, ब्राह्मण और चमार॥''[3]

रैदास अपनी जाति के बारे में किसी प्रकार का कोई दुराव-छिपाव नहीं करते हैं वे अपनी जाति को सबके सामने खुलेआम बताते हैं-

''मेरी जाति कुटबाढलाढोर ढोवंता।
नितहि बानारसी आस पास॥''[4]

भारतीय समाज में जाति एक ऐसा कोढ़ है जो प्रत्येक जाति पर लदा हुआ है। चाहे वह जिस वर्ग का हो। समाज में कोई व्यक्ति निर्धन है तो समाज द्वारा उसे एक बार माफ किया जा सकता है परन्तु निम्न कुल का होना माफ नहीं किया जा सकता है। यदि वह निम्न कुल में पैदा हुआ है तो उसे सामाजिक प्रवंचनाओं को सामना करना ही पड़ेगा। वह बिना इन प्रवंचनाओं को दर किनार करके आगे नहीं बढ़ सकता है। वे कहते हैं कि-

''जात-पात में जात है ज्यों केलन के पात।
रैदास न मानुष जुड़ सकें, ज्यों लौ जात न जात।''[5]

रैदास ने समाज में प्रचलित सड़ी-गली मान्यताओं को खारिज कर दिया और उनकी जगह मानवतावादी मान्यताओं को बल दिया। जाहिर है सदियों से चली आ रही इन मान्यताओं को खारिज करने पर जाति के पोश ाक व्यक्तियों का विरोध भी रैदास को झेलना पड़ा। कोई भी नियम मान्यता समाज में स्थापित होने पर समय लगता है। धीरे-धीरे ही सही पर ये मान्यताएँ स्थापित होती हैं। रैदास किसी भी मनुष्य को सिर्फ ऊँचे कुल में जन्म लेने से मात्र ऊँचा नहीं मानते हैं। मनुष्य के गुण ऊँचे होना चाहिए। फिर वह चाहे जिस कुल में जन्म लिया हो। यदि हमें उस मनुष्य में गुण मिलते हैं तो उससे गुण ग्रहण कर लेना चाहिए। उसकी जाति से कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए-

जन्म जात मत पूछिए का जाति अरू पात।
रैदास पूत सभ प्रभु के दोउ नहिं जात कुजात॥''[6]

रैदास ने मानव के शरीर को नश्वर माना है। वे इस नश्वर शरीर से जितना भी काम लेना चाहते हैं उसे लेना चाहिए। क्योंकि यह एक न एक दिन मिट्टी में अवश्य मिल जायेगा। मानव के संसार में आने का उद्देश्य निश्चित है। वह अपने नसीब में जितना लेकर आया है उसे उतना अवश्य मिलेगा। रैदास मानव जीवन के अनेक आयामों का चिंतन करते हुए पाते हैं कि यह मानव जीवन रूपी नाव में कर्म के पतवार के सहारे अपनी नैया पार लगा सकता है। इसीलिए मानव को अपना कर्म करते रहना चाहिए। यदि वह कर्म से जी चुराएगा तो उसे इस जन्म क्या अगले जन्म में भी कोई मुक्ति मिलने वाली नहीं है। वे कहते हैं कि हे मानव तू अपने मन से जीवन जी ले। यदि तू अपनी इन्द्रियों के पराधीन होकर जीवन जीयेगा तो अपने वास्तविक लक्ष्य को नहीं पा सकेंगा। वे कहते हैं कि -

''पराधीनता पाप है जान लेहूँ रे मीत।
रविदास प्राधीन सों कौन करे हैं पीत।
पराधीन को दीन क्या पराधीन बेदीन।
रैदास दास पराधीन को सबहि समझै हीन।''[7]

आज भी गाँवों में प्रायः दलित बस्तियों में रैदास के निर्गुण पद अक्सर लोगों को गुनगुनाते हुए देखा जा सकता है। वह समाज के सन्तापों का गान करता है। वह अपने जीवन को कोसता नहीं अपितु रैदास के पदों से प्रेरित होकर अपने जीवन को और अधिक ऊर्जावान बनाता है। और दोगुने उत्साह से अपने कार्यों को पूरा करता है-

''पाये मानुष का जामा हो
काहे को घबराये जग से।
यही जग मा करम लिखों हमारो
आवो बैठि बिसूरी लेई करम अपनों
पाये मानुष का जामा हो
काहे को घबराये जग से।
यही जग मा गंगा बाहत है
यही जग मा बाहतजमुना
बहै पाप-पुण्य की धारा
हो जग सबसे न्यारा
हो सब सुखी होवें सब कामेसुत
पाये मातु-पिता सुत-सुख
पाये मानुष का जामा हो
काहे को घबराये करम से।
करम करो तब लौ
जब लौ चले स्वास
करो न आन कि आस
कह गये सन्त रैदास
पाये मानुष का जामा हो
काहे को घबराये करम से।''

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि रैदास के काव्य में लोक जागरण की अनुभूति का पक्ष बहुत सशक्त है। वह उनका भोगा हुआ सत्य है। जिसको किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। उनकी स्वनुभूति ही सबसे बड़ा प्रमाण है। गौर से देखेंगे तो पायेंगे कि भारतीय समाज में व्यक्ति की पीड़ा लोकानुभव के साथ अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई हं। रैदास लोक में रहने वाले व्यक्तियों की चेतना को माजते हैं। वे सदियों से चली आ रही नियतिवादी व्यवस्था में बदलाव की माँग करते हैं। वे तत्कालीन शासन-सत्ता के प्रतिमानों को कटघरे में खड़ा करने का साहस करते हैं। वे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक शोषण के विरुद्ध पुरजोर आवाज उठाते हैं। रैदास जाति व्यवस्था के कट्टर विरोधी हैं। वे मानव को मानवता के सूत्र में पिरोने वाले संत थे। उनका सदैव प्रयास रहा कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक आदर्श नागरिक बनाया जा सके। वर्तमान समय में रैदास जैसे सन्तों की प्रबल आवश्यकता है। आज समाज में चारों ओर रिश्वत और झूठ का बोलबाला है। टूटन, और बिखराव समाज में निराशा के बीच रोपित कर रहे हैं। उनके जैसे कोई महान सन्त ही वर्तमान समाज में लोक जागरण करके मानव मन में प्रेम, और सद्भावना के पुष्प पल्लवित कर सकता है। रैदास निर्भीक समाज की स्थापना पर बल देते हैं।

सन्दर्भः-

1. लोक संस्कृति और इतिहास : बद्री नारायण पृ. सं. 47 लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2018
2. रैदास ग्रन्थावली : डॉ. एन सिंह, साखी 138, पृ. सं. 155
3. वही, साखी 137, पृ. सं. 154
4. वही, साखी 134, पृ. सं. 149
5. वही, साखी 136, पृ. सं. 153
6. वही, साखी 162, पृ. सं. 153
7. वही, साखी 225-226, पृ. सं. 159

डॉ. अजय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी
महामाया राजकीय महाविद्यालय, कौशाम्बी (उ.प्र.)

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर एवं डॉ. राम मनोहर लोहिया के विचारों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

–प्रो. शैलेन्द्र सिंह
–रबिन्द्र कुमार

शोध सार : भारत कभी ऐसी त्रासदी से गुजरा है जब भारतीय समाज का हाशिये का वर्ग त्राहि माम् - त्राहि माम् कहने पर मजबूर था। यहाँ का उच्च वर्ग निम्न वर्ग के लगभग सभी अधिकारों पर कब्जा कर चुका था। उसके साथ अन्याय व शोषण होना आम बात थी। उनके सभी मौलिक अधिकारों का हनन समाज के कुछ विशेष वर्गों के द्वारा अनवरत जारी था। यदि अंग्रेज भारत में न आये होते तो शायद दमितों की किसी भी प्रकार का अधिकार न होता। जिस प्रकार यहाँ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी सामूहिक रूप से अंग्रेजों से लड़ रहे थे वहीं भारत का अजेय योद्धा मानवता के मसीहा सामाजिक न्याय के अग्रदूत बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर अकेले जीवन भर, दलित, पिछड़े, शोषित और वंचित वर्गों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए सदैव संघर्ष करते रहे। भारत का संविधान भी इन्हीं की दूरदृष्टि का परिणाम है। वे उच्च कोटि के एक समाजशास्त्रीय थे जो समाज में व्याप्त बुराइयों का जड़ से इलाज करना जानते थे।

कुन्जी शब्द :
1. डॉ. अम्बेडकर के कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना।
2. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की परिकल्पना।
3. डॉ. अम्बेडकर बनाम डॉ. लोहिया।
4. डॉ. लोहिया की सप्त क्रांति।
5. डॉ. राम मनोहर लोहिया का समाजवाद।

प्रस्तावना : वंचितों के मसीहा डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 में हुआ। अम्बेडकर जी ने भारत की उन्नति के लिए भारतीय संविधान का निर्माण किया। जो भारतीय समाज के लिए एक मार्गदर्शक का काम किये। भारत राष्ट्र को समर्पित भीमराव अम्बेडकर जी का देहावास 6 दिसम्बर 1956 को हुआ। वे समाज का वास्तविक एवं सतत् विकास करना चाहते थे। संविधान जो समानता, स्वतंत्रता, न्याय एवं बन्धुत्व पर आधारित है वह देश सबसे शानदार पुस्तक है।

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक या समाजशास्त्रीय विचार निम्नलिखित हैं-

वे कहते हैं कि मनुष्य नश्वर है, उसी तरह विचार भी नश्वर हैं, एक विचार को प्रचार-प्रसार तो की जरूरत होती है जैसे एक पौधे को पानी की, नहीं तो दोनों मुरझाकर मर जायेंगे। वे परिवार की एकता बनाए रखने के लिए कहते हैं कि पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध घनिष्ठ मित्रों के सम्बन्ध के समान होना चाहिए। हिन्दू धर्म को रूढ़िवादी मानते हुए कहते हैं कि - 'हिन्दू धर्म में विवेक कारण और स्वतंत्र सोच के विकास के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।' वे दमित वर्ग को समझाते हुए कहते हैं कि 'जब तक आप सामाजिक स्वतंत्रता हासिल नहीं कर लेते, कानून आपको जो भी स्वतंत्रता देता है, वह आपके किसी काम की नहीं।

वे धर्म पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यदि हम एक संयुक्त, एकीकृत आधुनिक भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों के शास्त्रों की सम्प्रभुता का अन्त होना अति आवश्यक है, क्योंकि धर्म मानने वालों में नृजाति केन्द्रितावाद (Ethenocoutism) की भावना पायी जाती है। जिसमें लोग स्वयं को, स्वयं की संस्कृति एवं सभ्यता को दूसरों की अपेक्षा उच्च मानने लगते हैं, जिससे भेद की स्थिति उत्पन्न होती है, ऊंच-नीच की भावना आती है और वैमनुष्यता का जन्म होता है। बाबा साहब भारत को कल्याणकारी राज्य बनाने के लए अथक प्रयत्न किये और बनाया भी जिससे समाज के

सभी व्यक्तियों को कम से कम न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान किया जा सके। वे एक अर्ध्वगामी, आकाशधर्मी महापुरुष थे जो आजीवन मानवता न्याय, अहिंसा, प्रेम, करूणा के अग्रदूत रहे। वे एक सच्चे देशभक्त, शोषितों के लिए मसीहा और राष्ट्र निर्माता थे जो भारत को सतत् विकास की ओर ले जाने के लिए उसकी संविधान रूपी नींव रखे, जो समाज के सभी वर्गों का बिना भेद के कल्याण करने की गारंटी लेता है, केवल और केवल भारतीय संविधान ही नियमों, विधियों का ऐसा संकलन है जो सभी को सामाजिक न्याय ही प्रदान नहीं करता बल्कि व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों की रक्षा भी करता है। मेरे विचार से किसी के घर कोई पुस्तक हो न हो भारतीय संविधान जरूर होना चाहिए, एवं मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि राज्य के विकास के लिए प्रजातंत्र की अवधारणा ही सर्वोच्च है।

उनका मानना था कि हिन्दू धर्म मे विवेक, कारण और स्वतंत्र सोच के विकास के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जब तक आप सामाजिक स्वतंत्रता हासिल नहीं कर लेते, कानून आपको जो भी स्वतंत्रता देता है, आपके किसी काम की नहीं। यदि हम एक संयुक्त एकीकृत आधुनिक भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों के शास्त्रों की संप्रभुता का अंत होना चाहिए। आगे बाबा साहब लिखते हैं-मैं एक ऐसे धर्म को मानता हूँ जो स्वतंत्रता, समानता, भाई-चारा सिखाए।

अम्बेडकर जी आगे लिखते हैं कि हर व्यक्ति जो मिल के सिद्धांत कि - ''एक देश दूसरे देश पर शासन नहीं कर सकता'' को दोहराता है उसे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि एक वर्ग दूसरे वर्ग पर शासन नहीं कर सकता। इस उदाहरण से वह वर्ण व्यवस्था को पूरी तरह से नकारते हैं। वर्ण व्यवस्था से व्यक्तिगत प्रतिभा का पूरी तरह से हनन होता है और सामाजिक विकास की गति अवरुद्ध होती है। वे गहन अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कहते हैं कि - समाज को श्रेणी विहीन और वर्ण विहीन करना होगा क्योंकि श्रेणी ने इंसान को दरिद्र और वर्ण ने इंसान को दलित बना दिया। जिसके पास कुछ भी नहीं है वे दलित समझे जाते हैं। अम्बेडकर कार्ल मार्क्स से श्रेष्ठ इसलिए है क्योंकि अम्बेडकर मानवतावादी, सामाजिक न्यायवादी, और शोषण विरोधी है वे अम्बेडकर सबके लिए न्याय, समानता और बन्धुत्व की बात करते हैं जबकि मार्क्स पूंजीपतियों को खत्म करने की।

अम्बेडकर आगे कहते हैं कि एक सफल क्रांति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि असंतोष हो, जो राजनीतिक और सामाजिक महत्त्व के अधिकार के महत्त्व पर गहन और गहन विश्वास। वे आगे कहते हैं अगर 'अन्याय से लड़ते हुए आपकी मौत हो जाती है, तो आपकी आने वाली पीढ़ियां उसका बदला जरूर लेंगी, अगर सहते हुए आपकी मौत हो जाती है तो आपकी आने वाली पीढ़ियां भी गुलाम बनी रहेंगी।' वे आगे कहते हैं कि समाज में अनपढ़ लोग हैं, ये हमारे समाज की समस्या नहीं है लेकिन जब समाज के पढ़े-लिखे लोग भी गलत बातों का समर्थन करने लगते हैं और गलत को सही दिखाने के लिए अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं यही हमारे समाज की समस्या है। वे लोगों को रास्ता दिखाते हुए कहते हैं कि जिस दिन मंदिर जाने वाले लोगों की लंबी कतारें, जिस दिन पुस्तकालय की ओर बढ़ेगी, उसी दिन मेरे देश को महाशक्ति बनने से कोई नहीं रोक सकता है।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर राष्ट्रवाद का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि ''राष्ट्रवाद तभी औचित्य ग्रहण कर सकता है, जब लोगों के बीच जाति, नस्ल या रंग का अन्तर भुलाकर उसमें सामाजिक भ्रातृत्व को स्थान दिया जाए। वे लोगों को समझोते हुए कहते हैं कि राजनीति में ना हिस्सा लेने का सबसे बड़ा दण्ड यह है कि अयोग्य व्यक्ति आप पर शासन करने लगता है।

अम्बेडकर का कहना है यदि हम आधुनिक विकसित भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों को एक होना पड़ेगा। वे आगे कहते हैं कि ज्ञानी लोग किताबों की पूजा करते हैं जबकि अज्ञानी लोग पत्थरों की पूजा करते हैं।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भारतीय महिलाओं के लिए सबसे ज्यादा संघर्ष करने वाले व्यक्ति हैं। वे कहते हैं कि मैं एक समुदाय की प्रगति को उस प्रगति की डिग्री से मापता हूँ जो महिलाओं ने हासिल की है। शायद इसीलिए वे कहते हैं कि ''शिक्षा वे शेरनी का दूध है जो पियेगा वो दहाड़ेगा।''

वे कहते हैं कि ''इस पूरी दुनिया में गरीब वही है, जो शिक्षित नहीं है। इसलिए आधी रोटी खा लेना, लेकिन अपने बच्चों को जरूर पढ़ाना।''

उनके उपदेशों का मूल मंत्र है-

''शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।''

डॉ. राम मनोहर लोहिया की सप्त क्रांति

डॉ. राम मनोहर लोहिया के समाज-परिवर्तन के सात स्वप्न थे, जिसे सप्त क्रांति के नाम से भी जाना जाता है। वे सभी अन्यायों के विरुद्ध एक साथ संघर्ष करने पक्षपाती थे। उन्होंने एक साथ क्रांतियों का आह्वान किया जो निम्नलिखित हैं-

1. नर-नारी की समानता के लिए।
2. चमड़ी के रंग पर रची राजकीय, आर्थिक और दिमागी असमानताओं के विरुद्ध।
3. संस्करणगत, जन्मजाति जाति प्रथा के खिलाफ और पिछड़ों को विशेष अवसर के लिए।
4. परदेशी गुलामी के खिलाफ और स्वतंत्रता तथा

विश्वलोक राज के लिए।

5. निजी पूंजी की विशेषताओं के खिलाफ और आर्थिक समानता के लिए तथा योजना द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिए।
6. निजी जीवन में अन्यामी हस्तक्षेप के खिलाफ और लोकतंत्री पद्धति के लिए।
7. अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिए।

इन सात क्रांतियों के सम्बन्ध में लोहिया जी कहते हैं कि -

''मोटे तौर पर ये है सात क्रांतियां। सातों क्रांतियां संसार में एक साथ चल रही हैं। अपने देश में भी उनको एक साथ चलाने की कोशिश करनी चाहिए। जितने लोगों को भी क्रांति पकड़ में आयी हो उसके पीछे पड़ जाना चाहिए और बढ़ाना चाहिए। बढ़ाते-बढ़ाते शायद ऐसा संयोग हो जाए कि आज का इंसान ऐसे समाज और ऐसी दुनिया को बना पाये कि जिसमें आंतरिक और बाहरी या भौतिक भरा-पूरा समाज बन जाए।

निष्कर्ष : अतः हम कह सकते हैं कि राम मनोहर लोहिया जी सप्त क्रांति के माध्यम से लोगों को जिस समस्याओं से निपटने की सलाह देते नजर आते हैं उन सभी समस्याओं के अलावा अन्य सामाजिक समस्याओं छुआछूत, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, समानता, स्वतंत्रता, बंधुआ, न्याय, शोषण, महिला, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ों के लिए हमेशा लड़ते ही नहीं रहे बल्कि संविधान बनाकर उन सभी समस्याओं से संवैधानिक तौर पर मुक्ति भी प्रदान करने का कार्य किये। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक विकास के कुछ मुद्दों पर अम्बेडकर व लोहिया की विचारधारा एक दूसरे की समान नजर आती है।

संदर्भ

1. जेफर लोट, क्रिसटोफ (2005), अम्बेडकर एण्ड अनाचविलिटी : फाइटिंग द इण्डियन कास्ट सिस्टम, न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. अहूजा एम.एल. (2007), डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, इमिनेण्ट इण्डियेस : एडमिनिस्ट्रेटर्स एण्ड पालिटिकल थिंकर, न्यू डेलही, रूपा पी. पी. 1922-1923, आर चीण्ड फ्रॉम द ऑरिजनल 23 दिसम्बर 2016
3. कल्चरर इण्डिया : रिफोरमर डॉ. बी. आर. अम्बेडकर (www.culturealmedia.net)
4. कीर धनन्जय, (9 अगस्त 1971), डॉ. अम्बेडकर, लाइफ एण्ड मिशन, पापुलर प्रकाशन वाया गूगर बुम्स।
5. डॉ. राम मनोहर लोहिया, मार्क्स और समाजवाद।
6. डॉ. राम मनोहर लोहिया, समाजवादी चिंतन।
7. डॉ. राम मनोहर लोहिया, सम्पूर्ण और संभव बराबरी और दूसरे भाषण।

प्रो. शैलेन्द्र सिंह
शोध निदेशक
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
जे.एस. विश्वविद्यालय
शिकोहाबाद, उ.प्र.

रबिन्द्र कुमार
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
जे.एस. विश्वविद्यालय
शिकोहाबाद, उ.प्र.

निषाद समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण

–प्रवीन चौधरी

शोध सार : यह शोध पत्र भारत में निषाद जाति के समृद्ध और जटिल इतिहास पर प्रकाश डालता है। यह शोध उनकी उत्पत्ति, सामाजिक-आर्थिक स्थिति और राजनीतिक महत्व पर प्रकाश डालता है। इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य निषाद जाति के ऐतिहासिक विकास, इसकी सांस्कृतिक विरासत और वर्षों से उनकी पहचान को आकार देने वाली सामाजिक गतिशीलता की व्यापक समझ प्रदान करना है। इस शोध पत्र में डेटा के द्वितीय स्रोतों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक ग्रंथों, मानवशास्त्रीय अध्ययनों सहित द्वितीय स्रोतों की एक विस्तृत श्रृंखला पर आधारित, यह शोध पत्र प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक, निषाद जाति की यात्रा का कालानुक्रमिक विवरण प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन के निष्कर्ष न केवल शैक्षणिक रुचि के हैं, बल्कि सामाजिक समावेशन और समकालीन भारत में हाशिए पर रहने वाले समुदायों की पहचान के उद्देश्य से बनाई गई नीतियों के लिए व्यावहारिक निहितार्थ भी रखते हैं।

शब्द बीज : निषाद, इतिहास, जाति, समाज, समुदाय, ऐतिहासिक, ब्राह्मण, महाभारत, वंश, सभ्यता

1. परिचय

भारतीय राज्यों में मुख्य रूप से बिहार और उत्तर प्रदेश में पाई जाने वाली निषाद जाति की एक समृद्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। ऐतिहासिक रूप से जल निकायों, मछली पकड़ने और नाव चलाने से संबंधित व्यवसायों से जुड़े निषाद समुदाय की एक बहुआयामी जीवन पद्धति है, जो भारत के सामाजिक-राजनीतिक ताने-बाने के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। निषाद शब्द का अर्थ- ('निः' यानि 'जल' और 'षाद' का अर्थ 'शासन') जल पर शासन करने वाला हो। निषाद शब्द की रचना 'नि' उपसर्ग, 'सद्' धातु और 'धन्' प्रत्यय के संयोग से हुई है। 'नि' उपसर्ग का अर्थ 'निकट' और 'सद्' धातु का अर्थ बैठना होता है। अर्थात् निषाद का अर्थ निकट बैठने वाला हुआ। निस्साद (प्राकृत), निखाद (अपभ्रंश), निषीद (संस्कृत), निषाद (हिन्दी / संस्कृत), नेसाद (पाली), विभिन्न भाषा के शब्द हैं। भाषा विज्ञान के अनुसार निषाद शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न कालों में उन्हें बोलने के अनुसार हुई है। निषाद मल्लाह जाति की एक उप-जाति है, जो एक 'जल-केंद्रित' समुदाय है जिसका प्राथमिक व्यवसाय नौका विहार और मछली पकड़ना है। 'मल्लाह' शब्द का उपयोग नाव की सवारी करने वाले व्यक्ति को दर्शाने के लिए किया जाता था। ''क्रूक'' के अनुसार यह विशुद्ध रूप से एक व्यावसायिक शब्द है जो अरबी शब्द मल्लाह से लिया गया है-'अपने पंखों को पक्षी की तरह हिलाना'। उन्होंने आगे उल्लेख किया कि मल्लाह समूह में कई समुदाय शामिल हैं। ये हैं मल्लाह, केवट, धीमर, काराबक, निखड़, कछवाहा, मांझी और जलोक। संभवतः, निख़ाद शब्द को निषाद में बदल दिया गया है। 'मल्लाह' शब्द का उपयोग दो अलग-अलग अर्थों में किया जाता थाः पहला कई मछुआरों और नाविक जातियों को संदर्भित करने के लिए, जैसे कि धीमर, करबाक, निखाद, कछवाहा और सोराहिया, और दूसरा, एक विशिष्ट जाति के लिए, जिसे पारंपरिक रूप से मल्लाह नाम से जाना जाता है। इन दो अर्थों में इस शब्द का उपयोग मल्लाह के जातीय-तार्किक विश्लेषण के कार्य को जटिल और हैरान करने वाला बनाता है। (Census of India, 1961). वर्तमान में उत्तर प्रदेश में निषादों की कई उपजातियाँ हैं जैसे निषाद, केवट, मल्लाह, ऋबद, बाथम, बाथवा, चाय, यार, सोरहिया, गोरिया, गोध, धारा, गुरियारी, टियार, तंवर, खुलवत, खरबिंद, तुराहा, रायवर, साहनी, कश्यप, कहार, धीमर, मांझी, मझवार और लोध। उनमें से महत्वपूर्ण उपजातियाँ निषाद, बिंद, लोध, कश्यप और केवट हैं। (Nishad Kalyan Sabha, Uttar Pradesh, 1979). ये सभी उपजातियाँ कभी मल्लाह समुदाय का हिस्सा थीं, लेकिन अब राष्ट्रीय निषाद संघ, निषाद कल्याण सभा और महाराजा निषादराज गुह्या स्मारक समिति जैसे जाति संगठन निषादों की सभी उपजातियों को एक बड़े निषाद समुदाय में एकजुट करने की कोशिश कर रहे हैं। इस समुदाय की विभिन्न उप-जातियाँ पानी से जुड़े विभिन्न प्रकार के व्यवसायों जैसे फिशिंग और रेत ड्रेजिंग से उत्पन्न हुई हैं। लेकिन निषादों की सभी उप-जातियों को एक समान जाति के नाम से एकजुट करने की इच्छा इस तथ्य से उपजी है कि यह उन्हें एक शक्तिशाली समुदाय बना देगा जिसके सदस्य संसद में सीटें जीत सकते हैं और समुदाय के उत्थान और

बेहतरी की दिशा में काम कर सकते हैं। निषाद को एकीकृत पहचान के रूप में चुना गया था क्योंकि प्राचीन हिंदू धार्मिक ग्रंथों में इस नाम का उल्लेख किया गया है।

2. उत्पत्ति और पहचान

2.1 पौराणिक उत्पत्ति :

किंवदंतियों के अनुसार, भारतीय उपमहाद्वीप में आर्यों के आगमन से पहले, एक सुविकसित निषाद साम्राज्य मौजूद था। निषादों के बहुत सारे दुर्ग एवं किले थे, जिन्हें आमा, आयसी, अश्ममयी, उर्वा, शतभुजी, शारदीय आदि नामों से जाना जाता था। यह राज्य मजबूत था और नदी के किनारे समृद्ध था, रेत निकालने, नौकायन और मछली पकड़ने जैसी गतिविधियों में संलग्न था।

महर्षि वाल्मीकि ने जो पहला श्लोक लिखा है, उसमें निषाद शब्द आया है।

मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः धरतीः समाः।
यत्क्रोधमिथुनादेकम अवधी काममोहितम्॥

अर्थात् निषाद तुमको अनंत काल तक (प्रतिष्ठा) शांति न मिले, क्योंकि तुमने प्रेम प्रणय क्रिया में लीन असावधान क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक की हत्या कर दी।

रामायण में तो निषाद जाति का विस्तृत विवरण है। भगवान रामचन्द्र को श्रृंगवेरपुर के राजा गुह्यराज ने अपनी नौका से नदी के पार उतारा था, जब उन्हें महाराज दशरथ और महारानी कैकेयी द्वारा 14 वर्ष के वनवास का आदेश दिया गया था। ''मनु ने भी निषाद जाति का उल्लेख किया है।" निषाद जाति अत्यन्त निम्न जाति थी जो नाविक का कार्य करती थी। बौध ग्रन्थों में ऐसे नाविकों या शद (निषाद) का उल्लेख हुआ है। ''विष्णु पुराण में इसे विन्ध्य शैल का निवासी और पापकर्मा कहा गया है तथा इसकी उत्पत्ति राजा वेन के खोज जंघस्थल से मानी गयी है।" निषाद पुरुष और स्त्री से उत्पन्न संतान को बौधायन ने पौल्कस के नाम से अभिहित किया है।

महाभारत में जंगल शिकारी और मछुआरों के रूप में निषाद जाति का वर्णन है। एकलव्य निषादों के राजा हिरण्यधनुम का पुत्र था। पांडवों के समय में एकलव्य का राज्य सबसे प्रसिद्ध निषाद साम्राज्य था। इस राज्य का दौरा सहदेव ने दक्षिण में अपने सैन्य अभियान के दौरान युधिष्ठिर के राजसूय बलिदान के लिए श्रद्धांजलि लेने के लिए किया था सहदेव करु यौद्धा ने निषादों के देश पर विजय प्राप्त की और गोविंग नामक उच्च पहाड़ी, और पृथ्वी के स्वामी श्रीनिमत कहा जाता है। कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद अर्जुन एकलव्य के निषाद राज्य में युधिष्ठिर के अश्वमेध बलिदान के लिए श्रद्धांजलि लेने आए थे।

हरिवंश पुराण के अनुसार, स्वयंभुव मनु के वंशज अंग नामक प्रजापति का विवाह मृत्यु की मानसी पुत्री सुनीथा से हुआ था। उन दोनों से वेन नाम का पुत्र हुआ। उसने लोगों पर अत्याचार करना शुरू कर दिया तो मरीचि आदि ऋषियों ने मंत्रपूत कुशों से उसे मार डाला। सुनिथा ने पुत्र का शव सुरक्षित रखा, जिसकी दाहिनी जंघा का मंथन करके ऋषियों ने एक नाटा, काला और छोटा मुखवाला पुरुष उत्पन्न किया। ब्राह्मणों ने उसे ''निधीद" (बैठ) कहा। इसलिए उसका नाम निषाद पड़ा। उस निषाद द्वारा वेन के सारे पाप कट गये। वहीं निषादों के वंश का चलाने वाला राजा हुए।

2.2. आपराधिक जनजाति के रूप में निषाद :

1857 के विद्रोह और बाद में कॉलोनी में कानून और व्यवस्था की स्थापना और रखरखाव के लिए चिंता के बाद अपराध का ब्रिटिश विमर्श प्रमुखता में आया। आपराधिकता का विमर्श, जिसे आंशिक रूप से स्थानीय अभिजात वर्ग द्वारा समर्थित किया गया था, भारतीय समाज के एक ध्रुवीय दृष्टिकोण पर आधारित था, जो भ्रमणशील और गतिहीन समुदायों में विभाजित था। (Freitag 1991). नस्लीय रजिस्टर में 'भटकने वाली, यात्रा करने वाली जनजातियों' के रूप में पहचाने गए विभिन्न सीमांत निम्न स्थिति समूहों को लगभग स्वचालित रूप से आपराधिक निपटान के रूप में लेबल किया गया था और नई निगरानी और नियंत्रण विधियों के अधीन किया गया था। इन यात्रा समूहों के नस्लीय ज्ञान ने उस आधार के रूप में कार्य किया जिसके आधार पर उन्हें 1871 के नए अधिनियमित आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत पंजीकृत किया गया था। इस दौरान बंगाल के अधिकारियों ने बिंदों (मल्लाहों की एक उप-जाति) को संगठित डकैती करने वाले आपराधिक प्रवृत्तियों वाले समूह के रूप में सूचीबद्ध किया (Yang 1985, 113). 1872 तक, मल्लाह जाति को ही सूची में जोड़ा गया और अन्य समूहों के साथ 'आपराधिक जनजाति' के रूप में पंजीकृत किया गया, जिन्हें 'हाल ही में कृषि में बसने वाले प्रसिद्ध अपराधी' के रूप में लेबल किया गया।

3. सामाजिक आर्थिक स्थिति

निषादों ने ऐतिहासिक रूप से अपनी आजीविका मछली पकड़ने, नौकायन और रेत खोदने सहित पानी से संबंधित गतिविधियों पर केंद्रित की है। निषाद समुदाय ने ऐतिहासिक रूप से सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का सामना किया है जिन्होंने उनके विकास और कल्याण को प्रभावित किया है। पारंपरिक रूप से मछली पकड़ने, नौका विहार और पानी से संबंधित अन्य गतिविधियों जैसे व्यवसायों में लगे निषाद समुदाय को अक्सर हाशिए पर रखा गया है और भेदभाव का सामना करना पड़ा है, जिससे उनकी सामाजिक- आर्थिक प्रगति बाधित हुई है।

आर्थिक रूप से, निषाद समुदाय के कई सदस्य अपनी आजीविका के लिए पारंपरिक व्यवसायों पर निर्भर रहते हैं,

जिनमें अक्सर आधुनिकीकरण और संसाधनों तक पहुंच की कमी होती है। पारंपरिक आजीविका पर यह निर्भरता उनकी आय क्षमता और आर्थिक गतिशीलता को सीमित कर सकती है, जो समुदाय के भीतर गरीबी और आर्थिक भेद्यता में योगदान कर सकती है।

शिक्षा एक अन्य क्षेत्र है जहाँ निषाद समुदाय को चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सीमित पहुंच, सामाजिक-आर्थिक बाधाओं के साथ, गरीबी के चक्र और समुदाय के सदस्यों के लिए अवसरों की कमी को कायम रख सकती है। नतीजतन, निषाद समुदाय के भीतर शैक्षिक प्राप्ति का स्तर सामान्य आबादी की तुलना में कम हो सकता है, जिससे उच्च-वेतन वाली नौकरियों तक पहुँचने और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार करने की उनकी क्षमता प्रभावित हो सकती है।

सामाजिक रूप से, निषाद समुदाय को भेदभाव और बहिष्कार का भी सामना करना पड़ा है, जो उनकी सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों को और बढ़ा सकता है। भेदभावपूर्ण प्रथाएं और सामाजिक कलंक, संसाधनों, अवसरों और सामाजिक सेवाओं तक उनकी पहुंच को प्रतिबंधित कर सकते हैं, जिससे असमानताएं और हाशिए पर रहना जारी रह सकता है। हालांकि, इन चुनौतियों के बावजूद, निषाद समुदाय की सामाजिक-आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के प्रयास किए जा रहे हैं। शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार के अवसरों तक पहुंच में सुधार के उद्देश्य से की गई पहल समुदाय के सदस्यों को सशक्त बनाने और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बढ़ाने में मदद कर सकती है। इसके अतिरिक्त, भेदभाव को दूर करने और सामाजिक समावेश को बढ़ावा देने के लिए वकालत के प्रयास एक अधिक न्यायसंगत समाज बनाने के लिए महत्वपूर्ण हैं, जहां निषाद समुदाय सहित सभी समुदाय फल-फूल सकें।

4. राजनीतिक महत्व

निषाद समुदाय की उपजातियाँ उत्तर प्रदेश की आबादी का लगभग 18 प्रतिशत हैं। निषाद वोट बैंक 12 प्रतिशत है और वे एक दर्जन लोकसभा क्षेत्रों में फैले हुए हैं। हालाँकि, उनका वोट आंतरिक रूप से विभाजित है। एक संजय निषाद की निषाद पार्टी है, इस ही जाति के मुकेश सहनी की विकासशील इंसान पार्टी है। उनके चुनावी प्रभाव ने राजनीतिक दलों को निषाद लोककथाओं के पौराणिक नायकों का आह्वान करके उनके समर्थन के लिए होड़ करने के लिए प्रेरित किया है। पार्टियां अपना महत्व पहचानती हैं। इस तरह बीजेपी ने जय प्रकाश निषाद को राज्यसभा भेजा जबकि एसपी ने विशंभर प्रसाद निषाद को सदन में भेजा। सपा के पिछड़ा वर्ग मोर्चा के अध्यक्ष भी निषाद हैं- राजपाल कश्यप। कांग्रेस ने समुदाय के मुद्दों को समझने के लिए साल की शुरुआत में 'नदी अधिकार यात्रा' निकाली थी।

पहचान की राजनीति : उत्तर प्रदेश में, वे अन्य पिछड़ी जाति श्रेणी के अंतर्गत हैं -एक श्रेणी जिसे वे अनुसूचित जाति में बदलना चाहते हैं। उनका मानना है कि इससे उनके निम्न सामाजिक और आर्थिक मापदंडों में मदद मिलेगी। किसी समुदाय के सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए जाति की पहचान को उजागर करना विकास के एजेंडे की बड़ी विफलता पर एक टिप्पणी है जो तब जातियों को अपने लिए राजनीतिक पहचान बनाने के लिए अपनी धार्मिक पहचान को बनाए रखने के लिए प्रेरित करती है, और इस प्रकार बेहतर की तलाश करती है। राजनीतिक शक्ति के माध्यम से अवसर जो उन्होंने जीते। समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और भारतीय जनता पार्टी सहित विभिन्न राजनीतिक दलों ने सक्रिय रूप से निषाद पहचान को बढ़ावा दिया है। राम चंद्र वकील जैसे नेताओं और आयोजित रैलियों ने इस पहचान दावे में योगदान दिया है। निषादों के एकीकरण का प्रयास एकता सम्मेलनों (एकता सम्मेलन) संवेदीकरण कार्यक्रमों के आयोजन और अन्य लामबंदी रणनीतियों को नियोजित करके किया जा रहा है। यह प्रक्रिया औपनिवेशिक काल में शुरू हुई जब एक नया शिक्षित मध्यम वर्ग उभरने लगा। इस वर्ग ने जाति पंचायत के पारंपरिक नेताओं के साथ मिलकर एक नेतृत्व समूह का गठन किया, जिसने 1918 में लखनऊ में अखिल भारतीय निषाद महासभा को विकसित करने का नेतृत्व किया, जिसका नेतृत्व इलाहाबाद के राय राम चरण वकील और प्यारेलाल चौधरी ने किया। इसका पहला सम्मेलन इलाहाबाद में आयोजित किया गया था, जिसके बाद भारत के अन्य हिस्सों में ऐसी कई बैठकें हुईं। यह सम्मेलन 1919 में लखनऊ में, 27-29 दिसंबर 1920 तक काशी में, 1926 में बक्सर (बिहार) में और सितंबर 1927 में आगरा में आयोजित किया गया था। दिसंबर 1936 में हुगली में एक बैठक हुई थी। 1946 में डेहरी-ऑन-सोन में एक अनूठी बैठक आयोजित की गई थी, जिसमें सोन नदी के तट पर एक विशाल तम्बू लगाया गया था। 1940 में, मुंगेर के तेंगराघाट में एक बैठक आयोजित की गई थी, जबकि 1946 में, यह पश्चिम बंगाल के पुरुलिया के श्यामनगर में आयोजित की गई थी। 1950 में गोरखपुर के खलीलाबाद ने इस बैठक की मेजबानी की थी। 1952 में, कश्यप धीवर मिलन निषाद सम्मेलन राजघाट, बनारस में अखिल भारतीय निषाद महासभा के तत्वावधान में आयोजित किया गया था। 1956 में, इलाहाबाद के सिरसा में हुई बैठक में, निषाद उप-जातियों के भीतर अंतरजातीय विवाहों को एकजुट करने के उद्देश्य से प्रतिबंध कर दिया था। राजनीतिक प्रतिनिधित्व दावे का

फल तब मिला जब 1936 में राम चरण अधिवक्ता संयुक्त प्रांत की विधान परिषद के सदस्य बने (चौधरी, 1999). निषाद, बिंद, कश्यप और लोध उपजातियों के लोगों को एकजुट करने के लिए 23 जनवरी 1997 को इलाहाबाद में आयोजित महाराजा निषादराज गुह्या स्मारक समिति की एक बैठक में इन समुदायों के बुद्धिजीवियों ने उल्लेख किया था कि प्राचीन काल में उनका समाज (समुदाय) 'निषाद' के नाम से राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट था और यही उनकी समृद्धि का रहस्य था। उन्होंने इन विभिन्न उप-जातियों के लोगों से एक बार फिर खुद को एकजुट करने और अपने समुदाय को मजबूत करने का आह्वान किया। देवरिया के गौरीबाजार में आयोजित एक अन्य बैठक में सपा के नेता और पूर्व मंत्री मनोहरलाल निषाद ने कहा कि उनके समुदाय का ऐतिहासिक रूप से अत्यधिक शोषण किया गया था और यह प्रक्रिया अभी भी जारी है। उन्होंने कहा कि लोधों, बिंदों और पूरे निषाद समुदाय को इस शोषण के खिलाफ एकजुट होने की जरूरत है। इस दिशा में प्रारंभिक कदम के रूप में, यूपी में रहने वाले लोधों, निषादों और बिंदों के लगभग 250 नेताओं ने एक साथ मिलकर आपस में रोटी-बेटी संबंध (समानता और अंतर-विवाह) को पुनर्जीवित करके खुद को एकजुट करने का फैसला किया।

5. निष्कर्ष

निषाद जाति की ऐतिहासिक यात्रा लचीलापन, पहचान निर्माण और राजनीतिक जुड़ाव को दर्शाती है। ''जल के शासकों" के रूप में उनकी भूमिका उनके सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य को आकार देती रहती है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश की राजनीति में खासकर पूर्वांचल के कुछ जिलों में इस समुदाय का राजनीति महत्व है। निषाद समाज एक विशाल समुदाय है, जिसने हमेशा राष्ट्र की रक्षा के लिए बलिदान दिया है। इतिहास गवाह है कि सभ्यता और संस्कृति की उत्पत्ति और विकास घाटियों और नदियों से हुआ। इसका मतलब है कि निषाद सभ्यता और संस्कृति के निर्माता रहे हैं। निषाद समुदाय ने व्यापार, जल परिवहन और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के माध्यम से भारत को समृद्ध बनाकर योगदान दिया है। निषादों ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और विनाशकारी बाढ़ के दौरान जीवन बचाने का अपना काम जारी रखा है। वे राष्ट्र के सतर्क रक्षक और समाज के सच्चे सेवक बने रहते हैं। आजादी के बाद यह उम्मीद की गई थी कि निषादों को न्याय और विकास के समान अवसर मिलेंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इस लोकतंत्र में कृषि किसान सुरक्षित और स्थिर हैं, अधिकारी (राज्य के) बन रहे हैं, जबकि जल कृषक, निषाद, अपने पैतृक अधिकारों और पारंपरिक व्यवसायों से वंचित हैं। और इन व्यवसायों की नीलामी के माध्यम से मुट्ठी भर लोग उनका शोषण कर रहे हैं, पैसा कमा रहे हैं।

संदर्भ

1. बी. मलिनोआकी, ''अ साइअन्टिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर'', यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलिन प्रेस, 1944, अध्याय 4, पृष्ठ संख्या 35
2. ई. ई. ईवनसपीरिबचार्ड, ''सोशल ऐन्थ्रपालॉजी, कोहेन एण्ड वी'', लंदन, 1951
3. रामधारी सिंह दिनकर, ''संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एंड संस'', काश्मीरी गेट, दिल्ली, 1956, पृष्ठ संख्या 41
4. हिंदी विश्वकोष, खंड 12, बी. बी. बसु द्वारा विश्वकोश प्रेस से मुद्रित एवं नागेंद्र नाथ बसु और विश्वनाथबसु द्वारा प्रकाशित, विश्वकोश लेन, बाघ बाजार, कलकत्ता, 1926, पृष्ठ 103-104
5. मनुस्मृति, अध्याय 10 श्लोक 81
6. बोधायन धर्मसूत्र 7 1913
7. गौतम धर्म सूत्र, 41141
8. महाभारत अनुशासनपर्व, 48151
9. रामायण, अयोध्याकांड, 50:38
10. गोविंद सदाशिव घुर्ये, ''जाति, वर्ग और व्यवसाय'', पापुलर, प्रकाशन, 35-सी, ताड़देव रोड, बंबई, 1961, पृष्ठ संख्या 46
11. निर्मला श्रीवास्तव, ''निषाद केवटः परिवर्तन की और'', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या 29
12. रमाशंकर सिंह, ''नदी पुत्रः उत्तर भारत में निषाद और नदी'', सेतु प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2022, पृष्ठ संख्या 89
13. डॉ. संजय कुमार निषाद, ''निषाद वंश'', मूल वंश पब्लिकेशन, 2012, पृष्ठ संख्या 7
14. बद्री नारायण, ''फैसनैटिंग हिन्दुत्वः सैफ्रान पॉलिटिक्स एण्ड दलित मोबीलाइजेसन'', सेज पब्लिकेशन, 2009, पृष्ठ संख्या 126
15. अस्सा डोरोन, ''कास्ट, ऑक्यूपेशन एण्ड पॉलिटिक्स ऑन द गेंग्सः पैसेजेस ऑफ रेजिसटेन्स'', रूटलेज, 2016, पृष्ठ संख्या 57

प्रवीन चौधरी

शोध छात्र,

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय

संस्कृति पर संचार माध्यमों का प्रभाव

–डॉ. ध्वनी सिंह

सारांश : समाज संचार से उत्पन्न होता है, विकसित होता है, जीवित रहता है, जिसका अर्थ है संदेशों और लेन-देन का प्रसारण। राजनीतिक संचार के एक साधन के रूप में, जनसंचार माध्यम शायद सर्वोच्च महत्व का हो गया है क्योंकि यह न केवल व्यक्तियों को बल्कि राजनीति के संचालन के तरीके और इसकी मुख्य गतिविधियों को भी प्रभावित करता है। जनसंचार माध्यम समग्र रूप से राजनीतिक व्यवस्था के बारे में व्यक्तियों के ज्ञान और उसके प्रति लगाव को प्रभावित करेगा और यह समय के साथ हो सकता है क्योंकि मीडिया की संरचना बदलती है या यह विशेष मुद्दों और लोगों के कवरेज के माध्यम से अधिक तेज़ी से हो सकता है। दूसरे, संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था और उसकी घटक संस्थाओं के बीच संबंध प्रभावित हो सकते हैं। तीसरा प्रभाव स्वयं संस्थाओं के बीच संबंध है। चौथा, किसी विशेष पार्टी के समर्थन या किसी नेता के प्रति व्यक्ति के आकर्षण के मामले में जनसंचार माध्यम व्यक्ति और संस्थाओं के बीच संबंधों को प्रभावित कर सकता है। मीडिया समाज में उसकी समस्याओं और उद्देश्यों के बारे में प्राथमिकताओं का क्रम स्थापित करने में मदद करता है। वे ऐसा आरंभ या निर्धारण करके नहीं करते हैं, बल्कि ''मूल्यों के एक सहमत पैमाने'' के अनुसार प्रकाशित करते हैं जो अन्यत्र, आमतौर पर राजनीतिक व्यवस्था में निर्धारित होता है। मास मीडिया का अन्य सामाजिक संस्थानों (विशेष रूप से राजनीति और शिक्षा, कुछ मामलों में धर्म और कुछ हद तक कानूनी संस्थानों और सेना) पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में, जनसंचार माध्यमों का व्यक्तिगत, राजनीतिक संस्थानों और राजनीतिक संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। लेकिन मूल रूप से जनसंचार माध्यमों की शक्ति के प्रश्न में महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल हैः जनसंचार माध्यम उन लोगों की इच्छा पर दूसरों के मुकाबले कितने प्रभावी ढंग से उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं और करते हैं जो उन्हें निर्देशित करते हैं, उनके मालिक हैं या उन्हें नियंत्रित करते हैं या जो उन्हें संदेशों के लिए चैनल के रूप में उपयोग करते हैं। मास मीडिया का इतिहास स्पष्ट रूप से दिखाता है कि इस तरह के नियंत्रण को राजनीतिक या आलथक शक्ति चाहने वालों के लिए संपत्ति का एक मूल्यवान रूप माना जाता है।

कुंजी शब्द : संस्कृति, संचार, मीडिया, प्रभावशीलता

समाज में मास मीडिया की भूमिका :

सौ साल से भी अधिक पहले, जॉन डेवी ने डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन में लिखा था कि समाज न केवल संचार के विभिन्न रूपों द्वारा समर्थित है, बल्कि संचार से घिरा हुआ भी है। डेवी ने वही दोहराया जो दार्शनिकों और विद्वानों ने सदियों से नोट किया थाः छोटे समूह, बड़े समुदाय और विशाल संस्थान - वे सभी चीजें जो एक समाज का निर्माण करती हैं - समूहों के भीतर और उनके बीच संचार कैसे प्रवाहित होता है, इसके संबंध में कार्य करती हैं।

जनसंचार के विभिन्न रूप हैं। व्यापक स्तर पर, संचार प्रतीकों का उपयोग करने वाले लोगों के बीच अर्थ का आदान-प्रदान है। हमारे द्वारा उपयोग किए जाने वाले सबसे आम प्रतीक मौखिक और लिखित शब्द हैं, लेकिन अमेरिकी सांकेतिक भाषा जैसे गैर-मौखिक संचार के भी कई रूप हैं। सांकेतिक भाषा, मौखिक संचार और लिखित संचार में जो समानता है वह अर्थ बताने के लिए अमूर्त प्रतीकों का उपयोग है। चाहे आप आमने-सामने संचार में ''धन्यवाद" कहें, किसी को ''धन्यवाद" शब्दों वाला कार्ड भेजें, या धन्यवाद व्यक्त करने के लिए गैर-मौखिक संकेतों का उपयोग करें, अर्थ एक ही है। पारस्परिक संचार आम तौर पर व्यक्तिगत स्तर पर, अक्सर एक-पर-एक, दो या दो से अधिक लोगों के बीच अर्थ के आदान-प्रदान को संदर्भित करता है। पारस्परिक संचार मौखिक या अशाब्दिक हो सकता है। अधिकतर, यह आमने-सामने की सेटिंग में होता है। यह जनसंचार से भिन्न है, जिसमें एक स्रोत से कई प्राप्तकर्ताओं तक व्यापक दर्शकों के लिए प्रतीकात्मक संदेशों के माध्यम से अर्थ साझा करना शामिल है। कभी-कभी, विशेष रूप से कंप्यूटर-मध्यस्थ संचार में, कंप्यूटर का उपयोग करके संदेश भेजे जाते हैं, पारस्परिक संचार और जन संचार के बीच अंतर बताना मुश्किल हो सकता है क्योंकि व्यक्ति केवल अन्य व्यक्तियों के लिए संदेश भेज सकते हैं जो बड़ी संख्या में लोगों तक तुरंत पहुंच

सकते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म अक्सर ऐसे तरीकों से संरचित होते हैं जो पारस्परिक संदेशों को ''वायरल होने" और बड़े पैमाने पर संदेश बनने की अनुमति देते हैं, चाहे मूल प्रेषक का इरादा बड़े पैमाने पर दर्शकों को संबोधित करने का हो या नहीं।

यह संदेश का प्रकार नहीं है जो पारस्परिक या जनसंचार को निर्धारित करता है। यह संदेश वितरित करने का तरीका और प्रेषक और प्राप्तकर्ता के बीच संबंध है। यह पाठ नेटवर्क संचार प्लेटफार्मों पर पारस्परिक संचार और जन संचार संरचनाओं के ओवरलैप से जूझता रहेगा, लेकिन सबसे पहले, शैक्षणिक सेटिंग्स में आमतौर पर अध्ययन किए जाने वाले संचार के एक और रूप को पेश किया जाना चाहिए। संगठनात्मक संचार औपचारिक संगठनों से संबंधित सदस्यों के लिए विशिष्ट अर्थ रखने वाले संदेशों का प्रतीकात्मक आदान-प्रदान है। व्यावहारिक रूप से, यह आंतरिक संचार है जो सरकारों, व्यवसायों, स्कूलों और अस्पतालों को चलाने में मदद करता है। संगठनों में एक साथ काम करने वाले लोग आमतौर पर एक-दूसरे से सीधे संवाद करके या छोटे समूहों में काम करते हैं। संचार के बिना संगठन कार्य नहीं कर सकते। संगठनात्मक संचार प्रभावशीलता व्यवसायों और अन्य सामाजिक संस्थानों की सफलता या विफलता को प्रभावित कर सकती है। इस प्रकार, संचार केवल संगठनों के भीतर ही नहीं होता है; यह उनकी संरचना का एक अनिवार्य हिस्सा है। संगठनात्मक संचार अध्ययन का एक अलग क्षेत्र है, जिसे इस यूट्यूब वीडियो में अच्छी तरह से पेश किया गया है। गठन के भीतर उपयोग के लिए हो, या व्यापक दर्शकों के लिए हो, लोगों को एक-दूसरे को समझने और काम पूरा करने में मदद कर सकता है। यदि समूहों के औपचारिक उद्देश्य के साथ कार्य करने के लिए अच्छा संगठनात्मक संचार आवश्यक है, तो समाज के कार्य करने के लिए जनसंचार आवश्यक है। समाज विभिन्न आकारों के औपचारिक संगठनों से बने होते हैं। आमतौर पर, समूह जितना बड़ा होगा, उसकी संचार संरचनाएँ उतनी ही जटिल होंगी। संचार संरचना सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आईसीटी), उन प्रौद्योगिकियों का उपयोग करने के लिए दिशानिर्देशों और सूचना और संदेशों के प्रबंधन के लिए समर्पित पेशेवर श्रमिकों के संयोजन को संदर्भित करती है। जनसंचार क्षेत्र में, संचार संरचनाएं कंप्यूटर और ट्रांसमिशन नेटवर्क से कहीं अधिक हैं।

बड़े पैमाने पर उपभोग के लिए संदेश बनाने और वितरित करने के लिए नेटवर्क का उपयोग करने के दिशानिर्देश कॉर्पोरेट नीति के साथ-साथ कानून का भी मामला हैं। यह देखा गया है कि एक समाज छोटे समूहों, बड़े समुदायों और विशाल संस्थानों से बना होता है। इस शब्द की अधिक संपूर्ण परिभाषा समाजशास्त्र के क्षेत्र से आती है। समाज संस्थाओं में संगठित लोगों का एक बहुत बड़ा समूह है जो औपचारिक संबंधों के माध्यम से समय के साथ एक साथ जुड़े रहते हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्र कानून द्वारा संगठित औपचारिक संस्थाओं से बने होते हैं। विभिन्न आकार की सरकारें, आर्थिक संस्थान, शैक्षणिक संस्थान और अन्य सभी मिलकर एक समाज बनाते हैं। तुलनात्मक रूप से, संस्कृति - बड़े और छोटे समूहों का ज्ञान, विश्वास और प्रथाएँ - आवश्यक रूप से औपचारिक नहीं हैं। मानव अनुभव का आनंद लेने और उसे समझने के लिए संस्कृति आवश्यक है, लेकिन संस्कृति को नियंत्रित करने वाले कुछ औपचारिक नियम हैं। जनसंचार समाज और संस्कृति दोनों को प्रभावित करता है। विभिन्न समाजों में अलग-अलग मीडिया प्रणालियाँ होती हैं, और जिस तरह से उन्हें कानून द्वारा स्थापित किया जाता है, वह समाज के काम करने के तरीके को प्रभावित करता है। जनसंचार माध्यमों में संदेशों सहित संचार के विभिन्न रूप समाज को आकार और संरचना देते हैं। इसके अतिरिक्त, मास मीडिया आउटलेट दुनिया भर में सांस्कृतिक ज्ञान और कलात्मक कार्यों का प्रसार कर सकते हैं। जब मीडिया का उपभोग करने की बात आती है तो लोग सांस्कृतिक प्राथमिकताओं का उपयोग करते हैं, लेकिन मास मीडिया कॉर्पोरेशन अक्सर यह तय करते हैं कि कौन सी कहानियां बतानी हैं और किसे बढ़ावा देना है, खासकर जब बड़े पैमाने पर मीडिया के उन रूपों की बात आती है जिनका निर्माण करना महंगा है जैसे कि प्रमुख मोशन पिक्चर्स, प्रमुख वीडियो गेम रिलीज़ और वैश्विक समाचार उत्पाद। किसी भी अन्य से अधिक, जनसंचार का क्षेत्र संस्कृति को प्रसारित करता है। साथ ही, यह संस्थागत समाज को स्वयं को समझने में मदद करता है और यह भी समझने में मदद करता है कि उसकी संरचनाएँ काम कर रही हैं या नहीं। संदेशों से बनता है, उसी तरह यह संस्कृति के साथ चलता है। सांस्कृतिक उत्पाद और उनकी लोकप्रियता इस बात को प्रभावित कर सकती है कि लोग किस मीडिया चैनल को पसंद करते हैं। इसके विपरीत, मीडिया और आईसीटी में बदलाव से हम संस्कृति का उत्पादन कैसे करते हैं, इसमें बदलाव आ सकता है। जब हम डिजिटल संस्कृति पर चर्चा करते हैं, तो हम नेटवर्क संचार युग में संस्कृति के विभिन्न स्तरों और सांस्कृतिक रूपों और जन संचार के बीच संबंधों को तोड़ना जारी रखेंगे। मास मीडिया को समझना शुरू करने के लिए, समाज में उनकी भूमिका और वे संस्कृति को कैसे आकार देते हैं और सांस्कृतिक प्राथमिकताओं से कैसे आकार लेते हैं, यह सोचने में मदद मिलती है कि मास मीडिया आपको कैसे प्रभावित कर सकता है।

संचार एवं संस्कृति का परस्पर संबंध :

मीडिया का सांस्कृतिक प्रथाओं पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, और संस्कृति के भविष्य पर भी इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आज के समाज और संस्कृति में मीडिया का जनमत पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। हमारे मीडिया संगठन हमारे समाज में व्यापक प्रकार के कार्य करते हैं। विभिन्न समाजों को नियंत्रित करने वाले कानूनों का उनके मीडिया सिस्टम पर प्रभाव पड़ता है। मीडिया द्वारा प्रसारित संदेशों से समाज आकार और संरचित होता है। मीडिया सांस्कृतिक ज्ञान और कलात्मक कृतियों को दुनिया भर में प्रसारित करने में भी मदद कर सकता है। जब मीडिया उपभोग की बात आती है, तो सांस्कृतिक प्राथमिकताएँ महत्वपूर्ण होती हैं; हालाँकि, जब फिल्मों और वीडियो गेम जैसे मीडिया के महंगे रूपों की बात आती है, तो निगम अक्सर तय करते हैं कि कौन सी कहानियाँ बतानी हैं और कौन सी कहानियाँ प्रचारित करनी हैं (बर्गर, 2017)। किसी भी अन्य माध्यम से अधिक, जनसंचार माध्यम संस्कृति के प्रसार के लिए जिम्मेदार है। यह संस्थागत समाज को स्वयं और उनकी संरचनाओं की बेहतर समझ प्राप्त करने में भी सहायता करता है। मीडिया प्रभाव सिद्धांत मेरी कलाकृतियों के लिए सबसे उपयुक्त है। इस पेपर का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि मीडिया और तकनीकी प्रगति ने हमारी संस्कृति को कैसे नुकसान पहुंचाया है। मीडिया के प्रसार के कारण, लोग इन दिनों अधिक प्रभावी ढंग से संवाद करने और अपनी यादें साझा करने में सक्षम हैं। दूसरों के साथ बातचीत करके और विचारों का आदान-प्रदान करके, सोशल मीडिया ने हमारे समाज को अधिक रचनात्मक और सामाजिक रूप से जागरूक बनने में सहायता की है। यह अन्य बातों के अलावा, हिंसा को बढ़ावा देने, सांस्कृतिक मान्यताओं को नष्ट करने और बच्चों को हतोत्साहित करने के द्वारा संस्कृति पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। प्रारंभिक मीडिया अध्ययन मुख्य रूप से जनसंचार माध्यमों के माध्यम से प्रचार और अनुनय से संबंधित थे। मास मीडिया और संचार समाज को कैसे प्रभावित करते हैं, इसकी बेहतर समझ हासिल करने के लिए पत्रकारों और शिक्षाविदों ने व्यवहार विज्ञान का अध्ययन शुरू किया। विद्वानों ने इस समस्या के समाधान के लिए ढेर सारे सिद्धांत और दृष्टिकोण विकसित किए हैं। मीडिया के सांस्कृतिक प्रभाव की जांच और विश्लेषण करने के लिए इन सिद्धांतों का उपयोग करें। यह मॉडल व्यापक चिंता के जवाब में विकसित किया गया था कि मीडिया संदेश अन्य सांस्कृतिक प्रभावों पर भारी पड़ सकते हैं जो लोगों के जीवन को स्थिर करने में मदद करते हैं, जैसे कि परिवार और समुदाय द्वारा प्रदान किए गए। इस मॉडल ने माना कि लोग मीडिया संदेशों के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता थे और उन संदेशों पर पूर्वानुमानित तरीकों से प्रतिक्रिया देते थे। उदाहरण के लिए, वॉर ऑफ द वर्ल्ड्स के रेडियो प्रसारण ने कुछ श्रोताओं के बीच घबराहट पैदा कर दी, जिन्होंने उस समय कहानी पर विश्वास किया था (वालकेनबर्ग और ओलिवर, 2020)। पीपुल्स चॉइस स्टडी के निष्कर्षों ने इस मॉडल पर संदेह जताया है। 1940 में किए गए एक अध्ययन में मतदाता निर्णयों पर राजनीतिक अभियानों के प्रभाव का अध्ययन किया गया। अधिकांश मीडिया उपभोक्ताओं को पहले से ही पता है कि वे किसे वोट देंगे, जबकि जो लोग अभी भी अनिश्चित हैं वे परिवार और दोस्तों से सलाह लेते हैं। इस जाँच के कारण कई अन्य मीडिया सिद्धांत अस्वीकृत हो गए। ये सिद्धांत जनसंचार माध्यमों के प्रभाव और हेरफेर के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। मीडिया का एजेंडा-सेटिंग सिद्धांत, प्रत्यक्ष प्रभाव मॉडल के चरम विचारों के विपरीत, यह दावा करता है कि जन मीडिया किसी दिए गए मुद्दे पर जनता के विचारों के बजाय मुद्दों को निर्धारित करता है। यदि यह सिद्धांत सही है, तो जनता उन मुद्दों पर ध्यान देगी और उन पर कार्रवाई की मांग करेगी जिन पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, मीडिया का प्रभाव इस बात पर पड़ता है कि जनता वर्तमान घटनाओं और कहानियों को कैसे देखती है। जब मीडिया किसी विशेष मुद्दे को कवर करने से इनकार करता है, तो जनता का ध्यान भटक जाता हैं। आलोचकों के अनुसार, यह वह तर्क है जिसका उपयोग यह दावा करने के लिए किया जाता है कि एक मीडिया आउटलेट का एक पूर्व निर्धारित एजेंडा होता है (सिंगर, 2018)। कुछ उदाहरणों के नाम पर, एजेंडा में उदार मूल्यों के पक्ष में मीडिया पूर्वाग्रह जैसी चीजें शामिल हैं। उदाहरण के लिए, एजेंडा-सेटिंग सिद्धांत यह समझाने में मदद करता है कि समय के साथ धूम्रपान विरोधी दृष्टिकोण क्यों बदल रहे हैं।

निष्कर्ष : संस्कृति पर मीडिया के प्रभाव के विषय पर शोध पत्र का निष्कर्ष इस प्रकार हो सकता है।

''आधुनिक समाज में मीडिया की उपस्थिति अत्यंत गहन और व्यापक है। यह शोध पत्र मीडिया के उन प्रभावों का अध्ययन करता है जो संस्कृति और समाज के विकास पर पड़ते हैं। मीडिया न केवल जानकारी का एक स्रोत है, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों को आकार देने में भी एक महत्वपूर्ण कारक है। इसके प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। और यह समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग-अलग तरीके से प्रभावित करता है।

इस शोध में पाया गया कि मीडिया संस्कृति के प्रसार में सहायक है, लेकिन कभी-कभी यह सांस्कृतिक

होमोजेनाइजेशन को भी बढ़ावा देता है, जिससे स्थानीय और पारंपरिक संस्कृतियों पर दबाव पड़ता है। मीडिया के माध्यम से विश्व संस्कृति के तत्वों का प्रसार होता है, जिससे वैश्विक समझ और सहिष्णुता की भावना में वृद्धि होती है। हालांकि, इससे स्थानीय संस्कृतियों की अनदेखी और उनके मूल्यों का क्षरण भी हो सकता है।

अंततः, यह शोध पत्र यह निष्कर्ष निकालता है कि मीडिया का संस्कृति पर प्रभाव एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें अनेक गतिशील तत्व शामिल हैं। समाज को इस प्रभाव को समझने और उसके अनुसार अपनी संस्कृति को संरक्षित करने और संवर्धित करने के लिए जागरूक और सक्रिय रहना चाहिए।

संदर्भ

- डा. मनीषकांत जैन का शोध पत्र ''भारत में प्रचलित मीडिया शिक्षण मॉडल और उनके प्रभावों का अध्ययन
- https://www.researchgate.net/publication/48513293_Culture_and_Communication_Cultural_Variations_and_Media_Effectiveness
- https://www.nios.ac.in/media/documents/331coursehindi/Module_5/Lesson_35_B.pdf
- http://shikshansanshodhan.researchculturesociety.org/ wp-content/uploads/SS202002027.pdf
- http://www.ijcms2015.co/file/vol-i-issue-3/AIJRA-VOL-I-ISSUE-3-010.pdf

डॉ. ध्वनी सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
श्री राम स्वरुप मेमोरियल यूनिवर्सिटी,
लखनऊ मीडिया स्टडीज विभाग
dhwanisingh29@gmail.com

स्वच्छ भारत के निर्माण में महात्मा गांधी के आदर्शों की विवेचना

–डॉ. जागीर कौर
–डॉ. रूबल रानी शर्मा

विगत वर्ष महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि देने के लिए सभी भारतीयों से प्रधानमंत्री ने अपना श्रम दान देने का आह्वान किया था। सुविकसित और स्वच्छ भारत की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए श्रम की इस विशेष आवश्यकता का अनुभव किया गया था। उन्होंने जनता के बीच जागरूकता बढ़ाने के लिए स्वच्छ राष्ट्र के विचार को महात्मा गांधी के दृष्टिकोण के साथ जोड़ा। यह प्रयास एक ऐसे समाज के निर्माण के महात्मा गांधी के प्रयासों को प्रतिबिंबित करता है जो सबका सम्मान करते थे और देश को साफ रखने के काम को आजादी से अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। इस लेख में स्वच्छ भारत के लिए महात्मा गांधी के दृष्टिकोण को केंद्रित किया गया है और इस पहल की प्रगति के साथ-साथ यह लेख स्वच्छ भारत के लिए गांधी की इच्छा की जांच करता है। यह प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों का उपयोग करता है।

परिचय : सफाई का समाज में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बिना समाज का अस्तित्व नहीं हो सकता। सौन्दर्यप्रिय होने के कारण मनुष्य को गन्दगी से नफरत है और स्वभावतः वह जहाँ भी रहता है, उस जगह को साफ रखने की सतत कोशिश करता रहता है। लेकिन स्वच्छता हमारी आदत का हिस्सा, हमारा स्वभाव, स्वेच्छा होने के साथ-साथ सामूहिक उतरदायित्व भी है। यहाँ स्वच्छता से भी ज्यादा महत्वपूर्ण स्वेच्छा से इस सामूहिक उतरदायित्व को निभाना है। प्रधानमंत्री ने गाँधीजी कि 145वीं वर्षगाठ पर स्वच्छता अभियान की शुरुआत की। इस कार्य को पूरा करने में सभी भारतीयों से सहयोग की अपेक्षा रखी गई ताकि हम गांधीजी के सम्मान में, जिन्होंने अपने पूरे जीवन में एक स्वच्छ और स्वच्छ भारत बनाने का लक्ष्य रखा था, इसे शुरू करने का निर्णय लिया। नई दिल्ली स्थित मंदिर मार्ग पुलिस स्टेशन की सफाई पहल श्री नरेंद्र मोदी द्वारा व्यक्तिगत रूप से शुरू की गई थी। उन्होंने कहा कि लोगों को कूड़ा नहीं फैलाना चाहिए और न ही दूसरों को कूड़ा फैलाने देना चाहिए, उन्होंने गंदगी साफ करने के लिए झाड़ू उठाया और स्वच्छ भारत अभियान को एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन में बदल दिया। ''ना गंदगी करेंगे, ना करने देंगे'' यही मंत्र दिया। इस मिशन का लक्ष्य समाज में साफ-सफाई और स्वच्छता के प्रति जागरूकता बढ़ाना और भारत में खुले में शौच को पूरी तरह से खत्म करना था। तब से लेकर आज तक स्वच्छता के शुभ लक्ष्य को सामने रखकर देश भर में बड़े स्तर पर वर्कशॉप, सेमिनार, चर्चाएँ और कांफ्रेंस होते आये हैं। स्वच्छ भारत अभियान राजनीति से अलग और देश की सेवा से प्रेरित ज्यादातर महात्मा गांधी के ''स्वच्छ और विकसित'' भारत के स्वप्न से जुड़ा है। हाल ही में इस अभियान का नौ साल का कार्यकाल पूरा हुआ और इससे देश की स्वच्छता स्थिति में सुधार हुआ है।

कार्यक्रम की शुरुआत के बाद से, भारत ने लगभग 2.23 लाख सामुदायिक स्वच्छता सुविधाएं और 11.3 करोड़ शौचालय बनाए हैं। भारत सरकार की हालिया घोषणा के अनुसार, बहुत सारे राज्यों ने 100% ओडीएफ प्लस दर प्राप्त की, जिसमें कहा गया था कि 50% भारत के गांवों ने ओडीएफ प्लस पदनाम प्राप्त कर लिया है।

सफल होने के लिए, विकसित व स्वच्छ भारत के लक्ष्य

स्वच्छता अभियान, साफ-सफाई और स्वच्छता के मूल्य पर जोर देते हुए सार्वजनिक क्षेत्रों में स्वच्छता को प्रोत्साहित और कचरा प्रबंधन प्रक्रियाओं को बढ़ाने का प्रयास करता है। ग्रामीण और शहरी दोनों घटक मे यह कार्यक्रम शौचालयों की स्थापना और पर्यावरण के अनुकूल प्रौद्योगिकियों के उपयोग को बढ़ावा देता है। परियोजना में खुले में शौच को खत्म करना, गंदे शौचालयों को फ्लश शौचालयों में बदलना, हाथ से मैला ढोने की प्रथा को खत्म करना, नगरपालिका के ठोस कचरे का प्रबंधन करना और अच्छी स्वच्छता प्रथाओं के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को बदलना शामिल है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को बढ़ाना; सबसे दूर के स्थानों में भी निजी और सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण करके खुले में शौच को खत्म करनाय और स्वास्थ्य और स्वच्छता के मुद्दों के बारे में सार्वजनिक ज्ञान बढ़ाना तथा लैंगिक समानता और सामाजिक

समावेशन पर सकारात्मक प्रभाव डालना है। वर्ष 2023 के लिए स्वच्छता ही सेवा अभियान का लक्ष्य ''श्रमदान और जनभागीदारी'' के माध्यम से स्वच्छता के उच्च मानक पर जोर देकर ''कचरा मुक्त भारत'' बनाना रहा है।

स्वच्छता के महत्व पर गांधी जी का दृष्टिकोण

महात्मा गांधी ने कहा था कि वह ''पहले स्वच्छ भारत और बाद में स्वतंत्रता'' चाहते थे। स्वच्छ भारत के प्रति गांधी की प्रतिबद्धता और मैला ढोने वालों से जुड़ी अस्पृश्यता को मिटाने के उनके प्रयासों को दक्षिण अफ्रीका में उनके प्रवास के दौरान देखा जा सकता है। जब गांधी दक्षिण अफ्रीका में काम कर रहे थे, तब उन्होंने बेहतर स्वच्छता के लिए अपना अभियान शुरू किया और भारत लौटने पर उन्होंने इसे जारी रखा। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता और अस्पृश्यता निवारण को इसी इच्छा के साथ जोड़ा। भारत में, वार्षिक मैला ढोने वालों को उनके रोजगार की प्रकृति के कारण अछूत के रूप में वर्गीकृत किया गया था, जिसकी गांधीजी ने कड़ी निंदा की थी। गांधीजी ने व्यक्तिगत रूप से उनके साथ काम करना शुरू किया ताकि यह दिखाया जा सके कि स्वच्छता से जुड़ा काम केवल एक विशेष जाति समूह तक ही सीमित नहीं है और वार्षिक मैला ढोने वालों के प्रति समुदाय के इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार को रोकने के लिए इसे हर किसी को करना चाहिए। गांधी ने इस तथ्य को दोहराते हुए कहा, ''हर कोई अपना स्वयं का सफाईकर्मी है।'' आज स्वच्छ भारत की दिशा में गांधीवादी तरीका जो स्वच्छता को ईश्वर भक्ति के ही समकक्ष मानता आया है को एक व्यक्तिगत जिम्मेदारी बनाने की आवश्यकता है।

गांधीवादी जीवन शैली के हिस्से के रूप में, गांधी ने स्वच्छता और साफ-सफाई को प्राथमिकता दी। उन्होंने सोचा कि बाहरी दुनिया को साफ करने से पहले, पहले अपने भीतर की सफाई करनी होगी। गांधीजी ने लगातार इच्छाओं को कम करने और पर्यावरण के लिए अच्छे विचारों को बढ़ावा देने पर जोर दिया। उनका लक्ष्य सभी को पूर्ण स्वच्छता प्रदान करना था और उनका मानना था कि स्वच्छता बनाए रखना स्वस्थ वातावरण और किसी के शारीरिक कल्याण दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन में सार्वजनिक और निजी स्वच्छता का उनका आह्वान शामिल था। उनका मानना था कि जाति-मुक्त और मुक्त समाज की स्थापना में सामाजिक स्वच्छता की लड़ाई एक महत्वपूर्ण कदम है। वे सभी रचनात्मक कामों में आंतरिक व बाह्य सफाई को महत्वपूर्ण स्थान देते रहे हैं। स्वच्छता के विचार को उन्होंने ईश्वर की आराधना के बाद दूसरा पवित्र कर्तव्य माना है। अपने सपनों के भारत में उन्होंने जिस भारत की कल्पना की उसमें स्वच्छता व स्वास्थ्य के साथ आरोग्य भारत का भी निर्माण शामिल था। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी ने टॉलस्टॉय फर्म का निर्माण किया था जिसमें सभी लोग स्वेच्छा समाज सेवा में लगे थे। उन्होंने सरकारी सहयोग की जगह सामाजिक सहयोग को माना जिसमें बात गरीबी या अमीरी की भी नहीं बल्कि मानसिकता और जीवनशैली की रही। उन्होंने कहा-हमारे देश में गरीबी अभिशाप नहीं गंदगी अभिशाप है। खास तौर पर शिक्षा और सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए इस विषय में वैज्ञानिक विवेचन की आवश्यकता है।

स्वच्छ भारत अभियान के तहत किए गए प्रयास

स्वच्छता में सुधार के सरकार के प्रयास के तहत ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के प्रत्येक घर को शौचालय मिलेगा। मिशन के ग्रामीण घटक को एसबीएम-जी (ग्रामीण) के रूप में जाना जाता है। पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय इसके कार्यान्वयन की देखरेख करता है। 2016 में सरकार द्वारा दो उप-कार्यक्रम शुरू किए गए-स्वच्छता पखवाड़ा और नमामि गंगे। सरकार ने स्वच्छता शक्ति कार्यक्रम और स्वच्छता कार्य योजना भी शुरू की। सरकार की पहल के कारण भारत आने वाले वर्षों में खुले में शौच से मुक्त देश बनने में सक्षम होगा, जिसका पहले से ही लाभकारी प्रभाव पड़ रहा है। सिक्किम राज्य आधिकारिक तौर पर 2015 के मध्य तक खुले में शौच से मुक्त हो गया था। दूसरा नमामि गंगे का लक्ष्य गंगा नदी को पूरी तरह से शुद्ध करना था। स्वच्छ भारत मिशन के प्रभाव को निर्धारित करने के लिए, सरकार ने 2019 में स्वच्छ सर्वेक्षण सर्वेक्षण शुरू किया। इस अध्ययन के नतीजे, जिसमें 4237 शहरों का सर्वेक्षण किया गया, से पता चला कि इनमें से कई शहरों में सरकार के कार्यक्रम के परिणामस्वरूप सुधार देखा गया है। इस सर्वेक्षण के अनुसार, भारत के शीर्ष 10 सबसे स्वच्छ शहर इंदौर, अंबिकापुर, मैसूर, उज्जैन, नई दिल्ली, अहमदाबाद, नवी मुंबई, त्रिपुटी, राजकोट और देवास हैं।

इंदौर : इंदौर की राज्य सरकार ने घर-घर कचरा संग्रहण सेवाएँ प्रदान करना शुरू किया, जिससे कचरे के निपटान और शहर की सफाई में सहायता मिली। अंबिकापुर, जहां पूरा शहर ''ठोस और तरल संसाधन प्रबंधन मॉडल'' पर बनाया गया है, ने एक ऐसा शहर होने का गौरव प्राप्त किया है जो खुले कचरे से पूरी तरह मुक्त है। इसके अतिरिक्त, ''ठोस और तरल संसाधन प्रबंधन'' अवधारणा नौकरी वृद्धि में योगदान देती है।

मैसूर : आधुनिक तकनीक से सुसज्जित कई कचरा पृथक्करण सुविधाएं स्थापित करने के अलावा, मैसूर शहर स्कूली बच्चों को स्वच्छ वातावरण बनाए रखने की आवश्यकता के बारे में भी शिक्षित कर रहा है।

उज्जैन : उज्जैन शहर के निवासी प्लास्टिक कचरे के बजाय अपने कागज के कचरे का निपटान करना पसंद कर रहे हैं, जिससे वहां उत्पन्न होने वाले प्लास्टिक कचरे

की मात्रा में कमी आ रही है।

नई दिल्ली : नई दिल्ली, जो एनडीएमसी द्वारा शासित है, को भारत के सबसे स्वच्छ शहरों में से एक माना जाता है। इसने सूखे कचरे को उपयोग योग्य सामग्रियों से सफलतापूर्वक अलग कर दिया है।

अहमदाबाद : अहमदाबाद को 100% खुले में शौच मुक्त शहर के रूप में आधिकारिक मान्यता मिल गई है। इसने अपने क्षेत्र में 350 से अधिक सार्वजनिक शौचालय बनाए हैं।

नवी मुंबई : नवी मुंबई ने स्वच्छ भारत के प्रति लोगों के बीच स्वच्छता और संवेदनशीलता के मामले में उल्लेखनीय प्रगति की है।

सबसे स्वच्छ शहरों की सूची में तिरूपति नौवें स्थान पर है। यह स्वच्छता के प्रति जागरूक होने के लिए प्रसिद्ध है।

राजकोट : राजकोट सूखे और गीले कचरे को ठीक से अलग करता है, जिससे यह शीर्ष 10 स्वच्छ शहरों में नौवें स्थान पर पहुंच गया है।

देवास : यहां के युवाओं की मेहनत की बदौलत यह शहर दूसरों से अलग बन गया है।

इस सर्वेक्षण का उद्देश्य सरकार के लिए अन्य शहरों को भी इस उद्देश्य का समर्थन करने के लिए प्रोत्साहित करना था। सरकार के एक हालिया निर्णय के अनुसार, स्वच्छ भारत मिशन (शहरी) 2025-2026 तक जारी रहेगा, जिसमें खुले में शौच मुक्त (ओडीएफ) परिणाम प्राप्त करने, सभी शहरों में वैज्ञानिक ठोस अपशिष्ट प्रसंस्करण प्राप्त करने और शहरों में अपशिष्ट जल का प्रबंधन करने पर ध्यान दिया जाएगा।

विकसित और स्वच्छ भारत बनाने में महिलाओं का योगदान

स्वच्छ भारत अभियान में महिलाओं की यह सराहनीय भूमिका है। महिलाएं घर के अधिकांश कामकाज संभालते हुए आसानी से इस बात पर नजर रखती हैं कि घर में प्लास्टिक का विकल्प चुनना देश को स्वच्छ रखने के लिए कितना जरूरी है। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के कारण, झारखंड, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों ने स्वच्छ भारत अभियान के तहत एक उल्लेखनीय बदलाव का प्रदर्शन किया है। महिला निगरानी समितियों द्वारा ग्रामीणों से खुले में पेशाब न करने का आग्रह किया जाता है। महिला समाख्या संगठन, महिला स्वयं सहायता समूह और अन्य संगठन एसबीएम-जी में शामिल हो गए हैं। कई क्षेत्रों में, पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला सदस्य सक्रिय हैं। जब भी और जहां भी महिलाओं ने इस नेतृत्व की स्थिति संभाली है, उन्होंने अपने समुदायों और परिवारों के लिए उल्लेखनीय परिणाम दिए हैं। स्वच्छता कार्यक्रम उन वातावरणों में अधिक विस्तार लेते हैं जहां महिलाओं की संख्या अधिक होती है। इन कार्यक्रमों के द्वारा विभिन्न भूमिकाओं में महिलाओं को लक्षित किया जाता है। समुदायों में, महिला निगरानी समितियाँ निवासियों को खुले में शौच को छोड़ने की सलाह देती हैं। पुरुषों और महिलाओं दोनों की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त शौचालयों का निर्माण महिला राजमिस्त्रियों द्वारा किया जाता है।

प्रधानमंत्री मोदी ने स्वच्छता की इस प्रक्रिया में भाग लेकर अन्य राजनीतिक हस्तियों को भी प्रेरित किया है। वे अब स्वेच्छा से सफाई अभियान में भाग लेते हैं। लोगों को स्वच्छता सुविधाएं देकर और स्वच्छता के बारे में उनके व्यवहार में बदलाव करके गांधी के ही स्वप्न को पूरा करना ही विकसित भारत की दिशा में एक सकारात्मक कदम है। भारत को विकसित व स्वच्छ बनाने से पर्यटन में वृद्धि, जनसंख्या स्वास्थ्य, व्यक्तिगत उत्पादकता में वृद्धि और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए आकर्षण शामिल हैं।

स्वच्छता की इच्छा का स्वेच्छा से निर्माण

स्वच्छता हमें मनुष्य होने के परम कर्तव्यों के निर्वहन के लिए बेहद संजीदगी से प्रेरित करती है, ताकि हम अपने हितों के खिलाफ न जाकर बेहतर इंसान बन सकें और आत्मसंतुष्टि के उच्च स्तर को पा सकें। विन्सेंट वांन गोग की जीवनी 'लस्ट फॉर लाइफ' मे एक बहुत ही सुंदर बात लिखी है, मनुष्य उदारता और ईमानदारी से अपने काम करके उन शुद्धताओं पर विजय पा सकता है जिनमें अधिकांश लोगों का जीवन घिसटता है। हमारी चेतना और जागरूकता ही स्वच्छता की इच्छा का निर्माण करेगी। पहले स्वच्छता हमारी चिंताओं मे शामिल होगी फिर चर्चा का विषय बनकर हमारे कर्म में आ जाएगी। इसके लिए हमें सर्वप्रथम प्रकृति से सीखना होगा। वस्तुतः सफाई प्रकृति का एक मौलिक गुण है। प्रकृति बड़े ही अनोखे तरीकों से खुद को निखार कर गन्दगी नष्ट कर देती है। जब सफाई प्रकृति का इस प्रकार मौलिक गुण है, तो हमारे लिए उसका सही-सही परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। प्रकृति के साथ जुड़कर जब हम स्वच्छता की आदत के साथ आत्मसात कर लेते हैं तो कर्ता भाव नहीं बचता बल्कि वह स्वभाव का हिस्सा हो जाता है। दुनिया के कई देशों में स्वच्छता राष्ट्रीय संस्कृति है वे सुन्दरता के अद्वितीय नमूने पेश करते हैं। सिंगापुर इन्हीं में से एक है जहाँ गंदगी करने या कहीं भी थूकने पर कड़े जुर्माना वसूला जाता है। धीरे-धीरे वहां के नागरिकों के दिमाग से गंदगी करने के विचार ही लुप्त हो गए। जापान के विद्यालयों में विद्यार्थियों को आधा घंटा सफाई के काम में लगाया जाता है। यूरोप के देशों में पालतू जानवर के साथ एक कैरी बैग लेकर जाना जरूरी है। स्वीडेन, यूके, स्वीटजरलैंड, कनाडा, ऑस्ट्रिया, फ्रांस भी दुनिया के साफ देशो में गिने जाते हैं। जबकि मेंटल हेल्थ सैनिटेशन इंडेक्स की रिपोर्ट में कई गन्दे शहरों

की भी सूची है इनमें नाइजीरिया, मोस्को, एथोपिया, टोगो, कांगो, तंजानिया है।

सामाजिक जिंदगी के मूल उद्योग

साधारणतः गन्दगी दूर करने का अर्थ कूड़े-करकट को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटा देना समझा जाता है। सचमुच इसे सफाई नहीं कहते। इसे तो गन्दगी का स्थानान्तरण ही कहा जा सकता है। जहाँ-तहाँ कागज के टुकड़े पड़े रहना, खर-पतवार का यत्र-तत्र बिखरे रहना, कमरे के सामान का धूल से भरा रहना और लकड़ी, ईंट, खपरैल आदि के टुकड़े जहाँ-तहाँ बिखरे रहना इत्यादि बातों को लोग गन्दगी समझते हैं और उसी को कूड़ा कहते हैं। तो क्या कागज के टुकड़े, खर-पतवार, लकड़ी के टुकड़े, धूल, मिट्टी आदि जहाँ कहीं भी हों, उन्हें कूड़ा समझकर कहीं-न-कहीं फेंक देना चाहिए? इस तरह कूड़ों को स्थानान्तरित करने से ही सफाई नहीं होती। जिसे कूड़ा-करकट समझकर फेंक दिया जाता है, उसकी यदि व्यवस्था वैज्ञानिक ढंग से की जाये, तो आसानी से उसे उत्पादन का जरिया बना सकते हैं। हमने देखा है कि खिलौना बनानेवाले, कागज और कपड़े के चिथड़ों को सँभालकर सुरक्षित रखते हैं, ईंधन बेचनेवाले भी लकड़ी के टुकड़े संचित करते हैं और बेचकर पैसे पैदा करते हैं। रही बात धूल की, धूल से तो सारी पृथ्वी ही बनी है। इससे भागकर हम कहाँ जायँगे? इन बातों को मतलब यह नहीं है कि ये चीजें हटायी न जायें और वैसे ही जहाँ की तहाँ पड़ी रहें। सच बात तो यह है कि जो कागज का टुकड़ा रास्ते में आँखों को खटकता है और गन्दगी का कारण बनता है, वही टुकड़ा यदि अपने उपयुक्त स्थान पर पहुँच जाये, तो सम्पत्ति का साधन बन सकता है। सफाई का अर्थ है- स्थानच्युत वस्तुओं को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करना, अर्थात् कूड़े-करकट को रिसाइकिल करके सम्पत्ति में परिणत करना। स्वच्छता हमारी दिनचर्या मे शामिल होकर जीवनशैली बन जाये।

निष्कर्ष

हालाँकि प्रत्येक प्राणी को सफाई का बोध तो रहता है, इसीलिए वह 'साफ-सुथरे' शब्द का इस्तेमाल जिंदगी के हर पहलू में किया करता है। प्रत्येक मनुष्य, फिर चाहे किसी पेशे का हो, किसी-न-किसी रूप में अपने घर-द्वार की सफाई किया करता है। केवल खुश रहना ही हमारा उद्देश्य नहीं बल्कि श्रेष्ठता का सृजन करना हमारी नियति है और सृजन तो तभी होगा जब हम स्वस्थ होंगे और स्वच्छता ही स्वस्थ होने का पैमाना है। यानी स्वच्छता के साथ ही हमारे विकास व सृजन के सुअवसर जुड़े हैं। शुद्धता की इच्छा सृजन और अशुद्धता की हमें विनाश की और धकेल देती है। तो हम अपनी शुद्ध इच्छा के साथ मिलकर काम करें और दूसरों के लिए भी प्रेरणा बनें। रन फॉर यूनिटी, रन फॉर नेशन जैसे प्रोग्राम में हिस्सा लेना भी देशभक्ति की भावना जगाता है। कितने ही एनजीओ-शांति, भूमि, स्वान, युवा सेवाएं, सेव चिल्ड्रन, जल स्वच्छता और स्वच्छता, मानव कल्याण स्वच्छता अभियान मे जी-जान से लगे हैं। ऐसे में हमारा ये दायित्व है कि जीवन मरण से जुड़े इन प्रश्नों के हल में स्वेच्छा से सहयोग दें। पीने का साफ पानी, पक्के शौचालय, कचरा निपटने की ठोस व्यवस्था, हर गली मोहल्ले, शहरों व गांवों की सफाई उनके इस मिशन अभियान का कार्यक्रम है। देशभक्ति से प्रेरित इस अभियान में आपका व हमारा सहयोग महत्वपूर्ण है। सिक्किम, केरल, मिजोरम, हिमाचल, नागालैंड भारत के साफ-सुथरे राज्य हैं और वैसा ही सुंदर व साफ सम्पूर्ण भारत हो सकता है।

संदर्भ

1. http://sulabhenivs.nic.in
2. http://sbm.gov.in
3. https://www.hindustantimes.com
4. http://timesnownews.com
5. गांधी की आत्मकथा से 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग'.
6. http://indianexpress.com
7. http://infinitylearn.com
8. http://jalshakti-ddws.gov.in

डॉ. जागीर कौर
एसोसिएट प्रोफेसर
एस.जी.टी.बी. खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. रूबल रानी शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वीमेन
दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत में पसमांदा जो पीछे छुट गये : एक समाजशास्त्रीय पुनर्विचार

–डॉ. हयात अहमद
–आशीष कुमार चौरसिया

सार संक्षेप : भारतीय मुस्लिम समुदाय की आलोचनात्मक अनुसंधान से यह बात साबित होती है की सैद्धान्तिक इस्लाम और उसके व्यावहारिक अभिव्यक्ति में एक भारी अंतर है। जाति-प्रथा जो की भारतीय उपमहाद्वीप की विशेषता है उसने मुस्लिम समाज को भी प्रभावित किया है। इसके निशान शादी ब्याह, स्वच्छ जीविका वालों का सामाजिक अधिश्रेणी में ऊंचा स्थान, विभिन्य जातियों का जन्म निर्धारित व्यवसाय / कर्म के स्वरूप में मिलते हैं। यह सच्चाई सजातीय मुस्लिम समुदाय की अवधारणा के विपरीत स्थिति को उजागर करती है। मगर यह अचंभित करने वाली बात है कि सिवाय कुछ शैक्षणिक अभ्यास के 1980 तक किसी भी राजनीतिक पार्टी ने इसे अपना मुद्दा नहीं बनाया। लिहाजा, यह लेख इस गंभीर मुद्दे पर राजनीतिक उदासीनता के सूक्ष्म कारकों को जानने का प्रयास है। दूसरे शब्दों में, यह लेख जातीय पितृसत्ता के दावे और अस्मिता के प्रतिकार पर चर्चा करता है। इसी सन्दर्भ में, यह लेख पारंपरिक अभिजात वर्ग और अजलाफ में नई अभिजात वर्ग के बीच सामाजिक एवं राजनीतिक वर्चस्व के लिए अंतरसमुदाय परिवाद पर भी चर्चा करता है।

मुख्य शब्द : पसमांदा, जातीय पितृसत्ता, प्रतिकार, अस्मिता, राजनीतिक वर्चस्व

प्रस्तावना : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और हर समाज में सैद्धांतिक और व्यवहारिक फर्क हमेशा से रहा है और यह एक परम्परा की तरह चलता ही आ रहा है। प्रत्येक मनुष्य के सिद्धांत और व्यवहार में अन्तर होता ही है। यहां मुस्लिम समाज में सिद्धांत और व्यवहार में फर्क देखें तो बहुत कम लोगों को इसका अन्तर मालूम चलेगा। हिन्दू धर्म में जिस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत शूद्र समाज आता है ठीक वैसे ही स्थिति मुस्लिम समाज में भी मौजूद है। जिसे पसमांदा के नाम से जाना जाता है। अगर इस्लाम में जाति के सिद्धांत पर रौशनी डालें, तो मालूम होगा कि यहां कोई वर्ण व्यवस्था का सिद्धांत नहीं बनाया गया है। जिससे कि जाति के अंतर को मालूम किया जा सके या जिससे मुसलमानों में ऊंच-नीच का कोई अंतर बताया जा सके। तो जाहिर है सैद्धांतिक रूप में यहां किसी खास जाति का अस्तित्व नहीं है तो विचार करने की जरूरत है कि यह भेद कहां से आया। यहां बताते चलें कि व्यवहारिक रूप में मुसलमानों में तीन वर्ग मौजूद हैं। जिसमें सबसे श्रेष्ठ 'अशराफ' वर्ग है। यह ऐसा वर्ग है जो खुद को बाहरी नस्ल का मानता है। जिसमें तुर्की, सैयद, शेख, मुगल, मिर्जा आदि जातियां शामिल हैं। यह जातियां शासक वर्ग में आती हैं । यह शुरू से ही सामाजिक और आर्थिक रूप से मजबूत रही हैं और मुस्लिम समाज पर इनका ही वर्चस्व रहा है। क्योंकि शुरु से ही इनके पास शक्ति थी इसलिए यह दूसरे वर्ग तथा दूसरी जातियों को अपने से छोटा ही समझती आई है।[1] यह मुसलमानों में सबसे शिक्षित रहें हैं और बाकियों के मुकाबले आर्थिक रूप से भी सम्पन्न हैं।[2]

दूसरा वर्ग अजलाफ है। इस वर्ग में अधिकतर शिल्पकार, मेहनतकश जातियां आती हैं जो अन्य पिछड़े वर्ग में शामिल हैं। इस वर्ग में जुलाहा, मोची, धुनिया, ढपाली, तेली आदि आते हैं। यह जातियां अपने हुनर से ही अपने परिवार का पालन पोषण करती हैं। इनकी आर्थिक दशा कुछ खास नहीं है। यह किसी तरह अपना जीवनयापन करते हैं। आधुनिक दौर में इनके कौशल की कोई कीमत नहीं। जिस कारण इन्हें हर रोज ही रोजी के लिये मशक्कत करनी पड़ती हैं।[3]

तीसरी श्रेणी 'अरजाल' की है जिसमें अधिकतर सफाई कार्य करने वाले वर्ग को रखा गया है। यह तीनों वर्गों में सबसे निम्न है और इनकी सामाजिक हालत तो बहुत ही दयनीय है। यह हिंदू शूद्र जातियों के समानांतर ही माने जाते हैं। इनकी दशा बिल्कुल वैसे ही है जैसे हिंदू दलितों की थी। परंतु समय ने इन पर कोई रहम नहीं दिखाया और ना ही

इनके मुसलमान भाईयों ने। इस वर्ग में भक्को, नट, धोबी, हलालखोर, गोरकन आदि जातियां शामिल हैं। ऊपर के दोनों वर्ग ही पसमांदा समाज हैं। जो कि मुसलमानों में भेद के अन्तर को दिखाते हैं।[4]

जाति आधारित भेदभाव एवं सैद्धांतिक दृष्टिकोण

आम तौर पर यह माना जाता है कि मुसलमान समाज समता (मसावात) के सिद्धांत पर आधारित है। उसमें ऊंच नीच का विचार नहीं पाया जाता है। यही वजह है कि सभी मुसलमान तथा उनके धर्माधिकारी (यानी मौलवी और आलिम) यह कहते हैं कि सभी मुसलमान समान हैं। उनमें किसी प्रकार का सामाजिक और आर्थिक स्तरीकरण नहीं है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि मसावात अथवा समता इस्लाम धर्म का मौलिक सिद्धांत है। लेकिन यह कथन भी पूरी तरह सही नहीं है कि इस्लाम सैद्धांतिक स्तर पर किसी प्रकार के स्तरीकरण को स्वीकृति नहीं देता आर्थिक दृष्टि से विकसित कोई भी समाज आर्थिक और सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया से न बचे पाता है और न ही बचा है।[5]

जैसा कि थर्स्टन वेबलेन ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'थ्योरी आफ दि लेजर क्लास' में दिखाया है कि आर्थिक और सामाजिक रूप से विकसित हर समाज में समय के साथ एक ऐसा संपन्न वर्ग जन्म लेता है जो न केवल संपत्ति का उपभोग करता है बल्कि अपनी दैनिक जीवन शैली में धन के आडंबरपूर्ण दिखावे को भी प्रतिबिंबित करता है। समाज के दूसरे सभी वर्ग प्रायः ऐसे संपन्न वर्ग को माडल मानकर अपना व्यवहार उसी की जीवन शैली पर ढालने की कोशिश करते हैं। इसी आर्थिक और सामाजिक वास्तविकता से सामाजिक स्तरीकरण जन्म लेता है और अलग-अलग सामाजिक वर्ग बनते हैं।[6]

समाजशास्त्री पित्रिम ए. सोरोकिन ने भी अपनी पुस्तक 'सोशल एंड कल्चरल मोबिलिटी' में लिखा कि कोई भी संगठित समाज हमेशा स्तरीकृत सामाजिक निकाय होता है। कोई भी स्थायी सामाजिक समूह न है न पहले था जो एकदम 'समतल' हो तथा जिसमें सदस्य समान, हो। गैर स्तरीकृत समाज एक मिथक है जिसमें सभी सदस्य वास्तव में बराबर हों। मानव समाज के इतिहास में ऐसा समाज कभी बन ही नहीं सका है। संभव है कि यह वक्तव्य विरोधाभासी लगे फिर भी यह सही है। जहां तक किसी कम या अधिक स्थायी और संगठित सामाजिक समूह का संबंध है स्तरीकरण के रूप और अनुपात अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन इसका सारतत्व स्थायी है।[7] चूंकि इस्लाम धर्म एक ऐसे समाज में विकसित हुआ जिसका आधार समूह थे और सभी समूहों में व्यापक आर्थिक भिन्नताएं विद्यमान थीं इसलिए यह समझना बेबुनियाद होगा कि उसमें किसी प्रकार का स्तरीकरण पहले मौजूद नहीं था। जैसा कि डब्ल्यू.रॉबर्ट्स स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'किनशिप एंड मैरिज इन अर्ली अरेबिया' में रेखांकित किया है कि जिस समय मोहम्मद ने अपने पैगंबरी मिशन (उद्देश्य) की घोषणा की और इस प्रकार उस बड़े आंदोलन को पहली महान प्ररेणा दी जिसने कुछ सालों में ही पूरे अरब समाज का चेहरा ही बदल डाला। यह समूह किसी राजनीतिक संगठन द्वारा आपस में नहीं जुड़े हुए थे बल्कि वह एक पारंपरिक एकता की भावना से आपस में जुड़े हुए थे जिसे वे रक्त आधारित संबंध मानते थे।[8]

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समूहों की आपसी भिन्नताओं और अलग-अलग समूहों में आर्थिक और व्यावसायिक अंतरों से निश्चय ही किसी न किसी प्रकार का स्तरीकरण विकसित हुआ होगा जिससे इस्लाम अपने को बचा नहीं सकता था। यह दूसरी बात है कि चूंकि सभी धर्म सिद्धांतों पर आधारित हैं यह कल्पना की जा सकती है कि इस्लाम धर्म उस हद तक स्तरीकरण को मान्यता न प्रदान की हो जिस हद तक वह समाज पर प्रभावी था। यदि संजीदगी से इस्लाम धर्म के स्रोतों खासतौर पर कुरआन शरीफ का अध्ययन किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि असमानता का विचार इस्लाम के लिए मान्य न भी हो तो सामाजिक स्तरीकरण का विचार उसके लिए न तो अमानवीय है और न ही वह उसको नकारता है। यही कारण है कि मुसलमानों का मुख्य धर्म ग्रंथ कुरआन शरीफ बार-बार समता पर जोर देता है और सभी प्रकार के सामाजिक शोषण की कठोरतापूर्वक निंदा करता है।[9]

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से न केवल भारत में बल्कि विश्व के किसी भी भाग के मुसलमानों के व्यावहारिक जीवन को समझने के लिए यह जानना आवश्यक नहीं है कि उनका धर्म या कुरआन शरीफ क्या कहता है। व्यावहारिक जीवन के समाजशास्त्रीय अध्ययन से ही निकलकर यह आना चाहिए कि किस सीमा तक या किस प्रकार धार्मिक मूल्य या धर्मग्रंथ जीवन को प्रभावित करते हैं। भारत के संदर्भ में यह धारणा रखते हैं कि जातिप्रथा हिंदू समाज का मुख्य स्तंभ है और भारत का मुसलमान इस्लाम के प्रभाव के कारण इसके दुष्प्रभाव से मुक्त रहा है। लेकिन सामाजिक यथार्थ इससे भिन्न है। सच तो यह है कि इस्लाम धर्म में मसावात के सिद्धांत पर जोर दिए जाने के बावजूद भारत में और दूसरे धर्मों के अनुयायियों की तरह मुसलमान समुदाय में कम से कम व्यावहारिक स्तर पर जातिप्रथा के कई तत्व और ऊंच-नीच का विचार घर किए हुए हैं। सिर्फ फर्क इतना है कि उसका स्वरूप उतना संकीर्ण और तीव्र नहीं है जितना भारतीय हिंदू समाज में है।[10]

फ्रांसिस रॉबिन्सन का तर्क है कि मुसलमान समुदायों में इस्लामीकरण की एक प्रक्रिया रही है जिसके कारण अगर समाज में ऐसे तत्व जिंदा हों जो धर्म-मूल्य के

विपरीत हों तो वे खत्म हो जाते हैं और धीरे-धीरे सभी मुसलमान समाजों का ढांचा और विश्व दृष्टि एक जैसी हो जाती है।[11] मुख्य रूप से देखा जाये तो जातिप्रथा को देखने के दो तरीके हो सकते हैं। एक सांस्कृतिक (कल्चरल) और दूसरा संरचनागत (स्टक्चरल)। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से तभी किसी सामाजिक श्रेणीकरण को जातिप्रथा का नाम दिया जा सकता है जब वे सांस्कृतिक तत्व उसमें मौजूद हों जो हिंदू जातिप्रथा में पाए जाते हैं। दूसरा दृष्टिकोण यह मानकर चलता है कि यद्यपि सांस्कृतिक तत्व उसमें न भी पाए जाते हों और उसका आधार जन्म हो तो उसे जातिप्रथा कहकर संबोधित किया जा सकता है। सामाजिक संरचना (ढांचा) के स्तर पर भारतीय मुसलमान समुदाय के स्तरीकरण में जातिप्रथा के बहुत से तत्व मौजूद हैं। सभी सांस्कृतिक तत्व या तो धर्मविरोधी होने के कारण नहीं पाए जाते हैं या इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण फीके पड़ गए हैं। इसलिए भारतीय मुसलमान समाज के अंदर स्तरीकरण जातिप्रथा का एक रूप है। भारत के मुसलमानों में जाति व्यवस्था इस्लामीकरण की प्रक्रिया के बावजूद जाति के तत्व आज भी मौजूद है और इस्लामीकरण की प्रक्रिया उन्हें मिटाने में असमर्थ रही है। यह एक सामाजिक वास्तविकता है जिससे इनकार करना असंभव ही नहीं गलत भी होगा।

जातीय पितृसत्ता के दावे और अस्मिता का प्रतिकार

औपनिवेशिक भारत में सीमित आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने निचले सामाजिक समूहों के लिए कुछ नए अवसर सृजित किए। आधुनिक शिक्षा और रोजगार उर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता के रास्ते बन गए। जुलाहा जैसे मुस्लिम समुदाय भी उसी मार्ग का अनुसरण करने लगे जिसे समाजशास्त्रियों ने 'अशराफीकरण' यानी अशराफों (कुलीनों) से जुड़े रीति-रिवाजों का अनुकरण कहा है। इसके साथ ही जुलाहा समुदाय का पुनर्गठन धार्मिक मानकों के आधार पर एकीकृत मुस्लिम समुदाय की पहचान को मजबूत करने के साधन के रूप में भी होने लगा। दिलचस्प यह है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में अंसारी मुसलमान इस क्षेत्र के अन्य मुसलमानों की तुलना में आर्थिक रूप से अधिक समृद्ध समूह के रूप में उभरे। सामान्य तौर पर अंसारी, कुरैशी और बागवान जैसे श्रमिक समूहों ने अपने साथ के निचली जाति के मुस्लिम भाइयों की तुलना में आर्थिक रूप से अधिक प्रगति की। सामाजिक गतिशीलता की यह प्रक्रिया जिसे 'अशराफीकरण' या 'इस्लामीकरण' कहा जाता है, को हिन्दुओं के बीच प्रचलित 'संस्कृतीकरण' की समानान्तर अवधारणा के रूप में समझा गया है और इसके दीर्घकालिक निहितार्थ थे।[12]

संस्कृतीकरण और इस्लामीकरण के माध्यम से इन निचले सामाजिक समूहों द्वारा ऊर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता की इस प्रक्रिया में मौजूदा पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था में एक निश्चित उच्च स्थिति और आत्मसम्मान की माँग के लिए यह आवश्यक था कि यह समूह स्वयं को अपने धर्म के नैतिक और शुद्ध तत्त्वों के प्रति समर्पित प्रदर्शित करें मुस्लिम जुलाहा, बुनकरों द्वारा अपने अंसारी होने के दावे के प्रति मुखर होना और अपनी बोली जाने वाली भाषा के रूप में अवधी या भोजपुरी के बजाय उर्दू पर जोर देना खुद को अपने समकक्ष समुदायों से अलग करने की एक जुगत भी थी। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों में ही पूर्वी संयुक्त प्रान्त के बुनाई केन्द्रों में बरेलवी और देवबंदी जमात जैसे इस्लामी सुधार आन्दोलनों ने पुनरुत्थानवादी लक्ष्यों के साथ भारतीय मुस्लिम समाज में अपने धार्मिक-राजनीतिक और सामाजिक स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करना शुरू कर दिया था। मुस्लिम जुलाहा-बुनकरों ने इस प्रयास में विशेष रूप से आजमगढ़ जिले में अपनी अस्मिता और नामकरण के अरबीकरण पर भी जोर दिया। सामाजिक ऊर्ध्वगामिता का यह प्रयास पश्चिम एशियाई मूल का दावा करने वाले मुस्लिम आभिजात्य वर्गों द्वारा निर्विरोध नहीं रहा और इसकी परिणति निचली जाति और उच्च जाति के मुसलमानों के बीच सामाजिक तनाव और विवाद के रूप में हुई। उदाहरण के लिए जुलाहा अंसारी समुदाय ने समानता के अपने दावे के प्रतीक के रूप में मोमिन शब्द को चुना था लेकिन जुलाहा अंसारियों के ऐसे दावों को नकारने और उनका मजाक उड़ाने के लिए अन्य मुस्लिम समुदायों द्वारा इस नामकरण पर हमला किया गया। मुस्लिम उलेमा और विद्वानों ने विशेष रूप से 'जाति' पदानुक्रम को वैध सिद्ध करने का प्रयास किया।[13]

मौलवी अहमद रजा खान बरेलवी ने बीसवीं सदी की शुरुआत में मोमिनों पर एक फतवा ही जारी कर दिया : प्रत्येक मुसलमान एक मोमिन है और हिन्दुस्तान के कुछ स्थानों पर नूरवाफ या जुलाहा समुदाय को आम बोलचाल में मोमिन कहा जाता है क्योंकि वे मासूम और विनम्र होते हैं। वे अन्य मुसलमानों के लिए हानिरहित हैं। हदीस कहते हैं कि मोमिन वह व्यक्ति है जिसके पड़ोसी उसके शोषण से बच जाते हैं। उन्हें ताने देने के लिए इस शब्द का प्रयोग गलत है। दूसरी बात यह कि किसी मुसलमान को अपने व्यवसाय के कारण नीच नहीं समझना चाहिए और अपमान के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[14] मुस्तफा रजा ख़ान ने यह भी स्वीकार किया कि जो अच्छाई का प्रतीक है वह शरीफ है और जो बुरा व्यवहार करता है वह रजील है। मौलवी अहमद रजा खघन बरेलवी (1856-1921) और मौलवी अशरफ अली थानवी (1863-1943) दोनों ने जन्म के आधार पर जाति श्रेष्ठता की धारणा का समर्थन किया।[15]

इसी प्रकार ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के पहले अध्यक्ष और देवबंद मदरसे के कुलपति मौलवी कारी

मुहम्मद तैयब सिद्दीकी भी जातिवाद के समर्थक थे और उन्होंने मुफ्ती उस्मानी द्वारा जाति के मामले पर लिखी किताब के समर्थन में दो किताबें लिखीं : अंसब वा कबाइल का तफजुल और नसाब और इस्लाम। देवबंद मदरसे की स्थापना के कई वर्षों बाद भी गैर-अशराफ छात्रों को आम तौर पर प्रवेश नहीं दिया जाता था लेकिन कुछ मामलों में निचली जाति के छात्रों ने अपनी जाति पहचान छुपाकर प्रवेश लिया लेकिन जब भी उनकी जाति की पहचान उजागर होती थी उन्हें अक्सर अपमानित किया जाता था और मदरसा छोड़ने के लिए मजबूर किया जाता था।[16]

शब्बीर अहमद हकीम ने अपनी पुस्तक हियाकत की हिकायत में उल्लेख किया है कि एक बार इस तरह के व्यवहार के कारण मालेगाँव के एक तथाकथित निचली जाति के जुलाहा छात्र के नेतृत्व में देवबंद मदरसे में विरोध मार्च हुआ था। इसी प्रकार अशराफ से विवाह पर प्रतिबंध का खंडन करने के लिए प्रसिद्ध मुस्लिम बुद्धिजीवी मौलाना शिबली नोमानी का मामला उद्धृत किया गया था। नोमानी की माँ जुलाहा परिवार से थीं। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में मौलवी अब्दुस सलाम मुबारकपुरी द्वारा सामाजिक पदानुक्रम के ख़िलाफ लड़ने के लिए जुलाहा अंसारियों की ओर से सबसे प्रमुख पहलों में से एक की शुरुआत की गई। अब्दुस सलाम आजमगढ़ जिले के मुबारकपुर के रहने वाले थे और खुदा बख्श ओरिएंटल लाइब्रेरी पटना में सहायक लाइब्रेरियन थे। उन्होंने जुलाहा बुनकरों के समुदाय की सामाजिक ऐतिहासिक स्थिति के बारे में तारिख-उल-मिनवाल-वल-अहले ही नामक एक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक ने शेख नूरबफान से अपील की कि वे खुद को शेख या शेख अंसारी या मोमिन अंसारी के रूप में सम्बोधित करें और लिखें। इस ऐतिहासिक पुस्तक को पिछड़े वर्गों विशेष रूप से जुलाहा अंसारी समुदाय के बीच एक आँख खोलने वाला दस्तावेज माना गया था। यही कारण है जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि तमाम प्रयासों के बावजूद राजनीति में भी अखिल भारतीय मुस्लिम चेतना मात्र एक मिथक ही रही है।[17]

राजनीतिक वर्चस्व

आजादी के बाद भी मुस्लिम नेताओं के सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में बदलाव नहीं आये। मुस्लिम राजनीति में शुरुआत से ही उच्च वर्ग और जाति का दबदबा रहा है। थिओडोर राइट के एक सर्वे के मुताबिक 58 राज्यसभा सदस्यों में केवल 9 सदस्य ऐसे थे जिन्होंने अपने निचले वर्ग से आया हुआ बताया। ये नेतागण अपने पार्टी की पैरोकारी में ही लगे रहे जिससे इनका स्वार्थ सधता रहे और पार्टी का भी और बदले में ऐसे मुद्दों को न छेड़ा जाये जो आधिकारिक मिथक को तोड़ता प्रतीत हो। इसलिए जाति प्रथा कभी भी मुद्दा न बन सका क्योंकि इसके उठने से सरकार को पसमांदा मुसलमानों के लिए अलग व्यवस्था करनी पड़ती। इन मुद्दों को यह कहकर टाल दिया जाता की इस्लाम में जात-पात नहीं है। अभिजात मुस्लिम वर्ग के लिए भी यह फायदा का सौदा था। पूरा समुदाय विकास के अभाव वाले स्थिति में मिलने वाले मामूली संसाधन का बँटवारा नहीं करना पड़ेगा। इनके लिए पूरे समाज एक ही तरह की समस्याओं से रूबरू है। उदाहरण के लिए ऑल इंडिया मुस्लिम मजलिस-ए-मुशावरत अपने उद्देश्य में जिक्र करते हैं कि यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सभी मुसलमान इस्लाम के उच्च आदर्शों पर चले और खुद को देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति से अलग-थलग न रखें।[18] यह बड़ा ही नेक ख्याल है। मगर यह बड़े ही दुःख की बात है कि जो संगठन इस्लाम के आदर्शों की बात करता है वह कभी भी मुसलमानों के अंदर जाति-प्रथा को चुनौती नहीं देता है। आखिर क्यों? जो यह नहीं कहते थकते हैं कि मुस्लिम समुदाय की पसमांदगी देश के खराब स्वास्थ्य की निशानी है उन्हें यह नहीं समझ में आया कि जाति प्रथा समुदाय के बुरे स्वास्थ्य का प्रतीक है। अपने आप में कांग्रेस उच्च वर्ग और जाति के नियंत्रण में थी जो चुनाव के दौरान सांप्रदायिक, जातीय, और क्षेत्रीय नेटवर्क को सँभालने में तथा गुटों और ताकतवर व्यक्ति को संरक्षण के प्रसार निपुण हो चुके थे। बचे हुए सम्पत्तिवानों को अपने में शामिल करके कांग्रेस ने एक धर्मनिरपेक्ष पार्टी की भ्रामिकता को तैयार किया। नेहरू युग के दौरान ऐसे मुस्लिम नेताओं ने समुदाय के नेता के रूप में नहीं बल्कि नए राजनीतिक अभिजात वर्ग के सदस्यों के रूप में खुद के लिए एक नई भूमिका तय किया। पृथक निर्वाचन के खात्मे के बाद इन नेताओं को और स्वयं घोषित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को अल्पसंख्यकों को नजरअंदाज करना आसान हो गया। सत्ता भोग करते हुए वे यह भूल गए की उस वक्त भी सांप्रदायिक विचार राजनीतिक जीवन को प्रभावित कर रहे थे।[19]

सरकार के द्वारा सह शामिल किये जाने के बाद मुस्लिम रहनुमाओं का समाज के बड़े तबके से विच्छेद हो गया। सांप्रदायिक कहलाने के डर से राजनीतिक अभिजातों ने समाज से जुड़े खास मुद्दों को दरकिनार कर दिया। खासकर पहले तीन आम चुनावों में ऐसे मुसलमानो का नामांकन किया गया या कोई जिम्मेदारी दी गयी जो विनम्र थे और समुदाय के सवालों पर खामोशी अख्तियार करते थे वरना अगले चुनाव में उन्हें कम सुरक्षित सीटों पर भेज दिया जाता था। किसी भी राजनेताओं या पार्टी द्वारा जातिप्रथा या असहज सवाल को नग्न करना एक राजनीतिक सोच थी। एक बार जब परंपरागत ताकतों ने समुदाय की राजनीति को संभाला तब कांग्रेस उन्हें चुनौती देने के

बजाय उनसे समझौता कर लिया। और बदले में इन्हें कुछ सरकारी ओहदें मिल जाते थे। सरकार इन्हीं प्रतिनिधियों के मार्फत यह कहलाती कि इस्लाम में कोई जाति नहीं है। लिहाजा सभी मुसलमान एक है और उनकी समस्या एक है। इसमें इनको हिन्दू कट्टरपंथी का साथ मिलता। नतीजन, महिलाओं का अधिकार, अजलाफ और अरजाल मुसलमानों के अधिकार, विकास, रोजगार इत्यादि सब दबे रह गए।[20]

निष्कर्ष

उपर्युक्त चर्चा हमें उन ऐतिहासिक अस्मिताओं की श्रेणियों की खोज करने के लिए मजबूर करती है जो पारम्परिक समूहों से परे हैं ऐसी श्रेणियाँ स्थानीय समूहों की जरूरतों और कल्पनाओं की उत्पाद थीं और ऊपर से थोपी नहीं गई थीं। मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक इस्लाम में धर्मान्तरण से उनके सामाजिक हाशिये की स्थिति समाप्त नहीं हुई। आर्थिक अभाव के साथ-साथ 'अस्पष्ट' सामाजिक स्थिति ने भी पसमांदा मुसलमानों को उन्नीसवीं सदी में परम्परागत सामाजिक ढाँचे से बाहर जाकर वहाबी, देवबंदी और बरेलवी फिरकों के मुस्लिम सुधार आन्दोलनों में अस्मिता की तलाश करने के लिए मजबूर किया। फिर भी विद्यमान पदानुक्रमों के जटिल चरित्र ने अशराफ द्वारा प्रदत्त पहचान से अलग अंसारीकरण का एक अलग अनुभव सुनिश्चित किया। वस्तुतः स्थानीय संघर्ष ही कथित इस्लामी परम्पराओं के दावों से भिन्न, ऐसे अनुभवों को 'पहचान' की भौतिक रूप से जमी बहुस्तरीय दुनिया में ले जाने वाली एजेंसी साबित हुए। विशिष्ट मुहावरों, नई भौतिक परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया और परिवर्तन के चुने हुए प्रतीकों ने जुलाहों और अन्य निचले समुदायों को अपनी नवअर्जित अस्मिता की रक्षा करने में सक्षम बनाया। अतः इस जमीन पर साहित्यकार की सामाजिक स्मृति और इतिहासकार की दस्तावेजी दृष्टि के मायने एक हो जाते हैं। जो भी हो, मुसलमान के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि वे अधिक रूढ़िवादी हैं इस्लाम और मौलवी जो भी कहते हैं उस पर पूरा भरोसा करते हैं। पसमांदा मुसलमानों को अपने धर्म से परे सोचना होगा तभी कोई समाधान के बारे में सोच सकता है और भारत में अन्य दलित समुदायों के साथ एकता नामक कुछ संभव है। पसमांदा मुसलमानों को भी अन्य धार्मिक समूहों या समुदायों की तरह स्वतंत्र आंदोलन शुरू करना चाहिए। अगर वे स्वतंत्र सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक आंदोलन शुरू नहीं करते हैं, तो मुझे नहीं लगता कि वे उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे जो वे अब तक सोच रहे हैं। अंत में, यह कहा जा सकता है कि यदि हिंदू, सिक्ख और बौद्ध को जाति और धर्म के आधार पर आरक्षण दिया जा रहा है, तो पसमांदा मुसलमानों को क्यों नहीं। वास्तव में पसमांदा मुसलमान समान व्यवहार और आरक्षण के पात्र हैं। समस्या का लोकतांत्रिक और कानूनी समाधान होना चाहिए। इन सभी कमजोर समूहों को आरक्षण के ढांचे में शामिल किया जाना चाहिए ताकि वे भी गरिमा के जीवन के रूप में रह सकें।

संदर्भ

1. इमत्याज अहमद (1966) भारत में मुस्लिम सामाजिक संरचना में अशरफ-अजलफ द्विभाजन, आईईएसएचआर जर्नल, वाल्यूम 56, इश्यु 89
2. इमत्याज अहमद (1971) मुसलमानों के बीच सामाजिक स्तरीकरण, द इकोनॉमिक पॉलिटिकल वीकली जर्नल, वाल्यूम, 73, इश्यु 13
3. अनवर ए. (2001) मासावत की जंग पास मंजर बिहार का पसमांदा मुसलमान (हिंदी में), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. इमत्याज अहमद (2003) सफदर इमाम कादरी और संजय कुमार द्वारा संपादित पुस्तक में मुस्लिम समुदाय की लोकतांत्रिक समस्या, भारतीय लोकतंत्र में दलित मुसलमानों का हाशियाकरण, देशकल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. इमत्याज अहमद (2003) भारत के मुसलमानों में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण (अनुवादक नरेश, नदीम), शिल्पी ग्रन्थ प्रकाशन, नई दिल्ली
6. थर्स्टन वेबलेन (1899) द थ्योरी आफ दि लेजर क्लास : एन इकॉनोमिक स्टडी ऑफ इंस्टिट्यूसन, डोवेर पब्लिकेशन, नई दिल्ली
7. पित्रिमए. सोरोकिन (1959) सोशल एंड कल्चरल मोबिलिटी, फ्री प्रेस पब्लिकेशन, नई दिल्ली
8. डब्ल्यू. रॉबर्ट्स स्मिथ (2006) किनशिप एंड मैरिज इन अर्ली अरेबिया, एडम एंड चार्ल्स ब्लैक पब्लिकेशन, ओस्मानिया यूनिवर्सिटी
9. अली अनवर (2001) मसावात की जंग : बिहार के पसमांदा मुसलमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
10. योगेन्द्र सिकंद (2003) द दलित मुस्लिम एंड द आल इंडिया बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा, इंडिया कमेटी ऑफ नई दिल्ली
11. सतीश देशपांडे एंड गीतिका बापना (2008) दलित इन मुस्लिम एंड क्रिश्चन कम्युनिटीज एस्टेटस रिपोर्ट ओंकर्नेंट सोशल साइंटिफिक नॉलेज, नेशनल कमिसन फॉर माइनॉरिटीज, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
12. आर्थर एफ. ब्यूहलर, (2012) ट्रेंड्स ऑफ अशरफाइजेशन इन इंडिया, काजुओ मोरिमोटो (सम्पादक) सैयद्स एंड शरीफ्स इन मुस्लिम सोसाइटीज : द लिविंग लिंक्स टू द पैगंबर, लंदन
13. अशफाक हुसैन अंसारी (2001), मुस्लिम आरक्षण का सच (मुस्लिम आरक्षण के पीछे का सच), गोरखपुर
14. अहमद रजा खान बरेलवी (1957) फतवा रिजविया मऊ, पुनर्मुद्रित, मुबारकपुर, आजमगढ़, वॉल्यूम 51
15. अशरफ अली थानवी (दिनांकित नहीं), वासलुसस वाब फाईफासलिनन साबमाने हयातुल अरब फाईघायतिननसब,

सहारनपुर।
16. मोहम्मद हबीब एंड अफसार उमर सलीम खान (1961) द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ द डेलही सल्तनत (इन्क्लूडिंग एट्रांसलेशन ऑफ जियाउद्दीन बरनी 'सफतवा-ए-जहांदारी'
17. मुफ्ती मुस्तफा रजा खान बरेलवी (1955), फतवा मुस्तफियामऊ, पुनर्मुद्रित, बॉम्बे। मुफ्ती, मुहम्मद शफी उस्मानी (1971), निहयात अल अरबफी-बायत अल-नसाब (1932), पुनर्मुद्रित, दिल्ली
18. मुशीरुल हसन (1979) भारत राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक राजनीति, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली
19. अनवर आलम (2003) भारतीय मुसलमानों के लोकतंत्रीकरण : कुछ विचार, आर्थिक और सामाजिक साप्ताहिक, इपीडब्लू, वाल्यूम 58, इश्यु 23
20. थियोडोरपीराइट (1964) मुस्लिम विधानमंडल भारत में : एक अल्पसंख्यक अभिजात वर्ग की प्रोफाइल, एशियन स्टडीज।

डॉ. हयात अहमद
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
शिब्ली नेशनल कॉलेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)
Email- drhayatahamad@gmail.com

आशीष कुमार चौरसिया
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.)
Email- ashishn97bhu@gmail.com

स्वतन्त्रता सेनानी एवं आर्य समाज व वैदिक शिक्षा के प्रबल समर्थक पंडित पूर्णाचन्द्र आर्य (स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती)

–प्रो. आशा रानी
–मंजली भाटी

15 अगस्त 2022 को देश की आजादी के 75 वर्ष पूरे होने से 75 सप्ताह पहले यानि 12 मार्च 2021 जोकि महात्मा गाँधी के ऐतिहासिक नमक सत्याग्रह की 91वीं वर्षगांठ भी है, को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने गुजरात के साबरमती से दांडी यात्रा को रवाना करके आजादी के अमृत महोत्सव की शुरूआत की। प्रधानमंत्री ने कहा कि-''आजादी का अमृत महोत्सव भारत के स्वतन्त्रता सेनानियों और स्वतन्त्रता संग्राम को श्रद्धांजलि है।'' यह कार्यक्रम उन जगहों से शुरू किया जा रहा है जो भारत की आजादी की लड़ाई के प्रमुख केन्द्र थे- गुजरात के साबरमती आश्रम से लेकर अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में सेलुलर जेल, पंजाब के जलियांवाला बाग से लेकर उत्तर प्रदेश के मेरठ तक।[1]

महोत्सव के जरिये आजादी से जुड़े हुए उन अनसंग हीरोज (व्यक्तित्व) की भी तलाश होगी, जिनका नाम इतिहास के पन्नों पर कहीं खो गया है। साथ ही इसके द्वारा देश के लोग, देश के युवा और बच्चे उन महावीर योद्धाओं को जान सकेंगे, जिन्होंने देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया परन्तु वह सम्मान व पहचान नहीं पा सके जिसके वे हकदार थे।

''जो देश के लिए शहीद हुए
उन वीरों को मेरा सलाम है,
अपने लहूँ से सींचा देश को
उन बहादुरों को मेरा प्रणाम है।''

लेकिन उन स्वतन्त्रता सेनानियों में कुछ नाम गुमनाम है, जिनमें से एक स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती का नाम है।

परिचय- स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती : जन्म 13 मार्च सन् 1900, बागपत जिले की बड़ौत तहसील के बूढ़पुर गाँव के चौधरी लज्जाराम के घर में हुआ था। हाईस्कूल की परीक्षा पास करके पुलिस में सब इन्सपेक्टर, सन् 1921 में महात्मा गाँधी के आह्वान पर नौकरी छोड़कर स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। कालान्तर में रोहतक जिले के खरैटी गाँव में एक विद्यालय की स्थापना की। सन् 1925 में यशोदा देवी के साथ विवाह, गांधी जी की खिलाफत नीति के विरोधी, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक, नमक सत्याग्रह में पुनः कूदे और सारा परिवार बन्दी बनाया गया।[2]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आदर्शों पर चलकर स्वाधीनता की ज्वाला बागपत से भी भड़की थी इसके सूत्रधार थे- बूढ़पुर गांव में जन्मे पं. पूर्णचन्द्र आर्य यानि स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती। 8 जून 1921 को गांधी जी के आह्वान पर नमक कानून तोड़ने के कारण उन्हें किशनपुर बराल से गिरफ्तार किया तो ग्रामीण भड़क उठे, लेकिन, स्वामी जी ने उन्हें समझाकर घर भेजा था।[3]

पं. पूर्णाचन्द्र आर्य ने राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर पुलिस सब इंस्पेक्टर का पद छोड़कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और सन् 1921 में तीन मास की सजा पायी। सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बागपत तहसील के डिक्टेटर बने, पकड़े गये और 10 मास कैद की सजा पायी। इनके दो भाई भी राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल गये।[4]

परिवार के कई सदस्यों के कारावास चले जाने के पश्चात् पूर्णचन्द्र आर्य की वृद्ध माता जी, धर्मपत्नी तथा परिवार की अन्य महिलाओं ने आजादी की उस मशाल को जिसे पूर्णानन्द सरस्वती ने प्रज्जवलित किया था, न केवल प्रज्जवलित किये रखा बल्कि उसे और भी आगे बढ़ाया। ब्रिटिश शिक्षा पद्धति का एकमेव उद्देश्य था, भारत के अन्दर ही एक ऐसे लोगों की श्रेणी का निर्माण करना, जिनका हृदय, मस्तिष्क एवं सोचने का दृष्टिकोण भी भारतीय न होकर पाश्चात्य हो।

इस षड्यन्त्र को भारत में सबसे पहले युग दृष्टा महर्षि दयान्द सरस्वती ने भापा था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जो आर्य समाज के संस्थापक, वेदों के प्रखर अध्येयता, महान समाज सुधारक, उच्च कोटि के दार्शनिक, नारी मुक्ति आंदोलन के प्रणेता, जातिवाद के घोर विरोधी, वैदिक सभ्यता व संस्कृति की उत्कृष्टता के उद्घोषक, स्वदेशी व स्वराज्य के प्रबल पक्षधर थे, का जन्म मौरव रियासत (गुजरात प्रान्त) के एक छोटे से ग्राम टकारा में सन् 1824 में अत्यन्त धार्मिक, ब्राह्मण परिवार में हुआ।[5]

अनेक सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध सुप्त जनमानस को जागृत करने, मत मतान्तर, सम्प्रदायवाद के स्थान पर सत्य सनातन वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने व सारे संसार का कल्याण करने के पावन उद्देश्य से स्वामी दयानन्द ने सन् 1875 में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की और प्रारम्भ में इसके 28 नियम निर्धरित किये, जो वर्तमान में 10 सार्वभौमिक नियमों के रूप में प्रतिष्ठित है। ये नियम जीवन जीने की कला सीखने के साथ ही सामाजिक संरचना, व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन आत्मोत्थान, लोककल्याण, सामाजिक समरसता, जातिवाद-रूढ़िवाद निषेध व सदाचार-सदाशयता, बन्धुता व एकता जैसे संदेश सन्निहित है।[6] स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने अपना पूरा जीवन वैदिक सिद्धान्तों पर चलते हुए अपने सभी सम्बन्धियों को प्राचीन भारतीय आदर्शों पर आधारित शिक्षण संस्थाओं और गुरूकुलों में पढ़ाया।

पंडित पूर्णानन्द करीब नौ भाषाओं के ज्ञाता थे तथा वैदिक साहित्य पर पूरी पकड़ थी। कुरान, गीता उन्हें कठस्थ याद थी। कुरान के ऊपर व्याख्या करने वाला उस वक्त आर्य समाज में इनके अलावा दूसरा नहीं था।[7] 1939 में आर्य प्रतिनिधि सभा ने निजामशाही के अत्याचारों के विरुद्ध लोगों को तैयार करने के लिए हैदराबाद भेजा। सैकड़ों सत्याग्रहियों के साथ ये औरंगाबाद जेल में रहे। सन् 1944 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने वैदिक धर्म के प्रचार कार्य के लिए पुनः पंडित पूर्णानन्द को हैदराबाद भेजा। निजाम का आसन डोलता देख मुस्लिम दैनिक पत्र 'रहबरे दक्कन' हैदराबाद ने उन्हें पकड़कर जेल में बंद करने की मांग की। इनको गिरफ्तार करके रियासत से बाहर निकाल दिया गया और प्रवेश पर पाबंदी लगा दी।[8]

पं. पूर्णानन्द छूआछूत व जात-पात के घोर विरोधी थे। हरिजन उत्थान के लिए लगातार प्रयासरत रहते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जन्मना जाति व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कहा कि-''जिस-जिस में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हो, उस-उस वर्ण का उसे अधिकार देना चाहिए।''[9]

शुद्धि आन्दोलन के रूप में स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने जिवाना गुलियान के एक मुस्लिम परिवार को शुद्ध कर अपने परिवार की बेटी से शादी की और आज यह परिवार पूर्ण रूप से सम्पन्न है। गाँव में दलितों को अपने कुएँ पर पानी भरने की इजाजत दिलवा रखी थी। क्षत्रिय परिवार में पैदा होने पर भी इनकी विद्वता तथा पण्डित्य से प्रभावित होकर सबने इनको ''पंडित जी'' की उपाधि दी।[10]

सन् 1930-31 में कश्मीर में हिन्दुओं के विरुद्ध मुस्लिम आन्दोलन की आंधी के विरुद्ध आतंकित लोगों को निर्भयतापूर्वक उसका सामना करने के लिए तैयार करना। शुद्धि आंदोलन और अछूतोद्धार के प्रबल समर्थक, सन् 1945 में नवाब बागपत को 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया। इन्होंने आन्दोलन करके तत्सम्बन्धी स्वागत समारोह को नहीं होने दिया। सन् 1948 में छपरौली में हरिजन सभा को सम्बोधित करते हुए इनको गिरफ्तार किया गया। इनका प्रारम्भ का नाम पूर्णचन्द्र आर्य, सन् 1971 में संन्यस्थ होने के बाद स्थायी पूर्णानन्द।[11]

इन्होंने पूरा जीवन स्वामी दयानन्द के आदर्शों पर चलते हुए, 17 जनवरी 1971 को जनता वैदिक इन्टर कॉलिज के विशाल प्रांगण में हजारों लोगों के सम्मुख चौ. चरण सिंह की अध्यक्षता में स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती से संन्यास आश्रम में प्रवेश कर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती कहलाये। संन्यास आश्रम में रहते हुए इन्होंने अपना पूरा समय अध्ययन, चिन्तन व लेखन में लगा दिया। जहाँ भी इनको वैदिक सिद्धान्तों के विपरीत बातें पता चलीं इन्होंने तुरन्त अपनी लेखनी उठा ली।

पहली पुस्तक इन्होंने बरनावा के पाखण्डी कृष्णदत्त ब्रह्मचारी की पोल खोलते हुए लिखी 'पोल प्रकाश'। दूसरी आधुनिक वैज्ञानिक कसौटी पर सिद्ध ''वृक्ष जीवधारी है।''

तीसरी शोधात्मक पुस्तक ''योग का आत्मचरित्र एक षड़यन्त्र है'' लिखी। जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर श्री दीनबन्धु शास्त्री आनन्द स्वामी एण्ड कम्पनी द्वारा रचित पुस्तक ''योगी का आत्मचरित्र'' कोरी बकवास व पाखण्ड साबित होती है। चौथी पुस्तक है ''मानव शरीर और जीवात्मा।''

कुछ अन्य अप्रकाशित पुस्तकें-

- मुसलमान भाईयों से बिरादराना अपील
- दयानन्द व उनका योग
- ईसा की मृत्यु का रहस्य

20 दिसम्बर सन् 1985 को अंतिम सन्देश देते हुए कहा ''ऋषि दयानन्द जी महाराज के बताये रास्ते पर चलना'' तथा ''ओउम्'' का उच्चारण करते-करते चिर निन्द्रा में विलीन हो गये।[12] स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती के बड़े सुपुत्र स्व. यशोवर्धन शास्त्री इण्टरमीडिएट कॉलेज के प्रधानाचार्य रहे। मध्यम सुपुत्र वेद प्रकाश तोमर चकबन्दी विभाग से ए.एस.ओ.सी. पद से सेवानिवृत्त है। तृतीय सुपुत्र स्व. डॉ. शिवराज चिकित्सक के साथ ही प्रमुख

सामाजिक कार्यकर्ता रहे हैं। इनके सुपौत्र विजयेन्द्र आई. ए.एस., अजमेन्द्र इंजीनियर, डॉ. वीरोत्तम तोमर (एम.डी.) वरिष्ठ चिकित्सक तथा डॉ. पुरूषोत्तम कृषि विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं।

पण्डित जी के सद्वृत्त का ही यह सफल है कि तीसरी पीढ़ी तक यह परिवार महर्षि दयानन्द एवं वेदों के प्रति उसी निष्ठा से युक्त है।[13]

राष्ट्र सेवा व परोपकार की जो सौगंध खायी उसके बदले उन्होंने कभी राजनीतिक इच्छा जाहिर नहीं की। कई बार बागपत जिले के विधानसभा प्रत्याशी बनाने की कांग्रेस की इच्छा को नकार दिया तथा अपने प्रिय मित्र चौ. चरण सिंह जो उन्हें अंग्रज की भांति सम्मान देते थे, को बागपत क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्थापित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।[14]

स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी पूर्णानन्द सरस्वती की 116वीं जयंती पर आयोजित कार्यक्रम में बागपत से भाजपा सांसद डॉ. सत्यपाल सिंह ने कहा कि आर्य समाज के सिद्धान्तों पर चलते हुए देश की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती पर बनी डॉक्यूमेंट्री को टी. वी. चैनलों पर भी प्रसारित करना चाहिए। क्योंकि बहुत से लोग हैं, जो ऐसे क्रान्तिकारियों के बारे में नहीं जानते। उन्होंने कहा कि वेस्ट यू.पी. के काफी लोगों ने आजादी की लड़ाई लड़ी लेकिन इतिहास में उनका कोई जिक्र नहीं मिलता। ऐसे लोगों पर शोध करने की जरूरत है ताकि पूरा देश उनके बारे में जान सके।[15]

सांसद राजेन्द्र अग्रवाल ने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व कृतित्व पर मन्थन करते हुए कहा कि ऐसे क्रान्तिकारी की किताब और डॉक्यूमेन्ट्री से लोगों को प्रेरणा मिलेगी। आर्य समाज से जुड़े लेखक डॉ. राजेन्द्र जिज्ञासु ने कहा कि उन्होंने पूर्णानन्द सरस्वती के साथ काफी समय गुजारा। उन्होंने हमेशा देश व समाज हित की बात की।[16]

आजादी की जंग के अनेक अनछुए पहलू हैं इन्हें समेटना आवश्यक है। प्रोफेसर राजेन्द्र जिज्ञासु ने युवाओं को आजादी विषय पर शोध जारी रखने की सीख दी।[17]

स्वामी पूर्णानंद सरस्वती के 121वें जन्म दिवस समारोह अवसर पर उनके पौत्र डॉ. वीरोत्तम तोमर ने कहा कि सौ वर्ष पहले (1921) वे सब इन्स्पेक्टर का पद ठुकरा कर आजादी की लड़ाई में कूद गए थे और 50 वर्ष पहले (1971 में) संन्यास ले लिया था।[18]

बच्चा पार्क स्थित आई.एम.ए. हॉल में स्वामी पूर्णानंद सरस्वती के 122वें जन्मदिवस समारोह पर आयोजित कार्यक्रम में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आजादी के संघर्ष में आर्य समाज के योगदान पर विद्वान वक्ताओं ने गंभीर चर्चा की। स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के साथ आजादी के संघर्ष में बढ़-चढ़कर भाग लिया था।

निष्कर्ष-

संक्षेप में यदि कहा जाये तो स्वामी जी भारतीयता की एक साकार और सजीव प्रतिभा थे। उन जैसे त्यागी, निस्पृह, जन-सेवक और चरित्रवान व्यक्ति बहुत ही कम देखने को मिलते हैं। ऐसे सपूतों के ऊपर माँ भारती अवश्य ही गौरव का अनुभव कर सकती है। आज भी इस आर्य परिवार की पांचवीं पीढ़ी भी देशभक्ति, समाज सेवा व आर्य परम्पराओं को पल्लवित व पोषित कर रही है।[20]

इस देश के नागरिक होने के नाते हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उन स्वतन्त्रता सेनानियों के बारे में भी जानें, जोकि गुमनामी के अंधेरे में रहते हुए देश सेवा का अपना काम करते रहे। हमे बेशक स्वतन्त्रता संग्राम में अपना योगदान और प्राणों की आहुति देने का सौभाग्य नहीं मिला परन्तु आज हम ऐसे अमर शहीदों व उनके परिवार वालों को ढूंढ़कर उचित सम्मान तो दे ही सकते हैं।

संदर्भ

1. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 12 मार्च, 2021
2. मेरठ आर्य समाज के सौ वर्ष (प्रथम शताब्दी 1978), पृ. 162
3. अमर उजाला, 13.03.2018
4. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक उत्तर प्रदेश सरकार सूचना विभाग, पृ.सं. 58
5. पं. लेखराम, महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 2000, पृ. 36
6. आर्य समाज बुला रहा है आर्यावर्त प्रकाशन, अमरोहा, 2019, पृ. 217
7. स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती, पोल प्रकाश (कृष्ण दत्त बनाम श्रंग्ड़ी ऋषि) दयानन्द सन्यास गाजियबाद जिला, मेरठ 2019, पृ. 5
8. मेरठ आर्य समाज के सौ वर्ष (प्रथम शताब्दी 1978), पृ. 162
9. महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, आर्यावर्त प्रकाशन, अमरोहा, 2018, पृ. 80
10. स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती, ''योगी का आत्म चरित्र एक षडयन्त्र है'', (ऋषि दयानन्द के जीवन पर एक खोजपूर्ण पुस्तक) आर्य समाज बड़ौत, जिला मेरठ (उ.प्र.), वि. 2061
11. मेरठ आर्य समाज के सौ वर्ष (प्रथम शताब्दी 1978), पृ. 163
12. स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती, ''मानव शरीर और जीवात्मा, आर्य समाज'', बड़ौत बुढ़ाना द्वार, मेरठ प्रथम संस्करण 1984, द्वितीय संस्करण, 2019
13. स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती, ''योगी का आत्म चरित्र एक षडयन्त्र है'', (ऋषि दयानन्द के जीवन पर एक खोजपूर्ण पुस्तक) आर्य समाज बड़ौत, जिला मेरठ (उ.प्र.), पृ. 17
14. दैनिक जनवाणी, 23.12.2011

15. अमर उजाला, 15.03.2016
16. दैनिक जागरण, 15.03.2015
17. दैनिक जनवाणी, 15.03.2016
18. दैनिक जागरण, 15.03.2021
19. दैनिक जागरण, 14.03.2022
20. स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती, ''योगी का आत्म चरित्र एक षडयन्त्र है'', (ऋषि दयानन्द के जीवन पर एक खोजपूर्ण पुस्तक) आर्य समाज बड़ौत, जिला मेरठ (उ.प्र.), वि. 2061

प्रो. आशा रानी
इतिहास विभाग
कु. मायावती महिला महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्धनगर

मंजली भाटी
शोध छात्रा, इतिहास विभाग
कु. मायावती महिला महाविद्यालय
बादलपुर, गौतमबुद्धनगर

श्रीकांत वर्मा की 'हस्तक्षेप' कविता की राजनीतिक प्रासंगिकता

–अनूप कुमार सिंह

मानव सभ्यता अपने विकास के क्रम में समय-समय पर अपने समाज को सुचारू रूप से चलाने और मानवता के नये सोपान चढ़ते जाने के लिए कोई न कोई व्यवस्था बनाती रही है। यह व्यवस्था या तंत्र तत्कालीन समाज की समझ को दर्शाता है और उसकी सामूहिक चेतना का प्रमाण भी देता है। समय बीतने के साथ उस व्यवस्था की लोगों को आदत पड़ जाती है और वह व्यवस्था अपने आपमें एक प्रतीक बन जाती है अपने कार्य-व्यवहार के गुणों अवगुणों के साथ।

श्रीकांत वर्मा की 'हस्तक्षेप' कविता उनके 'मगध' काव्य संग्रह में से एक है। वैसे तो संग्रह की बाकी कविताएं भी अतीत के सहारे वर्तमान को प्रदर्शित करती हैं। पर 'हस्तक्षेप' कविता समकालीन व्यवस्था के अपने पथ से भटकने और उस पर भी उसके अहम् के बने रहने परबखूबी चोट करती है।

हस्तक्षेप कविता अपने नाम से साफ है कि यह किसी चल रही स्थिति या बनी हुई स्थिति में दखल करने को चित्रित करती है। बनी हुई स्थिर स्थिति का विरोध करना अर्थात उस स्थिरता में कुछ हस्तक्षेप करना है।

इस कविता का हस्तक्षेप इस तरह का दावा नहीं कर रहा है कि हस्तक्षेप करने से सक्रियता आ ही जायेगी या सक्रियता आनी ही चाहिए। कविता यह कह रही है कि अपनी जड़ता को बहुत समय तक बनाये रखने की कोशिश एक सीमा पर जाकर अवश्य ही टूटेगी। यह तथाकथित सभ्य जड़ता अपनी उम्र पूरी करेगी ही। किसी की सक्रियता के नहीं होने से भी हस्तक्षेप एक समय के बाद नैसर्गिक तौर पर होगा और उस समय उस बदलाव को कोई भी 'मगध' नहीं रोक सकता, वह हस्तक्षेप मृत्यु के रूप में भी हो सकता है।

'हस्तक्षेप' का मगध

'हस्तक्षेप' कविता का मगध अब तक की मानव सभ्यता के इतिहास का सर्वकालिक मगध है। वो हर समय में स्थित है अलग-अलग नाम और रूप से। यहाँ रूप से तात्पर्य है कि वो मगध न केवल साम्राज्य है बल्कि व्यक्ति भी है, संस्था भी है, समाज का कोई वर्ग भी है, सत्ता भी है, सत्ता का स्वरूप भी, वो मगध तथाकथित सभ्यता भी है जिसमें सभ्य होने के नियम निर्धारित होते हैं या अघोषित तौर पर चलन के रूप में चल रहे होते हैं।

'मगध है, तो शांति है
कोई चीखता तक नहीं
इस डर से
कि मगध की व्यवस्था में
दखल न पड़ जाय
मगध में व्यवस्था रहनी ही चाहिए
मगध में न रही
तो कहाँ रहेगी?'[1]

किसी व्यवस्था को बनाए रखने की कोशिश भी मगध की जड़ता को ही दर्शाता है। यहाँ मगध और व्यवस्था एक दूसरे के पर्याय हो चुके हैं कि मगध में व्यवस्था रहनी ही चाहिए मगध में नहीं रहेगी तो कहाँ रहेगी?

यह मगध आज का जनतंत्र भी है। जिसमें दावे तो हैं और दस्तावेज भी कि लोगों की बात सुनकर, उनकी सहमति लेकर ही सबकुछ किया जाता है लेकिन व्यवहारिकता में आते-आते जनतंत्र कुछ समूहों का राजनीतिक टूल बन जाता है। जिसमें कुछ ही बातों के इर्द-गिर्द सारा विमर्श घूमने लगता है और उस पर लोगों की प्रतिक्रिया और उस प्रतिक्रिया पर प्रतिक्रिया का जाल इतना सघन हो जाता है कि जो मूल उद्देश्य पाने के लिए जनतंत्र अपनाया गया था उसको भी बदल दिया जाता। लोक आपस में एक दूसरे की प्रतिक्रियाओं पर ऐसा उलझता है कि अपने ही हितों के लिए जनतंत्र के उद्देश्य को पाने के लिए फिर सुलझना भूल जाता है।

यह मगध अदालत भी है। जो समय से सबको न्याय भले न दे पा रही हो लेकिन उसकी घोषणा है कि उसके प्रति श्रद्धा में कोई कमी न लाई जाए। जज को न्यायमूर्ति का संबोधन यथावत जारी रखा जाए। अदालत अपने ही लोगों की भाषा में बात नहीं कर पा रही है लेकिन लोगों को क्या करना चाहिए क्या नहीं इस पर वैधानिक उपदेश देना जारी है।

'कोई टोकता तक नहीं
इस डर से
कि मगध में
टोकने का रिवाज न बन जाये'[2]

यह मगध जनतंत्र में चुनी हुई सरकार भी है। चुनी हुई सरकारें अपनी लोकप्रियता को कुछ भी करने का अधिकार मानकर एक ऐसी स्थिति का निर्माण करती हैं जिनमें उनके विरोध में कुछ बोलना भी विद्रोह मान लिया जाता है। वो 'टोकनें' को रोकने की कोशिश करती हैं ताकि टोकनें का कोई रिवाज न बन जाए।

ऐसा मान लिया जाता है कि मगध की शांति का बने रहना स्वयं एक रिवाज है लेकिन वो किसी नये रिवाज को नहीं पनपने देना चाहता। नया रिवाज उस पुराने को खत्म कर देगा जोकि परिश्रम पूर्वक बनाया गया है।

यह मगध सभ्य समाज की तथाकथित सभ्यता भी है। जिसके परे जाकर कुछ भी करना या सोचना उस सभ्यता को केवल समाप्त करने या बदलने के बराबर का ही अपराध नहीं है बल्कि उस सभ्यता के चलन के विरोध में कुछ भी होना उस पर प्रश्न चिह्न लगाना है कि वह वास्तव में विकासशील सभ्यता है भी या नहीं और प्रश्न चिह्न उस सभ्यता के लिए बहुत ही पीड़ादायक होता है कि उसके सभ्य होने पर ही संदेह किया जाए।

मगध की शांति

देश की आजादी के बाद देश को जो सपने दिखाए गए और उनका पूरा करने के लिए जो तरीके अपनाने को कहा गया देश उसको ही मानकर चलता रहा। श्रीकांत वर्मा का 'मगध' काव्य संग्रह सन 1983 में आया। देश को आजादी मिले 36 वर्ष हो चुके थे और देश अपनी व्यवस्थाओं का लगभग आदी हो चुका था। बीच में एक बार आपातकाल के समय देश व्यवस्था के विरोध में उठा लेकिन उस विरोध के अपेक्षित परिणाम न आने से देश पुनः उसी व्यवस्था को ठीक मानकर चलने लगा। इस निराशा ने व्यवस्था को और अघोषित अधिकार दिए कि वह जो कर रही है ठीक कर रही है। इस व्यवस्था ने अपनी वैधानिकता के लिए मुहावरे तक गढ़े कि ''सब ऐसे ही चलता है, ऐसे ही चलता रहेगा।''

बच्चन सिंह कहते हैं कि ''अगर श्रीकांत वर्मा ने 'मगध' न लिखा होता तो वह आधुनिकतावादी न होते। उनके पूर्ववर्ती काव्य संकलनों - दिनारंभ, माया दर्पण, जलसा घर में आत्मरति और आत्मश्लाघा का प्राधान्य है, भीड़ से घृणा है। यौन- विकृतियों की बजबजाहट भी कम नहीं है - 'जैसे किसी वेश्या के कोठे से / अपने को बुझाकर।' इन रचनाओं में ऊब, अनिर्णयात्मकता, आक्रामकता, विडंबना, यौन-विकृति आदि सभी कुछ आधुनिकतावाद के लक्षण हैं। पर 'मगध' में शांति है, सोच है, रास्ते की खोज है, ऐतिहासिक अतीत को वर्तमान की असंगति से जोड़ने का प्रयास है।''[3]

श्रीकांत वर्मा ने 'मगध' की कविताओं से एक अगोचर भविष्य का संकेत किया है जिसमें जीवन और मृत्यु दोनों का बोध है। जीवन और मृत्यु दोनों का बोध श्रीकांत वर्मा के समय का सत्य है। जिसमें आशायें मिटी नहीं है लग रहा है कि इस व्यवस्था से कुछ हासिल किया जा सकता है लेकिन निराशा का आवरण भी ओढ़े हुए है कि सच में इस व्यवस्था से कुछ होना होता तो अब तक क्यों नहीं हुआ।

जैसे एक समय के बाद हमारे कमरे की सीलन से बदबू आना हमारे लिए सहज हो जाती है, घर में बिखरा हुआ सामान ही हमारे लिए सहज हो जाता है और कोई बाहर का व्यक्ति आकर यदि घर के सामान को उचित स्थान पर रख दे तो हमें अपनी चीजें ही मिलनी मुश्किल हो जाती हैं उसी तरह देश की तत्कालीन परिस्थिति को सहज स्वीकार लिया गया लोगों के द्वारा। उसके विरोध में बात करने वाले को अपनी सहजता पर ही प्रहार मानने की प्रवृत्ति बल पकड़ने लगी।

'कोई छींकता तक नहीं
इस डर से
कि मगध की शांति
भंग न हो जाय।'[4]

हस्तक्षेप कविता मगध को आधार बनाकर उस सहज मानी जा चुकी खामोशी को तोड़ने के लिए कह रहे हैं कि छींक आ रही है तो छींकों, गुस्सा जन्म ले चुका है अंदर तो चीखो और गलत लग रहा है कुछ भी किसी के भी द्वारा तो टोकों। यह अव्यवस्था और शोषण की सहजता कहीं रिवाज न बन जाए।

'वैसे तो मगधनिवासियो
कितना भी कतराओ
तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से -
जब कोई नहीं करता
तब नगर के बीच से गुजरता हुआ
मुर्दा
यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है -
मनुष्य क्यों मरता है?'[5]

शिल्प :- 'हस्तक्षेप' कविता अपने 'मगध' का लक्षण बताकर आज के लोकतंत्र को लक्ष्यार्थ बनाती है। इसमें

व्यंजना भी ही कि पूरी व्यवस्था केवल छींकने, टोकने, चीखने से ही भयभीत है।

चीखना, क्रोध के प्रकटीकरण का प्रतीक है। मनुष्य यदि जीवित है और किसी व्यवस्था में है तो स्वाभाविक है कि वह भावावेग में क्रोधित होगा ही लेकिन मगध इस भावावेग को भी बंदी बनाये रखना चाहता है।

टोकना, व्यक्ति की विवेकशीलता का प्रतीक है जिसमें वह प्रश्न पूछेगा ही। मगध में टोकने का रिवाज नहीं जन्मना चाहिए।

छींकना, व्यक्ति की अनैच्छिकता का प्रतीक है जिसमें व्यक्ति चाहकर भी अपने को बंधन में नहीं रख सकता।

अंततः 'हस्तक्षेप' कविता हर युग के ठहराव को चुनौती देती है कि यह ठहराव जिसकी तुम्हें आदत लग गई है उसका अंत होना ही है तुम कुछ नहीं करोगे तब भी मारोगे। तुम्हारा मरना तो इस ठहराव को ध्वंस करेगा ही। तुम चाहकर भी बच नहीं सकते। कितना भी बड़ा कंफर्ट जोन बन जाए एक दिन उसे टूटना ही पड़ता है।

यह व्यवस्था जो लोगों को सुनना ही चाहती और सुनती भी है तो वही जो उसे पसंद है। जो उसके किए का बखान करे और प्रमाणित करे कि उसका करना श्रेष्ठ है।

श्रीकांत वर्मा इस व्यवस्था के खिलाफ हस्तक्षेप करने को कह रहे हैं। इस व्यवस्था को इतना भी स्थाई मानकर मौन नहीं हो जाना चाहिए कि शरीर की अनैच्छिक क्रिया 'छींक' को भी आने से रोक दिया जाए। व्यवस्थाएँ स्थाई नहीं होती। उनमें परिवर्तन होता रहना चाहिए और परिवर्तन के लिए जरूरी हस्तक्षेप भी करना चाहिए।

संदर्भ

1. मगध - श्रीकांत वर्मा, द्वितीय संस्करण- 1986, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002, पृष्ठ 87
2. वही, पृष्ठ 88
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- बच्चन सिंह, पंद्रहवाँ संस्करण - मार्च 2022, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110051, पृष्ठ 450
4. मगध - श्रीकांत वर्मा, पृष्ठ 87, द्वितीय संस्करण-1986, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002
5. वही, पृष्ठ 88

अनूप कुमार सिंह
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 8851794086
Email : anooprajwad1995@gmail.com

डॉ. कीर्ति काले के व्यक्तित्व में सृजन के विविध आयाम

–शशांक चंद्र शुक्ल
–शुभम सिंह

ज्ञातव्य है कि डॉ. कीर्ति काले आधुनिक हिंदी साहित्य की वाचिक परंपरा के नीलगगन का ऐसा सप्तरंगी इंद्रधनुष हैं जिनकी सृजनात्मक का फलक विविधताओं से परिपूर्ण है। वास्तव में वह माँ मीरा और महीयसी महादेवी की वंश-परंपरा को विस्तार देने वाली एक ऐसी लब्धप्रतिष्ठ शब्द-साधिका हैं जिनकी कविता के सरगम की अनुगूँज न सिर्फ भारत वरन् विश्व के अनेकानेक देशों के अधिकांश हिंदी प्रेमियों के हृदय-पटल को स्पर्श करती है।

उल्लेखनीय है कि डॉ. कीर्ति काले ने विगत 35 वर्षों की अपनी साहित्य-यात्रा के क्रम में हिंदी-उर्दू के लगभग 3000 से अधिक कवि-सम्मेलन और मुशायरों में समवेत रूप से एक सफल मंच-संचालक और कवयित्री की भूमिका का निर्वहन करते हुए न सिर्फ मंचों पर व्याप्त साहित्यिक फूहड़ता के तिरोहरण हेतु सार्थक प्रयत्न किया वरन् साहित्य का पृच्छन्न परिधान पहनकर सिर्फ चंद तालियों की कीमत पर सांप्रदायिक और वैमनस्य की बलवती भावना को जनमानस में बीजारोपित करने वाली किसी भी कविता के वाचन की अपने संचालन में अनुमति प्रदान नहीं की। तभी उनकी कलम से प्रस्फुटित होता है

कि -

''मंच पर आधे धँसे हैं
तालियों को ही समर्पित कुछ खिलौने
और झूलसे जा रहे हैं...
जिन्दगी की आँख के सपने सलोने
इन लिबासों से भर खाली भवन में
गीत मन का गुनगुनाना व्यर्थ जाए
पर हमें संतोष होगा
गीत हमने ही पढ़ा है
रास्ता हमने गढ़ा है।''[1]

ध्यातव्य है की कवयित्री के व्यक्तित्व में सर्वाधिक रोचक बात यह है कि उन्हें भारतीय काव्यशास्त्र में उल्लिखित 9 के 9 रसों में सृजन-कर्म की सिद्धि प्राप्त है। काव्य-लेखन की विभिन्न विधाओं में अपनी बात को कहने के लिए वह कभी गीतों की राह पकड़ती हैं, तो कभी गजलों की, कभी मुक्तकों की झील में डुबकियाँ लगाती हैं, तो कभी गीतों की नदियाँ में। काव्य-कर्म की शायद ही कोई ऐसी विधा होगी जो उनकी कलम से अछूती रह गई हो। उल्लेख्य है कि काव्य-लेखन की विभिन्न विधाओं पर समान अधिकार होने के साथ-साथ, वह गद्य-लेखन में भी पूर्णतः निष्णात हैं जिसकी झलक हमें उनके द्वारा हाल में ही प्रणयित व्यंग-संकलन 'ओत्तेरेकी' में दृष्टिगोचर होती है। जिसमें संकलित 33 व्यंग्यों में उन्होंने प्रत्येक सामाजिक और राजनीतिक विसंगति पर करारी चोट की है। जहाँ एक ओर रचनाकार इस व्यंग्य-संग्रह में कहीं मुख्य अतिथियों की हर कार्यक्रम में मुख्य अतिथि बनने की तीव्र-तृष्णा पर चुटीला तंज कसती हैं तो वहीं दूसरी ओर हमारे लोकतंत्र के चतुर्थ आधार स्तंभ के अभिधान से अभिहित बिकाऊ मीडिया की काली सच्चाई के पीछे छिपे असली चेहरे का मुखौटा उतार देती हैं।

चर्चा के इसी क्रम में अगर हम कीर्ति जी के उपर्युक्त व्यंग्य-संकलन 'ओत्तेरेकी' के पृष्ठों को पलटने का प्रयास करें तो उसके अध्ययन-अनुशीलन की शृंखला में रचनाकार के 'आत्मकथ्य' से यह तथ्य विदित होता है कि जहाँ एक ओर सृजनकार का अनुभवजनित यथार्थ, उस यथार्थ की आवेगमयी तीव्रता और सत्य की प्रकृति सृजन के पलों में स्वतः लेखन

की विधा चयनित कर लेती है; तो वहीं दूसरी ओर ''अपने चित्त पर उभरे हुए चित्र को पाठक एवं श्रोता के चित्त पर अक्षरशः वैसा का वैसा छाप देने की असीमित ललक एवं रचनाकार की आंतरिक जद्दोजहद''[2] ही उसके सृजन-कर्म की आधारशिला है।

गौरतलब है कि वैसे तो 'ओत्तेरेकी' में प्रकाशित प्रत्येक व्यंग्य अपने आप में है लेकिन इस व्यंग्य-संकलन के कतिपय व्यंग्य ऐसे भी हैं जो कहीं पाठक के मन पर गहरा असर छोड़ते हैं, कहीं उसे हँसी से गुदगुदा देते हैं; कहीं हमारे समाज के उजले चेहरों की काली सच्चाई उसके आँखों के आगे उजागर कर देते हैं; तो कहीं अध्येता के चेतन-पटल को भीतर तक झकझोर कर रख देते हैं।

'ओत्तेरेकी' के व्यंग्य-अनुक्रम में प्रथम दृष्टया जो व्यंग्य मुझे हँसी के हँसगुल्लों से गुदगुदा गया, उसका शीर्षक है-'गिरगिट के भी बाप'।

वस्तुतः 'गिरगिट के भी बाप' शीर्षक से अभिहित यह व्यंग्य मीडिया चैनल्स से लेकर देश के सत्ता-पक्ष के झूठे वादों की ओछी हकीकत तो बयां करता ही है, साथ-ही-साथ विपक्षी नेताओं के गिरगिट से भी तेज अपना रंग बदलने और 'मौसमी मेंढक होने' के विशिष्ट गुण का उद्घाटन भी करता है। जहाँ एक ओर मुल्क के 'नेता' कुर्सी के पीछे पागल हैं तो वहीं दूसरी ओर 'मीडिया' सिर्फ और सिर्फ टीआरपी. की दीवानी है। लोकतंत्र की ऐसी नौटंकी और जनतंत्र के ऐसे सरकस के बीच फँसी जनता करे तो क्या करे? किससे उम्मीद रखे? किससे आस करे? किस पर विश्वास करे?

ध्यातव्य है कि कीर्ति जी के 'ओत्तेरेकी' व्यंग्य-संग्रह का वह दूसरा व्यंग्य जो मुझे बेहद पसंद आया उसका शीर्षक है-'साहब हम कबीर के वंशज हैं'। वस्तुतः इस व्यंग्य में व्यंग्यकार ने उन नवोदित कवि-कवयित्रियों पर व्यंग्य कसा है जो स्वयं को कबीर, तुलसी और सूर का वंशज बताकर किसी भी प्रतिष्ठित शख्सियत के बारे में बिना सोचे-समझे कुछ भी अनर्गल बकने एवं खुद ही स्वयं के नाम के आगे कवि ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय कवि लिखने लगे हैं।

चंद तुकबंदियों को कविता का नाम देकर और उन तुकबंदियों पर सोशल मीडिया के इस दौर में फेसबुक, यूट्यूब, इंस्टाग्राम पर गधेछाप झूठे प्रशंसकों के चंद लाइक्स पाकर विषय बाबा तुलसी की इस स्वीकारोक्ति को भूल गए हैं -

''कवि ना होऊँ नहिं वचन प्रवीनू।
सकल कला सब विद्या हीनू।।
कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे।।''[3]

काश इन नवोदित कवि-कवयित्रियों को यह बात समझ आ पाती कि जब गोस्वामी तुलसीदास जैसा महाकवि स्वयं को कभी कवि नहीं कहता तो फिर यह लोग कैसे स्वयं को स्वघोषित ''अंतरराष्ट्रीय कवि'' कहने की धृष्टता कर सकते हैं।

जरा-सा शोहरत के आसमां में उड़कर खुद को अग्रिम पँक्ति का रचनाकार कहने वाले ऐसे ही कवियों के लिए 'शबीना अदीब' जी लिखती हैं कि-

''जरा-सा कुदरत ने क्या नवाजा
जो आ के बैठे हो पहली सफ में
अभी से उड़ने लगे हवा में;
अभी तो शोहरत नई-नई है।''[4]

अनुशीलन के क्रम में इसके अलावा व्यंग्यकार का एक और व्यंग्य जिसका उनवान 'पुरस्कार कबाड़ने के शर्तिया फार्मूले है' मुझे खासा पसंद आया। इसमें इस बात का जिक्र है कि, ''आजकल पुरस्कार दिया नहीं जाता लिया जाता है।''[5]

सच में कितनी अद्भुत है न यह बात! अनादिकाल से जो कविता कवि के लिए जीवन का साध्य हुआ करती थी; आज वही कविता दो कौड़ी के तथाकथित कवियों के हाथों में पड़कर फकत दौलत और शोहरत कमाने का साधन बन चुकी है। सरकारों से साहित्यिक पुरस्कार पाने की ऐसी अंधी होड़ है कि जो कविता सर्वदा से लोकतंत्र में स्थायी विपक्ष की भूमिका का निर्वहन करती रही, आज वही चंद सरकारी तमगों की लालच में सत्ताधारी नेताओं की चाटुकारिता से लबरेज होती जा रही है। कैसी विचित्र विडंबना है न! कि जो कविता आदिकवि वाल्मीकि के शोकार्त कंठ से अनुष्टुप छंद में वधिक द्वारा क्रौंच युगल में से एक पक्षी का वध हो जाने पर उद्भूत हुई; जिस कविता-कल्याणी की आजीवन आराधना गोस्वामी तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम के चरित्र को लोक स्थापित करने हेतु स्वान्तः सुखाय की, जो कविता भारतवर्ष की पराधीनता के कालखंड में देश के नवजागरण का शंखनाद बनी और मुल्क की आजादी के पश्चात एक तानाशाह प्रधानमंत्री के हमारे लोकतंत्र की दीपशिखा बुझा देने की जिद के आगे जो कविता इंकलाब की आवाज बनी; आज वही कविता क्या इतनी सस्ती हो चुकी है? कि चंद रूपयों व चंद पुरस्कारों की अभिलाषा में दो कौड़ी के नेताओं की प्रशंसा हेतु आरती का थाल बन जाए!

वास्तव में यह गंभीर व विचारणीय प्रश्न समस्त साहित्यिक समाज के समक्ष उनकी अस्मिता को धिक्कारता हुआ प्रश्नवाचक चिन्ह के रूप में उपस्थित है; और उपर्युक्त व्यंग्य में समाविष्ट व्यंग्यकार के अंतर्मन की हास्य के परदे में छिपी हुई मूल पीड़ा भी यही है।

इसी के साथ 'ओत्तेरेकी' व्यंग्य-संग्रह के पन्ने पलटते हुए जब मेरी निगाह ''हिंदी की हिंदी'' शीर्षक से अभिहित

व्यंग्य पर पड़ी तो व्यंग्यकार के इस व्यंग्य में व्यंजित हमारी राजभाषा हिंदी की बदहाल स्थिति का हाल मुझे शीर्षक में ही अंतर्निहित लगा। कितनी आश्चर्यजनक बात है न! कि ''उसकी तो हिंदी हो गई'' जैसे वाक्य का प्रयोग करना हमारे लिए बेहद आम बात है।

न तो हमें हिंदी के गौरव का भान बचा है, न हमारी नजरों में हिंदी का सम्मान बचा है। तभी तो हम अपनी भाषा पर गर्व महसूस नहीं करते। अंग्रेजियत का कीड़ा हमारे दिमाग पर इस कदर हावी है कि हमारे यहाँ हिंदी पखवाड़े के आमंत्रण-पत्र तक अंग्रेजी में छपते हैं। हालात तो ऐसी हो रखी है कि कहीं दुर्भाग्य से आप किसी कोर्ट-कचहरी के चक्कर में फँस गए तो न तो आपको खुद पर पुलिस द्वारा आंग्ल भाषा में लगाई गई धाराएँ समझ आएंगीं, न कोर्ट में आपके और आपके विपक्ष के वकील और न्यायाधीश महोदय के मध्य होने वाली जिरह ही समझ आएगी और फैसला अंग्रेजी में सुना दिया जाएगा; क्योंकि हमारे देश की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि हमारे शासन-प्रशासन और अदालतों की भाषा जनता की मातृभाषा हिंदी (या संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाएँ) न होकर आभिजात्य वर्गीय, औपनिवेशिक भाषा अंग्रेजी है। जबकि हकीकत यह है कि समग्र विश्व में बोली जाने वाली 7115 भाषाओं में से हिंदी को तीसरा स्थान प्राप्त है और विश्व की कुल जनसंख्या का 8% प्राथमिक भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करता है।

वहीं अगर भारत में हिंदी की स्थिति पर बात करें तो 2011 के राष्ट्रीय सर्वेक्षण के मुताबिक हमारी जनसंख्या का कुल 43.6 प्रतिशत (लगभग 53 करोड़) हिस्सा प्राथमिक भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करता है, केवल 0.02 अर्थात् 2 लाख 70 हजार जनसंख्या ही प्राथमिक भाषा के रूप में बांग्ला भाषा का प्रयोग करती है; इसके बावजूद भी हिंदी अपने हक से ही वंचना का शिकार है।

व्यंग्यकार अपने लेखन में इस बात पर सवाल खड़ा करती हैं कि हिंदी भाषा लोगों में अपनी भाषा को लेकर गौरव की भावना ही क्यों नहीं है? क्यों उन्हें अपनी भाषा पर फक्र ही नहीं महसूस होता?

जहाँ एक ओर अंग्रेजी के दो-चार टूटे-फूटे वाक्य बोलने वाला भी हमारे समाज में शेक्सपियर समझा जाता है तो वहीं दूसरी ओर हिंदी का पीएचडी. धारक भी अंग्रेजी न बोल पाने की स्थिति में अज्ञानी क्यों समझा जाता है? बात का सार यही है कि उपर्युक्त व्यंग्य लेखन के माध्यम से व्यंग्यकार कीर्ति काले जी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से तंज कसते हुए समग्र हिंदी भाषियों से प्रश्न करती हैं कि आखिर कब आएगा वह सुनहरा दिन जब समस्त हिंदी जाति को हकीकत में अपनी मातृभाषा हिंदी पर फक्र महसूस होगा?

सचमुच कितना कमाल व्यंग्य-लेखन कौशल है कीर्ति जी का! एक ओर उनके व्यंग्यों में हँसी-ठहाके हैं तो दूसरी ओर उन ठहाकों के बीच छिपा उनका दर्द भी है; कहीं सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट है तो कहीं राजनीतिक विद्रूपताओं का प्रकाशन भी है; कहीं देश की मीडिया की असली मुखौटे को हटाने की कोशिश है तो कहीं हिंदी-भाषियों की मानसिकता पर चुभते हुए अनेक सवाल।

वस्तुतः मुझे यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि अगर कीर्ति जी के व्यंग्य-लेखन की साधना यूँ ही निरंतर जारी रही तो वह अवश्य ही आगामी भविष्य में हरिशंकर परसाई और शरद जोशी के समीप की पंक्ति में बैठने की अधिकारिणी हो जाएंगी।

चर्चा के अनुक्रम को आगे बढ़ते हुए अगर हम विस्तृत फलक पर कीर्ति जी के व्यक्तित्व में अंतर्निहित उनकी सृजनात्मकता के मुख्य आयाम अर्थात् उनके काव्य-लेखन के संदर्भ में बात करें तो पाएंगे कि कवयित्री काव्य-लेखन की विभिन्न विधाओं; यथा-गीत, गजल, घनाक्षरी, मुक्तक, सवैया, नवगीत इत्यादि के रचनाकर्म में सिद्धहस्त हैं। उनके काव्य में अंतर्भूत अर्थ-गांभीर्य के आकलनार्थ अग्रलिखित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं-

''सूरदास ने जो देखा है आँखों वाले क्या देखेंगे!
जो महसूस किया मीरा ने ज्ञानी-ध्यानी क्या सोचेंगे!''[6]

ध्यातव्य है की कवयित्री की लेखनी से उद्भूत प्रमुख रूप से दो काव्य ग्रंथ 'हिरनीला मन' (गीत-संग्रह) एवं 'स्वर अहसासों के' (समवेत काव्य-संकलन) हृदय को विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। जिसमें से 'हिरनीला मन' की भूमिका तो सरस्वती पुरस्कार से अलंकृत यशस्वी साहित्यकार प्रोफेसर रामदरश मिश्र जी और महाकवि डॉ. कुँवर 'बेचैन' जी ने लिखी है। इसी से कवयित्री के काव्य-कौशल और उनके कद का अंदाजा लगाया जा सकता है। स्मरणीय है कि डॉ. कुँवर 'बेचैन' जी कवयित्री के गीतों के विषय में लिखते हैं कि, ''डॉ. कीर्ति काले मूलतः प्रेम और सौंदर्य की कवयित्री हैं। उनके गीत 'नेह के नीड़' में बजी बाँसुरी की मादक अनुगूँज हैं। ऐसी अनुगूँज जिसको सुनकर आँखों में अनेक रंग होली खेलने लगते हैं और मन बसंती रंग में रंग जाता है।''[7]

गौरतलब है कि कीर्ति जी ने अपने गीत-संग्रह का आरंभ ही ज्ञानदायिनी माँ हंसवाहिनी के चरण-कमल में गीत का प्रथम पुष्प अर्पित कर उनकी आराधना करते हुए किया है जो उनके सांस्कृतिक सृजन का परिचायक है। जिसकी लघु छटा कुछ इस प्रकार से है -

''शारदे माँ करूँ तेरी आराधना
वंदना ये मेरी तुझको स्वीकार हो
ज्ञान की ज्योति से हो प्रकाशित धरा
हर तरफ तेरी वीणा की झंकार हो।''[8]

वहीं अगर हम कवयित्री के 'हिरनीला मन' गीत-संग्रह के मुख्य गीत जो 'हिरनीला मन' शीर्षक से अभिहित है और जिसके आधार पर कीर्ति जी ने इस गीत-संग्रह का नामकरण भी किया है; के विशेष संदर्भ में हृदय मंथन करें तो यह नवनीत निकलता है कि हमारा हिरण जैसा चंचल मन अपने अंतस की प्यास बुझाने के लिए जीवन-मरुथल की बाहरी मृगतृष्णाओं के पीछे निरंतर भाग रहा है। असल में तो उन मृगतृष्णाओं का अस्तित्व ही नहीं है। वह जिस कस्तूरी की सुगंध को बाहर तलाश रहा है, वह तो उसी की नाभि के मध्य छिपी है; परंतु वह इस बात से ही अनभिज्ञ है। दृष्टव्य है -

''बौराया हिरनीला मन
फिरता है जंगल-जंगल।
छलती है बार-बार कस्तूरी गंध
अपनी ही मस्ती में झूमे निर्बंध।''[9]

सचमुच हृदय को मुग्ध कर देने वाला कैसा अद्‌भुत प्रतीक गढ़ा है कवयित्री ने इस गीत में! जिसमें जीवन का सार भी निहित है और जीवन की मस्ती भी। जिस गीत को पढ़ते वक्त ऐसा लगता है मानो शब्द-शब्द हृदयंगम हो गया हो।

उल्लेखनीय है कि कवयित्री के अधिकांश गीतों में प्रकृति महाकवि सुमित्रानंदन पंत के गीतों के सदृश किसी न किसी रूप में उपस्थिति ही है। कभी प्रतीक के रूप में, कभी उपमान के रूप में, कभी सहचरी के रूप में, तो कभी नायिका के रूप में। जैसे दर्शनीय है-

''सूरज की किरणों ने नदियाँ के गाल पर
टाँक दिया एक बसंत हिले रुमाल पर।''[10]

कवयित्री का काव्य-लेखन ऐसा है कि आपके गीतों में ऋतु-वर्णन व बारहमासा वर्णन भी प्रतीकात्मक उपमान के रूप में प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुआ है। उदाहरणार्थ -

''आँख फागुन बनी मन बसंती हुआ
नेह के नींड़ में बज उठी बाँसुरी।
बादलों ने छुआ जेठ सावन हुआ;
मुस्कुराने लगी पाँखुरी-पाँखुरी।''[11]

इसके साथ-ही-साथ कवयित्री के रचना-कर्म का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वह रसराज शृंगार के दोनों रूपों संयोग और विप्रलंभ के सृजन में पूर्णतः निष्णात हैं। शृंगार उनका सबसे प्रिय रस है जिसका शब्द-शब्द उनकी लेखनी से सृजित होते समय निर्झर के निर्मल सलिल की भाँति निःसृत होता है। उदाहरणार्थ- उनकी कलम से निःसृत शृंगार रस की निम्न पंक्तियाँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं-

''धुंध में डूबी हुई थी मोरपंखी शाम
रात के सूने पहर सब करवटों के नाम
चाँद ने पिछले सभी बदले लिए गिन-गिन;
क्या कहें कैसे बिताए दिन तुम्हारे बिन।''[12]

जिस प्रकार मैथिल कोकिल कहे जाने वाले आदिकालीन कवि विद्यापति ने 'पदावली' में नायिका के यौवन आगमन का हृदयंगम वर्णन किया है; उसी परंपरा का किंचित् मात्रा में निर्वहन कवयित्री के कतिपय गीतों में भी देखने को मिलता है। जिसमें कवयित्री ने नायक-नायिका के जीवन में आए यौवन के फलस्वरूप उत्पन्न प्रेमाकर्षण को अत्यंत सजीवता के साथ चित्रित किया है-

''पैरों की पायल छनकी कंगन खनका
हर आहट पर चौंक-चौंक जाना मन का
सांसों का देहरी छू-छूकर आ जाना
दर्पण का खुद दर्पण से ही शरमाना
और धड़कन हर धड़कन का सपनों के संसार में
शायद ऐसा ही होता है पहले-पहले प्यार में।''[13]

वस्तुतः कवयित्री ने अपने जीवन में जैसा अनुभूत किया, उस अनुभूति को वैसा का वैसा शब्दांकित कर दिया। इसी वजह से उनके गीतों में बनावटीपन की झलक नहीं प्रत्युत् कल्पना और यथार्थ की अनुभवजनित उड़ान का मणिकांचन सहयोग दृष्टिगोचर होता है। तभी उनकी मर्मस्पर्शी लेखनी से उद्‌भूत होता है कि -

''जब-जब जो जो महसूस किया
स्वीकार किया वैसा-वैसा
जग की आचार संहिता को
लग जाए भले कैसा-कैसा
हमने हर वचन निभाया पर खाई
कोई सौगंध नहीं
ऐसा संबंध जिया हमने जिसका
कोई अनुबंध नहीं।''[14]

यदि कवयित्री के रचनाकर्म में अलंकार प्रयोगधर्मिता की बात की जाए तो विदित होता है कि उनके काव्य-लेखन में जहाँ शब्दालंकार के रूप में अनुप्रास, यमक, श्लेष का प्रयोग मिलता है तो वही अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण अतिशयोक्ति, दृष्टांत इत्यादि अलंकारों का सुशोभित विहंगम दृश्य दृष्टिगोचर होता है।

गौरतलब है कि कीर्ति जी की सृजनात्मकता के विभिन्न आयामों के अंतर्गत साक्षात्कार विधा में लिखित कृति ''बातों बातों में'' तथा संस्मरण विधा में लिखित कृति ''किस्से कवि सम्मेलनों के'' ने भी सुधी पाठकों के प्रज्ञा-पटल पर अपना विशेष स्थान अर्जित करने में पर्याप्त सफलता का संवरण किया है।

इसके अलावा कवयित्री के लेखन में स्त्री-विमर्श और नारी जीवन की पीड़ा का स्वर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की काव्य-संवेदना (यशोधरा, विष्णुप्रिया, साकेत) की भाँति किंचित मात्रा में कुछ गीत-गजलों में गागर में सागर की भाँति अभिव्यक्त होता है। तुलनात्मक रूप से अवलोकन

करें तो जहाँ गुप्त जी लिखते हैं कि-

''अबला जीवन है हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।''[15]

तो वहीं कवयित्री डॉ. कीर्ति काले लिखती हैं कि -

''गर्म तपती दोपहर है लड़कियों की जिन्दगी
एक पथरीली डगर है लड़कियों की जिन्दगी
चाहे हो अग्नि-परीक्षा या हो चौसर की बिसात
हर सदी में दांव पर है लड़कियों की जिन्दगी।''[16]

अतः सारगर्भित रूप से यही कहा जा सकता है कि अक्षर की अनन्य आराधिका डॉ. कीर्ति काले जी का व्यक्तित्व सृजन की विभिन्न विधाओं के लेखन की विविधताओं से परिपूर्ण है। चाहे वह गद्य लेखन हो या पद्य लेखन य दोनों स्तरों पर डॉ. कीर्ति जी पाठकों के मन की गहराई को छूने में सफलता के उत्तुंग गिरि-शृंग का स्पर्श किया है। हिंदी माँ के विशाल मंदिर में एक निष्ठावान साधिका के रूप में साहित्य-सेवा का जो आजीवन व्रत डॉ. कीर्ति काली ने धारण कर रखा है; उसे पर माँ हिंदी अपनी इस लाड़ली सुपुत्री पर गर्व की अनुभूति करती हैं।

संदर्भ

1. 'हिरनीला मन' - डॉ. कीर्ति काले; प्रज्ञा प्रकाशन (नई दिल्ली), पृष्ठ संख्या 62
2. 'ओत्तेरेकी' - डॉ. कीर्ति काले; डायमंड बुक्स प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 9
3. 'रामचरितमानस' - गोस्वामी तुलसीदास (गीताप्रेस गोरखपुर)
4. यूट्यूब (इंटरनेट) से
5. 'ओत्तेरेकी'- डॉ. कीर्ति काले; पृष्ठ संख्या 57
6. यूट्यूब (इंटरनेट) से
7. 'हिरनीला मन' - कवयित्री कीर्ति काले; पृष्ठ संख्या 11
8. उपर्युक्त से - पृष्ठ संख्या 31
9. उपर्युक्त से - पृष्ठ संख्या 32
10. उपर्युक्त से - पृष्ठ संख्या 33
11. उपर्युक्त से - पृष्ठ संख्या 34
12. उपर्युक्त से - पृष्ठ संख्या 46
13. उपर्युक्त से - पृष्ठ संख्या 47
14. उपर्युक्त से - पृष्ठ संख्या 82
15. 'यशोधरा' - राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त
16. यूट्यूब (इंटरनेट) से

शशांक चंद्र शुक्ल
शोध-अध्येता : दिल्ली विश्वविद्यालय
शुभम सिंह
शोध-अध्येता : दिल्ली विश्वविद्यालय

शैलेश मटियानी के कहानियों में शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण

–शुभम सिंह

–शशांक चंद्र शुक्ल

शैलेश मटियानी एक संवेदनशील कथाकार हैं। यही वजह है कि इन्होंने शोषितों, पीड़ितों, असहायों एवं दलितों के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त की है। कहीं पर भी शोषकों का पक्ष नहीं लिया है बावजूद इसके अपने साहित्य में इन्होंने निम्न वर्ग का गुणगान किया है। ये स्वयं अभाव एवं गरीबी भरा जीवन यापन कर रहे थे। यही कारण है कि इनकी कहानियों शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण हो पाया है।

दलित साहित्यकार अपने समाज से गहन जुड़ाव रखते हैं। वह अपनी पीड़ा से ज्यादा परपीड़ा को महत्त्व देता है। मटियानी जी एक ऐसे कहानीकार हैं जो अपने समाज में खासतौर से निम्न वर्ग जो दुःख, दर्द, अभाव व गरीबी का जीवन जी रहा है इसको अपनी सशक्त वाणी प्रदान की है। मटियानी जी का परिवेश विशेष रूप से कुमाऊँ एवं अल्मोड़ा रहा है। इस परिवेश के मजदूरों, गरीबों तथा स्त्रियों की जो दयनीय दशा है उसका इन्होंने जीवंत चित्रण किया है। ये जीवन भर यायावर रहे हैं। कभी बंबई, दिल्ली तो कभी इलाहाबाद। इन शहरों में मुख्य रूप से बंबई नगर के पीड़ितों का असल चित्रण अपनी कहानियों में किया है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का आइना होता है। इस युक्ति को इनकी कहानियाँ अक्षरशः सिद्ध करती हैं। इन्होंने अपने समझे जो कुछ देखा और असल में जो कुछ भोगा उसको अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। इनकी कहानियों के अनुशीलन से पता चलता है कि इनको अपने अंचल से बहुत ज्यादा प्रेम है साथ ही हमारे समाज में जो हाशिए पर हैं और निम्न स्तर का जीवन जी रहे हैं मसलन उठाईगिरी, चोर-बदमाश, वेश्याएँ, भिखमंगे इत्यादि हैं। इनके प्रति इनकी अत्यंत सहानुभूति है। इतना ही नहीं इनकी कहानियों के पात्र मानवतावादी भावना से ओत-प्रोत हैं। इस समय दलित साहित्य की खूब जोर-शोर से चर्चा है। दलित साहित्य के जो भी मानदंड हैं उन मानदंडों पर इनका साहित्य पूर्णतः खरा उतरता है। दलित साहित्य एक व्यापक साहित्य है। दलित साहित्य से सबंधित समस्त बिंदुओं पर शोध करना दुर्लभ नहीं है किंतु वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक तथ्यों का अभाव रह जाता है यही वजह है कि प्रस्तुत शोध-विषय से संबंधित कहानियों का ही चयन किया गया है।

हिंदी कहानी का मानव जीवन के साथ गहन रिश्ता प्राचीन काल से रहा है। कहानी में जिज्ञासा का भाव हमेशा विद्यमान रहता है। श्रोता के मन में सदैव यह भाव रहता है कि आगे क्या होने वाला है। इसी भाव के चलते उसे समय का पता नहीं चलता। जिज्ञासा भाव के कारण से वह कहानी को अच्छी तरह से हृदयमान कर जाता है। प्राचीन काल के बहुत से ऐसे ग्रंथ हैं जो कहानी के लिखे जाने का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं जैसे-हितोपदेश, पंचतंत्र, कथा सरित सागर इत्यादि। इन ग्रंथों में कथा-वस्तु स्थूल, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण का अभाव तथा मनोरंजन में प्रधान है। इसके बरक्स आधुनिक कहानी में सूक्ष्म कथावस्तु, पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक एवं मनोरंजकता से ओत-प्रोत है।

शैलेश मटियानी जी ने हमारे समाज में जो सबसे निचले पायदान पर हैं उनको अपनी कहानियों का विषय बनाया है। महानगरीय जीवन के दुःख-दर्द के वे स्वयं भोक्ता रहे हैं। यातनापूर्ण जीवन जीने के बाद भी वे मानवता के पुजारी रहे हैं। इसी वजह से वे श्रेष्ठ कथाकारों की पंक्ति में अपना स्थान बना पाते हैं। मटियानी जी का कहना था कि साहित्यकार को अपनी लेखन कार्य का ही नहीं बल्कि मनुष्य के निष्कर्ष को भी समझने की जरूरत है। इन्होंने लिखा है-मैं साहित्यकार का दायित्व अपने और अपने कृतित्व के लिए यशोजन तक ही सीमित नहीं मानता हूँ प्रत्युत यह भी प्रत्येक साहित्यकार का कर्तव्य होता है कि वह कृतित्व और व्यक्तित्व के माध्यम से अपने समसामयिक और आगत पीढ़ियों के रचनाकारों को ऐसी प्रेरणा दें कि वे अपने कटुतर संघर्ष के क्षणों में भी अपने स्वधर्म के लिए आस्था जुटा सकें। साहित्य सृजन और यशोर्जन के गुणों को अपनी छाती में ही दबाए रखना नहीं प्रत्युत अपने अनुभवों को औरों के सामने उन्मुक्त मन लेखनी से प्रस्तुत करके उनकी संभावनाओं के मार्ग को भी प्रस्तुत करना साहित्यकार का कर्तव्य होता है। अपने जीवन संघर्ष के संदर्भ में मटियानी जी लिखते हैं-लेखक और व्यक्ति के नाते मेरा अब तक का जीवन संघर्षपूर्ण रहा है। इतना संघर्षपूर्ण कि सिर्फ दो ही संभावनाएँ कि जितना कटु-प्रखर जीवन मुझे जीना पड़ा, वह साहित्यकार बनने की दिशा मेरे लिए एक वरदान सिद्ध हो। निसंदेह कहा जा सकता है कि वह संघर्षपूर्ण जीवन मटियानी जी के लेखन कार्य के लिए अवश्य वरदान सिद्ध हुआ है।

शोषितों, पीड़ितों, दलितों के ऊपर संक्षेप में नहीं अपितु विस्तार से बात करने के जरूरत है। मटियानी जी ने अपने कहानियों के विस्तार के साथ इनके ऊपर अपने सहज विचार व्यक्त किए हैं। इनकी कहानियों के अध्ययन से हम सर्वहारा वर्ग के प्रति सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं। आखिर इनके लिए क्या किया जाए जिससे इनकी स्थिति सुदृढ़ हो। इनसे थोड़ा पहले प्रेमचंद जी ने शोषितों, मजदूरों, किसानों के ऊपर लेखनी चलाई है और इन्होंने अपनी कहानियों में यह बात बताई है कि इनके पिछड़ेपन का मूल कारण शिक्षा है। शिक्षा के अभाव के कारण से ही यह वर्ग नारकीय जीवन जी रहा है। शिक्षा ही ऐसी चीज है जो व्यक्ति को उत्थान की ओर ले जा सकती है। अतः सबसे जरूरी चीज है शिक्षा इसलिए इस वर्ग को शिक्षित किया जाना चाहिए तभी इसका विकास हो सकता है।

पंडितों के द्वारा निम्न जाति के लोगों में कैसे डर और खौफ उनके दिमाग में व्याप्त कराया गया है इसको मटियानी जी ने अपने 'सतजुगिया आदमी' कहानी में बताई है- हरराम पुरोहित केशवचंद्र की तंत्र-मंत्र शक्ति से बहुत ही डरा हुआ और आतंकित है। हरराम के पुत्र पररराम ने सब युवा शिल्पकारों को इकट्ठा करके एक संगठन बनाया और उसने यह कहा कि कोई भी शिल्पकार ऐसा काम नहीं करेगा जिससे उनको घृणित व दलित समझा जाए। पुरोहित केशवाचंद की जब भैंस मर जाती है तब इसे उठाने के लिए वह हरराम को बुलावा भेजता है। इस पर हरराम अपने पुत्र पररराम को इस काम को करने के लिए कहता है तो पररराम न तो खुद जाता है और न ही किसी दूसरे को जाने देता है। तब उसका बाप हरराम क्रोधित होकर कहता है-खुला ब्रह्मदोष है। साले तू नहीं तो क्या सत्तर साल का बूढ़ा तेरा बाप खींचेगा दस मन की भैंस? हरराम पंडित केशवानंद से बहुत डरा हुआ था और वह सोच रहा था कि कहीं केशवानंद जी कुपित होकर कोई शाप न दे दें। केशवानंद के पिता पुरोहित राघवानंद की शक्ति हरराम अपनी आँखों से देखता आया है कि कैसे-कैसे विषैले सांपों, भूत-प्रेतों को मंत्र से बांध देते थे। फनफना कर डसने को आता हुआ विषधर सांप उनके ऊँ ऊँ कहने मात्र से अपनी ही ठौर स्थिर हो जाता था और ऐसे नाचने लगता जैसे कोई सपेरा बीन बजा बजाकर उसे वश में कर रहा हो- ''ऊँ विष्णु-विष्णु-विष्णु।''

मटियानी जी की कहानियों के नारी पात्र जीवन में संघर्ष करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। अपनी जीविका के लिए ये स्वयं कर्म क्षेत्र में अवतरित हैं किसी की सहानुभूति की मोहताज नहीं है जैसे-'पत्थर' की गपूफस, 'नंगा' कहानी की रेवती, 'चील' की सतनारायणी, 'मिट्टी' की गणेशी, 'प्यास' की कृष्णा बाई, 'अहिंसा' की बिंदा, 'महाभोज' की शिवरती, 'सावित्री' की सावित्री मिरासिन, 'भंवरे की जात की' कुंतली मिरासीन इत्यादि। 'नेगा' कहानी का रेवती का पति ठाकुर गुमानी के यहाँ हल जोतने का काम करता था और किन्हीं कारणों से उसकी मृत्यु हो जाती है। ठाकुर गुमानी एक बुरी दृष्टि वाला आदमी था जिसकी हमेशा गंदी नजर रेवती पर गड़ी रहती थी। गुमानी ने अपने स्वार्थ के लिए उनके रहने के लिए घर बनवा कर दे रखा था। रेवती अपने पति की मृत्यु के बाद उसी में रहती थी। हरिराम की मृत्यु के बाद रेवती तो अपने पुश्तैनी मकान में रहने जा रही थी पर गुमानी ठाकुर ने उसे रोक लिया था। रेवती ने भी हालात से समझौता करके ठाकुर को अपने आदमी के रूप में स्वीकार कर लिया था और इसीलिए ठाकुर से उसे गर्भ ठहर जाता है। ठाकुर ने गर्भ गिराने के लिए बहुत प्रयत्न किया परंतु अधिक महीने हो जाने के कारण गर्भ नहीं गिराया जा सका। तब यह तय होता है कि रेवती बच्चे को जन्म देगी, पर उसके बाद कोसी नदी में उसे बहा देगी। किंतु बच्चे को जन्म देने के बाद रेवती के भीतर की ममता जाग उठती है और वह विरोधी हो जाती है। रेवती अपने बेटे को हक दिलाने के लिए ठाकुर के खिलाफ पंचायत में पहुँचती है परंतु पंचायत में तो सब गुमानी ठाकुर की ही जी हुजूरी करने वाले बैठे थे। गुमानी ठाकुर को कहने की अपेक्षा उल्टे वे रेवती को ही माफी माँगने के लिए विवश करते हैं। तब पंचायत को फटकारते हुए रेवती कहती है कि मेहनत-मजदूरी करके वह अपने बेटे नरराम को पाल लेगी और यदि वह हरिराम की घरवाली है और नवजात शिशु नरराम की महतारी है तो वह गुमानी ठाकुर के खेते हगने मूतने भी नहीं जाएगी, जिसने थूककर चाट लिया है।

पत्थर कहानी की गपूफस में भी हमें साहस और संघर्ष देखने को मिलता है। वह एक नेक दिल और वफादार औरत है। गपूफस का शौहर रमजानी एक कामचोर और हरामखोर आदमी है। लेकिन गपूफस मेहनत-मजदूरी करके न केवल उसे खिलाता है बल्कि उसके सारे शौक भी पूरी करती है। पान, सिगरेट, शराब और मटन-बिरयानी सब चाहिए रमजानी को और गपूफस ये सब उसे देती थी। बस उसकी एक ही तमन्ना थी-''या अल्ला रसूल, उन्हें राजी-खुशी रखना।''

इस प्रकार मटियानी जी की कहानियों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसके कथा साहित्य में यथार्थवाद का सहज चित्रण है। ये प्रगतिवादी जीवन-मूल्यों के कहानीकार हैं। इन्होंने पीड़ित, दलित, शोषित एवं उपेक्षित लोगों का पक्ष लिया है। इन्होंने इनका इतना पक्ष लिया है कि आज तक इनसे ज्यादा पक्ष लेने वाला पैदा नहीं हुआ है।

संदर्भ

1. सतजुगिया आदमी, बर्फ की चट्टानें, पृष्ठ संख्या 129
2. नंगा, शैलेश मटियानी, पृष्ठ 206-204
3. पत्थर, शैलेश मटियानी की इक्यावन कहानियाँ, पृष्ठ संख्या 318-319

शुभम सिंह
शोध-छात्र : दिल्ली विश्वविद्यालय
शशांक चंद्र शुक्ल
शोध-छात्र : दिल्ली विश्वविद्यालय

आधुनिक भारत में डिजिटल स्वास्थ्य सेवाएँ : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ

–अंकिता रस्तोगी
–विनीता लाल

शोध-सार

वर्तमान समय में डिजिटल प्रौद्योगिकी ने स्वास्थ्य सेवाओं में एक महत्वपूर्ण क्रांति ला दी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के सात दशक पश्चात् भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। डिजिटल स्वास्थ्य सेवा का विकास और उसका प्रभाव आधुनिक समाज में तेजी से बढ़ रहा है। यह परिवर्तन न केवल स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार कर रहा है, बल्कि चिकित्सा पहुँच को भी व्यापक बना रहा है। भारत सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल रहा है और सतत् विकास लक्ष्यों एवं सार्वभौमिक हेल्थ कवरेज को लेकर भी निरन्तर प्रयासरत है। सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज, सतत् विकास लक्ष्य 3 का एक प्रमुख लक्ष्य है, जो सभी व्यक्तियों और समुदायों को बिना किसी आर्थिक समस्या के आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने की परिकल्पना करता है। डिजिटलीकरण स्वास्थ्य सेवाओं को सुलभ एवं प्रभावी बनाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है और इसमें सभी के लिए सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज लक्ष्यों का पूरा करने की क्षमता है।

मुख्य शब्द :

सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज, सतत् विकास लक्ष्य, डिजिटल शिक्षा, विविधता

प्रस्तावना

भारत में स्वास्थ्य सुधार लाने के लिए नीति आयोग द्वारा सन् 2018 में राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन को प्रस्तावित किया गया। इस मिशन का शुभारम्भ भारत के 74वें स्वतन्त्रता दिवस अर्थात् 15 अगस्त 2020 में किया गया। इसके तहत देश के प्रत्येक नागरिक को डिजिटल प्रणाली के माध्यम से स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं को उपलब्ध कराया जाता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2017) के अनुसार, भारत के प्रत्येक नागरिक को सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराना था। इस नीति को लागू करने के दौरान ही स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने माना कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत को स्वास्थ्य क्षेत्र में डिजिटलीकरण करना होगा। इसके लिए भारत में राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत की गई। यह मिशन जहाँ एक ओर यह मिशन स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने में सहायक है, वहीं दूसरी ओर डिजिटल शिक्षा का ज्ञान कम लोगों तक ही सीमित होने के कारण इस मिशन को कई प्रकार की कठिनाइयों एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

डिजिटल स्वास्थ्य सेवा की वह प्रणाली है, जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। इसमें टेलीमेडिसिन, मोबाइल स्वास्थ्य एप्लिकेशन, इलेक्ट्रॉनिक स्वास्थ्य रिकॉर्ड और अन्य डिजिटल उपकरण आदि शामिल होते हैं। डिजिटल स्वास्थ्य सेवाएँ ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच को आसान बनाती हैं। टेलीमेडिसिन और ऑनलाइन परामर्श के माध्यम से मरीज और डॉक्टर दोनों के समय और लागत की बचत होती है। इलेक्ट्रॉनिक स्वास्थ्य रिकॉर्ड के माध्यम से मरीजों का डेटा संगठित और सुरक्षित रहता है, जिससे इलाज में आसानी होती है। आधुनिक समाज में प्रौद्योगिकी की तेजी से बढ़ती उपयोगिता ने हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित किया है। डिजिटल स्वास्थ्य जो कभी केवल एक अवधारणा थी, अब लोगों की जरूरत बन चुकी है।

डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का प्रचलन एवं प्रसार

पी.आई.बी. (2023) की रिपोर्ट के अनुसार, राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन में लगभग 50 करोड़ हेल्थ आई.डी. बन

चुके हैं। जिसमें से लगभग 1.5 करोड़ लोगों ने आभा आधारित त्वरित ओपीडी पंजीकरण सेवा का लाभ लिया एवं 50 लाख लोगों ने अपने व्यक्तिगत स्वास्थ्य रिकॉर्ड को डिजिटल रूप से प्रबंधित करने के लिए आभा ऐप डाउनलोड किया है। जून 2023 तक कुल 1205 स्वास्थ्य केंद्रों ने पंजीकरण किया है, जिसमें 567 सार्वजनिक और 638 निजी अस्पताल, क्लीनिक और डायग्नोस्टिक लैब शामिल हैं।

नरेन्द्र शर्मा (2021) ने अपने लेख में बताया कि भारत सरकार का अनुमान है कि आयुष्मान डिजिटल हेल्थ मिशन सम्पूर्ण विश्व में सबसे बड़ा हेल्थ प्रोवाइडर होगा लेकिन इसके न अपने अस्पताल होंगे न अपने डॉक्टर क्योंकि यह एक हेल्थ ऐप है। वर्तमान में सबसे बड़ी समस्या यह है कि भारत में कुछ लोगों के पास डिजिटल सुविधाओं तक पहुँच हैं, और उनमें से बहुत से लोग इसका इस्तेमाल करना नहीं जानते हैं। अतः कह सकते हैं कि जब तक डिजिटल साक्षरता नहीं बढ़ती तब तक आयुष्मान भारत डिजिटल हेल्थ मिशन से सभी लोगों का लाभान्वित होना अत्यन्त कठिन है।

हमारे देश में लगभग सभी सुविधाएँ ऑनलाइन के माध्यम से की जा रही हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण स्थान डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का है। वर्ष 2017-18 के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (नेशनल सेम्पल सर्वे) के आँकड़ों के अनुसार केवल 42 प्रतिशत शहरी एवं 15 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध थी। जिनमें केवल 34 प्रतिशत शहरी एवं 11 प्रतिशत ग्रामीण व्यक्तियों ने पिछले 30 दिनों में इन्टरनेट का उपयोग किया था। ये आँकड़े स्पष्ट रूप से इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भारत में ऑनलाइन सम्बन्धी प्रणाली अत्यन्त कमजोर है। इसका लाभ भारत के लगभग 45 प्रतिशत लोग ही उठा पाते हैं। सरकार को डिजिटल स्वास्थ्य शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों को संचालित करना चाहिए, जिससे इस मिशन को सफल बनाया जा सके। भारत में डिजिटलीकरण से सम्बन्धित चुनौतियों को देखते हुए समाज में डिजिटल स्वास्थ्य शिक्षा सम्बन्धी जागरुकता लाने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में निरन्तर डिजिटल प्रौद्योगिकियों का प्रयोग करने के बावजूद स्वास्थ्य सेवाओं का विकास डिजिटल स्वास्थ्य साक्षरता एवं जागरूकता पर भी निर्भर करता है।

सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों, जो कि डिजिटल है, उनमें लोगों की पहुँच बहुत कम है। ताजा डिजिटल रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 45.1 करोड़ लोग इन्टरनेट का प्रयोग करते हैं। चीन के बाद दूसरे स्थान पर होने के बाद भी भारत में 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या इन्टरनेट की पहुँच से बाहर है, क्योंकि भारत 'गाँवों का देश' है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार देश की अधिकांश जनसंख्या (68.8 प्रतिशत) ग्रामीण है। अतः स्पष्ट होता है, कि भारत का डिजिटल प्लेटफार्म काफी कमजोर है। सबसे बड़ी चुनौती यह है कि डिजिटल शिक्षा का माध्यम मुख्यतः अंग्रेजी है। इसी कारण ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को इससे जुड़ने मे कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं में चुनौतियाँ

दुनिया में कोविड-19 जैसी महामारी के प्रकोप के पश्चात् डिजिटल स्वास्थ्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है। जहाँ एक तरफ डिजिटलीकरण की प्रक्रिया जितनी सहायक सिद्ध हुई है, वहीं दूसरी तरफ अधिकांश लोगों के समक्ष डिजिटलीकरण चुनौती के रूप में प्रकट हुई है। इसका प्रमुख कारण लोगों का डिजिटल शिक्षा के प्रति जागरूकता का न होना है। डिजिटल स्वास्थ्य सेवा पूर्ण रूप से संचालित करने के लिए सरकार को बहुत-सी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। डिजिटल प्रौद्योगिकियों के प्रयोग करने के बावजूद भी डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का विकास स्वास्थ्य साक्षरता एवं जागरूकता पर भी निर्भर करता है। कम डिजिटल साक्षरता स्तर वाले लोग डिजिटल स्वास्थ्य प्रणाली से जुड़ तो जाते हैं, किन्तु ऐसे लोग इसका लाभ लेने के बजाय प्रणाली के आर्थिक भार को ही बढ़ाते हैं। जब तक लोगों में डिजिटल साक्षरता नहीं होगी, वे इन सेवाओं से कैसे लाभान्वित होंगे? डिजिटल स्वास्थ्य के साथ ही सरकार को लोगों को डिजिटलीकरण का ज्ञान देने हेतु प्रयास करने चाहिए।

डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार के साथ ही ऑनलाइन धोखाधड़ी का जोखिम भी बढ़ा है। कई बार लोग अयोग्य चिकित्सकों द्वारा तर्कहीन उपचार प्राप्त करते हैं या ऑनलाइन धोखाधड़ी का शिकार हो जाते हैं। यह समस्या विशेष रूप से उन क्षेत्रों में अधिक गंभीर है जहाँ स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच सीमित है। डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का प्रभावी उपयोग स्वास्थ्य साक्षरता पर निर्भर करता है। कम स्वास्थ्य साक्षरता वाले लोग डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का सही तरीके से उपयोग नहीं कर पाते हैं, जिससे वे स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं उठा पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच और गुणवत्ता में असमानता बढ़ती जा रही है। डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं में मरीजों की व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा एक प्रमुख चिंता का विषय है, विशेषकर वृद्ध और ग्रामीण आबादी में तकनीकी साक्षरता की कमी डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग में बाधा उत्पन्न करती है। पर्याप्त इंटरनेट कनेक्टिविटी और आवश्यक उपकरणों की कमी भी एक बड़ी चुनौती है।

भारत जैसे विकासशील देशों में, अभी भी अनेक क्षेत्रों में इंटरनेट और प्रौद्योगिकी तक पहुँच नहीं है। ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में इंटरनेट की कनेक्टिविटी की समस्या

बड़ी चुनौती है। इसके अलावा, कई लोगों के पास आवश्यक डिजिटल उपकरण जैसे स्मार्टफोन, टैबलेट या कंप्यूटर उपलब्ध नहीं हैं। बुजुर्ग लोग और कम शिक्षा प्राप्त लोग डिजिटल उपकरणों का सही उपयोग करने में कठिनाई महसूस करते हैं। उन्हें डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का उपयोग करने की जानकारी नहीं होती, जिससे वे स्वास्थ्य शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। उपलब्ध ऑनलाइन स्वास्थ्य जानकारी की गुणवत्ता और प्रामाणिकता सुनिश्चित करना कठिन होता है। कई बार गलत या अप्रमाणिक जानकारी भी उपलब्ध होती है, जो स्वास्थ्य समस्याओं को बढ़ा सकती है। भारत जैसे बहुभाषीय और सांस्कृतिक विविधता वाले देश में, डिजिटल स्वास्थ्य सामग्री का एक ही भाषा या संस्कृति में उपलब्ध होना भी एक बड़ी समस्या है। अन्य भाषाओं और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोग इस सामग्री का उपयोग नहीं कर पाते हैं।

डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठाने के लिए आवश्यक उपकरणों और सेवाओं की लागत उच्च होने के कारण आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए निःशुल्क इन सेवाओं का लाभ उठाने में असमर्थता हो सकते हैं। जब तक बाह्य रोगी उपचार की लागतों को कम नहीं किया जाता, तब तक डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का पूर्ण लाभ प्राप्त करना कठिन होगा। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर व्यक्तिगत स्वास्थ्य जानकारी साझा करते समय गोपनीयता और सुरक्षा का प्रश्न उठता है। डेटा-ब्रीच और साइबर हमलों का खतरा हमेशा बना रहता है, जिससे लोगों की व्यक्तिगत जानकारी खतरे में पड़ सकती है। डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं में डेटा की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। स्वास्थ्य डेटा का दुरुपयोग न हो, इसके लिए सख्त सुरक्षा उपायों की आवश्यकता है। यदि डेटा सुरक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया, तो इससे मरीजों की गोपनीयता और सुरक्षा पर गंभीर खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। नवंबर, 2022 में एम्स को साइबर हमले का सामना करना पड़ा था। जैसे ही सर्वर डाउन हुआ, इसका असर बाह्य रोगी विभाग के कामकाज और नमूना संग्रह सेवाओं पर भी पड़ा।

डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं में सम्भावनाएँ

डिजिटल स्वास्थ्य मिशन, आधुनिक भारतीय समाज के लिए एक क्रांतिकारी कदम है। यह सत्य है कि इसका पूर्ण क्षमता से लाभ उठाने के लिए चुनौतियों का समाधान आवश्यक है, जिसके लिए उचित नीतिगत हस्तक्षेप, जन-जागरूकता और तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता है। सरकार और निजी क्षेत्र को मिलकर इंटरनेट और प्रौद्योगिकी के इंफ्रास्ट्रक्चर को मजबूत करना चाहिए, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। सस्ती और सुलभ इंटरनेट सेवाओं का प्रावधान किया जाना चाहिए ताकि सभी लोग डिजिटल शिक्षा का लाभ उठा सकें। डिजिटल साक्षरता बढ़ाने के लिए व्यापक अभियान चलाने की जरूरत है। स्कूलों, कॉलेजों और सामुदायिक केंद्रों में डिजिटल साक्षरता कोर्सेज को अनिवार्य किया जाना चाहिए ताकि सभी लोग डिजिटल उपकरणों का सही उपयोग सीख सकें। ऑनलाइन स्वास्थ्य जानकारी की गुणवत्ता और प्रामाणिकता को सुनिश्चित करने के लिए कठोर नियम और रेगुलेशन होने चाहिए। सरकार और स्वास्थ्य संगठनों को प्रमाणित और विश्वसनीय जानकारी के स्रोत प्रदान करने चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा सामग्री को विभिन्न भाषाओं और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को ध्यान में रखते हुए विकसित किया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हर व्यक्ति को अपनी भाषा में गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य जानकारी मिले। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर सुरक्षा मानकों को बढ़ाना चाहिए ताकि व्यक्तिगत स्वास्थ्य जानकारी सुरक्षित रहे। इसके लिए उन्नत एनक्रिप्शन तकनीकों और सुरक्षा प्रोटोकॉल का उपयोग किया जाना चाहिए। लोगों को भी जागरूक किया जाना चाहिए कि वे अपनी व्यक्तिगत जानकारी को सुरक्षित रखने के लिए क्या-क्या उपाय कर सकते हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त डिजिटल युग में स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित करने हेतु कुछ अवसर हमारे समाज में मौजूद हैं, जो निम्न हैं-

हमारे देश की जनसंख्या में क्षेत्रीय, सामाजिक (जातीय/नृजातीय) एवं सांस्कृतिक (धार्मिक एवं भाषागत) विविधता है। इस प्रकार की विविधता के कारण अलग-अलग समुदायों के लिए उनकी आवश्यकतानुसार सेवाओं को उपलब्ध कराना होगा, जिसके लिए विशेष प्रशिक्षण एवं संसाधन जुटाने होंगे, जिससे समाज में नये तरह के रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे।

सबके लिए संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए तकनीकी को स्थानीय भाषा में सस्ती दर पर उपलब्ध करानी होगी, जिसके लिए नयी शोध परियोजनाओं एवं उनके परीक्षण के अवसर उपलब्ध होंगे।

हमारे देश की अधिसंख्यक जनसंख्या गरीबी एवं अन्य भेदभावों का सामना करती है, जिससे निपटने के लिए सरकार को उपलब्ध कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में निगरानी बढ़ानी होगी।

जनसामान्य की निजी जानकारी के दुरूपयोग रोकने हेतु उपलब्ध कानूनों का कड़ाई से पालन कराना होगा।

निष्कर्ष

भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र में डिजिटलीकरण एक क्रान्तिकारी कदम हैं। डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का विकास और उसका प्रभाव आधुनिक समाज में स्वास्थ्य सेवाओं के परिदृश्य को बदल रहा है। यह न केवल स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार कर रहा है, बल्कि चिकित्सा पहुँच को भी व्यापक बना रहा है। हालांकि, इसके साथ ही कई चुनौतियाँ भी हैं,

जिन्हें ध्यान में रखते हुए समाधान निकाले जाने की आवश्यकता है। डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का भविष्य उज्ज्वल है और सही नीतियों और उपायों के साथ, यह समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इन सेवाओं का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन न केवल स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और पहुँच में सुधार करेगा, बल्कि यह स्वास्थ्य सेवाओं के लोकतंत्रीकरण की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम होगा। डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से हम न केवल वर्तमान स्वास्थ्य चुनौतियों का समाधान कर सकते हैं, बल्कि भविष्य की स्वास्थ्य आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकते हैं। यह एक नई स्वास्थ्य सेवा क्रांति की शुरुआत है, जो समाज के सभी वर्गों को स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ पहुँचाने में सक्षम है।

आज समाज के प्रत्येक नागरिक को डिजिटल स्वास्थ्य प्रति जानकारी एवं जागरुकता होनी चाहिए। भारत सरकार को बच्चों के पाठ्यक्रम में डिजिटल स्वास्थ्य को भी जोड़ना चाहिए। जिसके माध्यम से समाज को पूर्णतः स्वस्थ समाज के रूप में निर्मित किया जा सकता है। डिजिटल स्वास्थ्य सेवा में आने वाली चुनौतियाँ गंभीर हैं, लेकिन इन्हें दूर करने के लिए ठोस कदम उठाए जा सकते हैं। उचित रणनीति, संसाधनों का समुचित वितरण और सभी हितधारकों का सहयोग इन चुनौतियों को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। डिजिटल शिक्षा की सफलता सुनिश्चित करने के लिए एक समग्र और समावेशी दृष्टिकोण आवश्यक है, जिससे हर व्यक्ति को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य शिक्षा प्राप्त हो सके। डिजिटल स्वास्थ्य सेवा को प्रभावी बनाने के लिए एक व्यापक योजना और सतत् प्रयास की आवश्यकता है, जो आने वाले समय में स्वास्थ्य सेवाओं को और अधिक सुलभ और प्रभावी बना सके।

सन्दर्भ

1. वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन (2018), क्लासिफिकेशन ऑफ डिजिटल हेल्थ इन्टरवेन्शन : ए शेयर्ड लैंग्वेज टू डिस्क्राइब द यूसज ऑफ डिजिटल टेक्नोलॉजी फॉर हेल्थ।
2. श्रीवास्तव, राजीव. (2018). ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण : आगे की राह. कुरुक्षेत्र. वैल्यूम-64, अंक-03।
3. शीथल, के.. एवं मेनका, बी. (2019). डिजिटलाइजेशन ऑफ एजूकेशन इन 21 सेन्चुरी : अ बून ऑर वेन।
4. गुटरेस, एन्टोनी. (2020). युनाइटेड नेशन्स जनरल रिपोर्ट।
5. जेबाराज, प्रिसीलिया. (2020). ऑनलाइन लर्निंग ऑउट ऑफ रीच फार मैनी।
6. बाजपेई, एन. एवं वाधवा, एम. (2020). इंडियाज़ नेशनल डिजिटल हेल्थ मिशन, नई दिल्ली।
7. व्यास, आशुतोष. (2021). ऑनलाइन शिक्षा : ज्ञान का नया परिवेश और चुनौतियाँ, राजस्थान जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, अंक-13
8. गर्ग, मनीष. (2022). सभी के लिए उत्तम शिक्षा. योजना, वैल्यूम-66, अंक-02।
9. PIB (2023). https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=k1917155. Accessed date 15 Dec 2023.

अंकिता रस्तोगी
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

विनीता लाल
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
नेताजी सुभाष चन्द्र बोस राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

भारत में सतत् विकास हेतु शिक्षा : एक विश्लेषण

–बेचा लाल
–अनिल कुमार

शोध-सार

सतत् शिक्षा की अवधारणा विकास की ऐसी शर्तों पर आधारित है, जिसमें कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित न रहे, उसके पढ़ने, आगे बढ़ने, पोषक आहार पाने एवं स्वस्थ रहने के अवसरों में किसी प्रकार की गैरबराबरी न हो। यह तभी सम्भव हो सकेगा जब गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं में समता हो। प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद में शिक्षा के सतत् विकास से सम्बन्धित आंकड़ों का विश्लेषण है। वर्तमान समय की माँग है कि शिक्षा-नीतियों का क्रियान्वयन सुचारू रूप से किया जाए, जिससे गुणवत्तापूर्ण एवं सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना को समय पर पूर्ण किया जा सके। सतत् विकास के लिए शिक्षा हेतु हमारा पाठ्यक्रम एवं शैक्षिक वातावरण ऐसा हो, जिसमें पर्यावरण संरक्षण, जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने, महासागरों व जंगलों को संरक्षित करने में सक्षम हो तथा सामाजिक समानता और आर्थिक संतुलन के साथ भुखमरी, गरीबी, गैर-बराबरी व अन्य अभावों को समाप्त करने एवं स्थानीय समुदाय की जरूरतों जैसे स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, रोजगार के अवसरों को पूरा कर सके।

मुख्य शब्द : छात्र नामांकन, छात्र-शिक्षक अनुपात, व्यवसायिक शिक्षा, पर्यावरण, समता।

प्रस्तावना

''सतत् विकास[1] वह विकास है जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करता है।'' सतत् विकास की अवधारणा की कई अलग-अलग तरीकों से व्याख्या की जा सकती है, लेकिन इसके मूल में विकास के लिए एक दृष्टिकोण है, जो पर्यावरण, सामाजिक और आर्थिक सीमाओं के साथ अक्सर प्रतिस्पर्धात्मक जरूरतों को संतुलित करता है, जिसका हम सामाजिक जीवन में सामना करते हैं। सतत् विकास की धारणा एक ऐसी पारिस्थितिकी संवेदी आर्थिक-प्रणाली के निर्माण के सिद्धान्त प्रस्तुत करती है, जो मौजूदा अर्थ-व्यवस्था की गलतियों और शोषणपूर्ण व्यवस्था को ठीक करने के साथ-साथ ऐसा विकल्प देती है जिसमें शिक्षक और चिकित्सकों के साथ 'स्कूलों' में पढ़ने वाली समग्र पीढ़ी से युक्त पारिस्थितिकी स्थापित की जा सके, जो समानता एवं समता का भाव पैदा करती हो।

1.1 सतत् विकास की पृष्ठभूमि

सन् 1983 में पर्यावरणीय समस्याओं यथा- ओजोन पर्त में छेद, ग्लोबल वार्मिंग जैसी बढ़ती चिंता के समाधान खोजने हेतु संयुक्त राष्ट्र महासभा ने नार्वे के प्रधानमंत्री ग्रो ब्रंटलैण्ड की अध्यक्षता में पर्यावरण विशेषज्ञों, राजनेताओं एवं जनसेवकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय समूह का गठन किया। इस दल ने सन् 1987 में 'पर्यावरण एवं विकास : हमारा साझा भविष्य' रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसे संयुक्त राष्ट्र विश्व आयोग द्वारा प्रकाशित किया गया। इस रिपोर्ट को ब्रंटलैण्ड रिपोर्ट के नाम से भी जाना जाता है, जिसमें सबसे पहले 'सतत् विकास' शब्द एवं अवधारणा का उदय हुआ। इस अध्ययन में पर्यावरणीय गिरावट के कारणों की खोज, सामाजिक समानता, आर्थिक विकास और अन्य पर्यावरणीय समस्याओं के बीच अन्तर्सम्बन्धों को समझने का प्रयास किया गया था, जिसके माध्यम से तीनों क्षेत्रों को एकीकृत करने वाले नीतिगत समाधान विकसित करने पर जोर दिया गया।

सन् 1989 में अमेरिकी अर्थशास्त्री एवं पर्यावरण विशेषज्ञ हरमन ई. डेली एवं अमेरिकन दार्शनिक एवं पर्यावरण विशेषज्ञ जॉन बी. कॉब ने मिलकर सतत् आर्थिक कल्याण सूचकांक (ISEW) विकसित किया, जिसे उन्होंने सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के बजाय सामाजिक-आर्थिक प्रगति के व्यावहारिक और अधिक कारगर वैध उपाय के रूप में प्रस्तावित किया। हरमन डेली[2] को व्यापक रूप से गैर-आर्थिक विकास की अवधारणा विकसित करने का श्रेय दिया

जाता है। सामाजिक-आर्थिक प्रगति के व्यावहारिक उपाय सुझाने के लिए हरमन डेली एवं जॉन कॉब को शांति पुरस्कार के लिए सह-नामांकित किया गया था। हरमन डेली एवं जॉन कॉब द्वारा विकसित सतत् विकास संकेतक जो, समृद्ध मानव समाज की निरन्तरता के लिए आवश्यक है, जिन्हें हरमन डेली के तीन नियमों[3] के रूप में जाना जाता है- 1) अक्षय संसाधनों के सतत् उपयोग, 2) गैर-नवीकरणीय संसाधनों के सतत् उपयोग, एवं प्रदूषण और कचरे के लिए उत्सर्जन की सतत् दर।

सन् 2022 में संयुक्त राष्ट्र सतत् विकास रिपोर्ट[4] प्रकाशित की गयी, जिसमें सभी 17 सतत् विकास लक्ष्यों से जुड़े देशों (विकसित और विकासशील) से वैश्विक साझेदारी में कार्यवाही के लिए एक तक्काल आह्वान किया गया है। इसमें कहा गया है, कि दुनिया में गरीबी व अन्य अभावों को समाप्त करने हेतु सबके लिए स्वास्थ्य और शिक्षा में सुधार, असमानता को कम करने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने वाली रणनीतियों को एक साथ चलना होगा। सतत् विकास रिपोर्ट 2022 के सार्वजनिक करते समय संयुक्त राष्ट्र महासचिव, एंटोरियो गुटेरेस ने कहा कि 'हमें सतत् विकास लक्ष्यों को बचाने के निजी लाभ से ऊपर उठना चाहिए- और एक स्वस्थ ग्रह (जिसे हम धरती कहते हैं) पर शांति, गरिमा और समृद्धि की दुनिया के अपने वादे पर खरा उतरना होगा।'

1.2 सतत् विकास के लिए शिक्षा

सतत् विकास लक्ष्यों की रिपोर्ट[5] (2022) में उपलब्ध नवीनतम आँकड़ों और अनुमानों का उपयोग करते हुए सतत् विकास लक्ष्य की प्रगति का वैश्विक दृ टकोण प्रदान करती है, जिसमें हमारे सामने मौजूद चुनौतियों की गंभीरता और परिमाण को दर्शाया गया है। 21वीं सदी के आरम्भिक वर्षों में कोविड-19, जलवायु परिवर्तन और संघर्षों के प्रभुत्व वालें संकटों ने हमारे योग, भोजन और पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण, शांति और सुरक्षा पर अतिरिक्त प्रभाव डाला है, जिसने सभी सतत् विकास लक्ष्यों को प्रभावित किया है। रिपोर्ट में गरीबी और भुखमरी के उन्मूलन, स्वास्थ्य और शिक्षा में सुधार, बुनियादी सेवाएँ प्रदान करने, और पिछले कुछ में वर्षों की प्रगति के उलट परिणाम होने का विवरण दिया गया है।

यूनेस्को की स्वास्थ्य शिक्षा रिपोर्ट[6] (2022) में दावा किया गया है कि शिक्षार्थियों के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा के परिणामों में सुधार के लिए यूनेस्को की दीर्घकालिक प्रतिबद्धता है। स्वास्थ्य और भलाई के लिए शिक्षा पर यूनेस्को की रणनीति द्वारा निर्देशित, एक ऐसी दुनिया की कल्पना की गई है, जहाँ शिक्षार्थी फलते-फूलते हैं। ऐसी संकल्पना का साकार रूप सुनिश्चित करने के लिए तीन प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में काम करने पर बल देते हैं, जिसमें सभी शिक्षार्थी सशक्त हो सकें। इसे निम्नलिखित माध्यमों से पूर्ण किया जा सकता है :-

1. ऐसी विद्यालय व्यवस्था विकसित की जाए जो शिक्षार्थी के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देती हो।

2. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ लिंगभेद मिटाने वाली व्यापक यौनिक-शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसमें एच.आई. वी, जीवन कौशल, परिवार और अधिकार शामिल हों।

3. सुरक्षित और समावेषी शिक्षण का वातावरण विकसित तथा ऐसी शिक्षा का अवसर शामिल हो, जिसमें सभी प्रकार की हिंसा-धमकाने, कलंक और भेदभाव से मुक्ति का मार्ग खुल सके।

सतत् विकास के लिए शिक्षा यूनेस्को[7] (2023) की शिक्षा क्षेत्र में जवाबदेही तय करती है, जो धरती के सामने आने वाली तत्कालीन और नाटकीय ढंग से उभरने वाली चुनौतियों का सामना करती है। मनुष्यों की सामूहिक गतिविधियों ने पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र को बदल दिया है। जिससे हमारा अस्तित्व ही खतरे में प्रतीत होता है, क्योंकि परिवर्तनों को हर दिन उलटना अधिक कठिन होता है। यूनेस्को के महानिदेशक ऑड्रे एजोले ने 8 फरवरी 2023 को अपने भाषण में कहा है कि, छात्र सुरक्षित और स्वस्थ वातावरण वाले स्कूलों में सर्वश्रेष्ठ सीखते हैं। वह सभी देशों से इस बात का समर्थन करने का आह्वान करते हैं कि वह शैक्षणिक संस्थानों में आवश्यक पेयजल और स्वच्छता सुविधाओं सहित अच्छे स्वास्थ्य, पोषण और सामाजिक सुरक्षा हेतु निवेश करें- क्योंकि सभी बच्चे एक ऐसे वातावरण के हकदार है, जहाँ वे अपनी पूरी क्षमता विकसित कर सकें।

1.3 अध्ययन का उद्देश्य

सतत् विकास लक्ष्य प्राप्ति में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा विशेषतः शिक्षा के सार्वभौमीकरण एवं शिक्षा में लैंगिक एवं जातीय समावेशन का अध्ययन करना है।

सतत् विकास लक्ष्य हेतु वातावरण, शिक्षक-छात्र अनुपात तथा छात्र नामांकन सुधार की स्थिति ज्ञात करना है।

1.4 अध्ययन विधि

वर्तमान अध्ययन के वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष के लिए वर्णनात्मक अध्ययन विधि का प्रयोग किया किया गया है। इस अध्ययन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में अवलोकन एवं गहन साक्षात्कार किया गया है। द्वितीयक सामग्री के रूप में यूनेस्को एवं अन्य संगठनों की रिपोर्ट, सांख्यिकी पत्रिका, लखनऊ से सन् 2015 एवं 2022 के शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

2. भारत में शिक्षा का सार्वभौमीकरण एवं सतत् विकास के लिए शिक्षा

भारत सहित दुनिया के सभी देश सन् 2030 तक यह सुनिश्चित करें, कि सभी शिक्षार्थी सतत् विकास को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त करें। इसमें अन्य बातों के अलावा, सतत् विकास और स्थायी जीवन शैली के लिए शिक्षा के माध्यम से, मानवाधिकार, लैगिंक समानता, शांति और अहिंसा की संस्कृति को बढ़ावा देना शामिल रही है। भारत में सतत् विकास की धारणा बुद्ध कालीन भारत एवं आजादी पूर्व के भारत में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिक एवं समावेशी शिक्षा की कवायद सदियों से की जा रही है, इसके लिए विभिन्न शिक्षा-सुधारकों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले ने सन् 1848 में लड़कियों के लिए पहला विद्यालय खोला था, जिससे समावेशी एवं समातामूलक शिक्षा को गति मिली। इस घटना के साथ ही भारत में शिक्षा के अधिकार पर बहस की शुरुआत लगभग 140 साल से भी पहले छिड़ गयी, जब 1882 में ज्योतिबा फुले द्वारा भारतीय शिक्षा आयोग (यानी हंटर कमीशन) को दिये गए ज्ञापन का एक बड़ा हिस्सा इस बात पर आधारित था कि ब्रिटिश सरकार किस प्रकार धन मुहैया कराती है, जिससे शिक्षा ''अज्ञानता और गरीबी में डूबे हुए लोगों'' को छोड़कर केवल ''ब्राह्मणों और उच्च वर्गों'' को लाभान्वित करती हो। इस कार्य को गति देने का कार्य एक सदी पहले श्री दादाभाई नौरोजी द्वारा बताई गई नीतियों से हुई।

इसके बाद श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने शिक्षा के सार्वभौमीकरण का बीड़ा उठाया। सन् 1911 में उन्होंने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव असेंबली में अपना 'मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा विधेयक' पेश किया तो उन्हें सामंतों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था[8], किन्तु उनके इन प्रयासों का श्री आर. वी. पारूलेकर ने समर्थन दिया। स्वतंत्र भारत का संविधान जो 1950 में लागू हुआ था, शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को दस वर्ष की अवधि (अर्थात् 1960 तक) के भीतर[9] प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा था। यद्यपि लक्षित वर्षों की संख्या का 7 गुना समय बीत चुका है किन्तु लक्ष्य पूर्ण नहीं हुए हैं। 20वीं सदी पूर्ण होते-होते लोगों में शिक्षा के प्रति रवैये में कुछ सुधार आया लेकिन 1990 के बाद अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के प्रभावस्वरूप भारतीय शिक्षा सार्वजनिक क्षेत्र से निजी-क्षेत्र में हस्तांतरित होने के कारण गरीबों से दूर होने लगी है, जिसके लिए पूंजीपतियों की लॉबी जिम्मेदार है।

समाजवैज्ञानिकों के सुझाव, नागर समाज[10] के दबाव के परिणामस्वरूप 21वीं सदी में भारत सरकार के साथ-साथ राज्य सरकारों ने विभिन्न योजनाओं के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने तथा सतत् विकास लक्ष्य पूर्ति हेतु गति देने का प्रयास किया है। मिलेनियम विकास लक्ष्य के अनुपालन में भारत सरकार ने सन् 2005 में सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य को पाने एवं सबके लिए शिक्षा सुगम करने हेतु सर्वशिक्षा अभियान[11] आरम्भ किया। ड्रॉपआउट बालिकाओं हेतु कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना चलाकर महिला सशक्तीकरण की दिशा में कदम बढ़ाया। समान पाठ्यक्रम लागू करने हेतु निःशुल्क पुस्तकें, निःशुल्क ड्रेस, मध्यान्ह भोजन आदि के माध्यम से सबके लिए समान, सार्वभौमिक शिक्षा प्रणाली का विकास किया है। सन् 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित कर 6-14 वर्ष के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा का अधिकार प्रदान किया।[12]

पिछले दो दशकों में भारत में शिक्षा के क्षेत्र में जो मूलभूत परिवर्तन हुए हैं, उनसे शिक्षा के क्षेत्र में मात्रात्मक वृद्धि हुई है, किन्तु वर्तमान में निजीकरण के दौर में गुणवत्ता में आयी गिरावट ने सबको चिंता में डाल दिया है। फिर भी सरकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से शिक्षा में सुधार का प्रयास कर रही है। तान्या शर्मा[13] (2022) का मानना है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्कूली शिक्षा के सर्वव्यापकीरण का लक्ष्य रखा गया है, उसे 2030 तक पूरा करना है। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश की सकल नामांकन स्थिति भारत की औसत सकल नामांकन स्थिति से प्रत्येक स्तर पर कम है। बेसिक (1-8 तक) स्तर पर उत्तर प्रदेश में 98.1 प्रतिशत नामांकन है, जो भारत के औसत नामांकन प्रतिशत से 2 प्रतिशत कम है। हाईस्कूल (9-10 तक) स्तर पर उत्तर प्रदेश में 69.3 प्रतिशत नामांकन है, जो भारत के औसत नामांकन प्रतिशत से 10.3 प्रतिशत कम है। इण्टरमीडिएट (11-12 तक) स्तर पर नामांकन 50.7 प्रतिशत है जो भारत के औसत से 5.3 प्रतिशत कम है, वहीं उच्च शिक्षा (18-23 आयु) में 23.2 प्रतिशत है, जो भारत के औसत से 4.10 प्रतिशत कम है (भारत में सकल नामांकन स्थिति 2021-22)[14]। इस आधार पर कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा में नामांकन एवं गुणवत्ता दोनों में सुधार की आवश्यकता है।

3. लखनऊ जनपद में सतत् विकास के लिए शिक्षा

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी होने के साथ ही शिक्षा का केन्द्र होता जा रहा है। यह जनपद ऐतिहासिक महत्व के साथ ही नजाकत और तहजीब का केन्द्र भी माना जाता है। फिर भी यहाँ की शिक्षा में जो परिवर्तन देखे जाने की अपेक्षा है, अध्ययन के कुछ आंकड़े उसके विपरीत परिणाम प्रस्तुत कर हैं।

3.1 सतत् विकास के लिए शिक्षा के साधन एवं वातावरण

वर्तमान में लखनऊ जनपद में कुल 3140 प्राथमिक विद्यालय हैं जिनमें से सन् 2014-15 में 1277 विद्यालय

भवनविहीन थे। पिछले 7 वर्षों में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में कोई बदलाव नहीं आया लेकिन आज सभी विद्यालय भवनयुक्त हैं। यह बदलाव इस बात का द्योतक है, कि वर्तमान में विद्यालयों में बाहरी वातावरण अथवा पशुओं का हस्तक्षेप नहीं है। सन् 2014-15 में जनपद में 839 उच्च प्राथमिक विद्यालय थे जो वर्तमान में 52 प्रतिशत वृद्धि के साथ 1277 हो गये हैं। लखनऊ में कुल माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है, जो पिछले 7 वर्षों में 285 से बढ़कर 1097 हो गयी है। बालिका माध्यमिक विद्यालयों में भी निन्तर वृद्धि, लिंग-भेद कम करने का प्रयास है। उच्च शिक्षा के लिए जनपद में 40 महाविद्यालय, 7 स्नात्कोत्तर महाविद्यालय तथा 12 विश्वविद्यालय मौजूद हैं। एक तकनीकी विश्वविद्यालय एवं 2 चिकित्सा विश्वविद्यालय हैं (सांख्यिकी पत्रिका[15] 2015 एवं 2022)। अन्य जनपदों की तुलना में लखनऊ में शिक्षण संस्थानों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई है। फर्नीचर एवं शिक्षण सामग्री के साथ बालक-बालिकाओं हेतु अलग-अलग शौचालय की उपलब्धता ने शैक्षणिक वातावरण प्रभावी बनाया है।

3.2 जनपद लखनऊ में विद्यार्थी नामांकन

जनपद में प्राथमिक स्तर पर कुल ग्रामीण छात्र संख्या में गिरावट देखी जा सकती है। यह गिरावट जन्मदर में किये जा रहे सुधार (गिरावट) का परिणाम भी हो सकती है, दूसरा कारण विद्यार्थियों का गुणात्मक एवं अंग्रेजी माध्य के विद्यालयों के लिए नगरीय क्षेत्र के विद्यालयों में नामांकन कराना भी हो सकता है। लेकिन यदि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अनु.जा./ज.जा.) के कुल विद्यार्थियों एवं बालिकाओं की संख्या पर ध्यान दिया जाए तो जनपद में छात्र नामांकन में 19 प्रतिशत तथा बालिका नामांकन में 12.56 प्रतिशत गिरावट देखी जा सकती है (सांख्यिकी पत्रिका[16] 2015 एवं 2022)। शिक्षा के क्षेत्र में जिम्मेदार अधिकारियों एवं जन प्रतिनिधियों की मानें तो नामांकन में गिरावट का एक बड़ा कारण कोविड-19 के दौरान लोगों की आय में कमी को होना भी है। झांसी से शिक्षक एम. एल.सी. श्री सुरेश कुमार त्रिपाठी[17] का कहना है कि कोविड-19 महामारी ने जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित किया है, जिससे स्कूल एवं कॉलेजों में नामांकन में गिरावट आयी है। यहाँ एक तथ्य यह भी है कि महामारी के दौरान जहाँ निजी स्कूलों में नामांकन गिरावट देखी गयी, वहीं दूसरी ओर सरकारी स्कूलों यथा केन्द्रीय विद्यालय, प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन में वृद्धि हुई।

उच्च प्राथमिक स्तर पर कुल ग्रामीण, नगरीय एवं जनपद स्तर पर कुल छात्र-छात्राओं की संख्या में गिरावट आयी है, किन्तु अनुसूचित जाति/जनजाति के छात्र-छात्राओं की संख्या में गिरावट दर जो कि क्रमशः 49 प्रतिशत एवं 44.58 प्रतिशत है, एक चिंता का विषय है (सांख्यिकी पत्रिका[18] 2015 एवं 2022)। यह आंकड़े इस ओर इशारा कर रहे हैं, कि 2020-21 के दौरान कोविड-19 महामारी ने अनुसूचित जाति/जनजाति के परिवारों को ज्यादा प्रभावित किया है, जिसका प्रभाव उनके बच्चों की शिक्षा में गिरावट के रूप में परिलक्षित हो रहा है। लखनऊ जनपद में कक्षा 9 से 12 तक ग्रामीण विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि देखी जा सकती है। जहाँ कुल छात्र नामांकन में 181.11 प्रतिशत की वृद्धि के साथ अनु.जा./ज.जा. के छात्रों में 83.93 की बढ़ोत्तरी हुई है। छात्राओं के मामले में आंकड़े अधिक उत्साहवर्धक हैं, क्योंकि कुल छात्राओं के नामांकन में 459.73 प्रतिशत की वृद्धि के साथ अनु.जा./ज.जा. की छात्राओं में 312.39 की बढ़ोत्तरी इस ओर संकेत दे रही है कि अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी बालिका शिक्षा को बढ़ावा मिल रहा है। जनपद के कुल छात्रों की संख्या में 72.69 प्रतिशत की गिरावट इस ओर संकेत दे रही है कि आज युवाओं के सामने कई संकट हो सकते हैं (सांख्यिकी पत्रिका[19] 2015 एवं 2022)। जैसे रोजगार के अवसरों की कमी, छात्रवृत्ति का कम[20] होना तथा अत्यधिक फीस वृद्धि आदि। भारत में जुलाई 2020 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की घोषणा की गयी थी, जिसके परिणाम आने शेष हैं।

3.3 शैक्षिक वातावरण एवं शिक्षक-छात्र अनुपात

भारत सरकार के आंकड़ों[21] के अनुसार उत्तर प्रदेश के प्राथमिक व उच्च-प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक-छात्र अनुपात क्रमशः 1:39 एवं 1:33 है, जो भारत के अन्य राज्यों की तुलना में बेहतर है, किन्तु यह आंकड़ा इसलिए सराहनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन शिक्षकों में सबसे बड़ी संख्या 1,68,219 संविदा शिक्षकों (शिक्षा-मित्र, अनुदेशक आदि) की है। माध्यमिक विद्यालयों में महिला शिक्षिकाओं की संख्या में सन् 2014-15 की तुलना में 2021-22 में 438.72 प्रतिशत की वृद्धि हुई है (सांख्यिकी पत्रिका[22] 2015 एवं 2022)। आंकड़े दर्शाते हैं कि लखनऊ सहित उत्तर प्रदेश में शिक्षक-छात्र अनुपात में भी सुधार हुआ है, किन्तु शिक्षकों की गैर-शैक्षणिक कार्यों में संलिप्तता शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2005 की मूल भावना के विपरीत है।

4. निष्कर्ष

शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न कालान्तरों का जिनियॉलॉजिकल विश्लेषण करने से पता चलता है कि भारतीय समाज में आज भी सामन्ती विचारों का प्रभाव है, जो सामान्य नागरिकों को शिक्षा जैसे मौलिक अधिकार से वंचित करने से नहीं गुरेज नहीं करते। इतिहास बताता है कि भारत में सार्वभौमिक एवं समावेशी शिक्षा हेतु कई महापुरुषों ने योगदान दिया। एक ओर शिक्षा का प्रचार

प्रसार किया जाता है तो दूसरी ओर शिक्षा प्रणाली में ऐसी जटिलताएँ उत्पन्न कर दी जाती हैं, कि वह गरीब एवं समाज के हाशिए में जीने वाले समुदायों की पहुँच से दूर हो जाती है। उत्तर प्रदेश और लखनऊ के आंकड़े दर्शाते हैं कि व्यवसायिक शिक्षा को छोड़कर सभी कक्षाओं में अनु. जा./ज.जा. के विद्यार्थियों के नामांकन में गिरावट आयी है, जिसके प्रमुख कारणों में से एक छात्रवृत्ति में कटौती एवं महिलाओं के प्रति हिंसा में वृद्धि है। सामाजिक व आर्थिक भेदभाव मिटाने में शिक्षा एक कारगर उपाय है, किन्तु अनुसूचित जाति की अधिकतर आबादी के पास आज भी स्थायी रोजगार के अवसरों की कमी है, कृषि-भूमि स्वामित्व की कमी, सरकारी नौकरियों एवं व्यवसाय में इनकी संख्या कम है। छात्रवृत्ति में कमी के कारण इन परिवारों के लोग बालिकाओं को उच्चशिक्षा से वंचित कर रहे हैं।

सतत् विकास लक्ष्य संख्या 4 जो कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अपेक्षा रखता है के प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमिक तथा लैंगिक समावेशन का दावा अभी पूर्ण होने से दूर हैं। यद्यिपि शैक्षिक वातावरण बनाने एवं शिक्षक-छात्र अनुपात की दिशा में सुधार हुआ है, किन्तु सामुदायिक सहभागिता में कमी के कारण शिक्षा की गुणवत्ता में अपेक्षाकृत सुधार नहीं हो सका है। शिक्षा में सुधार एवं सतत् लक्ष्यों की पूर्ति हेतु निम्न उपाय कारगर हो सकते हैं- 1) ग्रामीण क्षेत्रों में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की भांति आवासीय बालक विद्यालय भी स्थापित किये जायें, जिससे गरीब परिवारों के बच्चों का पूर्ण ध्यान शिक्षा की ओर जाय, 2) ऐसी व्यवस्था की जाए कि छात्रवृत्ति के अभाव में कोई विद्यार्थी शिक्षा से वंचित न हो, 3) शिक्षा का अधिकार अधिनियम में वर्णित निजी विद्यालयों में गरीब बच्चों के प्रवेश सुनिश्चित किया जाए।

संदर्भ

1. https://www.sd-commission.org.uk/pages/what-is-sustainable-development.html
2. Ibid.
3. https://np4sd.org/about/herman-daly/
4. UNSDG (2022). Sustainable Development Report 2022, https://unstats.un.org/sdgs/report/2022/
5. Ibid.
6. https://www.unesco.org/en/health-education/need-know
7. https://www.unesco.org/en/education-sustainable-development
8. Sadgopal, A. 2010. Right to Education vs. Right to Education Act, *Social Scientist*, Vol. 38, No. 9/12.
9. Mohanty, Sunil Behari (1985). *Universalization of Primary Education in India: Lessons of Experience and Pointers for Action*, Paris: UNESCO.
10. ASER (by Pratham NGO since 2005), https://www.asercentre.org/p/158.html
11. http://ssa.nic.in/
12. Kumar, Anil. 2017. Politics of Quality Education: Exploring Challenges of RTE ACT in India, *International Journal of Economic and Business Review*, Volume - 5, Issue- 7 p 125.
13. शर्मा, तान्या 2022. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ते कदम, *राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा*, वर्ष 24 अंक 2, पृष्ठ 110.
14. The Economic Survey 2022-23, https://www.indiabudget.gov.in/economicsurvey/doc/stat/tab83.pdf
15. Sankhyiki Patrika, District-Lucknow, Table-39. https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable39Report.action
16. Sankhyiki Patrika, District-Lucknow, Table-40. https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable40Report.action
17. Kumar, Sandeep (2022). U.P. univs, colleges saw marked enrolment fall during pandemic: Govt Report, Hindustan Times, 28 June. https://www.hindustantimes.com/cities/lucknow-news/up-univs-colleges-saw-marked-enrolment-fall-during-pandemic-govt-report-101656438831323.html
18. Sankhyiki Patrika, District-Lucknow, Table-40. https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable40Report.action
19. Sankhyiki Patrika, District-Lucknow, Table-40. https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable40Report.action
20. https://timesofindia.indiatimes.com/city/lucknow/uttar-pradesh-outlay-for-scholarships-to-sc-obc-students-cut/articleshow/74206275.cms
21. http://schoolreportcards.in/src-new/FactsAndFigures/FactsAndFigures.aspx, retrived on 21-4-2023
22. Sankhyiki Patrika, District-Lucknow, Table-41. https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable41Report.action

बेचा लाल
शोध-छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय,
श्री रामस्वरूप मेमोरियल विश्वविद्यालय,
लखनऊ-देवा रोड, उत्तर प्रदेश

अनिल कुमार
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय,
श्री रामस्वरूप मेमोरियल विश्वविद्यालय,
लखनऊ-देवा रोड, उत्तर प्रदेश,
e-mail: anil.aina@gmail.com

विॉार्थियों के हिंदी भाषा कक्षा के अनुभवों का अध्ययन

–प्रो. इन्दू कुमारी
–निपुण निशान्त (शोधार्थी)

भूमिका

भाषा के अपने कई चरित्र हैं। कई बार यह हमारे समक्ष संप्रेषण के माध्यम के रूप में उपस्थित होती है, तो कई बार यह संस्कृति की वाहक के रूप में कार्य करती है। संप्रेषण के माध्यम के रूप में यह विचारों के आदान-प्रदान में एक मौलिक भूमिका निभाती है। इसके अंतर्गत यह अपने विभिन्न कौशलों को लिए हुए प्रस्तुत होती है। यह कौशल प्रमुख रूप से श्रवण, वाचन, लेखन अभिव्यक्ति और सांकेतिक रूप में व्यक्त होते हैं। जब हम भाषा के सांस्कृतिक वाहक की विशेषता के विषय में बात करते हैं, तो यह अपने साथ अतिविस्तृत अध्ययन क्षेत्र लिए हुए होती है। भाषा ही वह साधन है, जिसे हम मानव उद्‌भव और विकास के लिए एक सबसे मौलिक साधन के रूप में सरलता से चिह्नित कर पाते हैं। वर्तमान में भाषा के संबंध में विभिन्न विमर्श उपागम और सिद्धांत हमारे समक्ष उपस्थित हैं। जिसकी सहायता से हम मानव समाज में इसकी भूमिका को सरलता से चिह्नित कर पाते हैं। भाषा का एक रूप हमें अकादमिक परिप्रेक्ष्यों में मिलता है। जिसे हम विद्यालय में विभिन्न स्तरों पर पढ़ाई जाने वाली भाषा के रूप में देख सकते हैं।

अकादमिक संदर्भों में भाषा

यद्यपि भाषा सीखना एक सामाजिक अंतःक्रिया की प्रक्रिया है। परंतु कई बार भाषा सीखाने का दायित्व विभिन्न अकादमिक संदर्भों को दिया जाता है। इन संदर्भों में विद्यालय एक विशिष्ट भूमिका में उपस्थित होता है। यह मातृभाषा की शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं के साथ-साथ अन्य भाषाओं के शिक्षण अधिगम को भी समेटे हुए है। अगर भारत के संदर्भ में बात की जाए तो विभिन्न शिक्षा नीतियाँ भाषा शिक्षण के संबंध में विभिन्न अनुशंसाएँ प्रस्तुत करती हैं। इस संबंध में 'राष्ट्रीय पाठचर्या की रूपरेखा 2005' और 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण आधार-पत्र हमारा मार्गदर्शन करती हैं। परंतु यह प्रस्तुत चर्चा विशिष्ट रूप से हिंदी भाषा से संबंधित है। इसलिए, हम प्रस्तुत विमर्श को हिंदी भाषा के संबंध में ही समझने का प्रयास करेंगे।

जब हम किसी भी मातृभाषा के संदर्भ में किसी अकादमिक परिप्रेक्ष्य में कार्य करते हैं तो हम अक्सर वह रेखा खींचने में चुनौती महसूस करते हैं, जिसके अंतर्गत यह सवाल उभर कर सामने आता है कि हम हिंदी भाषा को कब एक विषय के रूप में देखें और कब बच्चों की मातृभाषा के रूप में देखें। परंतु जो सवाल यहाँ महत्त्वपूर्ण रूप से उभर कर सामने आता है वह यह है कि एक बच्चा भाषा को किस तरह सीखता है। और अकादमिक संदर्भ में वह भाषा के विभिन्न रूपों से किस प्रकार अंतःक्रिया करता है।

बच्चे का भाषा सीखना

बच्चे के लिए भाषा सीखना एक अत्यंत स्वाभाविक प्रक्रिया है। चूंकि भाषा सीखने की यह प्रक्रिया उसके जन्म के साथ ही आरंभ हो जाती है। इसलिए बच्चा जब विद्यालय में प्रवेश करता है तो वह अपनी मातृभाषा के कुछ कौशलों में एक सीमा तक पारंगत हो चुका होता है। भाषा सीखने के संबंध में हमारे समक्ष मूल रूप से चार महत्त्वपूर्ण सिद्धांत उपस्थित हैं। यह सिद्धांत निम्नलिखित हैं-

1. भाषा सीखने का व्यवहारवादी सिद्धांत
2. भाषा सीखने का देशज सिद्धांत
3. भाषा सीखने का संज्ञानवादी सिद्धांत
4. भाषा सीखने का सामाजिक अंतःक्रिया सिद्धांत

भाषा सीखने के ये चारों सिद्धांत हमें भाषा सीखने की प्रक्रिया के संबंध में कुछ परिकल्पनाएँ प्रस्तुत करते हैं। जहाँ एक ओर भाषा सीखने का व्यवहारवादी सिद्धांत यह मानता है कि भाषा सीखना एक अनुकरण और पुनर्बलन की प्रक्रिया है। वहीं दूसरी ओर भाषा सीखने के देशज सिद्धांत के प्रवर्तक नोम चौम्सकी थे, जो यह मानते हैं कि भाषा मौलिक रूप से मानव मस्तिष्क में ही संचित होती है और हम भाषा सीखने के लिए प्राकृतिक रूप से तैयार होते हैं। भाषा सीखने के संज्ञानवादी सिद्धांत के प्रवर्तक जीन प्याजे यह मानते हैं कि भाषा सीखना बच्चे के बौद्धिक विकास का ही पहलू है। और, इसके लिए पहले से स्थापित संज्ञानात्मक आधार उपस्थित होने चाहिए। भाषा सीखने का सामाजिक अंतःक्रिया सिद्धांत भाषा सीखने के विभिन्न सिद्धांतों में एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। इस सिद्धांत के प्रवर्तक वाइगोत्सकी थे। यह सिद्धांत यह मानता है कि बच्चा अपने समाज के वयस्कों का अवलोकन करके भाषा की प्रारंभिक संरचना विकसित करता है और वयस्कों के साथ अंतःक्रिया करके इन संरचनाओं को समय के साथ विकसित करता है। जब हम भाषा सीखने के इन विभिन्न सिद्धांतों का गहन अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि ये सभी सिद्धांत एक बच्चे की दो प्राकृतिक विशेषताओं को अपनी विवेचना के केन्द्र में रखते हैं। एक विशेषता बच्चे की अवलोकन करने और अंतःक्रिया करने की क्षमताओं से संबंधित है। तो दूसरी विशेषता बच्चे की मानसिक संरचना में पूर्व उपस्थित क्षमताओं पर बल देता है। प्रस्तुत पर्चे में हम बच्चों की भाषा सीखने की इन सभी विशेषताओं के संदर्भ में एक समग्र परिचर्चा प्रस्तुत करेंगे।

विद्यालय में हिंदी

प्रस्तुत पर्चा दिल्ली के विशेष संदर्भ में संदर्भित है। जहाँ पर एक विविध समाज उपस्थित है। यह समाज अपनी मातृभाषा के संबंध में कई प्रकार की विविधताएँ लिए हुए है। परंतु इस भाषा विविधता की एक विशेषता भी है। ये तमाम मातृभाषाएँ किसी न किसी रूप में एक वृहद हिंदी भाषा परिवार में किसी न किसी प्रकार का संबंध रखती हैं। इसलिए इन समाजों के नए सदस्य किसी न किसी रूप में हिंदी भाषा से परिचित होते हैं। कई बार हम यह सरलता से चिह्नित कर पाते हैं कि इन समाजों के बच्चे अपनी दैनिक भाषाई अभिव्यक्ति में हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। ऐसे में जब यह बच्चे विद्यालय में प्रवेश करते हैं तो अपने साथ हिंदी भाषा की मौखिक और श्रावणिक कौशलों को साथ लिए हुए रहते हैं। विभिन्न शोध यह प्रतिबिंबित करते हैं कि विद्यालय में हिंदी भाषा का पूर्वज्ञान लिए हुए ये बच्चे भाषा का एक अनुशासनात्मक और मानक रूप से परिचित होते हैं। इस तमाम प्रक्रिया में बच्चे कई बार कुछ विशिष्ट चुनौतियों और समस्याओं का सामना करते हैं। इस संबंध में हम यह बिल्कुल नहीं कह सकते हैं कि इन बच्चों को हिंदी भाषा पढ़ाने वाले शिक्षक किसी प्रकार की चुनौतियों या समस्याओं का सामना नहीं करते हैं।

उपरोक्त विमर्श हमें विद्यालय में हिंदी भाषा शिक्षण और अधिगम के संबंध में कुछ प्रश्नों तक पहुँचने में सहायता करता है। ये प्रश्न निम्नलिखित हैं-

1. दिल्ली के बच्चे जब विद्यालय में हिंदी भाषा सीखते हैं तो वे किस प्रकार की चुनौतियों या समस्याओं का सामना करते हैं?
2. बच्चे अपनी मातृभाषा और हिंदी विषय के साथ किस प्रकार से सामंजस्य स्थापित करते हैं?
3. बच्चों की सांस्कृतिक विशिष्टता उनके कक्षाई अनुभवों में किस प्रकार प्रतिबिंबित होती है?
4. परिवार में हिंदी भाषा बोलना और सुनना विद्यालय में हिंदी भाषा सीखने से किस प्रकार से अलग है?
5. हिंदी भाषा शिक्षक शिक्षण प्रक्रियाओं में किस प्रकार की सहायक शिक्षण तकनीकों का प्रयोगकरते हैं?
6. एक हिंदी भाषा कक्षा से विद्यार्थियों की क्या अपेक्षाएँ हैं?

उपरोक्त सभी प्रश्न प्रस्तुत शोध के संबंध में हमें कुछ विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित करने में सहायता करते हैं। यह उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के हिंदी भाषा कक्षा के अनुभव का अध्ययन 2. हिंदी भाषा कक्षा में उपस्थित होने वाली चुनौतियों और समस्याओं का अन्वेषण।

उपरोक्त प्रश्न और उद्देश्य प्रस्तुत शोध के संबंध में हमें एक उपयुक्त शोध विधि का चयन करने के लिए निर्देशित करते हैं। यह शोधविधि इन प्रश्नों की केन्द्रीय जिज्ञासा के सापेक्ष कुछ शोध प्रविधियाँ लिए हुए होनी चाहिए एवं यह भी अति महत्त्वपूर्ण है कि शोध विधि शोध उद्देश्यों के साथ न्याय करती हो। इस संबंध में सैद्धांतिक विमर्शों का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी एक शोधविधि की रूपरेखा बनाने में सफल हुआ। इस शोध को समझने के लिए इस रूपरेखा को समझना भी अति-आवश्यक है।

शोध-विधि

प्रस्तुत पर्चा दिल्ली के सरकारी और निजी विद्यालयों में संदर्भित है। जो कि अपने आप में एक गतिशील सामाजिक संदर्भ है। विद्यालय निरंतर होती अंतःक्रियाओं का स्थान भी है। इसलिए विद्यार्थी के लिए विद्यालय परिसर में कार्य करना कुछ विशिष्ट प्रकार की चुनौतियाँ लिए हुए है। इन चुनौतियों में जो सबसे बड़ी चुनौती विद्यार्थी के समक्ष उपस्थित होती है, इन गतिशील सामाजिक संबंध में कार्य करना और लगातार सोचते, खेलते अंतःक्रिया करने वाले शोध प्रतिभागियों को शोध का हिस्सा बनाना।

शोध क्षेत्र की ये तमाम विशेषताएँ शोध क्षेत्र को एक व्यक्तिनिष्ठ आयाम प्रदान करती हैं। जिसके लिए अनिवार्य हो जाता है कि विद्यार्थी एक ऐसे शोध दर्शन का चयन करे जो शोध क्षेत्र की विशिष्टताओं को उनके प्राकृतिक स्वरूप में समझने में विद्यार्थी की सहायता करें। गुणात्मक शोध दर्शन एक विद्यार्थी को इस प्रकार से एक अवसर प्रदान करता है। इसलिए प्रस्तुत शोध के संबंध में विद्यार्थी ने गुणात्मक शोध का चयन किया। जिसे अंतर्गत असंरचित साक्षात्कार एवं समूह परिचर्चा, शोध प्रविधियों की सहायता ली। यह दोनों शोध प्रविधियाँ शोधार्थी को अवसर देती हैं कि यह शोध प्रतिभागियों के निजी अनुभवों को सरलता से समझ सकें। प्रतिदर्श के रूप में विद्यार्थी ने दिल्ली के दो उच्च प्राथमिक विद्यालयों का चयन किया। शोध जिज्ञासा को न्यायोचित और वैध रूप से पूर्ण करने के लिए निजी और सरकारी दोनों तरह के विद्यालयों का चयन किया गया। प्रत्येक विद्यालय से 10-10 बच्चों का चयन किया गया। यह सभी बच्चे कक्षा आठवीं के विद्यार्थी हैं। विद्यार्थियों का चयन पूर्ण रूप से स्वेच्छा आधारित रूप से किया गया। एवं आंकड़े के संग्रहण के पश्चात थिमैटिक विश्लेषण द्वारा विश्लेषित किया गया। विद्यार्थी ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि वह विश्लेषण करने के दोरान अपने पूर्वाग्रहों से अपने कार्य दूर रख पाये।

विश्लेषण

पर्चे का प्रस्तुत भाग विश्लेषण से संबंधित है। विभिन्न आंकड़ों का एकत्रण और उद्देश्यों के सापेक्ष उनका वर्गीकरण विश्लेषण के संबंध में हमें कुछ सुझाता है। इन तमाम प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद और विभिन्न सैद्धांतिक स्रोतों के अध्ययन के बाद विद्यार्थी ने प्रस्तुत शोध में थिमैटिक विश्लेषण का चयन किया। इस थिमैटिक विश्लेषण के अंतर्गत आंकड़ों के वर्गीकरण से उभरे कुछ निहितार्थों और व्याख्याओं के आधार पर कुल छह थीमों के अंतर्गत विश्लेषण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। विश्लेषण करने के दौरान जहाँ कहीं भी आवश्यकता महसूस हुई है वहाँ पर उपयुक्त उदाहरणों की सहायता लेकर बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। ये छह थीम निम्नलिखित हैं-

1. विद्यार्थियों में भाषायी विविधता का स्तर
2. क्षेत्र और भाषा का सहज संबंध
3. घर की हिंदी और विद्यालय की हिंदी
4. भाषा, व्याकरण और गद्य
5. विद्यालय में संप्रेषण की भाषा के रूप में हिंदी
6. हिंदी भाषा शिक्षण का शिक्षण शास्त्रीय पक्ष।

1. विद्यार्थियों में भाषायी विविधता का स्तर विद्यार्थियों में भाषायी विविधता का स्तर

दिल्ली एक महानगर है, और देश की राजधानी भी है। इसलिए इसके सामाजिक ढाँचे से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विभिन्न प्रकार की भाषा संस्कृति और जीवन शैलियों के लोगों का निवास स्थान होगी। इस अपेक्षा का सबसे बड़ा कारण दिल्ली और उसके आस-पास क्षेत्रों में उपस्थित रोजगार के अपार अवसर हो सकते हैं। प्रस्तुत शोध के संबंध में जब विद्यार्थी ने एक निजी विद्यालय और एक सरकारी विद्यालय में प्रवेश किया तो यह विविधता स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित हुई। विद्यालय में विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और क्षेत्राों के बच्चे उपस्थित थे। विद्यार्थी ने जिन बच्चों का चयन किया उनमें भी यह विविधता स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित थी। जहाँ निजी विद्यालय में कुछ बच्चे उत्तरप्रदेश और बिहार प्रदेश से संबंधित थे वहीं सरकारी विद्यालयों में बच्चे महाराष्ट्र, बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश की पृष्ठभूमि के थे। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाषाई विविधता धारण करने के बाद भी विद्यार्थी धारा प्रवाह हिंदी बोलने में सक्षम प्रतीत हुए। एक बच्चे के शब्दों में 'मैं महाराष्ट्र का रहने वाला हूँ मेरे घर में लोग मराठी में बात करते हैं पर मेरे आस-पास और स्कूल में सब हिंदी में बात करते हैं। इसलिए मैं भी हिंदी में बात करता हूँ।'

प्रस्तुत टिप्पणी भाषाई विविधता और प्रचलित भाषा के मध्य अंतःक्रिया को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है। इसी प्रकार के विचार कुछ अन्य विद्यार्थी भी धारण किए हुए प्रस्तुत हुए। जिनको जानने के बाद विद्यार्थी यह स्पष्ट रूप से मान सकता है कि कुछ विद्यार्थी हिंदी भाषा का प्रयोग इसलिए करना सीख गए क्योंकि उनके वर्तमान सामाजिक संदर्भ में हिंदी एक प्रचलित भाषा के रूप में उपस्थित है। परंतु यहाँ यह समझना भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि बच्चों की भाषा व्याकरणीय सटीकता के स्थान पर क्षेत्रीय तारत्म्यता लिए हुए उपस्थित होती है। यह तथ्य हमें हिंदी भाषा संदर्भों के बच्चों में भी प्रतिबिंबित होता है। बच्चे अपने वाक्यों में भाषा के क्षेत्रीय और देशज प्रभाव को स्पष्ट रूप से लिए हुए हैं। कई बार बच्चे साक्षात्कार के दौरान अपनी भाषाई प्रस्तुति में लिए हुए भी दिखे। इसको इस उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है।

"मैं उत्तर प्रदेश का हूँ" (कक्षा आठवीं के एक विद्यार्थी द्वारा)।

ऐसे कई उदाहरण मिले जिसमें बच्चों की मातृभाषा का प्रभाव उनके संप्रेषण कौशल में दृष्टिगोचर होता है। बातचीत के दौरान बिहार पृष्ठभूमि के कुछ बच्चे अपनी बातचीत में कुछ क्षेत्रीय शब्दों का इस्तेमाल करते हुए दिखे और यही विशेषता ही उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ बच्चों में भी दिखी।

2. क्षेत्र और भाषा का सहसंबंध क्षेत्र और भाषा का सहसंबंध क्षेत्र और भाषा का सहसंबंध

आंकड़ों के वर्गीकरण और विश्लेषण के दौरान विद्यार्थी

ने यह स्पष्ट रूप से पाया कि शोध प्रतिभागियों की भाषाई अभिव्यक्ति उनकी क्षेत्रीय विशेषताओं को धारण किए हुए है। विद्यार्थियों में कई बार अपने क्षेत्र के संबंध में जानकारी का उथलापन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। और, इस उथलेपन में प्रचलित सूचनाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है। इस तथ्य को हम निम्नलिखित उदाहरण की सहायता से समझ सकते हैं;

विद्यार्थी- आपकी मातृभाषा क्या है?

शोध प्रतिभागी- बिहारी

विद्यार्थी- अरे, बिहारी तो कोई भाषा नहीं होती है? आप बताइए की आप बिहार के किस क्षेत्र के रहने वाले हैं?

शोध प्रतिभागी- हाजीपुर

विद्यार्थी- हाजीपुर में तो वज्जिका बोली जाती है।

उपरोक्त उदाहरण शोध के दौरान एकत्रित किए गए आंकड़ों का एक छोटा अंश है। जिसकी सहायता से हम स्पष्ट रूप से यह समझ सकते हैं कि विद्यार्थी के लिए बिहार में बोली जाने वाली भाषा बिहारी ही बन जाती है। यह त्रुटिपूर्ण और प्रचलित विचार हम दिल्ली के संदर्भ में अक्सर पाते हैं। इस विचार के मूल बिहार राज्य के संबंध में प्रमाणित जानकारी का अभाव स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है। शोध आंकड़ों के अध्ययन के दौरान विद्यार्थी के समक्ष ऐसे कई उदाहरण आए जिनमें शोध प्रतिभागियों ने अपनी मातृभाषा का परिचय क्षेत्र के संदर्भ में दिया और विद्यार्थी ने पाया कि कई शोध प्रतिभागी विद्यार्थी अपनी मातृभषा का नाम न जानकर जिस क्षेत्र से संबंधित है उस क्षेत्र के नाम के साथ अपना भाषाई परिचय देते हैं। इस परिचय का अध्ययन क्षेत्र की अवधारणा और मातृभाषा के अन्तर्संबंध के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

3. घर की हिंदी और विद्यालय की हिंदी घर की हिंदी और विद्यालय की हिंदी घर की हिंदी और विद्यालय की हिंदी

विद्यार्थियों के साथ किया गया साक्षात्कार और समूह परिचर्चा से प्राप्त आंकड़े हमें स्पष्ट रूप से बताते हैं कि विद्यार्थियों की कक्षा की हिंदी और उनके घर पर बोली जाने वाली हिंदी में कुछ मौलिक अंतर है। जब शोध प्रतिभागियों से उनकी हिंदी भाषा कक्षा के अनुभवों के विषय में प्रश्न किए गए तो उनके उत्तरों में यह बात निकलकर सामने आयी कि वे विषय के रूप में पढ़ी जाने वाली हिंदी और घर पर बोली जाने वाली हिंदी में अंतर पाते हैं।

"क्लास में जो मैडम पढ़ाती हैं उससे तो अलग है घर की हिंदी।"

(निजी विद्यालय में पढ़ने वाला एक शोध प्रतिभागी विद्यार्थी)

कक्षा में पढ़ायी जाने वाली हिंदी और घर पर बोली जाने वाली हिंदी में जो अन्तर महसूस करते हैं। उसके मूल में भाषा के मानक स्वरूप और भाषा के प्रचलित स्वरूप का अंतर है। कई बार विद्यार्थी मानते हैं कि विद्यालय की कक्षा में पढ़ाई जाने वाली हिंदी घर पर बोली जाने वाली हिंदी से काफी कठिन है। जब इस कठिनाई के संबंध में उनसे गहन चर्चा की जाती है, तो उनके विचार हिंदी भाषा के व्याकरण पक्ष और लेखन कौशल के इर्द-गिर्द बुने हुए प्रतीत होते हैं।

"मुझ पे लिखी ही नहीं जाती हिंदी, भौत (बहुत) मुश्किल लगती है।" (सरकारी विद्यालय में पढ़ने वाला एक शोध प्रतिभागी)

"मात्राएँ गलत हो जाती हैं, फिर मैडम की सुननी पड़ती है।" (सरकारी विद्यालय का एक शोध प्रतिभागी)

उपरोक्त उदाहरण यह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करते हैं कि बच्चे कक्षा में पढ़ाई जाने वाली हिंदी के संबंध में जिस कठिनाई का जिक्र करते हैं। वह भाषा के व्याकरणीय स्वरूप और लिपि से संबंधित है। वहीं विद्यार्थी घर पर बोली जाने वाली भाषा को अत्यधिक सरल मानते हैं। जब उनसे इस सरलता के विषय में चर्चा की जाती है, तो वे भाषाई अभिव्यक्ति के साथ जुड़ी हुई बेफिक्री और स्वतंत्रता का जिक्र करते हैं। कई विद्यार्थियों के साथ की गई चर्चा यह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है कि हिंदी भाषा शिक्षक के पढ़ाने का तरीका और व्यवहार हिंदी भाषा के संबंध में विद्यार्थियों के अनुभवों को आकार देता है।

4. भाषा, व्याकरण और गद्य

प्रस्तुत शोध के संदर्भ में विद्यार्थियों से की गई बातचीत, हिंदी भाषा कक्षा के उनके अनुभवों को दो हिस्सों में बांटती है। एक हिस्सा, विद्यार्थियों के उन अनुभवों को लिए हुए है जो वे हिंदी भाषा व्याकरण के संबंध में अर्जित करते हैं। वहीं दूसरा हिस्सा, हिंदी भाषा की गद्य विधा से संबंधित है। अगर सरल शब्दों में समझें तो विद्यार्थियों के अनुभवों का एक हिस्सा उन चुनौतियों, मुद्दों और समस्याओं से संबंधित है, जो वे हिंदी भाषा व्याकरण के संबंध में महसूस करते हैं। वह चाहे वर्तनी लेखन के दौरान होने वाली वर्तनी त्रुटियाँ हो या शिक्षक द्वारा कक्षा में व्याकरण से संबंधित कोई पाठ पढ़ाना हो। लगभग सभी शोध प्रतिभागी यह स्वीकार करते हैं कि हिंदी भाषा के व्याकरण नियम और लेखन कौशल गद्य की तुलना में कठिन है। एक शोध प्रतिभागी के शब्दों में, "मैडम जो हिंदी ग्रामर पढ़ाती है वो मुझको समझ नहीं आता। क्रिया, विशेषण, संज्ञा ये सब बहुत मुश्किल हैं।"

व्याकरण की तुलना में विद्यार्थी हिंदी भाषा की उन कक्षाओं को अधिक पसंद करते हैं, जिसमें शिक्षक/ शिक्षिका उन्हें पाठ्य पुस्तक में वर्णित कोई कहानी सुनाती / सुनाते हैं। निजी और सरकारी विद्यालय के लगभग सभी शोध प्रतिभागी यह स्पष्ट रूप से मानते हैं कि हिंदी भाषा कक्षा

में उन्हें कहानी सुनना अत्यधिक पसंद है। एक शोध प्रतिभागी के अनुसार, "मुझे कहानियाँ बहुत पसंद हैं। हमारी सातवीं और आठवीं की किताबों में काफी सारी कहानियाँ हैं।"

इस प्रकार हम यह स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि विद्यार्थियों को हिंदी भाषा कक्षा में किस्से-कहानियाँ सुनना और पढ़ना काफी पसंद है। लेकिन वहीं जब हम हिंदी भाषा व्याकरण की बात करते हैं, तो अधिकांश विद्यार्थी इस संबंध में कुछ अरुचि लिए हुए प्रस्तुत होते हैं। यहाँ यह समझना भी महत्त्वपूर्ण है कि विद्यार्थी हिंदी भाषा के लेखन कौशल को लेकर भी कुछ विशिष्ट प्रकार की समस्याओं का सामना करते हैं। इस संबंध में कुछ विद्यार्थी स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे हिंदी भाषा लिखते समय काफी त्रुटियाँ करते हैं। ये त्रुटियाँ बाह्य संरचनाओं, मात्राओं और भाषाई चिन्हों से संबंधित होती हैं।

विद्यार्थी ने शोध के दौरान यह भी पाया कि हिंदी भाषा व्याकरण की कठिनाईयों से भयभीत कुछ विद्यार्थी अंग्रेजी को हिंदी से सरल मानने लगते हैं। उनकी ये तुलना काफी उथली प्रतीत होती है, एवं अधिकांशतः यह भाषा के लेखन पक्ष से संबंधित होती हैं। तीन-चार शोध प्रतिभागियों ने यह स्वीकार किया कि उन्हें अंग्रेजी लिखना हिंदी लिखने से अधिक सरल प्रतीत होता है। विद्यार्थी ने शोध के दौरान यह भी पाया कि कुछ शोध प्रतिभागी हिंदी की तुलना में अंग्रेजी को विशिष्ट सम्मान देते हैं। इसका कारण कहीं न कहीं विज्ञापन और मीडिया जगत में अंग्रेजी को लगातार प्रोत्साहित करते रहने के रूप में प्रतिबिंबित होता है।

5. विद्यालय में संप्रेषण की भाषा के रूप में हिंदी

विद्यार्थी ने शोध प्रतिभागियों के साथ साक्षात्कार और समूह परिचर्चा के दौरान यह पाया कि विद्यालय में भाषाई संप्रेषण का माध्यम हिंदी ही है। हालांकि इस हिंदी को मानक हिंदी नहीं कह सकते हैं, अपितु विद्यार्थी ने पाया कि शोध प्रतिभागी विद्यालय में संप्रेषण के माध्यम के रूप में जिस हिंदी का प्रयोग करते हैं, वह बोलचाल की अनौपचारिक भाषा है। जिसमें कुछ देशज शब्दों की उपस्थिति भी प्रस्तुत होती है। हालांकि ये देशज शब्द विद्यार्थियों के विविध सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों से जुड़े हुए हैं।

परंतु विद्यार्थी की अन्तःक्रियाएँ इतनी गहरी हैं कि लगभग सभी शोध प्रतिभागी विद्यार्थी इन शब्दों को साझा करते हैं। इनमें से कुछ शब्द हरियाणा क्षेत्र की खड़ी बोली और पूर्व उत्तर प्रदेश एवं बिहार की भोजपुरी एवं अन्य स्थानीय भाषाओं से लिए गए हैं। ये शब्द निम्नलिखित हैं, मेरेको (मुझे), भौत (बहुत), तेरेको (तुमको), ठा (उठाने), किथ (कहाँ), बेरा (पता) ।

उपरोक्त प्रकार के शब्दों का इस्तेमाल बच्चे अक्सर अपनी अभिव्यक्ति में करते हैं परंतु विद्यार्थी ने यह भी पाया कि जब ये आपस में संप्रेषण करते हैं तो कई बार एक-दूसरे के परिप्रेक्ष्यों को आत्मसात कर लेते हैं जैसे, बिहार पृष्ठभूमि का कोई बच्चा भाषा संप्रेषण में खड़ी बोली के कोई शब्द का इस्तेमाल कर लेता है, या दिल्ली में रहने वाला कोई बच्चा पूर्व उत्तर प्रदेश या बिहार प्रदेश के शब्दों को आत्मसात कर लेता है। और, कई बार लगभग सभी बच्चे संप्रेषण की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग करते हैं।

"मैडम जब हमारी कौपी चौक करती हैं तो कुछ बच्चों को पनिशमेंट मिलती है" (निजी विद्यालय का एक शोध प्रतिभागी)।

"तू ऐसे नहीं जा सकता अभी पीरीयड बैल नहीं हुई है" (निजी विद्यालय का एक शोध प्रतिभागी)।

उपरोक्त उदाहरण स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि विद्यार्थियों की संप्रेषण भाषा एक विशिष्ट मिश्रित भाषा है। जो दोनों ही विद्यालय निजी और सरकारी में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यहाँ यह समझना भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि निजी और सरकारी विद्यालयों की संप्रेषण की भाषा में कोई मौलिक अंतर नहीं दिखाई देता ।

6. हिंदी भाषा शिक्षण का शिक्षणशास्त्रीय पक्ष

विद्यार्थी ने शोध के दौरान ना ही किसी भाषा शिक्षक के साथ साक्षात्कार किया और ना ही कोई हिंदी भाषा कक्षा का अवलोकन किया। परंतु मात्रा विद्यार्थियों के साथ किए गए गहन साक्षात्कार और समूह परिचर्चा से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण कुछ शिक्षण शास्त्रीय मुद्दों के विषय में कुछ बताते हैं। जब शोध प्रतिभागियों से उनके भाषा कक्षा के अनुभवों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई। कई स्थानों पर उनकी बातचीत से यह प्रतिबिंबित हुआ कि हिंदी भाषा कक्षा में कुछ शिक्षण शास्त्रीय पद्धतियों के कारण भाषा के कुछ पक्षों के संबंध में विद्यार्थियों में एक प्रकार की अरुचि का जन्म होता है तो कुछ पक्षों के संबंध में उनमें रुचि पैदा होती है। विद्यार्थी ने दोनों ही विद्यालयों में यह पाया कि शोध प्रतिभागी हिंदी भाषा कक्षा में पढ़ाई जाने वाली व्याकरण के तरीकों से संतुष्ट नहीं है। जिसके कारण वे व्याकरण को अधिक कठिन और अरुचिकर पाते हैं। परंतु वहीं दूसरी ओर वे समान भाषा में किस्से कहानियाँ सुनना पसंद करते हैं।

"मुझे कहानियाँ पसंद हैं पर ग्रामर से मैं बोर हो जाती हूँ" (निजी विद्यालय में पढ़ने वाला एक विद्यार्थी)।

इस प्रकार हम आंकड़ों के विश्लेषण से यह अनुमान लगा सकते हैं कि जहाँ एक ओर विद्यार्थी शिक्षण की कहानी सुनाने की कला से विषय के प्रति रुचि पैदा करते हैं, वहीं व्याकरण को अरुचिकर रूप से पढ़ाने के कारण उसके प्रति एक प्रकार की अरुचि और भय पैदा कर लेते हैं।

निजी और सरकारी विद्यालयों की संप्रेषण की भाषा में

कोई मौलिक अंतर नहीं दिखाई देता।

निष्कर्ष

विभिन्न अध्ययन स्रोतों के अध्ययन और शोध क्षेत्र से एकत्र किए गए आंकड़े हमें कुछ निष्कर्षों तक पहुँचने में सहायता करते हैं। इन निष्कर्षों को हम प्रस्तुत शोध के संबंध में ही समझने का प्रयास करें। विद्यार्थी ने प्रस्तुत निष्कर्षों में किसी भी प्रकार से सामान्यीकरण करने का प्रयास नहीं किया है। शोध उद्देश्यों के संबंध में एकत्रित किए गए आंकड़े और अध्ययन किए गए सैद्धांतिक स्रोत यह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करते हैं कि बच्चों के भाषा के अनुभवों को समझना अपने आप में एक विशिष्ट और जटिल कार्य है। विद्यार्थी ने लगभग 20 शोध प्रतिभागियों से यह साक्षात्कार और समूह परिचर्चा की, जिसकी सहायता से इन अनुभवों को जानने का प्रयास किया। विद्यार्थी ने पाया कि सब शोध प्रतिभागी मिलकर एक विविध भाषाई और सांस्कृतिक समूह का निर्माण करते हैं। ये भाषाई विविधता उनकी हिंदी भाषा कक्षा के अनुभवों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। चाहे व्याकरण से संबंधित विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ हों या लेखन के दौरान आने वाली समस्याएँ, विद्यार्थी अपने घर और आस-पड़ोस में बोली जाने वाली हिंदी को अपनी भाषा कक्षा में नहीं पाते हैं। विद्यार्थी ने यह भी पाया कि विद्यार्थियों को हिंदी भाषा के मानक रूप से जुड़ने में कुछ मौलिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये कठिनाइयाँ वाक्य संरचनाओं, हिंदी भाषा के मूल शब्दों के प्रयोग और वर्तनी का सही प्रयोगकरने के दौरान स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती हैं। विद्यार्थी विद्यालय में संप्रेषण की भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोगकरते हैं। यह हिंदी एक प्रकार की मिश्रित हिंदी है जिसके अंतर्गत अंग्रेजी भाषा के शब्द, क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द और कुछ आम बोलचाल के शब्द स्पष्ट रूप से सम्मिलित दिखते हैं। विद्यार्थी ने विद्यार्थियों से बातचीत के माध्यम से यह भी जाना कि विद्यार्थियों को हिंदी भाषा कक्षा में जो सर्वाधिक रूचिपूर्ण भाग लगता है वह कहानियों और किस्सों का है परंतु विद्यार्थियों के विचारों से यह भी स्पष्ट रूप से इंगित होता हैं कि हिंदी भाषा व्याकरण को पढ़ाने से संबंधित शिक्षणशास्त्रीय उपागमों के प्रयोगमें शिक्षक असफल होते दिखते हैं। हालांकि विद्यार्थी ने प्रत्यक्ष रूप से हिंदी भाषा कक्षा का अवलोकन नहीं किया है इसलिए शिक्षकों के शिक्षणशास्त्रीय पक्षों पर टिप्पणी करना वैध और औचित्यपूर्ण प्रतीत नहीं होता है। परंतु अगर भविष्य में प्रस्तुत विषय पर काम किया जाता है तो शिक्षकों के विचारों और कक्षाई अवलोकनों को आवश्यक रूप से शोध का हिस्सा बनाया जाए।

संदर्भ

1. एन.सी.ई.आर.टी. (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005. नयी दिल्लीः एन.सी.ई.आर टी.
2. चॉम्स्की, एन. (1972), लैंग्वेज एंड माइंड, न्यूयार्कः हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच।
3. चॉम्स्की, एन. (1986), नॉलेज ऑफ लैंग्वेज, न्यूयार्क : प्रागर ।
4. दुआ, एच. आर. (1985), लैंग्वेज प्लानिंग इन इंडिया, दिल्लीः हरनाम पब्लिशर्स ।
5. कुमार, कृष्ण (2001), स्कूल की हिंदी, पटनाः राजकमल।
6. शिक्षा मंत्राालय, शिक्षा आयोग, कोठारी कमीशन (1964 - 1966), शिक्षा पद एवं राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966
7. नूनान, डी. (1991), लैंग्वेज टीचिंग मैथोडोलॉजी, लंदन : प्रेंटिस हॉल।
8. वाइगोत्सकी, एल.एस. (1986), थोटस एंड लैंग्वेज, न्यूयार्कः एम.आइ.टी. प्रेस

प्रो. इन्दू कुमारी
हिंदी विभाग,
माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
induvimal2013@gmail.com

निपुण निशान्त
शोधार्थी
शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय
nipun2nishat@gmail.com

पुष्प की अभिलाषा : बलिदानी रक्तधारा की प्राणवंत पुकार

–प्रो. सुनील कुमार तिवारी

माखनलाल चतुर्वेदी आधुनिक हिंदी कविता की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के महत्वपूर्ण कवि के रूप में बहुविश्रुत रहे हैं। रामधारी सिंह दिनकर ने 'चतुर्वेदी जी को शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त और विचारों से क्रांतिकारी कहा है।'[1] राष्ट्रीय आंदोलन में अपना सक्रिय योग देकर, अनेक बार जेल जाकर चतुर्वेदी जी जिस देशभक्ति का परिचय देते रहे, उसी भावना का प्रतिनिधित्व उनके काव्य में दृष्टिगत होता है। वस्तुतः त्याग और बलिदान की भावनाएँ उनके काव्य में सर्वत्र आकर्षण का केंद्र बनी हुई हैं। वे अनेक भावों के मेल स्थल पर वेदना का भयंकर ज्वार लाकर ऐसी तड़प और व्याकुलता उत्पन्न कर देते हैं कि पाठक भी ऐसे भाव के साथ ही बहने लगते हैं --

''मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पर जावें वीर अनेक।"[2]

'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक उनकी प्रसिद्ध कविता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौर की बलिदानी भावना को प्रतीकित करती है। इस कविता के माध्यम से कवि ने एक पुष्प की आकांक्षाओं को प्रस्तुत किया है, जो अपनी व्यक्तिगत सुंदरता, प्राप्ति और प्रतिष्ठा को परे रखकर मातृभूमि की सेवा में अपने समर्पण की सार्थकता और सिद्धि चाहता है।

इस कविता की रचना की प्रेरणा माखनलाल चतुर्वेदी को मुख्यतः देशभक्ति और स्वतंत्रता संग्राम के उद्देश्यों से प्राप्त हुई थी। यह कविता बिलासपुर सेंट्रल जेल में लिखी गई। 'भारतीय आत्मा' माखनलाल चतुर्वेदी ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ राजद्रोह के केस में इस जेल के बैरक नंबर 9 में बंद थे। इसी दौरान 28 फरवरी 1922 को उन्होंने 'पुष्प की अभिलाषा' का प्रणयन किया। 'प्रताप' के बहुविश्रुत संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी ने ठाकुर लक्ष्मण सिंह (सुभद्रा कुमारी चौहान के पतिदेव) से अनुरोध किया था कि वे इस पत्रिका के लिए चतुर्वेदी जी से कुछ लेते आएँ। जेल में संदेश मिलते ही चतुर्वेदी जी ने सद्यः यह कविता लिख डाली। यह कविता उन दिनों स्वातंत्र्य संघर्ष में अपनी जान न्योछावर कर देने वाली प्रेरणा के रूप में अत्यंत प्रसिद्ध हुई। यह कविता तब बच्चे-बच्चे के जुबान पर चढ़ी हुई थी। आजादी के बाद इस कविता को पाठ्यक्रमों में स्थान दिया गया। मिडिल क्लास से लेकर उच्चतर कक्षाओं में इस कविता को पढ़ाया जाने लगा।

सवाल यह है कि कुल बारह पंक्तियों में रची गई इस कविता में आखिर वह कौन-सी अपील है, जिससे श्रोता-पाठक की भाव तंत्रियाँ झंकृत हो उठती हैं? वस्तुतः यह कविता कल्पना और यथार्थ का एक अद्‌भुत रसायन है, जिसमें वेदना, अहं, स्वाभिमान, शौर्य, समर्पण और बलिदान के स्वर भावुक कवि की काव्यमयी भाषा में गुंफित हुए हैं। मातृभूमि प्रेम और स्वदेश गौरव इस कविता के प्राण हैं। यथार्थ अनुभूति की व्यापक व्यंजना इस कविता की सर्वमयी विशेषता है। नई आस्था, नए विश्वास और राष्ट्रहित कल्याणमयी कर्त्तव्यशील बलिदानी मूल्यों की स्थापना की प्रबल कामना इस कविता का उदात्त तत्व है। यह रचना 'कविता कविता के लिए' इस सिद्धांत के पोषण हेतु नहीं लिखी गई, प्रत्युत 'कविता जीवन के लिए' इस भाव से रची गई।

इस कविता में चतुर्वेदी जी का अचाह मन चार बार 'चाह नहीं' की आवृत्ति को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में दुहराता है। वस्तुतः यह कविता एक राष्ट्र-प्रेमी के अंतर की चाह है, जिसमें प्रत्येक भारतीय का हृदय मुखरित हो पाया है। इस कविता में पुष्प किसी फल या भौतिक प्राप्ति की स्पृहा से रहित अपने जीवन की सार्थकता को मात्र देश की सेवा में देखता है। यह भावना भारतीय समाज में व्याप्त उस आदर्श को दर्शाती है, जिसमें देश के लिए बलिदान देना सबसे बड़ा कर्त्तव्य माना जाता है।

इस कविता में एक तरफ देश को स्वतंत्र करने का स्वप्न है और दूसरी तरफ वह कल्पना जो बिल्कुल अचाह की स्थिति में पहुँचा देती है। यहाँ शृंगार और स्वर्ग की कल्पना एक साथ जुड़ी है, किंतु टकराती नहीं। वस्तुतः फूल एक स्वर्गिक विषय है, जिसका उद्‌भव स्थल नंदन कानन है। जहाँ वह कभी मुरझाता नहीं और सुरबालाएँ उसे वनमली से माँग कर अपने आभूषणों का शृंगार करती हैं, क्योंकि आभूषणों में न तो अक्षय शृंगार है और न महमह गंध ही। हीरा, पन्ना,

माणिक आदि धातु/अचेतन होती हैं। फूलों में चेतना का प्रधान्य है और उस चेतना का रहस्य है, उनकी गंध वाहिका शक्ति। आभूषणों में भी तो फूल ही उकेरे जाते हैं, लेकिन नंदन वन का पुष्प उन आभूषणों को और आकर्षक एवं अप्रतिम बना देता है। अतः कवि उस स्वर्गिक वस्तु को जरा-मरण रहित सुरबालाओं के गहनों में गूँथ दिए जाने के अक्षय शृंगार का भी भागी होने देना नहीं चाहता। एक तो बालाएँ और दूसरे देवताओं की बालाएँ और तीसरे नंदन कानन का फूल जिस पर उनका जन्मजात अधिकार है, जिसको पाकर फूल अपने भाग्य की सराहना करता होगा, लेकिन वहाँ के लिए भी वह सभी स्थितियों के पार जाकर निषेध करता है। इस धरती का पुष्प, भारत भूमि पर उपजा हुआ पुष्प अपनी भूमि को स्वर्ग से श्रेष्ठ मानता है। यह वह प्रेम प्रसून है, जो पृथ्वी का है। इस पृथ्वी पर भी प्रेम है, भले प्रेम भी एक स्वर्गिक निधि है। प्रेम सबको प्राप्त नहीं होता। प्रेम में प्राण को बिंधना पड़ता है। नयनों से शत-निर्झर फूट पड़ते हैं। फूल को भी माला बनने हेतु हमेशा बिंधना पड़ता है, कष्ट सहना पड़ता है, तभी तो प्यारी को प्रेमी ललचा पाता है, पर पुष्प प्रेमिका का हृदय हार बनकर तृष्णा भाव को स्वीकार करना नहीं चाहता। उसे अपनी भूमिका उससे बड़ी प्रतीत होती है। उसे उससे बड़ा काम करना बाकी है तो क्या उसे किसी सम्राट के शव पर डालकर पृथ्वी के देवता के अंतिम संस्कार में सम्मिलित कर लिया जाए। नरों में नराधिप परमात्मा का सर्वाधिक अंगभूत माना जाता है। उस पर पुष्प चढ़ाकर सब लोग अपने भाग्य की सराहना करते हैं। फूल सत् और श्रद्धा का मूर्त प्रतीक होता है। सम्राट पृथ्वी का देवता है, पृथ्वी पति है और वह भी घर छोड़कर स्वर्ग लोक में ही जा रहा है, अतः पुष्प अपने अधीश्वर के जाने के पूर्व उनके मृतिका शरीर पर चढ़कर गौरव का अनुभव करेगा, लेकिन चतुर्वेदी जी का पुष्प उसमें संतुष्टि का अनुभव नहीं करता है। फलतः वह अपनी अंतिम चाह पर अपने को केंद्रित कर पृथ्वी स्थित देव मूर्तियों के सिर पर भी नहीं चढ़ना चाहता। देव पूजा विधान का एक प्रबल पक्ष बनकर न तो वह अपने जीवन को सार्थक करना चाहता है और न अपने भाग्य पर इठलाना ही चाहता है। वह जानता है कि फूलने के बाद मैं अवश्य मुरझाऊँगा। उसके बाद पृथ्वी का खाद बनूँगा। उसे यह भान है कि जीवन नियति उसका भी पीछा नहीं छोड़ेगी, पर वह अपनी चाह के प्रति अडिग है। इस तरह कवि पुष्प की इन चार विशिष्ट संभावनाओं को नकारता हुआ हर स्थान से उसे निषिद्ध कर देता है।

गौरतलब है कि फूल में प्रकृति की पंचतन्मात्राओं में से तीन विभूतियाँ रूप, रस और गंध के स्वरूप में उसकी निर्मिति में ही संस्थित रहती हैं। पुष्प मनुष्य की तीन इंद्रियों आँख, नाक और जिह्वा को एक साथ सुख पहुँचाता है। ऐसी त्रिपुटि प्रकृति के किसी पदार्थ में एक साथ समंजित नहीं है। संसार सदा जिनका क्रीतदास बनकर रहना चाहता है, चतुर्वेदी जी का पुष्प उनका गुलाम बनकर नहीं जीना चाहता। वह अपने को सिर्फ उनकी चरण धूलि का पात्र मानता है, जो मातृभूमि पर शीश चढ़ाने के लिए निःशंक भाव से धूल उड़ाते हुए बलिदान यात्रा के लिए प्रस्थित हो रहे हों। वह उन बलिदानियों की टोली पर मुग्ध है, जो अपने प्राण को मातृभूमि की बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए समुत्सुक होकर प्रयाण कर रहे हैं। धूल, फूल का विपरीतार्थक शब्द है, जिसके प्रति प्रेम होता है, जो पूज्य होता है, उसी की चरण धूलि को हम अपने सिर से स्पर्श कराकर धन्य हो जाते हैं। उधर फूल की कोमल, मसृण, चिकनी पंखुड़ियाँ की परिकल्पना और उन पंखुड़ियों का धूल-धूसरित होकर बलिदानियों के परुष चरणों और लौह निर्मित पादुका से संस्पर्शित होकर दोनों ही ध्रुवांतों की कथा में मर्दित होना है, लेकिन बलिदानों के कठिन उपानहों के नीचे रौंदे जाने के बाद भी फूल अपने को धन्य पाता है। वह उत्फुल्ल होकर अपने जीवन की सार्थकता को सराहता है।

वस्तुत प्रथम बंध में पुष्प की चार अभिलाषाएँ पुरुषार्थ की चार अवस्थाएँ -- अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के समान हैं, लेकिन चारों का निषेध कर वीरों के एक नहीं उनकी समस्त टोलियों के चरणों में धूल-धूसरित और मर्दित हो जाना पुष्प का यह चरम लक्ष्य मानव जीवन की चार अवस्थाओं से मिलता-जुलता एकमेक हो गया है, क्योंकि अमित चाह की अमित अभिव्यक्ति बलिदानियों के चरणों के स्पर्श से ही तुष्ट हो सकेंगी। पुष्प की अभिलाषा श्रेयस तथा प्रेयस दोनों से पृथक स्थिति में है।

चतुर्वेदी जी के पुष्प को न श्रद्धा की जरूरत है, न गूँथने की, न चढ़ाने की। उनका पुष्प तो केवल वीर पथ पर फेंक दिया जाना चाहता है। बलिदान की भाषा में फूल का व्याकरण किए का फल भोगना आवश्यक नहीं मानता। फूल चाहता है कि हम अपने अस्तित्व को खाक में मिला लें और राह में ही समाधिस्थ हो जाएँ, क्योंकि मातृभूमि की रक्षा तो शीश देकर ही की जाती है, क्योंकि मातृभूमि वीर प्रसविनी होती है। प्राण को कभी-न-कभी किसी-न-किसी ब्याज से जाना ही है तो माँ के चरणों पर ही क्यों चढ़ा दिया जाए। प्राणदान की अभिलाषा लेकर कूच करने वाली वीरों की टोली के चरणों की धूल को पाकर यह फूल अपने जीवन को सार्थक करने की इच्छा रखता है। वह जानता है कि वीरों से बढ़कर न कोई देवता है, न देवी, न सम्राट ही। चूँकि मातृभूमि केवल मिट्टी का समवाय नहीं है। उसके सामने कोई नाम नहीं, कोई रूप नहीं, कोई अभिलाषा नहीं। नाम हो तो माता का, नाम हो तो मातृभूमि का, जिसने हमें रूपाकार दिया है, उसका नाम हो।

इन्हीं भावनाओं का कद्र करते हुए पुष्प की आकांक्षा है कि अनेक वीरों की राह से गुजरती हुई टोली की धूल-धूसरित भूमि पर हमें ले जाकर वनमाली पहले ही फेंक दे और हम अनाम होकर अपनी भाव समाधि धूल में प्राप्त कर लें। तब मेरा पुष्प-जीवन सार्थक हो पाएगा, जो अब तक नहीं हो पाया है। इस तरह, इस कविता की बारह पंक्तियों में देश प्रेम और जाति प्रेम परक रचनाओं के अनेकानेक स्वर एक साथ समंजित हो गए हैं।

चतुर्वेदी जी की इस कविता के कारण राष्ट्र का यौवन जेलों में खेलने लगा और बलि पथ का पथिक बनने में जीवन की सार्थकता और गौरव की अनुभूति करने लगा। वस्तुतः सच्चे राष्ट्र प्रेमी के रूप में भावुकता और उत्कट राष्ट्र भावना चतुर्वेदी जी के काव्य में सर्वत्र सहजता लिए है। डॉ. वेद भानु आर्य ने उचित ही कहा है, "पं. माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व में मधुर कवि और ओजस्वी सैनिक एक आलिंगन पाश में बद्ध है – उसमें भावुक नारी और कर्मशील पुरुष का संयोग है।"[3]

डॉ. देवराज शर्मा 'पथिक' के अनुसार, "युवकों में बलिदान की महान भावना उत्पन्न करने में चतुर्वेदी जी की समता हिंदी का कोई अन्य कवि नहीं कर सकता। जितनी आग, जितनी तपन, जितनी उमंग और जितनी प्रेरणा इनके राष्ट्रीय काव्य में मुखरित हुई है, उसकी समता का राष्ट्रीय काव्य आज तक हिंदी में दुर्लभ है। राष्ट्रीय कविता के निर्माण में बलिदान की महान भावना को चतुर्वेदी जी ने सर्वोच्च आसन प्रदान किया है।"[4]

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ. जय किशन प्रसाद, पृष्ठ 326
2. माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं. प्रेम नारायण टंडन, पृष्ठ 97
3. चुने हुए कवि और लेखक, डॉ. वेद भानु आर्य, पृष्ठ 109
4. हिंदी की राष्ट्रीय काव्य धारा एक समग्र अनुशीलन, डॉ. देवराज शर्मा 'पथिक', पृष्ठ 226

प्रो. सुनील कुमार तिवारी

स्वामी सहजानंद सरस्वती और उनका आंदोलनात्मक स्वरूप

–आलोक यादव

सन् 1927 के उत्तरार्द्ध में जब बिहार किसान आंदोलन ने एक संगठित रूप लेना शुरू किया, उसी समयावधि में किसान सभा के स्तंभ स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने सर्वप्रथम किसान आंदोलन चलाना शुरू किया था। इस आंदोलन की शुरुआत स्वामी जी ने अपने कार्य क्षेत्र पश्चिमी पटना से की थी। स्वामी जी ने स्वयं लिखा है कि ''हमें तो सिर्फ पश्चिमी पटना को देखना है, इसी ख्याल से पश्चिमी पटना से ही हमारा किसान आंदोलन सन् 1927 के बीतते शुरू हो गया।''[1] इसी के कुछ दिन बाद ही 4 मार्च 1928 को पश्चिमी पटना में किसान सभा की स्थापना की गई। इसकी नियमावली, उद्देश्य, सदस्यता, शर्तें इत्यादि बनायी गयीं। स्वयं स्वामी जी ने पश्चिमी पटना किसान सभा की स्थापना काल 1927 ई. के उत्तरार्द्ध को मानते हुए लिखते हैं- ''किसान सभा का जन्म असल में सन् 1927 के आखिरी महीनों में ही हुआ, इतना तो पक्का है।''[2] इतना निश्चित है कि स्वामी जी ने सर्वप्रथम सुधारक के रूप में किसान सभा को जन्म दिया।

बिहार में किसानों के हितों को आघात करने के लिए 1929 के अंत में सरकार कौंसिल में एक विधेयक लाने वाली थी। तत्कालीन समय में स्वराज्य पार्टी की ओर से श्री रामदयालु सिंह, बाबू श्रीकृष्ण सिंह, श्री बलदेव सहाय वगैरह कौंसिल के सदस्य थे। वे लोग इस काश्तकारी कानून में सुधार वाले बिल से परेशान थे। फलतः नवम्बर, 1929 को रामदयालु सिंह, यमुना कार्यी के साथ स्वामी जी से मिले और प्रांतीय किसान सभा के गठन का निश्चय किया। अंततः 1929 के नवम्बर में बिहार किसान का गठन किया, जिसके अध्यक्ष स्वामी जी को बनाया गया। बाबू श्रीकृष्ण सिंह को महामंत्री तथा पंडित यमुना कार्यी, श्री गुरू सहाय लाल, श्री कैलाश बिहारी लाल को डिवीजनल सेक्रेटरी चुना गया। सदस्यों के रूप में राजेन्द्र प्रसाद से लेकर तमाम कांग्रेसी सदस्यों का नाम रखा गया तथा सबों ने इसकी स्वीकृति भी दे दी।

इसके बाद तो कांग्रेसी नेता, किसान सभा को तोड़-मरोड़ में ही लग ये। उन्होंने नकली किसान सभा का गठन भी कर लिया। जिसका मुख्य कार्य किसानों एवं जमींदारों के बीच समझौता करवाना था। इसका भंडाफोड़ 1933 में हुआ। 14 फरवरी 1933 को बिहार प्रांतीय किसान सभा की बैठक गुलाब बाग, पटना में दोपहर के बाद करने की खबर अखबारों में छपवायी गई। जिसमें किसानों एवं जमींदारों के बीच समझौता करने की बात थी। किसान सभा के अध्यक्ष स्वामी जी एवं अन्य लोगों को इसकी खबर नहीं थी जैसा कि स्वामी जी ने स्वयं गया में डॉक्टर युगल किशोर सिंह से जो बातें कहीं उससे यह स्पष्ट हो जाता है। स्वामी जी के अनुसार, ''मैं किसान सभा से अलग हूँ, जो इस्तीफा नहीं दिया हूँ, दूसरे जब मुझे इन लोगों ने खबर तक देना उचित नहीं समझा हालांकि सभी जानते हैं कि मैं यहीं हूँ, तो फिर मेरा वहाँ बिना बुलाया जाना उचित नहीं, इसलिए हरगिज नहीं जा सकता।''[3]

14 फरवरी 1933 को गुलाब बाग, पटना में होने वाली किसान सभा की बैठक में डॉ. युगल किशोर सिंह के आग्रह के कारण किसी तरह स्वामी जी भी गुलाब बाग पहुँचे। उस किसान सभा की बैठक में बिहार लैंड होल्डर्स एसोसिएशन के स्तंभ श्री सच्चिदानंद सिन्हा और राजा सूर्यपुरा श्री राधिका रमण प्रसाद सिंह जैसे जमींदारों ने भाग लिया था। किसान मात्र 10 या 20 की संख्या में होंगे। इस सभा को जिस मकसद से गुरू सहाय बाबू ने बुलाया था वो मकसद स्वामी जी की सभा में पहुँच जाने से पूरा नहीं हो सका। जमींदारों का काम नहीं हो सका और उनकी नकली किसान सभा का भंडाफोड़ हो गया। सन् 1933 की गर्मियों में बिहार प्रांतीय किसान सभा की कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई उसमें निर्णय लिया गया कि किसान सभा गया के किसानों के दुःख-दर्द की पूरी जाँच करके उसकी रिपोर्ट छपवाये, उन पर उचित कार्यवाही करें और यही किया भी गया। बिहार प्रांतीय किसान सभा का प्रथम अधिवेशन 1933 के बरसात के महीने में बिहार में ही हुई जिसमें पुनः स्वामी जी अध्यक्ष चुने गये। 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट बन जाने के बाद सोशलिस्ट पर कांग्रेसियों का प्रभाव बढ़ता गया। हालांकि स्वयं सहजानन्द सरस्वती भी समाजावादी विचारधारा के प्रचारक ही रहे थे और अपने भाषणों में समाजवाद का जिक्र भी किया करते थे।

21 अप्रैल 1934 को स्वामी सहजानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में बिहार प्रांतीय किसान सभा की कार्यकारिणी समिति की एक बैठक पटना में बलदेव सहाय के घर पर हुई। इस बैठक में बलदेव सहाय, जय प्रकाश नारायण, महावीर प्रसाद, राम कुमार त्रिपाठी, युगल किशोर सिंह, अब्दुल बारी, राम नन्दन मिश्रा, बद्री नारायण सिन्हा, भैरो सिन्हा, यमुना कार्यी, धनराज शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामदीन शर्मा, श्याम नन्दन सिन्हा, पुष्प देव शर्मा, रामेश्वर सिन्हा, अवधेश प्रसाद सिन्हा, महावीर ठाकुर ने भाग लिया। इस बैठक में सचिव मंडल के अनेक सदस्यों को उनके पद से हटा दिया गया तथा यह तय किया गया कि जो तीन बैठकों में लगातार भाग नहीं लेंगे, उन्हें सदस्यता से वंचित कर दिया जायेगा। इस बैठक में आपसी मतभेद काफी थे। अतः फिर एक नई कमिटी एवं सचिव मंडल बनाया गया, जिसमें स्वामी सहजानन्द सरस्वती अध्यक्ष, बलदेव सहाय एवं अब्दुल बारी उपाध्यक्ष, जयप्रकाश नारायण एवं यमुना कार्यी सचिव, अम्बिका प्रसाद पटना में डिविजनल सचिव, किशोरी प्रसन्न सिन्हा को तिरहुत का डिविजनल सचिव बनाया गया। इस बैठक में किसानों की स्थिति में सुधार के लिये कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये एवं कार्यक्रम तैयार किया गया।

पुनः 10 जून 1934 को स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में बिहार प्रांतीय किसान सभा की बैठक हुई जिसमें कई प्रमुख फैसले लिये गये-

1. बिहार प्रांतीय किसान सभा की राज्य कार्यकारिणी में गंगा शरण सिन्हा एवं गया के बद्री नारायण को शामिल कर लिया गया।

2. मुख्य कार्यालय अब पटना में खोल दिया गया तथा गंगा शरण सिन्हा को सचिव बनाकर कार्यालय में रखने का फैसला किया गया।

3. गया जाँच समिति की रिपोर्ट किताब की शक्ल में छपवायी गई।

4. जमींदारों के खिलाफ किसानों की समस्याओं के समाधान की मांग की गई।

5. बिहार प्रांतीय किसान सभा का तीसरा सम्मेलन गया में जुलाई 1934 के तीसरे सप्ताह में करने का फैसला किया गया।

6. किसान सभा ने सरकार के इस प्रावधान से असंतोष व्यक्त किया कि प्रादेशिक सरकार ने लाभकारी ईख एक्ट नहीं बनाया है। खासकर ईख का निश्चित मूल्य निर्धारण नहीं होने से अधिक असंतोष था।

इसके बाद किसानों के अधिकारों को रेखांकित किया गया। किसानों के मौलिक अधिकारों में प्रमुख थे-

1. सारी जमीन पर किसानों का अधिकार होना चाहिए।

2. बलुआही, दलदली, पर्वतीय आदि वैसी जमीन जिसपर किसान परिवार रह नहीं सकते, पर मालगुजारी या टैक्स नहीं लगना चाहिए।

3. प्रत्येक किसान के पास भरण-पोषण के लिए कम से कम उसकी जमीन जरूर हो जितनी से उसका काम चल जाये।

4. टेनेन्सी कानून भी किसानों के हित में बनाया जाना चाहिए।

5. किसान सभा की सदस्यता शुल्क दो आना से घटाकर एक पैसा कर दिया जाना चाहिए एवं डिविजनल सेक्रेटरी की संख्या बढ़ायी जानी चाहिए तथा सदर कार्यालय के लिए गंगा शरण को रखा जाना चाहिए। इसी समय गया के किसानों के बीच एक हिन्दी पम्पलेट बाँटा गया जो भारत शिवशंकर भारती द्वारा गया जेल से भिजवाया गया था। इस पर्चे में किसानों को संबोधित करते हुए कहा गया था कि ''किसानों की हजारों बीघा जमीन नीलाम करवा दी जा रही है, साथ ही मालगुजारी के अनुसार सिंचाई की बहुत ही खराब व्यवस्था है। अमावा, बोधगया तथा अन्य भूपतियों और उसके गुर्गों द्वारा लाखों रूपये वेश्यावृति एवं अन्य विलासिता के कामों पर उड़ा दिये जाते हैं, जबकि उसका कर्तव्य किसानों की फसल की रक्षा करना है।''[4]

पर्चे में आगे कहा गया है कि ''जमींदारों का यह कर्तव्य होता है कि ऐइयाशी छोड़ मरते किरायेदारों की रक्षा करें। साथ ही गरीब, हरिजनों एवं कुचले गये लोगों के साथ मित्रता भी करें। मगर वे ऐसा नहीं करते हैं, इसीलिए उनके उद्देश्य को नाकाम कर देना चाहिए। जवाहरलाल नेहरू एवं सरदार वल्लभ पटेल भी जमींदारी का खात्मा चाहते थे।''[5]

जमींदारों के इस तरह के शोषण, उनकी ऐयाशी और किरायेदारों की स्थिति पर्चे में दर्शाते हुए अंत में जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करने के लिए बिहार में सभी किसानों को एक होकर लड़ने का आह्वान किया गया था। पटना जिला किसान सभा का सम्मेलन 4 जुलाई 1934 को सिलाव मे सम्पन्न हुआ। आम सभा को संबोधित करते हुए स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने कहा कि ''भगवान का सही रूप किसान ही है। यह किसान अपने खून पसीने की कमाई से पूरे विश्व को खिला रहा है। इसलिए किसानों का यह उनका अधिकार है कि वे फसल उपजाते हैं। इसलिए उसका उपयोग करने का अधिकार पहले उन्हें और उनके बच्चे को है और उससे जो बचेगा वह भूपतियों और दूसरे के लिए है।''[6]

सम्मेलन में किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए किसानों को संगठित करने एवं आंदोलन करने का कार्यक्रम तय किया गया। अगले सत्र के लिए पटना जिला किसान सभा का अध्यक्ष कामेश्वरी महतो, सचिव

लेख महतो, संयुक्त सचिव विमल सिंह एवं कोषाध्यक्ष ममारी महतो को चुना गया।

8 जुलाई 1934 को मुंगेर जिला किसान सभा का सम्मेलन हुआ, जिसमें संगठन एवं आंदोलन के कई प्रस्ताव पास किये गये। सममेलन को संबोधित करने वालों में स्वामी सहजानन्द सरस्वती, बलदेव सहाय, कार्यानन्द शर्मा, बिशेश्वर सिंह, किशोरी प्रसन्न सिंह, तिलकधारी सिंह इत्यादि प्रमुख थे। नये सत्र के लिए मुंगेर जिला किसान सभा के अध्यक्ष शफीउद्दीन रिजवी, उपाध्यक्ष यमुना प्रसाद सिंह सचिव बलदेव प्रसाद सिंह एवं कार्यानन्द शर्मा, कोषाध्यक्ष राम स्वरूप तथा कार्यकारिणी के सदस्यों के रूप में बनारसी प्रसाद, नन्द कुमार सिंह, कृष्ण मोहन, गिरधर नारायण, अब्दुल कलाम नकवी, विशेश्वर प्रसाद सिंह एवं सूद प्रसाद सिंह को चुना गया। सम्मेलन के अध्यक्ष श्री कृष्ण प्रसाद सिंह ने धन्यवाद ज्ञापन किया। यहाँ इस बात का जिक्र करना युक्तिसंगत होगा कि महात्मा गाँधी की अध्यक्षता में बिहार सेन्ट्रल रिलीफ कमिटी की एक बैठक 18 मार्च 1934 को सिन्हा हॉल में हो रही थी, जिसमें 200 से अधिक महत्वपूर्ण लोग इक्ट्ठे हुए थे, जिसमें सोशलिस्ट एवं कम्युनिस्टों ने भी भाग लिया था। उनमें प्रमुख थे नरेन्द्र देव, जे. बी. कृपलानी, आर. वी. रिजवी, मोहम्मद सज्जाद, स्वामी सहजानन्द सरस्वती, मथुरा प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, फूलन प्रसाद वर्मा एवं गंगा शरण सिंह। इस बैठक में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने जमींदारों के शोषण एवं करदाताओं की स्थिति पर कुछ सवाल उठाए। उस सवाल को सुनकर राजेन्द्र प्रसाद ने स्वामी जी को खरी-खोटी सुनाते हुए कहा था कि ''यदि आप लोग इस संगठन में राजनीति लाना चाहते हैं तो कृप्या इस्तीफा देकर आप लोग चले जाये।''[7] इस बात से स्पष्ट है कि राजेन्द्र प्रसाद जमींदारों के खिलाफ कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे जो जमींदारों के प्रति उनके वर्ग हित को दर्शाता है।

सन् 1934 ई. में गया में बिहार प्रदेश किसान सभा का दूसरा सम्मेलन हुआ। इसमें उत्तर प्रदेश से पुरूषोत्तम दास टंडन तथा मोहन लाल गौतम और उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत से सीमांत गाँधी अब्दुल गफ्फार खाँ और उनके भाई ने संबोधित किया। तब तक सभा पर समाजवादियों का प्रभाव स्थापित हो गया था। अध्यक्ष ने 29 अगस्त 1934 के अपने भाषण में जमींदारी प्रथा की समाप्ति की चर्चा की। लेकिन स्वामी सहजानन्द अभी भी पूरी जमींदारी प्रथा के खिलाफ नहीं थे। उन्होंने तुरंत स्पष्ट कर दिया कि टंडन जी यह सब व्यक्तिगत तौर पर कह रहे हैं। इस सभा ने बंगाल काश्तकारी कानून 1885 की 112 के तहत लगान की दर में कमी की मांग की, गन्ने की कीमत कम से कम आठ आना प्रति मन करने का प्रस्ताव पारित किया तथा छः महीने के अंदर गाँव से जिला स्तर तक किसान संगठन की इकाइयाँ भी स्थापित करने का निश्चय किया। लेकिन जब किसान सभा इस तरह के प्रस्ताव विभिन्न स्तरों पर हुई, अपनी सभाओं में पारित कर रही थी और कांग्रेस 1934 में केन्द्रीय विधायक के चुनाव में अपने उम्मीदवारों को विजय दिलाने में व्यस्त थी, उसी समय बिहार की विधायिका ने 14 सितम्बर 1934 को एक नया विधेयक बिहार काश्तकारी सुधार अधिनियम पारित कर दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह किसान सभा के लगातार आंदोलन का ही फल था कि पहले काश्तकारी विधेयक की तरह इसमें जमींदारों को और जमीन को जिरात बनाने का अधिकार नहीं दिया गया था तथा किसानों को भी अपनी जमीन में पेड़ रोपने तथा कुएँ खोदने का अधिकार मिल गया था। किसान सभा विभिन्न स्तरों पर विभिन्न मुद्दों के खिलाफ आंदोलन करती रही, लेकिन कांग्रेस के रवैये से धीरे-धीरे साम्यवादी और समाजवादी निराश होने लगे थे। धीरे-धीरे वे दोनों दल और भी करीब आ गए तथा 1934 ई. के अंत तक स्वामी सहजानंद अपने भाषणों में काफी आक्रामक हो गए। 1935 के जनवरी में समाजवादी पार्टी का उन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि विपिन प्रसाद सिन्हा और स्वामी जी ने डेहरी ऑन सोन के चीनी मिल में एक स्वामी मजदूर यूनियन की स्थापना की बात सोचनी शुरू की। इसी तरह स्वामी जी की बिहार चीनी मिल से हुई लड़ाई भी चलती रही।

संदर्भ

1. स्वामी सहजानन्द सरस्वती, 'मेरा जीवन संघर्ष', पृष्ठ संख्या-234
2. वही, पृष्ठ संख्या-234
3. वही, पृष्ठ संख्या-235
4. रिपोर्टर इंस्पेक्टर द्वारा 1934 की एस. पी. पटना को लिखे गये पत्र से लिया गया तथ्य, राजनीतिक विशेष, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना, फाइल नंबर-10/1934
5. वही, फाइल नंबर-10/1934
6. वही, फाइल नंबर-10/1934
7. वही, फाइल नंबर-10/1934

हरिशंकर परसाई की कहानियों में राजनैतिक व्यंग्य का अध्ययन

–आस्था तिवारी
–डॉ. शशि भूषण चौधरी

आमुख :

हरिशंकर परसाई हिंदी साहित्य जगत के महान व्यंग्यकारों एवं प्रसिद्ध लेखकों में से एक थे। हिंदी साहित्य में व्यंग्य को एक विधा के रूप में पहचान दिलाने के साथ-साथ व्यंग्य की पुरानी एवं परंपरागत जो मनोरंजन के लिए प्रयोग होता था, को परिधि से बाहर निकालकर समाज कल्याण से जोड़कर अपनी विधाओं में प्रस्तुत किया। इसके माध्यम से इन्होंने राजनीतिक और सामाजिक जीवन में हो रहे पर्याप्त रूप से भ्रष्टाचार और शोषण पर व्यंग्य किए हैं, जो वर्तमान समय में प्रासंगिक हैं। इन्होंने कहानी, उपन्यास और संस्मरण भी लिखे हैं, लेकिन इन्हें व्यंग्य किए जाने वाले कुठाराघात के लिए अधिक जाना जाता है। इन्होंने राजनीतिक विडंबनाओं, सामाजिक समस्याओं एवं सामाजिक रूढ़ियों पर व्यंग्य किया है। परसाई जी एक सफल व्यंग्यकार के साथ-साथ कहानीकार भी हैं। वे व्यंग्य को ध्यान में रखकर भाषा का चुनाव करते हुए लिखते हैं। इनकी रचनाओं में बोलचाल की भाषा, स्वदेशी भाषा, तत्सम शब्दों के साथ विदेशी भाषाओं के शब्दों का चयन उच्च कोटि का है।

मुख्य शब्द : परसाई जी, व्यंग्य, राजनीतिक, सामाजिक रूढ़ियाँ।

प्रस्तावना :

व्यंग्य साहित्य, प्रदर्शन कलाओं एवं दृश्य कलाओं में पाया जाने वाला एक प्रकार का हास्य है, जिसका उद्देश्य अपने पाठकों को दूसरों की मूर्खता, गालियों, दोष और कमियों पर हँसाना है, जो कथित कमियों को बताकर शर्मसार करना या उजागर करने का प्रयास है। व्यंग्य का प्राथमिक लक्ष्य हंसी नहीं है, बल्कि बुद्धि का उपयोग करके रचनात्मक रूप से राजनैतिक एवं सामाजिक समालोचना करते हुए सरकारों, स्थानीय सरकारों और प्रणालीगत संस्थाओं की समस्याओं को उजागर करना ही विडंबना या व्यंग्य की पहचान है। 'व्यंग्य में विडंबना उग्रवादी है' साहित्यिक आलोचक नॉर्थोप फ्राय ने इसका उपयोग किया था। व्यंग्यकार अक्सर अपने विचारों को व्यक्त करते समय अतिशयोक्ति करना, तुलना करना, और द्विअर्थी जैसे अन्य उपकरणों का भी उपयोग करते हैं। यह विडंबना या कटाक्ष अक्सर सटीक विचारों या प्रथाओं को प्रस्तुत करता है जो व्यंग्यकार प्राकृतिक रूप में स्वीकृत या अस्वीकृत किए जाने के लिए आलोचना करना चाहता है।[1]

हिंदी साहित्य के सबसे प्रसिद्ध व्यंग्यकारों और हास्यकारों में से एक हरिशंकर परसाई हैं। परसाई के विषम मानवीय व्यवहार और समाज पर टिप्पणी के चित्रण ने नाट्य समूहों से लेकर विद्यालय की पाठ्यपुस्तकों तक एवं विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं में एक समर्पित स्थान प्राप्त किया है। अभिनेता और निर्देशक प्रतीक कोठारी मुबई में देशी एवं विदेशी दर्शकों के लिए लेखक की रचनात्मकता को पेश करने के प्रयास में हरिशंकर परसाई के तीन कहानियों को चूतीयापे व्यंग्य नामक एक कार्यक्रम में प्रस्तुत करेंगे। जब व्यक्तियों का एक समूह मंच पर प्रदर्शन करने के लिए एकत्रित होते है तब बातचीत होना स्वाभाविक है, इसके साथ ही यह नाटकों और उनके लेखकों की तरफ घूम जाती है। इनमें से एक पाठ के समय ही प्रतीक का परिचय परसाई से हुआ था। उस समय तक उन्होंने केवल प्रेमचंद, चुगताई और मंटो के बारे में ही सुना था। प्रतीक व्यंग्य के साथ हास्य प्रतिभा से मुग्ध होकर लेखक की रचनाओं में प्रतिभाग लिया और लेखक की कहानियों को अपनी अनूठी शैली में फिर से बनाने के विचार के साथ एक फिल्म कथा, एक लड़की पांच दीवाने, तथा भेड़ और भेड़ियें में कथा, रंगमच और स्टैंड-अप कॉमेडी के तत्व शामिल किया हैं।[2]

हरिशंकर परसाई और राजनीतिक व्यंग्य :

''हरिशंकर परसाई विभिन्न राजनीतिक दलों के एजेंडे का मजाक उड़ाते हैं, सरकारी संस्थानों की अक्षमताओं के बारे में शिकायत करते हैं, इसके साथ ही विचारों और नैतिकता की आड़ में किए गए अवसरवाद को बुलावा देते हैं।''[3] नए

मूल्यों से संचालित प्रधानमंत्री ने व्यवसाई नेताओं से स्वयं के लाभ को अलग रखने और प्रतिदिन उपयोग होने वाली सामग्रियों की आसमान छूती कीमतों को कम करके व्यक्तियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए कहा। व्यवसाई नेताओं ने कीमतों में गिरावट किया तब अगले दिन से पूरे देश में अराजकता है, इसकी वजह कीमतों में गिरावट हैं। व्यक्ति कम कीमत पर सामग्री नहीं खरीदेगा क्योंकि उसे डर है कि उसकी पत्नी उस पर सामग्रियों के चुराने का आरोप लगाएगी। मुद्रास्फीति के कारण वेतन कम होने से नाराज सरकारी कर्मचारियों द्वारा एक आम हड़ताल का समापन होता है। व्यक्ति द्वारा सस्ते भोजन को जल्दी से अपचनीय पाया जाता है और स्वास्थ्य के संकट बढ़ने से पहले प्रधानमंत्री को व्यवसायियों से कीमतों को उनके पूर्व स्तर पर वापस लाने के लिए एक और दलील देने के लिए मजबूर किया जाता है। हरिशंकर परसाई के इस सम्पूर्ण और हास्यास्पद लेख का उद्देश्य इंदिरा जी के बाद के प्रधानमंत्री द्वारा दी गई दलीलों पर प्रहार करना था, लेकिन इसमें वर्तमान समय के मन की बात और कड़ी निंदा के समान समानता है। अपने कई कहानियों में राजनीतिक व्यवस्था के व्यावहारिक रूप से आलोचना करते हुए विशिष्ट राजनीतिक दलों एवं मंत्रियों के नाम लेते हैं। लेखक के अवरोध की कमी भी एक आँख खोलने वाला पठन अनुभव बनाती है। उनके लेखों ने शासक और शासित दोनों वर्गों के पाखंड का पर्दाफाश किया है। ''वह विभिन्न दलों के घोषणापत्र का उपहास उड़ाते हैं, इसके साथ ही संस्थानों की अक्षमताओं पर कुठाराघात करते हैं, नैतिकता की आड़ में अवसरवादिता की ओर ध्यान आकर्षित करने वाले व्यक्तियों की निंदा करते हैं, साथ ही राजनीतिक विचारधाराओं के सैद्धांतिक ढांचे में कई खामियों पर चर्चा करते हैं।''[4]

राजनीतिक व्यंग्य का महत्व :

राजनीतिक व्यंग्य में प्रस्तुतकर्ता का मतलब हो या न हो वह हमेशा लोगों को प्रतिदिन के मुद्दों के बारे में बताता है। इस मुद्दों में व्यंग्य और पैरोडी के प्रयोग से वार्तालाप को रुचिकर बनाते हुए सोशल मीडिया की मदद से अपना वक्तव्य और पाठकों के मध्य बातचीत जारी रखता है, इससे सोशल मीडिया पर राजनीतिक बातें फैलती हैं। जॉन स्टीवर्ट और जे लेनो ने अपने दर्शकों को राजनीतिक शो के बजाय मनोरंजकयुक्त शो के लिए दूरदर्शन का उपयोग करने के लिए कहा, इसके साथ ही उनका लक्ष्य है कि किसी भी तरह से दर्शकों की राय को प्रभावित नहीं करना है। दर्शक अपने मनोरंजन के लिए किसी भी शो के देखने का चयन कर सकते हैं। ''राजनीतिक व्यंग्य हमेशा सही नहीं होता, लेकिन कभी-कभी यह एक गंभीर विषय पर प्रकाश डाल सकता है। यहाँ तक कि जो लोग राजनीति पर ज्यादा ध्यान नहीं देते वे भी राजनीतिक मुद्दों के संपर्क में रहते हैं और जितना अधिक वे किसी समस्या के बारे में सुनते हैं, उतना ही वह उनके साथ चिपके रहते हैं।''[5] द डेली शो में किन विषयों पर सबसे अधिक चर्चा की गई, यह पता लगाने के लिए वीडियो मॉनिटरिंग सर्विसेज ऑफ अमेरिका डेटाबेस से डेटा का उपयोग किया गया जिसमें यह देखा गया कि अधिकांश लोग राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों से जुड़े नवीनतम विषय में रुचि रखते हैं। जो लोग आम तौर पर राजनीति पर ज्यादा ध्यान नहीं देते, वे अचानक उम्मीदवारों की खबरों में अधिक रुचि लेने लगते हैं। राजनीतिक व्यंग्य विनोदी होता है, लेकिन अक्सर इसका अर्थ अपेक्षा से अधिक गहरा होता है। द डेली शो और द लेट शो सुस्त से बहुत दूर हैं इस तथ्य के बावजूद कि वे बहुत कम मीडिया आउटलेट से आते हैं। वे लोगों का ध्यान गलती से वापस राजनीति में लाते हैं।''[6]

परसाई की सामाजिक चेतना :

परसाई जी जन शिक्षा पर व्यंग्य करते हैं। इनके व्यंग्य का उद्देश्य समाज के जनमानस को शिक्षित एवं परिमार्जित करना है। इनका व्यंग्य हँसाने या गुदगुदाने के लिए नहीं है। सामाजिक सरोकार में रहते हुए सामाजिक चेतना पर लिखते-लिखते वह व्यंग्यकार बन गए इसके साथ ही वह पाठकों को उनके अंतर्विरोध के प्रति सचेत करते रहते हैं। कुछ व्यंग्यकार परसाई जी की रचनाओं को केवल राजनीतिक व्यंग्य कहते हैं जबकि ऐसा कहना बहुत छोटी बात होगी। सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ता रामप्रकाश त्रिपाठी ने थिएटर ग्रुप द्वारा परसाई जन्मदिवस पर आयोजित संगोष्ठी जिसका विषय 'हरिशंकर परसाई और हमारा समय' पर अपना व्याख्यान देते हुए कहा कि ''परसाई जी बहुत बड़े लेखक और विचारक है।'' इस मौके पर साहित्य के आलोचक अरुण कुमार ने कहा कि ''परसाई के व्यंग्य को एक नई दृष्टि से देखने की जरूरत है। उनका व्यंग्य सामाजिक सजगता और जागरुकता को बढ़ाता है। परसाई के अंदर समाज के अंतर्विरोध को उघाड़ने और सामने लाने की इच्छा थी।''[7]

साहित्य की समीक्षा :

यंग (2016) ने अपने शोध पत्र 'हँसी, सीख या आत्मज्ञान द डेली शो और कोलबर्ट रिपोर्ट के पीछे देखने और बचने की मंशा' में बताया कि बहुत से लोग हरिशंकर परसाई जी से कुछ सीखने के बजाय अपनी पसंदीदा कॉमेडी में ट्यून करते हैं। वे लोगों को राजनीति समझने के लिए व्यंग्य करते हैं इससे लोगों में राजनीतिक बातचीत में प्रतिभाग करने से पहले राजनीतिक घबराहट कम हो सकती है और आत्मविश्वास बढ़ सकता है। किसी व्यक्ति की राजनीतिक प्रभावकारिता को इस बात से मापा जा सकता है कि वे राजनीतिक समस्याओं को कितनी अच्छी तरह समझते हैं और सरकार में उनका कितना भरोसा है।

द डेली शो का प्रभाव राजनेताओं पर अलग-अलग होता है। इस वजह से वर्तमान समय में परसाई जी व्यंग्य के अग्रणी प्रदाता बन गये।''[8]

बेम (2015) ने अपने शोध पत्र 'द डेली शो राजनीतिक संचार' में बताया कि जब राजनीतिक कार्यवाई की बात आती है तो दर्शकों, राजनीतिज्ञों पर संभावित प्रभावों की जाँच को सोचते हैं, इस प्रकार की खबरों पर परसाई जी व्यंग्य करने से नहीं चुकते हैं और व्यंग्य इस प्रकार से करते हैं कि दर्शक अनुसरण करे। परसाई जी का लक्ष्य भारत में राजनीतिक वित्तपोषण की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करना था। इसके लिए इन्होंने व्यंग्य का मार्ग चुनते हुए मीडिया को सबसे विश्वसनीय आवाजों में से एक माना।''[9]

डे (2015) ने अपने शोध पत्र 'वार्तालाप को स्थानांतरित करना : व्यंग्यात्मक प्रभावकारिता का मापन' में पाया कि अधिकांश दर्शक समाचार इसलिए देखते हैं कि वे महत्वपूर्ण विषयों पर अपना ज्ञान प्राप्त करे इसके साथ ही वह शिक्षित होना चाहते हैं। पत्रकार व्यंग्य की सहायता से अपने पसंदीदा विषयों को इस आधार पर चुनते हैं कि वे कैसे अपने दर्शकों को महत्वपूर्ण राजनीतिक कहानी सुना सके। हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्यों को अपने समाचार में उपयोग करते हुए लिखते हैं कि आज फिर भैस पानी में चली गयी।''[10]

निष्कर्ष:

हिंदी के व्यंग्यकारों और हास्यकारों में हरिशंकर परसाई जी को व्यापक रूप से लेखक और व्यंग्यकार माना जाता है। चाहे विद्यालय की कक्षा हो या राजनीतिक मंच हो इनके द्वारा की गयी अजीबोगरीब मानवीय व्यवहार और समाज पर की गई टिप्पणियों की प्रस्तुति पर उत्साही दर्शक मिले हैं। भेड़ और भेड़िये कहानी में परसाई जी ने व्यंग्य करते हुये लिखा है कि ''वोट में विजयी होने के लिए अपना रूप चाल ढाल आज के नेता किस प्रकार बल देते हैं।'' हर भेड़िये के आस-पास दो-चार सियार रहते हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि 'सदाचार के ताबीज' से भ्रष्टाचार नष्ट नहीं हुआ बल्कि उसकी जड़ें और दृष्ट हो गयीं। ठिठुरता हुआ गणतंत्र में लिखते हैं कि ''गम्भीर मुद्दों व समस्याओं के समाधान के लिए यहाँ न तो मंतव्य दिखता है और न प्रतिबद्धता परिलक्षित होती है।'' फिर कहते हैं ''जो हाल झाँकियों का है वही हाल घोषणाओं का है।'' हर चुनावी साल में घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है लेकिन अभी तक आया ही नहीं। विश्वव्यापी दर्शकों के लिए लेखक की मौलिकता को पेश करने की उम्मीद के साथ परसाई जी ने धर्म, जाति, राजनीति, विवाह, मानवीय गुण-दोष सब कागजों पर उतारकर उस पर अपनी कलम की नोक ऐसी चुभोई कि रस लेने के साथ-साथ पाठक उत्सुक हो जाता है।

संदर्भ

1. परसाई रचनावली (छः खंडों में) संपादक - कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005
2. तुम्हारा परसाई - क्रांति कुमार जैन, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2004
3. हरिशंकर परसाई - व्यंग्य की व्याप्ति और गहराई, वेद प्रकाश, साहित्य भंडार प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2013
4. बेकर, ए.बी., जेनोस, एमए, और वेसनन, डी.जे. (2015). 'दैनिक शो को आकार देनाः राजनीतिक कॉमेडी प्रोग्रामिंग के दर्शकों की धारणा' *अटलांटिक जर्नल*, 18(3), 144-157
5. डाहलग्रेन, पी. (2019). मीडिया एंड पॉलिटिकल एंगेजमेंटः सिटिजन्स, कम्युनिकेशन एंड डेमोक्रेसी, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.
6. हॉफमैन, एलएच, और यंग, डीजी. (2016) व्यंग्य, पंच लाइन्स, और रात की खबरः राजनीतिक भागीदारी पर अनटैगलिंग मीडिया प्रभाव संचार अनुसंधान रिपोर्ट, 28(2), 159-168
7. काट्ज, ई, ब्लमलर, जेजी, और गुरेविच, एम. (2018). उपयोग और संतुष्टि शोध पब्लिक ओपिनियन क्वार्टरली, 37(4), 509
8. यंग, डीजी. (2016). 'हँसी, सीख या आत्मज्ञान डेली शो और कोलबर्ट रिपोर्ट के पीछे देखने और बचने की मंशा', जर्नल ऑफ ब्रॉडकास्टिंग एंड इलेक्ट्रिक मीडिया, 57(2), 153-169
9. बेम, जी. (2015) 'द डेली शो राजनीतिक संचार', डिस्कर्सिव इटीग्रेशन एंड द रिइन्वेंशन ऑफ पॉलिटिकल जर्नलिज्म. 22(3). 259-267
10. डे, ए. (2015) 'वार्तालाप को स्थानांतरित करनाः व्यंग्यात्मक प्रभावकारिता का मापन', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन. 7(1), 414-429

आस्था तिवारी
शोध छात्रा, हिंदी विभाग,
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय
पटना-800020

डॉ. शशि भूषण चौधरी
सह आचार्य, हिंदी विभाग
ठाकुर प्रसाद सिंह कालेज,
पटना-800020

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के आर्थिक-सामाजिक विकार

–भीमराव अम्बेडकर (शोध छात्र)
–डॉ. आदित्यकृष्ण सिंह चौहान

शोध सार

डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारत के विकास की आधारशिला हैं। उन्होंने भारत को सतत् विकास के मार्ग पर लाने के लिए अनवरत प्रयत्न किया। वे एक सच्चे सामाजिक अभियंता हैं। अम्बेडकर ने अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह वर्ष 1942 से 1946 तक वाइसराय की कार्यकारी परिषद के श्रमिक सदस्य थे। वे भारत के प्रथम कानून मंत्री थे। यही नहीं उन्होंने संविधान निर्माण कर समाज में समता, स्वतंत्रता व बंधुता को एक सूत्र में बाँधने का काम किया। उन्होंने मानवाधिकारों की बात की एवं वे सामाजिक न्याय के सबसे प्रबल प्रहरी बने। उन्होंने शोषितों एवं वंचितों के उद्धार हेतु अनेक कदम उठाए। उनके लेखों में लोकतंत्र, पूंजीवाद, आर्थिक विकास और योजना, वैकल्पिक, आर्थिक प्रणाली और जाति व्यवस्था का अर्थशास्त्र आदि मुद्दे शामिल थे।

कुन्जी शब्द :

1. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार।
2. डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक विचार।
3. डॉ. अम्बेडकर के विकास की अवधारणा।
4. डॉ. अम्बेडकर के कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना।

प्रस्तावना :

डॉ. अम्बेडकर के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अस्तित्व में आयी। श्रमिक और श्रम विधान पर अम्बेडकर के विचारों को समझने के लिए हमें उनके आर्थिक विकास के सैद्धान्तिक स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। भारत के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में अम्बेडकर की वचनवद्धता हमें वर्ष 1918 की याद दिलाता है, जब उन्होंने 'जर्नल ऑफ इण्डियन इकोनोमिक सोसायटी' में एक लेख प्रकाशित करवाया उनके 'लेख स्माल होल्डिंग इन इण्डिया एंड देयर रेमडीज'

अम्बेडकर ने कृषि के पिछड़ेपन का आर्थिक विश्लेषण प्रस्तुत किया और इसके समाधान हेतु कृषि को औद्योगिक रूप में विकसित करने का प्रस्ताव रखा।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जी के सामाजिक विचारों का अध्ययन करना।
2. डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के आर्थिक विचारों का अध्ययन करना।

शोध प्ररचनाः

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है।

तथ्यों का संकलन :

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

उत्पादन के अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से अम्बेडकर ने लघु कृषि क्षेत्रों/उद्योगों के मुद्दों को सुलझाया। खेत, छोटे या बड़े उत्पादन की दृष्टि से एक आर्थिक इकाई होते हैं, लेकिन ये खेत मात्र अकेले रूप में नहीं बल्कि भूमि, पूंजी और श्रम को मिलाकर इकाई बनते हैं। केवल भूमि के आकार जैसा कि आमतौर पर देखा जाता है आर्थिक या गैर आर्थिक भूमि का हिस्सा नहीं कहा जा सकता है। भूमि और श्रम के सम्बन्ध में पूंजी की कमी के कारण आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या ही मूलतः कृषि पिछड़ेपन की समस्या का मूल कारण है। इसलिए इसका समाधान इस प्रकार है-

1. भूमि और श्रम उत्पादकता में सुधार करना।

2. पारिवारिक भरण-पोषण कृषि आय को बढ़ाना।

3. उत्पादन पर निवेश की बचत हेतु घरेलू दक्षता का विस्तार करना।

उन्होंने बताया यदि भूमि पर कृषि श्रमिक अधिक हैं तो उन्हें उद्योग को स्थानांतरित किया जा सकता है। इससे न केवल उत्पादकता में वृद्धि होगी बल्कि कृषि और उद्योग दोनों में श्रम का महत्व भी बढ़ेगा।

आम जनता की आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु केन्द्रीय लोकतंत्र के तहत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की सीमाओं से अवगत कराते हुए अम्बेडकर ने तर्क दिया कि देश के आर्थिक विकास हेतु श्रमिक का महत्व अधिक है। वह विशेष रूप से शांति, आवास, कपड़े, शिक्षा, अच्छा स्वास्थ्य और इनसे बढ़कर इज्जत के साथ कार्य करने को अधिकार हेतु चिंतित थे। राष्ट्र को न केवल श्रमिक के लिए उचित कार्य परिस्थितियों का ध्यान रखना चाहिए बल्कि साथ ही साथ जीवन यापन के लिए उचित परिस्थितियों को सुनिश्चित करने का भी प्रयास करना चाहिए।

राष्ट्र का मुख्य उत्तरदायित्व है कि गरीबों को उनकी आवश्यकतानुसार बढ़ने के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ।

उन्होंने आगे कहा कि यदि सरकार ने हस्तक्षेप नीति अपनायी तो यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता है। राष्ट्र, श्रम को अधिक उत्पादक बनाने के लिए राष्ट्र को अपने प्रावधानों में निम्नलिखित बिन्दु शामिल करने चाहिए।

1. 14 वर्ष तक की आयु तक मुफ्त या अनुदानित शिक्षा।

2. चिकित्सा सुविधा।

3. जल की आपूर्ति।

4. विद्युत सहित अन्य सार्वजनिक उपयोग की सेवाएँ।

श्रमिक दक्षता और स्वास्थ्य में सुधार हेतु निम्नलिखित लक्ष्य थे-

1. मजदूरी का उचित भुगतान।

2. मातृत्व और बीमारी लाभ।

3. छुट्टियाँ आदि।

डॉ. अम्बेडकर जी का उद्देश्य सभी लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाना और सभी के लिए रोजगार सुनिश्चित करना था। इससे एक ओर श्रम उत्पादकता में वृद्धि होगी और दूसरी ओर कृषि उद्योगों और सेवाओं का विकास और पुनर्गठन भी होगा।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की श्रम के लिए चिन्ता केवल नीति स्तर तक नहीं थी बल्कि राजनैतिक स्तर पर भी थी। उन्होंने अगस्त वर्ष 1936 में स्वतंत्र श्रमिक दल/ इनडिपेण्डेन्ट लेबर पार्टी (एल.आई.पी.) को चलाया। यह पार्टी स्वयं में कामगारों की पार्टी साबित हुई। बेरोजगारों और भूमिहीनों की सहायता के लिए भूमि पुनर्वास और सार्वजनिक कार्य का सुझाव देते हुए इस पार्टी ने निम्नलिखित वादे किए।

1. साहूकारों के चंगुल से किसानों की सुरक्षा हेतु कानून बनाना।

2. भूमि राजस्व का कड़ा विरोध करना।

3. कर की अधिक न्यायोचित प्रणाली के लिए अभियान चलाना।

4. भूमि बन्धक बैंकों और कृषि उत्पादक सहकारी और विपणक समितियों का निर्माण करना।

श्रमिकों के संरक्षण हेतु आइ. एल. पी. ने भूमि स्वामित्व के उन्मूलन के लिए संघर्ष में 20,000 किसानों ने 12 मार्च 1938 को मुम्बई काउंसिल हॉल तक मार्च निकाला।

तथ्यों का विश्लेषण

डॉ. अम्बेडकर ने भारत के आर्थिक विकास हेतु अनेक प्रयत्न किये। वह समाज के सभी वर्गों का विकास करना चाहते थे। वे गरीबी-अमीरी की खाई को भरना चाहते थे। वे समाज को समानता में लाना चाहते थे। वे ऊँच-नीच का भेद मिटाना चाहते थे। वे व्यक्तियों के सशक्तीकरण के पक्षधर थे। इसलिए 1944 में अभ्रक खदान परि ाद की बैठक को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ''यदि श्रमिकों को पर्याप्त वेतन नहीं दिया जायेगा तो कोई सुधार सम्भव नहीं होगा।'' आगे अम्बेडकर जी ने कहा कि सभी उद्योगों को बिना लिंग भेद-भाव के सभी को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करनी चाहिए। उन्होंने श्रमिकों को छुट्टी का भी वेतन दिए जाने की वकालत की।

उन्हीं की सिफारिशों पर निम्नलिखित को लागू किया गया।

1. श्रम कल्याण निधि की स्थापना की गई।

2. कार्य समय 10 घण्टों से 8 घण्टे किया गया।

3. महिला श्रमिकों को मातृत्व अवकाश दिया गया।

अम्बेडकर जी ने 'प्राचीन भारतीय वाणिज्य' पर एक लघु शोध भी प्रस्तुत किया था जिसमें प्राचीन भारत की वाणिज्य एवं वित्तीय सम्बन्धी समस्या और समाधान का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद इन्होंने 'नेशनल डेविडेन्ट ऑफ इण्डिया ए हिस्टोरिकल एण्ड एनोडिमटिकल स्टडी' प्रस्तुत की थी।

उनकी पी.एच.डी. की थीसिस - 'द इवोल्यूशन ऑफ प्रोवीनियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इण्डिया' था।

बाबा साहब ने 'द प्रोब्लम ऑफ द रूपीजः इट्स ऑरिजन एण्ड इट्स सोश्यूशन' नामक प्रस्तुत अति महत्वपूर्ण है।

निष्कर्षः

डॉ. अम्बेडकर जी ने आर्थिक विचारों पर चर्चा की

जाए तो पता चलता है कि वे आर्थिक क्षेत्र में एक प्रकार से भविष्यवक्ता थे क्योंकि उन्होंने उस समय जो आर्थिक सिद्धांत दिये वे आज भी प्रासंगिक हैं। भारतीय मुद्रा, प्रांतीय वित्त का विकास, कराधान नीति, महिलाओं का आर्थिक उत्थान आदि से पता चलता है कि वे एक सच्चे देशभक्त, सामाजिक अभियन्त एवं उच्च कोटि के अर्थशास्त्री थे जिस कारण भारत का सतत् विकास सम्भव हो पाया। उन्होंने विकास के क्षेत्र में अग्रणी कार्य किया। वे दलितों, शोषितों, वंचितों, महिलाओं और श्रमिकों के शोषण के खिलाफ हमेशा संघर्षरत रहे और अन्ततः भारतीय संविधान में इस शोषित समाज को न्याय दिलाने का काम किए और सभी समाजों को समानता, स्वतंत्रता व बन्धुता की राह दिखाई।

सन्दर्भ सूची:

1. मून, वसंत, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, राइटिंग एण्ड स्पीचिज, वोल्यूम 10, मुम्बईः महाराष्ट्र सरकार।
2. ओम विदत गैल, दलित एण्ड द डेमोक्रेडिट रेवोलूशनः डॉ. अम्बेडकर एण्ड द दलित मूवमेण्ट इन कालोनियल इण्डिया, नई दिल्लीः सेज प्रकाशन, 1994।
3. थोराट, एस. के., अम्बेडकर, कान्ट्रीब्यूशन टू वाटर रीसोर्स डबलपमेण्ट, नई दिल्लीः सेन्टर वाटर कमीशन, 1993
4. थोराट एस. के., डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ऑफ इकोनामिक डबलपमेण्ट इन मनु एण्ड एनेफेलडुअस, सम्पादक क्लेमिंग पॉवर फिरोमब्लोः दलित एण्ड द संगल्टन म्वेशचन इन इण्डिया, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनीवसिर्टी प्रेस 2008।
5. प्रबुद्ध अर्थशास्त्रः अम्बेडकर और उनकी आर्थिक दृष्टि, फरवर्ड प्रेम (मासिक पत्रिका) फारवर्ड प्रेस नेहरू पमेज नई दिल्ली, 15 जून 2017।

भीमराव अम्बेडकर
शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग
जे.एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद

डॉ. आदित्यकृष्ण सिंह चौहान
शोध पर्यवेक्षक
एसो. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
अर्थशास्त्र विभाग, जे.एस. विश्वविद्यालय,
शिकोहाबाद

कितने पाकिस्तान के कथ्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन का कथ्य

–दरख़्शाँ ग़नी

कमलेश्वर के उपन्यासों के शिल्प की बात की जाए तो कहा जा सकता है कि कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' में नए शिल्प का प्रयोग किया है। कुवँरपाल सिंह इसके संबंध में अपने लेख 'कितने पाकिस्तान : इतिहास के व्यापक संदर्भ' में लिखते हैं-''इसके शिल्प पर कुछ लोग नाक मुँह सिकोड़ते हैं, परन्तु शिल्प एवं भाषा, संवेदना और विचार तय करते हैं। इस उपन्यास में दोनों सघन एवं स्पष्ट रूप में मिलते हैं।''[1]

हरीश त्रिवेदी अपने लेख 'विलक्षण और अद्‌भुत रचना' में 'कितने पाकिस्तान' के शिल्प के संबंध में इस प्रकार लिखते हैं-''इसका शिल्प साहित्य की सुपरिभाषित विधाओं को तोड़कर एक सर्वथा नई शक्ल इख़्तियार करता है, जिसमें सदियों के साथ-साथ वर्तमान सदी और आने वाली सदियों की चिंताएँ बड़े मार्मिक रूप से सामने आती हैं।''[2]

कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' को अन्तर्वस्तु के आधार पर 42 दृश्यों में विभाजित किया है। इसमें कोई नायक-नायिका, वृत्तान्त, घटना या प्लाट नहीं है। इस उपन्यास का शिल्प नया है। इसमें कालक्रम की कोई बंदिश नहीं है। विष्णु प्रभाकर 'कितने पाकिस्तान' की रचना प्रक्रिया के संबंध में लिखते हैं-''कमलेश्वर ने उपन्यास के बने बनाए ढाँचे को तोड़ दिया है और लेखकीय अभिव्यक्ति के लिए सब कुछ सम्भव बनाने का दुर्लभ द्वार खोल कर एक नया रास्ता दिखाया है।''[3]

'कितने पाकिस्तान' की रचना प्रक्रिया पर सुरेश कोहली से बातचीत के दौरान कमलेश्वर कहते हैं-''पिछले 30 वषो ं में करीब-करीब मैं इस उपन्यास के साथ रहता आया हूँ। इस विषय ने हमेशा मुझे परेशान किया है। इस विषय के साथ मैं कैसे पेश आऊँ जो न सांस्कृतिक तौर पर उचित है, और न ही भौगोलिक स्तर पर। इस सोच ने मुझे समय-समय पर कुरेदा है। एक सोच, एक कल्पना, एक ख़लिश लगातार चलती रही है, सिर्फ़ यह एक भौगोलिक टुकड़े का बँटवारा भर नहीं है इसके साथ-ही-साथ बँटवारा सांस्कृतिक सभ्यता और अलग-अलग परम्पराओं को लेकर भी है। सत्ता के लोलुप लोगों द्वारा सत्ता में बने रहने के लिए यह बँटवारा हुआ, जबकि भौतिक, आध्यात्मिक व पारलौकिक आधार से उनका कोई वास्ता नहीं था। ये तमाम बातें लगातार मुझे परेशान करती रहीं। अंततः मैंने इस उपन्यास को लिखना प्रारम्भ किया। मेरे पास इन चीज़ों की एक धुँधली याद थी और इसकी शुरुआत कैसे की जाए वास्तव में मुझे पता नहीं था। मेरे लिए कितने पाकिस्तान या पाकिस्तान सिर्फ़ एक प्रतीक है। पिछली शताब्दियों में विभाजन होते रहे हैं। और आगे भी संभवतः होते रहेंगे, यदि हमने सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को लेकर अपने विचार नहीं बदले।''[4]

कमलेश्वर के उपर्युक्त कथन से 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास की रचना प्रक्रिया एवं रचना का कारण स्पष्ट हो जाता है। कमलेश्वर ने उपन्यास में 'पाकिस्तान' शब्द एक प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है। लगभग 30 वर्षों के निरंतर गहन चिंतन एवं मनन के पश्चात् इस उपन्यास की रचना हुई।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में पाँच हज़ार वर्षों की समय सीमा को समेटने का प्रयास किया गया है। इसमें सभ्यता, संस्कृति, युद्ध, प्रेम तथा सभ्यताओं का उत्थान-पतन आदि को कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। यह उपन्यास रचनाकार की आंतरिक घुटन और बाहर की ज़हरीली हवा से परेशान मानसिक कशमकश की प्रस्तुति है। यह कथा अतीत की न होकर वर्तमान की लगती है, जो हमें निरंतर भविष्य की ओर इंगित करता रहता है। कमलेश्वर इस उपन्यास में खोए हुए सत्य को तलाश करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं।

कमलेश्वर ने बहुत ही भावुक ढंग से इस उपन्यास को उस रूमाल की खोज में बदल दिया, जिसे प्रारम्भ में विद्या ने कानपुर स्टेशन की सीढ़ियों पर गिराया था। उसी पहले प्रेम की कसक के साथ उपन्यास प्रेम विरोधी उन्माद जैसी शक्तियों

के साथ गुँथ जाता है जिससे अदीब अपनी अदालत में बहस करता है।

'कितने पाकिस्तान' में युद्ध के विरुद्ध शान्ति और मृत्यु के विरुद्ध जीवन की खोज की गई है। उपन्यास के प्रारम्भ में अदीब प्रधानमंत्री के नाम एक पत्र लिखकर कारगिल युद्ध और उसके परिणामों के संबंध में आगाह करता हुआ दिखाई देता है। उसके पश्चात् उपन्यास संसार की प्राचीनतम कथाओं में से एक गिलगमेश की कथा को लेकर आगे बढ़ता है जो अट्ठाइसवीं शताब्दी ईसा पूर्व में दक्षिणी ईराक के राज्य युरूक का बादशाह था और अंतहीन जीवन पाने का इच्छुक था। कमलेश्वर लिखते हैं कि वह अपने मित्र के लिए मृत्यु से मुक्ति की औषधि की खोज में गया और समुद्र की गहराइयों से अभी तक वापस नहीं लौटा है।

कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' में फ़ैक्ट को फ़िक्शनलाइज़ करके बिल्कुल नया प्रयोग किया है। उनकी पहली समस्या यह है कि आज के विषाक्त वातावरण में पक्षी कहाँ जाएँ? कहाँ साँस लें? क्योंकि चारों ओर रक्तपात हो रहा है। जो हमारे वर्तमान और भविष्य दोनों को प्रभावित कर रहा है। उपन्यासकार ने अप्राकृतिक मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए जीवन की खोज जैसा आवश्यक कार्य करने का प्रयास किया है। कमलेश्वर उपन्यास में एक जगह लिखते हैं-''ग़ैर ज़रूरी मौत से निजात पाने के लिए ज़िन्दगी की सार्थक तलाश में हित्ती सभ्यता का गिलगमेश निकल चुका है।''[5]

जब इंसानियत को तबाही व बर्बादी की खाई में ढकेल दिया गया और आकाशीय देवताओं ने मनुष्यों को नष्ट करने के लिए षड़यन्त्र शुरू किए। तब ही से मनुष्यों में विरोध की भावना ने जन्म लिया। उसी समय गिलगमेश ने यह घोषणा की, कि मैं दर्द से लड़ूँगा, पीड़ा सहूँगा, कुछ भी हो लेकिन मृत्यु को पराजित करूँगा। गिलगमेश की घोषणा उपन्यासकार की घोषणा बन जाती है। एक सच्चा रचनाकार जो मौत के अन्धेरों में ज़िन्दगी की रौशनी तलाश करता है। गिलगमेश की आवाज़ को एक लेखक, एक अदीब ही जीवित रख सकता है।

कमलेश्वर का कहना है कि पाकिस्तान 15 अगस्त 1947 ई. को अस्तित्व में नहीं आया था, बल्कि उसका इतिहास पुराना है। जब-जब धरती पर युद्ध होते हैं, तब-तब एक नफ़रत जन्म लेती है और पूरी दुनिया में पाकिस्तान बनते हैं, विभाजन होता है। अगर अप्राकृतिक मृत्यु का क्रम इसी प्रकार चलता रहा तो एक दिन संपूर्ण संसार नष्ट हो जाएगा और ब्रह्माण्ड में कोई भी मनुष्य जीवित नहीं रहेगा। समय की अदालत में सभी अपराधी उपस्थित होते हैं जिन्होंने धरती पर घृणा और रक्त का व्यवसाय किया। ''कमलेश्वर मज़हब का नाम लेकर इंसान को गुलाम बनाने वाली ताक़तों, नफ़रत सिखाने वाली ताक़तों और क़त्लो ख़ून लाज़मी कर देने वाली शक्तियों को लोगों के सामने लाए हैं कि लोग जागें और धरती टूटने से बच जाए। नहीं तो जाने कहाँ कहाँ और कितने पाकिस्तान बनते रहेंगे।''[6]

कमलेश्वर 'कितने पाकिस्तान' में यह बताना चाहते हैं कि सच क्या है और झूठ क्या है? समय की अदालत में सभी ऐतिहासिक पुरुष उपस्थित हैं जो अतीत की उन घटनाओं पर बहस करके सत्य को तलाश कर रहे हैं। सत्य से अनभिज्ञ होने के कारण लोगों के दिलों में घृणा, नफ़रत, भय ख़ौफ़ ने जन्म ले लिया है और लोग एक दूसरे के शत्रु बन बैठे हैं। कमलेश्वर यह बताना चाहते हैं कि संस्कृतियों को विभाजित करने वाले ही मानव जाति के दुश्मन है। संस्कृतियों के बँटवारे ने ही पूरे संसार में अप्राकृतिक मृत्यु का साइंसी फॉर्मूला प्रदान किया और जिसको लगातार प्रयोग में लाया जा रहा है।

सत्ता प्राप्त करने के लिए धर्म और संस्कृति का दुरूपयोग किया गया तथा मानव मूल्यों के ह्रास एवं अविश्वास के कारण अनेक त्रासदियों का जन्म हुआ। जिनमें से सबसे बड़ी त्रासदी देश का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण था। पूरे उपन्यास में जगह-जगह कमलेश्वर की यही चिन्ता अभिव्यक्त हुई है कि धर्म और संस्कृति के दुरूपयोग करने से विभाजन होते रहेंगे और पाकिस्तान बनते रहेंगे।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के माध्यम से कमलेश्वर 'मज़हब' और 'क़ौम' के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। उपन्यास में सलमा, नईम से कहती है-''क़ौमें तो मज़हब के पहले भी मौजूद थीं। मज़हब के नाज़िल होने से पहले भी लोग किसी न किसी मज़हब, किसी और अकीदे, किसी उसूल के तहत समाज चला रहे थे। पाक नबी हज़रत मुहम्मद के आने और पाक कुरआन के नाज़िल होने के बावजूद अरब, अरब ही रहा, मिस्र, मिस्र ही रहा, लेकिन पाकिस्तान भारत या हिन्दुस्तान नहीं रहा। मज़हब ख़त्म हो जाते हैं पर क़ौमें ख़त्म नहीं होती।''[7]

क़ौम या जाति की कल्पना संस्कृति से जुड़ी है और संस्कृति में उत्पन्न हुई फाँक संस्कृति को खण्डित कर देती है-''तहज़ीब अगर टूटती और फ़िरकावाराना टुकड़ों में बँटती गयी तो फिर वह एक दिन आएगा, तब हर अकेले आदमी की एक हिंसक तहज़ीब होगी।''[8]

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास उन क्षणों की कथा है, जिनके कारण सदियाँ सज़ा पा रही हैं। जब राजनीति निजी स्वार्थ का साधन बन जाती है तब मनुष्य के उन जीवन मूल्यों का क्षरण होने लगता है, जिनके आधार पर यह समूची मानवीय सभ्यता टिकी है। यह समस्या चाहे बोस्निया या ईरान की हो अथवा भारत की हिन्दू-मुस्लिम समस्या हो। इसमें क़त्ल केवल जीवन मूल्यों का हुआ है।

औपनिवेशिक काल में अँग्रेज़ों के द्वारा हिन्दुस्तान पर हुए अत्याचारों से सभी परिचित हैं। उपन्यास में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि किस प्रकार औपनिवेशिक काल में अँग्रेज़ों ने अपने स्वार्थ के लिए झूठा इतिहास गढ़ा और भारतीय संस्कृति में फाँक पैदा कर दी। उपन्यास में अदीब की अदालत में ए॰ फ़्यूहरर उपस्थित है। जो अपनी नीतियों के संबंध में बताते हुए कहता है कि ''हमारी पॉलीसीज़ बदलीं और तब यह तय किया गया कि हिन्दू और मुसलमान, जो 1857 ई. में एक हुए थे, उन्हें अलग रखा जाए नहीं तो अँग्रेज़ी हुकूमत चल नहीं पाएगी। इसीलिए मैंने बाबरी मस्जिद पर लगा इब्राहीम लोदी का जो शिलालेख पढ़ा था, उसे जानबूझकर मिटाया गया। अँग्रेज़ एच.आर. नेविल ने फ़ैज़ाबाद गज़ेटियर तैयार करते समय उसमें यह दर्ज किया कि बाबर अयोध्या में एक हफ़्ते ठहरा और उसी ने प्राचीन राम मन्दिर मिसमार किया।''[9]

हमें औपनिवेशिक काल में लिखे गए इतिहास को समझने के साथ-साथ यह भी याद रखना आवश्यक है कि इतिहास की वस्तुनिष्ठता की बहस बहुत पुरानी है। मध्यकाल में दाराशिकोह की मौत को सही ठहराने के लिए औरंगज़ेब द्वारा प्रचारित किये गए फ़तवों के माध्यम से यह उपन्यास सत्ता द्वारा गढ़े जा रहे झूठ और सामान्य जनता में एक समझ विकसित करने का प्रयास है। यह उपन्यास इतिहास की समकालीन प्रासंगिकता एवं मानव मूल्यों की वकालत करता है।

यदि इस दृष्टि से उपन्यास को देखा जाए तो इतिहास का आख्यान प्रासंगिक होने के साथ-साथ तर्कसंगत भी लगता हैं। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में इतिहास की तहों में जाकर बाबर, मीर बाक़ी, ए॰ फ़्यूहरर तथा अँग्रेज़ इतिहासकार एच.आर. नेविल आदि को भी कटघरे में लाकर खड़ा कर दिया है।

उपन्यास में कमलेश्वर ने दारा को भारतीय संस्कृति का सही प्रतिनिधि मानते हुए उसके पराभव की कथा को वर्णित किया है कि किस प्रकार सत्ता पाने के लिए औरंगज़ेब ने इस्लाम का सहारा लेकर दारा की हत्या करवा दी और हिन्दुस्तान की उस सामासिक संस्कृति को नष्ट कर दिया, जिसकी नींव अकबर ने डाली थी। उपन्यासकार ने दारा और उसके बेटे के क़त्ल की घटना को उपन्यास में पूरी संवेदना के साथ चित्रित किया-''सिपिहर की बाँह से टपके हुए खून की अंदर आती काली लकीर देखकर दारा दहल गया था--दीवार के उस पार से सिपिहर शिकोह की भयावनी चीख़ें आ रही थीं–मेरे बेटे पर यह जुल्म मत करो। जाकर उस ज़ालिम आलमगीर को बताओ कि वह नमाज़ी नहीं ढोंगी है।''[10]

कमलेश्वर ने इसके साथ-साथ सभी समकालीन मुद्दों को उठाया। उन्होंने उपन्यास में स्त्री की स्थिति का मुद्दा भी उठाया है। उपन्यासकार ने सलमा और नईम की बहस को बड़ी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। नईम, सलमा का एक हिन्दू अदीब के साथ रहना पसन्द नहीं करता। वह कहता है-''इस्लाम ने औरत के लिए एक दर्जा बनाया है वह किसी और मज़हब के पास नहीं। इस्लाम मानने वालों के पास क़ुरआन है, हदीस है।''

इसके जवाब में सलमा व्यंग्यात्मक ढंग से कहती है-''लेकिन वो तो अरबों के पास है उनकी ओरिजनल कॉपियाँ, जो उन्होंने अब तक किसी को नहीं दीं।''[11]

देश के विभाजन का प्रभाव स्त्रियों पर किस प्रकार पड़ा, उपन्यास में सलमा इस ओर संकेत करती हुई कहती है-''हाँ अदीब मैं तुम्हारे साथ सलमा और सोहराब के साथ मम्मा बनकर जी सकूँगी। लेकिन मेरा सच हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की तरह विभाजित ही रहेगा! शायद यही हिन्दुस्तानी मुसलमान औरत का नसीब बन गया है। इस तक्सीम ने उसे आधे से भी आधा बनने पर मजबूर कर दिया है।''[12]

कमलेश्वर ने उपन्यास में सलमा के माध्यम से एक स्त्री की मार्मिक स्थिति का जीवंत चित्रण किया है। किस प्रकार एक स्त्री अलग-अलग रिश्तों में बँटकर जीवन व्यतीत करती है।

यह उपन्यास अनेक जीवन तत्वों के अन्वेषण की कथाओं के माध्यम से उन मूल्यों को स्थापित करता है जिनकी समाज को आवश्यकता होती है। रूना की कथा के माध्यम से प्रेम की भावना को स्त्री में तलाशने का प्रयत्न किया गया है। दूसरी गिलगमेश की और एंकिदू की कहानी में 'मित्रता का तत्व' मनुष्य ने ही खोजा था। जो देवताओं और सत्ताधारियों के लिए विकराल साबित हो सकती है। पूरे उपन्यास में कमलेश्वर मनुष्य के जीवन मूल्यों को बचाए रखने का प्रयत्न करते हैं। अदीब का सलमा के पास बार-बार जाना प्रेम और मित्रता के तत्वों को सहेज कर रखने का ही प्रयास है।

उपन्यास में विद्या का गिरता रूमाल और गिलगमेश की मृत्यु से मुक्ति की औषधि के लिए अंतहीन यात्रा कहानी के दोनों किनारों अतीत एवं वर्तमान को निरंतर पकड़े रहने का प्रयास है। यही तत्व ज़ैनब और बूटा सिंह तथा दाराशिकोह की कहानी में भी मिलते हैं। विद्या शादी के बाद पाकिस्तान में परी के रूप में सामने आती है। सलमा अदीब से अपना ख़्वाब बाँटती है। अश्रुवैध अभी तक मनुष्यों के दुखों का कारण ढूँढने का प्रयास कर रहा है। अंधा कबीर बोधिवृक्ष का पौधा लेकर उसे रोपने के लिए पोखरन और चग़ाई की यात्रा पर निकल जाता है। इस प्रकार पूरा उपन्यास एक सकारात्मक सोच को आगे बढ़ाता है।

उपन्यास में कोई एक कथा नहीं है और न ही इस

उपन्यास में देशकाल और समय की कोई सीमा है। इसमें हड़प्पा, मोहन जोदड़ो, दज़ला फ़रात, मेसोपोटामिया, बेबीलोन, डैन्यूब, हित्ती सभ्यता का गिलगमेश, प्राचीन सुमेरी तथा चीनी सभ्यताओं से लेकर मुग़ल सल्तनत, भारत विभाजन, बाबरी मस्जिद विध्वंस, पोखरन और चग़ाई परमाणु विस्फ़ोटों तक की देशकाल अवधि को उपन्यासकार ने समेटने का प्रयास किया है।

कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' में केवल हिन्दुस्तानी इतिहास एवं संस्कृति के सन्दर्भ से ही नहीं बल्कि पूरे मानव समाज के इतिहास के सन्दर्भ से बात की है। एक सच्चा रचनाकार किसी भौगोलिक सरहद में सीमित नहीं होता है। इसीलिए उपन्यास में उठाई गयी समस्या, दुख और संत्रास केवल हिन्दुस्तान का नहीं रह जाता बल्कि पूरे विश्व का बन जाता है। पूरे विश्व को दुखों और मृत्यु से मुक्त करने की इच्छा, भाईचारे, मैत्री और सद्भावना का प्रसार करने की उत्कट लालसा पूरे उपन्यास की कथा में व्याप्त है।

सन्दर्भ

1. संपा. प्रदीप माँडव, विरासत के अलम्बरदार, यश पब्लिकेशन, गाँधी नगर, दिल्ली, पृष्ठ 275
2. वही, पृष्ठ 285
3. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2007 ई.
4. संपा., प्रदीप माँडव, विरासत के अलम्बरदार, यश पब्लिकेशंस, गाँधी नगर, दिल्ली, पृष्ठ 175-176
5. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2007 ई., पृष्ठ 23
6. संपा., प्रदीप माँडव, विरासत के अलम्बरदार, यश पब्लिकेशंस, गाँधी नगर, दिल्ली, पृष्ठ 264
7. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2007 ई., पृष्ठ 122
8. वही, पृष्ठ 225
9. वही, पृष्ठ 73
10. वही, पृष्ठ 244
11. वही, पृष्ठ 121
12. वही, पृष्ठ 139

दरख़शाँ ग़नी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
जी. एफ. कालेज, शाहजहाँपुर

उत्तर प्रदेश के जनपद आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थिति

–प्रमोद कुमार
–डॉ. नन्दन सिंह

सारांश :

किसी भी राष्ट्र की प्रगति एवं विकास में लघु एवं कुटीर उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। और अविकसित क्षेत्रों में जहाँ औद्योगीकरण अब तक नहीं हो पाया वहाँ लघु एवं कुटीर उद्योग स्थापित करके पूंजी तथा विकास में वृद्धि की जा सकती है। उत्तर प्रदेश भारत के प्रमुख राज्यों में से एक है जिसका कुल क्षेत्रफल 240928 वर्ग किमी है क्षेत्रफल की दृष्टि ट से यह भारत का चौथा राज्य है जबकि, जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश में कुल 75 जनपद हैं। प्रदेश में चार जनपद वाराणसी, आजमगढ़, मऊ तथा गोरखपुर लघु एवं कुटीर उद्योगों में विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है। लघु तथा कुटीर उद्योग में आजमगढ़ शहर वाराणसी के बाद दूसरे स्थान पर है। आजमगढ़ में वर्तमान में कुल 8 तहसील, 22 ब्लाक, 10 नगर पंचायत, 3 नगर पालिका एवं 4127 गाँव हैं। जिनमें सगड़ी तहसील के अन्तर्गत मुबारकपुर बुनाई का प्रमुख केन्द्र है और निजामाबाद तहसील ब्लैक पाटरी उद्योग हेतु (ओ डी ओ पी) (एक जिला एक उत्पाद) में नामित है। इनके अतिरिक्त सठियाँव की चीनी मिल यहाँ के प्रमुख उद्योगों में शामिल है, जो रोजगार के अवसरों के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योग के माध्यम से रोजगार के अवसरों में वृद्धि, लोगों के आर्थिक स्थिति में सुधार, आर्थिक व सामाजिक असंतुलन को कम करने एवं प्रवासी मजदूरों की संख्या को कम करने तथा आर्थिक चुनौतियों का समाधान कैसे किया जाए इस निमित्त शोधार्थी ने जनपद आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थिति का शीर्षक प्रस्तुत किया है।

प्रमुख शब्द : लघु एवं कुटीर उद्योग, रोजगार के अवसर, आर्थिक चुनौतियाँ, सगड़ी तहसील।

प्रस्तावना :- भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग प्रायः पूंजीवादी ढंग से संगठित नहीं है। छोटे पैमाने पर संगठित औद्योगिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार के उद्योग आते हैं जैसे ग्रामीण तथा शहरी कुटीर उद्योग जिन्हें परिवार के श्रम से चलाया जाता है, शहरी लघु उद्योग जिनमें मजदूरी के बदले में काम करने वाले श्रमिकों को लगाया जाता है। ऐसे लघु उद्योग जिनमें आधुनिक मशीनों एवं बिजली का प्रयोग किया जाता है। तात्पर्य यह कि भारत में छोटे स्तर पर औद्योगिक उत्पादन का क्षेत्र एक-सा नहीं है। यद्यपि कुटीर उद्योगों को लघु उद्योग कहा जाता है लेकिन वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण में कुटीर उद्योग को लघु उद्योगों से भिन्न श्रेणी में रखा जाता है। 1950 में राजकोषीय आयोग ने लघु तथा कुटीर उद्योगों में भेद स्पष्ट करते हुए कहा कि जब औद्योगिक इकाई में केवल परिसर के सदस्य ही कार्यरत हो तो वह कुटीर उद्योग होता है और इसके विपरीत जब मजदूरी के बदले में काम करने वाले 10 से 30 तक श्रमिकों की सेवाएँ प्राप्त की जाती हैं तो वह लघु उद्योग होता है।

आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थिति :- उत्तर प्रदेश क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का चौथा सबसे बड़ा राज्य है जबकि जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत का सबसे बड़ा राज्य है जिसमें 75 जनपद हैं। वर्ष 2011 में राज्य की कुल जनसंख्या 4.45 करोड़ थी जबकि ग्रामीण जनसंख्या 15.53 करोड़ थी। प्रदेश के चार बड़े जनपदों में से आजमगढ़ भी एफ जनपद है जहाँ पर लघु एवं कुटीर उद्योग सर्वाधिक किये जाते हैं। यह जनपद वाराणसी के बाद दूसरे स्थान पर आता है जिसका क्षेत्रफल 4054 वर्ग किमी है। वर्ष 2011 की जनगणना के मुताबिक आजमगढ़ की जनसंख्या 4613918 जिसमें (पुरुष-2285004 तथा महिला 2328909) (जो कि 2022 में लगभग 6090266 होने का अनुमान है) इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ का जनघनत्व 1139 निवासी प्रति किमी. है. तथा वृद्धि दर 17.1 प्रतिशत थी वहीं भारत

का जनसंख्या घनत्व 382 प्रतिवर्ग किमी. है।

जनपद में कुल 4127 गाँव, 22 ब्लाक, 8 तहसील (आजमगढ़ सदरबूढ़नपुर, निजामाबाद, मेंहनगर, मार्टीनगंज, लालगंज, फूलपुर व सगड़ी) जिनमें सगड़ी तहसील जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी तहसील है। यहाँ मुबारकपुर साड़ी बनाने का कारोबार बहुत लोकप्रिय है जिसे मिनी दुबई भी कब जाता है तथा निजामाबाद क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ी तहसील है जहाँ ब्लैक पाटरी का कारोबार होता है। सदर तहल में किसान सहकारी चीनी मिल्स सठियांव आजमगढ़ के अतिरिक्त अन्य पाँच तहसीलों में कोई चर्चित लघु एवं कुटीर उद्योग नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि आजमगढ़ की जनसंख्या घनत्व अधिक है। और निश्चित ही यहाँ बेरोजगार लोगों की संख्या बहुत अधिक होगी। यहाँ लघु एवं कुटीर उद्योग के विकास से इस समस्या को कम किया जा सकता है एवं ग्रामीण आर्थिक आत्मनिर्भरता में लघु एवं कुटीर उद्योगों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष महत्ता रोजगार के अवसर, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, आर्थिक असंतुलन को कम करना, उद्योगों के विकास में सहायक होगा। इसके साथ-ही-साथ आत्मनिर्भरता में नए-नए रोजगार के अवसरों का सृजन भी होगा। इस महत्व के दृष्टिगत शोधार्थी अपना विचार रखता है कि जनपद आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योग रोजगार उन्मुखी होगा और निश्चित ही इससे रोजगार का स्तर बढ़ेगा।

साहित्य समीक्षा :

श्री निवासाचार्य (1965) में हथकरघा उद्योग की जांच की और आर्थिक विकास का विश्लेषण किया। हथकरघा उद्योग के इतिहास व प्रतिस्पर्धा के युग में इसकी संरचना का वर्णन किया और उन्होंने कुछ उपचारात्मक उपायों का सुझाव भी दिया।

तवहीद यूसुफ और एट अल (2013) में श्री नगर शहर के रेशम बुनकरों के सामाजिक आर्थिक प्रोफाइल का विश्लेषण किया अध्ययन से पता चलता है कि बुनकरों की स्थिति चिंताजनक है क्योंकि वे निरक्षरता, वित्तीय बाधाओं, स्वास्थ्य समस्याओं, कम वेतन और न्यूनतम सरकारी सहायता के कारण कमजोर हैं।

तवसीन शाजमी और प्रो. अब्दुल मुनीर 2014 ने मुबारकपुर उद्योग का अध्ययन किया और पाया कि पड़ोसी जनपद मऊ के क्षेत्र में पावरलूम के प्रयोग से मुबारकपुर हथकरघा को कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा जिससे महिलाओं की आर्थिक स्थिति कमजोर होती जा रही है। साथ ही अधिक शारीरिक श्रम के कारण कई प्रकार के बीमारियों से ग्रस्त हैं।

शोध उद्देश्य-

• आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थिति का अवलोकन करना।

• जनपद आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्याओं का पता लगाना एवं उनका समाधान खोजना।

शोध प्रविधि-

यह शोध विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकृति का है। यह प्राथमिक व द्वितीयक समंको पर आधारित शोध है तथा आंकड़े सरकार द्वारा समय-समय पर प्रकाशित वार्षिक प्रतिवेदनों, विभिन्न वेब साइट्स के माध्यम से एवं सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्रित किया गया है जिसके विश्लेषण में सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

समंक एकत्रितकरण एवं विश्लेषण-

1. जनपद के आधार पर आजमगढ़ में उद्योग पंजीकरण- जनपद के आधार पर आजमगढ़ में उद्योग पंजीकरण तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है जिसमें सूक्ष्म उद्योग की इकाई 7923 लघु उद्योग की इकाई 779 तथा मध्यम उद्योग की इकाई 12 है। इस प्रकार जनपद में कुल सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योगों का पंजीकरण 8714 है।

2. जनपद आजमगढ़ में विद्यमान सूक्ष्म एवं लघु उद्यम इकाई का विवरण- जनपद में विद्यमान सूक्ष्म एवं लघु उद्यम इकाइयों में मुख्यतया निम्न उद्योगों को शामिल किया गया है। कृषि आधारित उद्योग, वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, रेशम सिल्क एवं कृत्रिम वस्त्र उद्योग, फर्नीचर उद्योग, चमड़ा उद्योग, केमिकल उद्योग, प्लास्टिक उद्योग, स्टील उद्योग, यातायात एवं सेवा उद्योग एवं अन्य उद्योग है।

3. पंजीकृत इकाई का वर्षवार वृद्धि की प्रवृत्ति- जनपद में लघु एवं कुटीर उद्योगों का वार्षिक वृद्धि की प्रवृत्ति को देखा जाए तो लघु एवं कुटीर उद्योगों की पंजीकृत इकाई उनमें रोजगार तथा विनियोग की स्थिति विगत कुछ वर्षों (सन् 2015 से 2020 तक) की स्थिति से पता चलता है कि जहाँ 2015 में सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योगों में पंजीकरण, रोजगार एवं विनियोग क्रमशः 350, 1250, 3510 था। वहीं वर्ष 2020 तक पंजीकरण रोजगार एवं विनियोग की स्थिति क्रमशः 483, 1450, 4810 हो गयी। इससे यह स्पष्ट होता है कि पंजीकृत इकाईयों का वार्षिक वृद्धि की प्रवृत्ति धनात्मक दिखाई देती है।

- स्रोत : डीआईपी आजमगढ़

आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्याएँ- बदलते आर्थिक परिदृश्य व नई औद्योगिक नीति 1991 में परिवर्तन से छोटे उद्योग धन्धे पिछड़ते चले गए। हालांकि नई नीति से तीन महत्वपूर्ण सुधार भी हुए (उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण) किन्तु औद्योगिक विकास के लिए वित्त एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है इसलिए एमएसएमई नीति आई जिसमें औद्योगिक संरचना को सूक्ष्म लघु व मध्यम उद्योगों में विभाजित कर वित्त की सीमा के आधार पर विभाजित किया गया लेकिन एमएसएमई के सफल संचालन में भी जनपद में अनेक

समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो निम्नवत हैं-

1. वित्तीय एवं विनियामक मुद्दे : वित्त एमएसएमईके लिए एक व्यापक मुद्दा है। केवल 16 प्रतिशत को ही समय पर वित्त प्राप्त होता है जिससे व्यवसायी वर्ग का विकास बाधित होता है।

2. कम उत्पादकता और नवाचार की कमी- आजमगढ़ की अधिकांश आबादी ग्रामीण है इसलिए यहाँ पर औद्योगिक नवाचार की कमी देखने को मिलती है जिससे उत्पादकता प्रभावित होती है।

3. प्रतियोगिता एवं कौशल- ई-कामर्स और वैश्विकरण के बढ़ने से एमएसएमई को या लघु एक कुटीर उद्योगों को बड़ी कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा करना पड़ता है, जिससे औद्योगिक विकास काफी पिछड़ा हुआ है।

4. विपणन की समस्या-यहाँ निर्मित माल का निर्यात न होने के कारण माल का उत्पादन नहीं हो पाता और कुशल कारीगर रोजगार की तलाश में अन्य प्रदेशों में पलायन कर जाते हैं और सम्बंधित व्यवसाय भी धीरे-धीरे बंद होने की कगार पर आ जाता है।

5. कच्चे माल की उपलब्धता नहीं-जनपद में कच्चे माल की उपलब्धता कम होने के कारण सम्बंधित व्यवसाय प्रभावित हो रहे हैं जैसे निजामाबाद के हुसैनाबाद गाँव में ब्लैक पाटरी उद्योग में मिट्टी की कमी के कारण अच्छा कारोबार नहीं हो पाता और इससे निर्यात भी नहीं हो पाता। सर्वे से पता चलता है कि भूमि अधिग्रहण होने के कारण कच्चा माल नहीं मिल पाता है।

6. पूंजी, बिजली एवं अन्य सेवाओं की कमी- मुबारकपुर में बुनकरों की स्थिति कमजोर होने का प्रमुख कारण पूंजी की कमी से भी प्रभावित हैं।

7. महिलाओं के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं- जैसा कि जनगणना 2011 के अनुसार आजमगढ़ का जनघनत्व एवं लिंगानुपात अधिक होने के कारण यहाँ पर महिला उद्यमियों के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं किया गया है। यह भी एक प्रमुख कारण है जिससे यहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति एवं रहन-सहन का स्तर न्यून है।

आजमगढ़ के लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव- जनपद आजमगढ़ में लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्याओं के अध्ययन के पश्चात शोधार्थी ने देखा कि इनका समाधान निम्न बिंदुओं को प्रकाश में लाने से किया जा सकता है-

1. पूंजी की कमी से जूझ रहे बुनकरों व कामगारों को किसान को दिये जाने वाले के सी सी की तरह साख सुविधा उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

2. विपणन की समस्या से निजात पाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में निर्मित माल का अन्य जनपदों व प्रदेशों में निर्यात के लिए पर्याप्त मात्रा में यातायात की सुविधा उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इसके साथ ही साथ व्यापारिक मेले व मण्डियों की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. बुनकरों व छोटे व्यापारियों के लिए कम लागत योजनाओं के तहत बिजली व पानी की पर्याप्त आपूर्ति होनी चाहिए।

4. कुशल कारीगरों को उनके कार्य के आधार पर मानक के रूप में पारितोषिक की व्यवस्था हो जिससे पलायनवाद की समस्या समाप्त की जा सके।

5. जनपद के विभिन्न तहसीलों में पर्याप्त मात्रा में लोगों की आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के लघु एवं कुटीर उद्योगों की व्यवस्था हो जिससे सामाजिक व आर्थिक असंतुलन को कम किया जा सके एवं लोगों की आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति किया जा सके।

6. बामॅल के अनुसार विज्ञापन किसी उद्योग के जीवन मरण का प्रश्न बन सकती है अतः इन उद्योगों की वस्तुओं के विपणन के लिए विज्ञापन व प्रचार-प्रसार के विविध माध्यमों एवं तरीकों से बुनकरों को जागरूक किए जाने के साथ-साथ सरकार के अनुदानात्मक व सहयोगपूर्ण कदम उठाये जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. वार्षिक प्रतिवेदन डी॰आई॰पी. आजमगढ़।
2. सहायक निदेशक (हथकरघा एवं वस्त्रोद्योग) 2007, प्रगति विवरण आख्या, माह मार्च 2007, परिक्षेत्रीय कार्यालय मऊ
3. विश्वकर्मा, लल्लन एवं शर्मा बी॰ एन॰ 2010, आजमगढ़ मण्डल में हथकरघा उद्योग का वितरण, समस्यायें एवं सम्भावनायें
4. फातिमा जीनत 2002, गोरखपुर जनपद में घरेलू वस्त्र उद्योग गोरखपुर विश्वविद्यालय
5. योजना आयोग 1955, ग्रामीण एवं लघु उद्योग रिपोर्ट (द्वितीय पंचवर्षीय योजना), पृष्ठ 35
6. Sharma V.N.(2001):Industrial Development and Planning in India : Changing Profile of industries in a Backward States (M.P.), Radha Publication, New Delhi, pp.3,21-23.

प्रमोद कुमार
शोध छात्र, वाणिज्य संकाय,
डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या, उ.प्र.

डॉ. नन्दन सिंह
असि. प्रोफेसर,
रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अकबरपुर, अम्बेडकरनगर, उ.प्र.

भारत में महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण एवं विकास

–रिम्मी यादव
–डॉ. अरूण कुमार सिंह

सारांश

भारत में महिला सशक्तीकरण एक महत्वपूर्ण और उच्च प्राथमिकता वाला विषय है। यहाँ महिलाएँ समाज के निर्माण में अभिन्न अंग हैं, लेकिन उन्हें सक्रियता और निर्णय लेने में पूरी तरह से शामिल करना अभी भी अधूरा है। यह आज के समय की सबसे बड़ी चुनौती है, क्योंकि पुरुषों के मुकाबले महिलाएँ ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा कार्य करने वाली, और आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर रहने वाली और सांस्कृतिक बंधनों की जंजीरों में बंधी रहती हैं। किसी भी देश की आर्थिक गतिविधि में महिलाओं की उचित भागीदारी के बिना सामाजिक प्रगति की आशा रखना गलत है। प्रस्तुत लेख भारत में महिला सशक्तीकरण एवं आर्थिक समृद्धि की प्रोत्साहना में महिलाओं के योगदान की भूमिका पर विचार करता है, एवं उन्हें सशक्त बनाने और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए कैसे सामाजिक और आर्थिक संरचनाएँ मदद कर सकती हैं इस बात पर ध्यान केंद्रित करना है।

मुख्य शब्द : महिला सशक्तीकरण, आर्थिक सशक्तीकरण, शिक्षा, आर्थिक विकास, सामाजिक सशक्तीकरण आर्थिक स्थिति।

प्रस्तावना : महिलाएं हमारे समाज का अभिन्न हिस्सा है लेकिन उनके पास कम अधिकार हैं। महिलाओं के योगदान के बिना समाज का निर्माण नहीं हो सकता। आमतौर पर पुरुषों और महिलाओं के बीच भेदभाव होता है, महिलाओं को काम के हर पहलू में रुकावटें आती हैं। समाज के कल्याण के लिए महिलाओं की स्थिति में सुधार होना चाहिए। महिला और पुरुष दोनों एक समाज के घटक हैं और वे एक दूसरे पर निर्भर है। महिला सशक्तीकरण बहुआयामी और बहुमुखी होता है। यह पुरुष निरपेक्ष नहीं, बल्कि सापेक्ष विमर्श होता है। इसका अभिप्राय ऐसी शक्ति से है जो महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और कानूनी रूप से सोचने, समझने और जीवन जीने की स्वतंत्रता देता है। पिछली आधी सदी में कई महिला आंदोलन हुए हैं, जिससे नीतियाँ बनाते समय भारत में महिला सशक्तीकरण को प्रमुख महत्व के मुद्दे के रूप में उजागर करने में बड़ी सफलता मिली है। इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि हुई है, जिससे महिलाएँ पुरुषों के बराबर खड़ी है, और स्वास्थ्य क्षेत्र में परिणामस्वरूप बेहतर मातृ स्वास्थ्य, लंबा जीवन आदि में वृद्धि हुई है। महिलाओं को देश के आर्थिक विकास में शामिल करना महिला सशक्तीकरण के रूप में जाना जाता है। महिला सशक्तीकरण को बढ़ाना, उनकी क्षमता को बढ़ाने के रूप में परिभाषित किया जाता है। जिसमें विशेष रूप से स्वास्थ्य, शिक्षा, कमाई के अवसर, अधिकार और राजनीतिक भागीदारी जैसे प्रगति के घटकों का पहुंचना शामिल है।

वास्तव में महिलाएँ हमेशा से ही देश की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। चाहे वह वह मजदूरी हो, स्वरोजगार हो, पारिवारिक उद्यम, कृषि या नौकरी हो, के माध्यम से देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने में सहयोग प्रदान किया है। अक्सर अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान को नजरअंदाज कर दिया जाता है और उनके काम को काम करके आंका जाता है। लैंगिक भेदभाव महिलाओं के लिए गरीबों को खत्म करने और अपने जीवन को बेहतर बनाने के अवसरों को काम करता है। महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानताएँ पाई जाती हैं यानी महिलाओं की संसाधनों तक कम पहुँच है जिससे अर्थव्यवस्था में धीमी वृद्धि होती है। अर्थव्यवस्था में महिला सशक्तीकरण श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाता है और अर्थव्यवस्था में गरीबों को काम करता है, संसाधनों तक महिलाओं की पहुँच उत्पादन में वृद्धि करती है और वह अपने परिवार का समर्थन कर सकती हैं।

साहित्यावलोकन : महिला सशक्तीकरण पर विभिन्न विद्वानों ने शोध कार्य किया है। इसके अन्तर्गत स्वदेशी एवं

विदेशी दोनों विद्वान सम्मिलित हैं। समाजशस्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों ने महिला सशक्तीकरण पर विभिन्न कार्य किए हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है-

कपूर (1970) ने अपने अध्ययन में यह बताया कि विवाहित नौकरीशुदा महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन देखा जा सकता है, परन्तु फिर भी इन महिलाओं को परिवार में किसी प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। सिंह (1975) ने अपने अध्ययन में इस बात की पुष्टि की कि घरेलू महिलाएँ जो संयुक्त परिवार में रहती है उन्हें घर के बजट से बाहर जाने आर्थिक मामलों गृहस्थी चलाने आदि में स्वतंत्रता का अभाव रहता है। बोहरा (1988) ने सिल्क उत्पादन में लगी बिहार की श्रमित महिलाओं पर अध्ययन किया। उन्होंने अपनी अध्ययन में इस बात का उल्लेख किया है कि आर्थिक स्वतंत्रता की अनुपस्थिति में महिलाओं का विकास बाधित होता है।

राव (1991) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि गृहणियों की अपेक्षा कार्यरत् महिलाओं को अधिक आर्थिक स्वतंत्रता, आर्थिक निर्णय व बाहर कार्य करने के ज्यादा अवसर मिलते हैं। मेहता (1992) ने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया कि नारी की भारतीय समाज में सोचनीय स्थिति रही है। उनकी स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, स्वयं में पूर्ण इकाई के अस्तित्व को पुरुष संचालित समाज में निरन्तर अवहेलना की दृष्टि से देखा गया है। सेठ (2001) ने अपने अध्ययन में भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से महिलाओं के लिये विकास कार्यक्रमों के व्यापक एवं व्यवस्थित विवरण पर चर्चा की। डॉ. पिल्लै (2000) ने अपने लेख में महिला सशक्तीकरण की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए यह बताया कि महिलाओं की स्थिति को बदलने की रणनीति स्वरोजगार द्वारा उनकी कार्य भागीदारी को बढ़ाना है। यह आर्थिक विकास में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने का एक निश्चित तरीका है। जोशी (2011) ने अपने अध्ययन में यह बताया कि आर्थिक स्थिति के मामले में स्त्रियों की दशा पुरुषों से दयनीय रही है।

आंकड़ों का संग्रह : प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक डाटा स्रोतों पर आधारित है। भारत में महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण और विकास के बारे में आवश्यक जानकारी संबंधित विषय की विभिन्न पुस्तकों, पत्रिकाओं, एवं इंटरनेट स्रोतों से एकत्र की गई है।

आर्थिक सशक्तीकरण का महत्व : इस नए युग में, नारी शक्ति को आर्थिक स्वतंत्रता की दिशा में बढ़ता हुआ देखा जा रहा है, जो भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नये दृष्टिकोण से देखने का साहस दिखा रहा है। यह उत्कृष्ट प्रयास न केवल एक व्यक्ति को बल्कि पूरे समाज को भी समृद्धि की ऊंचाइयों तक पहुँचने का संकल्प लेता है। नारियों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना एक सफल राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस सफल प्रयास के माध्यम से हम स्वीकृति, समर्थन और समर्पण की भावना से भरे एक नए भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं, जहाँ नारियों को अपनी पहचान बनाए रखने के लिए संपूर्ण समर्थन प्रदान किया जा रहा है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण का महत्व समझना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह समाज के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान को प्रेरित करता है। महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना समृद्धि, सामाजिक समानता और समरसता की दिशा में कदम बढ़ाता है। जब एक नारी को आर्थिक स्वतंत्रता मिलती है, तो वह अपने परिवार और समाज के लिए एक सकारात्मक परिवर्तनशील बदलाव का माध्यम बन जाती है। नारीशक्ति का आर्थिक सशक्तीकरण समृद्धि और सामाजिक न्याय की दिशा में साझा जिम्मेदारी लेने का संकेत है जिससे हम समृद्धिशाली और विकसित समाज की ऊँचाइयों की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

महिला आर्थिक सशक्तिकरण : अर्थव्यवस्था में महिलाओं के लिए अवसर बढ़ाने के लिए उनके पास बेहतर नौकरियों तक पहुँच होनी चाहिए एवं ऐसा कारोबारी माहौल होना चाहिए जो उन्हें व्यापार करने में मदद करें तथा वित्तीय क्षेत्र तक पहुँच हो जो जरूरतों को पूरा करें और संकट के समय नौकरी की सुरक्षा हो। महिला सशक्तीकरण महिला अधिकारों और आर्थिक विकास, गरीबी में कमी, शिक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण जैसे विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करता है। महिलाओं को कौशल, संसाधन और आर्थिक संस्थानों तक समान पहुँच प्रदान की जानी चाहिए। आर्थिक सशक्तीकरण अर्थव्यवस्था में संसाधनों और अवसरों तक पहुंच प्रदान करने में महिलाओं की मदद करता है। शिक्षा एक ऐसा संसाधन है जिसे महिलाएँ अन्य संसाधनों की तुलना में आसानी से प्राप्त कर सकती हैं जिससे समाज में उनका विकास होगा। अविकसित देशों में अशिक्षित महिलाएँ बुरी परिस्थितियों का अनुभव करती हैं क्योंकि वह पुरुषों पर निर्भर करती हैं। शिक्षा में लैंगिक असमानता आर्थिक विकास को रोकती हैं। पहले महिलाएँ पुरुषों पर निर्भर थी लेकिन नौकरी के अवसरों के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने ने उन्हें इस स्थिति से मुक्त कर दिया और अब वह आर्थिक अभिनेता है। महिलाओं की कमाई में वृद्धि से बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण में अधिक निवेश होता है जिसके परिणाम स्वरूप दीर्घ अवधि में आर्थिक विकास होता है। महिलाओं द्वारा चलाए जाने वाले व्यवसाय दुनिया के सभी निम्न स्तर के कॉर्पोरेट व्यवसायों का लगभग 38% है। अफ्रीका, एशिया, पूर्वी यूरोप और अमेरिका में महिला उद्यमी बढ़ रही है जो सीधे नौकरी के अवसरों और गरीबी उन्मूलन को

प्रभावित करती है।

भारत में आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका : ग्रामीण, महिलाओं को **'न्यू इंडिया'** के लिए सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय परिवर्तन का पथ प्रदर्शक कहा जाता है। भारत एक कृषि अर्थव्यवस्था है, 80% ग्रामीण महिलाएँ कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं। कृषि क्षेत्र में ग्रामीण महिला कार्यबल को सशक्त बनाने और मुख्यधारा में लाने से देश की आर्थिक वृद्धि की दिशा में एक आदर्श बदलाव आ सकता है। यह खाद्य और पोषण सुरक्षा को बढ़ाएगा और गरीबी और भूख को कम करेगा, जो 2030 तक सतत् विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक जीत-जीत की रणनीति होगी।

विकास किसी राष्ट्र की प्रतिगामी सामाजिक संरचना को बदलने और पूर्वाग्रहों को चुनौती देने से भी आता है। उस पहलू में, भारत की आर्थिक वृद्धि में महिलाओं के योगदान ने देश के दृष्टिकोण को बदलने में प्रमुख भूमिका निभाई है। अभूतपूर्व कार्य में लगे कुछ प्रसिद्ध फाउंडेशन महिलाओं के नेतृत्व वाले हैं। कई भारतीय महिलाओं ने वैश्विक मंच पर देश का प्रतिनिधित्व किया है और उनके नवाचारों ने विकास में और मदद की है। शोध से पता चलता है कि महिलाओं द्वारा शुरू किए गए उद्यम अधिक टिकाऊ होते हैं। भारत के विकास पथ से पता चलता है कि महिला उद्यमियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और यदि आंकड़े बढ़ते रहे तो अर्थव्यवस्था में उनका योगदान उल्लेखनीय होगा।

हालाँकि, लगभग सभी देशों में आर्थिक अवसरों और परिणामों में बड़ा लैंगिक अंतर मौजूद है। महिलाएँ कम कमाती हैं, उनके पास कम संपत्ति होती है, और वे अवैतनिक और देखभाल कार्यों का बोझ उठाती हैं। वे बड़े पैमाने पर कमजोर और कम भुगतान वाली गतिविधियों में केंद्रित होती हैं। आर्थिक अवसरों और परिणामों में अंतराल एक ऐसी सार्वभौमिक समस्या है जिसके कारण 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासचिव द्वारा एक उच्च स्तरीय पैनल (एचएलपी) की स्थापना की गई ताकि महिलाओं के आर्थिक विकास में बाधाओं के रूप में कार्य करने वाली सबसे बड़ी चुनौतियों से निपटा जा सके।

आर्थिक सशक्तीकरण में लैंगिक अंतर की समीक्षा करने और अर्थव्यवस्था में महिलाओं की पूर्ण और समान भागीदारी को साकार करने के समाधान के लिए दुनिया के विभिन्न हिस्सों से विशेषज्ञ एक साथ आए।

उच्च स्तरीय पैनल (एचएलपी) ने 2017 में महासचिव को अपनी अंतिम रिपोर्ट सौंपी, जिसमें महिलाओं के काम के चार प्रमुख क्षेत्रों को मान्यता दी गईः

- औपचारिक क्षेत्र
- अनौपचारिक क्षेत्र
- महिलाओं के स्वामित्व वाले उद्यम
- कृषि

इसके अलावा, रिपोर्ट ने महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण के लिए सात चालकों की पहचान की और महिलाओं की पूर्ण और समान आर्थिक भागीदारी की दिशा में प्रगति में तेजी लाने के लिए ठोस कार्रवाई की इनमें शामिल हैंः

- प्रतिकूल मानदंडों पर नजर रखना और सकारात्मक रोल मॉडल को बढ़ावा देना।
- कानूनी सुरक्षा सुनिश्चित करना और भेदभावपूर्ण कानूनों और विनियमों में सुधार करना।
- अवैतनिक कार्य और देखभाल को पहचानना, कम करना और पुनर्वितरित करना।
- संपत्ति निर्माण डिजिटल, वित्तीय और संपत्ति।
- व्यवसायिक संस्कृति एवं व्यवहार में परिवर्तन।
- रोजगार और खरीद में सार्वजनिक क्षेत्र की प्रथाओं में सुधार।
- दृश यता, सामूहिक आवाज और प्रतिनिधित्व को मजबूत करना।

भारत में महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण एवं विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख मुद्दे : आर्थिक समृद्धि एक समाज के विकास के लिए महत्वपूर्ण है और महिलाएँ इस दिशा में सक्रिय रूप से भाग लेने में सामर्थ्यशाली होनी चाहिए। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण को बढ़ावा देना विकसित राष्ट्र की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। भारत में महिलाओं के आर्थिक विकास हेतु कई योजनाएँ चलाई गई हैं परंतु फिर भी कई ऐसी समस्याएँ हैं जो उन्हें इस क्षेत्र में पूरी तरह से सक्रिय नहीं होने देती है। महिलाओं के आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख मुद्दे निम्नलिखित है-

1. शैक्षिक पिछड़ापन
2. वेतन की असमानता
3. पेशेवर विकास की कमी
4. कुशल प्रशिक्षण की कमी
5. कानूनी सुरक्षा की कमी
6. उच्च स्तर शिक्षा की कमी
7. जागरूकता की कमी
8. सामाजिक दबाव और उत्पीड़न
9. संवैधानिक अधिकारों की अज्ञानता
10. संसाधनों तक पहुंच की कमी।

महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण एवं विकास में कई मुद्दे हैं जो हमें समाधान करने की आवश्यकता है। सरकारों, समाज और निजी क्षेत्र को मिलकर काम करना चाहिए ताकि हम समृद्धि और समानता की दिशा में आगे बढ़ सके। महिलाओं को सशक्त बनाना हम सभी की

बढ़ती हुई उपलब्धियाँ का प्रतीक होगा और समृद्धि की दिशा में हमारी प्रगति को दर्शाएगा।

सरकारी पहल : भारत सरकार ने विभिन्न योजनाबद्ध हस्तक्षेपों के माध्यम से सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तीकरण सुनिश्चित करने के लिए कई कदम उठाए हैं। समग्र शिक्षा, राष्ट्रीय प्रवासी छात्रवृत्ति योजना, बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना, स्वच्छ विद्यालय मिशन, कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालय योजना, महिला समाख्या कार्यक्रम, मौलाना आजाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति, बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना, आदि जैसी कई सरकारी पहलों ने यह सुनिश्चित किया है कि स्कूल लड़कियों के अनुकूल है, खासकर समाज के कमजोर वर्गों के लिए और उनमें पर्याप्त सुविधाएँ हों, उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 2020 में पेश की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) लैंगिक समानता को प्राथमिकता देती है और सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों (एसईडीजी) पर विशेष जोर देने के साथ सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक समान पहुँच की कल्पना करती है।

इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार द्वारा महिलाओं के आर्थिक विकास हेतु विभिन्न योजनाएँ चलाई गई। जैसे काम के बदले अनाज योजना 1977, अंत्योदय कार्यक्रम 1978, ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद 1986, महिलाओं हेतु प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम 1987, कुटीर ज्योति योजना 1988-89, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना 1999, किशोरी शक्ति योजना 2001, महिला स्वयंसिद्ध योजना 2001 आदि। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 (मनरेगा) के आदेशों के अनुसार, योजना के तहत उत्पन्न कम से कम एक तिहाई नौकरियाँ महिलाओं को दी जानी चाहिए।

इसके अलावा, महिलाओं के बीच रोजगार दर बढ़ाने के लिए, सरकार महिला औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों और क्षेत्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों के नेटवर्क के माध्यम से प्रशिक्षण सुविधाएँ ला रही है और आर्थिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए कौशल भारत मिशन भी शुरू किया है। कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से महिलाओं का आर्थिक विकास तेजी से बढ़ रहा है। राष्ट्रीय कौशल विकास नीति बेहतर आर्थिक उत्पादकता के लिए महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से समावेशी कौशल विकास पर केंद्रित है। प्रधानमंत्री कौशल विकास केंद्र महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और प्रशिक्षुता दोनों के लिए अतिरिक्त बुनियादी ढांचे के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करता है। महिलाओं को समायोजित करने के लिए लचीला प्रशिक्षण वितरण तंत्र, एक सुरक्षित और लिंग संवेदनशील प्रशिक्षण वातावरण, महिला प्रशिक्षकों का रोजगार, पारिश्रमिक में समानता और एक सुरक्षित और मजबूत शिकायत निवारण तंत्र सुनिश्चित करना।

महिलाओं के रोजगार को प्रोत्साहित करने के लिए हाल ही में लागू श्रम संहिताओं में कई कानूनी प्रावधान शामिल किए गए हैं। वेतन संहिता, 2019, औद्योगिक संबंध संहिता, 2020, व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कामकाजी स्थिति संहिता, 2020 और सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 ताकि महिला श्रमिकों के लिए अनुकूल कार्य वातावरण तैयार किया जा सके। इसके अलावा, सरकार ने भारतीय वायु सेना, कमांडो, केंद्रीय पुलिस बलों में लड़ाकू पायलट, सैनिक स्कूलों में प्रवेश आदि जैसे गैर-पारपरिक क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी की अनुमति देने के लिए सक्षम प्रावधान भी बनाए हैं।

महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका भी अहम् रही है। इसमें निम्नलिखित एनजीओ ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। सेल्फ एंप्लॉयड वीमेंस एसोसिएशन, वनिता समाज, स्वयं सहायता समूह, संजीवनी सेवा संगम, अहिल्या आश्रम, दिशा, आशा, नेशनल मुस्लिम वूमेन वेलफेयर सोसाइटी, महिला संघर्ष समिति, नारी क्षमता संघ आदि।

आगे की राह : महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण को बढ़ाने का रास्ता सिर्फ महिला रोजगार के अवसरों को बढ़ाना नहीं है बल्कि महिलाओं को जिस डबल शिफ्ट के बोझ का सामना करना पड़ता है, उसमें कमी लाना भी है। आर दृष्टिकोण को अपनाने की सख्त जरूरत है जिसमें नीति निर्माण के सभी क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अवैतनिक देखभाल कार्यों को पहचानना, कम करना और पुनर्वितरित करना शामिल है।

यह सार्वजनिक क्षेत्र की देखभाल के बुनियादी ढांचे में निवेश के रूप में महिलाओं के काम को सुविधाजनक बनाकर किया जा सकता है। हालाँकि देखभाल अर्थव्यवस्था क्षेत्र में भारत के सकल घरेलू उत्पाद का केवल 2% सार्वजनिक निवेश न केवल 11 मिलियन नौकरियाँ पैदा कर सकता है, बल्कि इससे महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक कल्याण में भी उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है क्योंकि वे औपचारिक कार्यों में एक कदम आगे बढ़ सकती हैं।

भारत में महिला उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के तरीकों में से एक है महिला केंद्रित और महिला-अनुकूल नीतियाँ, कर प्रोत्साहन और महत्वपूर्ण हस्तक्षेप ताकि बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों तक आसान पहुँच प्रदान की जा सके।

भारतीय उद्योग परिसंघ (सीआईआई) द्वारा स्थापित महिला सशक्तीकरण पर राष्ट्रीय समिति आर्थिक क्षेत्र और सामुदायिक मामलों में महिलाओं की भूमिका और भागीदारी

को मजबूत करने, लैंगिक समानता, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम और महिला सशक्तीकरण पर ध्यान केंद्रित करने के लिए उद्योग के साथ काम करती है। सामुदायिक स्तर पर. सीआईआई ने शिक्षा और साक्षरता, स्वास्थ्य और सूक्ष्म उद्यमों के क्षेत्र में विकास पहल की दिशा में काम करने वाली महिलाओं के लिए एक वार्षिक सीआईआई वुमन एक्जम्पलर अवार्ड भी स्थापित किया है, जो मौजूदा और महत्वाकांक्षी महिला उद्यमियों के लिए एक महान प्रेरक कारक के रूप में कार्य कर सकता है।

लैंगिक समानता के साथ महिला सशक्तीकरण मौलिक मानवाधिकारों की कुंजी है और एक अधिक शांतिपूर्ण, प्रगतिशील और टिकाऊ दुनिया की ओर हमारी यात्रा में यह अपरिहार्य है।

निष्कर्ष : देश के सतत एवं संतुलित विकास के लिए महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण की अत्यंत आवश्यकता है। भारत में महिला आर्थिक सशक्तीकरण और विकास का मुद्दा महत्वपूर्ण है और इसे बढ़ावा देना आवश्यक है। महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से किसी भी समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में हमने देखा कि महिलाएँ सक्रिय रूप से आर्थिक क्षेत्र में शामिल हो रही है और उन्हें समान अधिकार और अवसर प्राप्त हो रहे हैं। उन्हें अधिक शिक्षा, प्रशिक्षण और ऋण की सुविधाएँ धान की जानी चाहिए। समाज में महिलाओं को अधिक शक्ति प्राप्त हो रही है, किंतु अभी भी कई क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। उन्हें व्यापक रूप से स्वतंत्रता और समर्पण का मौका मिलना चाहिए ताकि वे न केवल अपने परिवार के लिए बल्कि समाज की समृद्धि के लिए भी योगदान कर सके। आर्थिक सशक्तीकरण के माध्यम से, हम समझ में सामाजिक और आर्थिक बदलाव को प्रोत्साहित कर सकते हैं और देश की सामरिक संरचना में सुधार कर सकते हैं। भारतीय समाज में महिलाओं को उनके संवैधानिक अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रति समर्पित किया जाना चाहिए। सरकार को भी ऐसी नीतियों को प्रोत्साहित करने और समर्थन करने की आवश्यकता है जो महिलाओं को उनकी सकारात्मक प्रगति की दिशा में बढ़ाने में मदद करें। महिला आर्थिक सशक्तीकरण एक सकारात्मक परिवर्तन की ओर कदम बढ़ा रहा है और सशक्त महिलाएँ सशक्त राष्ट्र की ऊंचाइयों को छूने में सक्षम है।

संदर्भ

1. सेठ मीरा, ''*महिला और विकास भारतीय अनुभव*'', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2001
2. गणेशमूर्ति वी.एस., ''*भारतीय महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण*'' नई शताब्दी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
3. मेहता चेतना, '*महिला एवं कानून*' आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली 1992
4. गणेशन एस., '*भारत में महिला उद्यमियों की स्थिति*', कनिष्का प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
5. कपूर प्रेमिला, '*भारतीय महिलाओं को सशक्त बनाना*' सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2001
6. पिल्लै एन. सी., '*महिला उद्यमियों का सशक्तीकरण एक अवधारणात्मक ढांचा*, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2000
7. http.//wed.nic.in/empweman.htm
8. www.wcd.nic.in
9. www.womwnsnews.org

रिम्मी यादव
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग,
श्रीरामस्वरूप मेमोरियल यूनिवर्सिटी, बाराबंकी

डॉ. अरूण कुमार सिंह
सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग,
श्रीरामस्वरूप मेमोरियल यूनिवर्सिटी, बाराबंकी

थारू जनजाति और सामाजिक गतिशीलता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

–मीनाक्षी सिंह

सारांश

जनजातीय समुदाय समाज संस्कृति से बंधा हुआ, गैर-स्तरीकृत, जातिविहीन, वर्गविहीन, पृथक और समरूप समाज है। ये विशेषताएँ जनजातीय समुदाय को वर्तमान समय के आधुनिक समाज से विलग करती हैं। किन्तु आधुनिकीकरण, संस्कृतिकरण व औद्योगिकीकरण जैसी प्रक्रियाओं के कारण वर्तमान समय में जनजातियाँ अब स्वतंत्र एवं पृथक सामाजिक समूह नहीं रह गयी हैं। जिस कारण यह समुदाय निरंतर गतिशील बना हुआ है। इस संदर्भ मे उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों मे निवासित थारू जनजातियाँ कोई अपवाद नहीं हैं। वे देश के सबसे अधिक प्रभावित स्वदेशी समूहों में से एक हैं जो सामाजिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं का सामना कर रहे हैं और अपने अस्तित्व व संस्कृति की रक्षा के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। अतः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य थारु समुदाय मे होने वाली सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन करना है। जिसके कारण इस समूह की सामाजिक प्रस्थिति में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है।

प्रस्तावना

भारतीय समाज विभिन्न प्रजातीय समूहों का संगम स्थल रहा है। विभिन्न समयान्तराल पर भारत में अनेक समुदायों ने प्रवेश किया और इन सभी समुदायों की संस्कृति भारतीय समाज का अंग बनती गई। इनमें से अनेक ऐसे मानव समूह थे जिन्होंने बाह्य सभ्यता से विभिन्न तत्वों को ग्रहण करने के साथ ही अपनी मौलिक संस्कृति को संरक्षित रखा। नगरीय सभ्यता से विलग, जल, जंगल व जमीन के मध्य अपना जीवनयापन करने वाले इस समाज को विद्वानों ने जनजाति के नाम से सम्बोधित किया। वर्तमान में आदिवासी या जनजाति शब्द प्रायः पिछड़े हुए या असभ्य मानव समूह के सन्दर्भ मे प्रयुक्त किए जाते हैं। यह जनजातीय समूह ही देश के प्राचीनतम मानव समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिमालय के तराई के जंगलों मे निवास करने वाली ऐसी ही एक खानाबदोश जनजाति थारु है। थारू जनजाति एक समृद्ध इतिहास, संस्कृति और परंपरा वाला समुदाय है। संविधान आदेश, 1967 (अनुसूचित जनजाति) (उत्तर प्रदेश) के माध्यम से थारू समुदाय को उत्तर प्रदेश में चार अन्य जनजातियों (बक्सा, भोटिया, जौनसारी और राजी) के साथ अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिला। जनसंख्या की दृष्टि से, वर्तमान उत्तर प्रदेश में सभी पाँच जनजातीय समूहों में थारू सबसे अधिक आबादी वाला समूह है। थारू समुदाय की अधिकांश आबादी भारत-नेपाल सीमा पर भाभर तराई क्षेत्र में स्थित है। थारू जनजाति का निवास क्षेत्र उत्तर प्रदेश में तराई और भाबर की संकीर्ण पट्टी का प्रदेश है, जो कुछ पूर्व के बिहार के उत्तरी भाग में फैला हुआ है। यह संकीर्ण पट्टी केवल 25 किमी. चौड़ी है, पर लम्बाई में यह लगभग 600 किमी. है, जो उत्तर प्रदेश और नेपाल की सीमा के साथ उत्तर प्रदेश में स्थित है। रामगंगा कीछा, शारदा, घाघरा, राप्ती, गण्डक तथा कोसी नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलकर मैदान को जाती हुई इस भाबर-तराई की संकरी पेटी को पार करती हैं। थारू मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी, बहराईच, बस्ती, गोंडा, बलरामपुर और गोरखपुर जिलों और बिहार के चंपारण जिले में निवास करते हैं। थारू जनजाति की कुल जनसंख्या उत्तर प्रदेश में 105291 है।

थारू जनजातीय समूह का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन प्रारम्भ मे सरल था किन्तु बाह्य सभ्य समाज के हस्तक्षेप के साथ ही इनके जीवन में परिवर्तन का काल प्रारम्भ हुआ। आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, संस्कृतिकरण, शिक्षा का विकास तथा राजनैतिक जागरूकता से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से थारू जनजाति में निरन्तर गतिशीलता परिलक्षित हो रही है। इस प्रकार की गतिशीलता समाज के विभिन्न तत्वों में हो रहे परिवर्तनों से प्रभावित होती है तथा समाज के विभिन्न संस्थाओं व समूहों को परिवर्तित भी करती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक गतिशीलता की मात्रा मापती है कि समाज कितना सशक्त है और पारंपरिक संरचनाओं

में कितना बंधा हुआ है? ए. आर. देसाई[1] के मतानुसार, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि से तात्पर्य परम्परागत विश्वास, आर्थिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक धारणाओं को त्यागकर व्यक्ति द्वारा नए मूल्यों एवं व्यवहार को अपनाने में अग्रसर होने से है। जनजातीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक स्थिति में हुए इस प्रकार के परिवर्तन को गतिशीलता की दृष्टि से देखा जाता है। उनके सामाजिक व्यवस्था, संरचना, व्यवहार तथा मूल्यों में परम्परा की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। जनजातियों में आज भी विज्ञान व तर्क से अधिक रीति-रिवाजों व परम्पराओं का महत्व देखा जाता है। फिर भी यह समाज विवाह, परिवार, नातेदारी, धर्म, शिक्षा, पंचायत, व्यवसाय, कृषि इत्यादि का पुनर्गठन करके धीरे-धीरे आधुनिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। भारत में सामाजिक गतिशीलता की प्रकृति दूसरे समाजों की प्रकृति से भिन्न है। भारतीय समाज में सामाजिक गतिशीलता की व्याख्या जाति संस्तरण में एक व्यक्ति की प्रस्थिति में घटित होने वाले परिवर्तनों से संबंधित होती है।

थारू जनजाति की सामाजिक स्थिति

किसी भी समाज की सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत उसकी परंपराएँ, रीति-रिवाज, शिक्षा का स्तर, धार्मिक प्रथाएँ, राजनैतिक जागरूकता, परिवार तथा व्यवसाय आदि से सम्बन्धित प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इस आधार पर यदि थारु जनजाति का विश्लेषण करें तो थारू समाज की परंपराओं के अनुसार, संयुक्त परिवार प्रणाली आदर्श हुआ करती थी, लेकिन बदलती प्रथाओं के कारण उनमें से कुछ एकल परिवार प्रणाली के लिए आगे बढ़ रही हैं। थारू सामाजिक परंपरा में परिवार का प्रत्येक सदस्य आजीविका कमाने में योगदान देता है। यह देखा गया है कि, थारूओं में संयुक्त परिवार कृषि के अपने पारंपरिक कार्य को पूरा करने के लिए एकल परिवारों की तुलना में अधिक योगदान देने वाले और उत्पादक होते हैं। लेकिन अब थारू समाज में लगातार हो रहे पलायन के कारण कृषि भूमि विभाजित हो गई है और इसका असर थारूओं के बीच संयुक्त परिवार की कामकाजी परंपराओं पर पड़ रहा है। थारूओं का मुख्य कार्य कृषि है। वे प्राचीन तरीके से कृषि करते हैं और चावल, मक्का, जौ, गेहूं, चना, मटर, आलू, मसूर (मसूर दाल), गन्ना और सरसों उगाते हैं। वे अपनी मुख्य फसल के रूप में अपने घर के साथ ही बने बगीचे में सब्जियाँ, तम्बाकू और केले उगाते हैं।

थारू आम तौर पर मांसाहारी होते हैं, मछलियाँ उनके भोजन का अनिवार्य हिस्सा होती हैं। मछली पकड़ने का काम महिलाओं व बच्चों के द्वारा किया जाता है। उनका मुख्य भोजन चावल और मछली है। चावल के प्रति थारूओं के प्रेम ने उन्हें चावल की कई किस्मों का उत्पादन करने के लिए प्रेरित किया, जैसे बागरी, अंजनवा, दुधराज, सरतीज, बरछा, देवसर, साथी, कंकरजीरा, बासभोग, घृतकुमारी, बासमती आदि। इन्हें शराब पीना पसंद है, यहाँ तक कि महिलाएँ और बच्चे भी शराब पीते हैं, जिससे उन्हें मलेरिया से सुरक्षा मिलती है। पेय पदार्थों में, थारू लोग बहुत अधिक मात्रा में चावल की शराब का सेवन करने के लिए जाने जाते हैं। इसीलिए कुछ विद्वानों का मानना है कि थारू नाम उनकी शराब पीने की क्षमता के आधार पर दिया गया है।

थारू लोग घर पर ही शराब बनाते हैं और उनकी घर में बनी शराब की दो किस्में होती हैं- जंड और दारू। जंड में अल्कोहल की मात्रा कम पाई जाती है और इसे बीयर के समान माना जाता है। पारंपरिक और सबसे लोकप्रिय पेय 'जंड' है, जिसका त्योहारों के दौरान भारी मात्रा में सेवन किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि यह शराब उन्हें मलेरिया से आंशिक रूप से प्रतिरक्षा प्रदान करती है और उन्हें जंगल में, खासकर मानसून के दौरान जीवित रखती है। थारू शिकार और मछली पकड़ कर जीवन यापन करते हैं। जंगल की जड़ी-बूटियाँ, फल और सब्जियाँ इकट्ठा करना, गाय और भैंस चराना, घी बनाना और सूअर, मुर्गी और बकरी पालन करना उनके दैनिक कार्य हैं। इनके घर लकड़ी के होते हैं और उन घरों को तैयार करने में काफी लकड़ी की खपत होती है। सामान्यतया घर दो मंजिला होते हैं, जिसमे ऊपर का भाग वे अपने अनाजों को बाढ़ से सुरक्षित रखने के लिए प्रयोग करते हैं। किन्तु वर्तमान में नगरीय समाज के हस्तक्षेप तथा सरकारी नियमों के अंतर्गत वन विभाग द्वारा पेड़ों के काटने पर रोक लगाए जाने के कारण लकड़ी के घरों की संख्या में कमी आई है।

थारू समुदाय के पास अपने विवादों को निपटाने और सामान्य आचार संहिता का पालन सुनिश्चित करने के लिए मजबूत पारंपरिक पंचायत संगठन है। जिसके कठिन नियम उनके जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए पर्याप्त हैं। थारूओं में विवाह के विभिन्न रूप होते हैं। यहाँ दो विशेष रूप हैं जिनका उल्लेख करना आवश्यक है, प्रथम मागी बिवाहा और द्वितीय चोरी बिवाह। मागी बिवाह जहाँ सभी संबंधित अनुष्ठान पूरे किए जाते हैं और दूसरा चोरी बिवाह है जहाँ महिला को चुरा लिया जाता है यानी सहमति के बिना ले जाया जाता था। इस तथ्य के कारण कि लड़कों की शादी कम उम्र में ही लड़कियों के साथ किशोरावस्था के मध्य में कर दी जाती है, प्रेम विवाह का कोई सवाल ही नहीं उठता है और इन लोगों के बीच यह अवधारणा भी अनुपस्थित लगती है। किन्तु वर्तमान समय में सरकारी नियमों के कारण विवाह की आयु सीमा व प्रक्रिया में परिवर्तन आया है।

थारु समाज में महिलाओं की भूमिका व प्रतिष्ठा अन्य जनजातियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। वे पुरुष

समकक्ष की अनुमति के बिना कहीं भी जा सकती हैं। वे आर्थिक और सामाजिक विषयों मे समान रूप से अपना मत रखती हैं। थारू पितृसत्तात्मक हैं, किन्तु इसमे महिलाओं को समान रूप से अपनी स्थिति बनाए रखने के सभी अधिकार हैं। डी.एन. मजूमदार, अमीर हसन और आर.पी. श्रीवास्तव आदि समाजशास्त्रियों ने अपने कार्यों में इस तथ्य का समर्थन किया है। थारू जनजाति के लोग अपने पारंपरिक परिधानों को विशेष अवसरों जैसे विवाह समय की परम्पराओं, धार्मिक अनुष्ठानों तथा विभिन्न त्योहारों आदि पर पहनते हैं तथा अपने पारंपरिक नृत्य को बहुत ही उत्साह के साथ करते हुए उत्सवों का आनंद लेते हैं।

थारू जनजाति मे सामाजिक गतिशीलता के प्रमुख कारक

ए.सी. सिन्हा के अनुसार आदिवासी समुदाय ''पारिस्थितिकी, जनसांख्यिकी, अर्थव्यवस्था, राजनीति और अन्य जातीय समूहों में अलग-थलग हैं। ऐसी ऐतिहासिक छवि आदिवासी समुदायों को गैर-आदिवासी से अलग करती है और उन्हें आदिवासी पहचान प्रदान करती है।'' परन्तु नयज्ञीय समाज के निरन्तर व्यवधान से ये विशिष्ट विशेषताएँ बहुत प्रभावित हुई हैं। थारू संस्कृति में गैर-आदिवासियों के लगातार हस्तक्षेप के कारण परिवर्तन हुए हैं। समय बीतने के साथ-साथ आदिवासी लोगों के बीच उनकी अद्‌भुत संस्कृति और परंपराओं का महत्व कम होने लगा है। वे इस समय संक्रमण के चरण से गुजर रहे हैं। थारु समाज में गतिशीलता की यह प्रक्रिया विभिन्न कारकों से सम्बन्धित है जो कि निम्नलिखित है।

आधुनिकीकरण - विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही जनजातीय समाजों ने आधुनिकीकरण का अनुभव किया। जीवन जीने के पारंपरिक तरीके का आधुनिक जीवन शैली में परिवर्तन के बाद जनजातीय समाज क्व विभिन्न क्षेत्रों में गतिशीलता परिलक्षित हुई है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी आधुनिकीकरण का मुख्य घटक रहा है क्योंकि इसने लोगों में वैज्ञानिक सोच पैदा की और उनमें वैज्ञानिक नवाचारों को बढ़ावा देने की प्रेरणा पैदा की। विल्बर्ट ई. मूर के अनुसार-आधुनिकीकरण परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया है जो पारंपरिक समाज को तकनीकी और सभ्य समाज में परिवर्तित करता है। आधुनिकीकरण के सार को स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण गतिशील समाज मे जीवन के नए या आधुनिक मूल्यों और तरीकों को बदलने या अपनाने की एक प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत थारू समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति के साथ ही समूह की प्रस्थिति में भी गतिशीलता प्रत्यक्ष प्रदर्शित हुई है। आधुनिकता से प्रभावित युवा वर्ग अब नगरीय समाज की ओर आकर्षित हो रहा है, साथ ही आधुनिक उपकरणों के माध्यम से अपने कार्य को अधिक सुविधापूर्वक पूर्ण कर पा रहा है।

औद्योगीकरण- औद्योगीकरण ने भारतीय आबादी को प्रभावित किया है और देश की अर्थव्यवस्था के लिए उद्योग के महत्व को उजागर करने के लिए विभिन्न विषयों पर कई अध्ययन किए गए हैं। हालाँकि, देश में समाज का एक वर्ग है, जिसे जनजाति के रूप में वर्गीकृत किया गया था, पारंपरिक रूप से उत्पादन के पूर्व-कृषि मोड पर निर्भर रहा है और हाल ही में कृषि गतिविधियों को सीखा है। पारंपरिक रूप से पहाड़ी और जंगली इलाकों में रहने वाले इन लोगों ने शिकार-संग्रह, मछली पकड़ने, पशुचारण, स्थानांतरित खेती और गतिहीन बागवानी जैसी निर्वाह गतिविधियों का अभ्यास करके अपनी आजीविका कमाने का विकल्प चुना। वे उपलब्ध प्राकृतिक उत्पाद पर जीवित रहे और आर्थिक उत्पादन के लिए बहुत कम उपकरणों और यंत्रों पर निर्भर रहे। जिन भूमियों और क्षेत्रों में ये जनजातियाँ निवास करती थीं, उनकी पहचान खनिज और ईंधन संसाधनों से समृद्ध के रूप में की जाने लगी। ये संसाधन नव औद्योगीकृत राष्ट्र के लिए प्राथमिक आवश्यकता थे। प्रमुख उद्योगों ने खनिज समृद्ध क्षेत्रों के निकट विकास करना चुना ताकि उन्हें इन प्राथमिक संसाधनों तक पहुँच मिल सके। इस क्षेत्र में विनिर्माण स्थल के पास कार्यबल के रहने के लिए आवश्यक उद्योग के आसपास टाउनशिप और शहरी केंद्रों का एक साथ विकास भी देखा गया। बाजार तक माल के आसान परिवहन की सुविधा के लिए स्थानों को सड़कों और रेलवे द्वारा सक्रिय रूप से जोड़ा गया था।

जनजातीय अर्थव्यवस्था बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास से प्रभावित हुई है, क्योंकि वे उद्योगों में अकुशल श्रम के लिए आकर्षित हो रहे हैं। कुछ विद्वानों ने धन प्राप्त करने के लिए आदिवासियों द्वारा ये नौकरियाँ लेने की बाध्यता पर जोर दिया है। मुद्रीकृत अर्थव्यवस्था ने आदिवासी समुदायों के उपभोग पैटर्न और भौतिकवादी संपत्ति को बदल दिया है। कृषि पर निर्भरता काफी हद तक कम हो गई है। औद्योगिक शहरों के आसपास के बाजारों में बेचने के लिए सब्जियों की खेती और वन उपज के संग्रह की ओर रुझान है। थारु समाज में औद्योगीकरण के नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है। पारिवारिक मूल्य बदल गया है। धार्मिक अनुष्ठानों से भी समझौता किया गया है। औद्योगिक विकास के कारण आदिवासी महिलाओं को भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है।

आदिवासियों का ग्रामीण क्षेत्र से शहरी-औद्योगिक केंद्र की ओर पलायन एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। उद्योग के आगमन ने टाउनशिप को अपने साथ ला दिया। कई आदिवासी खाली कराए जाने के बाद भी औद्योगिक भूमि पर झुग्गियाँ बनाकर रहते रहे। झुग्गियों में जीवन दयनीय था, हालाँकि आदिवासियों को उद्योग में काम करने के

लिए पास की बस्तियों में रहने के लिए मजबूर किया जाता था। कुछ आदिवासी अपने ठेकेदारों के साथ एक औद्योगिक स्थल से दूसरे स्थान पर चले गए और बंधे हुए औद्योगिक मजदूर की स्थिति उत्पन्न हो गई।

शिक्षा का विकास - शिक्षा का अर्थ है किसी व्यक्ति की आत्म-क्षमता और छिपी हुई प्रतिभाओं को बाहर निकालना, उन्हें साकार करना। वास्तव में शिक्षा वह दर्पण है जिसके माध्यम से हम दुनिया को देख सकते हैं। राष्ट्रीय विकास में इसकी अहम् भूमिका है। साक्षरता पढ़ने और लिखने की क्षमता है जबकि शिक्षा ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित निर्देश है। शिक्षा में शिक्षण और विशिष्ट कौशल सीखना, ज्ञान प्रदान करना, सकारात्मक निर्णय और अच्छी तरह से विकसित ज्ञान प्राप्त करना आदि सम्मिलित है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कृति प्रदान करना इसके मूलभूत पहलुओं में से एक है। इस संदर्भ मे यदि थारू समाज का वि लेषण करें, तो वे शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से सबसे पिछड़े समुदाय हैं। पिछड़ेपन का कारण मुख्य रूप से कृषि और पशुधन पर इनकी निर्भरता हैं। सरकारी सेवाओं तक उनकी पहुँच सीमित है। तथा कथित ऊँची जातियों द्वारा उनका शोषण किया जाता है तथा रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि तक उनकी पहुँच दुर्लभ है। थारू जनजातियाँ शिक्षा के प्रति कम जागरूक हैं। पिछले कुछ दशकों के काल खंड में, थारू लोगों को पढ़ने और लिखने का ज्ञान प्राप्त करने में अत्यधिक रुचि नहीं थी। माता-पिता द्वारा बच्चों को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के लिए पारिवारिक शिक्षा ही दी जाती थी, ताकि वे समाज में अपनी जिम्मेदारियों को समझ सकें। बच्चे दैनिक कार्यों में अपने माता-पिता की मदद करते हैं और धीरे-धीरे आर्थिक कार्यों को संभालना सीख जाते हैं। इसीलिए, औपचारिक रूप से शिक्षा थारू जनजाति के लिए शून्य है। किन्तु शिक्षा के इस रूप में अब परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। थारू उन कई भारतीय समुदायों में से एक हैं जिन्हें अपने निवास क्षेत्र के शैक्षणिक संस्थानों के बारे में भी जानकारी नहीं है। वहाँ कई शैक्षणिक संगठन और संस्थाएँ हैं लेकिन समुदाय में शिक्षित लोगों का प्रतिशत बहुत कम है। इस धारणा के पीछे एक और कारण यह भी हो सकता है कि वे आर्थिक रूप से बहुत मजबूत नहीं हैं। थारूओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता और यह समझ विकसित हुई है कि उज्ज्वल भविष्य के लिए शिक्षा आवश्यक है। इसका मुख्य कारण थारू जनजाति के मध्य सरकारी योजनाओं की जानकारी का होना है जिसे प्रसारित व क्रियान्वित करने का प्रमुख कार्य विभिन्न गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है।

संस्कृतिकरण - भारत में सामाजिक परिवर्तन के संबंध में विकसित हुई एम.एन. श्रीनिवास की संस्कृतिकरण की अवधारणा का विशेष महत्व है। संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक निम्न जाति या जनजाति या कोई अन्य समूह अपने कर्मकाण्ड, रीति-रिवाजों, विचारधाराओं और प्रथाओं को उच्च और प्रायः द्विज जाति की दिशा में बदलता है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा लाया गया परिवर्तन जीवनशैली से लेकर सामाजिक प्रस्थिति तक को प्रभावित करता है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के कारण एक जाति अपने को ऊपर की ओर उठाने में सफलता प्राप्त करने का प्रयास करती है। इस प्रकार की गतिशीलता के कारण वह जाति व जनसमूह अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठा सकती है, किन्तु इस प्रकार की गतिशीलता से केवल पदमूलक परिवर्तन हो सकते हैं। एम.एन.श्रीनिवास ने भी पुटि की है कि यह अवधारणा आदिवासियों और अर्ध आदिवासी समूहों के संबंध में भी प्रासंगिक है। थारू जनजातीय समाज में भी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया परिलक्षित होती है। वर्मा के अनुसार, समस्याएँ उनके समुदाय के भीतर ही सामाजिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हो रही हैं क्योंकि वे अपनी जीवन शैली की बेहतरी के लिए अन्य मुख्यधारा के समाजों की जीवन शैली का अनुसरण कर रहे हैं। यहाँ, यह कहा जा सकता है, थारू समाज के भीतर संस्कृतिकरण की प्रक्रिया अभी भी सक्रिय है। कई थारू युवा आधुनिकता और शैक्षिक विकास के प्रभाव में अन्य संस्कृतियों की नकल करने की कोशिश कर रहे हैं। वे अपनी संस्कृतियों की उपेक्षा कर रहे हैं और अपने पारंपरिक मूल्यों को खो रहे हैं। संस्कृतिकरण कि प्रक्रिया के पश्चात थारू समुदाय हिंदू परम्पराओं का अनुसरण करने लगे हैं। किन्तु वर्तमान में वे कुछ पर्व एवं त्यौहार अपनी संस्कृति के अनुसार मनाते हैं। इनमें से ''बरना'' पर्व सबसे महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि थारू जनजाति के लोग प्रकृति से ज्यादा लगाव रखते हैं और "बरना'' में पेड़-पौधों, यहाँ तक कि हरा घास तक काटना मना होता है।

निष्कर्ष - परिवर्तन अपरिहार्य है और समय बीतने के साथ, प्रत्येक समाज विकासात्मक गतिविधियों की प्रतिक्रिया में कई परिवर्तनों से गुजरता है। समाज ने सदियों से 'कृषि प्रधान' से 'औद्योगिक' की ओर बड़े पैमाने पर परिवर्तन देखा है, जो जीवनशैली, मूल्यों में परिवर्तन लेकर आया है। इस संदर्भ मे थारू समाज की एक भिन्न संस्कृति और परंपरा है जो सदियों से अपरिवर्तनीय है। उनकी भाषा थारू, हिंदी, नेपाली और भोजपुरी का मिश्रण है। थारू अपने पारंपरिक नृत्य रूपों, संगीत और भोजन के लिए जाने जाते हैं। थारू जनजाति की संस्कृति प्रकृति से जुड़े हुए सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। वे प्रकृति की गोद में निवास करते हैं इसलिए उनकी धार्मिक प्रथाएँ प्रकृति से बहुत जुड़ी हुई हैं। वे प्रकृति, अलौकिक शक्ति, आत्माओं, आत्मा और पूर्वजों में

दृढ़ता से विश्वास करते हैं। उनके त्योहार पर्यावरण-अनुकूल हैं, लेकिन हिंदू संस्कृति के प्रभाव के कारण वे होली और दिवाली जैसे हिंदुओं के त्योहार भी मनाते हैं। थारू महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है। परिवार के पुरुष और महिलाएं कृषि कार्य में लगे हुए हैं। थारू महिलाओं को गैर-आदिवासी समुदायों की महिलाओं की तुलना में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। किन्तु वर्तमान समय में आधुनिकीकरण, संस्कृतिकरण और हिंदूकरण की प्रक्रिया के माध्यम से व शैक्षिक विकास और गैर-आदिवासी समाज के साथ निरंतर संपर्क के कारण, थारू समुदाय के अधिकांश युवा अपने मूल सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों और मूल्यों से विमुख हो रहे हैं। इसके कारण थारू समाज के सामाजिक क्षेत्र, आर्थिक प्रक्रियाओं तथा सांस्कृतिक प्रथाओं में व्यापक परिवर्तन आया है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति-संस्कार व आधुनिकीकरण के ऐसे प्रभाव ने थारू संस्कृति को प्रकृति में अत्यधिक गतिशील बना दिया और विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं के हस्तक्षेप ने उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक उत्पन्न की है। इस प्रकार थारू जनजातीय समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे सामाजिक गतिशीलता परिलक्षित हुए है।

Reference

1. Desai, A.R. (Ed.). (1971). Essays on Modernization of Underdeveloped Societies. Bombay: Thakkar & Company. 311-337.
2. Narendra S. Bisht & T. S. Bankoti, Encyclopaedic Ethnography of the Himalayan Tribes: A-D, op.cit. p.137.
3. Alochna Sahoo, "Traditionalism and Globalization: A discourse on tribal transformation", Odisha Review. April-May 2014. p.1615
4. Sameera Maiti, The Tharu: their arts and crafts, 2004, New Delhi, Northern Book Centre., p.41.
5. S.C.Sinha, "Tribes Caste and Tribe Peasant Continuum in Central India", Man in India, Vol, 45, Bihar, 1965, p.1.
6. S.C.Verma, "The Eco-friendly Tharu Tribe: A Study in Socio-cultural Dynamics", 2010, Journal of Asia Pacific Studies (2010) Vol 1, No 2, 177-187
7. Anikeeva, E. N. (2020). Cultural Anthropology, Cast Hierarchy and Religious Values in Modern India. Atlantis Press, 416(4), 493–496. https://doi.org/10.2991/assehr.k.200316.109
8. Asher, S., Novosad, P., & Rafkin, C. (2020). Inter generational Mobility in India: New Methods and Estimates Across Time, Space, and Communities
9. Guha, Subrata & Ismail, Md. (2015). Socio -Cultural Changes of Tribes and Their Impacts on Environment with Special Reference to Santhal in West Bengal. Global Journal of Interdisciplinary social sciences. 4. 148-156
10. Yogendra Singh, "Modernization and Its Contradictions: Contemporary Social Changes in India", Polish Sociological Review, No. 178, 2012, pp. 151-166.www.jstor.com

मीनाक्षी सिंह
शोध छात्रा
समाजशास्त्र विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

'ब्लाइंड स्ट्रीट' दृष्टिबाधित समाज के लोगों का जीवन-संघर्ष

–शिवदेव प्रजापति

सारांश

प्रदीप सौरभ वरिष्ठ पत्रकार होने के साथ-साथ एक उपन्यासकार भी हैं। प्रत्येक उपन्यास में जीवन जगत से जुड़े अनेक ज्वलंत मुद्दों को कथा के केंद्र में रखकर रचनाकर्म करते हैं। ऐसा ही इनका उपन्यास 'ब्लाइंड स्ट्रीट' है, जिसमें इन्होंने दृष्टिबाधित समाज के लोगों के जीवन से जुड़े प्रत्येक पहलूओं का यथार्थ रूप में अंकन किया है। दृष्टिबाधित लोगों के जीवन-संघर्ष उनके सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, जीवन के सच को उपन्यास में चित्रित किया गया है। प्रदीप सौरभ ने अपने उपन्यास 'ब्लाइंड स्ट्रीट' में अलग-अलग पात्रों के द्वारा इनके जीवन से जुड़े प्रत्येक पहलुओं पर विस्तार से वर्णन किया है। 'ब्लाइंड स्ट्रीट' उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि, लेखक ने ऐसे सैकड़ों लोगों से मिलकर उनसे बात करके उनके अकेलेपन उनकी निराशाओं, उनके दुःख-दर्द, उनके जीवन-संघर्षों को महसूस करके लिखा है।

बीज शब्द-

प्रदीप सौरभ, दृष्टिबाधित, जीवन-संघर्ष, शिक्षा, प्रतिरोध, अकेलापन इत्यादि।

शोध-आलेख

प्रदीप सौरभ ने अपने उपन्यास 'ब्लाइंड स्ट्रीट' के माध्यम से दृष्टिबाधित लोगों के जीवन से जुड़े अनेक पहलुओं, जिनमें शिक्षा, रोजगार, अधिकार, सम्मान और इनके प्रति समाज की सोच इत्यादि का जिक्र किया है। दृष्टिबाधितों को समाज में अपमान, पीड़ा, शोषण, त्रासदी एवं अवहेलना का शिकार दिन-ब-दिन झेलना पड़ता है। दृष्टिबाधित होना समाज में दोष समझा जाता है। इनका खुद का परिवार भी इनके अंधेपन को दोषी मानता है, जब महेश के जन्म पर डॉक्टर ने बताया कि उसकी कार्निया जन्म से ही डैमेज है। वह अब ठीक नहीं हो सकती। इस बात की जानकारी होते ही महेश के पूरे परिवार को जैसे सदमा लग गया। ''इस जानकारी के बाद उसका लाड़-प्यार सब कम होने लगा था। बात जब उसके नाम रखने की आई तो उसके पिता ने बेरुखी से कहा था कि इसका नाम सूरदास रख दो।''[1] महेश के पिता द्वारा ही महेश का प्रतिकार किया जाता है।

समाज में महेश के जन्म से लेकर उसके शिक्षा, रोजगार, इत्यादि के लिए संघर्ष करना पड़ता है। भारतीय समाज में दृष्टिबाधित होना सबसे बड़ा अभिशाप है। उन्हें अनेक समस्याओं से गुजरना पड़ता है। जहाँ वह अपने परिवार से सद्भाव तो रखते हैं, किंतु अपने माँ-बाप द्वारा उन्हें किसी भी काम के लिए रोका-टोका जाता है। ऐसे ही उपन्यास में नितिन है जो पढ़ने का तो शौकीन है किंतु उसे पढ़ने के लिए मौके नहीं दिए जाते हैं। वह अपने घर का सारा काम करता, पिता के मना करने के बाद भी जंगल में उनके साथ लकड़ियाँ काटता था। जब स्कूल का प्रिंसिपल नितिन से कहता है कि वह ब्रेल लिपि सीख ले उसके बाद उसे छठी कक्षा में दाखिला मिलेगा। वह ब्रेल लिपि सीखने में लग जाता है, ''अंधापन भी उसकी इस चाहत को तोड़ नहीं पा रहा था। ब्रेल सीखने के लिए वह रोहिणी के एक ब्रेल सिखाने वाले ब्लाइंड स्कूल पहुँचा। वहां उसने ब्रेल सीखना शुरू की। वह यह सोच के ही वहाँ गया था कि ब्रेल सीखना कोई रॉकेट साइंस नहीं है। इसलिए उसने रात-दिन मेहनत कर चार दिन में ही ब्रेल सीख ली। स्कूल में उसकी सीखने की इस गति ने सबको चौंका दिया। ब्रेल सीखने के बाद वह अपने पिता के साथ लोधी रोड ब्लाइंड स्कूल गया। लेकिन प्रिंसिपल ने सीट न होने की बात कहकर अगले साल आने की उसके पिता को सलाह दी।''[2] नितिन लगातार मेहनत करके ब्रेल लिपि तो सीख लेता है किन्तु उसके इस मेहनत का फल उसे नहीं मिलता। किस तरह एक प्रतिभाशाली लड़के को दाखिले से वंचित कर दिया जाता है। नितिन की प्रतिभा के आड़े उसका दृष्टिबाधित (अंधापन) आ रहा था।

दृष्टिबाधित लोगों के प्रति समाज का नजरिया बहुत हिकारत भरा है, जब पार्वती एक व्यक्ति से रोड पार करवाने के लिए कहती है, तो वह व्यक्ति कहता है, ''करा तो सकते हैं, लेकिन कराऊँगा नहीं। उस व्यक्ति ने हिकारत के भाव से जवाब दिया, 'ईश्वर ने तुम्हारे पाप के कारण तुम्हें अंधा बनाया है। रोड पार कराकर तेरा पाप तो मैं अपने सिर पर लूँगा नहीं।''[3] दृष्टिबाधित पार्वती के मदद माँगने पर किस तरह से उसके अंधेपन को दोष दिया जा रहा है। दृष्टिबाधितों की मदद करना समाज के लोगों को पाप लगता है। अगर वह ऐसा कर देगा तो वह उसके पाप का भागीदार बन जाएगा। इस घटना से पार्वती का मन बड़ा दुखी हुआ। दृष्टिबाधितों के लिए ऐसी घटना रोजमर्रा की जिंदगी में आम हो गई है। वह उसी व्यक्ति के बारे में सोचने में लगी हुई है कि, ''क्या अंधापन इतना बड़ा अभिशाप है? क्या उसे पाप और पुण्य से जोड़कर देखा जा सकता है? दूसरे तरह की विकलांगता को लोग इस नजरिए से क्यों नहीं देखते हैं? आखिर अंधापन क्या सचमुच अभिशाप है? ऐसा क्या है देखने वालों में, जो हमारे भीतर नहीं है? हम भी तो वह सब कर लेते हैं, जो आंखों वाले कर सकते हैं।''[4]

दृष्टिबाधित लोगों के लिए समाज में अपशकुन की धारणा बनी हुई है इसलिए इनकी मदद के लिए कोई आगे नहीं आता। पार्वती इस घटना के बाद प्रण करती है कि वह कभी आरक्षण का लाभ नहीं लेगी और न किसी से मदद के लिए कहेगी। वह अपने आपको दृढ़ करके आगे बढ़ती है।

भारतीय समाज के जनमानस में दृष्टिबाधितों के लिए तिरस्कार भरा हुआ है। इनके अंधेपन के कारण इन्हें समाज में उचित सम्मान नहीं मिल पाता। पार्वती जब ट्रेन के भीतर सहयात्रियों से ब्रेल लिपि में लिखी किताबों और आडियो के विषय में जिक्र करती है तो वे उसकी बातों का मजाक बनाते हैं। ''आखिर लोग ब्लाइंडों के साथ इस तरह की हरकतें क्यों करते हैं? वह उन्हें किसी दूसरी दुनिया का क्यों समझते हैं? सामान्य इंसान की तरह व्यवहार करने में उन्हें क्यों परेशानी होती है?''[5] पार्वती यही सोचकर परेशान है कि सामान्य लोगों को हम दृष्टिबाधितों से इतनी नफरत क्यों? उन्हें क्यों अपने ही समाज के लोगों के द्वारा उपेक्षा का पात्र बनाया जाता है?

'ब्लाइंड स्ट्रीट' उपन्यास में दृष्टिबाधित लोगों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। वे शिक्षा और रोजगार जैसे हक को पाने के लिए आंदोलन तक करने को तैयार होते हैं-''आठवें दशक की बात है। पूरे देश के ब्लाइंड अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे। आर-पार की लड़ाई थी। केंद्र सरकार पर दबाव बनाने के लिए देशभर से आये ब्लाइंड जंतर-मंतर पर इकट्ठा हुए। वे अपने लिये शिक्षा और रोजगार जैसी मांगें लेकर दिल्ली आये थे। ब्लाइंड प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से मिलने की माँग पर अड़े थे। लेकिन पुलिस उनकी यह बात मान नहीं रही थी। ब्लाइंडों ने संसद की ओर बढ़ने की कोशिश की। वे बेरीकेडों से टकरा गये। उन्होंने उससे कूद कर दूसरी तरफ जाने का प्रयास किया। मामला बेकाबू हो गया। अफरा-तफरी का माहौल बना हुआ था। मौके पर मौजूद अधिकारियों को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि इनसे कैसे निपटा जाये। ब्लाइंडों का प्रदर्शन भी उनके लिए नई बात थी। उन्हें एहसास ही नहीं था कि ब्लाइंड इतने उत्तेजित और लड़ाकू हो जाएँगे। अंत में पुलिस ने लाठीचार्ज का फैसला किया था।''[6]

दृष्टिबाधित अपने न्याय के लिए आवाज तो उठा रहे थे किंतु इनकी सुनता कौन? प्रदर्शन में लाठीचार्ज के दौरान कईयों को चोट लगी, बहुतों के हाथ-पैर टूटे। शासन व्यवस्था का इतना क्रूर रूप हो गया कि दृष्टिबाधित अपने अधिकार माँगने जाएँ तो उन्हें लाठी से पीटकर भगा दिया जाता है।

भारतीय समाज में एक सामान्य धारणा बन गई है कि अंधा व्यक्ति से तात्पर्य है सूरदास वह गा, बजाकर भीख माँगने वाला व्यक्ति है। समाज इनके विषय में यही सोचता है। कभी इनके दुःख-दर्द, संघर्ष को अंदर झांककर नहीं देखने का प्रयास किया। समाज के द्वारा इन्हें हर जगह उपेक्षित किया गया। ये समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए दिन-रात संघर्षरत रहे। ''ब्लाइंड लोगों के प्रति आज भी समाज पूरी तरह असहिष्णु है। कभी वह ब्लाइंड को देवता बना देता है तो कभी निरीह।''[7]

दृष्टिबाधित लोगों को अपने सामाजिक परिवेश के लोगों के बीच संघर्ष करना पड़ता है। अंधापन होना इनके लिए अभिशाप हो गया, इनकी गिनती उन सामान्य लोगों के साथ नहीं की जाती। इनका दोष केवल इतना है कि ये अंधे हैं। इसी बात को सरीन जनसभा में कहता है-''अंधापन इतनी बड़ी समस्या नहीं है। सबसे बड़ी समस्या है उनको इंसान मानने की। उनसे इंसानों जैसा व्यवहार करने की। ब्लाइंड को सबसे ज्यादा तकलीफ इसी बात से होती है कि उन्हें सामान्य व्यक्ति की तरह नहीं समझा जाता। उनके पैदा होने पर मंदिर की सीढ़ियों, कचरों के डिब्बे और प्लेटफार्म पर फेंकने से बात नहीं बनेगी। उन्हें शिक्षित करने की जरूरत है। अपने जैसा मानने की आवश्यकता है।''[8]

समाज में स्त्रियों का शोषण, तिरस्कार, उनकी उपेक्षा हमेशा से होता आया है। इस शोषण का शिकार दृष्टिबाधित लड़कियाँ भी होती हैं समाज के लोगों द्वारा इनका शोषण किया जाता है। महिला उच्चतर अंध महाविद्यालय आनंद विहार की एक घटना है जिसमें लड़कियों के साथ हॉस्टल

में उनका शारीरिक शोषण किया जाता है। ''एक दिन जब हॉस्टल में रहने वाली दो-तीन लड़कियों ने आपस में अपनी आपबीती एक-दूसरे से साझा की, तो उनमें बेचैनी ने आकार ले लिया था। बात निकली तो दूर तलक गई। अन्य लड़कियों ने भी अपने साथ होने वाले ऐसे ही शारीरिक शोषण की बात बताई। लड़कियाँ हॉस्टल के मेस में इकट्ठा हुई और इस बारे में चर्चा की। बिंदेश्वरी ने मीटिंग में बताया, 'रात को सोते वक्त कोई आता है और जोर जबरदस्ती उसके साथ बलात्कार करता है। विरोध करने पर वह मुँह में रुमाल रखकर कहता है कि चुप रहो वरना तुझे हॉस्टल से निकलवा देंगे। सड़क पर धक्के खाती फिरोगी'।''[9] यह कोई आम घटना नहीं थी।

कॉलेज हॉस्टल में लड़कियों का इस क्रूरता के साथ शोषण हो रहा था कि वह मानसिक और शारीरिक रूप से कमजोर हो रही थी। हॉस्टल में रह रही सभी लड़कियों के साथ शारीरिक शोषण होता है। हॉस्टल की लड़कियों को डरा धमकाकर उनके साथ रोज बलात्कार होता है। राधा और रानी गुप्ता के साथ हुई घटना बहुत क्रूर थी-''कई दिन से मेरे बेड में कोई आ रहा है। वह रोज चाकू की नोक पर मेरे शरीर को नोचता घसोटता है। मेरे गुप्तांग में बहुत तकलीफ हो रही है कई दिनों से। मुझे डर लग रहा है कि कहीं कोई बीमारी तो नहीं हो गई है' रानी गुप्ता की बात तो चौंका देने वाली थी, 'मुझे कई दिनों से क्लास में नहीं जाने दिया जा रहा है। मुझे धमकाया जा रहा है। मुझसे रोज दो-तीन लोग बलात्कार कर रहे हैं।''[10] ऐसी घटनाएँ हॉस्टल की लड़कियों के साथ रोज घट रही थीं। मीटिंग में सबने अपनी-अपनी दर्द भरी दस्तान सुनाई। इस घटना के खिलाफ सुरेश साहनी और अन्य लोग जिनमें पार्वती, महेश, तनेजा, शिवतेज, सोनी गिल धरने पर बैठ गये। कॉलेज की इस घटना का दोषी प्रिंसिपल भी था। जब घटना की शिकायत पीड़ित लड़कियाँ इलाके के डीसीपी को देती हैं तो वह दरोगा को मामले को देखने का आदेश देता है, लेकिन दरोगा प्रिंसिपल से मोटी रकम लेकर इस मामले पर शांत हो जाता है। लेकिन दृष्टिबाधितों ने हार नहीं मानी तथा धरने को जारी रखा।

दृष्टिबाधितों के शारीरिक शोषण के खिलाफ लड़के हो या लड़कियाँ सभी इस आंदोलन में शामिल हो रहे थे। यह आंदोलन तीव्र होता गया। वह संसद तक जाना चाहते थे लेकिन उन्हें दिल्ली पुलिस के मुख्यालय के आगे मंडी हाउस पर ही रोक दिया गया। वे अंत तक लड़ते रहे। पुलिस ने लाठीचार्ज की। बहुत से ब्लाइंड घायल हुए। इस घटना का संज्ञान लेते हुए दिल्ली के शिक्षा मंत्री ने कॉलेज के प्रिंसिपल को निलंबित कर मामले की जांच के लिए विभाग के एक उच्च स्तरीय कमेटी को सौंप दी। ब्लाइंड के लंबे समय के संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि शिक्षा विभाग ने व्यापक स्तर पर जांच शुरू की।

दृष्टिबाधित आत्मनिर्भर रहना चाहते हैं जहाँ जरूरत हो वहीं मदद के लिए कहते हैं। इनका जीवन इतना संघर्षशील होता है कि इन्हें हर पल कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। उपन्यास का एक पात्र बाबुल जो किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहता और न ही किसी से सहानुभूति चाहता है। वह स्वयं से अपना काम करना पसंद करता है। बाबुल का सॉफ्टवेयर खराब हो जाता है तब कोयल अधिकार जताते हुए कहता है, लाओ इसे मैं ठीक कराकर दे दूँगा। लेकिन बाबुल ने उसे तुरंत मना कर दिया। वह खुद पर निर्भर रहना चाहता है इसलिए वह अपना काम स्वयं करता है। कोयल उसे जिद्दी कहता है, इस बात का जवाब देते हुए बाबुल कहता है, ''मैं खुद से कोई लड़ाई नहीं लड़ता। मेरे भीतर सब कुछ क्लियर है। मैं जानता हूँ कि मैं अपना काम स्वयं करने में सक्षम हूँ। बल्कि मैं आप जैसे लोगों को बताना चाहता हूँ कि हमें किसी सहानुभूति की बैसाखी देकर कमजोर ना बनाएँ। हमारी अपनी दुनिया आप जैसों की दुनिया से कुछ भी अलग नहीं। सिर्फ सोच का फर्क है। आप हम पर दया करते हैं और हम खुद पर विश्वास।''[11] समाज के लोग जो हमसे झूठी सहानुभूति रखना चाहते हैं। वह हमें बैसाखी देकर और कमजोर बनाते हैं। हमारी लड़ाई है हम इसे अपने विश्वास पर लड़ेंगे किसी को दया दिखाने की जरूरत नहीं।

भारतीय समाज में धर्म, ईश्वर, अंधविश्वास, जाति, संस्कृति और सभ्यता को मानने वाले लोग हैं। उपन्यास में धर्म की आस्था पर इमरान अमृता से कहता है कि मैं कभी नमाज नहीं पढ़ता, तो इस बात के जवाब में अमृता कहती है कि मैं कौन सा नवरात्रि का व्रत रखती हूँ। वह आगे कहती है- ''अंधे होने के बाद मेरा धर्म अंधापन ही है, जिसे आज भी लोग स्वीकारते नहीं हैं। समाज चाहता है कि अंधे मंदिरों में सिर्फ भजन-कीर्तन करें या भीख माँगे।''[12] समाज की सोच को अमृता भली-भांति समझती है वह जानती है कि हमारे अंधेपन का फायदा उठाकर समाज हमसे भीख माँगने का काम करवायेगा।

निष्कर्ष

प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'ब्लाइंड स्ट्रीट' जिसमें इन्होंने कथा का आधार भिन्न-भिन्न पात्रों को केंद्र में रखकर दृष्टिबाधित लोगों के जीवन का सच सामने लाया है। जिनमें महेश, पार्वती, गुंजन, मनीष, प्रताप, नितिन, सोनी गिल, सुरेश सरीन, महेश तनेजा, बाबुल, कोयल, विवेक इत्यादि पात्र हैं। इस उपन्यास में लेखक ने दृष्टिबाधित लोगों के दुख-दर्द, इनके संघर्ष, उनकी निराशाओं और अकेलेपन को बड़े ही मार्मिक ढंग से अंकन किया है। शिक्षा, रोजगार, अधिकार, शोषण के खिलाफ संघर्ष करते हैं। ये समाज में किसी के दया के पात्र न बनना चाहते हैं।

ये अपने अधिकार के लिए बराबरी चाहते हैं। ये अपने अधिकारों को पाने के लिए संघर्ष करते हैं। जिससे लोग इन्हें घृणा की नजरों से न देखें।

सन्दर्भ

1. प्रदीप सौरभ, ब्लाइंड स्ट्रीट, नई किताब प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ-9
2. वही, पृष्ठ-16
3. वही, पृष्ठ-21
4. वही, पृष्ठ-21
5. वही, पृष्ठ-60
6. वही, पृष्ठ-69
7. वही, पृष्ठ-95
8. वही, पृष्ठ-100
9. वही, पृष्ठ-124
10. वही, पृष्ठ-125
11. वही, पृष्ठ-133
12. वही, पृष्ठ-141

शिवदेव प्रजापति
पीएचडी. शोध छात्र,
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।
Email-shivdevprajapati@gmail.com
मो. 8808336994

हिंदी आलोचना में उत्तार-संरचनावाद की प्रासंगिकता

–डॉ. नीलकंठ कुमार

सारांश :

हिंदी आलोचना में उत्तर संरचनावाद की प्रासंगिकता पर बात करते हुए हमें यह देखना होगा कि क्या इनका भारत की चिंतन पद्धति से कोई मेल खाता है? यहाँ जो बात विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करने वाली है वह यह कि देरिदा का भाषा संबंधी चिंतन न केवल बौद्धों के भाषा संबंधी चिंतन से बहुत मिलता-जुलता है, बल्कि स्वयं देरिदा ने नागार्जुन के भाषा संबंधी चिंतन पर ध्यान दिया है और इसका उपयोग भी किया है। वस्तुतः देरिदा की चिंतन पद्धति पर 'यहूदीवाद' का गहरा प्रभाव है। यह 'यहूदीवाद' पश्चिम के सिद्धांतों के अनुकूल नहीं पड़ता है। हालांकि इस प्रभाव को हम सीधे-सीधे दो-दूनी चार के ढंग से नहीं जोड़ सकते, फिर भी यह तो समझ ही सकते हैं कि आखिर पश्चिमी दर्शन की परंपरा से देरिदा का इतना गहरा झगड़ा क्यों है? इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी बिंदु हैं जो हिंदी आलोचना में उत्तर संरचनावाद की प्रासंगिकता के बारे में जानने और विचार करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

बीज शब्द :

हिंदी आलोचना, उत्तर संरचनावाद, देरिदा, फूको, विचारधारा, भारतीय चिंतन परंपरा, प्रासंगिकता, विकेंद्रीकरण, रचना-पाठ, लेखक

उत्तर संरचनावाद का प्रारंभ मार्क्सवादी एवं अस्तित्ववादी सिद्धांतों के घात-प्रतिघात से सन् साठ के आस-पास होता है। वस्तुतः यह संरचनावाद का ही परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप है जिसकी अगुआई मिसेल फूको, जाक देरिदा, जूलिया क्रिस्तेवा एवं रोला बार्थ करते हैं। हालाँकि इन लोगों ने अपने आप को संरचनावादी मानने से इनकार किया है फिर भी इन पर 'संरचनावाद का हैंग ओवर' तो दिखाई ही पड़ता है। उत्तर संरचनावाद एवं हिंदी आलोचना में इसकी प्रासंगिकता को समझने के लिए हमें इनकी मान्यताओं का अलग-अलग विवेचन करना होगा। फ़िलहाल, चर्चा हम उन्हीं प्रसंगों की करेंगे जिनकी प्रासंगिकता आज हिंदी आलोचना में बनी हुई है या बनने की संभावना है।

फूको की एक बहुत प्रसिद्ध मान्यता है कि 'ज्ञान और सत्ता का बहुत गहरा संबंध होता है', नॉलेज इज पावर। अपने किसी साक्षात्कार में फूको बड़ी महत्वपूर्ण बात कहते हैं कि को भी शक्ति से बाहर नहीं है बल्कि यह पहले से ही मौजूद होती है।[1] फूको की यह मान्यता अनायास ही 'मुक्तिबोध की डायरी' की याद दिलाती है। यह 'ज्ञान और सत्ता' के संबंध का ही कमाल था कि मुक्तिबोध बहुत दिनों तक उपेक्षित बने रहे। भारतीय संदर्भ में देखें तो जो काम प्राचीन युग में ब्राह्मणों ने किया था वही काम आधुनिक युग के तथाकथित 'इंटेलेक्चुअल' कर रहे हैं; वह भी ज्ञान का ही सहारा लेकर। सोचने की यह दशा हिंदी आलोचना को एक नयी दृष्टि दे सकती है। गोया, स्त्री एवं दलित जिनको ज्ञान की ही दुहाई देकर आज तक ज्ञान से वंचित रखा गया, वे अपनी खोयी हुई अस्मिता पुनः वापस पा सकते हैं। संरचनावादियों ने रचना से लेखक को अलगाकर अपनी दृष्टि रचना पर केंद्रित की, लेकिन मिसेल फूको एवं अन्य उत्तर संरचनावादियों ने कहा कि रचना अपने आप में कोई बहुत सुनिश्चित चीज नहीं है। उसका भीतरी रूप अनेक चीजों से निर्धारित होता है। यहीं रूककर जूलिया क्रिस्तेवा की धारणा पर भी विचार कर लें। उनकी धारणा है 'पाठ का अंतरवर्ती संबंध'। उन्होंने कहा कि रचना अपने आप पूर्ण और स्वायत्त नहीं होती है बल्कि वह रचना परंपराओं से अनेक रूपों में जुड़ती है।

'राम की शक्ति पूजा' पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि 'शक्ति पूजा' पर मानस का प्रभाव है। कुछ प्रसंगों की तुलना शायद हमारी मान्यता को स्पष्ट कर सकेगा। उदाहरणस्वरूप 'नैनों का का नैनों पर गोपन' वाला प्रसंग पर 'रामहिं छवि लोचन मग आनी, दीन्हहिं पलक कपाट सयानी' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। स्वयं तुलसी ने भी स्वीकार किया है कि 'नाना पुराण निगमागमसम्मतं'। अब रचना के अर्थ की अनिश्चितता एवं पाठ के अंतरवर्ती संबंध से रचना का अर्थ

निर्मित होता है। अतः पाठक का स्थान उत्तर संरचनावाद में महत्वपूर्ण हो उठा। इसका फायदा हिंदी आलोचना में यह हुआ कि आलोचना पीछे चलने की बजाय पाठ और पाठक के बीच सक्रिय हुई। डॉ. मैनेजर पांडे के अनुसार, 'यह इसकी सीमा भी है और यही इसकी शक्ति भी।' उत्तर संरचनावादियों के अनुसार पाठ का अर्थ पाठक पर निर्भर करता है। हर पाठक अपने लिए रचना की पुनर्रचना करता है। महत्वपूर्ण यह कि हर पाठक अपनी ग्राहिका वृत्ति के अनुकूल पाठ में अर्थ खोजता है। इसी के साथ एक और धारणा जुड़ी है 'बहुवचनवाद' या 'अनेकानेकवाद' की। अर्थात हर पाठक अपने अनुसार पाठ का निर्माण करता है। हिंदी आलोचना में उत्तर संरचनावादियों की यह अवधारणा एक तरफ दलित एवं नारीवादी आलोचना को बढ़ावा देती है तो दूसरी तरफ पाठ में अर्थ की संरचनाओं को बढ़ावा देती है। उदाहरणस्वरूप महादेवी वर्मा की एक कविता है-

''मैं नीर भरी दुःख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली''[2]

इसमें कोई दलित अपनी संवेदनाओं के अनुरूप अर्थ ढूँढ़ सकता है तो कोई नारी इस जीवन जगत में अपनी स्थिति का चित्रण देख सकती है, को अस्तित्ववादी दर्शन का अनुरागी अलग विश्लेषण करेगा तो कोई मार्क्सवादी इसे किसी सर्वहारा की पीड़ा भी मान सकता है यही नहीं अतिक्रांत कर पाठ अपने पाठक को ढूँढ़ लेती है और तब साहित्य में विश्व साहित्य एवं आलोचना के क्षेत्र में विश्व दृष्टि की आवश्यकता महसूस होती है। उदाहरण के लिए अपने यहाँ आपातकाल के दौरान ब्रेख्त की एक कविता बहुत लोकप्रिय हुई थी। कविता का शीर्षक है 'समाधान'। यह कविता पूर्वी जर्मनी में 17 जून 1953 के एक जनआंदोलन के सरकारी दमन के प्रसंग से जुड़ी हुई है-

''सत्रह जून के विद्रोह के बाद
लेखक संघ के मंत्री ने एक परचा बँटवाया-
जिसमें कहा गया है कि
जनता ने सरकार का विश्वास खो दिया है
अब वह उसे कठिन परिश्रम से ही पा सकती है
क्या यह सरकार के लिए सरल नहीं होगा कि
वह जनता को भंग कर दे
और दूसरी जनता का चुनाव कर ले।''[3]

यह कविता जर्मनी की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लिखी गई है लेकिन आपातकाल में यह हिंदुस्तान में अपना पाठक ढूँढ़ लेती है। इसी प्रकार 'जन गण मन' राष्ट्रगान जार्ज पंचम के स्वागतार्थ लिखा गया था लेकिन आज इसका प्रयोग बिल्कुल भिन्न अर्थ में हो रहा है। इन सारी बातों का निष्कर्ष यह है कि उत्तर संरचनावादियों ने पाठ और पाठक के संबंध पर नए ढंग से विचार किया। इससे आलोचना की जो प्रक्रिया विकसित हुई है, उससे हिंदी साहित्य एवं आलोचना दोनों को फायदा हुआ है। मसलन 'मानस' का ही उदाहरण लें तो वैसे पाठक एवं आलोचक, जिन्हें 'राम नाम सुंदर करतारि/संशय विहग उड़ावन हारी', जैसी बातें पसंद नहीं थी उन्होंने खुलकर इसका विरोध प्रारंभ किया। उनके लिए संशय वर्णाश्रम का संशय है। दूसरी तरफ ऐसे भी पाठक एवं आलोचक हैं जो 'मानस' को हिंदू जाति को राम रसायन देने वाला मानते हैं।

रोला बार्थ का एक लेख है, 'डेथ ऑफ द ऑथर।' इसमें रोला बार्थ ने यह स्थापित किया है कि लेखक की मृत्यु के बाद ही पाठक का जन्म होगा। लेखन वह तटस्थ, समग्र और घेरावयुक्त स्थान है जहाँ हमारा विषय फिसल जाता है। यहाँ स्व की पहचान को नकार कर अथवा उसकी समाप्ति पर ही वास्तविक लेखन आरंभ होता है।[4] अभिप्राय यह है कि जब तक हम आलोचना में लेखक और उसके अभिप्राय को महत्व देते रहेंगे तब तक हम पाठक को ठीक-ठाक महत्व नहीं दे पाएँगे। यह मान्यता एक हद तक सही कही जा सकती है और आलोचना के क्षेत्र में इसका सबसे ज्यादा फायदा यह हुआ है कि विश्लेषण के केंद्र में पाठक एवं पाठ भी आ गया, बल्कि अब पाठक पहले की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया।

यह सही बात है कि किसी भी साहित्य की सार्थकता अपने पाठक तक पहुँचने में ही है। आज प्रेस के जमाने में तो यह बात और भी प्रासंगिक हो गई है। जब तक साहित्य कागज में बंद है, तब तक वह कोरा अक्षर मात्र है। आज पौराणिक युग के विपरीत जब साहित्य श्रव्य होने की बजाय लिपिबद्ध होता जा रहा है तो पाठक को महत्व देना लाजमी है। आज पूंजीवादी समाज में साहित्य एवं कला की स्थिति बदल गई है और सारा कुछ बाजार की माँग के अनुकूल होने लगा है तो ऐसी स्थिति में उत्तर संरचनावादियों की यह धारणा समसामयिक एवं प्रासंगिक दोनों हो जाती है। हालांकि, इसकी सार्थकता एवं निरर्थकता पर विवाद हो सकता है।

उत्तर संरचनावादियों की यह बात एक हद तक सही प्रतीत होती है कि कृतिकार को हटाकर कृति का मूल्यांकन करना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही कई विसंगतियाँ भी पैदा हो जाती हैं। गोया, निराला का 'मैं अकेला' और बच्चन का 'मैं अकेला' एक ही अर्थ नहीं देगा। इन कविताओं की सही अर्थ भूमि तक हम तभी पहुँच पाएँगे जब हम इन कवियों को भी ध्यान में रखें। वस्तुतः हर कवि का अपना 'काव्य संसार' होता है और उसकी अपनी 'काव्यानुभूति' भी। अनायास ही संस्कृत काव्य में कवि को

काव्य संसार का प्रजापति नहीं कहा गया है-

''अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः
यथास्मै रोचते विशव तथा विपरिवर्तते''[5]

यह महज संयोग नहीं है कि तुलसी 'मानस' को 'स्वांतः सुखाय' मानते हैं तो निराला कहते हैं-'मैंने मैं शैली अपनाई'। हां, यह अवश्य है कि इस काव्य संसार के निर्माण में बाह्य संसार का भी योगदान रहता है। यही कारण है कि तुलसी का 'स्व' - 'सिया राम मय सब जग जानी' हो जाता है और निराला का मैं, 'देखा एक दुखी निज भाई'। इन सारी बातों का निष्कर्ष यह है कि उत्तर संरचनावादियों ने पाठ एवं पाठक को केंद्र में लाया; इसलिए इसकी महत्ता से हम इनकार नहीं कर सकते।

उत्तर संरचनावादियों में सबसे प्रबल एवं प्रसिद्ध चिंतक जाक देरिदा का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण होगा। देरिदा ने साहित्य एवं आलोचना के क्षेत्र को क्रांतिकारी ढंग से प्रभावित किया। यों सुधीश पचौरी इसकी परंपरा को पीछे ले जाते हैं तथा देरिदा को भत र्हरि एवं नागार्जुन से जोड़ते हैं। स्वयं देरिदा ने भी अपने ऊपर बौद्धों के प्रभाव को स्वीकार किया है और यहीं यह आलोचना पद्धति भारतीय मानस एवं भारतीय परंपरा के अनुकूल जान पड़ती है। जो आलोचक सारे विदेशी विचारों को बेमौसम लगाए गए कलम की तर्ज पर खारिज करने की कोशिश करते हैं, उनके लिए भी यह आलोचना पद्धति एक चुनौती बनकर सामने आई है। फिलहाल देरिदा की प्रसिद्ध धारणा 'डि-सेंटरिंग' अथवा 'विकेंद्रीकरण' पर विचार करना उपयुक्त होगा।

'विकेंद्रीकरण' केवल रचना तक सीमित धारणा नहीं है। मार्क्सवाद की तरह यह समाज और संस्कृति के क्षेत्र में भी फैली हुई धारणा है। देरिदा के लिए पाठ केवल साहित्य तक सीमित नहीं है। वे समाज, संस्कृति और इतिहास की घटनाओं को भी पाठ ही मानते हैं। देरिदा का मानना है कि अगर आप रचना के केंद्र की खोज कीजिए और उसके हाशिए पर जो कुछ है उसके मूल में जाइए तो आप रचना को ठीक से नहीं समझ पाएँगे क्योंकि कई बार हाशिए पर कुछ ऐसी चीजें होती हैं, जो केंद्र से अधिक महत्वपूर्ण बन जाती हैं। पर जब आप रचना से बाहर निकाल कर केंद्र और हाशिए के संबंध को देखेंगे तो पाएँगे कि यह पूरी परंपरा की व्याख्या का भी एक दृष्टिकोण होगा। यही हिंदी आलोचना में इसकी प्रासंगिकता उद्घाटित करते हुए डॉ. मैनेजर पांडे अपने एक साक्षात्कार में सवाल उठाते हैं कि साहित्य के प्रसंग में परंपराओं की बात हिंदी में बहुत हुई है। पहले परंपरा और दूसरी परंपरा क्या कोई एक ऐसी परंपरा है जिसको 'केंद्रीय परंपरा' कहा जाएगा? क्या बाकी परंपराएं हाशिए की परंपरा होंगी? अपनी एक पुस्तक में डॉ. मैनेजर पांडे एक महत्वपूर्ण बात भी लिखते हैं जो रचना की विशिष्टता के संबंध में है। 'आलोचना की सार्थकता आलोचक की सामाजिक संवेदनशीलता, जीवन विवेक और यर्थाथ की विकासशील प्रक्रिया के बोध पर निर्भर होती है तो उसकी प्रमाणिकता आलोचक की कलात्मकता, संवेदनशीलता, साहित्य विवेक और कृति की विशिष्टता की विश्लेषण क्षमता पर निर्भर होती है।'[6]

वस्तुतः जाक देरिदा के चिंतन का संकेत इसी ओर है कि समाज में जो शासक समुदाय है, उसके जो बुद्धिजीवी हैं वे संस्कृति, साहित्य और कला के क्षेत्र में एक केंद्रीय परंपरा बनाए रखना चाहते हैं। वे संस्कृति, साहित्य और दूसरी परंपराओं को हमेशा हाशिए पर रखने की कोशिश करते हैं। जैसाकि बहुत दिनों तक हिंदी आलोचना में नाथ, सिद्धों की परंपरा एवं कबीर के साथ हुआ। वस्तुतः देरिदा की 'विकेंद्रीकरण' की धारणा उनके प्रसिद्ध सिद्धांत डि-कंस्ट्रक्शन की ही विशेषता है। देरिदा के अनुसार परंपरा भी स्वतः स्वयंभू स्वायत्त चीज नहीं है बल्कि वह भी निर्मित होती है। अगर वह निर्मित होती है तो उसकी आंतरिक असंगतियों की, उसके अंतर्विरोधों की खोज करना ही इसका डि-कंस्ट्रक्शन है।

डॉ. मैनेजर पांडे की बात को अगर ध्यान में रखें तो रामायण की तुलना में महाभारत 'डि-कंस्ट्रक्शन' के अनुकूल टेक्स्ट है। इसमें बहुत सारे चरित्र ऐसे हैं जिनकी संगति ही नहीं बैठती। अब जैसे कुरुक्षेत्र का युद्ध, धर्म युद्ध कैसे है, यह बतलाना मुि कल काम है। धर्मवीर भारती ने भी 'अंधा युग' में इसी बात की ओर संकेत किया कि उसमें आप किस पक्ष को धर्म और किस पक्ष को अधर्म की ओर कहेंगे। वे तो प्रभु की आस्था पर ही प्रश्नचिह्न उठाते हुए कहते हैं, ''आस्था लोगे तो अनास्था लेगा कौन?''[7] इसी प्रकार नाटक में एक प्रहरी कहता है-

प्रहरीः ''इसलिए सूने गलियारे में,
निरुद्देश्य,
निरुद्देश्य,
चलते हम रहे सदा
दाएँ से बाएँ
और बाएँ से दाएँ''[8]

एक अन्य प्रहरी कहता है-

प्रहरी : ''मरने के बाद भी
यम के गलियारे में
चलते रहेंगे सदा
चलते हम रहे सदा
दाएँ से बाएँ
और बाएँ से दाएँ''[9]

देरिदा इसी संगति की ओर संकेत करते हैं और इसे

खोज निकालने की आवश्यकता पर बल देते हैं। उनके अनुसार यही आलोचक का दायित्व होना चाहिए। यहाँ अगर हम मुख्यधारा की बात करें तो हमारी मान्यता कुछ ज्यादा ही स्पष्ट हो जाएगी। बात चाहे राजनीति के क्षेत्र में मुख्यधारा की हो या संस्कृति के क्षेत्र में परंपरा की हो या साहित्य के क्षेत्र में चुनी हुई रचनाओं की हो, ये सब एक खास विचारधारात्मक प्रक्रिया की देन है। डि-कंस्ट्रक्शन की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें उनकी संगति और अंतरविरोधों को उजागर करते हुए वह आलोचनात्मक चेतना जगाने का काम करती है। यहीं यह मार्क्सवादी चिंतन के अंतर्विरोध को भी अपने अंदर समा लेती है।

निष्कर्षः उत्तर संरचनावादियों ने द्वैत की मान्यता को केवल परस्पर विरोधी समझने के बदले उनके आपसी रिश्तों को भी देखने की कोशिश की और उनके लिए दो धारणाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक तो 'आईडेंटिटी एंड डिफरेंस' (अस्मिता और अंतर) और दूसरी 'आत्म और अन्य' (सेल्फ एंड अदर्स)। ये सारी धारणाएँ मूलतः रचना एवं पाठक के संबंध की व्याख्या से आई हुई हैं। इन दोनों धारणाओं को अगर हम ध्यान से रखें तो साहित्य, संस्कृति, समाज और राजनीति-इन चारों के क्षेत्र में बहुत सारे संबंधों और बहुत सारी समस्याओं की व्याख्या इनके माध्यम से हो सकती है। व्यापक रूप से यह धारणा समाज में एक समूह की अपनी अस्मिता और दूसरे समूह से उसके संबंध की भी व्याख्या करती है। अब जैसे 'आत्म' और 'अन्य' की धारणा को ही लिया जाए। सवाल यह है कि 'आत्म' का स्वरूप कैसे निर्धारित होगा। स्पष्ट है कि यह 'पर' के संबंध से ही हो सकेगा। ठीक इसी प्रकार 'पर' का स्वरूप समझने के लिए 'आत्म' को विश्लेषित करना होगा। लेकिन उत्तर संरचनावादी दोनों के मध्य उपस्थित अंतर को भी विश्लेषित कर संबंध को समझने का प्रयास करते हैं। भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर देखें तो जो केंद्रीय सत्ता है वह अपने को इस समाज का 'आत्म' समझती है और बाकी जो 'हाशिए' पर हैं, उन सब को 'अन्य' समझती है। इसलिए उत्तर संरचनावादियों की इस मान्यता का उपयोग केवल साहित्य तक ही नहीं दिखाई पड़ता है बल्कि साहित्य के बाहर संस्कृति राजनीति और समाज के क्षेत्र में भी उसका उपयोग दिखाई देता है। इस मायने में उत्तर संरचनावादियों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है क्योंकि साहित्य अब सिर्फ साहित्य तक सीमित नहीं रह गया है, इसका क्षेत्र-विस्तार हुआ है।

संदर्भः

1. Michel Foucault, Power/Knowledge: Selected Interviews and other Writings 1972-1977, Pantheon Books, New York, P. 141
   (It seems to me that power is 'always already there' that one is never 'outside' it.)
2. https://m.bharatdiscovery.org/india/
3. https://dishasandhaan.in/archives/1564
4. Roland Barthes, Image Music Text, Hill and Wang, New York, p. 142
   (Writing is that neutral, composite oblique space where our subject slips away, the negative where all identity is lost, starting with the identity of the body writing.)
5. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक
6. मैनेजर पांडे, शब्द और कर्म, धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1981, पृ. 62
7. धर्मवीर भारती, अँधा युग, www.hindisamay.com
8. धर्मवीर भारती, अँधा युग, www.hindisamay.com
9. धर्मवीर भारती, अँधा युग, www.hindisamay.com

डॉ. नीलकंठ कुमार
सहायक आचार्य
(एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली)
ईमेलः maybeneelkanth@gmail.com
फोन - 9868655131

सामाजिक सरोकारों के कवि रहीम

–डॉ. ममता चावला

कविवर रहीम जिनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था, उन कालजयी काव्य प्रणेताओं में आते हैं। जिनके काव्य ने युगों-युगों को प्रभावित किया। रहीम, भक्ति काल और रीतिकाल के संधिस्थल के कवि है। वे जहाँ एक ओर वीर योद्धा थे, वही सुयोग्य राजनीतिज्ञ थे, जहाँ एक ओर दानवीर और उदार थे तो दूसरी ओर कुशल भाषाविद्। उन्हें उर्दू, फ़ारसी, तुर्की, हिंदी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान था। वे हिंदू पुराणों और शास्त्रों के गंभीर अध्येता भी थे। उन्हें सैन्य विज्ञान, राजनीति शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र की भी महत्त्वपूर्ण जानकारी थी। कुल मिलाकर कविवर रहीम, बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि थे। उनकी इस बहुमुखी प्रतिभा को उनकी विभिन्न रचनाओं-दोहावली, नगर शोभा, बरवै नायिका भेद, शृंगार सोरठा, मदनाष्टक, खेट कौतुक जातकम में देखा जा सकता है। उनकी गणना उच्च कोटि की नीति कवियों में होती है। और उनकी लोक प्रसिद्धि का आधार उनकी सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध रचना 'दोहावली' है। जिसके कारण वे युगों-युगों तक वे जनमानस पर राज करते रहे हैं।

रहीम नीति काव्य के सम्राट कहे जाते रहे हैं। "जो स्थान संस्कृत में भर्तृहरि को प्राप्त है वही स्थान नीति अभिव्यक्ति के माध्यम से नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले और निष्ठावान हिंदू की तरह जीवन जीने वाले, मुसलमान रचनाकार रहीम को भी प्राप्त है।"[1] उन्होंने जन-सामान्य की भाषा में ही उनके हित की बात कही।

जो स्थान राम भक्ति शाखा में तुलसी जी का है, जो स्थान कृष्ण भक्ति शाखा में सूरदास जी का है, वही स्थान नीति काव्य परंपरा में रहीम जी का भी है। रहीम के काव्य में नीति का मूलाधार उनके गहन जीवन के अनुभव और सामाजिक जीवन के प्रति उनका लगाव कहा जा सकता है।

इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा है-"संसार का इन्हें बड़ा गहरा अनुभव था। ऐसे अनुभवों के मार्मिक पक्ष को ग्रहण करने की भावुकता इनमें अद्वितीय थी। अपने उदार ऊँचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच में रखकर जो संवेदना इन्होंने प्राप्त की है उसी की व्यंजना इन्होंने अपने दोहों में की है।"[2] उनका यह व्यवहारिक ज्ञान शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के लोगों में कहावतें के रूप में प्रयुक्त होता है।

रहीम के काव्य में भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा का भाव एवं लगाव नज़र आता है। उन्होंने हिंदू धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन पाठन में, अपनी विशेष रुचि दिखाई है। वह हिंदू संस्कृति की उदारता के कायल थे। मानव जीवन को संस्कारित करने वाली संस्कृति की सभी पक्षों का सुंदर प्रस्तुतीकरण हमें उनके काव्य में मिलता है।

समाज एक ऐसी संस्था है जिसका निर्माण मनुष्य करता है। समाज एवं मनुष्य का संबंध अन्योन्याश्रय है। दोनों ही एक स्थिति तक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। समाज का उद्देश्य मनुष्य के जीवन को खुशहाल बनाना है। और दूसरी और मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक से एक सभ्य समाज की स्थापना करता है। इसी सभ्य समाज की रचना के लिए मनुष्य जीवन में आदर्शों का आग्रही रहा है। आज भी समाज में दया, क्षमा, करुणा, श्रद्धा और मानवतावादी व्यक्तियों को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। रहीम ऐसे ही आदर्श समाज की प्रणेता के रूप में हमारे सामने आते हैं। "उन्होंने समाज के मर्यादावादी स्वरूप को ही वाणी प्रदान की है। यहाँ तक कि उनके शृंगारी रचनाओं में भी मर्यादाहीनता की स्थिति दिखाई नहीं देती।"[3]

रहीम ने अपने काव्य में उन नैतिक आदर्शों, मान्यताओं का वर्णन किया है जो हमें सदाचारी और विनम्र बनाती हैं। वे मनुष्य को हमेशा विनम्र बने रहने की सलाह देते हैं क्योंकि घमंड से वह केवल स्वयं की ही हानि करता है। उनका मानना है कि लघु होकर चलने से ही, ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने शिष्टाचार एवं कोमल मधुर स्वभाव

को भी मनुष्य के लिए अपरिहार्य माना है।

हमारा व्यवहार ही हमारे व्यक्तित्व को बनाने और बिगाड़ने वाला होता है। जिन लोगों का काम दूसरों के जीवन में कड़वाहट घोलना होता है, ऐसे लोगों को दंडित करना, रहीम अनिवार्य समझते हैं।

'खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए, मुखन को, चाहिए इहै सजाय।'[4]

परिवार, समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है। वह हमारे जीवन की नींव है। माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन, परिवार के इन सभी सदस्यों का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। परिवार हमारे सर्वांगीण विकास के लिए अपरिहार्य है। परिवार हमारी शक्ति और आंतरिक ऊर्जा का केंद्र है। एक स्वस्थ समाज का निर्माण तभी होता है, जब एक परिवार अपने आचार-विचार के द्वारा, एकता के सूत्र में बंध कर रहना सीख चुका होता है। परिवार एक ऐसी इकाई है जिसमें किसी भी सदस्य पर विपत्ति आने पर, बाकी सभी सदस्य उसके साथ खड़े होते हैं। अपने काव्य में कविवर रहीम गुरु, माता-पिता एवं बुजुर्गों का सम्मान करने की बात भी करते हैं। उनका मानना है कि बड़ों का आशीर्वाद आपके लिए उन्नति की ओर न जाने कितने रास्ते खोल देता है। रहीम का मानना है कि पारिवारिक एकता में ही सच्ची शक्ति छिपी हुई है।

'आवत काज रहीम कहि गाढ़े बंधु-सनेह।
जीरन होत ना पेड़ ज्यों, थामे वरै बरेह।'[5]

आज के आधुनिक भौतिकतावादी युग में हम अपने सामाजिक-पारिवारिक संबंधों को तोड़ते जा रहे हैं। हमारा झूठा अभिमान, हमें झुकने नहीं देता परिणाम स्वरूप अकेलापन हमारी नियति बनता जा रहा है। रहीम का मानना है कि जो अपने हैं, वही हमारी सच्ची शक्ति है। उनसे हमें हमेशा मेल-जोल बनाए रखना चाहिए। अगर कोई हमसे रूठ भी जाए, तो उसे ठीक उसी प्रकार से मना लेना चाहिए जैसे मोतियों के हार के टूट जाने के बाद, हम फिर से मोतियों को चुनकर हार में पिरो लेते हैं।

'टूटे सुजन मनाइ, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार।'[6]

रहीम जीवन में कर्मों को बहुत महत्त्व देते हैं। उनका मानना है पुरुषार्थ विहीन जीवन व्यतीत करने की बजाय, खुले मैदान में रहकर अनेक कष्ट सहने वाला व्यक्ति अधिक श्रेष्ठ है। रहीम पुरुषार्थ और पुरुषार्थहीन व्यक्तियों की तुलना केले और करील से करते हुए कहते हैं कि सुंदर पत्तों वाला तथा अच्छे ढील-ढोल वाला केला यदि अपने घर पर ही घुसा रहे तो वह किसी के काम नहीं आएगा लेकिन उसकी विपरीत बिना पत्ते वाले करील का फल, उस केले से अच्छा, जो सबको आसानी से प्राप्त तो हो जाते हैं।

'जो घरही में घुसि रहै, कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनते भले, पथ के अपत करील।'[7]

वह जीवन में पुरुषार्थ और भाग्य दोनों को ही महत्त्व देते हैं। उनका मानना है कि इंसान जन्म से कुछ भी लेकर नहीं आता। वह इस जीवन में जो कुछ भी प्राप्त करता है, अपने कर्मों के कारण ही करता है।

'यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत ना कोय।
बैर, प्रीत, अभ्यास, जस, होत होतही होय।'[8]

मनुष्य के सफल जीवन यापन के लिए उन्होंने बहुत से गुणों की चर्चा की है। लेकिन साथ-साथ उन्होंने यह भी माना है कि हमें कभी-भी किसी चीज की अति नहीं करनी चाहिए। अति किसी भी चीज की हो, उसका परिणाम हमेशा बुरा ही होता है।

'रहिमन अती न कीजिए, गहि रहि, निज कानि।
सैंजन अति फुलै तऊ, डार पात की हानि।'[9]

रहीम को मानव की प्रकृति, उसकी गतिविधियों और उसके व्यवहार को परखने की अनोखी शक्ति प्राप्त थी। उन्होंने अपने जीवन में आए अच्छे-बुरे सच्चे-झूठे, सज्जन-दुर्जन, विभिन्न स्वभाव के लोगों के सान्निध्य से बहुत कुछ सीखा और नीच प्रकृति की लोगों से वैर और प्रीति दोनों को ही समान रूप से हानिकारक माना।

'रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
कांटे चाटै स्वान के, दोऊ भांति विपरीत।'[10]

उन्होंने जीवन में सत्संगति को महत्त्वपूर्ण माना है। उनका मानना था - जैसा संग वैसा रंग।

'कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वॉति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।'[11]

दुष्प्रवृत्ति वाले मनुष्य के साथ रहकर मनुष्य स्वयं भी उसी की तरह हो जाता है। उसकी स्थिति ठीक वैसे हो जाती है, जैसे काला बर्तन हाथ में लेने से, हमारे शरीर पर उसकी कालिमा लग जाती है।

'रहिमन उजली प्रकृत को, नहीं नीच को संग।
करिया वासन कर गहे, कालिख लागत अंग।'[12]

उनका मानना है कि कुसंग से हमारा सम्मान और भी कम हो जाता है।

प्रेम मानव जीवन का सार है वह खूबसूरत एहसास है जो हमारे जीवन को खुशियों से भर देता है यह परिणीति है, हर एक मानव संबंध की। प्रेम प्राप्त करने के पश्चात ढाक के तीन पात भी कल्पवृक्ष एवं स्वर्ग का सुख प्रदान करने लगते हैं। अतः यदि प्रेमी का सान्निध्य प्राप्त हो जा, तो बैकुंठ का सुख भी कुछ नहीं है। प्रेम की इसी महत्त्व को बताते हुए रहीम जी कहते हैं।

'कहा करौ बैकुंठ ले, कल्पवृक्ष की छांह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल पीतम बांह।'[13]

प्रेम की जीवन में किसी महत्ता के कारण रहीम ने सच्चे दिल से प्रेम करने की प्रेरणा दी है। उनका मानना है

कि प्रेम में हृदय का सौदा हृदय से होता है। इस व्यापार में किसी दिखावे की गुंजाइश नहीं होती। मुख से कुछ कहना और हृदय में कुछ और रखना प्रेम व्यापार के लिए घातक है। प्रेम में केवल सहज एवं निश्चल भाव की आवश्यकता होती है। खीरे की सी स्थिति प्रेम की घोर शत्रु है। खीरा ऊपर से देखने पर सुंदर, आकर्षक सब प्रकार से एक तथा गोल मटोल दिखता है किंतु अतः निरीक्षण करने पर उसके हृदय में तीन-तीन फांके मिलती हैं। ऐसा व्यवहार प्रेम के लिए बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है। रहीम जी कहते हैं-

'रहिमन प्रीति न कीजि, जस खीरा के कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फांके तीन।'[14]

रहीम कहते हैं की प्रेम का मार्ग अत्यंत कठिन है यह सब के बस की बात नहीं-

'रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलीबो पावक मांहि।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नांहि।'[15]

प्रेम का संबंध बहुत नाजुक संबंध होता है। प्रेम में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रेम में कभी भी फूट ना पड़े नहीं तो प्रेम में सदा के लिए गांठ पड़ जाती है.

'रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गांठ पड़ जाय।'[16]

रहीम ने अपने जीवन में बहुत से उतार-चढ़ाव देखे हैं अपनी इन्हीं ठोस एवं यथार्थ अनुभवों की आधार पर उनकी यह धारणा थी कि अर्थ अर्थात् धन के अभाव में यह जीवन निरर्थक एवं निर्मूल्य है। मानवीय संबंधों की तो बुनियाद ही धन है। जब तक आपके पास धन होता है तब तक आपका सम्मान होता है। धन समाप्त होने के बाद आपको कोई पूछता भी नहीं है।

'रहिमन निज संपति बिना, कोउ न विपत्ति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहि रवि सकै बचाय।'[17]
'कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपत्ति-कसौटी जे कसे, सोही सांचे मीत।' [18]

अन्यत्र भी वह कहते हैं -

'जब लगि वित्त ना आपुने, तब लगी मित्र ना कोय।'[19]

धन मनुष्य को शक्ति एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाला है। पर इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि अर्थ की साधना धर्मानुसार होनी चाहिए अन्यथा यह व्यक्ति के जीवन को निम्न स्तरीय बनाकर मानवीयता से रहित कर सकती है। उनका मानना है कि गलत तरीके से कमाया हुआ धन कभी काम नहीं आता अथवा नष्ट हो जाता है।

'रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार।'[20]

उदात्त जीवन दर्शन एक सभ्य समाज के लिए बहुत आवश्यक है। लेकिन कभी-कभी हमें परिस्थितियों एवं परिवेश को देखकर कुछ व्यावहारिक निर्णय भी लेने पड़ते हैं। रहीम 'व्यवहारिकता के गुरु' कहे जा सकते हैं। वह अपने काव्य में मनुष्य को सदैव व्यावहारिकता का पाठ पढ़ाते हैं। क्योंकि व्यवहारिकता से जीवन सहज एवं सौम्य बनाया जा सकता है। उनका मानना है कि अगर किसी से नजदीकी भी रखनी है, तो उससे उतनी ही नजदीकी रखें कि आपके आत्मसम्मान को ठेस ना लगने पाए। सबसे अपना व्यवहार अच्छा रखें सब का सम्मान करें न जाने कब कौन काम आ जाए। कभी किसी का अपमान ना करें।

'रहिमन देखि बड़ेन को, लघु ना दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करें तरवारि।'[21]

रहीम का मानना है कि यदि हमें किसी के अधीन होकर कार्य करना पड़ता है तो हमें उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। रहीम राजाश्रय में रहते थे और ऐसे में इस प्रकार की रीति का पालन आवश्यक था। वे कहते हैं यदि राजा दिन को रात कहते हैं तो उसकी बात को स्वीकार करके उसे आकाश तारों का समूह दिखाना चाहिए।

'रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव।
जो नृप वासर निसि कहै, तौ कचपची दिखाव।'[22]

रहीम भावुक होकर किसी पर अंधा विश्वास करने के लिए भी मना करते हैं। वे सलाह देते हैं कि सांप, घोड़ा, राजा, स्त्री, हथियार और अपना सेवक इन सबको बहुत संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि इन्हें धोखा देते हुए देर नहीं लगती। अपना हथियार कभी-कभी अपने आप को भी चोट पहुँचा देता है आपकी अपनी स्त्री आपके साथ विश्वासघात कर सकती है और आपका राजा भी आपको हानि पहुँचा सकता है।

'उरंग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथिआर।
रहिमन इन्हें संभारिए, पलटत लगै ना बार।'[23]

रहीम हमें पाखंडी और धोखेबाज व्यक्ति से दूर रहने के लिए कहते हैं। उनका मानना है कि यह जरूरी नहीं है कि जो व्यक्ति झुका हुआ है वह अवगुण से रहित है। कुछ लोग ऊपर से दिखाने के लिए, दिखावे का आचरण भी करते हैं।

'जो रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर, कमान के, नए ते अवगुण होय।'[24]

धर्म और समाज का गहरा संबंध है। धर्म समाज को स्थिरता देता है लेकिन समाज विरोधी शक्तियों ने हमेशा इसका उपयोग मानवता के खिलाफ विभिन्न धर्मों में नफरत की भावना फैलाने के लिए किया है। ऐसे में रहीम की 'सर्वधर्म समभाव' की भावना हमें धार्मिक कट्टरताओं की बेड़ियों को तोड़, केवल मनुष्य धर्म को मानने के लिए प्रेरित करती है। उनके काव्य में हम ऐसे समाज की कल्पना पाते हैं, जहाँ सभी धर्मों का सम्मान हो, मनुष्यता का प्रसार हो और समाज पारस्परिक कट्टता से मुक्त हो। धार्मिक उदारता के कारण रहीम के मन में सभी धर्मों के

लिए सम्मान की भावना थी। हिंदू देवी देवताओं का गुणगान, कृष्ण और राम के प्रति उनकी सच्ची भक्ति, उन्हें तुलसी के समान ही एक सच्चे भक्त कवि के रूप में प्रतिष्ठापित करती है। रहीम की भगवान कृष्ण में अटूट श्रद्धा और विश्वास है। उनका विश्वास था कि उनके माखन चोर के होते हुए कोई उनका बाल भी बांका नहीं कर सकता।

'रहिमन को कोउ का करै, ज्वारि, चोर लबार।
जो पत-राखन-हार है, माखन-चाखन हार।'[25]

रहीम के काव्य की इसी विशेषता को देखते हुए डॉक्टर बच्चन सिंह कहते हैं कि उनके काव्य में- "सुदामा, भृगु, हनुमान, लक्ष्मी, गंगा, रावण आदि के अनेक संदर्भ जहाँ-तहाँ जड़े पड़े हैं। रहीम की विशेषता यह है कि इन संदर्भों को वे अनुभूत जीवन से जोड़कर नए मानवीय मूल्य की सृष्टि करते हैं। इन मूल्यों की ओर उनके आकर्षण का एक कारण यह भी हो सकता है कि जिस छद्म भरे समाज में वे रह रहे थे। उनके यहाँ ये अनुपस्थित थे।"[26]

मूल्य विघटन के आज की दौर में उनका काव्य हमारे जीवन को एक नए उत्साह के साथ, जीवन के प्रति हमारे विश्वास को दृढ़ बनाता है। आज जीवन में हम आदर्शों और मूल्यों से कुछ दूर होते चले जा रहे हैं। इसी का दुष्परिणाम है कि देश में अपराध का ग्राफ बढ़ता जा रहा है। राक्षसी प्रवृत्तियाँ दिन प्रतिदिन विकराल होती जा रही है। उनके बताए रास्ते पर चलकर हम खुद को ऊपर उठा सकते हैं और साथ ही साथ अपने समाज को भी उदात्त महान और गौरवशाली बना सकते हैं। ''रहीम ने एक ऐसी सार्वभौमिक, सर्वकालिक नीति का उदाहरण पेश किया है, जिसे वैश्वीकरण की भावना या ग्लोबलाइजेशन से ज़्यादा कुछ और नहीं कह सकते आज रहीम अंतरराष्ट्रीय साहित्य शिक्षण के संदर्भ में प्रासंगिक ही नहीं, आवश्यक हो गए हैं।"[27]

अतः हम कह सकते हैं कि रहीम ने एक उत्कृष्ट कवि के उत्तरदायित्व को निभाते हुए भारतीय समाज और संस्कृति को, संस्कारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। रहीम के काव्य में सर्वजन सुखायः और बहुजन हिताय की आकांक्षा, उनकी लोक कल्याणकारी दृष्टि, जीवन की विषम परिस्थितियों में भी हमारे मार्ग प्रशस्त करने में समर्थ है। रहीम का काव्य, नई पीढ़ी को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संस्कारित करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जन-जन के कंठ में वे आज भी जीवित है और हमेशा जीवित रहेंगे।

संदर्भ

1. रहीम आधुनिक संदर्भ : संपादक बेला बैनर्जी, पृष्ठ-283, केंद्रीय हिंदी संस्थान
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-217, प्रभात प्रकाशन
3. रहीम काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. मंजू शर्मा, पृष्ठ-142, साहित्य रत्नालय प्रकाशन कानपुर
4. रहीम रत्नावली मयाशंकर याज्ञिक बी.ए., दोहा संख्या 45, पृष्ठ-109, साहित्य-सेवा-सदन बुलानाला, काशी
5. वही, दोहा संख्या 13, पृष्ठ-2
6. वही, दोहा संख्या 85, पृष्ठ-113
7. वही, दोहा संख्या 70, पृष्ठ-111
8. वही, दोहा संख्या 153, पृष्ठ-119
9. वही, दोहा संख्या 160, पृष्ठ-120
10. वही, दोहा संख्या 169, पृष्ठ-121
11. वही, दोहा संख्या 22 पृष्ठ-107
12. वही, दोहा संख्या 168, पृष्ठ-121
13. वही, दोहा संख्या 38, पृष्ठ-108
14. वही, दोहा संख्या 207, पृष्ठ-124
15. वही, दोहा संख्या 217, पृष्ठ-125
16. वही, दोहा संख्या 198, पृष्ठ-124
17. वही, दोहा संख्या 201, पृष्ठ-124
18. वही, दोहा संख्या 31, पृष्ठ-108
19. वही, दोहा संख्या 58, पृष्ठ-110
20. वही, दोहा संख्या 231, पृष्ठ-127
21. वही, दोहा संख्या 197, पृष्ठ-124
22. वही, दोहा संख्या 188, पृष्ठ-123
23. वही, दोहा संख्या 14, पृष्ठ-106
24. वही, दोहा संख्या 154, पृष्ठ-संख्या 119
25. वही, दोहा संख्या 175, पृष्ठ-121
26. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : डॉक्टर बच्चन सिंह, पृष्ठ-161, राधा कृष्ण प्रकाशन
27. रहीम का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ॰ मंजू शर्मा, पृष्ठ-180

डॉ. ममता चावला
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

देश विभाजन का संदर्भ और राजी सेठ की कहानियाँ

–प्रणय प्रकाश

शोध सार

आधुनिक हिंदी महिला कथा साहित्यकारों में राजी सेठ का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने कथा साहित्य की विधाओं यथा-कहानी एवं उपन्यास के माध्यम से अपनी संवेदनापूर्ण लेखन का परिचय दिया है। उनकी रचना-संसार में घर-परिवार की आंतरिक समस्याओं एवं स्त्री-पुरुष के संबंधों पर प्रमुखता से प्रकाश डाला गया है, परन्तु इसके साथ-साथ वह अपनी रचनाओं में अपने परिवेश तथा अपने देशकाल में घटित हो रहे घटनाओं को भी उजागर करती है। इसी कारण से वह अपने समय की महत्वपूर्ण और त्रासद घटना देश-विभाजन पर भी पैनी नजर रखती है तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से उस समय के समाज एवं व्यक्ति के जीवन में आए उतार-चढ़ाव को चित्रित करती हैं इस आलेख के माध्यम से हम उनकी कहानियों में चित्रित देश-विभाजन की घटना एवं उसके प्रभाव को जानेंगे।

बीज शब्द

देश विभाजन, कहानी, राजी सेठ, विस्थापन, पीड़ा, शरणार्थी

शोध आलेख

देश-विभाजन की घटना विश्व के इतिहास में घटित मानवीय त्रासदी की कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में से एक घटना के रूप में अंकित है। एक ऐसा देश जो अपने गौरवशाली धरोहर, मिली-जुली संस्कृति एवं समावेशिता के लिए भूपटल पर प्रसिद्ध था, वह आखिरकार दो हिस्सों में बँट गया। इस घटना ने समाज के लगभग सभी पहलुओं पर अपना प्रभाव डाला। साहित्य भी समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू है। समाज में हो रही घटनाओं का तथा उनके प्रभावों का साहित्य में मार्मिक एवं विशदतापूर्ण व्याख्या की जाती है। डॉ. श्यामसुंदर दास कहते हैं कि- ''साहित्य मन और स्वभाव की उपज है। इसलिए, जिन बातों का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव और मनुष्य के जीवन पर पड़ता है उनका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है।''[1] देश विभाजन की घटना को आधार बनाकर हिंदी साहित्य में भी कई साहित्यकारों ने रचनाएँ की, जिसमें राजी सेठ का नाम भी अग्रणी साहित्यकारों में आता है। उनका जन्म 1935 में नौशेहरा छावनी में हुआ, जो वर्तमान में पाकिस्तान का हिस्सा है। स्पष्ट है कि इतने बड़े मानवीय त्रासदी का प्रभाव राजी सेठ पर अत्यंत गहरा पड़ा होगा। उन्होंने इस घटना को आधार बनाकर अपनी लेखनी चलाई। देश विभाजन को आधार बनाकर उन्होंने मुख्य रूप से चार कहानियाँ लिखीं- मुलाकात, रूको, इंतजार हुसैन, बाहरी लोग तथा किसका इतिहास। इन कहानियों के माध्यम से उन्होंने मुख्य रूप से देश-विभाजन के पश्चात् व्यक्ति और समाज में परिलक्षित हुए बदलावों का मार्मिक चित्रण किया है।

देश-विभाजन की घटना ने व्यापक स्तर पर लोगों से अपना बना-बनाया घर छीन लिया तथा उन्हें शरणार्थी कैंपों में अनिश्चित काल तक रहने को मजबूर कर दिया। राजी सेठ की कहानी 'मुलाकात' भी एक ऐसे ही अधेड़ावस्था पार कर चुके व्यक्ति के पीड़ा का चित्रण है जो देश-विभाजन में अपना घर-बार सब छोड़कर शरणार्थी कैंपों में रहने को मजबूर है। एक ऐसा खुद्दार व्यक्ति जो इतनी बड़ी त्रासदी के बाद भी, अपना सबकुछ लुटने के बाद भी स्वाभिमान से भरा हुआ है। वह अपने जीवन-यापन के लिए खपच्चियाँ बीनकर तथा उसका बंडल बनाकर गुजारा करता है तथा रोजगार के लिए जिलाधिकारी के पास काम माँगने जाता है, परन्तु काम माँगने के समय भी अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं करता है। जिलाधिकारी जब उसे पूछता है कि- ''क्या चाहिए?'' तो वह कहता है कि- ''यही कोई छोटा-मोटा काम... जिससे गुजारा हो जाए। आजकल इतनी चीजों पर राशन है... वैसी कोई दुकान।''[2] उस पर जिलाधिकारी उसे सांत्वना देते हुए गुजारा करने हेतु कुछ पारितोषिक देता है, परन्तु वह उसे अस्वीकार करते हुए कहता है कि- ''गुजारा नहीं चाहिए... काम चाहिए।''[3] इतने स्वाभिमानी आदमी को देखकर रामदयाल त्रिपाठी (जिलाधिकारी) भी सोचने लगते हैं कि- ''इस समय. . इस तरह... सामने फोड़े से फूटते इस अजीब आदमी को देखकर पता नहीं क्या सोच रहे होंगे। इतना लहीम-शहीम; इतना खुद्दार आदमी... उनके सामने बैठा... इस तरह फफक-फफककर... उन्होंने ऐसा कुछ कहा तो नहीं था...

दुत्कारा-फटकारा भी नहीं था... फिर क्यों... फिर क्यों?''[4] इस तरह ये 'मुलाकात' सदा उनके मानस पटल पर अंकित हो जाने वाला था।

राजी सेठ की विभाजन केन्द्रित कहानियों में विभाजन की परिस्थितियों पर ज्यादा प्रकाश डाला गया है अर्थात् विभाजन के पश्चात् एवं समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को ध्यान में रखकर रचनाएँ की गई हैं। इस कड़ी में उनकी अन्य कहानी है- रूको, इंतजार हुसैन। यह कहानी पूर्वदीप्ति (फ्लैशबैक) शैली में लिखी गई है। इस कहानी का नायक विभाजन पर लिखी गई किताबों के माध्यम से अपनी यादों को ताजा करता है तथा उन किताबों को पढ़ते हुए अपने आप को उसमें शामिल करता है- ''वह शहर में घूमते शरणार्थियों के काफिले के बारे में पढ़ रहा है और मन में गड्डमड्ड हो रही है। लाहौर से बाहर जाते काफिलों में वह खुद भी शामिल हो रहा है। यहाँ वॉल्टन कैंप है तो वहाँ डीएवी कॉलेज का कैंप था।''[5] यह कहानी रोशन और निक्की की अधूरी प्रेम कहानी है जिसमें अंत में विभाजन की घटना ने दोनों को जुदा कर दिया है। उस समय ऐसी हजारों प्रेम कहानियाँ थीं जो एक घटना (विभाजन) के कारण लाचारी और बेबसी के दलदल में फँसकर अपना दम तोड़ देती है। अतः राजी सेठ की यह कहानी उन हजारों प्रेम-संबंधों को अभिव्यक्ति देने वाली प्रतिनिधि कहानी की तरह है।

विभाजन की घटना एक ऐसी ऐतिहासिक घटना थी जिसमें समाज के लगभग सभी वर्ग, जाति एवं धर्म के लोग किसी-न-किसी रूप में प्रभावित हुए। एक ऐसा देश जो सदियों से अपनी समावेशिता के लिए विश्व-प्रसिद्ध था, अंततः दो हिस्सों में बँट गया। प्रियंवद इस घटना का जिक्र करते हुए कहते हैं कि-''अपने प्राचीन इतिहास, मिश्रित परंपराओं और सीमाओं का अक्षुण्ण रखने वाला देश अंततः 1947 में दो हिस्सों में बाँट दिया गया।''[6] इसका कारण जो भी रहा हो, परन्तु समाज का सभी वर्ग इस त्रासदी से प्रभावित हुआ। राजी सेठ की अगली विभाजन केन्द्रित कहानी 'बाहरी लोग' में एक ऐसी वृद्ध महिला के मनोदशा का चित्रण किया गया है जो विभाजन की घटना से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुई है। इस घटना में उसका पूरा परिवार प्रभावित हुआ है। रावलपिंडी से बचते-बचाते वह अमृतसर पहुँच जाती है। प्रचंड गोलीबारी में भी उसका पति किसी तरह बच जाता है, परन्तु तीन-चार साल पहले उसका देहांत हुआ है और फिलहाल अवस्था अवस्था यह है कि उसका बेटा देर रात तक काम से वापस नहीं लौटा है। और वह घर में अकेली उसका इंतजार कर रही है। सामान्य नजरिए से देखने पर यह घटना अत्यंत सामान्य और मामूली लग सकती है परन्तु जब हम यह देखते हैं कि एक ऐसी वृद्ध महिला, जो विभाजन जैसी अमानुषिक घटना की शिकार हुई तथा कुछ दिन पहले ही उसने अपना पति खोया है तो यह घटना सामान्य नहीं लगेगी। उस पीड़िता के मन में उठ रहे हलचलों को अभिव्यक्त करने के लिए लेखिका कहती हैं- 'दूसरी बातें तो अनेक हो सकती हैं- बाढ़, भूकंप, अणु-बम, उग्रवाद, ओले, आग इन घाटियों और शिखरों के बीच और भी कितना कुछ हो सकता है, पर इस समय तो एक ही भँवर है...एक माँ है...एक बेटा है.. परदेश है... आधी रात है... जोखिम है... अँधेरा है और वह अभी घर नहीं आया। वह एक। वही एक।''[7] इस बात से उस पीड़िता की मनोस्थिति को समझा जा सकता है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने यह प्रयत्न किया है कि जो व्यक्ति इतनी बड़ी त्रासदी का प्रत्यक्ष गवाह बने हैं, वही इसके मनोवेग को समझ सकते हैं। इस कहानी में 'बाहरी लोग' का संदर्भ भी उन्हीं लोगों से है जो इस घटना के प्रत्यक्ष गवाह नहीं थे और इस घटना को लेकर उनके अंदर वैसी संवेदना भी नहीं दिखाई पड़ती है। वह संवेदना न तो उसके बेटे 'काका' में दिखाई देती है और न ही उसके अन्य पड़ोसियों में।

इसी कड़ी में उनकी अगली कहानी है- 'किसका इतिहास'। इस कहानी में भी यह दिखाया गया है कि जो व्यक्ति इस त्रासदी से नहीं गुजरा है वह इसकी पीड़ा को महसूस नहीं कर सकता है। देश का विभाजन सांप्रदायिक आधार पर हुआ था। दो ऐसी कौम, जो हजारों वर्षों से एक ही समाज अपनी-अपनी मान्यताओं के साथ अंतर्भुक्त रूप से साथ रह रही थी, अचानक उनको अलग करने की बात की गई तथा एक-दूसरे से खतरा महसूस होने लगा तथा अंततः उसका परिणाम विभाजन हुआ। इस घटना की टीस लोगों के मन पर ऐसी छाप छोड़ी कि जिसका असर बाद में तथा वतमान समय में भी देखा जा सकता है। परन्तु इसके बावजूद भी समाज में अभी भी उनके बीच भाईचारा तथा संबंध पूरी तरह से खत्म नहीं हुआ है। राजी सेठ की कहानी 'किसका इतिहास' इसी द्वंद्व को चित्रित करने वाली कहानी है। यह कहानी है अतुल और शमीम के अंतरधार्मिक प्रेम संबंधों का तथा उसके विवाह में आने वाले अड़चनों का। अतुल एक ऐसे परिवार का लड़का है जो विभाजन का प्रत्यक्ष रूप से पीड़ित था। उस घटना ने उस परिवार का सब कुछ छीन लिया। जिससे उस परिवार के मन में एक प्रकार संदेह बना रहता है, वहीं अतुल उस घटना का भुक्तभोगी नहीं है तो उसे सिर्फ अपना प्रेम दिखता है। इसी बात को लेकर पिता-पुत्र में ठनी रहती है- ''दोनों अटल थे अपनी-अपनी जगह पर। बाऊजी अपनी बात पर- शमीम इस घर में नहीं आएगी, और भैया- आएगी तो बस शमीम ही आएगी और कोई नहीं।''[8] बेटा घर छोड़कर जाने की धमकी भी देता है। तथा अंत में एक बूढ़ा, लाचार और बेबस पिता पुत्रमोह में मोहाविष्ट होकर

उसकी बात मान लेता है, परन्तु दोनों के बीच द्वंद्व बना रहता है। तथा अपनी बेटी को समझाते हुए कहता है कि- ''तू क्या समझाएगी.. और वह भी क्यों समझेगा? आखिर यह मेरा इतिहास है, उसका नहीं। वे मेरे जख्म थे, उसके नहीं, यह दर्द भी मेरा ही है, बस मेरा। इसे मेरे पहलू में खड़ी मेरी हमसफर पीढ़ी ही समझ सकती है, भावी नहीं... जा! कह दे उससे।''[9] सच ही कहा है उसने जिसका इतिहास होगा, वह अन्य लोगों से बेहतर समझेगा। विभाजन की घटना एक ऐसा निर्णय था जो लिया तो सबकी खुशहाली के लिए गया था, परन्तु इसके भुक्तभोगी ही इसके बारे में बेहतर बता सकते हैं कि यह निर्णय कैसा था। देश विभाजन के निर्णय को लेकर प्रियंवद कहते हैं कि- ''यह निर्णय देश के इतिहास और सभ्यता के संदर्भ में लगभग उतना ही महत्वपूर्ण और उसी प्रकृति का, 'काल को खंडित करने वाला निर्णय' था, जहाँ से सभ्यताएँ और समाज या तो तत्काल आत्महत्या की ओर मुड़ जाते हैं या धीरे-धीरे आत्मविनाश की ओर या फिर अविश्वसनीय तरीके से जड़ता को तोड़कर उन्नति कर जाते हैं।''[10] अर्थात् दोनों सभावनाएँ बनी रहती हैं राजी सेठ की विभाजन आधारित कहानियों का अध्ययन कर यह अनुभव होता है कि अपने परिवेश को गहराई से जीते हुए उन्होंने उसका सटीक शब्दांकन किया है। तरसेम गुजराल ठीक ही कहते हैं कि- ''राजी सेठ जैसी मानवीय संवेदना को समर्पित कथाकार कथा-रचाव में इतिहास का इतिवृत्त या उत्खनन प्रस्तुत नहीं करती। परन्तु घटनाओं/दुर्घटनाओं के दबाव में मनुष्य जाति के भीतरी बदलाव का साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए मुस्तैद रहती है तथा समय को शब्दशः जीने की चेष्टा में रहती है।''[11]

निष्कर्ष

विभाजन की घटना को आधार बनाकर कई रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई है तथा उनका मार्मिक चित्रण करने का प्रयास किया है। परन्तु राजी सेठ की कहानियों से गुजरकर यह कहा जा सकता है कि वह इस घटना के प्रभाव को तात्कालिक नहीं मान रही है। वह इस घटना से उपजे जीवन त्रासदी को क्षणिक तौर पर नहीं देख रही हैं। समय की तुला पर जब उनकी कहानियों को परखा जाएगा तो यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि विभाजन की घटना से उपजी त्रासदी एवं उससे होनेवाले दुष्प्रभाव का बिना किसी उत्खनन एवं अतिव्यंजनापूर्ण वर्णन के, मूल समस्याओं को सीधे सरल शब्दों में बयान करना ही राजी सेठ की पहचान है तथा उनकी अभिव्यक्ति पर उनके समाज तथा परिवेश का सूक्ष्म एवं गहरा प्रभाव पड़ा है।

संदर्भ

1. दास, डॉ. श्यामसुंदर, साहित्यालोचन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 32
2. सेठ, राजी, बाहरी लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 26
3. वही, पृ. 26
4. वही, पृ. 28
5. वही, पृ. 34
6. प्रियंवद, भारत विभाजन की अंतःकथा, पेंगुइन प्रकाशन, गुड़गांव, पृ. 18
7. सेठ राजी, बाहरी लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 39
8. वही, पृ. 49
9. वही, पृ. 53
10. प्रियंवद, भारत विभाजन की अंतःकथा, पेंगुइन प्रकाशन, गुड़गांव, पृ. 17
11. सेठ, राजी, बाहरी लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 12

प्रणय प्रकाश
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मो. : 7004450687
ई-मेल : ppcs1216@gmail.com

जातक चित्र-दृश्य

–डॉ. सूरज पाल साहू

जातक कथाओं को दो रूप में समझा जा सकता है-एक बुद्ध के अतीत के जन्मों कथाएँ और दूसरे बुद्ध जीवन के दृश्य। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बृद्धत्व की पूर्व बुद्ध ने कई जन्म लिये थे। इन जन्मों की कथाएँ जातक प्राप्ति नाम से प्रसिद्ध है। इन कथाओं को वेदिका स्तम्भों पर, सूचिकाओं पर अथवा दीवारों पर अकिंत करना। प्राचीन काल की सामान्य परिपाटी की जिसके नमूने भरहूत, सांची, अमरावती आदि स्थानों पर तथा गान्धार कला में भी प्रचुरता से मिलते हैं। मथुरा की कला भी इस नियम के लिए अपवाह नहीं है। यहाँ की कलाकृतियाँ में अब तक बारह जातकों की पहचान हो चुकी है। इसका संक्षिप्त विवरण बीचे दिया जा रहा है।

1. दुःखोपादान जातक (सं. सं. 15.586)

इसका अंकन एक वेदिका स्तम्भ पर किया गया है। जिसमें एक फुल्ले में पर्णशाला के सामने एक बैठा हुआ साधु दिखलाई पड़ता है। ठीक उसी के पास उसकी ओर मुँह किए एक सांप, हिरन, कौआ तथा कबूतर भी बने हैं।

कथा इस प्रकार है कि एक बार चार भिक्षुओं में दुःख के मूल कारण के विषय में बात चली। चारों के मत भिन्न थे अतएव वे शंका निवृत्ति के लिए बुद्ध के पास गये। बुद्ध ने पूर्व जन्म की एक घटना को बतलाते हुये उनका समाधान किया। उन्होंने बतलाया कि एक वन में रहने वाले हिरन, कौआ, सांप तथा कबूतर में पहले एक बार ऐसा ही वाद उठ पड़ा था। कबूतर का मत था कि प्रेम दुःख का मूल उपादान है, कौवे के मतानुसार यह उपादान भूख थी, सांप घृणा को मूल उपादान बतलाता था और हिरन सोच रहा था कि भय के अतिरिक्त दूसरा कोई उपादान नहीं हो सकता। निकट ही रहने वाले एक साधु से यह प्रश्न पूछा गया। उसने बतलाया कि तुम सभी अंशतः सच बतला रहे हो पर दुःख के मूलतम उपादान तक नहीं पहुँच रहे हो। देह धारण ही सभी दुःखों का मूल कारण है। समारोप करते हुए बुद्ध ने बतलाया कि उस जन्म में साधु वे स्वयं थे और विवाद करने वाले चार भिक्षु चार जानवर थे। यह जातक कथा आज के उपलब्ध पाली साहित्य में नहीं मिलती, अपितु बुद्ध जीवन से सम्बन्धित एक चीनी ग्रंथ में इसका विवरण मिलता है।

2. सिसुमार अथवा वानरिन्द जातक (सं.सं. 00. जे 42, 12.195)

यह कथा दो वेदिका स्तम्भों पर अंकित मिलती है। इसमें एक मगर और बन्दर को एक साथ दिखलाया गया है। कथा यह है कि एक समय बोधिसत्व बन्दर के रूप में एक नदी के तट पर निवास करते थे। उसी नदी में मगर का एक जोड़ा भी रहता था। एक बार मगर की पत्नी ने बन्दर का कलेजा खाने की इच्छा अपने पति के पास प्रगट की। प्रियतमा की इच्छा पूरी करने के लिए मगर ने बन्दर से दोस्ती की और एक दिन उसे सुझाया कि बन्दर को चाहिए कि वह नदी के दूसरे तट पर लगे हुये ताजे और मधुर फलों को खाया करे और इसके लिए वह स्वयं उसे पार ले जाया करेगा। बन्दर मगर की बातों में आ गया और उसकी पीठ पर बैठकर नदी में चल पड़ा। बीच धारा में पहुँचकर मगर ने उसे सही बात बतलाई और स्वयं पानी में डूबने लगा। चतुर बन्दर हँस पड़ा, उसने कहा आश्चर्य है कि तुम्हें यह पता ही नहीं है कि बन्दर लोग कभी अपना कलेजा अपने साथ नहीं रखते, अन्यथा कूदने फांदने में उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएं। वे तो उसे पेड़ों पर लटका के रखते हैं। मूर्ख मगर ने इस बात पर विश्वास कर लिया और बन्दर का कलेजा पाने के लालच से उसे पुनः किनारे पर ले आया। अब बन्दर कूद पड़ा और मगर की बुद्धिहीनता पर हँसने लगा। जातकों के अतिरिक्त थोड़े परिवर्तनों के साथ यह कथा पंचतंत्र में भी मिलती है।

3. महासुतसोम जातक (सं. सं. 14.431,00 जे. 23)

इसका सबसे अच्छा उदाहरण एक प्रस्तर खण्ड पर मिलता है। यहाँ एक पुरुष कन्धे पर बहेंगी लिये जा रहा है जिसके दोनों छोरों से एक-एक मानव आकृति लटक रही है।

इस जातक की कथा के अनुसार एक समय वाराणसी के किसी राजा को मानव का माँस खाने की रुचि उत्पन्न हो गई। अपनी दुष्ट इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसने कितने ही निरीह मनुष्यों को मरवा डाला। जब इसका भेद खुला तब

लोगों ने उसे राज्य से निकाल दिया। वह भी एक जंगल में रहकर वहाँ आने वाले पथिकों को मारकर खाने लगा। एक बार उसके पैर में चोट आई। अतएव उसने वृक्षदेवता की मनौती की कि उसका व्रण एक सप्ताह में ठीक होने पर वह एक सौ एक कुमारों की बलि चढ़ावेगा। संयोग से उसका पैर ठीक हो गया। अब अपनी मनौती की पूर्ति के लिए उसने एक सौ कुमारों को पकड़कर एक वृक्ष से लटका दिया। अन्तिम कुमार बोधिसत्त्व सुतसोम थे जिन्हें इस नरभक्षक ने पकड़ लिया, पर बोधिसत्त्व के अदम्य साहस, निर्भीकता आदि गुणों से वह बड़ा प्रभावित हुआ और अन्ततोगत्वा उसकी सम्पूर्ण जीवन-धारा को पलट देने में बोधिसत्त्व सुतसोम पूरी तरह सफल हो गये।

4. रोमक अथवा परावत जातक (सं.सं. 00. आई 4)

यह जातक अपने मूल स्थान पर कई भागों में अंकित था। इस समय अवशिष्ट शिलाखण्ड पर केवल दो भाग देखे जा सकते हैं। कथा-दृश्य के ऊपर मालाधारी यक्षों की पंक्ति बनी हुई थी। यहाँ हम कुछ साधु व एक कबूतर देखते हैं। इन साधुओं में एक-दूसरे की अपेक्षा अवस्था में वृद्धि है। यह अनुमान उसकी दाढ़ी से किया जा सकता है। इस जातक की कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है-

एक समय बोधिसत्त्व ने कबूतरों के राजा का जन्म लिया था। कबूतरों का यह झुण्ड जंगल में रहने वाले एक साधु के यहाँ नियमित रूप से जाता रहा। यह साधु एक गुफा के पास रहा करता था। वृद्धावस्था के कारण आगे चलकर वह साधु उस स्थान को छोड़कर कहीं चला गया और उस स्थान पर एक दूसरा तरुण साधु आकर रहने लगा। कबूतरों का झुण्ड अब भी आता रहा। एक दिन इस नवीन साधु को कबूतरों का माँस खाने को मिला जो उसे बहुत ही अच्छा लगा इस विषय में उसका लोभ बढ़ा और उसने इन कबूतरों के झुण्ड में शिकार करने की सोची। दूसरे दिन वह अपने कपड़ों में डण्डा छिपाकर कबूतरों की राह देखने लगा। उसकी चेष्टाओं से बोधिसत्त्व को उसके कपट व्यवहार का पता लग गया और उन्होंने अपने अनुयायियों को वहाँ जाने से रोक दिया। अब इस तरुण साधु का कपट खुल गया और अन्ततोगत्वा पास-पड़ोस वालों के डर से उसने वह स्थान छोड़ दिया।

5. वेस्सन्तर जातक (सं. सं. 00. जे 4 पृष्ठ भाग)

इस जातक कथा का अंकन कलाकारों का प्रिय विषय रहा। भरहूत और सांची की कलाकृतियों में भी यह प्रचुर रूप से अंकित है। मथुरा में यह कई भागों में दिखलाया गया था। संग्रहालय में प्रदर्शित वेदिका स्तम्भ के पिछले भाग पर इसके कुछ दृश्य मुख्यतः कुमार वेस्सन्तर और याचक ब्राह्मण, कुमार द्वारा ब्राह्मण को अपने दोनों पुत्रों का दान तथा एकाकिनी स्त्रीमूर्ति कदाचित वेस्सन्तर की पत्नी अंकित हैं।

उस समय बोधिसत्व ने आदर्श दानी के रूप में कुमार वेस्सन्तर के नाम से जन्म लिया था। उन्होंने अपना श्वेत वर्ण का मंगल-गज, ब्राह्मणों को दान में दे दिया। फलस्वरूप उन्हें पत्नी और पुत्रों के साथ देशत्याग करना पड़ा। रास्ते में उन्होंने ब्राह्मण के माँगने पर अपना रथ और घोड़े भी दे दिये। अब यह कुटुम्ब एक पर्वत पर रहने लगा, पर यहाँ भी पूजक नाम का एक ब्राह्मण आ पहुँचा जिसने कुमार से उसके दोनों पुत्रों की याचना की। पत्नी की अनुपस्थिति में भी कुमार ने ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार की, वस्तुतः यह ब्राह्मण कुमार वेस्सन्तर की परीक्षा लेने आया था। बाद में शक देवता के प्रभाव से कुमार का सारा कुटुम्ब और उसका पुराना ऐश्वर्य सब कुछ उसे मिल गये।

6. पाद - कुसल - माणव जातक (सं. सं. 12.191)

एक वेदिका स्तम्भ के मध्य में यह अंकित है। यहाँ हम एक अश्व-मुखी यक्षी को एक तरुण पुरुष के कन्धे को छूते हुये देखते हैं।

जातक कथा हमें बतलाती है कि किसी समय वाराणसी की एक रानी ने झूठी शपथ ली, जिस पाप के कारण वह घुड़मुँही यक्षी बनी। उसने तब तीन वर्षों तक वैश्रवण कुबेर की सेवा की और यह वर प्राप्त किया कि एक निश्चित परिसर के भीतर प्रवेश करने वालों को वह खा सकेगी। एक दिन एक सुन्दर और धनवान ब्राह्मण युवक उसके चंगुल में फँस गया। परन्तु यह यक्षी उसके सौंदर्य पर लुब्ध हो गई और उसने उसे अपना पति बना लिया। परन्तु वह कहीं भाग न जाय इस भय से वह उसे सदा एक गुफा में कैद किये रहती थी। उससे इस यक्षी के एक बेटा उत्पन्न हुआ जो बोधिसत्त्व था। बोधिसत्व ने पैरों की चाप को सुनकर मनुष्य को पहचानने की कला में कुशलता प्राप्त की और इस विद्या की सहायता से अपने पिता को घुड़मुँही यक्षी की कैद से छुड़ा लिया।

7. कच्छप जातक (सं.सं. 00. जे 36)

ऊपर वाले जातक के समान यह भी एक वेदिका स्तंभ के पिछले भाग पर अंकित है। यहाँ एक कछुए को दो पुरुष लकड़ियों से पीटते हुए दिखलाई पड़ते हैं। बात यह थी कि एक बकवादी कछुए और दो हंसों में मित्रता हो गई। हंसों ने कछुओं को अपने देश में चलने के लिए निमन्त्रित किया। कछुए को बात जंच गई। हंसों ने एक छड़ी ली और कछुए को उसे बीचोबीच अपने मुँह में पकड़ने के लिए कहा। उसके ऐसा करने पर दोनों पक्षी अपनी चोंच में उस छड़ी को पकड़कर उड़ चले। गाँव के बच्चों ने जब यह विचित्र दृश्य देखा तब उन्होंने कछुए की हंसी उड़ाना प्रारम्भ किया। बकवादी कछुआ उसे न सह सका। जैसे ही उत्तर देने के लिए उसने मुँह खोला, वह भूमि पर आ गिरा और मर गया। डा. फोगल ने इस कथा की चर्चा करते हुए ठीक ही कहा है कि मथुरा कलाकृति में

इस कथा का अंकन जातक-ग्रन्थों के आधार पर नहीं, अपितु पंचतंत्र के आधार पर हुआ है, जिसमें कहा गया है कि कछुए की मृत्यु ऊपर से गिरकर नहीं, परन्तु ग्रामवासियों की मार के कारण हुई थी।

8. उलूक जातक (सं.सं. 00. जे 41)

इसका अंकन भी एक वेदिका स्तंभ के पृष्ठभाग पर किया गया है। यहाँ हम एक उल्लू को आसन पर बैठे हुए देखते हैं। दो बन्दर अगल-बगल खड़े होकर उसका अभिषेक कर रहे हैं। कथा के अनुसार पक्षियों ने एक समय उल्लू को अपना राजा चुना। उसका अभिषेक होने ही जा रहा था कि कौवे ने इस बात का विरोध किया और वह स्वयं आकाश में उड़ गया। उल्लू भी उसका पीछा करने के लिए आकाश में उड़ चला। इधर पक्षियों ने एक सुनहले हंस को अपना राजा चुना।

9. दीपंकर जातक (सं.सं. 0. एच 10. लखनऊ संग्रहालय संख्या बी 22)

इस जातक का सम्पूर्ण अंकन अब तक माथुरी कला में नहीं मिला है, परन्तु महत्त्वपूर्ण बातों का अंकन अवश्य है जैसे दीपंकर को फूल चढ़ाना तथा उनके सम्मुख सुमति का भूमि पर अपने केश फैलाना। जातक की पाली तथा संस्कृत कथाओं में कुछ अन्तर है। कथा का साधारण रूप निम्नांकित है-

सुमति नामक एक वेदज्ञ ब्राह्मण को एक राजा से दान में कई वस्तुएँ मिलीं इनमें एक कन्या भी थी। सुमति ने कन्या को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह आजन्म ब्रह्मचारी रहना चाहता था। कन्या सुमति पर मुग्ध हो चुकी थी, परन्तु उसके द्वारा अस्वीकार किये जाने पर वह दीपावती नामक नगरी में जाकर ईश्वर सेवा में समय बिताने लगी। इधर सुमति को कुछ विचित्र स्वप्न हुए जिनका अर्थ समझने के लिए उसे दीपावती नगरी में जाकर वहाँ पधारने वाले दीपंकर बुद्ध से मिलने का आदेश हुआ। सुमति को चाहने वाली वह कन्या भी दीपंकर का पूजन करना चाहती थी। इधर दीपावती के राजा ने अपने यहाँ आने वाले दीपंकर की पूजा के लिए नगर के सम्पूर्ण पुष्पों पर अधिकार कर लिया फलतः कन्या को पूजन के लिए फूल न मिल सके। अतएव उसने अपनी तपस्या के प्रभाव से सात कमलों को विकसित कराया। यही कठिनाई सुमति के सामने भी थी एकाएक उसने इस कन्या को फूल ले जाते हुए देखा। उसने फूलों की याचना की। पहले तो कन्या ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी, पर बाद में एक शर्त पर उसे पाँच पुष्प देना स्वीकार किया। शर्त यह थी कि दीपंकर को पुष्प समर्पण करते समय सुमति अपने मन में उस कन्या को अगले जन्म में पत्नी रूप में पाने की कामना रखे। सुमति ने इसे स्वीकार किया और दोनों दीपंकर का दर्शन करने के लिए चले। सुमति ने दीपंकर को जो पाँच फूल चढ़ाये वे भूमि पर तो नहीं गिरे अपितु बुद्ध के मस्तक के ऊपर एक माला के रूप में स्थित हो गये। उसी प्रकार कन्या के द्वारा समर्पित पुष्प भी दीपंकर के कानों पर स्थित हो गये। वर्षा के कारण इस समय रास्ते में कीचड़ हो रहा था। दीपंकर को चलने में कठिनाई हो रही है यह देखकर सुमति ने अपना मस्तक पृथ्वी पर झुका दिया और अपने केश बिछाकर बुद्ध को चलने के लिए मार्ग बना दिया। बुद्ध ने उसके केशों पर पैर रखे और भविष्यवाणी की कि अगले जन्म में सुमति शाक्य मुनि के रूप में उत्पन्न होंगे।

10. शिबि जातक

मथुरा से प्राप्त एक वेदिका स्तंभ के पृष्ठभाग पर यह जातक कथा अंकित है। इसे शिबि जातक के नाम से पुकारा गया है पर यहाँ दिखलाई पड़ने वाला दृश्य पाली जातक कथा से मेल नहीं खाता। संभवतः यह ब्राह्मण संप्रदाय में प्रचलित राजा शिबि की कथा है जिसने एक कबूतर को बचाने के लिए अपने शरीर का मांस देना स्वीकार किया था।

11. व्याघ्री जातक (सं. सं. 00 जे.5; 32.2280)

दोनों कलाकृतियों में यह जातक - दृश्य बड़े ही घिसे हुए हैं।

उपरोक्त जातक कथाओं के अतिरिक्त मथुरा कला में अधोलिखित दो अन्य जातकों का अंकन भी मिलता है, पर ये कलाकृतियां मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में नहीं हैं।

(क) वलाहस्स जातक,

(ख) महिलामुख जातक।

सन्दर्भ

- अल्लेकर - गुप्त कालीन मुद्राएँ
- अग्निहोत्री - पंतजलि कालीन भारत
- जय चंद्र विद्यालंकार - भारतीय इतिहास की मीमांसा
- सांस्कृत्यायन, राहुल - पुरातत्व निवन्धावली, बौद्ध संस्कृति, तिब्बत में बौद्ध धर्म
- राय चौधरी - प्राचीन भारत का इतिहास
- साहू - डॉ. सूरज पाल - मूर्तिकला का इतिहास

डॉ. सूरज पाल साहू
एसोसिएट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग बरेली कॉलेज,
एम. जे.पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय
surajsahu-bareilly@gmail.com

कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज : एक अध्ययन

–डॉ. आसिया मकबूल
–डॉ. शाजिया
–डॉ. उमर

भूमिका : किशोरावस्था वृद्धि और विकास की महत्वपूर्ण अवस्था है। बच्चों के समग्र विकास में परिवार, देखभाल करने वाले और अभिभावक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किशोरों की वृद्धि और विकास पर्यावरण से अत्यधिक प्रभावित होता है, खासकर जब उन्होंने माता-पिता को खोने का अनुभव किया हो। किशोरों के लिए सामाजिक और भावनात्मक कौशल को एकीकृत करने के लिए परिवार और अन्य संस्थानों में एक सहायक वातावरण महत्वपूर्ण है। शोधकर्ताओं का मानना है कि माता-पिता के समर्थन और देखभाल की कमी वाले लोगों को अपने दैनिक जीवन में भारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तनावपूर्ण स्थितियों से निपटने के लिए कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता होती है।

उद्देश्य : कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज करना।

ध्येय : संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना और अवसाद पर संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना करना।

कार्यप्रणाली : वर्तमान अध्ययन एक वर्णनात्मक अध्ययन डिजाइन है। अनाथालयों को कश्मीर के चार जिलों से जानबूझकर चुना गया था। बेक की डिप्रेशन इन्वेंटरी और अर्ध संरचना साक्षात्कार का प्रबंधन किया गया। यादृच्छिक नमूनाकरण तकनीक द्वारा 200 अनाथ किशोरों (100 संस्थागत और 100 गैर-संस्थागत) का नमूना एकत्र किया गया। डेटा का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकीय विश्लेषण (प्रतिशत, स्कोर और एसडी का माध्य) और अनुमानात्मक डेटा विश्लेषण (टी परीक्षण) के अनुप्रयोग के माध्यम से किया गया था।

परिणाम : यह निष्कर्ष निकाला गया कि संस्थागत अनाथ किशोरों में मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की कमी है, जो हल्के और मध्यम स्तर के अवसाद जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को दर्शाता है। विशेष रूप से विश्राम, आत्म-चर्चा, संज्ञानात्मक रणनीतियों के मनोवैज्ञानिक कौशल के उपयोग में समूहों के बीच तीव्रता और दिशा चिंता और आत्मविश्वास में अंतर हैं। इससे पता चलता है कि संस्थागत अनाथों में सकारात्मक आत्म-चर्चा, आत्मविश्वास बढ़ाना, लक्ष्य निर्धारण और सबसे अधिक उत्पादक मानसिकता प्राप्त करने जैसे कौशल कम हैं। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की कमी बदले में शैक्षणिक प्रदर्शन और समग्र कल्याण को प्रभावित करती है। परिणाम आगे संकेत देते हैं कि गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों में संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में बेहतर दृष्टिकोण, स्वयं का ज्ञान, भावनात्मक स्थिरता, आत्म-स्वीकृति और उनकी उपलब्धि का सकारात्मक मूल्यांकन होता है।

निष्कर्ष : अध्ययन अनुशंसा करता है कि बच्चों के लचीलेपन पर माता-पिता के अभाव के प्रभाव की भरपाई के लिए अनाथालयों में अनुकूल वातावरण बनाया जाना चाहिए। अनाथ बच्चों की देखभाल में भोजन, आश्रय आदि जैसी अन्य जरूरतों की तरह मनोवैज्ञानिक चिंताओं को भी उचित महत्व दिया जाना चाहिए। स्कूलों और अनाथालयों ने योग्य स्कूल परामर्शदाताओं या बाल मनोवैज्ञानिक की भर्ती की संभावना पर विचार किया होगा। नियोजित मनोवैज्ञानिक के पास मनो-सामाजिक समस्याओं का निदान करने और जरूरतमंद बच्चों को मनोचिकित्सा प्रदान करने का कौशल होगा।

मुख्य शब्द : मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य, अवसाद, संस्थागत अनाथ, गैर-संस्थागत अनाथ, किशोर

परिचय :

किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें बढ़ती स्वतंत्रता, तेजी से होने वाले शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन, सामाजिक मुद्दों और चिंताओं की खोज, सहकर्मी समूह के साथ गतिविधियों पर अधिक ध्यान केंद्रित करना और एक बुनियादी आत्म-पहचान की स्थापना (हरलॉक, 1981) शामिल है। यह पाया गया है कि, माता-पिता का लगाव जीवन संतुष्टि में सकारात्मक योगदान देता है और अवसाद, चिंता और अलगाव की भावना में नकारात्मक योगदान देता है। समर्थन, निगरानी और अनुशासन माता-पिता के व्यवहार के केंद्रीय आयाम हैं जो किशोरों के समायोजन और कल्याण से जुड़े हुए हैं। सकारात्मक मनोविज्ञान में प्रगति ने विभिन्न विषयों में मनोवैज्ञानिक कल्याण में रुचि बढ़ा दी है। परिणामतः यह विशेष रूप से खुशी, जीवन संतुष्टि और सकारात्मक प्रभाव से संबंधित कल्याण के व्यक्तिपरक अनुभवों पर केंद्रित है। इसे स्थापित करने के लिए, एक व्यक्ति को सामाजिक अनुमोदन और समर्थन की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से माता-पिता से, जो आत्म-विकास की किशोरावस्था के दौरान महत्वपूर्ण है और इस पूरे चरण में कठिन समय से निपटने में मदद करता है (हार्टर, 1999य गार्बर और फ्लिन, 2001)। शोधकर्ताओं (कारबालो एट अल., 2000; वैन वेल एट अल., 2010) का मानना है कि माता-पिता के समर्थन और देखभाल की कमी वाले लोगों को अपने दैनिक जीवन में भारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और विभिन्न क्षेत्रों में तनावपूर्ण स्थितियों से निपटने के लिए कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिक स्थिति मानव गतिविधि के सभी पहलुओं में खुद को प्रकट करती है और यह समझने के लिए आवश्यक है कि क्या किशोरों जैसे युवा लोग जीवन संतुष्टि का अनुभव करते हैं और क्या वे परिपक्व हैं, कल्याण व्यक्तिगत स्वायत्तता के विभिन्न स्तरों से जुड़ा हो सकता है। संस्थागतकरण बच्चों को अनाथालयों जैसे संस्थानों में रखना है। संस्थागतकरण का बच्चे के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रारंभिक महत्वपूर्ण विकास अवधि के दौरान और लंबी अवधि के लिए संस्थानों में बच्चों की नियुक्ति का विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। स्थायी माता-पिता की देखभाल हर बच्चे के लिए आदर्श स्थिति है। किशोरावस्था स्वयं और दूसरों से पूर्णता की मांग करने के बजाय पूर्ण या काफी अच्छा काम करने के बारे में अच्छा महसूस करना सीखने का समय है (नायर और मिनी, 2003)। अवसाद सबसे आम मनोवैज्ञानिक रूप से बढ़ने वाले विकारों में से एक है और यह सभी मनोवैज्ञानिक विकारों का पहला चरण है।

आवश्यकता एवं महत्व :

पारिवारिक समर्थन, माता-पिता की देखभाल, सामाजिक प्रदर्शन और शिक्षा जैसे विभिन्न सुरक्षात्मक कारक आत्म-मूल्य, सामाजिक क्षमता आदि जैसी मनोवैज्ञानिक क्षमताओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (मीड, 1934; गेकास और सेफ, 1990)। परिवार समाज की प्रमुख सामाजिक संस्थाओं में से एक है। परिवार के भीतर बच्चा सामाजिक मानदंडों और मूल्यों को अपनाता है और समाज के अन्य सदस्यों के साथ संबंध बनाने में सक्षम हो जाता है। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इष्टतम प्रभावशीलता के साथ सकारात्मक भावनाओं और कामकाज के संयोजन के रूप में माना जा सकता है (डेसी और रयान, 2008; हुपर्ट, 2009)। माता-पिता का प्यार बच्चे के विकास के लिए ही नहीं बल्कि उसके अस्तित्व के लिए भी सर्वोच्च आवश्यकता है। घरेलू जीवन सभ्यता का सर्वोच्च और सर्वोत्तम उत्पाद है। यह मन और चरित्र को आकार देने वाली महान शक्ति है। माता-पिता की मृत्यु बच्चे के जीवन में बड़े बदलाव लाती है। अनाथ बच्चों में कई व्यक्तिगत, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक और शैक्षणिक समस्याएँ होती हैं। वास्तव में, जिन बच्चों को माता-पिता की मृत्यु का अनुभव होता है, उनमें मनोरोग विकार से पीड़ित होने की संभावना दोगुनी होती है। अनाथ होने से किशोरों में भावनात्मक अशांति उत्पन्न होती है जो उनके आत्मसम्मान और स्वयं के मूल्यांकन के तरीके को प्रभावित कर सकती है। वर्तमान जांच का उद्देश्य कश्मीर डिवीजन के अनाथ किशोरों की मनोवैज्ञानिक स्थिति की जांच करना है। यह अध्ययन छात्रों को उचित तरीके से मार्गदर्शन करने के लिए शोधकर्ताओं, प्रशासकों और परामर्शदाताओं के लिए एक दिशानिर्देश बन जाएगा ताकि अच्छा आत्मसम्मान विकसित हो सके, अवसाद कम हो, चिंता कम हो और समग्र उपलब्धि में सुधार हो सके। इसके अलावा अध्ययन का उद्देश्य संस्थानों में रहने वाले अनाथ बच्चों की तुलना परिवारों के साथ, अभिभावकों के घरों में या अपने माता-पिता के घरों में रहने वाले अनाथों से करके बच्चों के आत्म विकास, उपलब्धि पर संस्थागत देखभाल के प्रभाव की जांच करना है। इसके अलावा, संस्थान, परामर्शदाता और शोधकर्ता इस अध्ययन के परिणामों को सूचना के स्रोत, समझने और छात्रों की मदद करने के साधन के रूप में उपयोग कर सकते हैं। परिणाम आगे की जांच के लिए एक कदम के रूप में भी काम कर सकते हैं।

समस्या का विधान :

प्रस्तावित अध्ययन हेतु की गई चयनित समस्या इस प्रकार है :

• कश्मीर के अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की खोज

उद्देश्य :

प्रस्तावित अध्ययन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य तैयार

किये गये हैं:-

1. संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।

2. अवसाद पर संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना करना।

परिकल्पना :

प्रस्तावित जांच के लिए निम्नलिखित परिकल्पनाएँ तैयार की गई हैं: -

1. संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों के बीच अवसाद को लेकर महत्वपूर्ण अंतर है।

शर्तों और चरों की परिचालनात्मक परिभाषाएँ :

(क) अवसाद : प्रस्तावित अध्ययन में, अवसाद बेक की अवसाद सूची पर विषयों द्वारा प्राप्त अंकों को संदर्भित करता है।

(ख) संस्थागत अनाथ : प्रस्तावित अध्ययन के लिए संस्थागत अनाथालय में उन बच्चों को संदर्भित किया जाएगा जिन्होंने अपने पिता को खो दिया है और समूह में रहने की व्यवस्था में देखभाल पाने के लिए संस्थान में रहते हैं।

(ग) गैर-संस्थागत : प्रस्तावित अध्ययन के लिए गैर संस्थागत अनाथ का तात्पर्य उन अनाथ बच्चों से होगा जिन्होंने अपने पिता को खो दिया है और परिवारों के साथ रहते हैं।

(घ) किशोर : प्रस्तावित अध्ययन के लिए किशोरों का तात्पर्य 13-15 आयु वर्ग के स्कूल जाने वाले बच्चों से है।

नमूना :

प्रस्तावित अध्ययन के नमूने में कश्मीर घाटी के चार जिलों के विभिन्न मध्य विद्यालयों, माध्यमिक विद्यालयों और अनाथालयों में पढ़ने वाले 200 अनाथ किशोर शामिल हैं।

उपकरण :

अन्वेषक ने प्रस्तावित अध्ययन के लिए आवश्यक डेटा एकत्र करने के लिए निम्नलिखित टूल का चयन किया

बेक द्वारा अवसाद सूची।

अध्ययन का परिसीमन :

प्रस्तावित अध्ययन का सीमांकन किया गया है

- अवसाद।
- कश्मीर प्रांत में संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ किशोर।
- कश्मीर प्रांत के चार जिलेय अनंतनाग, बारामुल्ला, गांदरबल और श्रीनगर।

सांख्यिकीय उपचार :

मीन, एसडी, टी-टेस्ट

विश्लेषण तथा व्याख्या

अवसाद पर संस्थागत अनाथ और गैर संस्थागत अनाथ किशोरों की औसत तुलना (प्रत्येक समूह में एन =100) पर एक त्वरित नजर डालने से अवसाद पर संस्थागत अनाथ और-गैर संस्थागत अनाथ किशोरों की औसत तुलना दर्शाती है। इसे पता चलता है कि किशोरों के दो समूह, संस्थागत अनाथ और गैर-संस्थागत अनाथ, अवसाद पर काफी भिन्न हैं। अवसाद पर संस्थागत और गैर संस्थागत अनाथों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है (टी = 6.99, पी = .0001)। इससे पता चलता है कि संस्थागत अनाथ गैर-संस्थागत अनाथों की तुलना में अवसाद से अधिक पीड़ित हैं। उपरोक्त परिणाम यह भी दर्शाते हैं कि गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों में संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में बेहतर दृष्टिकोण, स्वयं का ज्ञान, भावनात्मक स्थिरता, आत्म-स्वीकृति और उनकी उपलब्धि का सकारात्मक मूल्यांकन होता है। इस प्रकार उपरोक्त परिणामों की पुष्टि से परिकल्पना संख्या 1 जो इस प्रकार है, ''संस्थागत अनाथ और गैर संस्थागत अनाथ किशोरों में अवसाद पर महत्वपूर्ण अंतर होता है'' को स्वीकार किया जाता है।

निष्कर्ष

संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में गैर-संस्थागत अनाथ किशोरों में अवसाद दर कम होती है। संस्थागत अनाथ किशोरों की तुलना में उनमें उच्च स्तर का आत्म-मूल्यांकन, भावनात्मक रूप से स्थिर, स्थिर भावना और उच्च आकांक्षा होती है। यह इंगित करता है कि तनावपूर्ण जीवन की घटनाओं जैसे कि माता-पिता को खोना और अनाथालय में रहना, विभिन्न प्रतिकूल मानसिक स्वास्थ्य परिणामों जैसे अवसाद, अकेलापन आदि का कारण बन सकता है। निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि पारिवारिक समर्थन की कमी मनोवैज्ञानिक कौशल के साथ-साथ सामाजिक कौशल के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। अनाथों की भावनात्मक क्षमताएँ, कम आत्म-सक्षमता उनकी दैनिक चिंताओं से निपटने की उनकी मनोवैज्ञानिक शक्तियों को प्रभावित करती है। अध्ययन से पता चलता है कि अनाथ किशोरों के साथ-साथ अनाथालयों के लिए भी व्यक्तिगत परामर्श कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए, जो उन्हें अपनी समस्या को दूर करने के लिए अपनी आत्म-क्षमताओं और क्षमताओं को पहचानने में मदद कर सकते हैं ताकि वे समाज के स्वतंत्र और साधन संपन्न व्यक्ति बन सकें।

ग्रन्थ सूची

1. अमाटो, पी. आर., और बूथ, ए. (1996). *अ प्रोस्पेक्टिव स्टडी ऑफ पेरंटल डिवोर्स एंड पेरंट-चाइल्ड रिलेशनशिप्स. जर्नल ऑफ मैरेज एंड द फैमिली,* 58, 356-365

2. अलोंजो, ए.ए. (1989). लोनलिनेस, थ्योरी, रिसर्च एंड एप्लीकेशन. कॉनटेमपोररी सोशियोलॉजी, 18 (3), 437-438
3. अवांग कादिर एट अल., (2016). अ स्टडी ऑन द साइको-सोशल प्रोब्लम्स ऑफ ऑर्फन्ज इन केरेला ओर्फनेज्ज. जर्नल ऑफ क्लिनिकल साइकोलॉजी, 2(1):36-44.
4. अज़्जा इब्राहिम एट अल., (2012). अ स्टडी टुअस्सेस द प्रिवेलेंस एंड द प्रिडिक्टोर्स ऑफ डिप्रेशन अमंग ओर्फन्ज इन दखालिया गोवेर्नोरेट ओर्फनेज्ज. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कोलाबोरेटिव रिसर्च ऑन इंटरनेशनल मेडिसिन एंड पब्लिक हेल्थ, 4(12): 74-89.
5. कैसानो और फवा, (2002) फोस्टर, 2002. डिप्रेशन एंड पब्लिक हेल्थ एन ओवरव्यू. जर्नल ऑफ साइकोसोमेटिक रिसर्च, 53: 849-857.
6. फॉस्टर, 2002. d साइकोसोशल वेल-बींग ऑफ ओर्फंज इन सौदर्न अफ्रीकाः द परसेप्शन ऑफ ओर्फंज एंड टीचर्स. द जर्नल फॉर ट्रांसडिसीप्लिनरी रिसर्च इन सौदर्न अफ्रीका, 6 (2): 461-477.

डॉ. आसिया मकबूल
सहायक आचार्य
स्कूल ऑफ एज्युकेशन एंड बिहेव्यरल साइंसेज,
कश्मीर विश्वविद्यालय
ईमेलः aasiamaqboolku@gmail.com
कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल श्रीनगर-190006

डॉ. शाजिया
रीडर, हिंदी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय

डॉ. उमर
रीडर, हिंदी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय

तकनीकी और साहित्य का अनूठा संगम

–डॉ. सुधीर
–डॉ. अजय कुमार
–डॉ. रीना हुड्डा
–डॉ. शिवानी

सारांश :

जब ईश्वर ने ललित कलाओं का निर्माण किया तो सबसे पहले जिस कला का निर्माण किया उसे वास्तुकला के नाम से जाना गया। लेकिन समय के साथ यह महसूस किया गया कि इसमें स्रोत बहुत ज्यादा चाहिए। इसलिए ईश्वर ने सोचा थोड़ा और सूक्ष्म किया जाए तो जिस द्वितीय कला का निर्माण किया गया उसे जाना गया चित्रकला के नाम से। यानी की 3D को 2D में संयोजित किया गया। पेपर पर ही ऐसा चित्र उकेरा जाने लगा मानो झरना सच में बह रहा हो, मानो पेड़ लहलहा रहे हों। लेकिन बाद में महसूस किया गया इसमें भी रंग, कूची, पेंट, कागज बहुत ज्यादा स्रोतों की जरूरत पड़ती है तो ईश्वर ने ललित कला को थोड़ा-सा और सूक्ष्म किया और जिस ललित कला का निर्माण किया गया उसे संगीत के नाम से जाना गया। जिसे आंखें बंद करके भी हम महसूस कर सकते हैं। लेकिन उसमें वादक और वाद्य यंत्र की प्रतिबद्धता महसूस की जाने लगी। फिर ईश्वर ने सोचा कि कुछ और सूक्ष्म किया जाए तो सूक्ष्मता की पराकाष्ठा पर जब ललित कला पहुँची तब जन्म हुआ साहित्य का। साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से ऐसा चित्र खींचता है कि हमें लगता है जैसे सब कुछ हमारे सामने, हमारी आंखों के आगे घटित हो रहा है। यह है साहित्य की ताकत।

मूल शब्द :

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, सोशल नेटवर्किंग, वेबसाइटस, क्लाउड कम्प्यूटिंग, इलेक्ट्रोनिक उपकरण ईमेल, युट्यूब।

प्रस्तावना :

अब मैं आपको जोड़ना चाहता हूं कि तकनीकी और साहित्य के संगम से। तकनीकी और साहित्य का संगम बहुत पहले से ही रहा है। आपकी जानकारी के लिए बताना चाहूँगा कि चौथी शताब्दी के आसपास महाकवि कालिदास ने लगभग 120 छंदों का एक काव्य संस्कृत में लिखा मेघदूतम यानी द क्लाउड मैसेंजर। यह दुनिया का पहला संदेश काव्य है। इस काव्य में लगभग 2200 साल पहले मध्य प्रदेश के जबलपुर में सरगुजा के पर्वतों पर यह काव्य लिखा गया। इस काव्य में भूमिका में यही था कि एक यक्ष थे जो नेपाल में कुबेर के यहाँ नौकरी करते थे। कुबेर प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में भगवान शंकर की आराधना किया करते थे और इसके लिए उस यक्ष की जिम्मेवारी होती थी कि रोज सुबह वह फूलों की व्यवस्था करें। फिर ऐसा समय आता है कि यक्ष की शादी हो जाती है तो एक दिन सुबह उठने में लेट हो गए और कुबेर के पास लेट पहुँचे तो कुबेर को गुस्सा आया कि मेरी आराधना में फूलों की व्यवस्था नहीं हो पाई। तब यक्ष ने अपना कारण बताया कि स्वामी मेरी शादी हो गई है कारणवश सुबह मैं जल्दी नहीं उठ पाया। तो कुबेर बोले कि जिस पत्नी के प्रेम के कारण तूने अपनी जिम्मेवारी को गौण समझा उसी की सजा मैं तुम्हें दे रहा हूँ। और उन्हें स्थानांतरित कर दिया मध्य प्रदेश में सरगुजा के पर्वतों पर। अब उसे अपनी पत्नी से मजबूरी में बिछड़ना पड़ा। बिछड़ने की सबसे बड़ी पीड़ा यह होती है कि संवाद टूट जाता है। एकाएक यक्ष ने देखा कि आसमान पर घने काले बादल छाए हुए हैं और बादल नेपाल की तरफ जा रहे थे तो यक्ष ने बादलों के ऊपर अपना संदेश लिखकर याचना की कि यह संदेश मेरी पत्नी तक पहुँचे। इस संदेश को मेघदूतम के रूप में आम जन के सामने कालिदास जी ने परोसा। बादलों के माध्यम से संदेश पहुँचाने वाली यह बात उस समय कुछ विज्ञान प्रेमियों ने मजाक समझी। लेकिन अगर उसे समय उसकी गंभीरता से लिया जाता तो

जिस टेक्नोलॉजी को आज क्लाउड कम्प्यूटिंग के नाम से जानते हैं इसका आगाज बहुत पहले हो चुका होता। आज के दिन जो हम मोबाइल में जी एसएमएस उतरता देखते हैं वह कहीं-ना-कहीं उसी का एक रूप है। तकनीकी और साहित्य का संबंध बहुत समय पहले से ही रहा है। यह नया नहीं है। आधुनिक समय में टेक्नोलॉजी और साहित्य का संगम होने से साहित्यिक रचना की सुंदरता और भी कहीं अधिक बढ़ गई है। सोशल मीडिया और डिजिटल कूटनीति के बढ़ते परिवेश में तो तकनीकी और साहित्य का संगम और भी प्रभावशाली हो गया है।

किस तरीके से साहित्यिक रचनाओं की सुंदरता बढ़ी है उसके लिए निम्न बिंदुओं पर ये शोध पत्र गौर करता है, जो निम्नलिखित है -

1. संप्रेषण :- जब भी कोई वक्ता साहित्य रचना का वाचन करता है तो श्रोताओं तक उसे सुनने के लिए माइक की आवश्यकता होती है, कॉलर माइक की आवश्यकता होती है जिसके माध्यम से आवाज दूर तक पहुँचाई जाती है। आज के दिन साहित्यिक रचना का वाचन और भी आकर्षक बनाने के लिए रिकॉर्डेड पार्श्व संगीत का प्रयोग भी एक सशक्त टूल है। इसके अलावा विभिन्न साउंड इफेक्ट के माध्यम से उसे और भी उत्कृष्ट प्रस्तुति के लायक बनाया जाता है।

2. सांझा करनाः- यानी कि हम पहले साहित्यिक रचना को फैलाना केवल लिखित रूप में ही संभव था। लेकिन आज के दिन हम यु ट्यूब, फेसबुक और विभिन्न सोशल प्लेटफार्म ऐप्स हैं जिनके माध्यम से हम अपने साहित्य को बहुत कम समय में दूर तक बहुत सारे लोगों के साथ एक ही समय में साझा कर सकते हैं।

3. मौलिकता अधिकारः- टेक्नोलॉजी के माध्यम से बहुत सारे ऐसे टूल हैं जिनके माध्यम से आप अपने रचना का कॉपीराइट सुरक्षित रख सकते हैं। टर्निट इन जैसे सॉफ्टवेयर की मदद से जान सकते हैं कि साहित्यिक रचना की मौलिकता का स्तर क्या है। साहित्य अकादमी की वेबसाइट्स है, बहुत सारी अन्य साहित्यिक अकादमियों की वेबसाइट हैं जिन पर आप जब अपनी साहित्यिक रचना अपलोड कर देते हैं तो कोई दूसरा उसकी प्रामाणिकता को चुनौती नहीं दे सकता।

4. संकलनः- पहले हमें अपनी साहित्यिक रचनाओं को अपनी किसी किताब में छपवा कर संकलित करना पड़ता था। किंतु आज के आधुनिक दौर में टेक्नोलॉजी की मदद से उसे संरक्षित रखना कोई बड़ी चुनौती नहीं है। टेक्नोलॉजी के माध्यम से आप उसे अपनी ईमेल पर, गूगल ड्राइव पर या अपने डिजिटल डिवाइसेज में उन्हें संकलित रख सकते हैं और समय आने पर बहुत आराम से उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।

5. पठनीयः- मतलब अब आप अपनी साहित्यिक रचना का एक वीडियो बनाते हैं और वीडियो के नीचे उसकी जो पंक्तियाँ हैं वह आप उसे पर दिखा सकते हो ताकि जो कठिन शब्द है वह आसानी से दर्शकों को समझ में आ जाए।

6. साहित्यिक रचना निर्माणः- साहित्यिक रचना निर्माण हेतू विभिन्न वेबसाइट्स के माध्यम से हम नए-नए शब्दों को ढूंढ सकते हैं। बहुत सारी वेबसाइट ऐसी हैं जहाँ पर नवीन शब्दों का संकलन बहुत ही व्यवस्थित तरीके से हमें मिल सकता है। वहाँ हम नए-नए शब्दों को ढूंढ सकते हैं, तुकांत शब्द ढूंढ सकते हैं। अच्छे तुकांत शब्द के माध्यम से हम एक बहुत ही आकर्षक साहित्यिक रचना के निर्माण में हमें मदद मिलती है।

7. संदर्भ रेफरेंसः- मतलब हम किसी विषय पर जो अच्छे साहित्यकार हैं, अच्छे रचनाकार है, उनकी रचनाओं को पढ़कर हम यह शोध कर सकते कि हम जो रचना लिखने जा रहे हैं, उसमें और कितनी क्या गुंजाइश हो सकती है। हमें कहाँ से आगे लिखना प्रारंभ करना चाहिए। कहाँ तक लिखा जा चुका है। अब इससे आगे मुझे इस विषय पर शुरू करना चाहिए। तो यह भी रिसर्च हम विभिन्न वेबसाइट्स के माध्यम से कर सकते हैं।

8. सम्मेलन अथवा गोष्ठीः- साहित्यिक रचनाओं के विश्लेषण हेतु कोई भी विचार गोष्ठी करनी हो या फिर किसी सांस्कृतिक अवसर पर कोई काव्य गोष्ठी या साहित्यिक सम्मेलन करना हो, किंतु भौतिक रूप से सबका एक स्थान पर एकत्रित होना किसी कारण से संभव न हो पा रहा हो तब बहुत सारे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म ऐसे हैं जिनके माध्यम से हम यह काव्य गोष्ठियाँ/काव्य सम्मेलन/ साहित्यिक सम्मेलन कर सकते हैं। जैसे गूगल मीट, जूम जैसी टेक्नोलॉजी साहित्यिक सम्मेलन का बहुत ही सशक्त टूल है।

9. निजता प्रबंधनः- टेक्नोलॉजी की सहायता से हम अपने साहित्यिक रचना का फैलाव खुद नियंत्रित कर सकते हैं। इसमें पब्लिक और प्राइवेट दो ऑप्शन हमें मिलते हैं जिससे हम यह तय कर सकते हैं कि हमारी साहित्यिक रचना का फैलाव का स्तर कैसा हो। यानी कि टेक्नोलॉजिकल टूल्स की मदद से आप अपने पसंद के श्रोताओं के श्रेणी निर्धारण कर सकते हैं। तकनीकी के माध्यम से एक मंच बना सकते हैं- अपनी पसंद के श्रोताओं का, अपनी पसंद के वर्ग का। यह सारी बातें कहीं-ना-कहीं टेक्नोलॉजी के माध्यम से ही संभव हो पाती हैं तो आज के समय में साहित्य और तकनीक दोनों आपस में एक युग्म के रूप में साहित्य को उत्कर्ष पर ले जाने का काम बहुत मुखरता से कर रही है।

निष्कर्ष :- अतः हम कह सकते हैं कि तकनीकी और

साहित्य एक तरीके से एक दूसरे के पूरक ही हैं। साहित्य के बिना तकनीक पूर्ण नहीं व तकनीक के बिना साहित्य अधूरा है। इनका समावेश ही पूर्णता की परिभाषा है।

संदर्भ

1. संजय चौधरी (2022), ''हिन्दी में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता।'' DOI: 10-56042/bvaap-v28i1-68027
2. अन्विति मोहिले (2023), ''सोशल मीडिया और भारत की डिजिटल कूटनीति : हाल के अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों से सबक।''
3. बालेन्दु शर्मा दाधीच (2023), ''साहित्य में भी 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस'?'' https://panchjanya.com/2023/04/01/273206/bharat/artificial-intelligence-in-literature-too/
4. विद्यासागर उपाध्याय (2017). ''वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा के रूप में हिंदी भाषा का स्वरुप।'' जे ई टी र (JETIR) दिसंबर 2017, खंड 4, अंक 12 www.jetir.org (ISSN-2349-5162)

वेबसाइटः-

- https://pustak.org/index.php/books/bookdetails/3613/Meghdoot
- Kalidasa's Meghadhuta, or, the Story of a Yak?a Slacking on the Job | Eric M Gurevitch | The Hypocrite Reader
- https://www.intalio.com/role-of-technology-public-government-sector/
- https://reputationtoday.in/technology-an-enabler-of-powerful-storytelling/

डॉ. सुधीर
कंप्यूटर विज्ञान विभाग, पीजीटी
स्कूल शिक्षा बोर्ड, रेवाड़ी (हरियाणा)
डॉ. अजय कुमार
कंप्यूटर विज्ञान विभाग
इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
डॉ. रीना हुड्डा
कंप्यूटर विज्ञान विभाग
इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
डॉ. शिवानी
कंप्यूटर विज्ञान विभाग
इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)

बिहार का तिलका मांझी विद्रोह : एक मूल्यांकन

–डॉ. अजीत कुमार

शोध सार

यह आलेख मूलरूप से 18वीं शताब्दी में बिहार के तिलका मांझी (11 फरवरी 1750 ई.-13 जनवरी 1785 ई.) के संघर्षों और विद्रोहों को पुनर्व्याख्यायित करने की कोशिश है। अब तक के इतिहास लेखन में आदिवासी क्रांतियों और क्रांतिकारियों को जो जगह मिलनी चाहिए वह बिल्कुल नहीं दी गई है। इतिहास लेखन में क्षेत्रीय इतिहास की भी लगभग वही समस्या है। आदिवासी समुदाय के स्वयम निरक्षर होने के कारण कोई भी लिखित प्रमाण उनके लिए अकल्पनीय बात थी। औपनिवेशिक अभिलेखों में आदिवासी विद्रोह और विद्रोहियों के सन्दर्भ में ब्रिटिश शासन और प्रशासनिक अधिकारियों का जिक्र तो मिलता है, लेकिन आदिवासी समुदायों द्वारा किए गए संघर्षों और विरोधों पर कम ही लिखा या बताया गया है। अतः तिलका मांझी और उनके द्वारा किये गए जन आंदोलन की पुनः व्याख्या और विश्लेषण करने तथा आज की पीढ़ी तक उसे पहुँचाने की जरूरत है। तिलका मांझी का मुख्य उद्देश्य क्या था? क्या वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर पाने में कामयाब हो पाए? क्या यह एक क्रांति का रूप ले सका? आदिवासी समाज के जननायकों को इतिहास में समुचित स्थान क्यों नहीं दिया गया? क्या तिलका मांझी के नेतृत्व में हुआ आन्दोलन सिर्फ एक क्षेत्रीय घटना थी? क्या आदिवासी समुदायों की सोच, विचार, संघर्ष और गाथा को राष्ट्रीय परिदृश्य पर लाने के लिए तिलका मांझी का योगदान नाकाफी रहा है। यदि नहीं तो तिलका मांझी के इस प्रयास ने भविष्य में आदिवासी और जनक्रांति आंदोलन के मार्ग को किस तरह प्रशस्त किया? क्या ब्रिटिश प्रशासन का आदिवासियों के प्रति इस आंदोलन के बाद रवैया बदल गया? क्या तिलका मांझी को प्रथम स्वतंत्रता सेनानी की संज्ञा दी जा सकती है आदि कई महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके सन्दर्भ में तिलका मांझी विद्रोह पर बात की जा सकती है।

मुख्य बिंदु : आदिवासी, उपनिवेश, पहाड़िया, क्लीवलैंड, आंदोलन।

प्रस्तावना

18वीं शताब्दी जहां यूरोप में घटित कई क्रांतियों के लिए जाना जाता है जैसे-औद्योगिक क्रांति, अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांति आदि। उसी तरह से 18वीं शाताब्दी का आधुनिक भारत आदिवासी क्रांतियों के रूप में देखा जा सकता है। 18वीं शताब्दी में भारतीय महाद्वीप पर दो निर्णायक युद्ध (1757 ई. प्लासी और 1765 ई. बक्सर) के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली थी। इसके बाद अपनी नीतियों के माध्यम से भारत में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव लाने का प्रयास किया, जिससे समाज में कई तरह की टकराहटें पैदा हुईं। इन परिवर्तनों के प्रतिक्रिया स्वरूप ही आधुनिक भारत में आदिवासी आंदोलनों की एक श्रृंखला की शुरुआत हो जाती है। औद्योगिकीकरण और औपनिवेशिक नीतियों ने एक नए संघर्ष को जन्म दिया। आदिवासी समुदाय इस नए संघर्ष का अनिवार्य हिस्सा बन गया। जिस तरह से ब्रिटिश शासकों की निगाह भारत के प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ी, उनके पहले शिकार यहाँ निवास करनेवाले आदिवासी हुए। जल, जंगल और जमीन की लड़ाई लड़ने वाले आदिवासी लोग उनकी दोहन और शोषण की नीतियों के विरुद्ध थे। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु साम्राज्यवादी देशों ने पहले सुधार और फिर विस्तार की नीति अपनाई। आरंभिक दौर में आदिवासी समुदाय कुछ सुधारों को समझ नहीं पाए और उनकी नीतियों के शिकार होते चले गए। अपने ही जल, जंगल और जमीन पर उनकी पकड़ कमजोड़ होती गई। इन परिस्थितियों ने आदिवासियों को अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश शासकों के खिलाफ संघर्ष करना, उनका मुख्य ध्येय बना दिया। आधुनिक भारत के इतिहास पूर्व के एकीकृत बिहार और झारखंड राज्य में कई जनजातीय या आदिवासी विद्रोह हुए उनमें तिलका मांझी का विद्रोह 1783 ई., चेरों का आंदोलन 1795-1800 ई. के बीच, तमर विद्रोह 1795-1800 ई., मुंडा विद्रोह 1797 ई., ज्वार विद्रोह 1798 ई., भूमिज विद्रोह 1798-99 ई. आदि प्रमुख विद्रोह हैं। आश्चर्य की बात है कि इन सभी विद्रोहों में आदिवासियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।आखिर ऐसा क्यों हुआ कि जल, जंगल और जमीन की

लड़ाई के लिए सिर्फ आदिवासी ही अग्रसर हुए? क्या कारण है कि सिर्फ आदिवासियों को अपनी सुरक्षात्मक लड़ाई के लिए अंग्रेजों से मुकाबला करना पड़ा? क्या उनका पिछड़ापन इसके लिए जिम्मेदार था? क्या जल, जंगल और जमीन की सुरक्षा करना सिर्फ इनका कर्त्तव्य था? इतिहासकारों ने या तो इन पहलुओं को छुपाने का प्रयास किया है या इस पर बहुत कम लिखा है।

भारतीय इतिहास लेखन के आरम्भ से ही यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि इतिहास हमेशा शक्तिशाली लोगों के लिए लिखा जाता रहा है, यही कारण है कि इतिहास लेखन में आदिवासी और जनजातीय इतिहास को वह जगह नहीं मिली जिसका वह हकदार है। आदिवासी जननायक इतिहास के पन्नों में अपना उचित स्थान पाने में असमर्थ रहे हैं। क्या इसके पीछे जातिवादी मानसिकता काम करती नहीं दिखाई देती है? इसी मानसिकता ने आदिवासी आंदोलनों और जननायकों को मानव स्मृति से मिटाने का निरंतर प्रयास है और उसका यह प्रयास अब भी बदस्तूर जारी है। साम्राज्यवादी इतिहासकार इसे अपनी सत्ता के बलशाली होने और विद्रोहियों के कमजोर होने का परिचायक मानते हैं। वे आदिवासियों के संघर्ष और विद्रोह को एक नाममात्र की घटना के रूप में देखते हैं और आदिवासियों को ब्रिटिश सत्ता को स्वीकार करनेवाले, हारे हुए भारतीय के रूप में। इन्हीं साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने 18वीं शताब्दी को भारत का अंधकार युग बताया। क्या यह उनकी सोची-समझी चाल थी या ब्रिटिश शासन और भारत के प्रति उनके दायित्वों से - आदिवासी युद्ध और विद्रोह के संदर्भ में अंग्रेजों का बचाव करने की साजिश? ऐसा इसलिए कि जहाँ एक ओर यूरोप में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक बदलाव और सुधार की प्रक्रिया जारी थी वहीं भारत में अंग्रेजी हुकूमत के द्वारा दमन, शोषण का दौर चल रहा था। जहां एक ओर यूरोपीय देशों को अपने औद्योगिक उत्पादन के लिए कच्चे माल, सस्ते मजदूर और बाजार की आवश्यकता थी, वहीं दूसरी ओर भारत में केंद्रीय सत्ता और विद्रोही ताकतों का कमजोर होना उनके इस उद्देश्य की पूर्ति का साधन। आख़िर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासनिक अधिकारियों ने आदिवासियों को ही अपना निशाना क्यों बनाया? क्या उस समय की रियासतें, राजा और रजवाड़े सबने अपनी सत्ता की बागडोर अंग्रेजों को सौंप दी थी या उनकी गुलामी मंजूर कर ली थी? इन परिस्थितियों में तिलका मांझी जैसे युवा क्रांतिकारी ने अपने समुदाय को किस तरह संगठित किया? धन, लोभ, लालच, दमन और शोषण से आदिवासी समुदायों को किस प्रकार बाहर निकालकर संघर्षों का रास्ता अख्तियार किया इन बातों का अध्ययन और विश्लेषण आज भी महत्वपूर्ण है।

तिलका मांझी और स्पार्टाकस

जननायक तिलका मांझी (1750 ई.-1785 ई.) का जन्म बिहार राज्य के भागलपुर जिले में हुआ था। कायदे से वे भारत के प्रथम स्वतंत्रता सेनानी कहलाने के हकदार हैं, लेकिन इतिहास में कभी भी उन्हें उचित स्थान प्रदान नहीं किया गया। वे एक निडर और साहसी योद्धा थे जिन्होंने ब्रिटिश हुकूमत को सामने से ललकारने का काम किया और इस दिशा में सभी आदिवासी को एकजुट करने का भी प्रयास किया। अपनी वीरता और साहस का परिचय देते हुए उन्होंने भागलपुर के पहले जिला मजिस्ट्रेट ऑगस्टस क्लीवलैंड को अपने अदम्य साहस और वीरता के साथ लड़ाई लड़ते हुए घायल कर दिया था। इसके पश्चात कुछ दिनों बाद ऑगस्टस क्लीवलैंड की मौत हो गई। इस कृत्य के लिए तिलका मांझी को कठोरतापूर्वक सजा दी गई।

अमेरिकी उपन्यासकार हॉवर्ड फास्ट ने अपनी कृति स्पार्टाकस में जिस तरह से रोमन सभ्यता के विरुद्ध, ग्लैडिएटर स्पार्टाकस के नेतृत्व का बखान किया है उसकी तुलना तिलका मांझी के संघर्षों से की जा सकती है। दुनिया का पहला आदिवासी विद्रोह रोम के पुरखा आदिवासी लड़ाका स्पार्टाकस को माना जाता है उसी तरह से भारतवर्ष का पहला आदि विद्रोही तिलका मांझी को मानना कोई गुनाह नहीं होगा। जहाँ एक ओर स्पार्टाकस गुलामों का नेतृत्व कर रहे थे वहीं तिलका मांझी आदिवासी समुदायों का। जहाँ एक तरफ शक्तिशाली रोमन साम्राज्य था, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्य। स्पार्टाकस ने जहाँ रोमन जनरल के लश्कर को पराजित किया था वहीं तिलका मांझी ने ऑगस्टस क्लीवलैंड की सेना को। जिस तरह रोम में स्पार्टाकस ने दमन कार्यों के खिलाफ जन आंदोलन खड़ा किया था ठीक उसी तरह तिलका मांझी ने भी जन आंदोलन को मूर्त रूप दिया। स्पार्टाकस की गुलामों की सेना की तरह तिलका मांझी ने भी आदिवासियों की सेना का नेतृत्व किया और ब्रिटिश प्रशासन की नीतियों के खिलाफ पहली बिगुल फूंकी। अपने आदर्शों और वसूलों पर खरे उतरते हुए पूर्वी भारत में एक नए प्रयास को जन्म दिया और एक सफल नायक की तरह अपने प्राणों की आहुति देकर संघर्ष के लिए दूसरे भारतीयों को प्रेरित किया। दोनों ही क्रांतिकारी अपने समाज और देश के लिए प्रेरणास्रोत हैं और रहेंगे। समय और पृष्ठभूमि अलग-अलग थी लेकिन संघर्ष एक जैसे। इसी कारणवश दोनों ही योद्धा अजर और अमर हैं।

तिलका मांझी और इतिहास लेखन

साहित्यकारों ने तिलका मांझी और उनके संघर्षों और बलिदानों को बताने का प्रयास किया है। इनमें सबसे पहले महाश्वेता देवी ने बंगाली में ''शालगिरर डाके'' लिखकर उनके जीवन और विद्रोह का वर्णन किया है। यह उपन्यास

हिंदी में 'शालगिरह की पुकार पर' नाम से अनुवादित और प्रकाशित हुआ है। दूसरा उपन्यास 'हुल पहाड़िया' नाम से प्रकाशित हुआ जिसे राकेश कुमार सिंह ने लिखा है। इसमें तिलका मांझी के जीवन संघर्ष का बहुत ही सार्थक तरीके से वर्णन किया गया है। यद्यपि ये दोनों ही कृतियाँ औपन्यासिक विधा की रचना है, फिर भी बिना किसी अतिरेक के ऐतिहासिक तथ्यों को भी रखा गया है। दोनों कृतियाँ साहित्य और इतिहास का ऐसा संगम हैं जिसमें औपन्यासिक विधा की सीमा में तिलका मांझी के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि प्रस्तुत किया गया है। यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या साहित्यिक उपन्यास इतिहास को बताने में पूर्णतः सक्षम हैं? वास्तव में साहित्यिक कृतियाँ किसी भी घटना और महापुरुष के व्यक्तित्व को भावपूर्ण तरीके से जीवंत रूप में लोगों तक पहुँचाने का सबसे सरल और सहज माध्यम और सर्वाधिक उपयोगी विधा है। इतिहास में ऐतिहासिक तथ्यों को अभिलेखों व अन्य प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया जाता है, जबकि साहित्य में भावपूर्ण परिकल्पना की जाती है। महाश्वेता देवी का मानना है कि ''राजे रजवाड़ों के इतिहास में घटनाएँ तेजी से घटित होती हैं, जबकि साधारण मनुष्य के इतिहास में हरेक घटना के गंभीर परिणाम होते हैं। विदेशी बंगाल लूटने आए थे, यही रजवाड़ों का इतिहास था।''[1] यह कहना उचित है क्योंकि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का अपना मकसद और इरादा था जिसे वह तीव्र गति से पूरा करने का प्रयास कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर आदिवासी समाज ने उनकी गंभीर और कुटिल चाल को समझने में देर कर दी और उनके बुने हुए जाल में फंसते चले गए। 1661 में ''अंग्रेज सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में किले बनाने, कंपनी के सिक्के चलाने, सुरक्षा हेतु सेना रखने, यहाँ तक कि आवश्यक हो तो युद्ध करने के अधिकार भी दे डाले थे।''[2] अधिकार पाकर ईस्ट इंडिया कंपनी आक्रामक होती चली गई परिणामस्वरुप 18वीं शताब्दी में एक के बाद एक लगातार आदिवासी विद्रोह हुए। आदिवासियों के विद्रोह और संघर्ष से ''रजवाड़ों के इतिहास के साथ जन इतिहास का मिलन हुआ।''[3] यह इतिहास की अविस्मरणीय घटना थी क्योंकि इस घटना ने पूरे समाज को अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए मजबूर कर दिया। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि ''रजवाड़ों का इतिहास तो जनसाधारण के इतिहास की नींव पर ही तैयार होता है।''[4] यह सर्वविदित है कि समाज में कमजोर, लाचार और बेबस लोगों का शोषण करने के बाद ही शासक वर्ग अमीर बन पाते हैं और उन्हीं पर राज करते हैं। उत्पादन की प्रक्रिया में लिप्त होकर आदिवासी समुदाय अपने सुख-दुःख को भूलकर अपने वतन की भी सुरक्षा का दायित्व स्वीकार करता है। जिनका पेट भरा होता है, उन्हें न इसकी चिंता होती है और न ही कोई फिक्र। यह कहना लाजमी है कि ''जंगल के समाज का पुराना नियम है। जो विपत्ति सभी की है उसका मुकाबला सबको मिलकर करना होगा।''[5] इस बात से कोई भी इंकार नहीं कर सकता है कि आदिवासी समुदाय कभी भी ''किसी शासक की अधीनता कभी कबूल नहीं की। मुगल अमले, नवाब सूबेदार–किसी ने उनसे कर लगान नहीं माँगा। इसके एवज में परगनादार, चकलेदार दुर्गा पूजा में उन्हें सम्मान देते रहे हैं।''[6] ऐसी प्रथा का संचालन करने वाले आदिवासी समुदायों के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी का स्वरूप किसी से छुपा हुआ नहीं था। कंपनी ने भी इस नीति को अपनाया लेकिन आदिवासियों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ा, जिसके वे शिकार हुए और उनकी पारंपरिक व्यवस्था चरमरा गई। ऐसे में इन आदिवासियों के सामने अपने वतन और अधिकारों की सुरक्षा का प्रश्न था, जिसके लिए संघर्ष और टकराहट के सिवाय और कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

पहाड़िया समुदाय का इतिहास

1765 ई. में जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी पर कब्जा कर लिया तो उन्हें पता चला कि भागलपुर में राजमहल पहाड़ियों के पहाड़िया निवासी आसपास के देश में तबाही मचा रहे थे। 1769 ई. में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ''विलियम हारवुड को प्रांतों का संक्षिप्त इतिहास, राज्य की उपज और भूमि की क्षमता, राशि प्राप्त करने के निर्देशों के साथ 'पर्यवेक्षक' के रूप में नियुक्त किया।''[7] अंग्रेज आधिकारियों ने इस क्षेत्र की आर्थिक और राजनीतिक महत्ता को समझते हुए पहाड़िया समुदाय को अधीन करने और देश में शांति और व्यवस्था लाने के लिए 1772 ई. में कैप्टन ब्रुक को नियुक्त किया। कैप्टन रॉबर्ट ब्रुक ने इस क्षेत्र में दमन की नीति अपनाई और दुर्दम्य जमींदारों और पहाड़ियाओं के खिलाफ सैन्य छापे मारे। इस कारवाई से उन्हें तराई के जमींदारों के खिलाफ उल्लेखनीय सफलताएँ मिलीं, जिनमें से कई को कंपनी की अधीनता स्वीकारने के लिए मजबूर किया गया था। हालाँकि, उन्होंने पाया कि उनकी कॉर्पस का पहाड़िया लोगों से कोई मुकाबला नहीं था। पहाड़ियों पर जंगल बहुत घना था, कोई सड़क नहीं थी, कोई आपूर्ति नहीं थी और पहाड़ी लोगों के खुली लड़ाई में आने की कोई संभावना नहीं थी, उनके खिलाफ सफलता की संभावना बहुत कम थी। ऊबड़-खाबड़ इलाकों की गहन जानकारी होने के कारण, पहाड़िया अपनी इच्छानुसार प्रकट हुए और गायब हो गए, और ब्रिटिश सैनिकों को अपने जहरीले तीरों से मार गिराया। इन जहरीले तीरों से कॉर्पस को डर लगता था क्योंकि इनसे लगने वाला हर घाव घातक होता था। इन कठिनाइयों में राजमहल पहाड़ियों की अस्वास्थ्यकर जलवायु भी शामिल थी जिसके परिणामस्वरूप लाइट इन्फैंट्री के सैनिकों कई

बीमारियों के शिकार बने और कई सैनिकों की मौतें हुईं।

पहाड़ियों और अंग्रेज सैनिकों के बीच यह एक निराशाजनक संघर्ष साबित हो रहा था, जिसने अधिकारियों को लड़ाई के तरीकों में बदलाव करने के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया था। इस बीच, पहाड़िया लोगों को भी पुराने तरीके की लूटपाट की निरर्थकता का एहसास होने लगा। जब भी उन्हें मैदानी इलाकों में देखा जाता था, लाइट इन्फैंट्री द्वारा उनका पीछा किया जाता था और उन पर गोली चलाई जाती थी। तो यह उनके लिए भी उतना ही चुनौतीपूर्ण मुकाबला था। इस तरह से चल रहे संघर्ष की निरर्थकता को समझते हुए कैप्टन रॉबर्ट ब्रुक ने समझौते का पहला ऐतिहासिक कदम उठाया। उन्होंने सरदारों और उनके ग्रामीणों, दोनों पुरुषों और महिलाओं को अपनी पहाड़ियों से उतरने और उन्हें व्यक्तिगत रूप से देखने के लिए आमंत्रित करने की प्रथा शुरू की। जो कोई भी उनके पास आता था, उसके साथ दयालुता से व्यवहार किया जाता था, दावत दी जाती थी और उसे पगड़ी, पैसे, मोती या कुछ मामूली उपहार दिए जाते थे। उन्होंने फोर्ट विलियम को एक सुलह योजना भी प्रस्तुत की जिसमें पहाड़िया कैदियों, उनके वार्डों और महिलाओं के प्रति उदारता दिखाना और नीचे खेती योग्य इलाकों में पहाड़ियों के निवास को प्रोत्साहित करना शामिल था।

1774 में कैप्टन जे. ब्राउन को कैप्टन ब्रुक का उत्तराधिकारी बनाया गया। ब्राउन का यह आकलन कि ''यदि मनसब जागीर के प्रलोभन में एक बार खेतौरी बाह्य शक्ति मुगलों की सहायता कर सकते थे तो आर्थिक सहायता पाने के लालच में वे पुनः कंपनी का भी स्वागत कर सकते थे।''[8] ब्राउन की कूटनीति आंशिक रूप से सफल रही थी।

पहाड़िया समुदाय का अपना एक इतिहास रहा है। पहाड़िया जनजाति की तीन शाखाएँ प्रचलित हैं माल पहाड़िया, कुमारभाग पहाड़िया एवं सांवरिया पहाड़िया। अंग्रेज रेमरेंड ई. डोयेसे जिन्होंने मालतो भाषा जो पहाड़िया समूह की भाषा मानी गई है, का खास अध्ययन किया था। उनके अनुसार मालेर का अर्थ आदमी होता है जो पहाड़ों में निवास करता है। मलयालम भाषा में मालाबार का अर्थ भी पहाड़ी इलाका होता है। माल द्रविड़ भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पहाड़ी आदमी होता है। पहाड़िया लड़ाकू जाति के लोग थे। 1770 में माल पहाड़िया लोगों ने जमींदारों की जातियों का विरोध किया था। 1772 में कैप्टन ब्रुक आए थे और ''तब से ही कंपनी के राज कर के नाम पर जमीन का जुआ शुरू हुआ और विद्रोह भी।''[9] ऊपर हम इसकी चर्चा कर चुके हैं कि रॉबर्ट ब्रुक की नीतियों का असर कंपनी और पहाड़ियों पर क्या हुआ। एक साल बाद ही ऑगस्टस क्लीवलैंड को राजमहल क्षेत्र का सुप्रिटेंडेंट बनाया गया। तभी से उनकी नजर इन पहाड़िया समुदायों पर थी। 1774 में कैप्टन ब्रुक ने हिल सिस्टम कायम किया जिसके अनुसार परगना या ठप्पा के प्रधान नायक एवं गाँव के प्रधान मांझी बनाए गए। उन्हें बंजर जमीन देकर और सिपाही बनाकर पहले अपने होने का एहसास दिलाया गया। उनसे उत्पादन की सभी सामग्री खरीद ली गई ताकि बाद में उसी सामग्री की बिक्री और खरीददारी इन आदिवासियों के साथ की जा सके। विभिन्न आदिवासी समुदायों को उनकी संख्या के अनुसार सुविधा और संपन्नता निर्धारित की गई लेकिन अंग्रेजों की निगाह आदिवासियों की जल, जंगल और जमीन पर थी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई और विभिन्न पहाड़िया समुदायों में लड़ाई करवा दी। अंग्रेजों के फूट डालो राज करो कि इस नीति का वीर स्वतंत्रता सेनानी तिलका मांझी ने विरोध किया। 1779 में ऑगस्टस क्लीवलैंड भागलपुर के कलेक्टर नियुक्त किए गए। उन्होंने भी रॉबर्ट ब्रुक की नीतियों का विस्तार किया। भागलपुर के युवा कलेक्टर के सामने व्यापक अवसर उभर कर सामने आये। आदिवासी समुदायों को अभी तक प्रांत को ढालने और आकार देने, अराजकता को खत्म करने, आदिवासी और अब तक अदम्य लोगों पर एक उच्च सभ्यता की पहली छाप डालने की सबसे बड़ी उपलब्धि हासिल करने का जादुई आकर्षण दिया गया था। लेकिन पहाड़िया लोगों के लिए ऑगस्टस क्लीवलैंड के प्रयास हिल रेंजर्स और हिल असेंबली से कहीं आगे तक गए। उन्हें (अंग्रेजों को) बाहरी हस्तक्षेप से हमेशा के लिए बचाने के लिए, जिससे वे बहुत परेशान थे, उन्होंने उनकी (पहाड़िया समुदायों) के जमीनों को सरकारी संपत्ति बना दिया। अब उन्हें (पहाड़िया समुदायों को) नफरत करने वाले विदेशियों के अतिक्रमण से डरने की जरूरत नहीं थी। इसके बाद ब्रिटिश कानून की पूरी ताकत से संरक्षित एक रेखा थी जिसे जमींदार के रूप में वह कभी भी पार नहीं कर सकते थे। पहाड़िया लोग सरकार से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे और उन्हें लगान से पूरी तरह मुक्त रखा गया था। ऑगस्टस क्लीवलैंड खुद पहाड़िया समुदायों के बीच गए और कहा ''हथियार नहीं लाया हूँ। बातें करने आया हूँ। पहले कंपनी ने बड़ी धांधली की है। कम दाम में चावल खरीदा, तुम्हें लूटा। यह सब कुछ दुष्ट लोग कंपनी के नाम पर करते रहे। कलकत्ता में बैठी कंपनी सब कुछ जान गई है। इसलिए मैं आया हूँ। साल में दो बार सरदार के साथ भेंट करूँगा। सब आरोप सुनूँगा। मैं तुम्हारा दोस्त हूं।''[10] क्या यह सचमुच ऑगस्टस क्लीवलैंड की आदिवासी समुदायों के लिए प्रेम था या आनेवाले समय में उनके लिए खतरा? इस खतरे की आहट तिलका मांझी को तो लग गई थी लेकिन उनके समुदायों के भोले-भाले आदिवासी भाइयों को यह बात बाद में समझ में आई, जब उनके पास पछताने के सिवाय और

कोई चारा नहीं था। कंपनी ने सरदार सहित सभी आदिवासी समुदायों के लोगों को अपने सिपाही के रूप में भर्ती कर अपनी पहुँच को गाँव, कस्बों तक फैला दिया और कुछ सहायता देकर पहाड़िया लोगों के दिलों में वे अपना स्थान बना चुके थे। इस समय तक तिलका मांझी अपने युवा जीवन से गुजर रहे थे और कंपनी की हर चाल को समझने का प्रयास भी कर रहे थे। हर संकट एवं चुनौती क्रांतिकारियों के लिए एक अवसर प्रदान करता है, यह अवसर तिलका मांझी को भी मिला।

तिलका मांझी : प्रारंभिक इतिहास

तिलका मांझी को लेकर कई सारी भ्रांतियाँ हैं। तिलका मांझी कौन थे? वह पहाड़िया थे या संथाल थे ? जिस तरह से आजकल सभी दक्षिण भारतीयों को मद्रासी कह दिया जाता है, उसी प्रकार सभी आदिवासियों को संथाली। लेकिन सच्चाई कुछ और ही है। संथाल परगना का गजेटियर गवाह है कि ''पहाड़िया आंदोलन को कुचलने के बाद भागलपुर के संयुक्त दंडाधिकारी सदरलैंड ने संथालों को सरकारी सहायता और करमुक्त कृषि की सुविधा देकर जंगल तराई इलाकों में बाकायदा बसाया था। सदर लैंड ने जंगल तराई को संथालों और पहाड़ियों के लिए आरक्षित कर इस क्षेत्र का नया नामकरण किया था दामिन ए कोह अर्थात पहाड़ियों का लहंगा।''[11] इतिहास के पन्नों में यह दर्ज है कि तिलका मांझी का जन्म जबड़ा पहाड़िया के रूप में 11 फरवरी 1750 को आज के बिहार में सुल्तानगंज के तिलकपुर नामक गांव में एक अदिवासी परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सुंदर मुर्मू था। उनका असली नामजबड़ा पहाड़िया था। यह ईस्ट इंडिया कंपनी ही थी जिन्होंने उन्हें तिलका मांझी नाम दिया। पहाड़िया भाषा में तिलका का अर्थ गुस्से में लाल आंखों वाला व्यक्ति होता है। राकेश कुमार सिंह अपने ऐतिहासिक उपन्यास में बताते हैं कि ''राजमहल की पहाड़ियों पर बसे पहाड़िया समाज की हजारों वर्षों से चली आ रही परंपरा थी कि गाँव के मांझी (मुखिया) के ज्येष्ठ पुत्र को पिता के बाद मांझी का पद स्वतः प्राप्त हो जाना था।''[12] इसी परंपरागत व्यवस्था के कारण जबड़ा आगे चलकर ग्राम प्रधान बना और पहाड़िया समुदाय में ग्राम प्रधान को मांझी कहकर संबोधित करने की प्रथा थी। इसी से उनका नाम तिलका मांझी पड़ा। ब्रिटिश प्रशासन जबड़ा पहाड़िया को खूंखार डाकू और गुस्सैल (क्रोधित) मांझी भी कहते थे। दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटिश दस्तावेजों में जबड़ा पहाड़िया नाम तो है लेकिन तिलकामांझी का कोई उल्लेख नहीं है। यह क्षेत्र ''ईस्ट इंडिया कंपनी का जंगल तराई पर अधिकार होने से पहले पूरब में वर्द्धमान-हुगली तक, पश्चिम में राजमहल से लोहरदगा और हजारीबाग के घने जंगलों तक, उत्तर में वीरभूम भागलपुर और दक्षिण में सिंहभूम से उड़ीसा तक का क्षेत्र जंगल तराई था।''[13] 1770 ईस्वी में बिहार के भागलपुर जिले का संथाल परगना क्षेत्र, जहाँ जनजातीय समाज रहा करते थे, सूखे से बुरी तरह से प्रभावित था। वह इस त्रासद स्थिति में से भूख और उससे पैदा होने वाली बीमारियों से मर रहे थे। ऐसे समय में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी का दायित्व उनके लिए भोजन और राहत सामग्री उपलब्ध कराना था। ब्रिटिश प्रशासकों ने मौके का गलत फायदा उठाकर राहत सामग्री के बदले आदिवासी समुदाय के लोगों का शोषण करना शुरू कर दिया। उनके आर्थिक स्रोत जो जल, जंगल और जमीन हुआ करती थी इस पर कब्जा करना शुरू कर दिया। कंपनी ने पहाड़िया समुदायों को खेती से जुड़ने हेतु सहायता देने का प्रावधान किया, परंतु पहाड़िया खेतिहर पर रियायती दर पर लगान भी सुनिश्चित कर दिया। यह एक अलग तरह की व्यवस्था थी जिसे पहाड़िया समुदाय पहली बार मानने को मजबूर हो रहे थे।

सभी पहाड़िया समुदाय इस व्यवस्था के समर्थक नहीं थे। प्राकृतिक संसाधानों पर किसी गैर का हक कैसे हो सकता था? उनकी समझ में पारंपरिक व्यवस्था का ताना बाना था जिसमें जल, जंगल और जमीन के एकमात्र हकदार पहाड़िया लोग होते थे। अपने इसी अधिकार को बचाने और सुरक्षित रखने की उम्मीद में तिलका मांझी ने आदिवासियों को संगठित किया और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के उत्पीड़न के खिलाफ विद्रोह किया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का इस्तेमाल करते हुए विद्रोहियों से अलग कुछ स्थानीय आदिवासी नेताओं को उनके राजस्व माफ करके अपने अधीन कर लिया। तिलका मांझी को अंग्रेजों की यह चाल समझ में आ गई। उन्होंने ब्रिटिश शोषण और अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिए आदिवासी समुदायों को एक सशक्त समूह के तहत संगठित किया। इस आंदोलन को एक जन आंदोलन बनाया और साल वृक्ष के पत्ते पर एक संदेश लिखकर प्रसारित किया जिसमें कहा गया था कि 'हमें एकजुट होना चाहिए' और यह मांझी विद्रोह के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

तिलका मांझी का मुख्य उद्देश्य

तिलका मांझी का उद्देश्य मुख्य रूप से पहाड़िया समुदायों की सभ्यता, संस्कृति और परंपराओं की साम्राज्यवादी ताकतों से सुरक्षा करना था। आदिवासी समुदायों के लिए पारंपरिक संसाधन जो जल, जंगल और जमीन थी उनके लिए महत्वपूर्ण थे। इन संसाधनों पर अभी तक किसी भी बाहरी शक्तियों ने कब्जा करने का प्रयास नहीं किया था। अपने अधिकार और शक्ति को पूरी तरह से सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने अपने समुदायों को जागृत और संगठित कर औपनिवेशिक शक्तियों तथा उनके प्रलोभनों से प्रभावित

हो रही व्यवस्था को चुनौती देने का काम किया। उनके लिए अपनी सभ्यता और संस्कृति सर्वोपरि थे। हर हालत पहाड़ी और आदिवासी संस्कृति को संरक्षित रखने के लिए कटिबद्ध होकर दुश्मनों से लोहा लेकर उन्हें एक आदर्श प्रस्तुत उनके उद्देश्य थे। सरकारी नीतियों के प्रति सचेत होकर अपनी दासता और गुलामी से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना, आपसी वैमनस्य को भुलाकर समाज और देश की सुरक्षा की भावना जागृत कर वे आदिवासी पहाड़ी समाज को मजबूत एक बनाए रखना चाहते थे। अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उन्होंने अपने प्राणों की आहूति दी। आने वाली पीढ़ी ने उनके इस बलिदान से प्रेरणा ली और ब्रिटिश शासन काल में होने वाले कई आदिवासी आंदोलनों के वे प्रेरणाश्रोत बने रहे।

विद्रोह के लिए मुद्दे

औपनिवेशिक काल से पहले जंगलों में निवास करने वाले समुदायों या उस पर आत्मनिर्भर रहने वाले समुदायों को उनकी वस्तुस्थिति पर दिया जाता था। अंग्रेजी सत्ता स्थापित होने के बाद जल, जंगल और जमीन पर शासकों का हक मानकर, पहले से चली आ रही प्रचलित मान्यताओं को चुनौती दी गई और उन्हें बदला जाने लगा। इस बदलाव के पीछे सिर्फ कर की माँग ही नहीं थी, बल्कि अंग्रेज अपने व्यापारिक हित भी साधना चाहते थे। उन्होंने ''भारत के ग्रामीण समाज को तोड़कर, धान के खेतों को उजाड़ कर शोषण की बेड़ी डाल दी। अंग्रेजों के इस कारोबार में सहायक बने जमींदार, अमला और महाजन।''[14] यह औपनिवेशिक शासन की सोची-समझी चाल थी जिसे उन्होंने बड़ी खूबसूरती से लागू किया। अंग्रेजों ने पहले आदिवासी समुदायों से दोस्ती की फिर में टकराव और बिखराव पैदा किया और अन्य भारतीय लोगों को अपनी चाल का मोहरा बनाकर आदिवासियों के संसाधनों पर अपनी पकड़ मजबूत की। अपने स्वार्थवश औपनिवेशिक शासकों ने इन जंगलों का दोहन शुरू कर दिया। इन समुदायों से अपने स्वामित्व को दिखाने के लिए लिखित दस्तावेज मांगे जाने लगे। बिना कोई लिखित प्रमाण के जमीन पर उनके चले आ रहे पारंपरिक अधिकार को समाप्त कर दिया गया। इतना ही नहीं बाद में कंपनी शासकों ने सुधारवादी नीति अपनाकर इन्हें धर्मांतरित भी किया।

सवाल उठता है कि इन संघर्षों में सिर्फ आदिवासी समुदाय ही क्यों शामिल थे। वह इसलिए की प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा होने पर, उन्हें अपने लिए उपयोग करने के लिए बचता क्या। किसी भी बाहरी शक्ति के लिए जल, जंगल और जमीन के अलावा मनुष्य की भी आवश्यकता थी। हर मनुष्य का स्वभाव अलग होता है। दूसरे की गुलामी करना सबको पसंद नहीं आता। उन्हें लोभ, लालच, प्रलोभन, बेबसी और जरूरतों की पूर्ति के लिए कुछ समय के लिए तो साथ तो रखा जा सकता था, लेकिन उनके आदर्शों, वसूलों और उम्मीदों पर हर समय खरा नहीं उतरा जा सकता था। आदिवासी समुदायों के लिए उनकी सभ्यता और संस्कृति सर्वप्रिय थी। वह अपनी सभ्यता और संस्कृति की शर्त पर किसी से कोई समझौता नहीं कर सकते थे, क्योंकि जल, जंगल और जमीन उत्पादन और जीवन यापन के स्रोत थे। इन पर उनका जीवन निर्भर करता था। वह दूसरे समुदायों के लोगों की तरह स्वार्थी नहीं थे। उनके लिए आत्म सम्मान सर्वोपरि था। वह अपनी परम्पराओं से जुड़े थे और उसकी सुरक्षा पूरे समुदाय की जिम्मेवारी थी। यही वह बात थी जिसने उनके बीच विद्रोह को जन्म दिया।

तिलका मांझी का विद्रोह

1771 से 1784 तक उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लंबी और कभी न समर्पण करनेवाली लड़ाई लड़ी और स्थानीय महाजनों सामंतों एवं अंग्रेजी शासकों की नींद उड़ाकर रखी। यही लोग भोले-भाले आदिवासी समुदाय का शोषण कर रहे थे। तिलका मांझी का स्पष्ट उद्देश्य था। किसी भी कीमत पर जल, जंगल और जमीन पर बाहरी ताकतों का कब्जा नहीं होने देना एवं अपनी सभ्यता और संस्कृति पर कोई आंच नहीं आने देना है। संस्कृति न तो एक दिन में बनाई जा सकती है और न बिगाड़ी जा सकती है। आदिवासी समुदाय स्वतंत्र विचार के होते हैं, उनके लिए हर हाल में प्रकृति और उनका सरंक्षण पहला ध्येय होता है। तिलका मांझी ने इसे अपने पुरखों और पूर्वजों से सीखा और समझा था। कुछ चीजों को छोड़कर वह प्रकृति से उत्पन्न सामग्रियों पर ही निर्भर होते थे। तिलका मांझी की यह कोई अपनी लड़ाई नहीं थी, बल्कि पूरे आदिवासी समुदायों की सभ्यता और संस्कृति को बचाने की लड़ाई थी, जिसे अंग्रेज अधिकारियों ने बदलने और मिटाने का प्रयास किया था। हर युवा का सपना होता है कि जो भी उसे समाज से मिला है उसे या तो संरक्षित रखा जाए या फिर उसे और बेहतर बनाया जाए। इन दोनों ही चुनौती को तिलका मांझी ने स्वीकार किया उसे निभाने का सफल प्रयास किया था। इस प्रयास में उन्होंने अपने समुदाय को हर तरीके से बचाने की सफल कोशिश की और उन्हें कामयाबी भी मिली। दूसरी तरफ कंपनी भी अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए नियमों में निरंतर बदलाव कर रही थी। पहली बार ''कंपनी का खजाना लूट गया था, दिनदहाड़े! जंगल तराई के क्षेत्र में पहली बार कंपनी के खजाने की लूट हुई थी। कंपनी की सुरक्षा व्यवस्था पर ही कालिख नहीं पुती थी वरन् जंगल तराई पर कंपनी के स्थापित होते दबदबे की नींव कमजोर होने का संकेत हो सकती थी खजाने की यह लूट।''[15] अंग्रेज अधिकारियों ने इसकी कभी कल्पना भी नहीं की होगी। इसी का परिणाम

था कि ''कंपनी के उच्च अधिकारियों ने जंगल तराई में कार्रवाई की योजना बना डाली थी। डकैती के अनुसंधान एवं आवश्यक कार्रवाई की इस योजना को संचालित करने का दायित्व अंग्रेज सैन्य अधिकारी कैप्टन ब्रुक को सौंप दिया गया था।''[16]

1784 में ब्रिटिश सरकार और ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा नियंत्रण की दोहरी प्रणाली की स्थापना की, जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनी एक्ट या पिट्स इंडिया एक्ट के नाम से जाना गया। इस एक्ट के तहत ''घोषणा की गई कि भारत में साम्राज्य विस्तार ब्रिटेन का उद्देश्य नहीं है। व्यापार करते हुए साम्राज्य विस्तार अंग्रेजी नीति के खिलाफ था। जाति मर्यादा नष्ट होती है। लेकिन इधर साम्राज्य विस्तार चल रहा था।''[17] कंपनी के नए नियमों कानूनों से उसकी कथनी और करनी में फर्क साफ दिखाई दे रहा था। सचमुच में यह दोहरी नीति आदिवासी समुदायों के लिए एक नई विपदा बनकर आई, जिसका एकमात्र समाधान संघर्ष के रस्ते दिखाई देता था।

ऑगस्टस क्लीवलैंड की नीतियों का पर्दाफाश होने लगा था, सभी आदिवासी समुदाय अपने अस्तित्व की सुरक्षा हेतु एकत्रित और एकजुट हो रहे थे, जिसकी खबर उन्हें लग चुकी थी। उनकी फूट डालो और शासन करो की नीति को आदिवासी समुदायों ने मिलकर मुँहतोड़ जवाब दिया। तिलका मांझी के नेतृत्व में उन्होंने ऐलान किया ''जंगल के इलाके में लोग कर खजाना नहीं देंगे, जमीन नहीं देंगे, झगड़ा नहीं करेंगे।''[18] यह ऐलान-ए-जंग आदिवासियों के वजूद को मिटाने से रोकने के लिए था। यह खुला प्रतिकार था, जिसे कंपनी सरकार और ऑगस्टस क्लीवलैंड जैसे अधिकारी समझ नहीं पाए। जिस चिलमिली साहेब (ऑगस्टस क्लीवलैंड) ने पहाड़िया और आदिवासी समाज में अपनी योग्यता से इतना नाम कमाया था, उनकी अंदरूनी नीतियों के कारण वही समुदाय उनसे घृणा करने लगा था। वह आदिवासी समुदायों के वजूद को ही खत्म कर देना चाहते थे। यह इतना आसान नहीं था। जब आपसी मुकाबला हुआ तो तिलका मांझी ने अपने पारंपरिक हथियार से ही उनका मुकाबला किया। ऑगस्टस क्लीवलैंड तिलका मांझी की तीर से घायल होकर 13 जनवरी 1784 को मृत्यु को प्राप्त हो गए। भागलपुर डिस्ट्रिक गजेटियर, 1962 में पी.सी. रॉय चौधरी बताते हैं कि 30 नवम्बर 1783 में ''क्लीवलैंड के अस्वस्थ होने के कारण उनकी जिम्मेवारी चैपमैन को दे दी गई थी।''[19] यानि की ब्रिटिश अभिलेख में उनकी मौत को बीमारी का रूप दिया गया।

यह कोई छोटी घटना नहीं थी, लेकिन इसे औपनिवेशिक सरकार ने छुपाने और दबाने का प्रयास किया। उनकी मृत्यु को दूसरे तरीके से प्रस्तुत किया गया।

कंपनी इन सब कार्यवाहियों से चुप होकर बैठने वाली नहीं थी। उनके लिए तिलका मांझी को रोकना और पकड़ना ही ध्येय बन चुका था। ब्रिटिश सरकार ने वह सभी हथकंडे अपनाए जिससे उन्हें आसानी से पकड़ा जा सकता था। एक रात तिलका और उनके क्रांतिकारी साथियों पर गद्दार सरदार जौदाह ने हमला कर दिया। इस अचानक हमले में कई सैनिक शहीद हो गये, लेकिन तिलका बच गये और उन्हें भागकर सुल्तानगंज के पहाड़ी इलाके में शरण लेनी पड़ी। अंग्रेजी सेना ने उनके लिए सुलतानगंज और भागलपुर के निकटवर्ती पहाड़ी इलाकों में जाल बिछा दिया। तिलका मांझी ने औपनिवेशिक आकाओं के उत्पीड़न का विरोध किया। इन स्वतंत्रता-प्रेमी लोगों ने विदेशियों को भू-राजस्व देने से इनकार कर दिया और जंगल की आड़ में गुरिल्ला युद्ध का सहारा लिया। उन्होंने अपने पारंपरिक हथियारों के साथ शक्तिशाली ब्रिटिश सैनिकों के खिलाफ लगभग पाँच वर्षों तक डटकर मुकाबला किया। इससे वीर तिलका मांझी और उनकी सेना के लिए कठिन संघर्ष शुरू हो गया, जो पहाड़ी इलाकों में छुपे हुए थे। भोजन की कमी और भुखमरी के बावजूद, उनके सैनिकों ने ब्रिटिश सेना से लड़ाई की, जिस पर संथाल जनजातियों ने आक्रमण किया था। ब्रिटिश सेना ने जंगल को घेर लिया, लेकिन तिलका मांझी और उनके लोगों ने दुश्मन को कई हफ्तों तक उलझाए रखा और अंततः 1785 में अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिया गया। अंग्रेजों ने उन्हें मोटी रस्सियों से चार घोड़ों से बाँध दिया और घसीटते हुए भागलपुर ले गए। वहाँ उनके कटे शरीर को सार्वजनिक रूप से एक बरगद के पेड़ से लटका दिया गया। ब्रिटिश सेना द्वारा आर्थिक नाकेबंदी के कारण एक वीरतापूर्ण लड़ाई के बाद तिलका मांझी को आत्मसमर्पण करना पड़ा और अंततः 1785 में उन्हें फाँसी दे दी गई। इसने एक सदी से भी अधिक की अवधि में आदिवासी विरोध के एक लंबे इतिहास की शुरुआत की।

निष्कर्ष

बिहार में तिलका मांझी एवं उनके द्वारा किए गए आंदोलन को जो जगह इतिहास में मिलनी चाहिए वह नहीं मिली है। स्थानीयता और आदिवासी समुदाय से ताल्लुकात रखने वाले तिलका मांझी दोनों ही इतिहास में दरकिनार किए गए हैं। तिलका मांझी सिर्फ एक युवा शक्ति के लिए ही प्रेरक नहीं थे, बल्कि अपनी सभ्यता, संस्कृति और समाज के संरक्षक भी। एक तरफ समाज आधुनिकता और परंपरा से जूझ रहा था तो दूसरी ओर विदेशी और देशी ताकतों के अपने संघर्ष थे। एक तरफ औद्योगिक क्रांति से लैश ब्रिटिश अपने साम्राज्यवादी विस्तार में लगे हुआ थे तो दूसरी ओर आदिवासी समाज अपने अस्तित्व को बचाने के लिए लड़ाई लड़ रहा था। जहाँ एक ओर संसाधनों और पारंपरिक अधिकारों से आदिवासी समुदायों को वंचित किया जा रहा था वहीं दूसरी ओर विदेशी कंपनी अपनी

ख्वाहिशें पूरी करने के लिए जल, जंगल और जमीन पर वर्चस्व स्थापित करने में लगी हुई थी। ऐसी परिस्थिति में तिलका मांझी का संघर्ष, त्याग, समर्पण और अपनी माटी और समुदायों की सुरक्षा हेतु किया गया सफल प्रयास, ब्रिटिश अधिकारियों को खटक रही थी। ब्रिटिश कंपनी के द्वारा दिए गए प्रलोभनों को तिलका मांझी ने अपने कुशल नेतृत्व से फीका कर दिखाया जिसमें सभी आदिवासी समुदायों ने उनका साथ दिया। अंग्रेज अधिकारियों की सुधारवादी नीतियों में फँसे आदिवासी समुदायों को समझाना और उन्हें उनके खिलाफ युद्ध करने के लिए प्रेरित करना एक अबूझ पहेली जैसी थी। जिसे न तो आदिवासी समुदाय समझ सके और न ही अंग्रेज अधिकारी। भविष्य में ऐसे विदेशी और बाहरी ताकतों के खिलाफ किस प्रकार संघर्ष और आंदोलन किया जाए इसका नमूना पेश किया जो आदिवासी इतिहास में अजर और अमर है। हर आंदोलन की अपनी विशेषता होती है, तिलका मांझी पहले आदिवासी क्रांतिकारी कहलाए जिन्होंने न सिर्फ अपने समाज को, बल्कि पूरे देश को एक दिशा दिखलाई। इसी आंदोलन के बाद कई आदिवासी आंदोलन हुए जिसकी सीख तिलका मांझी आंदोलन से प्रेरित थी। यह कोई अतिश्योक्ति नहीं थी कि एक युवा योद्धा ने उस समय के कंपनी की मंशा पर ही पानी फेर दिया। किसी भी संघर्षों और प्रयासों में समुदायों का साथ अतिआवश्यक होता है। तिलका मांझी की सूझ-बूझ और अपने समुदाय पर उनकी पकड़ का प्रमाण यह है कि अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में न सिर्फ पहाड़ी आदिवासी समुदाय ने अंत तक साथ दिया बल्कि वे अपने में उस समय सर्वाधिक लोकप्रिय हस्ती भी थे। अपने समाज की सुरक्षा और बाहरी ताकतों से उसका संरक्षण उनके जीवन का एकमात्र ध्येय था। यही कारण है कि ब्रिटिश अधिकारियों के लिए तिलका मांझी एक चुनौती बन गए थे।

संदर्भ

1. देवी, महाश्वेता, (लेखक), प्रमोद कुमार सिन्हा (अनुवादक), शाल गिरह की पुकार पर, राधाकृष्ण, 2018, पृष्ठ संख्या-16। भारत की तलाश में पहला अंग्रेजी जलपोत हेक्टर 24 अगस्त 1600 ईस्वी में सूरत पहुँचा था, जिसके कप्तान हॉकिंस थे। इस समय मुगल बादशाह जहांगीर थे, जिन्होंने इस जलपोत को आने की आज्ञा दी थी। सर थॉमस रो ने मुगल बादशाह से दक्षिण भारतीय तट कालीकट और मछलीपट्टम पर अपने लिए सुविधा की मांग की थी जो स्वीकार कर ली गई थी। बाद में 1634 में शाहजहाँ ने पुर्तगालियों को बंगाल से बाहर निकाल कर अंग्रेजों को रेशम, नील, शोरा, मसाले आदि के व्यापार का आदेश जारी कर दिया। धीरे-धीरे ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी वाले अपने पैर पसारते चले गए और यहाँ की संपदा पर अपना हक और अधिकार जताने लगे। इसी का परिणाम था यह आदिवासी संघर्ष।
2. सिंह, राकेश कुमार, हुल पहाड़िया : आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या-97
3. देवी, महाश्वेता, (लेखक), प्रमोद कुमार सिन्हा (अनुवादक), शाल गिरह की पुकार पर, राधाकृष्ण, 2018, पृष्ठ संख्या-19। राजमहल के निकट उधवानाला युद्ध में बंगाल नवाब मीर कासिम को अंग्रेज मेजर एडम्स ने जंग जीत कर जंगल तराई के दरवाजे को ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए खोल दिया था। जन आंदोलन इसी की शुरुआत थी।
4. देवी, महाश्वेता, (लेखक), प्रमोद कुमार सिन्हा (अनुवादक), शाल गिरह की पुकार पर, राधाकृष्ण, 2018, पृष्ठ संख्या-35
5. वही, पृष्ठ संख्या 21
6. वही, पृष्ठ संख्या 27
7. बायर्न, जे., बंगाल डिस्ट्रिक गजेटियरः भागलपुर, बंगाल सेक्रेटेरिएट बुक डिपो, कलकत्ता, 1911, पृष्ठ संख्या 29
8. सिंह, राकेश कुमार, हुल पहाड़ियाः आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 150
9. देवी, महाश्वेता, (लेखक), प्रमोद कुमार सिन्हा (अनुवादक), शाल गिरह की पुकार पर, राधाकृष्ण, पृष्ठ संख्या 55।
10. वही, पृष्ठ संख्या-62
11. सिंह, राकेश कुमार, हुल पहाड़ियाः आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 92-93
12. वही, पृष्ठ संख्या-12
13. वही, पृष्ठ संख्या-42
14. देवी, महाश्वेता, (लेखक), प्रमोद कुमार सिन्हा (अनुवादक), शाल गिरह की पुकार पर, राधाकृष्ण, 2018, पृष्ठ संख्या-67
15. सिंह, राकेश कुमार, हुल पहाड़ियाः आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 56-57
16. वही, पृष्ठ संख्या-58
17. देवी, महाश्वेता, (लेखक), प्रमोद कुमार सिन्हा (अनुवादक), शाल गिरह की पुकार पर, राधाकृष्ण, 2018, पृष्ठ संख्या-81
18. वही, पृष्ठ संख्या-82
19. रॉय चौधरी, पी. सी., बिहार डिस्ट्रिक गजेटियरः भागलपुर, सुपरिटेंडेंट सेक्रेटेरियट प्रेस, पटना, 1962, पृष्ठ संख्या-51

डॉ. अजीत कुमार
सहआचार्य, इतिहास विभाग
आत्मा राम सनातन धर्म कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, धौला कुआँ,
नई दिल्ली -110021
Email - ajeet126@yahoo.com

हम यहां थे : सामाजिक विषमताओं की अभिव्यक्ति

–डॉ. रीनासिंह

आधुनिक हिंदी साहित्य के महिला कथाकारों में मधु कांकरिया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मधु कांकरिया ने अपने जीवन के संघर्ष की नजर से आज के समाज की सच्चाई को देखा और समाज की वेदना को अपनी संवेदना बना लिया। मधु कांकरिया एक निर्भीक लेखिका हैं। डॉ. उषा कीर्ति राणावत मधु कांकरिया के लेखनी के संदर्भ में कहती हैं, ''मधु कांकरिया का लेखन अनुभव और संवेदना के ताप से निकला है, विचारधाराओं या वैचारिक आग्रहों से नहीं। उनकी असली पूंजी उनके अनुभव हैं। उनके पात्र हाशिए पर जीवन जीने वाले समाज के उपेक्षित लोग हैं। उनके साहित्य से गुजरते हुए लगता है कि वह मानववाद, मार्क्सवाद एवं अस्तित्ववाद से जुड़ी कथाकरा हैं।''[1] मधु कांकरिया के अब तक छह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'हम यहां थे' यह उपन्यास किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली से सन 2018 में प्रकाशित हुआ। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में बंटा हुआ यह उपन्यास समाज की कई विषमताओं को अभिव्यक्त करने में सार्थक सिद्ध हुआ है।

इस उपन्यास में समाज की कई समस्याओं तथा बुराइयों पर एक साथ प्रकाश डाला गया है। यह उपन्यास देश के बड़े महानगर कोलकाता को केंद्र में रखकर पूरे समाज की विसंगतियों को जग जाहिर करता है। यह उपन्यास एक आवाज है उन पुरुषों के विरुद्ध जो अपनी पत्नियों को एक गुलाम की तरह रखना चाहते हैं। इस उपन्यास की मुख्य पात्र दीपशिखा हो या गौण पात्र त्तवलीन सभी पुरुष दंभ की खोखली विरासत का शिकार हो चुके हैं। लेकिन वे अपने स्वाभिमान को बनाए रखते हुए हर झंझे को चुनौती देती हैं और अपनी एक नई पहचान बनाती हैं। स्त्री विमर्श को लेकर हिंदी साहित्य में जितनी चों-चों पों-पों हुई है, व्यवहारिक जीवन में उसकी परिणिति बहुत कम ही हुई है। लेखिका ने अपने उपन्यास में क्षणभंगुर ध्येय के लिए जीवन को खोने की अपेक्षा सत्य से जुड़कर शिवम और सुंदरम की प्राप्ति को मनुष्य का प्रमुख उद्देश्य बताया है। स्त्रियों के साथ-साथ जो समाज के उपेक्षित वर्ग हैं उनके कारुणिक यथार्थ से भी लेखिका इस उपन्यास में परिचित कराती हैं। लेखिका का मानना है कि यदि समाज में सचमुच कुछ बदलाव लाना है तो उसे अंतिम जन के यथार्थ तक पहुँचना होगा। उनकी समस्याओं को जाने बिना और उनका साथ लिए बिना संपूर्ण देश के विकास की कल्पना करना बेमानी होगी।

विस्तृत कथा फलक पर आधारित यह उपन्यास दीपशिखा के व्यक्तिगत जीवन से लेकर कोलकाता की गलियों तथा आदिवासियों के जंगलों तक मुखातिब होता है। दो भागों में विभक्त 289 पृष्ठ के इस उपन्यास का आरंभ उसे पत्र से होता है जो जंगल कुमार ने दीपशिखा के लिए लिखा है। जंगल कुमार एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने आदिवासियों के उत्थान के लिए अपना पूरा जीवन खपा दिया है। लेखिका का बेचैन मन अपनी निर्भीक लेखनी से समाज की उन सभी बुराइयों को उखाड़ फेंकना चाहता है, जो दीमक की तरह धीरे-धीरे इस समाज की प्राचीन सभ्यता और संस्कार को नष्ट करते जा रहे हैं। गरीबों की मदद के लिए दीपशिखा के रूप में लेखिका का हृदय तड़पता हुआ दिखाई देता है। घर में सफाई के लिए आने वाले जमादार के प्रति माँ की अस्पृश्यता की भावना उसे खल जाती है। वह माँ का विरोध करते हुए कहती है, ''आप कम-से-कम उसे इंसान तो समझें। क्या हो जाएगा यदि उसका शरीर आपकी सूखती साड़ियों से जरा सा छुआ जाए। और सारा बाथरुम खाली करने का क्या तुक है। वह भी उसके सामने जो आपके घर की गंदगी को साफ कर रहा है। उसके प्रति कृतज्ञ होने की बजाय आप उसके साथ इतना अपमानजनक व्यवहार कर रहे हैं यह ठीक नहीं।''[2] लेखिका सभी को समाज में समान स्थान दिलाना चाहती है श्रम देवता सरीखे लगने वाले लोगों के प्रति संवेदनशून्य समाज को झकझोरना चाहती है। जिसे सिर्फ भंगी या जमादार नाम से जाना जाता है उस सुदामा से सहानुभूति प्रकट करते हुए लेखिका कहती है, ''जिंदगी बुरी नहीं है सुदामा हम ही बुरे हैं कि हम आदमी नहीं बन सके।'' सदियों से चला आ रहा यह जातिगत भेदभाव आज भी हमारे समाज में व्याप्त है। इसे हमारे समाज की विडंबना ही कही जाएगी जहाँ गंदगी फैलाने वाला श्रेष्ठ माना जाता है और साफ करने वाला अछूत माना जाता है।

लेखिका नेपाल से रोजगार के लिए भारत में बसे मजदूरों की व्यथा का भी जमकर चित्रण करती है। मध्यमवर्गीय अमीर अपनी चाकरी के लिए ईमानदार और मेहनती व्यक्तियों को रखना चाहता है। परंतु बदले में इन लोगों को गुमनामी की जिंदगी के सिवाय कुछ नहीं मिलता। जमनालाल का नौकर लाल बहादुर जो नेपाल से आया हुआ है अपना पूरा जीवन

इस तरह उनके परिवार की सेवा में खपा देता है कि स्वयं के गाँव का नाम एवं पता तक भूल जाता है। लाल बहादुर जैसे सीधे-सादे मासूम गरीबों की एक पूरी पीढ़ी का कारुणिक दृश्य लेखिका ने अपने उपन्यास में उपस्थित किया है। घर में काम करने वाली जयंती के सम्मान के लिए माँ से हर कदम पर मोर्चा लेना, उसकी बेटी कल्याणी के मान सम्मान की रक्षा के लिए रात में अपने घर पर सुलाना, कानूनी मदद के लिए पुलिस स्टेशन जाना, माँ के विरोध के बावजूद मूडी वाले पर दया करते हुए मूडी खरीदना, अछूत नौकरानी द्वारा घर में भोजन बनाने का समर्थन करना, रूपा और जयंती के झगड़ों का निपटारा करना आदि अन्य घटनाएँ इस बात की ओर इंगित करती हैं कि लेखिका इन लोगों के जीवन में सुधार चाहती हैं। मार्क्स के विचारों से प्रभावित लेखिका सभी मनुष्यों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना चाहती हैं।

कोलकाता के गरीबों की बस्ती का चित्रण लेखिका जब करती है तो ऐसा लगता है मानो फिल्म की कोई रील हमारे सामने चल रही है। जो समस्या लेखिका के घर काम करने वाली बाई की थी वही समस्या अमूमन वहाँ रहने वाली हर औरत की थी। लेखिका एक ऐसी दुनिया का चित्रण करती है जहाँ पर रहने वाले वंचित वर्ग के मनुष्य को देखते हुए अंचल की पंक्तियाँ उन पर बिल्कुल चरितार्थ होती है-

वह नस्ल जिसे मानव कहते हैं/कीड़ों से आज गई बीती
बुझ जाती तो आश्चर्य था/ हैरत है पर कैसे जीती।

ऐसी बस्ती जहाँ एक दिन भी बिताना मुश्किल हो, वहाँ एक पूरी दुनिया बसी थी। टीन की छप्पर वाली बजबजाती सारी बस्तियाँ अपने श्रम से आसपास के भव्य मकान को संभाले हुए थीं। सुबह तीन बजे से ही इनके गोरख धंधे शुरू हो जाते। सुबह उठते ही सरकारी नलके से लाइन लगाकर पानी भरना फिर शौच की लाइन से निपटना। तीस-चालीस खोलियों के बीच हगने, मूतने और नहाने के लिए दो टूटे दरवाजा के टॉयलेट। आधा घंटा भी उठने में देरी हो जाए तो फिर उन्हें हर जगह नल पर सार्वजनिक शौचालय पर राशन की दुकान पर, केरोसिन तेल की दुकान पर लंबी-लंबी लाइन लगानी पड़ती। दूसरों के खानों में अपने श्रम से स्वाद भरने वाली इन बाइयों का खुद का खाना कितना स्वादहीन होता है, शायद ही कोई इसका अनुमान लगा सके। अपने छोटे-छोटे बच्चों को भगवान भरोसे छोड़कर यह मजदूर वर्ग की महिलाएँ भव्य मकान के बाशिंदों की चाकरी करती हैं। अमीरों की सेवा में इन लोगों के बच्चों का बचपन कुंठित हो जाता है। कई बच्चे गलत रास्ते पर चले जाते हैं। अपने शराबी पति से अलग होकर रूपा इन्हीं बस्तियों में अपने बेटे के साथ रह रही थी। उसे स्कूल भेजकर वह काम पर निकल जाती है। और बाई की तरह उसका भी सपना था कि उसका बेटा पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बने। लेकिन उसके न रहने पर कुछ पत्ताखोर नशेड़ी उसके घर में घुस आते और नशा करते। यही आदत उन्होंने उसके बच्चे को भी लगा दी। इसी प्रकार लेखिका के घर में काम करने वाली जयंती की लड़की भी कम उम्र में ही सयानी हो गई। एक ही कमरे में अपने सामने अंधेरे में सहवास करते हुए भाई-भाभी का अनुभव देखते हुए वह भी एक ट्रक वाले के साथ भाग गई। यहाँ पर रहने वाले गरीब मजदूर वर्ग की समस्याओं को इतनी गहराई से झांकने का कार्य लेखिका के ही बूते का है।

लेखिका ने बीते हुए जमाने की बेतुके शर्म की नैतिकता ढोने के लिए विवश स्त्रियों की दुर्दशा का भी चित्रण किया है। आज पिता जहां अपने बच्चों पर पूरा अधिकार जमाते हुए उसके लिए सारे फैसले स्वयं लेता है, वहीं पहले पिता सबके सामने अपने बच्चों को गोद लेने में भी शरमाते थे। महिला डॉक्टरों की कमी के चलते औरतों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता था। घर के पुरुष ही स्त्रियों की बीमारी बताकर डॉक्टर से दवाई ला देते। ऐसे में गलत दवाई का प्रयोग करने के कारण कई माताएँ अपने गर्भ का बच्चा खो देती। कोई नवविवाहिता यदि खुलकर अपने पति के साथ यौवन का रस पी ले तो उसका पति ही उसे कुलक्षणी, अनुभवी खिलाड़ी कहकर त्याग देता था। माहवारी के दिनों में स्त्रियों को अलग-थलग रखकर उन्हें 'कौवा छूने' की उपाधि दी जाती थी। लेखिका कहती है, कदाचित इस बेतुके शर्म के कारण राजस्थान के सभी लोकगीतों में पति को सीधे संबोधित ना करते हुए 'ननद के भाई' के रूप में संबोधित किया गया है। लेखिका इस झूठी शर्म पर व्यंग्य करते हुए आज के जमाने को कहीं अच्छा बताती है, ''हमारा समय लाख अच्छा है। झूठी शर्म का पाखंड तो नहीं, उफ, कैसा समय! पुरुष डॉक्टर को दिखाने में शर्म चाहे बच्चा मर ही जाए। दंपति मिले तो चोरी से। बच्चे खिलाओ तो चोरी से। बच्चा पैदा करने में शर्म नहीं, बड़ों के सामने खिलाने में शर्म?''[3]

लेखिका सिंगल पैरंट विशेषकर महिला पैरेंट को समाज में कैसी तरजीह दी जाती है, इस पर कटाक्ष किया है। हर स्थान पर ऐसी महिलाओं को उपेक्षणीय दृष्टि से देखा जाता है। परिवार में भी इस स्थिति को बहुत अपमानजनक माना जाता है। दीपशिखा की माँ मेहमानों के आने से पहले ही दीपशिखा को अंदर वाले कमरे में कर देती ताकि उन्हें मेहमानों के तीखे प्रश्नों का सामना करना पड़े। हमारे समाज में पीड़ित महिलाओं को अधिकतर दोषी की नजरों से देखा जाता है। उनके साथ कोई अत्याचार हो तो यह माना जाता है कि उनकी ही गलती होगी, इसीलिए वह भुगत रही है। कई बार तो ऐसा लगता है कि समाज की सारी परंपराएँ केवल स्त्रियों को बांधकर रखने के लिए उनकी स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने के लिए बनाई गई है। प्रत्येक युग, धर्म और जाति में कतिपय कारणों से स्त्री जाति का विषमता के आधार पर शोषण किया जाता है। इस संदर्भ में नारी विमर्श की सुप्रसिद्ध समीक्षक रमणिका

गुप्ता के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, ''औरत औरत होती है, चाहे वह किसी भी धर्म, जाति या समुदाय की हो। हर जगह उसका शोषण होता है।''[4] लेखिका उन परंपराओं को कतई स्वीकार नहीं करती जो महिलाओं की आजादी के विरोध में है। उन्हें बचपन से ही दबकर रहना नागवार रहा है। बचपन की एक घटना से ही लेखिका के प्रखर व्यक्तित्व की कल्पना की जा सकती है। फूफा जी को लात न लगने पर भी जब उन पर माफी मांगने का दबाव बनाया जाता है तब वे यह तर्क देकर मना कर देती है कि 'जब मैंने लात लगाई ही नहीं तो क्यों मांगू 'माफी' क्यों बोलूं 'सॉरी'। यह छोटी-सी घटना बता देती है की लेखिका बचपन से ही अपनी बातों को निर्भीकता से रखती थी। पति से अलग रह रही दीपशिखा सभी महिलाओं के लिए एक अजूबे के समान है। अपने परिवार के लोगों से भी उसे दूसरे विवाह से संबंधित प्रश्नों से गुजरना पड़ता है। उनके भाई साहब पूछते हैं, ''तुमने क्या सोचा है आगे की जिंदगी के बारे में, अब नौकरी भी कर रही हो, सोनू भी अब अगले साल हॉस्टल चला ही जाएगा। क्या जिंदगी इसी प्रकार अकेले ही गुजार दोगी?''[5] दीपशिखा इन प्रश्नों को हमेशा टालना चाहती क्योंकि एक पुरुष से धोखा खाकर वह दूसरे पुरुष से बंधना नहीं चाहती थी। लेखिका यहाँ एक स्त्री से जुड़े हुए कई अनछुए पहलुओं का जिक्र किया है जहाँ उसे अपने जीवन में हर पल जंग लड़ना पड़ता है। जंग के बिना उसका जीवन ही खत्म नहीं होता।

लेखिका ने जैन धर्म में बढ़ते अंधविश्वास और कुरीतियों पर भी कुठाराघात किया है। गेहूं में से जब तक एक-एक घून निकल नहीं जाता माँ उसे छत पर धूप दिखवाती है। यह काम वे घर में काम करने वाली अधबूढ़ी जयंती से करवाती है। बार-बार टीन का बड़ा सा पीपा ढोकर छत पर ले जाने में जयंती की हालत खराब हो जाती है। लेकिन माँ को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस माँ को एक घून के मरने से दिक्कत हो रही थी वही अपनी फूफा जी की कुंवारी लड़की जो पड़ोसी से लटपटाकर पेट से हो गई थी, उसके भ्रूण की हत्या में अपनी राजामंदी दे देती है। लेखिका अम्मा की इस दोहरी मानसिकता पर व्यंग्य करते हुए कहती है, ''हां आपके घर में भ्रूण की हत्या करने में पाप नहीं, नवजात शिशु को मारने में पाप नहीं, पर गेहूं में लगे घून को मारने में पाप है। एक साठ साल की बूढ़ी को थका-थका कर मार डालने में बड़ी बहादुरी समझता है आपका धर्म। और वह भी तब जबकि वह बेचारी अपनी जवान बेटी के गम में वैसे ही घुली जा रही हो।''[6]

उपन्यास के उत्तरार्ध में लेखिका ने आदिवासी समाज की व्यक्तिगत समस्याओं के साथ-साथ उनके रीति-रिवाजों, परंपराओं, विकास के नाम पर हो रहे सरकारी दिखावों, बिचौलियों द्वारा किए जा रहे उनके शोषण तथा अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने वाले आदिवासियों को नक्सलवादी घोषित करके पुलिस द्वारा दी जा रही है प्रताड़ना आदि का यथार्थ अंकन किया है। कथा नायिका दीपशिखा इन आदिवासियों के बीच शोध करने के लिए शोध छात्र के रूप में जाती है। वहीं आदिवासियों के बीच काम करते समय उसकी मुलाकात जंगल कुमार से होती है। जंगल कुमार नेल्सन मंडेला आदि महान विद्वानों के विचारों आदर्शों पर चलने का काम करते हैं। इस काम में दीपशिखा उनकी मदद करती है। लेखिका स्पष्ट करती है कि स्थानीय दलालों द्वारा उनकी जमीन हड़पने के लिए कई हथकंडे अपनाए जा रहे हैं। सरकार द्वारा आदिवासियों के विकास के नाम पर एक लंबी-चौड़ी रकम सिर्फ कागजों पर खर्च की जा रही है। सरकार उनकी स्थिति सुधारने के लिए कई सारे प्रोजेक्ट, कई सारी योजनाएँ बनाती है। परंतु व्यावहारिक स्तर पर आदिवासियों की स्थितियों में आज भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। लेखिका के अनुसार दीपशिखा और जंगल कुमार जैसे आदिवासियों के लिए पूर्ण रूप से समर्पित में निःस्वार्थी लोग ही इन आदिवासियों को इस आडंबरी समाज की सच्चाई से परिचित कर सकते हैं। इसी बीच लेखिका दीपशिखा और जंगल कुमार के बीच प्रवाहित प्रेम धारा को दिखाकर स्त्री और पुरुष के स्वाभाविक संबंधों की ओर संकेत करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मधु कांकरिया ने अपने उपन्यास 'हम यहां थे' में दीपशिखा के बहाने एक सामान्य स्त्री के भीषण संघर्ष और कोलकाता की सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का चित्रण किया है। साथ ही आदिवासी अस्मिता और संघर्ष का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर पाठकों को झकझोरने का प्रयत्न किया है।

संदर्भ

1. मधु कांकरिया का रचना संसार, डॉ. उषा कीर्ति राणावत, शैलजा प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 143
2. हम यहां थे, मधु कांकरिया, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ-54
3. वही, पृष्ठ-69
4. युद्धरत आम आदमी, अप्रैल-जून 2008, पृष्ठ 58
5. हम यहां थे, मधु कांकरिया, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ-125
6. वही, पृष्ठ-85

डॉ. रीनासिंह

सहायक प्राध्यापक

आर. के. तलरेजा महाविद्यालय, उल्हासनगर

जि. थाना, महाराष्ट्र

E mail – reena.singh@ssrkt.edu.in

प्रेम की भारतीय अवधारणा और घनानंद का प्रेम समर्पण

–डॉ. विजय पाल

–सुधांशु रायल

घनानंद रीतिकालीन स्वच्छंद काव्य धारा के सुप्रसिद्ध कवि हैं। इनकी कविता प्रेमोद्‌गारों की अक्षय निधि है और हिन्दी काव्य की चिर स्थायी सम्पत्ति है। इनका काव्य गहरी अनुभूतियों का काव्य है। इनके अनुभूति कृत्रिम नहीं बल्कि स्व-अर्जित अनुभवों से युक्त है। इनकी प्रेमानुभूति स्वच्छंद है।

घनानंद के काव्य में प्रेम के दोनों पक्ष संयोग और वियोग मिलते हैं परंतु वियोग पक्ष अधिक प्रभावी है। इनकी प्रेम पद्धति वियोग व्यथा से ओतप्रोत है, वैयक्तिकता से जुड़ी हुई है और उसमे अलौकिकता, नवीनता, मार्मिकता, कष्ट सहिष्णुता जैसे गुण विद्यमान है। उनकी कविता में प्रेम का सरल, सहज एवं स्वछन्द रूप दिखाई पड़ता है जिसमें उदात्त रूप व्यक्त हुआ है इसलिए घनानंद को साक्षात रस मूर्ति कहा गया है। घनानंद को समझने के लिए इनके काव्य का रसास्वादन करने के लिए सबसे पहले जानना जरूरी है कि प्रेम क्या है?

प्रेम शब्द अपने आप में बड़ा व्यापक शब्द है। प्रेम शब्द का व्यवहार अनेक अर्थों में होता हैं। प्रेम के कई कई रूप हैं जैसे - वात्सल्य, ममता, मेह, स्नेह, प्यार, इश्क, मुहब्बत, अनुराग, प्रीत, प्रणय, श्रद्धा, भक्ति, आदि। नेह - स्नेह छोटों के प्रति प्यार, प्रीत, इश्क, मुहब्बत बराबरी के साथ, पति पत्नी का संबंध, श्रद्धा श्रद्धेय पात्रों के साथ और भक्ति ईश्वर में साथ वात्सल्य, ममता संतान व समकक्ष भाव को अभिव्यक्ति देते हैं।

वस्तुतः प्रेम अमूर्त विषय है। इसे वाणी से नहीं भावों से ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। माता-पिता का संतान के प्रति, नायक-नायिका के प्रति, पति-पत्नी के प्रति, मित्र- मित्र के प्रति, देश काल पात्र के प्रति, गुरु, माता-पिता व श्रद्धेय जनों के प्रति एवं प्रकृति व ईश्वर के प्रति प्रेम देखने का नहीं अनायास हो जाना है व उसके अनुकूल व्यवहार एवं विचार होने की प्रक्रिया है।

प्रेम शब्द प्रिय का भाववाचक रूप है।[1]

प्रेम की सम्यक परिभाषा देते हुए कहा जाता है - ''प्रेम शब्द का अभिप्राय साधारणतः उस मनोवृत्ति से लिया जाता है, जो किसी व्यक्ति को दूसरे के संबंध में उसके रूप, गुण, स्वभाव, सानिध्य आदि के कारण उत्पन्न कोई सुखद अनुभूति करती है तथा जिसमें उस दूसरे के हित की कामना बनी रहती है।''[2]

कबीरदास जी कहते हैं कि मानवता के विकास में प्रेम का ही अहम् योगदान है जिस हृदय में प्रेम का संचरण नहीं होता उस हृदय को श्मशान के समान समझना चाहिए।

जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।

जैसे खाल लाहोर की साँस लेत बिनु प्रान।।[3]

'हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार-प्रेम वह मनोवृत्ति है जिसके अनुसार वस्तु या व्यक्ति के संबंध में यह इच्छा होती है कि वह सदा हमारे पास या हमारे साथ रहे। जैसे मुहब्बत, अनुराग, प्रीति आदि।[4]

डॉ. बच्चन सिंह ने प्रेम की परिभाषा देते हुए कहा है - ''प्रेम वह अनुकूल वेदनीय मनोवृत्ति है जो किसी व्यक्ति या जीव या पदार्थ के सौंदर्य, गुण, शील, सामीप्य आदि के कारण उत्पन्न होती है।''[5]

लौकिक प्रेम के लिए लौकिक आधार की अनिवार्यता होती है। घनानंद के लौकिक प्रेम की आधार बनी मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार की नर्तकी जो अनिंदनीय रूपसी थी, कोकिल कंठी गायिका थी और थी रुपाजीवा सुजान।

शशि सहगल ने सुजान और घनानंद के इस प्रेम बंधन को इन शब्दों में लिखा है-''सुजान वेश्या, जिस से घनानंद को असीम प्यार था। सुजान के रूप पर मुग्ध होकर इन्होंने न जाने कितने कवित्त रच डाले. उसकी एक एक अंग, गति की दीप्ति को आपने छंदों में बांध दिया। सुजान के प्रति तीव्र अनुराग ही घनानंद के लौकिक प्रेम का चातक बना।''[6]

''घनानंद रीतिकाव्य के रीतिमुक्त कवियों में ही सर्वश्रेष्ठ नहीं है अपितु प्रेम के सजीव जीवंत, अनुभूत चित्रण में भी पूरे रीति काल में अद्वितीय है। रीतिकाल के रीतिबद्ध एवं रीतिसिद्ध कवियों ने प्रेमपरक काव्य तो खूब लिखा परन्तु इनका प्रेम उधार का प्रेम है, उनके अश्रु अपने नहीं है वे बलात बहार गए है। वही रीतिमुक्त कवि शिरोमणि घनानंद के काव्य इनके समक्ष फीके और कृत्रिम प्रतीत होते हैं।''[7]

घनानंद का प्रेम विशुद्ध लौकिक था। घनानंद दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाहरंगीला के मीर मुंशी थे। वे दरबार में रहने वाली सुजान नामक नृतकी से प्रेम करते थे। नायिका की विशेषता बताते हुए वे कहते हैं -

रावरै रूप की रीति अनूपनयो-
नयो लागै ज्यौ-ज्यौ निहारियें।
त्यों इन आंखिन बानि अनोखि
अधानि कहूँ नहिं आन तिहारिये।।[8]

कवि कहता है कि प्रिया के सुंदर रूप से प्रियतम को कभी भी तृप्ति नहीं मिलती है। वह जितनी बार उसे देखता है उसे नई लगती है। जब से सुजान को घनानंद ने देखा है तब से उनकी आँखें किसी और को देखना ही नहीं चाहती है। इनकी आँखों में सिर्फ सुजान ही बसी थी। घनानंद स्वयं प्रेमी थे। उनका सुजान से गहरा और एकतरफा प्रेम था।

सुजान के प्रेम के कारण घनानंद बादशाह के दरबार में बे-अदबी कर बैठे जिससे नाराज होकर बादशाह ने उन्हें दरबार से निकाल दिया। साथ ही घनानंद को सुजान की बेवफाई ने भी निराश और दुखी किया। उसके छलकपट पूर्ण व्यवहार से वे भीतर तक व्यथित हो गए। वे वृंदावन चले गए और निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित होकर जीवन निर्वाह करने लगे। परंतु वे सुजान को नहीं भूल पाए और अपनी रचनाओं में सुजान के नाम का प्रतीकात्मक प्रयोग करते हुए काव्य रचना करते रहे।

घनानंद का हृदय 'चाह के रंग' मे भीगा था। प्रिय भले ही निष्ठुर एवं निर्मम हो, किन्तु घनानंद एकनिष्ठ एवं अनन्य प्रेमी है। रतन कुमार पाण्डेय लिखते हैं-''घनानंद का प्रेम स्थूल व शारीरिक नहीं। यह भावात्मक हैं।''[9]

भले ही प्रिय ने उनके साथ विश्वासघात किया किंतु वे जीवन पर्यन्त सुजान से प्रेम करते रहे।

घनानंद प्रेम मार्ग के 'धीर पथिक' हैं। भारतीय शास्त्रीय सामाजिक परंपरा में एकतरफा प्रेम को स्वीकृति नहीं मिली है जबकि फारसी काव्य परंपरा में सूफी प्रभाव में प्रेम की इस पद्धति को प्रशंसित किया गया है। घनानंद का प्रेम एकतरफा ही है। सुजान के प्रति उनके प्रेम में विरह की उदत्त छवि है। घनानंद के प्रेम निरूपण में फारसी साहित्य का अधिक प्रभाव है। उनका प्रेम जो स्वच्छंद है, शास्त्रीय रूढ़ियों का प्रतिरोध करता दिखाई देता है। प्रेम में विरह की दशा को घनानंद ने एक नया उदात्त भाव लोक प्रदान किया।

प्रेमी का जो भारतीय आदर्श है उसकी रक्षा करते हुए कवि ने सदैव उसके हित की ही कामना की है। अपनी प्रेमिका की निंदा वह किसी और के मुख से तो सुन ही नहीं सकते, स्वयं भी सदैव आशीष ही देते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ला घनानंद की प्रेम दृष्टि की प्रशंसा करते हुए हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखते हैं - ''विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। यह वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम का पीर लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।''[10]

घनानंद मूलतः वियोग के कवि हैं। सुजान के प्रति जो इन्होंने विरह भोगा है वह उनके काव्य की केंद्र बिंदु है या उनके काव्य की मूल प्रेरणा है। सुजान के वियोग ने उन्हें कवि बनाया। सामाजिक रीति-नीति का विरोध कर उन्होंने सुजान से प्रेम किया तो कविता की बनी-बनाई रीति-युगीन परिपाटी से अलग रीतिमुक्त काव्य संवेदना को ग्रहण किया।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है - ''ये वियोग श्रृंगार के प्रधान कवि हैं।''

इनका श्रृंगार वर्णन अत्यंत गहरा व एकनिष्ठता से युक्त है। सुजान के रूप सौंदर्य, लज्जा, व्यवहार आदि का अत्यंत मार्मिकता के साथ अंकन किया है। जो उनके काव्य प्रेम की एकनिष्ठता की स्थापना करता है -

अति सूधो सेनेह को मारग है
जहां नेकु सतानप बाल नहीं।
तहां साधे चलै तजि आपुन को
झिझिके कपटी जे निसांक नहीं।।
घनानंद प्यारै सुजान सुनौ
दूत एक से दूसरो आंक नहीं।
तुम कौनसी पाटी पर्दै हो लला,
मन तु देहु उटाक नहीं।।[11]

घनानंद के अनुसार प्रेम का मार्ग सीधा और सरल है जहां उसमें तनिक भी कपट और चतुराई की जगह नहीं है। प्रेम के पथ पर वही सच्चे लोग चल सकते हैं जो अपना सब कुछ गंवाने के लिए तैयार होते हैं। जो कपटी हैं, बुरे आचरण वाले हैं वह इस रास्ते पर निर्भय होकर नहीं चल सकते। प्रेम की बस यही एक डगर है, दूसरी कोई नहीं।

घनानंद प्रेम की पीर के कवि है। लेकिन घनानंद को प्रेम की पीर का कवि क्यों कहा जाता है? इस संदर्भ में पहला प्रमाण यह है कि घनानंद मूलतः वियोग के कवि हैं। उन्होंने अपने साहित्य में बिहारी आदि की तरह संयोग व मिलन के चित्र नहीं खींचे हैं बल्कि प्रेम की पीड़ा को

व्यक्त किया है। शुक्ल जी लिखते हैं कि ''यह वियोग शृंगार के प्रधान मुक्त कवि हैं।''

इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि इनका साहित्य स्वानुभूति का साहित्य है न कि सहानुभूति का। अपनी प्रेमिका सुजान के विरह में कविता रचने वाले घनानंद के बारे में दिनकर जी लिखते हैं-''दूसरों के लिए किराए पर आंसू बहाने वालों के बीच यह एक ऐसा कवि है जो सचमुच अपनी पीड़ा में ही रो रहा है।''

'प्रेम की पीर' का कवि कहलाने के पक्ष में एक तर्क यह भी है कि इनका प्रेम वर्णन वैधानिकता, अति-भावुकता व अपने साथी के प्रति एकनिष्ठता से युक्त है।

प्रेम विभोर हृदय की कोई ऐसी वृत्ति नहीं है, जिसका चित्रण घनानंद ने न किया हो। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-''प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा उद्घाटन जो इनमें है, वैसा हिन्दी के किसी अन्य शृंगारी कवि में नहीं।''[12]

प्रेम की पीर के कवि के रूप में विख्यात घनानंद के जीवन में वैसे तो प्रेम का स्थान बड़ा ही ऊँचा है। इनका सारा जीवन और काव्य प्रेम रूपी रस से ओत-प्रोत है। इनका प्रेम सामान्य नहीं उदात्त है। इन्होंने सुजान के पेशे आदि को नजर अंदाज कर उससे प्रेम किया और उससे नकारात्मक प्रतिक्रिया पाकर भी उससे प्रेम करना नहीं छोड़ा, बल्कि अपने इस प्रेम तथा सुजान को अपनी रचनाओं में अमर बना दिया। कवि घनानंद अपने सवैया के माध्यम से कहते हैं-

पहिले अपनाया सुजान सनेह सौं,
क्यों फिर नेह के तोरियो जू।[13]

अर्थात् हे सुजान! पहले तो तुमने मेरे प्रेम को स्वीकार किया फिर बीच राह में मुझसे नजरें क्यों फेर ली। यहाँ कवि के प्रेम की पीड़ा का भाव निहित है तथा उन्होंने अपनी प्रेयसी की निष्ठुरता को भी दर्शाया है।

घनानंद के प्रेम में 'उपालंभ' भावना दिखाई देती है। उन्हें प्रिय से यह शिकायत है कि यदि तुम्हे ऐसा ही निष्ठुर एवं निर्मम व्यवहार करना था तो पहले अपने रूप जाल में मेरे मन को क्यों बांध लिया तथा अमृत सने वचन बोलकर मेरे मन में काम भाव क्यों उत्पन्न किया?

क्यों हँसि हेरि हरयौ हियरा अरू
क्यों हित कै चित चाह चढ़ाई।
काहे कौं बालि सुधासने बैननि
चैननि मैन-निसैन बढ़ाई।[14]

घनानंद के प्रेम की एक अन्य विशेषता नैसर्गिकता एवं कृत्रिमता है। उनका प्रेम किसी बंधी-बधाई परिपाटी में न होकर नैसर्गिक है। उन्होंने अनेक प्रकार के कष्टों में तपते हुए प्रिय के निष्ठुर हृदय में दया उत्पन्न करने का प्रण लिया हुआ है। वे आशा की रस्सी से विश्वास के पत्थर को हृदय पर लांघकर प्रेम के समुद्र में डूबने को तत्पर हैं-

आसा गुन बांधि के भरोसो सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूढ़त सकायहौं।[15]

उनका एकमात्र उद्देश्य है कि वह अपने कष्टमय जीवन को दिखाकर प्रिय के निष्ठुर हृदय में दया उत्पन्न करें-

ऐसे घन आनंद गही हैं टेन मन माहिं
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौ।[16]

घनानंद विरही थे। उनके हृदय में विरह का अथाह सागर हिलोरे ले रहा था। विरह ही उनके प्रेम की कसौटी है। वे 'चिरंतन वेदना से युक्त' ऐसे प्रेमी हैं जिनके प्राण रात-दिन इस विरह वेदना में घुट-घुटकर जलते रहते हैं। आँखों से अश्रु-प्रवाहित होते रहते हैं।

प्रेमिका का इतना ख्याल कि बादल से आग्रह करते हैं कि मेरे खारे आंसू को तुम मीठे जल के रूप में पहुँचा देना। रीतिकाल के वास्तव में यह पहले ऐसे कवि हैं जिन्होंने जिस्म और जींस को पर्दे में रखा है। वह एक ऐसा चातक है जो अपने प्रेमिका को बस निहारता है।

मोहन सोहन मोहन की लगिए रहे
आंखिनके उर आरति।[17]

घनानंद के प्रेम में सहिष्णुता का गुण विद्यमान है। वे हर प्रकार का कष्ट सहन करने को तैयार हैं। घनानंद ने लिखा कि हृदय के चाव से उन्होंने जो पत्र लिखा वह अजान सुजान ने पढ़कर भी नहीं देखा -

पूरन प्रेम को मंत्र महापन,
जा अधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
सो घन आनंद जान, अजान लौ,
टूक कियो पर बाचि न देख्यौ।[18]

प्रेम के मार्ग में इन्हें जो ठेस लगी उससे वे निराश नहीं हुए बल्कि और भी उत्साह से प्रेम के पथ पर आगे बढ़ते गये और अपने प्रेम को आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया।

घनानंद के काव्य में सुजान शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है - एक घनानंद की प्रेमिका सुजान के अर्थ में और दूसरा श्री कृष्ण के अर्थ में। जहाँ प्रेमिका के अर्थ में सुजान शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ कवि ने या तो अपनी प्रेमिका के रूप-सौंदर्य तथा उसका अपने मन पर पड़े प्रभाव का वर्णन किया है अथवा उससे बिछोह के कारण विरह भाव की अभिव्यक्ति की है। जहाँ सुजान शब्द श्री कृष्ण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ कृष्ण भक्ति काव्य की परंपरा में गोपी-मन की संयोग अथवा वियोग दशाओं का चित्रण हुआ है। कभी-कभी कवि मन और गोपी-मन के भाव मिल-जुल कर प्रस्तुत हुए हैं।

घनानंद ने जिस तरह डूबकर सुजान से प्रेम किया उसी तरह डूबकर कृष्ण की भक्ति भी की। इन्होंने प्रेम और भक्ति के बीच की रेखाओं को मिटा दिया। इनका लौकिक

प्रेम कब लोकोत्तर तक पहुँच जाता है यह पता ही नहीं चलता। घनानंद के यहाँ विरह की पीड़ा इतनी तीव्र है कि यह प्रतीक रूप में उनके साहित्य में हर जगह दिखाई देती है। इनका लौकिक प्रेम वर्णन अंत में अलौकिक रूप प्राप्त कर लेता है। सुजान के प्रति जो लौकिक प्रेम था वह राधा-कृष्ण के प्रति अलौकिक स्तर पर व्यक्त होने लगा।

घनानंद का ऐसा मानना था कि जगत से सारे प्रेम राधा-कृष्ण से ही उत्पन्न है। राधा कृष्ण का प्यार हमेशा सागर के समान है और संसार में परिव्याप्त प्यार राधा-कृष्ण के प्यार के सागर की एक लहर मात्र है। सच्चा प्रेमी घनानंद की दृष्टि में प्रेम पर अचल रहता है।

घनानंद की दृष्टि में जीवन में प्रेम का महत्व विराट है। तन से प्रेमी दो होते हैं पर मन और हृदय से एक होते हैं। सच्चे प्रेमी को लौकिक वासना छू भी नहीं पाती जैसे चांद और चकोर दो नहीं एक के पर्याय सा हो जाते हैं -

चंदहि चकोर करै, सोअ ससि देह घर।
मनसा हू ररै, एक देखिबै कौ रहै द्वै।[19]

निष्कर्ष - रीतिकालीन साहित्य में जहाँ अन्य कवि स्त्री को भोग्य मानकर 'स्तन तन नैननितंब को बड़ों इजाफा कीन' लिखकर अशर्फियाँ लूट रहे थे वहीं घनानंद को एक वेश्या का सौंदर्य उत्तेजित नहीं करता बल्कि स्फूर्ति प्रदान करता है। सुजान का साथ न मिलने के कारण घनानंद टूटे जरूर मगर बिखरे नहीं। कुछ हादसे जिंदगी में ऐसे होते हैं जिनमें इंसान बच तो जाता है मगर जिंदा रहता नहीं। घनानंद की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी, यह वह स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति प्रेम पाने को ही सब कुछ मान कर गलत राह पकड़ लेता है और कुंठाग्रस्त होकर सामने वाले का हित-अहित करने में नहीं हिचकिचता। परंतु घनानंद ऐसा कदम न उठाकर धैर्य को अपनाते हैं और प्रेम के आदर्श स्वरूप की वह नींव तैयार करते हैं जिसकी वजह से प्रेम आज भी जीवित है। इनके प्रेम में मालिकाना हक नहीं झलकता बल्कि दूसरे पक्ष के निर्णय के लिए सम्मान दिखाई देता है। आज के आशिकों के लिए घनानंद का प्रेम एक मार्ग प्रशस्त करता है। प्रेम के नाम पर आत्महत्या करने वाले, भड़ास निकालने वाले या घृणा फैलाने वालों के लिए एक सबक है घनानंद का प्रेम। उन्होंने अपने 'स्व' को स्वस्थ बनाकर अपने व्यक्तित्व को और अधिक प्रभावशाली बनाया है।

अतः आज भी स्त्री को शरीर के रूप में ही देखा जाता है। उसे प्रेम भावना से शून्य मानकर उस पर अवसरवादी होने का आरोप लगाया जाता है। घनानंद अपने काव्य में प्रेम को वासना से ऊपर उठाकर उसे सृष्टि के आधार तत्व के रूप में स्थापित करते हैं जिससे स्त्री के प्रति पुरुषों की परंपरागत नकारात्मक सोच कि 'स्त्री सिर्फ भोग्या है' में ऐतिहासिक परिवर्तन आता है और यह मुक्ति स्त्री को मानसिक रूप से मजबूती प्रदान करती है। यही घनानंद के काव्य और प्रेम का परम आदर्श है जो चिरकालिक है।

घनानंद की प्रेम अनुभूति अद्‌भुत है, अद्वितीय है। इनका पूरा जीवन ही प्रेम को समर्पित है। इस तरह से डूब कर प्रेम करने वाले शायद ही मिले। प्रेम की ऐसी विलक्षण अनुभूति अन्यत्र दुर्लभ है। इसके बल पर घनानंद सुन्दर प्रेम कवि सिद्ध होते हैं।

संदर्भ

1. घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा - डॉ. मनोहरलाल गौड, सं. 2021, पृ. 318
2. वही, पृ. 321
3. कबीर वचनावली -सं. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ. 103
4. हिंदी शब्द सागर, छठा भाग -सं. श्यामसुंदर दास, पृ. 324
5. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना -डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 89
6. घनानंद का रचना संसार - शशी सहगल, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1980, पृ. 48
7. वही, पृ. 51
8. घनानंद ग्रंथावली - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, सुजानहित, पृ. 15, सवैया 41
9. मध्यकालीन कवि और कविता - रतन कुमार पाण्डेय, अनंग प्रकाशन, पृ. 205
10. हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ला, कमल प्रकाशन, पृ. 233
11. घनानंद ग्रंथावली - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी प्रचारिणी सभा, सुजानहित, पृ. 86
12. हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ला, कमल प्रकाशन, पृ. 233
13. घनानंद ग्रंथावली - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी प्रचारिणी सभा, सुजानहित, पृ. 14, सवैया 381
14. घनानंद-कवित्त, लेखक-साहित्याचार्य चंद्रशेखर मिश्र शास्त्री, वाणीवितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी-1 प्रथम संस्करण 1960, पृ. 85
15. वही, पृ. 121, कवित्त 23
16. वही, पृ. 121, कवित्त 23
17. वही, पृ. 71, सवैया 6
18. घनानंद-कवित्त, लेखक-साहित्याचार्य चंद्रशेखर मिश्र शास्त्री, वाणीवितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी-1 प्रथम संस्करण 1960, पृ. 325, कवित्त 97
19. वही, पृ. 325, कवित्त 107

डॉ. विजय पाल
दयाल सिंह महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
सुधांशु रायल
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

श्रमजीवी वर्ग की अंतहीन पीड़ा को व्यक्त करती पं. वंशीधर शुक्ल की कविताएँ

–कविता मौर्या
–डॉ. प्रणव कुमार मिश्र

प्रगतिशील लेखक मंच से 1936 में प्रेमचंद साहित्य संबंधी अपने प्रसिद्ध वक्तव्य में कहते हैं- ''साहित्य जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, कहानियों के रूप में, या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।''[1] कुछ इन्हीं उच्च साहित्यादर्शों को अपने में समाहित किए हुए पंडित वंशीधर शुक्ल का साहित्य श्रमजीवी वर्ग के जीवन-यथार्थ का जमीनी स्तर पर विश्लेषण करता है। श्रमशील अर्थात् , समाज का वह सर्वहारा वर्ग, जो सदियों से कठोर श्रम -साधना में निर्लिप्त रहते हुए भी, समाज के उच्च वर्गों द्वारा शोषित, पीड़ित एवं उपेक्षित रहकर अभावग्रस्त जीवन जीने को अभिशाप्त हुआ। एक जनवादी और संवेदनशील साहित्यकार होने के नाते शुक्ल जी भला इस वर्ग के समस्या और पीड़ा की उपेक्षा कैसे कर सकते थे। अतः सामाजिक चेतना से युक्त एक युग दृष्टा कवि के रूप में उन्होंने हमेशा अपने आसपास के वातावरण-परिवेश, समाज और देश की नब्ज पकड़ने की कोशिश की तथा देश की शोषित, पीड़ित जनता की ''दर्द भरी आह" को अपनी लेखनी के माध्यम से आजीवन अभिव्यक्त प्रदान करते रहे। साथ ही, इनकी कविताओं की रचनात्मक काव्य-चेतना जन-सामान्य को एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए उद्वेलित करती है, जिसमें विषमता, दुःख, दरिद्रता, शोषण एवं अपमान का अभाव हो और किसी एक के श्रम पर दूसरे को मोटे होने का अख्तियार भी न हो। इसके लिए वे सदैव वर्ग विशेष और समाज को क्रांति की प्रेरणा देकर रूढ़ि ग्रस्त तथा विषमता से भरे सामाजिक ढांचे को परिवर्तित करने की कोशिश करते रहे। वे गलत को गलत और अनीति को अनीति कहने की हिम्मत रखने वाले एक निर्भीक युगधर्मा कवि थे। जिन्होंने देश-समाज में घटित होती शोषण तथा दमनकारी घटनाओं पर दमनात्मक शक्तियों से भयभीत हुए बिना स्वतंत्र लेखनी चलाई। अपने इस क्रांतिकारी रवैया के चलते आजाद देश में भी उन्हें कई बार जेल यात्राएँ करनी पड़ी।

शुक्ल जी की काव्य चेतना में श्रमशील वर्ग केन्द्र में है। उन्होंने मूलतः इन्हीं के दुःख-दर्द को बयां करने के लिए काव्य रचना की। उनकी कविताएँ ग्रामीण श्रमजीवियों की निर्धनता, भुखमरी, दुर्भिक्ष, बाढ़, वैमनस्य तथा शोषण का सूक्ष्म तथा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। इस संसार को धन-धान्य और वैभव से भरने वाले श्रमजीवी यथा - किसान, मजदूर हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद स्वयं किस निर्धनता तथा अभावग्रस्तता में जीवन यापन करते हैं। इसका चित्रण देखिए-

''दिन भर हपर हपर कै, दौरी तबहूं भरै ना पेट,
धोती फटी, न कुर्ता फतुहीं बांधि न पाई फेंट,
लारिका, लरिकी रोटी मांगै, कपड़ा मांगै मेहरी,
छप्पर चूवै न ठौर तिलौं भारि, गिरी परी सब बखरी,
कारी मंजूरी दिन भरि भरमी, रात मं नींद न आवै
सरग नरक मं नहीं ठेकाना, मौतौ खाय ना आवे,
देखित सब पहिरे ओढ़े सब, खांए पियैं बेल्हरांय,
हमारे लरिका नंगे घूमैं, भूंख भूंख चिल्लांए।''[2]

प्राकृतिक आपदाएँ इन गरीब श्रमजीवियों पर मुसीबत का पहाड़ बनाकर टूटती हैं। देश के कुछ हिस्से तो प्रतिवर्ष बाढ़ के प्रकोप से प्रभावित रहते हैं। मौसम आधारित इन आपदाओं को बढ़ते जलवायु परिवर्तन ने और भी जटिलता प्रदान की, जिसके चलते देश कई बार सूखा, दुर्भिक्ष, तथा जलप्रलय जैसी आपदाओं की यंत्रणा झेल चुका है। ये आपदाएँ

मनुष्य और मनुष्यता पर कठोर वज्रपात करती हैं। शुक्ल जी की कविताएँ - बहिया, सखिन की बखरी गिरी जाय, बहिया मां बहिगा घरु दुवारू, हाय सूखा मां सूखे प्रान तथा पाथर - इन्हीं प्राकृतिक आपदाओं के चलते समकालीन ग्रामीण श्रमशील वर्ग के बनते-उजड़ते जीवन-यथार्थ की सच्ची झलकियाँ प्रस्तुत करती हैं। इन चित्रों में जहां एक ओर ग्रामीणों के बाढ़ में बहते घर-गृहस्थी, खलिहान-गोरू और बाल-बच्चे हैं तो दूसरी ओर जमींदार-साहूकारों की लूट, विवशता, तथा आपसी सहयोग है। संसार के अन्न भरवैया इन दिनों भूखों मरने को विवश हो जाते हैं, क्योंकि आपदा उपरांत ग्रामीण जीवन को पटरी पर आने में समय लगता है। ऐसे में जब कभी श्रमिक को काम नहीं मिलता, तो उनके घर कई-कई दिनों तक चूल्हा नहीं जलता। पेट की आग और उसकी बेचैनी को श्रमिक और उसकी पत्नी तो बर्दाश्त कर लेते हैं, परंतु बच्चों के लिए यह असहनीय है। श्रमिक परिवार की ऐसी ही विषम परिस्थितियों को उजागर करती हैं शुक्ल जी की कविता 'अम्मा रोटी'। जिसमें भूख से तड़पता बच्चा रो रहा है, माँ उसे समझने का प्रयत्न करती है, डराती है, पुचकारती है, कहानी सुना कर बहलाती है, परंतु भूख की जलन भला बहलाने से कहाँ शांत हो सकती है। बच्चा बार-बार अम्मा रोटी... अम्मा रोटी... कह कर रोने लगता है -

''मुलुकई दिनन का भूंखा लरिका,
आतंन मां परी रही जरनी...
तब कैसे सोइ सके चुप्पे,
फिर सुरू किहिस रोवनि भुकुरनि।
* * * * *
भूखे मां को सुन सकइ कथा,
'अम्मा रोटी' 'अम्मा रोटी'।''[3]

इसी तरह वंशीधर शुक्ल की कविताएँ समाज में व्याप्त उन विषमता पूर्ण संबंधों की भी व्याख्या प्रस्तुत करती हैं, जिनमें शोषक वर्ग श्रमजीवी वर्ग के श्रम से स्वयं तो विलासितापूर्ण जीवन यापन करता है वही शोषित-दमित वर्ग को जीवित रहने तक के संसाधन मयस्सर नहीं हो पाते। ऐसे में तीज, त्यौहार, शादी-विवाह, जन्म-मृत्यु, रोग, घर-द्वार आदि उन्हें और भी जर्जर कर जाते हैं। ग्रामीण संस्कृत में ये तीज-त्योहार उल्लास के क्षण होते हैं, परंतु धनाभाव के चलते कृषक मजदूर के जीवन में ये खींज, बेबसी और निराशा भर जाते हैं। जिसका कितना सटीक विश्लेषण शुक्ल जी की कविता 'दीपावली', 'होली' और 'रक्षाबंधन' में मिलता है। ऐसे में एक अछूत जाति के लिए होली जैसा त्योहार और भी बेमानी हो जाता हैं-

हमैं यह होरी झुरसाबइ।
खेत, बनिज न, गोरु गैयां ना घर दूध न पूत।
मड़ाई परी गांव के बाहर, सब जन कहे अछूत।
* * * * *
यह होरी औ पर्ब देवारी, हमैं कछू न सोहाई।
आप जरे पर लोनु लगावै, आवे यह जरि जाइ।।''4

कृषि एक कठोर तपस्या है और कृषक तपस्वी। कृषि संस्कृति से जुड़े श्रमशील वर्ग का जीवन कठिन परिश्रम पूर्ण होता है। खेती की श्रमसाध्यता को इंगित करते हुए वंशीधर शुक्ल 'कठिन खेती' नामक अपनी कविता में एक कृषक पिता द्वारा अपने पुत्र को कहलवाते हैं कि भूमि से दो दाना प्राप्त करने के लिए एक कृषक को जानवरों जैसा परिश्रम करना पड़ता है : -

बाबू बड़ी कठिन है खेती!!
सींग पूंछ के बनगैलन अस, तब दुइ दाना पइहो,
जब हरहन के संगैं, तुम हो हरहा बना जैहों।।[5]

वंशीधर शुक्ल का जन्म एक कृषक परिवार में हुआ था। वे कृषक जीवन की यातनाओं और विडंबनापूर्ण स्थितियों से सर्वथा अवगत थे। आज किसानी एक घाटे का सौदा है, जिससे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में फंसे किसान आत्महत्या कर लेते हैं। इसी दुर्भाग्यपूर्ण घाटे की स्थिति का अनुमान लगा शुक्ल जी 1938 में लिखते हैं-

''सही कहाउत बनियन की, चाहे फरैं डार मां मोती,
तबहूं खेती करिब ना चाहैं, सिखावैं हेती गोती।।''[6]

और क्यों? क्योंकि व्यवस्थागत रूप में कृषि को ऐसे भंवर में फंसा दिया गया है कि दूसरों के लिए वह मात्र मुनाफे का आधार बन गई और स्वयं अपने लिए घाटे का सौदा। उसका मुनाफा दूसरे वर्गों द्वारा बेझिझक हड़प लिया जाता है और इस हड़प नीति में बहुत लोग शामिल होते हैं। जिन पर से पर्दा उठाते हुए शुक्ल जी 'याक किसान की रोटी' नामक एक कविता लिखते हैं-

याक किसान की रोटी, जेहिमां परिगई तुक्का बोटी,
भैया! लागे हइं हजारऊं ठगहार।
हइं साम्राज्य स्वान से देखउ बइठे घींच दबाये हइं।
पूंजीवाद बिलार पेट पर पंजा खूब जमाये हइं।
गीध बने हइं दुकन्दार सब डार ते घात लगाये हइं।
मारि झपट्टा मुफतखोर सब चउगिरदा घतियाये हइं।[7]

इसके आगे भी लुटेरों की सूची काफी लंबी है जिनमें क्रमशः सभापति, पटवारी, पेसकार, हाकिम, चपरासी, वकील, पांडा, ज्योतिषी, वैद्या डॉक्टर और दलाल शामिल हैं। चारों ओर दुश्मनों से घिरे भारतीय शोषित कृषक वर्ग की स्थिति सामंतिया व्यवस्था में और भी दयनीय थी। यह वर्ग साम्राज्यवादी नौकरशाही के अत्याचारों से सदैव प्रताड़ित और आतंकित रहता था। वंशीधर शुक्ल की 'किसान की अर्जी', 'बेगारी', 'बेदखली', जैसी कविताएँ किसान मजदूर पर जमींदारों के अमानवीय अत्याचारों के ऐसे बिम्ब प्रस्तुत करती हैं जो किसी के भी आँखों में आँसू लाने में पूर्णतः सक्षम है। 'किसान की अर्जी' कविता की निम्नलिखित

पंक्तियाँ देखिए-

''जब भूंखी आंतै खउलइं, तब सरई भूंजि खाई,
ऊपर तालियां का तत्ता पानी डटिकइ पी जाई।
मेहरी का भूख सतावइ, वह गूल्लर बीनइ जावइ।
ऊ महतउं केर लरिकवा, सूधइ बिटिया गरियावइ।
वा हुकुरू हुकुरू कर रोवइ, गिरि-परिके घर का आवइ,
जब झुरसइ लगइ करेजा तब पानी सींचि जुड़ावइ।।''[8]

कृषक हाड़तोड़ मेहनत के बाद सनई भून कर खाने और तालाब का गर्म पानी पीकर जीवन यापन कर रहा है मात्र अच्छी फसल की उम्मीद में लेकिन यदि वही फसल दुर्भाग्यवश खराब हो जाए, तब किसान पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ता है, क्योंकि अब उसे लगान के लिए जमींदार के अमानवीय और क्रूर अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। इन स्थितियों का शुक्ल जी कितना मार्मिक और सजीव वर्णन करते हैं यह देखते ही बनता है -

यातने मां आई बिसरिहा बोला कि पोत दइ आवउ,
तब कांपइ लागि मेहरिया, हम बोलेन-साहब आवउ।
ऊ सूधइ गारी दीन्हिस, तब लउं चपरासिउ आयें
उई काढ़ि नउतरा जूता पीटतइ कोठार लऊं लाये,
अउतइ मुरुगा बनवाइनि, टांगन पर गीट धाराइनि,
हम गए गऊ कइ रोई, उइ हंसि-हंसि कूड़ा लगाइनि।

* * * * *

जब धारिसि हाथु पीठी पर - बप्पा!! ई कइसी बरताइं,
हम बोले ई हइ भइया!!! खेती की जिंदा सरताइं।[9]

अंतिम पंक्ति 'खेती की जिंदा सरताई!!' सदियों से चले आ रहे कृषि विषयक गहरे यथार्थ-बोध, यथा- किसानी में रहकर गुलामी, अपमान और कर्ज में मौत मिलने जैसे कड़वे सत्य को उधाड़कर सामने लाती है।

किसान, मजदूरों की भांति श्रमजीवी वर्ग की स्त्रियाँ भी युगों से जमींदारों और पूंजीपतियों के शोषण का शिकार रही है। लगान के लिए जमींदारों की बढ़ती क्रूरता बराबर निर्धन किसान को बीवी-बेटी बेचकर लगन भरने का दबाव बनाती थी। 'नवशक्ति तथा जनता' जैसे तत्कालिक पत्र ऐसी खबरों से भरे पड़े थे। इस्तेमरारी व्यवस्था में बिहार जैसे कुछ एक क्षेत्र में, जहाँ ''जमींदार के घर दुल्हन को पहली रात गुजारनी पड़ती थी जिसे डोला प्रथा कहते थे''[10] श्रमजीवी वर्ग की स्त्रियों के खुलेआम यौन शौषण का ज्वलंत उदाहरण थी। शुक्ल जी जो निर्बलों के हर तरह के शोषण के खिलाफ थे, स्त्री शोषण के इस घृणित पक्ष पर भला चुप्पी साधे कैसे रह सकते थे। अतः वे 1939 में राजाओं की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं में होते इन घृणित कार्यों की निंदा करते हुए लिखते हैंः -

जहां सतीत्व लुटइ अबलन का, छीनी जाए लंगोटी,
हुवइ बनी बइतरनी तट पर महाराजा की कोठी।।[11]

एक सच्चे देशभक्त और प्रखर स्वतंत्रता सेनानी के रूप में खूनी पर्चा, कदम-कदम बढ़ाए जा, और उठ जाग मुसाफिर जैसी क्रांतिकारी कविताओं के रचनाकार 'अवधी के निराला' पं. वंशीधर शुक्ल समाज में क्रांति की ऐसी ज्वाला प्रज्वलित करना चाहते थे, जिसमें दीन-हीन शोषित किसानों और मजदूरों के दुःख, दारिद्रय जलकर भस्म हो जाएँ। वह लगातार अपनी कविताओं के माध्यम से श्रमजीवी वर्ग को स्वयं के लिए उठ खड़े होने और कुछ कर दिखाने की प्रेरणा देते रहे। उनके अनुसार इस वर्ग के लिए सर्वप्रथम अपने श्रम शक्ति की महत्ता का आभास होना बहुत जरूरी है। वे लिखते हैंः-

अन्न इन्हीं के, वस्त्र इन्हीं के,
सब व्यापारिक यंत्र इन्हीं के,
रेल, तार, जलयान, बसें सब शासन के
सब तंत्र इन्हीं के,
फिर भी इनमें बैठ जमाना
रहा इन्हीं को घूर।।
कहां तक सहन करें मजदूर??[12]

वो शासन जो मजलूमों की दुर्दशा को अनदेखा करें, शोषकों का साथ दे, भ्रष्ट और अवसरवादी हो, उसे बदल डालने का आवाहन वे खेतिहर समाज से निम्नलिखित शब्दों में करते हैं-

भारत के खेतिहर!! हिल मिलकर,
भारत सरकार बदल डालो!!!
दुनिया के होकर कर्णधार
दुनिया की धार बदल डालो!![13]

सदियों से पिसते श्रमशील वर्ग के दुर्भाग्य के बादल आजादी के साथ भी नहीं छांटें, उसने स्वतंत्र देश के जो सपने संजोए थे, उन्हें महंगाई, टैक्स, नौकरशाही के भ्रष्टाचार और मौकापरस्ती जैसी वास्तविकताओं ने ढहा दिया-

रेलै घटी, किरावा बढ़िगा पोतौं रहै बढ़ाई,
अब मुर्दन पर टिकस लगावैं, हाय मौत के भाई,
हमारी छुरी हमरिही गर्दनि संपत्ति शक्ति कमाई,
काटि रहे मूंड़े पर बैठे घर के कंस कसाई।।[14]

शुक्ला जी स्वतंत्रता संग्राम के साथ होने के कारण पंडित जवाहरलाल नेहरू का सम्मान तो करते थे परंतु मोह भंग के दौर में एक शासक के तौर पर ओ!! शासक नेहरू सावधान!!! लिखने में भी कोई गुरेज नहीं किया। हाय कंट्रोल हाय कंट्रोल, ''देश का को है जिम्मेदार,'' याक किसान की रोटी, दस साला लगन, दिल्ली दरबार, अब्बे यतनी लड़ाई ते सफाई नाही बा, जागु रे सैनिक स्वतंत्रता के, चेतु रे धरती के भुइंहार, अब सरकार न ढ़ोई जाई, अब यह दसा ना देखी जाई, राजनीति की चाल, तथा एक फरियादि जैसी कविताएँ बड़ी निर्भीकता से सत्तारूढ़ सरकार से पूछतीं हैं-

''देश का को है जिम्मेदार?

चौराहे पर ठाढ़ किसनऊ तकै चारिउवार,
रोय रहे सब भारतवासी, हाय देश का को विश्वासी।
कृषक, श्रमिक, विद्यार्थी तड़प,
बढ़ै लूटी अफसर अय्याशी!!
नौकरशाही का थनु, पकरे लटकि रही सरकार।।''[15]

शुक्ल जी सरकार की फैशनपरस्ती और फिजूलखर्च पर भी व्यंग्य करने से पीछे नहीं रहते। उन्हें यह बात बहुत खलती है, कि देश का किसान, मजदूर भूखे मर रहा है और उनके नाम पर विदेशी कर्ज के रूप में लिये जाने वाला पैसा, सरकारें व्यर्थ चीजों में व्यय कर रही हैं-

''कर्जु मांगि लावै विदेश से, जलु अस देंय बहाई,
गिरौ धरि दिहिन हिंद देश का
दीन्हिनि बांटु कराई अब सरकार न ढोई जाई।''[16]

वंशीधर शुक्ल एक मानवतावादी कवि थे। दीन हीन जनता को परेशान करने वाले प्रत्येक वर्ग चाहे वह सरकार हो, अफसर हो, पुलिस हो, नेता हो, कोई डिग्रीधारी हो, महंगाई हो, सभी पर अपनी लेखनी से डांट लगाई। उनकी मानवता जनित करुणा इतनी प्रबल है कि वो ईश्वर को निर्बलों को असहाय छोड़ के लिए उलाहना देने से पीछे नहीं हटती हैं: -

''डेढ़ करोड़ भूख ते मरिगे, जूठउ अन्नु न पाइनि,
कहां गए उइ पतित उधारन, जिनका भोगु लगाइनि,
लाज लूटै दुई दुई दानन पर कहं गे चीर बढैंया,
मरिगे सब पहलाद सुदामा कहं गे खंम्भु फरैया।।''[17]

वंशीधर शुक्ल जी की कविताएँ आज भी प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे जीवन के यथार्थ की, मानवता की तथा लोक कल्याण की कविताएँ हैं। उन्हें मात्र अवधी का कवि कहना उनकी काव्य प्रतिभा के साथ अन्याय होगा। अपने संपूर्ण कलेवर में उनकी कविताएँ श्रमशील वर्ग के लिए एक ऐसे लोक कल्याणकारी साहित्य का निर्माण करती है, जिसमें न केवल उनका वर्तमान बल्कि भूत और भविष्य भी सांसें ले रहा है, जिस पर वे न केवल विहंगम दृष्टि डालते हैं बल्कि उसे प्रगतिशील तथा उन्नत बनाने की प्रेरणा भी देते हैं।

सन्दर्भ

1. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, अनुराग प्रकाशन वाराणसी, संस्करण-2017, पृष्ठ संख्या-2
2. वंशीधर शुक्ल रचनावली, डॉ. श्याम सुंदर मिश्र 'मधुप'/डॉ. सत्यधर शुक्ल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ, संस्करण-प्रथम, प्रष्ठ संख्या-121
3. वही, पृष्ठ संख्या-141
4. वही, पृष्ठ संख्या-117
5. वही, पृष्ठ संख्या-340
6. वही, पृष्ठ संख्या-121
7. वही, पृष्ठ संख्या-345
8. वही, पृष्ठ संख्या-83
9. वही, पृष्ठ संख्या-83
10. किसान आंदोलन की साहित्यिक जमीन, रामाज्ञा शशिधर, पृष्ठ संख्या-26
11. वंशीधर शुक्ल रचनावली डॉ. श्याम सुंदर मिश्र 'मधुप'/डॉ. सत्यधर शुक्ल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ, संस्करण-प्रथम, पृष्ठ संख्या-115
12. वही, पृष्ठ संख्या-514
13. वही, पृष्ठ संख्या-566
14. वही, पृष्ठ संख्या-388
15. वही, पृष्ठ संख्या-390
16. वही, पृष्ठ संख्या-388
17. वही, पृष्ठ संख्या-237

कविता मौर्या
शोधार्थी
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 226025

डॉ. प्रणव कुमार मिश्र
एसोसिएट प्रोफसर
बी.एस.एन.वी. पी.जी. कॉलेज लखनऊ

रविदास : श्रम और साधना के संत-साहित्यकार

–डॉ. पूनम सिंह
–सुधांशु रायल

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण कवि, संत, समाज सुधारक रविदास भ्रमण प्रवृत्ति के थे। विभिन्न क्षेत्रों की बोली और भाषा के अनुरूप इन्हें विभिन्न नामों से ख्याति प्राप्त हुई। पंजाब में रैदास, बंगाल में रूईदास, महाराष्ट्र में रोहिदास, राजस्थान में रायदास, गुजरात में रोहिदास अथवा रोहितास मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में रविदास। गुरूग्रंथ साहब में संकलित चालीस पदों में अधिकांशतया 'रैदास' नाम का ही वर्णन आया है। इनसे संबन्धित अधिकांश ग्रन्थों की रचना रविदास नाम से ही हुई है। वे उत्तरी भारत, पूर्वी भारत, पश्चिमी भारत और मध्य भारत के सर्वमान्य संत थे। संत रविदास के विचारों के आधार पर सतनामी संप्रदाय, गुरु घसीदास संप्रदाय, आदिधर्मी और रविदासिया संप्रदायों का उदय हुआ।

कोई तथाकथित ऊँचे कुल में पैदा होकर महान हो जाए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है लेकिन कोई सामाजिक दृष्टि से हेय समझे जाने वाले कुल में पैदा होकर महान हो जाए यह अपने आप में एक बड़ी और आश्चर्य की बात है। संत रविदास इस तथ्य का एक जीवंत उदाहरण है। संत रविदास का संबंध समाज के ऐसे ही वर्ग से था जो कि मेहनत करके अपना पालन करता था और अपने अनुभव से ही सिद्धांतों को निर्मित किया था। उनकी इस महानता का एक ही रहस्य है और वह है उनकी 'श्रम के प्रति आस्था'। बिना श्रम के खाने को उन्होंने हेय समझा। उन्होंने श्रम को ईश्वर के बराबर का दर्जा दिया। संत रविदास जी ने कहा कि जहाँ तक हो सके व्यक्ति को श्रम करके खाना चाहिए। निष्क्रियता मनुष्य को हर स्तर पर तोड़ देती है इसलिए संत रविदास व्यक्ति को सदैव नेक नियत से कर्मशील रहने का संदेश देते हैं

रैदास स्रम करि खाइए, जौं लौं पार बसाय।
नेक कमाई जो करहूँ, कबहुँ न निहफल जाय।[1]

इस प्रकार संत रविदास जी श्रम साधना की प्रतिष्ठा को प्रतिपादित करते हुए कर्म करने पर जोर देते हैं। मनुष्य यदि नेक कमाई करेगा तो उसे अवश्य ही फल प्राप्त होगा।

इन्होंने श्रमण संस्कृति को मजबूत किया है। संत रविदास जी कामगार समाज में ही पैदा हुए थे। इस समाज में हमेशा से ही श्रम की ही परंपरा रही है। भीख मांगकर खाने को निम्न समझा जाता रहा है। संत रविदास जी कहते हैं- जब तक व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्वस्थता बनी रहती है तब तक उसको श्रम अर्थात मेहनत करके खाना चाहिए। निठल्ला नहीं बैठना चाहिए, हर समय सक्रिय बने रहना चाहिए। किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहिए कि कोई करके देगा बल्कि आत्मनिर्भर बने रहना चाहिए। जब व्यक्ति मेहनत करने की स्थिति में नहीं रहेगा तो उसके परिवार को उसका ख्याल रखना चाहिए।

संत रविदास जी भक्ति के लिए गृहस्थ जीवन को छोड़कर वैराग्य के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने इस बात का सिर्फ उपदेश ही नहीं दिया बल्कि स्वयं भी गृहस्थ आश्रम को अपनाया। उनका मानना है कि मनुष्य गृहस्थी में रहकर भी काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार और माया आदि पर विजय प्राप्त कर प्रभु स्मरण कर सकता है। इसके लिए उन्होंने श्रम की महत्ता पर जोर दिया। श्रम साधना को ही संत रविदास जी ने प्रभु की भक्ति माना है। उन्होंने स्वयं पैतृक व्यवसाय अपनाकर श्रम को महत्ता प्रदान की है। उनका विचार है कि यही कार्य उन्हें भवसागर से पार उतारेगा। वे कहते हैं -

रविदास हौं निज हत्थहिं, राखौं राँबी आर।
सुकिरत ही मम धर्म है, तारैगा भव पार।।[2]

संत रविदास की दृष्टि में कर्म ही धर्म है, भक्ति है, पूजा है। इसलिए वे कहते हैं-

स्रम कउ ईसर जानि के, जउ पूजहि दिन रैन।

रविदास तिन्हहिं संसार मंह, सदा मिलहि सुख चैन।।[3]

रविदास मनुष का धरम है, करम करहिं दिन-रात।
करमा का फल पावना, नाहिं काहु के हात।।[4]

यानी श्रम को ही ईश्वर जानकार जो लोग दिन-रात श्रम की पूजा करते हैं उन्हें संसार के समस्त सुख-चैन प्राप्त होते हैं।

लेकिन उनकी ये कर्मनिष्ठता कभी भी पूजा, अर्चना में बाधक नहीं बनी। अच्छे कर्मों द्वारा ही वे प्रभु मिलन के लिए जंगलों में न जाकर घर में ही अपना पैतृक कार्य करते हैं -

जिह्वां सों ओंकार जप, हत्थन सों कर कार।
राम मिलहिं घर आई कर, कहि 'रविदास' बिचार।।[5]

अर्थात जो व्यक्ति हाथ से काम करता हुआ जिह्वा से ईश्वर का नाम लेता रहे ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति से ईश्वर घर आकार मिलते हैं।

काम करते हुए व्यक्ति के मन में कभी अभिमान न आने पाए और वह काम करते हुए किसी भी प्रकार की इच्छा न रखे। इससे बड़ा त्याग और क्या हो सकता है। इसी को श्रीमद भगवद्गीता में 'निष्काम कर्मयोग' कहा गया है-

सौ बरस लौ जगत मंहि, जीवत रहि करू काम।
रैदास करम ही धरम है, करम करहु निहकाम।।[6]

धरम हेतहिं कीजियै, सौ बरस लौं कार।
रैदास करमहि धरम है, फल माहि नहीं अधिकार।।[7]

इस निष्काम कर्मयोगी संत रविदास ने गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए जीवन भर काम किया और परम पद प्राप्त किया। डॉ. शिवप्रसाद गोयल लिखते हैं कि ''आधुनिक युग में संत रैदास की विचारधारा का अपना विशिष्ट महत्त्व है। लौकिक दृष्टि से जब बड़े से लेकर छोटे तक प्राणी कर्तव्य-विमुख हो रहे हैं, तब लोक-परलोक की निन्दा-स्तुति से दूर अपनी सत साध्वी पत्नी के साथ, मामूली-सी झोंपड़ी में बैठे हुए जूता सीकर जीविका चलाने वाले मस्त फकीर और तन्मय भक्त रैदास का कर्तव्य परायण होकर गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए आत्मोद्धार के लिए भक्ति पथ अपनाने का संदेश किसे नहीं मोह लेता? अभ्युदय से लेकर निश्रेयस की ओर ले जाने वाली उनकी वाणी सचमुच अनुकरणीय है। उनका लौकिक और आध्यात्मिक चिंतन संसार के सभी दुखों को दूर करने के लिए प्रभावशाली औषध है-समाज के लिए भी और व्यक्ति के लिए भी।''[8] कहना न होगा कि संत रविदास ने सदाचार के शाश्वत सिद्धांतों का प्रचार किया है।

संत रविदास जी का ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है किन्तु अकर्मण्यता उनका सिद्धांत नहीं है। उनका सिद्धांत है कि व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना चाहिए क्योंकि बिना श्रम किए तो कोई उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। संत रविदास जी के इस सिद्धांत में ये तत्त्व विद्यमान है कि शारीरिक श्रम करने से धनोपार्जन तो होता ही है साथ में आत्म-ग्लानि भी नहीं होती। इससे मनुष्य का चरित्र शुद्ध रहता है और उसके स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करते उनका चरित्र गिर जाता है समाज में। वे मानसिक रोगी तो होते ही हैं साथ में उनका आचरण भी नष्ट हो जाता है। ऐसे व्यक्ति जीवन आदर्श का पालन करने में असफल रहते हैं।

सभी संतों ने कर्म को महत्त्व दिया है। वे 'कर्म ही पूजा है' के सिद्धांत में अटूट विश्वास रखते हैं। संत रविदास भी इससे अछूते नहीं हैं, उनका भी यही मानना था। संत रविदास जी कहते हैं कि हमें हमेशा अपने कर्म में लगे रहना चाहिए और कभी भी कर्म के बदले मिलने वाले फल की आशा नहीं छोड़नी चाहिए क्योंकि कर्म करना हमारा धर्म है तो फल पाना हमारा अधिकार है।

करम बंधन में रमि रहियो, फल की तज्यो न आस।
करम मानुस का घरम हौ, सत भासे रविदास।।[9]

संत रविदास जी ने निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया है। किसी भी साधक के लिए घर का त्याग करके वनों में चले जाना और वहाँ तपस्या आदि करना उन्हें उचित प्रतीत नहीं लगता। उनका मत है कि वही सच्चा भक्त है जो गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ साधना में तल्लीन रहता है। वे कहते हैं-

नेक कमाई जउ करहि, ग्रह तजि बन नंहि जाय।
'रविदास' हमारो राम राय, ग्रह मंहि मिलिंहि आय।[10]

संतों ने नाम के साथ कर्म पर भी विशेष बल दिया है। उनके लिए कर्म ही पूजा है। संतों के अनुसार कोरा नाम लेने से कुछ होने वाला नहीं है। नाम स्मरण के साथ कर्म का होना जरूरी है। संत रविदास भी कर्म को महत्व देते हैं। संत रविदास जी कहते हैं कि भक्त को परमात्मा का सुमिरन करते हुए निश्चिंत होकर कर्म करना चाहिए क्योंकि उसकी चिंता स्वयं परमात्मा करते हैं-

जिह्वा भजै हरि नाम नित हत्थ करहिं नित काम।
रविदास भए निहचिंत हम मम चिंत करैंगे राम।[11]

संत रविदास जी ने अपनी वाणी में जीव को जाग्रत कर कर्म करने का संदेश देते हुए कहा है-

क्या तूं सौवे जागि दिवाने,
झूठा जीवन सांचि करि जाना।[12]

संतों के अनुसार नाम ही वह पारस है जिसके स्पर्श मात्र से अवगुणों से परिपूर्ण व्यक्ति भी सोना बन जाता है। संत रविदास ने नाम को साक्षात अमृत माना है जो जन्म-जन्म की प्यास बुझाकर जन्म-मरण के बंधनों से मुक्ति देता है। अतः संत रविदास ऐसे महारस को पीने की

सलाह देते हैं जो चढ़ने के बाद कभी नहीं उतरता-

नांव महारस पिजियै, जौ चढ़े नांहि उतराय।[13]

संत रविदास की साधना

संत विचारधारा उस वक्त की परिस्थितियों का समाधान एवं उस वक्त की अवस्था में भारतीय समाज के पुनर्व्यवस्थापन का प्रयत्न थी। परिणामस्वरूप उसमें परंपरा से हटकर नई विशेषताएँ और विशिष्ट प्रवृत्तियाँ थीं। मूलतः यह विचारधारा जन-जीवन के लिए उत्पन्न हुई और इसमें निम्नवर्ग के ही दुखी समाज के प्रतिनिधि थे। अतः यह विचारधारा सामान्य जनता के प्रति ग्राह्य स्वरूप को ही लेकर चली। परंपरागत धर्म के कर्मकांड, बाह्याडंबर अथवा सांप्रदायिक असहिष्णुता का इसने एकदम बहिष्कार किया, नई परिस्थितियों के अनुरूप उपर्युक्त बात जहाँ भी मिली उसको ग्रहण किया और अपनी साधना का मार्ग प्रत्येक मनुष्य के लिए खोल दिया।

संत रविदास ने कर्मकांड, बाहरी वेषभूषा, तीर्थ यात्रा, अर्चना की विभिन्न विधियाँ आदि सभी को निम्न माना है और यह कहा है कि यदि वे मानसिक भाव से संयुक्त नहीं है तो निश्चित ही व्यर्थ है। संत रविदास जी के अनुसार शरीर को कष्ट देने वाली साधनाएँ जिनसे केवल जनता पर प्रभाव उत्पन्न किया जाता है केवल दिखावा है।

संत रविदास ने परंपरा से चली आ रही मूर्ति पूजा का भी विरोध किया था। उनका कहना था कि जो ईश्वर सारे संसार का कर्ता है, सर्वव्यापी है, संसार के पंचतत्व में जो पूर्ण रूप से सदा से विद्यमान है उसकी प्रतिनिधि ये मूर्ति नहीं हो सकती। यदि इस मूर्ति में मनुष्य को तारने की शक्ति होती तो वह स्वयं ही तिर मुक्त हो जाती। यही सोचकर उन्होंने मूर्ति पूजा का परित्याग कर दिया है किन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि संत रविदास जी को परंपरा से चले आ रहे इस ढोंग तथा व्यर्थ के कर्मकांड के बाह्य स्वरूप से ही विरोध है। कुछ अन्य संतों की भांति उन्होंने परंपरा को पूर्णतया अस्वीकार नहीं किया है बल्कि परंपरा से मिलने वाले प्रकाश को साभार सहित स्वीकार भी किया है। बहरहाल संत रविदास जी ने धर्म के बाह्य आडम्बरपूर्ण कर्मकांड, मूर्तिपूजा व दिखावटीपन पर अविश्वास प्रकट करते हुए आभ्यांतरिक साधना और जीवन की पवित्रता पर अधिक बल दिया। संत रविदास जी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जिस व्यक्ति के हृदय में बाह्य प्रदर्शन के स्थान पर सदा ही भगवान का ध्यान रहता है उस व्यक्ति को काम-क्रोधादि कभी नहीं सताते और वह स्वयं ही ईश्वर का रूप हो जाता है।

संत रविदास जी के अनुसार यदि कोई व्यक्ति धर्म के सम्पूर्ण बाह्याचरण करता भी है लेकिन उसमें मानवीय गुणों का आभ्यांतरिक विकास नहीं हुआ है तो उसका वह सम्पूर्ण धर्माचरण व्यर्थ ही जाता है। संत रविदास जी के अनुसार अनेक प्रकार की वेषभूषा धारण करना, माला-तिलक लगाना आदि बाहरी पाखंड है। इस पाखंड से परमात्मा को धोखा नहीं दिया जा सकता। जो लोग इस प्रकार का आचरण करते हैं वे अपने और परमात्मा के बीच एक दीवार खड़ी कर लेते हैं।

साधना के क्षेत्र में संत रविदास पूर्णतः आभ्यांतरिक साधना-भक्ति के प्रतिपादक हैं। उनका कहना है कि साधक को धर्म संबंधी वाद विवाद छोड़ कर रात-दिन भगवान का स्मरण करना चाहिए।

सोहंग

सोहंग अर्थात 'जैसे आप वैसे मैं'। यह पूर्वजों को संबोधित है। इस शब्द से पूर्वजों से जुड़ा जाता है। उनसे कहा जाता है जैसे आप वैसे मैं, जैसा आपका व्यक्तित्व वैसा ही मेरा व्यक्तित्व, जैसे ही आपके गुण वैसे ही मेरे गुण, मैं आपकी ही प्रतिकृति हूँ, आपकी ही प्रतिछाया हूँ।

सोहंग की महत्ता को सतगुरु रविदास जी ने इस प्रकार बताई है

सोहंग सोहंग उच्चारिये, श्रेष्ठ पुरुष संग प्यार।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, कबहू न आये द्वार।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, गुरु का नाम गहीर।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, खोजे मत सुधीर।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, भजन करो गुरुदेव।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, ताजा ने निज भेव।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, संधया समय धयान।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, साकत संग न होय।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, निर्मल होवे सोए।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, कान कारन अलेख।।
सोहंग सोहंग उच्चारिये, मन नीवां कर देख।।[14]

उच्चारण की विधि

'सोहंग' को मन ही मन उच्चरित करना है। लंबी सांस अंदर लें तब 'सोऽऽऽ' बोलना है और जब सांस बाहर छोड़ेंगे तब 'हंग' बोलना है। साँसों के आने-जाने के साथ उच्चारण भी होता रहेगा। धीरे-धीरे मन-मस्तिष्क में यह ध्वनि गूंजने लगेगी। इस तरह से यह विधि ध्यान क्रिया के लिए प्रयोग करें। थोड़े समय के लिए एकांत में बैठकर आँखें बंद करके अपने पूर्वजों का ध्यान लगाना है उनको याद करना है। उनके सुख-दुख और तकलीफों को याद करना है। उनकी ज्ञान पद्धतियों, परम्पराओं, वीरताओं और उनके राज-पाठ को याद करना है।

संत रविदास जी ने पराधीनता को सबसे बड़ी दीनता और कलंक बताया है। उन्होंने पराधीनता को पाप बताते हुए कहा कि पराधीन व्यक्ति को सब ही दीन-हीन समझते हैं तथा ऐसे व्यक्ति से कोई भी प्रेम नहीं करता। पराधीन व्यक्ति का कोई भी धर्म नहीं होता इसलिए इस परतंत्रता से

मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए -

पराधीनता पाप है जान लेहु रे मीत।
रविदास दास पराधीन सौं, कोन करै है प्रीत।।[15]

पराधीन को दीन क्या, पराधीन बेदीन ।
रैदास दास पराधीन, सबहिं समझे हीं।।[16]

संत रविदास जी ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए खाद्य सुरक्षा, समानता और सभी की खुशी की बात भारतीय इतिहास में सबसे पहले उठाई-

ऐसा चाहूँ राज मैं, जहाँ मिलै सबन को अन्न।
छोट बड़ो सब सम बसै, रविदास रहे प्रसन्न।।[17]

संदर्भ

1. संत कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेय, डॉ. एन. सिंह, साखी संख्या-149, पृष्ठ 33
2. वही, साखी संख्या-123, पृष्ठ 31
3. वही, साखी संख्या-150, पृष्ठ 33
4. वही, साखी संख्या-133, पृष्ठ 32
5. वही, साखी संख्या-133, पृष्ठ 32
6. वही, साखी संख्या-138, पृष्ठ 32
7. वही, साखी संख्या-139, पृष्ठ 32
8. सन्त शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, डॉ. एन. सिंह, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली 110002, पृष्ठ 86
9. https://www.allresearchjournal.com/archives/2017/vol3issue12/PartG/9-5-49-140.pdf
10. संत कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेय, डॉ. एन. सिंह, साखी संख्या-125, पृष्ठ 31
11. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/59342/1/Unit8.pdf
12. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/59342/1/Unit8.pdf
13. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/59342/1/Unit8.pdf
14. अमृतवाणी सतगुरु रविदास महाराज जी, पृष्ठ 110
15. वही, पृष्ठ 173
16. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/59342/1/Unit8.pdf
17. अमृतवाणी सतगुरु रविदास महाराज जी, पृष्ठ 170

डॉ. पूनम सिंह
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

सुधांशु रायल
शोधार्थी , हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

गंगा नदी का ऐतिहासिक स्वरूप : महाभारत के परिप्रेक्ष्य में

–डॉ. साधना देवी

प्रस्ताक्वना :

रामायण की ही भाँति महाभारत में भी ऐसी अनेक नदियों का उल्लेख मिलता है जिनकी ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्ता वर्तमान में भी विद्यमान और अनुकरणीय भी है। गंगा, यमुना, सरस्वती, क्षिप्रा, चर्मण्वती आदि अनेक नदियों का वर्णन महाभारत में प्राप्त होता है। यहाँ पर सरस्वती नदी के प्लक्षवती, वेदस्मृति, वेदवती आदि नाम बतलाये गये हैं[1] और इस नदी का कई बार उल्लेख भी हुआ है जो इसकी विशिष्टता का परिचायक है। इसके वैशिष्ट्य के सन्दर्भ में कहा गया है कि इसके तट पर कई राजाओं ने यज्ञ किये थे।[2] महाभारत में सरस्वती नदी के तटवर्ती सभी तीर्थों का सविस्तार वर्णन किया गया है।[3] उक्त स्थल पर सरस्वती नदी के वैशिष्ट्य और धार्मिक महत्त्व को बहुत ही श्रद्धा के साथ दर्शाया गया है।[4]

गंगा नदी का ऐतिहासिक महत्त्व :

महाभारत में गंगा नदी का अनेक स्थलों पर ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। गंगा नदी की ऐतिहासिकता का प्रमाण द्रोणाचार्य और द्रुपद के संवाद से भी विदित है जो अर्जुन से वैशम्पायन सम्वाद निम्न में वर्णित है। महाभारत के निम्नलिखित श्लोक में इसका संकेत भी प्राप्त होता है-

राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे।
सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे।।[5]

उक्त श्लोक में गंगा के दक्षिणवर्ती राजा यज्ञसेन द्रुपद तथा द्रोणाचार्य का संवाद है।

इसके अतिरिक्त भी गंगा के तटवर्ती सोमाश्रयण नामक तट पर पाण्डवों के विश्राम करने का वर्णन किया गया है। महाभारत का यह प्रसंग गंगा नदी की ऐतिहासिकता को पुष्ट करती है। प्रमाण स्वरूप महाभारत का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है-

ते त्वगच्छन्नहोरात्रात् तीर्थं सोमाश्रयायणम्।
आसेदुः पुरुषव्याघ्रागङ्ग्यां पाण्डुनन्दनाः।।[6]

अर्थात् एक दिन और एक रात चलकर पाण्डवों ने गंगा के तट पर सोमाश्रयायण तीर्थ में पहुँचे।

गंगा के सोमाश्रयायण नामक तीर्थ में गंधर्वराज चित्ररथ का अपनी पत्नियों के साथ क्रीडा करने का उल्लेख मिलता है जो महाभारत के निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है-

तत्र गङ्गाजले रम्ये विविक्ते क्रीडयन् स्त्रियः।
ईर्ष्युर्गन्धर्वराजो वै जलक्रीडामुपागतः।।[7]

गंगा नदी को न केवल एक ऐतिहासिक नदी के रूप में वर्णित किया गया है अपितु इसे मूर्तरूप प्रदान कर प्राचीन राजाओं के साथ संवाद भी स्थापित किया गया है जो कि महाभारत के जनमेजय-वैशम्पायन संवाद में दृष्टिगत होता है-

स चिन्तयित्वा नृपतिर्नृपानन्यांस्तपोधनान्।
प्रतीपं रोचयामास पितरं भूरितेजसम्।।[8]

आगे भी गंगा नदी की ऐतिहासिकता गंगा और राजा वसु के संवाद में भी दृष्टिगत होती है। महाभारत के कथानुसार जब गंगा वसु देवताओं से उनके दिव्य स्वरूप के नष्ट हो जाने के सम्बन्ध में पूछती हैं तो प्रत्युत्तर में वसु देवताओं ने कहा कि हम लोगों द्वारा सन्धोपासना कर रहे वसिष्ठ का उल्लंघन तथा मोहवश उनकी धेनु का अपहरण कर लिये जाने से कुपित होकर उन्होंने हम लोगों को मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया-

किमिदं नष्टरूपाः स्थ कच्चित् क्षेमं दिवौकसाम्।
तामूचुर्वसवो देवाः शप्ताः स्मो वै महानदि।।

अल्पेऽपराधे संरम्भाद् वसिष्ठेन महात्मना।
विमूढा हि वयं सर्वे प्रच्छन्नमृषिसत्तमम्।।
संध्यां वसिष्ठामासीनं तमत्यभिसृताः पुरा।
तेन कोपाद् वयं शप्ता योनौ सम्भवतेति ह।।[9]

अतः वसु देवताओं ने मानुषी स्त्रियों के गर्भ में प्रवेश न करने हेतु गंगा जी से मातृत्व प्रदान करने का अनुरोध किया वसुदेवों के इस अनुरोध को गंगा जी ने तो स्वीकार कर लिया, किन्तु वसु देवताओं का पिता कौन बनेगा, इस सन्दर्भ में शंका करती हुई वसु देवताओं से गंगा जी बोलीं तो प्रत्युत्तर में वसु देवताओं ने अपने पिता होने के सन्दर्भ में लोक विख्यात् साधु पुरुष राजा शान्तनु का नाम लिया-

प्रतीपस्य सुतो राजा शान्तनुर्लोकविश्रुतः।
भविता मानुषे लोके स नः कर्ता भविष्यति।।[10]

गंगा जी उनके अनुरोध को स्वीकार करते हुए कहती हैं कि मैं राजा शान्तनु का प्रिय करते हुए तुम्हारे अभीष्ट कार्य को भी सिद्ध करूँगी-

ममाप्येवं मतं देवा यथा मां वदतानघाः।
प्रियं तस्य करिष्यामि युष्माकं चैतदीप्सितम्।।[11]

तत्पश्चात् वसुगण गंगा जी से अनुरोध करते हैं कि जब तुम्हारे गर्भ में जन्म लें तब तुम हम लोगों के जन्म लेते ही हमें अपने जल में गिरा देना जिससे शीघ्र ही हम सब मर्त्यलोक से मुक्त हो जायें-

जातान् कुमारान् स्वानप्सु प्रक्षेप्तुं वै त्वमर्हसि।
यथा न चिरकालं नो निष्कृतिः स्यात् त्रिलोकगे।।[12]

वसु देवताओं के उक्त अनुरोध को स्वीकार करती हुई गंगा जी कहती हैं कि मैं तुम्हारे अनुरोध को स्वीकार करती हूँ, किन्तु उस राजा का मेरे साथ पुत्रार्थ किया गया सम्बन्ध व्यर्थ न हो अतः उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति अवश्य होनी चाहिए-

एवमेतत् करिष्यामि पुत्रस्तस्य विधीयताम्।
नास्य मोघः सङ्गमः स्यात् पुत्रहेतोर्मया सह।।[13]

प्रत्युत्तर में वसुगण कहते हैं कि हम सब अपने-अपने अंश का एक-एक अष्टांश देंगे जिससे तुम्हें एक पुत्र होगा जो उस राजा की इच्छानुरूप होगा, किन्तु मनुष्य रूप में उसकी कोई भी संतान नहीं होगी लेकिन वह परम पराक्रमी अवश्य होगा-

तुरीयार्धं प्रदास्यामो वीर्यस्यैकैकशो वयम्।
तेन वीर्येण पुत्रस्ते भविता तस्य चेप्सितः।।
न सम्पत्स्यति मर्त्येषु पुनस्तस्य तु संततिः।
तस्मादपुत्रः पुत्रस्ते भविष्यति स वीर्यवान्।।[14]

इस प्रकार गंगा का वसु देवताओं के साथ मूर्त संवाद तथा राजा शान्तनु का प्रिय एवं वसु देवताओं के अभीष्ट की सिद्धि गंगा नदी के ऐतिहासिक स्वरूप को पुष्ट करती है। देवी गंगा का ऐतिहासिक मूर्तस्वरूप इस सम्बन्ध में भी दृष्टिगत होता है कि जब वे एक सुन्दर मनुष्य रूप धारण करके नृपशिरोमणि महाराजा शान्तनु का पत्नीत्व स्वीकार करती हैं-

दिव्यरूपा हि सा देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी।
मानुषं विग्रहं कृत्वा श्रीमन्तं वरवर्णिनी।।
भाग्योपनतकामस्य भार्या चोपनताभवत्।
शान्तोर्नृपसिंहस्य देवराजसमद्युतेः।।[15]

जहाँ शान्तनु एक श्रेष्ठपुरुष के रूप में सुविख्यात हैं वहीं मनुष्यरूपिणी गङ्गा भी देवताओं की कार्य सिद्धि के लिए अद्वितीय रूप में विख्यात हैं जैसा कि गङ्गा के निम्न कथन से भी स्पष्ट होता है-

तेषां जनयिता नान्यस्त्व ते भुवि विद्यते।
मद्विधा मानुषी धात्री लोके नास्तीह काचन।।[16]

ऋषि भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत का गंगा के तीर्थ में स्नान करने तथा तपस्या करने का संकेत प्राप्त होता है, जो गंगा नदी से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक घटनाक्रम को भी प्रकट करता है-

यवक्रीतस्य यत् तीर्थमुचितं शौचकर्मणि।
भागीरथ्यां तत्र सेतुं वालुकाभिश्चकार सः।।[17]

शान्तनुनन्दन भीष्म का गंगा के गर्भ से उत्पन्न होने की कथा का वर्णन भी महाभारत में प्राप्त होता है जो कि एक ऐतिहासिक कथा के रूप में सुविख्यात् है-

तथा भीष्मः शान्तनवो गङ्गायाममितद्युतिः।
वसुवीर्यात् समभवन्महावीर्यो महाशयाः।।[18]

महाराजा भरत द्वारा गंगा के तट पर चार सौ अश्वमेध यज्ञ करने का वर्णन किया गया है-

सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान्।
त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गाङ्गामनु चतुःशतान्।।
सोऽश्वमेधसहस्त्रेण राजसूयशतेन च।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः।।[19]

गंगा नदी की उत्पत्ति विषयक ऐतिहासिक वर्णन :

गंगा नदी का उत्पत्ति से ही ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। यद्यपि शास्त्रों के अनुसार सगर के पुत्रों के कल्याण के लिए गंगा नदी को भूलोक तथा पाताल लोक में लाने का सगर के पुत्रों तथा पौत्रों सहित अनेकानेक ने प्रयास किया, किन्तु भगीरथ का अपने कठोर तपस्या से गंगा जी को पृथ्वीलोक पर लाने का प्रयास सार्थक सिद्ध हुआ। गंगा नदी को त्रिपथगामिनी नदी के रूप में ख्याति प्राप्त है। स्वर्गलोक, भूलोक तथा पाताललोक में प्रवाहित होने के कारण इन्हें 'त्रिपथगामिन' कहा गया है और धार्मिक दृष्टि से मनुष्यों के पापों का नाश करने तथा कल्याण करने के कारण इनका मनुष्य लोक में भी सर्वाधिक महत्त्व है। गंगा नदी की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यद्यपि अनेक शास्त्रों में विशद वर्णन प्राप्त होता है किन्तु गंगा की उत्पत्ति सम्बन्धी कथाएँ महाभारत में भी अनेकत्र उल्लिखित है। भूलोक में

गंगा की उत्पत्ति स्थान का संकेत करते हुए महाभारत में कहा गया है-

स निवासोऽभवद् विप्र विष्णोर्जिष्णोस्तथैव च।
यतः प्रववृते गङ्गा सिद्धचारणसेविता।।[20]

भूलोक में आने पर भी ये भिन्न-भिन्न नामों से जानी गईं तथा इनके उत्पत्ति के सम्बन्ध में विशद उल्लेख भी प्राप्त होता है-

अलकनन्दा :

गंगा नदी को ही अलकनन्दा के भी नाम से जाना गया है। इसका संकेत महाभारत के निम्नलिखित श्लोक में मिलता है-

एषा शिवजला पुण्या याति सौम्य महानदी।
बदरीप्रभवा राजन् देवर्षिगणसेविता।।[21]

यह नदी देवलोक में अलकनन्दा नाम से जानी जाती है-

देवेषु गङ्गा गन्धर्व प्राप्नोत्यलकनन्दताम्।[22]

हिमालय से निकलने के पश्चात् गंगा विभिन्न धाराओं में प्रवाहित होती हुई समुद्रगामिनी के रूप में पुरातन काल से प्रसिद्ध है। इसका उल्लेख महाभारत के निम्न श्लोक में भी किया गया है-

पुरा हिमवतश्चौषा हेमशृङ्गाद् विनिस्सृता।
गङ्गा गत्वा समुद्राम्भः सप्तधा समपद्यत।।[23]

गंगा नदी के संगमों की ऐतिहासिकता :

गंगा नदी को शास्त्रों में त्रिपथगामिनी के नाम से जाना गया है जो स्वर्गलोक, भूलोक तथा पाताललोक में प्रवाहित होती है। भूलोक में शिव की जटाओं से निकलकर हिमालय से निकलने के पश्चात् समुद्र तक प्रवाहित होने तथा उसमें मिलने के पूर्व यह नदी विविध नदियों के साथ संगम बनाती है। महाभारत में वर्णित यह ऐतिहासिक घटनाक्रम गंगा नदी की ऐतिहासिकता को प्रकट करती है। धार्मिक दृष्टि से भी इस नदी का ऐतिहासिक महत्त्व परिलक्षित होता है जो पुरातन काल से ही विद्यमान है।

गंगा नदी हिमालय से निकलने के पश्चात् विभिन्न स्थानों पर अनेक नदियों के साथ मिलकर संगम स्थलों का भी निर्माण करती है। महाभारत में उल्लिखित कुछ संगम स्थलों को निम्न रूप से निरूपित किया जा सकता है

गंगा-यमुना संगम :

महर्षि वेदव्यास ने अपने महाभारत ग्रन्थ में यद्यपि अनेक स्थलों पर गंगा-यमुना के संगम का वर्णन किया है, जहाँ उक्त दोनों नदियों का ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्त्व परिलक्षित होता है किन्तु उद्धरण स्वरूप महाभारत का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है-

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नाति यः संगमे नरः।
दशाश्वमेधानाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्।।[24]

गंगा-यमुना-सरस्वती संगम की ऐतिहासिकता :

महाभारत के अनेक प्रसंगों में गंगा, यमुना और सरस्वती नदी के समागम का भी वर्णन किया गया है। यदि इस वर्णन की ओर दृष्टिपात किया जाये तो यह सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना परिलक्षित होगी क्योंकि वेद, पुराण, रामायण एवं महाभारत आदि प्राचीन भारतीय शास्त्रों में सरस्वती नदी का बहुतायत रूप में वर्णन किये जाने से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सरस्वती नदी की सत्ता थी। कालान्तर में इस नदी के लुप्त होने की मान्यता भी बहुत लम्बे समय तक विद्यमान रही, किन्तु आधुनिक पुरातत्त्वविदों ने अपने शोध के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि यह नदी आज भी अन्तःसलिला के रूप में प्रवाहित होती है। सरस्वती नदी के सजला और निर्जला रूप में महाभारत में प्राप्त वर्णन भी इसी बात की ओर संकेत करता। इसका संकेत महाभारत के निम्न श्लोक में भी दृष्टिगत होता है-

गङ्गा च यमुना चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम्।[25]

गंगा-सरयू संगम की ऐतिहासिकताः

यह सर्वविदित है कि रामायण महाभारत के पूर्व का ग्रंथ है। रामायण में सरयू नदी एक महत्त्वपूर्ण नदी के रूप में प्रतिष्ठित थी क्योंकि अयोध्या नगरी इसी नदी के तट पर विद्यमान थी और वर्तमान में भी अयोध्या सरयू नदी के तट पर ही विद्यमान है। सरयू नदी और अयोध्या की यह भौगोलिक स्थिति दोनों की ऐतिहासिकता को भी प्रकट करती है। सरयू नदी मानसरोवर से निकलकर प्रसिद्ध अयोध्या नगरी में प्रवाहित होती हुई आगे जाकर गंगा जी में मिलकर प्रिद्ध संगम का निर्माण करती है जो धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। गंगा-सरयू नदी का यह दृश्य अत्यन्त ही मनोरम है। महाभारत में भी गंगा-सरयू नदी के संगम का वर्णन अनेक प्रसंगों में उपलब्ध होता है। विविध प्रसंगों में वर्णित इन नदियों का ऐतिहासिक महत्त्व भी प्रकाशित होता है। शास्त्रों या काव्यों में वर्णित व्यक्तियों, वस्तुओं या पदार्थों आदि का इतिहास भी प्रकट होता है। अतः इस सन्दर्भ में नदियों की ऐतिहासिकता भी विदित होता है। इसका उल्लेख करते हुए महाभारत में कहा गया है-

गङ्गा च यमुना चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम्।
रथस्थां सरयूं चैव गोमतीं गण्डकीं तथा।।[26]

संदर्भ

1. महाभारत, अनुशासनपर्व, 165.15
2. महाभारत, 1.90.26

3. महाभारत, शल्यपर्व, 35-54
4. महाभारत, 3.82.11, 3.130.3, 6.7.87, 6.37.1-2, 9.34. 81, 9.37.1-2
5. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/137/70
6. महाभारत, आदिपर्व/चैत्ररथपर्व/169/3
7. महाभारत, आदिपर्व/चैत्ररथपर्व/169/5
8. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/96/8-11
9. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/96/12-14
10. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/96/17
11. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/96/18
12. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/96/19
13. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/96/20
14. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/96/21-22
15. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/98/8-9
16. महाभारत, आदिपर्व/सम्भवपर्व/98/20
17. महाभारत, वनपर्व/तीर्थयात्रापर्व/135/31
18. महाभारत, आदिपर्व/अंशावतरणपर्व/63/91
19. महाभारत, द्रोणपर्व/अभिमन्युवधपर्व/68/8-9
20. महाभारत, वनपर्व/इन्द्रलोकभिगमनपर्व/47/13
21. महाभारत, वनपर्व/तीर्थयात्रपर्व/142/4
22. महाभारत, आदिपर्व/चैत्ररथपर्व/169/22
23. महाभारत, आदिपर्व/चैत्ररथपर्व/169/19
24. महाभारत, वनपर्व/तीर्थयात्रापर्व/84/35
25. महाभारत, आदिपर्व/चैत्ररथपर्व/169/20-21
26. महाभारत, आदिपर्व/चैत्ररथपर्व/169/20-21

डॉ. साधना देवी
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज
Email ID-devisadhana940@gmail.com

जीवन राग के कवि : सुरेन्द्र स्निग्ध

–हेमंत कुमार हिमांशु

सुरेन्द्र स्निग्ध मेरे प्रिय कवि हैं। दैहिक रूप से वे अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी रचनात्मक स्मृति हमेशा मेरे भीतर बनी रहती है। इसी क्रम म. उनका काव्य संग्रह 'कई कई यात्राएँ' पढ़ते हुए जो विचार मन म. उभरे, उन्हीं का परिणाम है यह लेख।

'कई कई यात्राएँ' कवि सुरेन्द्र स्निग्ध की कविताओं का दूसरा संग्रह है; पहला संग्रह 'पके धान की गंध' और तीसरा काव्य संग्रह 'रचते गढ़ते' की कविताओं से अलग, अन्तर्वस्तु की एक नई जमीन निर्मित करता हुआ। जहाँ 'पके धान की गंध' की कविताएँ जन-संघर्षों की आँच म. तपकर 'संग्रामी जीवन के प्रयाण गीत' रचती हैं, वहीं 'कई कई यात्राएँ' की कविताएँ कवि के निजी जीवन की साँसों म. घुल-मिलकर 'प्यार के अनगिनत फूल' खिलाती हैं। कवि के भीतर प्यार के ये फूल कभी चाँदनी की चादर ओढ़ मचल-मचल उठते हैं तो कभी 'अगस्त के बादल' बन मन-मिजाज पर छलक-छलक पड़ते हैं। कभी कवि के भीतर ऐसी ऊष्मा भर देते हैं कि मौत को भी चुनौती दे देते हैं-

"ऐ मौत, मेरी दोस्त
तुमको लौटना होगा
अभी हमारे प्यार के ये फूल
अपने रूप रंग और गंध से
इस वृन्त पर हैं खिल रहे
ये घाटियों म. भर रहे हैं
एक नया जीवन।" (अभी तो लौट जा)

मतलब यह कि सुरेन्द्र स्निग्ध के दूसरे संग्रह की कविताएँ पहले संग्रह से भिन्न जमीन पर खड़ी हैं। यह भिन्नता अन्तर्वस्तु और संवेदना के स्तर पर ज्यादा है, भाषा और शिल्प के स्तर पर कम। यदि इन कविताओं को गौर से देख. तो कवि जीवन के निजी प्रसंग ज्यादा उभरकर आए हैं और कविता निजी प्रसंगों की आन्तरिकता म. ही कलासिद्धि की चमक पाती है।

सवाल है कि कवि म. यह बदलाव आकस्मिक है या किसी विशेष रचनात्मक दबाव के कारण ऐसा हुआ? बदलाव के दो कारण साफ नजर आते हैं। एक तो, यह कविता ऐसे दौर की है जब हमारे यहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाएँ बड़ी तेजी से पतनशील होती नजर आती हैं। उनकी समझ बिगड़ने लगती है और हर जगह सत्ता-सुख और निजी स्वार्थपरता सुरसा की तरह मुँह बायी खड़ी मिलती है। ऐसे म. एक ईमानदार कवि और सांस्कृतिक कार्यकर्ता का इन संस्थाओं से और इनके द्वारा चलाये जा रहे खोखले कार्यक्रमों से मोहभंग स्वाभाविक है। साथ ही इस तरह के मोहभंग उन्ह. सृजनात्मक पथ पर चलने के लिए प्रेरित भी करते हैं। हम जानते हैं कि सुरेन्द्र स्निग्ध की पहचान कवि के साथ-साथ एक सांस्कृतिक कार्यकर्ता की भी रही है। उस सांस्कृतिक कार्यकर्ता की, जो जीवन के 'कालेपन के खिलाफ' कविता के रूप म. 'युद्ध की घोषणा' बाँटता रहा हो और 'खेतों के हर मोड़ पर' लामबन्द होने की सलाह देता रहा हो। इसलिए यह कवि और सांस्कृतिक कार्यकर्ता धीरे-धीरे बाहरी दुनिया से मुड़कर निजी दुनिया के लिए लड़ने लगता है। दूसरी बात कि यह परिवर्तन कवि के निजी जीवन और उसकी कविता के लिए भी नितांत जरूरी था। स्निग्ध की निजी दुनिया काफी कष्टप्रद और हाड़तोड़ रही। पति-पत्नी दोनों गंभीर बीमारी के दौर से गुजरे। दोनों को सहारे की जरूरत थी। ढांढ़स, साहस, खुशी बँधाने वाले की। लेकिन इन दोनों के अलावा तीसरा कोई नहीं था जो इनके लिए यह काम करता। ऐसे समय म. इनकी कविता ने यह काम किया। कविता पहले सहारा बनी और फिर इन दोनों के बीच एक तीसरा सदस्य। जो हर समय इन दोनों के बीच 'देह का संगीत' बनकर 'नई नई सिम्फनी' रचती रही। इनकी उखड़ती साँसों म., इनकी कमजोर छातियों म. नई ऊष्मा भरती रही। और इसी संगीत के सहारे वे 'फिर-फिर नई जिंदगी' जीने लगे। इसलिए कहना

नहीं होगा कि इन कारणों से कवि सुरेन्द्र स्निग्ध की कविताएँ 'सच्चे शब्दों' से रची जान पड़ती हैं, जो काँच की तरह पारदर्शी, पनीला और प्रिय हैं। यह ठीक है कि कला-संरचनाएँ कलाकार की निजी जिंदगी से गहरे जुड़ी होती जरूर हैं, किन्तु वह प्रभाव म. व्यापक होती हैं। वह एक कलाकार की निजी पीड़ा, व्यथा, यातना या खुशी और उत्साह को समय/समाज से भी गहरे जोड़ देती हैं। यह काम जो कला-संरचना जितनी गहराई और व्यापकता म. करती है, वह उतनी ही बड़ी रचना होती है। इस आसंग म. स्निग्ध की कविता यथार्थ और रूप के खींचतान से एक नया ढंग ग्रहण करती है। उनके कवि की 'समुद्री प्रकृति' हमारे भीतर भाव-संवेदन और विचार-संवेदन का बोध विकसित करती हुई अपनी प्रभावोत्पादकता म. अचूक सिद्ध होती है।

'कई कई यात्राएँ' संग्रह म. शामिल कुल बत्तीस कविताएँ तीन खंडों म. बँटी हुई हैं। पहले खंड की कविताएँ 'प्रकृति' से संबंधित हैं जो 'सागर की लहरों पर तनी हुई चाँदनी' उपशीर्षक के अन्तर्गत शामिल हैं। दूसरे खंड की कविताएँ प्रेम से जुड़ी हुई हैं जिनका उपशीर्षक है- 'मौत की दुर्गम अँधेरी घाटियों म. फूल अनगिन प्यार के।' तीसरे खंड की कविताएँ 'अग्नि की इस लपट से कैसे बचाऊँ कोमल कविता' उपशीर्षक के अन्तर्गत शामिल हैं जिनका संबंध वर्तमान विश्व से है। इन खंडों की कविताओं पर अलग-अलग विचार करने से पहले पुस्तक के आवरण पर भी विचार करने की जरूरत है। क्योंकि यह आवरण इस संग्रह का प्रवेश-द्वार है। यूनानी महाकवि ओदिसियस इलिनीस द्वारा रचित समुद्र, सूर्य और सौंदर्य की छटा बिखेरता कोलाज इस संग्रह की कविताओं की विषयवस्तु और औदात्य को सूचित-प्रतीकित करता है। औदात्य कविता का, लोंगिनुस के शब्दों म. कह. तो सबसे बड़ा गुण है। यह अभिव्यंजना का अनिवर्चनीय प्रकर्ष और वैशिष्ट्य है। ताज्जुब नहीं कि इस संग्रह की कविताएँ 'औदात्य' को अपना मूलधन बनाती हैं, स्थायी तत्त्व के रूप म. स्वीकारती हैं। प्रकृति से संबंधित कविताओं म. औदात्य साफ-साफ दिखलाई पड़ता है। दृश्य, बिंब, प्रतीक, संवेदना, भाषा और शिल्प औदात्य का संस्पर्श पाकर कविता को मनोहारी बना देते हैं। किन्तु प्रेम से जुड़ी कविताओं म. यह आन्तरिक लय के साथ विद्यमान है। इसलिए इस खंड की कविताएँ देह और गेह की ऐन्द्रिक और भावनात्मक सतह पर पाठकों को ले जाती हैं, जो इन कविताओं म. इस तत्त्व को नजरअंदाज कर.गे; वे कविताओं के मर्म को नहीं समझ सक.गे। यहाँ यह भी बता देना जरूरी जान पड़ता है कि सुरेन्द्र स्निग्ध ने प्रेम, प्रकृति और सौंदर्य को लेकर ढेरों कविताएँ लिखी हैं। 'कई कई यात्राएँ' के अतिरिक्त उनका तीसरा काव्य संग्रह 'रचते-गढ़ते' इस ढंग की कविताओं का अनूठा संग्रह है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उनम. समाज चेतना कमजोर है। दरअसल, प्रेम, प्रकृति और सौंदर्य से जुड़ी हुई उनकी ये कविताएँ उनकी समाज चेतना का ही दूसरा पहलू हैं। इस संदर्भ म. हिंदी के वरिष्ठ आलोचक गोपेश्वर सिंह की यह बात सटीक जान पड़ती है कि "आखिर मानव सभ्यता का विकास हमारी भौतिक चेतना का ही परिणाम नहीं, हमारी सौंदर्य चेतना के विकास का भी परिणाम है। सभ्यता का सारा संघर्ष मानव समाज को भौतिक रूप से समृद्ध करने का तो है ही, सौंदर्य के अलौकिक से लगने वाले तत्त्वों को हासिल करने का भी है।"[1]

पहले खंड की पहली कविता 'चाँद की पूरी रात' म. संवाद के सहारे शुरू होती है और संवाद के सहारे ही अपना आशय प्रकट करती है। यह कविता अंदर से दो टुकड़ों म. बँटी हुई है। पहले टुकड़े म. चाँद और चाँदनी का स्वर्गिक रूप-सौंदर्य दिखलाई पड़ता है और दूसरे म. चाँदनी का मनुष्य के साथ का अटूट रिश्ता। चाँदनी और मनुष्य के रिश्ते को साबित करने के लिए कवि ज्योतिषीय साक्ष्य का सहारा लेता है और उसे एक तार्किक परिणति तक पहुँचाता है कि प्रकृति और मनुष्य अपने भीतरी जगत् की जाग्रतावस्था म. एकमएक होते हैं-

"क्यों मैं भी रहता हूँ उद्विग्न
पूरे चाँद की रातों म.
सुना है, विमल, सुना है तुमने
सागर की लहर. और मचल उठती हैं
चाँदनी म.।
हम भी तो शायद
सागर के ही अंश हैं मित्र।"

'थिरकता हुआ हरापन' गोवा के एक जंगल से गुजरते हुए कवि द्वारा देखा गया अप्रतिम प्राकृतिक सौंदर्य है। वैसे तो कवि स्निग्ध के पास अछूते बिंबों की भरमार है, किन्तु यह कविता पूरी-की-पूरी बिंबात्मक है। कवि ट्रेन से सघन-जंगल से गुजर रहा है, जहाँ उसे ट्रेन हरे-भरे सघन जंगलों के कटोरे पर एक मदहोश सर्पिनी की तरह ससरती नजर आती है, सुंदर आदिवासी बस्तियों से छन-छनकर आ रही दमामों की गंभीर आवाज अनहद संगीत का आस्वाद करा रही है, ऊँची पहाड़ी से झरते उजले प्रपात पिघली हुई चाँदनी की तरह लगते या कि किसी ग्वालिन की गगरी से ढरकी हुई दूध की धार-

"रेल की पटरियों से सटी
ऊँची पहाड़ी से
झर रहा है उजला प्रपात
चाँदनी पिघलकर
झर रही है पतली उजली रेखा की तरह
किसी नन्ह. शिशु ने

खींच दी है चॉक से एक लम्बी लकीर
या, ढरक गई है
किसी ग्वालन की गगरी से
दूध की धार।"

इस खंड की अन्य कविताएँ हैं- 'सागर स्नान', 'शब्द और रंग', 'एक उजली हँसी', 'मछलियाँ मनाती हैं अवकाश', 'संगीत का जाल' और 'डोंगी'। ये सारी कविताएँ कवि के प्रकृति-प्रेम तथा यात्राधर्मिता की पहचान बड़ी शिद्दत से कराती हैं और साथ ही उर्वर कल्पनाशीलता की भी। प्रकृति-प्रेम और प्रेम की प्रकृति कवि स्निग्ध की बहुत बड़ी पूँजी है जो उसे सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियों और विद्रूपताओं से लड़ने की प्रेरणा देती है। असुंदर के विरुद्ध सुंदर का यह संघर्ष उसके लिए 'आशा का आकाश' मुहैया कराता है। इसलिए इस तरह की कविताएँ मात्र अवकाश के क्षणों म. उपजी हुई या थकान मिटाने भर का माध्यम नहीं हैं। ऐसी कविताएँ मानव समाज के उत्थान म. अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

दूसरे खंड म. प्रेम की कविताएँ हैं-'फूल अनगिन प्यार के', 'अगस्त के बादल', 'तुम हो बादल', 'तुम बरस रही हो', 'निरंतर बज रहा हूँ', 'रोशनियों का सैलाब', 'देह का संगीत', 'जीवन का अस्तित्व', 'कर ल. मौत प्रतीक्षा', 'पहाड़, जंगल, जलस्रोत और अपना प्यार', 'सपनों का रंग-बिरंगा मौसम' और 'हमारा प्यार'। यह खंड कविता के परिमाण और परिणाम-दोनों ही दृष्टियों से बड़ा है। इन कविताओं से गुजरते हुए सहज ही हम कवि के भीतर अर्जित ऊष्मा को महसूस सकते हैं कि 'मौत की अँधेरी घाटियों म.' भी कवि ने कैसे प्यार के अनगिन फूल खिलाये हैं। क्योंकि-

"मौत थी एकदम खड़ी
बाँह. पसारे सर्द तेरे सामने
और मैं भी था निरंतर गर्म
बाँहों को पसारे मौत के आगे
तुम्हारे सामने" (फूल अनगिन प्यार के)

दरअसल कवि म. सर्जना की यह ताकत आयी अपनी प्रेयसी की दर्द म. डूबी हुई आँख की पुतलियाँ देखकर। जो पुतलियाँ अपने प्रेमी को, अपने कवि को एकटक निहार रही थीं और जो 'चमक उठती थीं बन ब्रह्मांड की लपट.।' प्रेमी-जन का यह प्रेम-राग और प्रेम के लिए संघर्ष नया नहीं है। इसकी सूचना कवि 'इन्हीं फूलों के लिए' कविता म. स्पष्ट तौर पर दे देता है-

"मेरे जीवन संघर्ष की
कठोर भूमि को
अपने प्यार से सींचा है तुमने
लड़खड़ाते कदमों को
बार-बार देकर सहारा
खींचा है तुमने" (इन्हीं फूलों के लिए)

यानी की यह कोई आकस्मिक प्रेम का आकर्षण नहीं है, बल्कि निरंतर विकासमान है यह प्रेम। इसके लिए कवि ने काफी जतन किए हैं-

"एक एक कर
साँसों के टूटते धागे को मैंने जोड़ा है
बड़े जतन से" (साँसों के धागे)

और इस जतन का परिणाम कवि की ही जुबानी-

"जिन साँसों ने
हमेशा भरी हैं
मेरे जीवन म. ऊष्मा
जिन साँसों ने
घोले हैं मेरे जीवन म.
विविध रंग
जिनम. खिले हैं
प्रेम के असंख्य फूल
जिनसे फैले हैं
मेरे जीवन म.
खुशबू के अंतहीन वितान" (साँसों के धागे)

.....

"हमारी जिन्दगी से हो रही है
उर्वरा फिर घाटियाँ
ऐ मौत, मेरी दोस्त
अभी नहीं साथ दूँगा
लौट जा।" (अभी तो लौट जा)

इस खंड की कुछ कविताएँ प्रेम और प्रकृति की अभिन्नता के लिए याद की जाने लायक हैं। 'अगस्त के बादल' और 'तुम हो बादल, तुम बरस रही हो' कविता म. प्रेयसी और बादल घुलमिलकर एक हो गए हैं। ये कविताएँ रूपकत्व का विशिष्ट नमूना पेश करती हैं। फिर से कहना चाहूँगा कि प्रेम की प्रकृति और प्रकृति का प्रेम इस कवि की मूल पूँजी है जिसे कवि विशिष्ट रूप म. पेश करके समकालीन कविता म. अपनी जगह बनाता है। लेकिन खटकने वाली बात यह है कि कवि अपनी कुछ कविताओं म. घोर ऐंद्रिकता के शिकार हो गए हैं, वहाँ वे औदात्य का संतुलन नहीं दिखा पाते। बिंबों और शब्दों की आवृत्ति भी खटकती है।

तीसरे खंड की कविताएँ अपने समाज, राष्ट्र और विश्व की चिंताओं से उपजी हैं। तीन उपशीर्षकों वाली एक कविता के क्रमशरू तीन उपशीर्षक हैं- 'बचा रहे सिर्फ एक बीज', 'मजबूत पुट्ठों वाला घोड़ा', 'प्रेम एक दुर्गम पहाड़'। यह कविता इस खंड की पहली कविता है। 'बचा रहे सिर्फ एक बीज' का बीज क्या है, जिसे बचाने के लिए कवि बेचौन है; बल्कि कह. उद्यत है। वह है एक कोमल कविता, जिसम. विचारों का अक्षय भंडार भी होता है और इसके बचाव के लिए कवि सबकुछ त्यागने तथा नष्ट करने के

लिए तैयार है-

"सोचता रहा मैं
हो जाए नष्ट यह बृहस्पति
नष्ट हो जाए पूरा ब्रह्मांड
चर अचर सबकुछ
कुछ भी नहीं बचे
कुछ भी नहीं
मेरी कोई कविता भी नहीं
कोई एक भी शब्द
कुछ भी नहीं बचे
बचा रहे सिर्फ यह छोटा-सा बीज"

'मजबूत पुट्ठों वाला घोड़ा' और 'प्रेम रू एक दुर्गम पहाड़' कविता अपने कवि मित्रों, क्रमशरू महेश्वर और गोरख पांडे को समर्पित है। ये दिवंगत कवि उनके संघर्ष के दिनों के साथी थे-

"जगह-जगह की ईंटों और
अनगढ़ पत्थरों को हटाने
कई बार बटोरा था साथ-साथ
मानव-मुक्ति का पक्का घर बनाने हेतु
हमने रखी थी नींव" (मजबूत पुट्ठों वाला घोड़ा)

ऐसे कवि मित्रों के प्रति कवि का भावुक होना स्वाभाविक है। इसलिए तो-

"कल की रात कविताओं म. ढूँढ़ता रहा
अपना एक दोस्त
एक एक्टिविस्ट
एक कामरेड
एक चिंतक
एक कवि" (मजबूत पुट्ठों वाला घोड़ा)

इस खंड की अन्य कविताएँ हैं- 'इस अनजान शहर म.', 'लाल वाली बुढ़िया', 'फटी बाँहों का फ्रॉक वाली लड़की'। ये कविताएँ क्रमशरू यात्रा- एक, दो, तीन करके छपी हैं। इसलिए इन कविताओं का शिल्प भी दृश्यात्मक चयन को ही ध्यान म. रखकर बुना गया है। दूसरी बात कि इन कविताओं म. स्मृति और फैंटेसी का भी एक हल्का स्पर्श दिखता है। इन कविताओं म. वह सबकुछ है जो किसी भी कवि की रचनात्मक कल्पनाशीलता के लिए जरूरी होता है। कविता खंडों का क्रम कवि की जीवनी-शक्ति और उसकी तार्किक संवेदना को स्पष्ट करता है। पहले कवि अपने को प्रकृति के आँगन म. ले जाता है। फिर अपने प्रेम-संघर्ष म. विजयी होता है और अंततः समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए अपना सर्वस्व लगा देता है।

अंत म. मैं सुरेन्द्र स्निग्ध के बारे म. यह जरूर कहना चाहूँगा कि वे एक ईमानदार और साहसी कवि हैं। जो अपने कवि को अपनी शक्ति, अपनी ख्याति, सम्मान, विवेक को भी हमारे चारों ओर घिरने वाले अंधकार को भेदने के लिए दाँव पर लगाने को तैयार हैं। इस संदर्भ म. विजयदेव नारायण साही ठीक कहते हैं कि - "हमारे समकालीन साहित्य की निर्णयात्मक कसौटी इस बात म. है कि कितने साहस और ईमानदारी के साथ हमारे साहित्यकारों ने प्रश्न पूछने की चेष्टा की है।"[2]

संदर्भ

1. आलोचना के परिसर, गोपेश्वर सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 41-42
2. छठवाँ दशक, विजयदेव नारायण साही, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, पृ. 66

हेमंत कुमार हिमांशु
असिस्ट.ट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

आदिवासी हिंदी कविताओं में सत्ता एवं शक्ति का प्रतिरोध

–वेद प्रकाश सिंह

आज विकसित समझी जाने वाली लगभग सभी जातियाँ कई दूसरी मानव सभ्यताओं का संहार करके ही ताकतवर बनी हैं। अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया आदि विकसित देशों की वर्तमान चमकती सभ्यता के अतीत में वहाँ के आदिवासियों-इंडीजीनस लोगों की बर्बादी की गाथाएँ दबी पड़ी हैं। सभी मानव प्रजातियों में अपने ढंग से संघर्ष चले हैं। कई प्रजातियों ने अपनी सभ्यताओं के विस्तार के लिए संघर्ष किए हैं, तो कई ने अपनी सभ्यताओं के बचाव के लिए संघर्ष किए हैं। आदिवासियों ने दुनिया की कई बड़ी सभ्यताओं का निर्माण किया है। अमेरिकी सभ्यता में जन्मदाता वहां के 'नेटिव' (रेड इंडियंस) लोग रहे हैं। यूरोपीय सभ्यता के निर्माण में 'बैडल' तथा 'गोथ' लोगों की भूमिका रही है। दुनिया के सबसे बड़े उपनिवेशवादी देश इंग्लैंड की स्थापना आदिवासी समुदाय 'बाइकिंग' और 'एंगल्स' ने की थी।

आदिवासी समुदायों ने कई बार बहुत दूर तक फैलकर सभ्यताओं के निर्माण में योगदान दिये हैं। यूरोप के 'गोथ' और 'बैडलों' ने रोमन साम्राज्य और अफ्रीकी जंगलों तक अपना विस्तार किया था। कई आदिवासी समुदायों के बीच आपसी संघर्ष भी चले हैं, मगर ये बहुत नगण्य और हल्के स्तर के रहे हैं- जैसे पूर्वोत्तर भारत के खासी-जयंतिया-गारो-कूकी इत्यादि। आदिवासी हमेशा बाह्य आक्रमण से त्रस्त रहे हैं। आज तमाम आदिवासी जनजातियाँ व्यापक स्तर पर नष्ट होने की कगार पर खड़ी हैं।

भारत के आदिवासियों ने लगातार बाहरी आक्रमणकारियों आर्यों, मुगलों तथा अंग्रेजों के खिलाफ व्यापक संघर्ष किया है। आर्यों ने इस देश में अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए लंबे समय तक छल-प्रपंच किये तथा आदिवासियों का नरसंहार करके तथा उनकी संपत्ति हड़पकर उन्हें घने जंगलों में जाने को मजबूर किया। अंग्रेजी शासन-व्यवस्था ने स्थाई बंदोबस्त लागू करके आदिवासियों को एक जगह बसने तथा झूमिंग कृषि करने पर मजबूर कर दिया। इनके जीवनयापन को जरूरी जंगलों को नये-नये कानून बनाकर काटा जाने लगा तथा इन पर आश्रित आदिवासियों की जीविका लगभग बंद-सी हो गयी और भी मात्र खेती पर आश्रित होकर रह गये। इन शोषणकारी स्थितियों से निपटने के लिए आदिवासियों ने तमाम सारे बड़े विद्रोह को अंजाम दिया। फलस्वरूप इन विद्रोह को दबाया जाने लगा और तमाम सारे आदिवासियों के विद्रोह में से कुछ ही जीवित रह पाये और इतिहास के पन्नों का हिस्सा भी बने। जैसे- 'पहाड़िया विद्रोह (1766), ढाल विद्रोह (1773), तिलक मांझी विद्रोह (1784), चुआड़ विद्रोह (1769), तमाड़ विद्रोह (1819-1820), लरका विद्रोह (1821), कोल विद्रोह (1831-1832), भूमिज विद्रोह (1832-1833), संथाल हूल विद्रोह (1855), भील विद्रोह (1881), बिरसा मुंडा : उलगुलान (1895-1900), ताना भगत आंदोलन (1914), भील गरासिया-एकी आंदोलन (1922), नागा संघर्ष-जेलियांरांग आंदोलन (1932)'[1]

भारत के लगभग सभी आदिवासी बहुल राज्यों ने इन तमाम शोषणकारी शक्तियों के खिलाफ आंदोलन किये हैं। मगर झारखंड तथा छत्तीसगढ़ के आदिवासी इस मामले में सबसे आगे रहे हैं। भारत देश को आजाद हुए लगभग सात दशक बीत चुके हैं। इस बीच हमारी कई सरकारें आईं और गईं- इनमें कई सरकारें खुद आदिवासी नेताओं और पार्टियों से समर्थित भी रही, मगर आदिवासी लोगों का शोषण आज तक रुका नहीं है। कुछ विशेष आदिवासी सुविधाओं को छोड़कर उनके जीवन में कोई विशेष बदलाव नहीं आया उल्टे ये और अधिक बदहाल होते चले गए। आज भी इतना समय बीत जाने के बावजूद भी मुख्यधारा के समाज ने आदिवासी समाज को अपने बराबर का इंसान नहीं स्वीकार किया है। मजबूरी में आदिवासी एक तरफ 'सभ्य' समाज के बीच स्वाभिमान हीन जीवन जीने को मजबूर हो रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ गाँवों-जंगलों में मजबूरन नक्सलवादी बनकर या नक्सलवादी घोषित करके लगातार मारे जा रहे हैं। इसको रेखांकित करते हुए स्वतंत्र पत्रकार और युवा आदिवासी कवियित्री जसिंता केरकेट्टा अपनी कविता 'जब तुम प्रतिरोध करते हो' में लिखती हैं- 'जब हम आक्रोशित होते हैं/क्या करते हैं?/ तुम्हारे अन्याय के खिलाफ/प्रतिरोध में कविताएँ लिखते हैं/ पर तुम हमारे खिलाफ प्रतिरोध में/जब भी निकलते हो/हमारी हत्याएं करते हो।'[2]

आदिवासियों का प्रतिरोध किसी सत्ता के लिए नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों की सदियों में निर्मित सृजनात्मकता को बचाने के लिए अधिक है। इससे भी बढ़कर यह सच है कि आदिवासी अपने अस्मिता तथा सहजीविता को सुरक्षित रखने को लगातार संघर्षरत हैं। आदिवासी समाज प्राकृतिक वातावरण के बीच शांतिपूर्ण जीवन को जीने में विश्वास रखता है। मैं अपने आसपास के क्षेत्रों में, अपने गाँवों में, पहाड़ों में, अपने देवताओं तथा नदियों में अपने धार्मिक कर्मकांडों को बचाए रखने के पक्षधर हैं। वे अपनी कड़ी मेहनत के बलबूते अपने खेतों को हरा-भरा तथा फसलों से संपन्न बनाते हैं। वे अपने प्रेमी-प्रेमियों के साथ 'अखड़ा' में नाचने-गाने को प्रयासरत हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें उनके पूर्वजों से विरासत में मिली सर्जनात्मक कलाओं तथा विद्याओं के साथ जीने का मौका मिले। आदिवासी चाहता है कि उसे, उसके संसाधनों के इस्तेमाल में उचित भागीदारी प्रदान की जाए। वे भारत के आदिनिवासी हैं और चाहते हैं कि जैसे अमेरिका 'नेटिव्स' की मांग पर उन्हें 'इंडियन-रेड इंडियन' स्वीकारा गया है, वैसे ही उन्हें भी भारतीय संविधान में बाकायदा 'आदिवासी' के नाम से पुकारा जाए। आदिवासी भी चाहता है कि उन्हें भी एक समान दृष्टिकोण से देखा जाए। इन्हीं सब कारणों की वजह से वे अनुपयुक्त, अनुचित तथा भेदभावकारी नीतियों के खिलाफ लगातार अपना प्रतिरोध दर्ज करते रहते हैं। इस प्रकार की सभी समस्याओं के निदान के लिए रामदयाल मुंडा ने लगातार कई सारे बौद्धिक और जन-जागरूकता के जमीनी स्तर के कार्यक्रम चलाये।

सत्ता और शक्ति के प्रतिरोध में लगातार आदिवासी हिंदी कविता ने बढ़-चढ़कर अपना पक्ष रखा है। आदिवासी समाज का मुख्यधारा के समाज के प्रति प्रतिरोध को अगर देखा जाये तो झारखंड में इसका उदय सर्वप्रथम दिखाई पड़ता है। आदिवासी प्रतिरोध की जमीन तैयार करने में झारखंड ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जहाँ कहीं भी आदिवासियों की अस्मिता तथा उनकी स्वायत्तता खतरे में पड़ती दिखलाई पड़ती है तो आदिवासी समाज तत्क्षण पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति उठ खड़ा होकर अपना प्रतिरोध दर्ज कराता है। आदिवासी स्वायत्तता की लड़ाई जनता द्वारा साम्राज्यवादियों के खिलाफ लड़ाई है। स्वायत्तता के प्रति झारखंड के आदिवासियों के हितों की बात करते हुए अपनी कविता 'कविता को झारखंड घुमाना चाहता हूं' में महादेव टोप्पो लिखते हैं- 'कविता को मैं/चाहता हूं झारखंड के गांव तक टहलाना/टूटे-फूटे शब्दों में/कविताएं इसलिए लिखता हूं/शहरों में दीकू बन गये घरों से दूर/आदिवासी कुनबे की कराना चाहता हूं सैर।'[3]

पूंजीवादी साम्राज्यवाद व्यवस्था ने हमारी आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को तोड़ दिया और झारखंड की तमाम जनता को उपभोक्तावादी संस्कृति तथा बाजारों के अधीन कर दिया हैं, जहाँ हमें पूंजीपतियों का मुनाफा बढ़ाने वाले सामान का ही उत्पादन करना पड़ता है। उनके मुनाफा बढ़ाने वाली और हमारे लिए बे-जरूरत की चीजों को हमारी सस्ती मेहनत से पैदा करने के लिए हमें मजबूर किया जाता है। स्वायत्तता का अधिकार मिलने से हम अपने साधनों से अपनी जरूरत की चीजों को पैदा करके एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का निर्माण करेंगे। इसी प्रकार देश के सारे प्रांतों को पूर्ण स्वायत्तता मिलने से मिल-जुलकर एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था वाले शक्तिशाली भारत का हम निर्माण कर सकते हैं।

आदिवासी समुदाय के सत्ता के प्रति प्रतिरोध तो तमाम जगहों पर हो रहे थे, परंतु झारखंड इस विद्रोह में सबसे आगे बढ़ता दिखलाई पड़ रहा था। झारखंड की व्यापक जनता ने भारत के अन्य राज्यों से थोड़ा आगे बढ़कर अंग्रेजी सत्ता का विरोध किया था। अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के गुलामी और शोषण के खिलाफ झारखंड ने पुरजोर तरीके से अपनी आवाज बुलंद की तथा संघर्ष को नया तेवर भी प्रदान किया। सत्ता और शक्ति के प्रतिरोध की बात करते हुए हिंदुस्तानी जनता ने भी तात्कालिक गांधी और नेहरू के साथ लड़ते हुए भारत को आजादी दिलाई। झारखंड के विषय में बात करते हुए बिरसा मुंडा को भला कैसे भूला जा सकता है। 'उलिहातू' के इस नौजवान ने अंग्रेजों के दांत खट्टे करते हुए उनकी विरुद्ध 'उलगुलान' का बिगुल फूंक दिया था। इसकी शुरुआत 'चालकद' गाँव से हुई। बिरसा मुंडा ने इस गाँव में जाकर तमाम आदिवासियों को इकट्ठा करके उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया तथा उन्हें बताया कि दर्जनभर देवी-देवता की पूजा करना गलत है क्योंकि अपना भगवान केवल एक है और वह है 'सिंगबोंगा'। बिरसा ने यह भी बताया कि पूजा के समय किसी जानवर की-खस्सी या मुर्गा-मुर्गी की बलि देना एकदम गलत बात है। उन्होंने बताया कि अगर आज आदिवासियों को आगे बढ़ना है तो उन्हें अपने अंधविश्वास और गलत रीति-रिवाज को छोड़ना होगा। धार्मिक उपदेश के साथ-साथ बिरसा ने उन्हें 'मुंडा' भाषा में राजनीति बताना भी शुरू किया। बिरसा कहते हैं-'अबुआ राज एतेजाना, महारानी राज टुंडु जाना', मतलब हमारा राज शुरू हो गया है। महारानी विक्टोरिया के राज को मानने की जरूरत नहीं। अंग्रेजी राज के कानून तथा हुकुम को मत मानो। सरकार को लगान देना बंद कर दो क्योंकि झारखंड की जमीन सरकार की नहीं, आदिवासियों की है।'[4]

आदिवासी समाज सदा से ही शांति पसंद तथा अपने में मस्त रहनेवाला रहा है। जब कोई बाहरी जबरदस्ती उसके क्षेत्रों में प्रवेश करने का प्रयास करता है तो उसके

विरोध में उठ खड़ा हो जाता है। इस विषय को अपनी कविता 'बाघ और सुगना मुंडा की बेटी' में रेखांकित करते हुए अनुज लुगुन लिखते हैं-'यहाँ जो आदमख़ोर पहुंचा है/वह जानवर है/जानवर नर है, पुरुष है, पुल्लिंग है/पितृसत्ता का प्रवक्ता/सेना, पुलिस, व्यवस्था का स्वरूप'[5]

आदिवासियों की सबसे बुनियादी समस्या साम्राज्यवाद से चौतरफा शिकार होना है, उनके ऊपर दो प्रकार का साम्राज्यवाद लादा जा रहा है। एक है सांस्कृतिक साम्राज्यवाद तथा दूसरा है आर्थिक साम्राज्यवाद। यूँ साम्राज्यवाद तो साम्राज्यवाद ही होता है, फिर वह चाहे किसी भी रूप में क्यों ना हो। साम्राज्यवाद की विशेषता होती है कि वह उस देश के मूल निवासियों के, जहाँ वह अपना साम्राज्य, अपना उपनिवेश स्थापित करता है, वहाँ के संसाधनों को लूटता है। वह संसाधनों की लूट और जमीन की लूट के लिए कई सांस्कृतिक उपादानों का भी इस्तेमाल करता है। इसी के प्रतिपक्ष में जब आदिवासी समुदाय किसी भी प्रतिरोध को व्यक्त करने को जब कोई प्रतिक्रिया करता है तो उसका पूंजीवादी-व्यवस्था से पुरजोर सामना होता है और उसे नक्सली तक घोषित करके उसका खात्मा कर दिया जाता है। इस तमाम पक्षों पर प्रकाश डालते हुये जसिंता केरकेट्टा अपनी कविता 'हांफती मशीनें' में लिखती हैं- 'मशीनें,/पेड़ों को उखाड़ चुकने के बाद हांफती हैं/अब हांफती मशीनें ढूंढती हैं/कहीं कोई पेड़ की छांह।'[6]

आदिवासी समाज हमेशा से स्वतंत्र निर्भीक तथा अपने में मगन रहने वाला रहा है। किसी भी प्रकार का बाहरी दबाव उसे पसंद नहीं है। आज कुछ तथाकथित आदिवासी नेताओं ने उसे, उसका अधिकार दिलवाने के नाम पर व्यापक स्तर पर लूटा है। जो परिणामस्वरूप आदिवासी प्रतिरोध के रूप में सबके सामने आ रहा है। वर्तमान में आदिवासियों की एक प्रमुख जनजाति सेंटनलीज (अंडमान एवं निकोबार) एक ऐसी ही जनजाति है, जो इस पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था से काफी दूर, सुदूर अंडमान में सेंटनलीज द्वीप पर एक सुनसान तरीके से आरक्षित जनजाति क्षेत्र में निवास कर रही है। जिसको अपने क्षेत्र में किसी भी प्रकार का बाहरी अतिक्रमण कतई बर्दाश्त नहीं है।

आदिवासियों के प्रतिरोध की बात हो और झारखंड की चर्चा न की जाए, यह बात बेमानी होगी। इस पर बात करने से पहले झारखंड के आदिवासी आंदोलनों पर विचार करना महत्वपूर्ण है। वर्तमान काल में झारखंड प्रांत की मांग सबसे पहले यहां के मोमिन मुसलमानों द्वारा की गई थी, लेकिन अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में झारखंड के आदिवासियों की जो बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुई- वे भी झारखंड आंदोलन के इतिहास का ही एक अंग है। अंग्रेजों के खिलाफ झारखंड में सबसे पहले 'चुआड़ विद्रोह' हुआ। 'चुआड़' एक जनजाति का नाम है जो बंगाल में पड़ने वाली झारखंडी इलाके में रहती है। इसने तमाम लड़ाइयों से अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये। इसके बाद हुआ 'लरका विद्रोह'। यह सिंहभूम की लड़ाई थी। 1832 ई. में जबरदस्त 'कोल विद्रोह' भी हुआ। इसमें 'मुंडा', 'हो', 'उरांव', 'सदान' सभी जनजातियों ने भाग लिया। अंग्रेजों ने और उनकी सहायता करने वाले दलाल देसी लुटेरों ने झारखंड की जनता पर जो भिन्न-भिन्न प्रकार के टैक्स लगाए थे, उसके खिलाफ और झारखंड की औरतों की इज्जत के लिए यह लड़ाई लड़ी गई थी। 1832 ई. में ही 'टुंडी' में 'संथाल विद्रोह' हुआ। 1857 ई. में पूरे झारखंड की जनता ने बाकी भारत की जनता की तरह अंग्रेजों के साम्राज्य को उखाड़कर फेंकने को अपना प्रयास किया। इसी के पश्चात प्रसिद्ध 'बिरसा मुंडा' का 'उलगुलान आंदोलन' भी शुरू हुआ। तत्पश्चात 1945 ई. में जयपाल सिंह मुंडा ने एक पार्टी स्थापित की जिसका मुख्य उद्देश्य झारखंड प्रांत की मांग के लिए लड़ना। इस लड़ाई में तमाम 'मुंडा' जनजाति की स्त्रियों ने भी भाग लिया। लेकिन कई अवसरों पर उनको स्त्री होने का भी दंश झेलना पड़ा। जे. एस. शांगपिल्यांग लिखते हैं- 'स्त्री को लासूबोन नामक मुकुट से सुसज्जित एवं सम्मानित करना संसार में इस बात का साक्षी है कि वह स्त्री को पवित्र मानता है। संसार के अन्य स्त्रियों को सन् 1975 में स्त्री स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते देखा गया है, जबकि 'खासी' स्त्री तो स्वतंत्रता के साथ ही जन्म लेती है। यद्यपि 'खासी' स्त्री घर और जाति में महारानी का मुकुट धारण करती हैं, लेकिन अपने घर में उसका स्तर सबसे ऊँचा नहीं, न ही वह पुरुष से बढ़कर है। रंगभूमि में स्त्री का आँखें झुकाकर नृत्य करना यह दर्शाता है कि वह स्वयं को शक्तिशाली पुरुष के नीचे समझती है। अतः यदि पुरुष अपने पद का सदुपयोग करना जानता है, तो पुरुष ही अपनी पत्नी और पूरे घर का प्रधान होता है।'[7]

उपरोक्त तमाम कविताओं और पक्षों पर बात करते हुए हम यह कह सकते हैं कि पिछले कुछ सालों में एक और नई प्रवृत्ति आदिवासी कविता के संबंध में बार-बार दिखलाई पड़ती है। और यह प्रवृत्ति है आदिवासी कविताओं को गैर-आदिवासियों के मानकों पर परखने का असफल प्रयास करना। अपनी विशेष परख दृष्टि पर आदिवासी रचनाओं को कसते हुए वैसे ही तमाम कृतियों को भारत के वृहत्तर साहित्य समाज ने कविता मानने से इंकार कर दिया जो आदिवासीपन के साथ लिखी गई हैं। जैसे रामदयाल मुंडा, ग्रेस कुजूर, सावित्री बड़ाईक, रोज केरकेट्टा आदि की मूल हिंदी में रची गई तमाम कविताएँ जिनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

आज हम देख रहे हैं कि बीते कुछ वर्षों में देश और दुनिया का राजनैतिक मिजाज बहुलतावादी सहिष्णुता से पीछे हटा है। नस्लीय वर्चस्व के द्वंद्व और विश्वव्यापी

आर्थिक मंदी तथा होड़ के चलते शक्तिशाली राजनीतिक समूहों ने संपूर्ण विश्व को नस्लीय, धार्मिक तथा लैगिक घृणा के क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया है। इसका सर्वाधिक खामियाजा आदिवासी लोग उठा रहे हैं। समता, न्याय और शांति के लिए प्रतिबद्ध दुनियाभर के 'वाद', 'गहन चिकित्सा कक्ष' में हैं, तो यह स्वीकार कर लिया जाए कि 'रेड इंडियंस' समुदायों के साथ ही आदिवासियत भी खत्म हो गई या कि 'नियमगिरि पहाड़' के लिए रचाव-बचावरत आदिवासी समुदाय भी भारत में बस मिटकर समाप्त हो जाने वाले हैं।

संदर्भ

1. मीणा, केदार प्रसाद, आदिवासी प्रतिरोध, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, पुनर्मुद्रण 2018, 2019, 2020, पृष्ठ 9 (भूमिका से)
2. केरकेट्टा, जसिंता, ईश्वर बाजार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ 153
3. टोप्पो, महादेव, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, प्रथम पुनर्मुद्रण 2021, पृष्ठ 33
4. तलवार, वीर भारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण 2008, द्वितीय संस्करण 2012, पृष्ठ 322
5. लुगुन, अनुज, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, 2018, आवृत्ति 2019, पृष्ठ 99
6. केरकेट्टा, जसिंता, जड़ों की जमीन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 156
7. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ 154

वेद प्रकाश सिंह
शोधार्थी
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश-211002
ईमेल - vedprakashsingh034@gmail.com

जनपद जौनपुर में महिला सशक्तिकरण हेतु व्यवसायिक शिक्षा की स्थिति

–प्रदीप कुमार मौर्य
–डॉ. नन्दन सिंह

सारांशः

महिला सशक्तिकरण भारत देश के लिए ही नहीं अपितु संसार के सभी देशों के लिए चाहे वे विकसित हों या अविकसित, एक आवश्यक अंग है। इस हेतु महिला स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, सामाजिक संतुलन इत्यादि की परम आवश्यकता है। यदि एक महिला स्वस्थ, शिक्षित, रोजगारपरक है तो एक परिवार अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम हो जाता है। इस हेतु महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध में जनपद जौनपुर में महिलाओं की स्थिति जानने के लिए उनकी व्यवसायिक शिक्षा की स्थिति, रोजगार व ग्रामीण अवसरों का पता लगाने का प्रयास किया गया है। इस हेतु द्वितीयक समंकों का उपयोग किया गया है जो विभिन्न वेबसाइटों, प्रकाशित शोधपत्रों व पत्रिकाओं से लिया गया है। प्रस्तुत शोध में पाया गया कि जनपद जौनपुर में परास्नातक तक शिक्षा ग्रहण करने के मामलें में महिलाएँ प्रथम तथा व्यवसायिक शिक्षा ग्रहण करने में बहुत पीछे हैं। जिनके मूल कारणों में अन्य सामाजिक पहलू या महिला कल्याणकारी योजनाओं का कम लागू होना हो सकता है।

की वर्ड : महिला सशक्तिकरण, व्यवसायिक शिक्षा, महिला कल्याणकारी योजनाएँ।

परिचय : महिला सशक्तिकरण एक व्यापक शब्द है जो महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में सशक्त/मजबूत होने के बारे में है। जो समाज में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और कानूनी स्थिति को बेहतर बनाने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार और अवसर देना है, और उन्हें अपने समुदायों और राष्ट्र के विकास में पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम बनाना है। महिला सशक्तिकरण लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय प्राप्त करने का एक साधन भी है।

महिला सशक्तिकरण के कई आयाम हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, उद्यमिता, नेतृत्व, निर्णय लेने, हिंसा की रोकथाम और मानवाधिकार। महिला सशक्तिकरण न केवल महिलाओं के लिए अपितु उनके परिवारों, समुदायों और राष्ट्र के लिए भी हितकारी है। सशक्त महिलाएँ आर्थिक व सामाजिक विकास की आधारशिला हैं। जो पर्यावरणीय स्थिरता, सामाजिक शांति और सुरक्षा में योगदान दे सकती हैं।

(Census India, 2023) के आँकड़ों के अनुसार जनपद जौनपुर की साक्षरता दर 71.55 प्रतिशत है, जो उ.प्र. की औसत साक्षरता दर (67.68) से अधिक है। जिसमें पुरुष साक्षरता दर तो 70.5 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता केवल 51.29 प्रतिशत ही है। जनपद जौनपुर के कुल गैर साक्षर व्यक्तियों में पुरुष 655071 तथा महिलाएँ 1107456 हैं। अतः कहा जा सकता है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएँ ज्यादा निरक्षर हैं तथा व्यवसायिक शिक्षा ग्रहण करने के सन्दर्भ में पुरुषों की तुलना में महिलाएँ केवल 1 प्रतिशत ही हैं जो कि चिंतनीय विषय है। महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत होना महत्वपूर्ण है। व्यवसायिक शिक्षा ग्रहण न करने की स्थिति में उन्हें बेहतर रोजगार नहीं मिल सकेगा, जो आर्थिक पिछड़ेपन का एक कारण हो सकता है।

महिला सशक्तिकरण कोई नई अवधारणा नहीं है, किन्तु हाल के दशकों में इसने अधिक ध्यान व आकर्षण प्राप्त किया है। संयुक्त राष्ट्र और कई राष्ट्रीय संगठनों ने महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए कई नीतियों व कार्यक्रमों को अपनाया है तथा जागरूकता बढ़ाने और महिलाओं के अधिकारों व सशक्तिकरण की वकालत करने के लिए दुनिया भर में महिलाओं और पुरुषों द्वारा कई अभियान चलाए गये हैं। हालांकि कुछ क्षेत्रों में हुई

प्रगति के बावजूद महिला सशक्तिकरण योजनाएँ अभी भी कई चुनौतियों और बाधाओं का सामना कर रही हैं। इनमें से कुछ में पितृसत्तात्मक मानदंड और मूल्य, भेदभाव तथा रुढ़िवादी संसाधनों और अवसरों तक पहुँच की कमी, गरीबी और निरक्षरता, हिंसा और उत्पीड़न तथा कानूनी और संस्थागत बाधाएँ शामिल हैं। इसलिए महिला सशक्तिकरण के लिए सरकारों, नागरिक समाज सहित सभी हितधारकों के सामूहिक प्रयास और सहयोग की आवश्यकता है।

महिला सशक्तिकरण से सामाजिक संतुलन आता है तथा सामाजिक संतुलन किसी भी क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास के लिए उतना आवश्यक होता है जितना कि जीवन जीने की कला। वे चाहे सामाजिक हों या राजनीतिक, महिलाएँ इसका आधार स्तंभ होती हैं। यदि महिलाएँ सशक्त नहीं होंगी तो समाज सही दिशा की ओर कभी अग्रसर नहीं हो सकेगा। इस परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के सशक्तिकरण का आधार उच्च एवं व्यवसायिक शिक्षा हो सकती है, जिसके माध्यम से परिवार व समाज की रूढ़िवादिता का अंत एवं अंधविश्वास का निवारण करके सामाजिक संतुलन लाया जा सकता है तथा समाज की कुरीतियों को दूर करके आर्थिक व सामाजिक दिशा में उन्नयन का मार्ग प्रास्त किया सकता है। जिसके लिए शोधार्थी द्वारा जनपद जौनपुर के उक्त शीर्षक का प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है।

साहित्य समीक्षा :

1. (Soni, 2019) के अनुसार महिलाएँ हमारे समाज की अहम् हिस्सा हैं तथा सामाजिक आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनैतिक क्षेत्र में भी महिलाओं का योगदान है। जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार हो रहा है महिलाएँ शिक्षित हो रही हैं और उनमें अपने समाज के प्रति जागरूकता आ रही है। अतः ये उच्च शिक्षा प्राप्त कर राजनीति में प्रवेश कर रही हैं तथा केन्द्रीय, प्रान्तीय व स्थानीय शासन में भी अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर समाज को सशक्त व सुदृढ़ बनाने का कार्य कर रही हैं। अतः महिलाओं को सशक्त व सुदृढ़ बनाने हेतु उन्हें अच्छी शिक्षा देकर जागरूक करना अति आवश्यक है।

2. (Dwivedi, 2016) ने अपने शोध पत्र में महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु सरकार द्वारा किये जा रहे विभिन्न प्रयासों का वर्णन किया है व उन्हें प्राप्त अधिकारों की भी चर्चा की है। उन्होंने 21वीं सदी को महिलाओं की सदी बताया है। इस सदी में महिलाएँ सफलता के शिखर पर पहुँच कर अपने समाज का नाम रोशन कर रही हैं। जिससे उनका सामाजिक व आर्थिक उन्नयन हो रहा है। ऐसे क्षेत्र जो केवल पुरुष वर्चस्व वाले माने जाते हैं, उसमें महिलाओं ने प्रवेश कर आश्चर्यजनक साहस का परिचय दिया है। इसके साथ ही कई ऐसे संस्थान हैं जो कि नारियों द्वारा ही पूर्ण रूप से संचालित किये जा रहे हैं या उच्च पदों पर महिलाएँ पदस्थ हैं। इसके बावजूद भी अभी भी यह मानसिकता नहीं समाप्त हो पायी है कि महिलाओं को पुरुषों के संरक्षण की आवश्यकता होती है। आज भी महिलाओं को समाज में दूसरे स्थान पर ही माना जाता है तथा समय-समय पर उनके साथ अत्याचार, अनाचार, शोषण होता रहता है। ऐसे में शासन प्रशासन को कड़े कदम उठाने चाहिए व समाजसेवी संस्थाओं, राजनेताओं, शिक्षाविदों को आगे आकर चिन्तन कर समाज में स्त्री-पुरुष भेद भाव की मानसिकता को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

3. (Dr. Agrawal D.C., 2017) के शब्दों में महिलाओं को उच्च शिक्षा देकर सशक्त करने की प्रबल आवश्यकता है। यह सिद्ध हो चुका है कि महिलाओं का केवल साक्षर होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उन्हें उच्च शिक्षा देना भी अति आवश्यक है जिससे कि उनका मानसिक विकास अच्छी प्रकार हो सके, जिससे वे स्वयं द्वारा निर्णय लेने में सक्षम हो सकें, अच्छे बुरे के बीच अन्तर कर सकें। भारत सरकार को महिला सशक्तिकरण हेतु नीतियाँ एवं योजनाएँ बनानी चाहिए।

4. (Manik, 2014) के कथनानुसार वर्तमान में केवल साक्षर होना ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि महिलाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए, जिससे कि वे अपने अधिकारों व दायित्वों को भली-भांति जान व समझ सकें। शिक्षा से महिलाओं को अनेक लाभ हैं, वे एक अच्छी पत्नी व एक अच्छी माता बन सकती हैं। यहाँ तक कि डॉक्टर, इंजीनियर, नेता, प्रशासक, वैज्ञानिक, शिक्षाविद् एवं और भी बहुत क्षेत्रों में महिलाएँ आगे हैं। यह पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने में सक्षम हैं। एक सुशिक्षित व उच्च शिक्षा प्राप्त महिला विभिन्न क्षेत्रों में योगदान देकर राष्ट्र निर्माण में पुरुषों के बराबर योगदान दे रही हैं। फिर भी महिलाओं के साथ सभी स्तर पर यथा राजनीतिक सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में अभी भी हाशिये पर ही है तथा उनके साथ भेदभाव होता है। अतः सरकार को महिला सशक्तिकरण के लिए योजनाएँ बनाकर लागू करना चाहिए।

शोध उद्देश्य-

1. जनपद जौनपुर में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति का पता लगाना।

2. महिला रोजगार की स्थिति व अवसरों का पता लगाना।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोध अनुसंधानमूलक प्रकृति का है। शोध उद्देश्य की प्राप्ति हेतु द्वितीयक समंकों यथा विभिन्न समाचार पत्र, पत्रिकाओं, सरकारी प्रतिवेदनों व विभिन्न वेबसाइटों के माध्यम से एकत्र किया गया है। जिसके विश्लेषण में विवेकपूर्ण ढंग से सांख्यिकीय रीतियों, नीतियों से किया गया है तथा उचित निष्कर्ष निकाले गये

हैं।

समंक एकत्रीकरण एवं विश्लेषण- जनपद जौनपुर में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति-(UP, 2021-22) में जनपद जौनपुर में मान्यता प्राप्त संस्थानों में महिलाओं की शिक्षा में भागीदारी इण्टरमीडिएट में 50 प्रतिशत, स्नातक में 54 प्रतिशत व परास्नातक में 62 प्रतिशत है। जो कि महिलाओं की उच्च शिक्षा के प्रति जागरूकता को प्रदर्शित करता है। परन्तु व्यवसायिक शिक्षा में आश्चर्यजनक आँकड़े मिलते हैं। जिसमें महिलाओं की भागीदारी केवल 1 प्रतिशत ही है जो कि नगण्य है। वहीं व्यवसायिक शिक्षा में पुरुष 99 प्रतिशत हैं तथा यह सार्वभौम व स्पष्ट है कि व्यवसायिक/ औद्योगिक प्रशिक्षण रोजगार सृजनता, आत्मनिर्भरता का एक संबल या आधारस्तंभ है, जिससे उद्यमिता व नवोन्मेषी विचारधारा को बढ़ावा मिलता है। परन्तु जनपद जौनपुर में व्यवसायिक शिक्षा ग्रहण करने के सन्दर्भ में महिलाएँ काफी पीछे हैं जो चिंताजनक है।

जनपद जौनपुर में पुरुष, महिला रोजगार की स्थिति : महिलाओं की रोजगार स्थिति जानने के लिए आँकड़े (Census India, 2023) से लिये गये हैं जिसमें मुख्यकर्मी के रूप में पुरुष 6,64,609 तथा 2,31938 महिलाएँ हैं तथा गैर कार्यरत मामलों में महिलाएँ 17,70,521 तथा 12,86,308 पुरुष हैं, कुटीर उद्योग में पुरुष 34,985 व 16,452 महिलाएँ हैं। जिससे प्रति महिला प्रतिभागिता दर काफी पीछे हो जाती है जो महिलाओं के आर्थिक पिछड़ेपन का एक कारण है। आँकड़ों का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि पुरुष, महिलाओं की तुलना में अधिक कार्यरत हैं। तथा महिलाएँ पुरुषों की तुलना में आर्थिक कार्य करने में कम तथा गैर कार्यरत अधिक हैं। इसका एक कारण व्यवसायिक शिक्षा का कम ग्रहण/प्राप्त करना हो सकता है। यदि महिलाएँ व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करतीं तो, महिला प्रतिभागिता दर पुरुषों से अधिक हो सकती थी।

निर्वचन : ग्रामीण आर्थिक विकास की रीढ़ प्राथमिक क्षेत्र है, जिसमें महिलाओं की भूमिका अग्र है। जनपद जौनपुर में 51 प्रतिशत महिलाएँ हैं जो मूलतः कृषि आधारित उत्पादों व कृषि व्यवसाय से सम्बन्ध रखती हैं। प्राथमिक क्षेत्र व अन्य क्षेत्रों में जागरूकता लाने के लिए उच्च शिक्षा के साथ-ही-साथ व्यवसायिक शिक्षा प्रदान की जाए तो महिलाएँ बेहतर प्रदर्शन कर सकती हैं। अतः स्कूलों व विद्यालयों को व्यवसाय आधारित शिक्षा से जोड़ना होगा तथा उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों में विभिन्न संकायों की प्रभावशीलता की आवश्यकता है। ताकि महिलाएँ अपना योगदान देकर आर्थिक उन्नति को प्राप्त कर आत्मनिर्भर बन सकें व पुरुषों के साथ मिलकर उत्पादन, वितरण व विपणन की स्थितियों को सुदृढ़ बना सकें। तथा रोजगारपरक संक्रियाएँ करने एवं बाजार से जुड़ी तकनीकों को उपयोग में लाकर सशक्त परिवार, समाज व राष्ट्र का निर्माण, सतत विकास के लक्ष्यों व विकसित भारत के संकल्प को पूरा करने में योगदान दे सकें।

निष्कर्ष : उपरोक्त आँकड़ों के विश्लेषण व निर्वचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनपद जौनपुर का ग्रामीण विकास लिंगानुपात के आधार पर संतुलित किन्तु व्यवसायिक शिक्षा ग्रहण करने में महिला एवं पुरुष में असंतुलन दीख पड़ता है। जिस कारण ग्रामीण क्षेत्र में आधुनिक व वैज्ञानिक उत्पादन पद्धतियों को अपनाने से वंचित रह जाना है तथा इससे आर्थिक असंतुलन, उद्यमिता के क्षेत्र में गिरावट, व्यवसायिक अवसरों में भागीदारी प्रतिशतता कम है। जिसका कारण व्यवसायिक शिक्षा में महिला कल्याणकारी योजनाओं की प्रभावोत्पादकता का कम होना हो सकता है। मानवीय समझ को परिपक्व करने में उच्च शिक्षा तथा आर्थिक आधार प्रदान करने में व्यवसायिक शिक्षा सर्वोपरि है। तथा यह सामाजिक, राजनीतिक इत्यादि बुराइयों को समाप्त करने का अचूक अस्त्र है। परिवार की प्रथम शिक्षिका महिला ही होती है जो अपने सभी व्यवहारिक तथा सामाजिक कार्यों के प्रति संतुलन बनायेंगी और स्वयं को संतुलित रखकर आर्थिक दिशा में उन्नति की ओर अग्रसर हो सकेगी। जिससे भविष्य में ग्रामीण क्षेत्र को अतिरिक्त लाभ की प्राप्ति हो सकती है। अतः सरकार व समाज द्वारा महिलाओं को व्यवसायिक शिक्षा ग्रहण करने के सुअवसर प्रदान करने के लिए प्रोत्साहन की तीव्र आवश्यकता है।

उच्च प्रशिक्षित महिलाओं की भागीदारी से समाज में निम्न विकास देखने को मिलेंगे -

1. कृषि वानिकी व शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति होगी,
2. कार्य करने की क्षमता में सुधार व वृद्धि होगी,
3. सामाजिक असंतुलन को कम किया जा सकता है,
4. कार्य के प्रति प्रतिबद्धता दिखेगी,
5. आलस्य का परित्याग होगा,
6. आपसी छोटे-मोटे झगड़े का निपटारा,
7. समाज के लिए आर्द्रा प्रस्तुति,
8. एक मजबूत संगठन का उद्भव,
9. उनके द्वारा समूह के रूप में किये जाने वाले कार्य की आदर्श रूपरेखा बनेगी,
10. समाज में उपस्थित भ्रांति भावना से मुक्ति मिलेगी,
11. शिक्षित व आर्थिक प्रगतिशील व स्थिर समाज की रचना होगी।

शोधार्थी के अध्ययनोपरांत उक्त बिन्दुओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि इन उद्देश्यों से सतत विकास के लक्ष्य व विकसित भारत की संकल्पना की प्राप्ति हो सकेगी। जिससे मानव कल्याण व जैव विविधता व पर्यावरण संतुलन को प्रोत्साहन मिलेगा।

संदर्भ

- Census India. (2023). Jaunpur District Population, Caste, Religion Data (Uttar Pradesh) - Census 2011. Retrieved from www.censusindia.co.in: https://www.censusindia.co.in/district/jaunpur-district-uttar-pradesh-194
- Dr. Agrawal D.C., K. A. (2017, February 2). Women Empowerment in India: Role of Higher Education. Retrieved from https://www.ijsr.net/: https://www.ijsr.net/getabstract.php?paperid=kART20164494
- Dwivedi, D. R. (2016, July- September). Bharat me mahila sashaktikaran hetu prayas. Retrieved from https://ijrrssonline.in: https://ijrrssonline.in/AbstractView.aspx?PID=2016-4-3-7
- Manik, M. G. (2014, January). WOMEN EMPOWERMENT THROUGH HIGHER EDUCATION IN INDIA. Retrieved from https://www.researchgate.net: https://www.researchgate.net/ publication/344789109_WOMEN_ EMPOWERMENT_THROUGH_HIGHER_EDUCATION_IN_INDIA
- Soni, J. N. (2019). Mahila sashaktikaran ki vartman sithi rajnetik sashaktikaran ke paripekshya me Umaria jila ke vises sandarbh me. Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in/: http://hdl.handle.net/10603/489199
- STATISTICS, D. O. (2021-22). GROSS STATE DOMESTIC PRODUCT BY ECONOMIC ACTIVITY (Crore Rs.)-UTTAR PRADESH. Retrieved from https://updes.up.nic.in/: https://updes.up.nic.in/updes/data/annual_stats/gsdp/GSDP_Revised_Quick_Estimates_2021-22_current_price.pdf
- UP, S. G. (2021-22) सामान्य शिक्षा एवं समाज शिक्षा जौनपुर जनपद में विकास खण्डवार मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में स्तरवार विद्यार्थी (संख्या), Retrieved from स्पाइडर (सांख्यिकीय पत्रिका इंटरनेट बेस्ड डाटा एंट्री एवं रिट्रीवल सिस्टम) : https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable40Report.action

प्रदीप कुमार मौर्य
शोध छात्र, वाणिज्य संकाय,
डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या, उ. प्र. 224001

डॉ. नन्दन सिंह
असि. प्रोफेसर
रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अकबरपुर, अम्बेडकरनगर, उ.प्र. 224122

डिजिटल इंडिया और ग्रामीण समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

–कुँवर संजय भारती

–सुश्री सीता पाण्डेय

सारांश

विश्व इतिहास में समाज जब भी एक युग से दूसरे युग में पदार्पण किया है प्रौद्योगिकी ने चालक की भूमिका निभाते हुए उसे गति और मति प्रदान की है। प्रथम औद्योगिक क्रांति से समूचे विश्व में परिवर्तन की जो लहर उत्पन्न हुई वह चतुर्थ औद्योगिक क्रांति तक पहुँच चुकी है। तकनीकी, सूचना, ज्ञान, 5जी नेटवर्क, इंटरनेट, विविध एप, ब्लाक चेन, क्लाउड कंप्यूटिंग, एआई आदि इस युग के डिजिटल आधार है और डिजिटल इंडिया इन्हीं आधारों को वास्तविक धरातल प्रदान करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर रहा है तथा इन्हें वास्तविकता के धरातल पर लाकर समाज में परिवर्तन तथा ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण को गति प्रदान कर रहा है। भारतीय गाँव जो परम्पराओं के पोशक व संरक्षक रहे है वहाँ डिजिटल इंडिया कार्यक्रम ने इंटरनेट सेवाओं, स्मार्टफोन, लैपटॉप, कंप्यूटर, टेबलेट के माध्यम से उन गाँवों को साइबर दुनिया से जोड़कर एक डिजिटल पारिस्थितिकी का वहाँ निर्माण किया है। यह डिजिटाइजेशन खेत खलिहान से लेकर फसलों के मार्केटिंग तथा भण्डारण तक दृष्टव्य है। इतना ही नहीं जीपीएस प्रणाली से पोस्ट ऑफिस से लेकर रास्तों तक की ट्रैकिंग स्मार्ट तकनीक से की जा रही है, फ्लिपकार्ट और अमेजोन जैसी कंपनियों के प्रोडक्ट आज ग्रामीण उपभोक्ताओं की पहुँच में है। स्विग्गी और जोमैटो की डिजिटल सेवाएँ रसोईघर को कमजोर कर रही हैं। ग्रामीण क्षेत्र का छात्र भी आज डिजिटल माध्यमों से विश्व की लाइब्रेरी तथा अध्ययन सामग्री तक अपनी पहुँच बना रहा है। नगदी रहित अर्थव्यवस्था का एक अलग ही स्वरूप विकसित हो रहा है। डिजिटल सेवाएँ ग्रामीण-नगरीय, शिक्षित-अशिक्षित तथा जेंडर विभेद से परे एक वर्चुअल दुनिया का निर्माण कर रही हैं।

ऐसे में डिजिटल इंडिया के उद्देश्य डिजिटल सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था का ग्रामीण समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इसका अध्ययन इस शोध पत्र में किया जाएगा। इस शोध पत्र में यह भी अध्ययन करने का प्रयास किया जाएगा कि डिजिटल प्लेटफॉर्म, एप, तथा सेवाएँ व सूचनाएँ जैसे-कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, बाजार, पर्यटन, धर्म, सामाजिक संबंधों, चिकित्सा को ग्रामीण समाज में डिजिटल रूप में रूपान्तरित कर रही हैं।

मुख्य शब्द : ग्रामीण समुदाय, डिजिटल इंडिया, डिजिटल प्रौद्योगिकी, ई-एजुकेशन, ई-क्रांति, ई-गवर्नेंस, चतुर्थ औद्योगिक क्रांति।

भारत की सांस्कृतिक विविधता तथा उसकी सारस्वत परंपराएँ गाँवों में बसती हैं। इसलिए गांधीजी ने कहा था कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। यदि गाँव आत्मनिर्भर होंगे तभी आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना साकार रूप लेगी। भारत में 6 लाख 40 हजार से अधिक गाँव हैं, जिसमें कुल जनसंख्या का लगभग 68.8 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् से ही गाँव के चतुर्दिक विकास का अनवरत प्रयास जारी है परन्तु दूरसंचार प्रौद्योगिकी में प्रगति ने ग्रामीण समुदायों के परिवर्तन और प्रगति को नई दिशा दी है जिससे ग्रामीण समुदायों में विकास के नए क्षितिज का उद्भव हो रहा है जिसमें डिजिटल इंडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

सूचना और संचार क्रांति ग्रामीण समाज को तकनीकी पहचान दे रही है जिसमें डिजिटल सेवाएँ अनिवार्य होती जा रही हैं। वैश्विक स्तर पर सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में भारत की अपनी 'पहचान' है फिर भी ग्रामीण नागरिकों के लिए डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता और डिजिटल तकनीकी तक पहुँच अभी भी कम है तथा डिजिटल डिवाइडेशन स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। ऐसे में डिजिटल इंडिया, ग्रामीण समाज को सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था में रूपांतरित करने का माध्यम है। जिससे गाँवों में डिजिटल सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुँच के साथ ही पारदर्शी व जवाबदेह सुशासन स्थापित हो सके। इस शोध पत्र के अध्ययन का क्षेत्र ग्रामीण समाज है और अध्ययन के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार

हैं-प्रथम उद्देश्य-डिजिटल इंडिया कार्यक्रम कैसे ग्रामीण समुदाय को डिजिटल रूप में रूपांतरित कर रहे हैं इसका अध्ययन करना है। द्वितीय उद्देश्य- डिजिटल इंडिया का ग्रामीण कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा तथा वित्तीय समावेशन पर क्या प्रभाव पड़ा है इसका विश्लेषण करना है। तृतीय उद्देश्य-डिजिटल इंडिया से कैसे समुदाय के शोषित, वंचित, हाशिए के समूहों तथा महिलाओं के उत्थान में सहायक सिद्ध हो रहा है? इसका अध्ययन करना है। चतुर्थ उद्देश्य के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल तकनीकी किस प्रकार ग्रामीण-नगरीय तथा शिक्षित-अशिक्षित के मध्य डिजिटल डिवाइडेशन को कमजोर कर रही है इसका अध्ययन करना है। पंचम उद्देश्य के अन्तर्गत इस शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि डिजिटल इंडिया के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ कौन सी हैं जो डिजिटल इंडिया के सार्वभौमिक पहुँच में बाधक सिद्ध हो रही हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए इस शोध पत्र में आंकड़ों के संकलन एवं विश्लेषण हेतु अवलोकन प्रविधि के साथ ही साथ द्वितीयक आंकड़ों का प्रमाण, उच्च कोटि के पत्र-पत्रिकाओं के राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं तथा विभिन्न योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों का उपयोग तथ्यों के कारणात्मक अध्ययन व उनकी प्रमाणिकता को बनाए रखने के लिए किया जाएगा। इस शोध पत्र में वर्णनात्मक शोध प्ररचना तथा आवश्यकतानुसार तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का भी प्रयोग किया जाएगा। ग्रामीण समुदायों के लोगों से इस संदर्भ में परिचर्चा की जाएगी।

सुशासन किसी भी समाज के अवसंरचनात्मक विकास को नई दिशा दे सकता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि क्या उस समाज के वंचित, शोषित व हाशिए के व्यक्तियों को सामाजिक सुविधाओं तक समान पहुँच है? यदि इनकी पहुँच सुगमता और सरलता से हो तो सामाजिक परिवर्तन की एक सकारात्मक तस्वीर बनती है, किंतु प्रश्न यह उठता है कि सामाजिक सुविधाओं और सेवाओं की सार्वभौमिक पहुँच को कैसे मूर्त रूप दिया जाए ऐसे में संचार तकनीकी ही वह माध्यम है जो इतनी सशक्त और समर्थ होती है कि वह चाहे ग्रामीण हो या नगरीय बिना विभेद किए सभी को सूचनाएँ, सुविधाएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध करा सकती है तथा उन्हें उनके अधिकार और कर्तव्यों से अवगत करा सकती है, शिक्षित व अशिक्षित के मध्य अंतराल को कम कर सकती है। कोविड-19 जैसे वैश्विक महामारी के दौरान शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा तथा सम्बन्धों को जीवंत बनाए रखने का माध्यम बन सकती है। सूचना तकनीकी की इसी क्षमता और सामर्थ्य को देखते हुए ग्रामीण समाज के जीवन स्तर के उन्नयन तथा राष्ट्र को सशक्त और आत्मनिर्भर बनाने के लिए 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। डिजिटल इंडिया केंद्र सरकार की एक पहल है जिसका मुख्य उद्देश्य भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज व ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में बदलना है। 20 अगस्त 2014 को डिजिटल इंडिया कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान की गयी तथा 1 जुलाई 2015 को इसकी शुरुआत हुई जो इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा संचालित है। डिजिटल इंडिया के तहत जिस रणनीति पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है वह है-भारतीय प्रतिभा (आई टी), सूचना प्रौद्योगिकी (आई टी)=कल का भारत (आई टी)। डिजिटल इंडिया की रूपान्तरकारी प्रकृति को देखते हुए यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सामाजिक सुविधाएँ और सेवाएँ लोगों को इलेक्ट्रॉनिक रूप से प्राप्त हों व सार्वजनिक जवाबदेही सुनिचित हो। भारत को डिजिटल सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था में रूपान्तरण के विजन के तहत जिन तीन क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित किया गया है वे हैं- प्रथम-समाज के लोगों को डिजिटल रूप से सशक्त व क्षमतावान बनाना। द्वितीय-नागरिकों की सुविधा के लिए डिजिटल अवसंरचना का निर्माण। तृतीय-मांग के आधार पर सेवाओं तथा सुशासन की व्यवस्था।

प्रथम विजन के तहत समाज के लोग डिजिटल रूप से सशक्त हों इसके लिए सार्वभौमिक डिजिटल साक्षरता, डिजिटल संसाधनों का सार्वभौमिक विस्तार, भारतीय भाषाओं में डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता, सुशासन के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्मों तथा क्लाउड पर प्रमाण पत्रों व दस्तावेजों की उपलब्धता को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। जबकि द्वितीय विजन में नागरिकों की सुविधा के लिए डिजिटल अवसंरचना के निर्माण में नगरीय क्षेत्रों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों के लिए हाईस्पीड इंटरनेट की सुविधा, एक ऐसा डिजिटल पहचान निर्मित करना है जो ऑनलाइन और प्रत्येक नागरिक के लिए प्रमाणित करने योग्य हो, स्थानीय स्तर पर जन सुविधा केंद्र की व्यवस्था, मोबाइल फोन और बैंक खाता को डिजिटल रूप से कनेक्ट करना, सार्वजनिक क्लाउड में साझा करने योग्य निजी स्थान के साथ ही देश में सुरक्षित साइबर पारिस्थितिकी (स्पेस) का निर्माण करना है। तृतीय विजन में मांग के आधार पर सेवाओं तथा सुशासन की व्यवस्था है जिसमें सम्मिलित हैं- मोबाइल प्लेटफार्म और ऑनलाइन वास्तविक समय में सरकारी सेवाओं को उपलब्ध कराना, जिससे उपलब्ध सेवाओं तक उनकी पहुँच को सुनिश्चित किया जा सके, इसके लिए आवश्यक है कि सभी विभागों को एकीकृत किया जाए, कैशलेस लेनदेन को बढ़ावा देना तथा निर्णय सहायता सिस्टम और विकास के लिए जीआईएस के उपयोग को बढ़ावा देना। यदि डिजिटल इंडिया के यह तीनों विजन अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं तो निश्चित रूप से भारत में

एक सशक्त डिजिटल साइबर स्पेस का निर्माण संभव होगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल तकनीकी के विस्तार और प्रसार में व्यापक वृद्धि हुई है जिससे ग्रामीण समाज के रूपांतरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। स्मार्टफोन, मोबाइल की पहुँच अब ग्रामीण उपभोक्ताओं तक सरलता से हो रही है। इससे डिजिटल डिवाइडेशन धीरे-धीरे ही सही कमजोर पड़ रहा है तथा ग्रामीण क्षेत्र के लोग इंटरनेट से निरंतर जुड़ते जा रहे हैं। इंटरनेट और मोबाइल एसोसिएशन फॉर इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2014 के अंत तक संपूर्ण भारत में 30 करोड़ से अधिक लोगों तक इंटरनेट सेवाओं की पहुँच थी तथा 28 फरवरी 2015 तक भारत में कुल मोबाइल फोन उपभोक्ताओं की संख्या 96 करोड़ से अधिक थी। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के शुरुआत के पश्चात् एवं भारत नेट परियोजना के इस उद्देश्य के साथ कि देश की सभी ढाई लाख (2.5 लाख) ग्राम पंचायतों में ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी उपलब्ध कराई जायेगी। स्थिति यह है कि भारत नेट परियोजना के अन्तर्गत प्रत्येक दिन 800 किलोमीटर ऑप्टिकल फाइबर डालकर भारत ने विश्व पटल पर नया कीर्तिमान स्थापित किया है। भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) की रिपोर्ट फरवरी 2024 के अनुसार भारत में 119.7 करोड़ टेलीफोन मोबाइल उपभोक्ता हैं। जिसमें नगरीय क्षेत्र में 66.37 करोड़ तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 53.13 करोड़ हैं। ब्रॉडबैंड उपभोक्ताओं की संख्या 91.67 करोड़ है जबकि भारत में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या 820 मिलियन से अधिक अर्थात 82 करोड़ से अधिक है जिसमें 442 मिलियन अर्थात 44.2 करोड़ इंटरनेट उपभोक्ता ग्रामीण क्षेत्रों में हैं जो नगरीय इंटरनेट उपभोक्ताओं से अधिक हैं। यह बदलाव डिजिटल इंडिया कार्यक्रम का ही प्रभाव है जिसमें ग्रामीण और नगरीय इंटरनेट उपभोक्ताओं के मध्य अंतराल कमजोर पड़ता दिख रहा है। सही अर्थों में स्मार्टफोन और मोबाइल की शक्ति की पहचान इसमें दिख रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आज भी मुख्य व्यवसाय है तथा सर्वाधिक लोगों को रोजगार प्रदान करती है। देश के जीडीपी में कृषि का भाग सर्वाधिक है। ऐसे में यदि कृषि को तकनीक समर्थित व सक्षम बना दिया जाए तथा स्मार्ट कृषि को प्रोत्साहित किया जाए, इससे एक तरफ जहाँ किसानों की आय में बढ़ोत्तरी होगी, वहीं दूसरी तरफ उनके जीवन स्तर में सुधार होगा तथा उनकी कार्य क्षमता बढ़ेगी। इंटरनेट और डिजिटल तकनीकी का प्रयोग कर किसान अब डिजिटल प्लेटफार्मों से जुड़ भी रहे हैं। ई-नाम जिनका लक्ष्य ही किसानों के उत्पाद को लाभ पहुँचाना है इसके माध्यम से किसानों की पहुँच एक राष्ट्रव्यापी बाजार तक संभव हो रही है। जहाँ उपज की गुणवत्ता के अनुसार मूल्य निश्चित किए जाते हैं तथा ऑनलाइन भुगतान की व्यवस्था है। बाजार भाव के बारे में सही सूचना, फसलों के बारे में जानकारी, फसल के रोगों के बारे में जानकारी किसानों को सही समय पर प्राप्त हों इसके लिए कई 'एप' प्रारंभ किए गए हैं। किसान कॉल सेंटरों की स्थापना की गई है टोल फ्री नम्बर हैं। इससे किसानों को उत्पादन और विपणन के लिए डिजिटल तकनीक के प्रयोग से सहायता मिल रही है। कैशलेश भुगतान प्रणाली को ग्रामीण क्षेत्रों में समर्थन मिल रहा है।

वैश्विक महामारी कोविड-19 ने ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं की आवश्यकता को और अधिक प्रोत्साहित किया है परिणाम स्वरूप ग्रामीण युवाओं में डिजिटल साक्षरता में तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। जन सुविधा केन्द्रों का नेटवर्क ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे कस्बों में तेजी से बढ़ रहे हैं। यह केंद्र विविध सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं, इसमें आधार पंजीकरण, आय, जाति व निवास प्रमाण पत्र, सामाजिक कल्याण से जुड़ी योजनाओं की जानकारी, टिकट बुकिंग, सेवाओं से सम्बन्धित बिलों का भुगतान, टेली-मेडिसिन, कौशल सम्बन्धी सेवाएँ आदि प्रदान कर रहे हैं। ये जन सुविधा केंद्र ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं के लिए रोजगार के अवसर भी सृजित कर रहे हैं। इस तरह डिजिटल प्लेटफॉर्म और सेवाओं के माध्यम से ग्रामीण समुदाय को आच्छादित करने का प्रयास निरंतर जारी है।

ऑनलाइन शिक्षा, ई-एजुकेशन, गूगल क्लास रूम को समय की मांग के रूप में देखा जा रहा है, साथ ही डिजिटल इंडिया ने ग्रामीण क्षेत्रों में भी ई-एजुकेशन का मार्ग प्रशस्त किया है। ई-लर्निंग, डिजिटल लाइब्रेरी की पहुँच तभी सार्वभौमिक हो सकती है जब डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर सुदृढ़ हो। ई-एजुकेशन में सभी स्कूलों को ब्रॉडबैंड से जोड़ने का भी प्रावधान है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में डिजिटल सेवाएँ किसी संजीवनी से कम नहीं है जिसे कोविड-19 के दौरान देखा भी गया है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में टेली-मेडिसिन, ऑनलाइन मेडिकल सलाह तथा ई-हेल्थ केयर की सुविधा उपलब्ध कराना भी डिजिटल इंडिया का लक्ष्य है। ई-कॉमर्स, मोबाइल बैंकिंग, माइक्रो एटीएम तथा ई-बैंकिंग जैसी सेवाओं के संचालन में डिजिटल प्लेटफॉर्म ही माध्यम का कार्य करते हैं। इतना ही नहीं ई-कोर्ट एवं ई-पुलिस की सुविधा डिजिटल अवसंरचना के सुदृढ़ विकास से ही संभव है।

डिजिटल इंडिया के नौ आधार स्तंभों जिसमें ब्रॉडबैंड हाईवे, मोबाइल तक सभी की पहुँच, ई-सुशासन, सार्वजनिक इंटरनेट एक्सेस कार्यक्रम, ई-क्रांति अर्थात सेवाओं की इलेक्ट्रॉनिक पहुँच, सभी को सूचना, सेवाओं के लिए आईटी, इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण तथा अर्ली हार्वेस्ट को सम्मिलित किया गया है जिससे कि शोषिण, वंचित व हाशिए के

समूहों का उत्थान किया जा सके। सुदृढ़ अवसंरचना का विकास कर डिजिटल विभाजन को कमजोर किया जा सके।

डिजिटल इंडिया की प्रमुख चुनौतियाँ-डिजिटल क्रांति के इस युग में इंटरनेट, ज्ञान संचार और सूचना तक पहुँच का माध्यम और अनिवार्यता बन गया है। इंटरनेट अब मात्र व्हाइट गुड नहीं बल्कि वर्तमान में लोगों की आवश्यकता बन चुका है। कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी के समय, शिक्षा, चिकित्सा, खाद्य सामग्री तथा प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराने का माध्यम डिजिटल सेवाएँ रहीं, ऐसे में डिजिटल सेवाओं की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध होती है। ऐसी कौन-सी चुनौतियाँ हैं जो डिजिटल इंडिया के ग्रामीण समुदायों में सार्वभौमिक विस्तार को बाधित कर रही हैं? इनमें से प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार है-चतुर्थ औद्योगिक क्रांति के युग में भी डिजिटल साक्षरता कम होने से ऑनलाइन सेवाओं का अधिकांश लाभ वही लोग प्राप्त कर पाते हैं जो डिजिटल रूप से साक्षर तथा सक्षम हैं। इससे डिजिटल रूप से असमानता उत्पन्न होती है। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम, भारतनेट, ई-एजुकेशन, डिजिटल साक्षरता जैसी केंद्र सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं के पश्चात भी ग्रामीण क्षेत्रों में सुदृढ़ डिजिटल अवसंरचना तथा डिजिटल नेटवर्क का विकास अभी चल ही रहा है। कमजोर सर्वर, सर्वर का ठप हो जाना, नेटवर्क कनेक्टिविटी की समस्या डिजिटल इंडिया के ग्रामीण क्षेत्र में सार्वभौमिक विस्तार के मार्ग की महत्वपूर्ण चुनौती है। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम को सफल बनाने में अधिक वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता एक चुनौती है जिससे सुदृढ़ नेट कनेक्टिविटी तथा अधिक मात्रा में वाई-फाई, हॉटस्पॉट को स्थापित किया जा सके। साइबर अपराध, इंटरनेट यूजर की गोपनीयता, सुरक्षित पहचान आदि भी इंटरनेट यूजर के समक्ष चुनौती उत्पन्न करते हैं तथा डिजिटल इंडिया के ग्रामीण समुदाय में विस्तार को अवरुद्ध करते हैं। हैकर्स की समस्या, फेक सूचनाएँ, एटीएम कार्ड की क्लोनिंग भी जनसामान्य व ग्रामीण समुदाय के लोगों में डिजिटल सेवाओं को लेकर भ्रम, शंका व संदेह की स्थिति उत्पन्न करते हैं और इन डिजिटल सेवाओं के सार्वभौमिकरण के समक्ष चुनौती उत्पन्न होती हैं। विभिन्न विभागों के मध्य आपसी तालमेल और समन्वय की कमी भी कई बार स्पष्ट दृष्टिगत होती है जो डिजिटल इंडिया के मार्ग की बाधा बनती है। ग्रामीण समुदायों तथा दूर-दराज के गाँवों और हाशिए के समूहों का डिजिटली साक्षर न होना तथा इस क्षेत्र में जितने मानव संसाधन की आवश्यकता है क्षेत्रों में डिजिटल अनुपात कम होना भी एक चुनौती है। इन तमाम चुनौतियों के बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट यूजर्स, स्मार्टफोन तथा मोबाइल का तेजी से विस्तार हो रहा है जो एक सकारात्मक पहलू को दर्शाता है।

डिजिटल इंडिया को सफल बनाने के लिए सरकारी स्तर पर निरन्तर प्रयास जारी है जिससे कि ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों के मध्य डिजिटल डिवाइडेशन को कमजोर किया जा सके। इसके लिए वर्ष 2020 में 'राष्ट्रीय डिजिटल साक्षरता मिशन' की शुरुआत की गयी और इसके उद्देश्य हैं- भारत के सभी घरों में कम-से-कम एक व्यक्ति को डिजिटल रूप से साक्षर बनाया जाए। दूसरी तरफ भारत नेट परियोजना 2 लाख 50 हजार से अधिक ग्राम पंचायतों को ब्रॉडबैंड सेवाएँ उपलब्ध कराने का लक्ष्य लेकर कार्यान्वित किया जा रहा है जिसमें ग्रामीण क्षेत्र के साथ-साथ दूर-दराज व दुर्गम क्षेत्र केंद्र में है। राष्ट्रीय डिजिटल संचार नीति 2018 तथा व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक 2019, व्यक्तिगत हितों को संरक्षण देकर गोपनीयता बनाए रखने तथा भ्रम की स्थिति को दूर करते हैं।

सुझाव-डिजिटल इंडिया ग्रामीण क्षेत्रों में एक सफल सुदृढ़ डिजिटल नेटवर्क को स्थापित कर सके तथा गाँवों में डिजिटल पारिस्थितिकी का निर्माण हो इसके लिए कुछ प्रमुख सुझाव निम्नलिखित है-ग्रामीण क्षेत्रों में और सुदृढ़ डिजिटल अवसंरचना का विकास किया जाए तथा इंटरनेट सेवाओं की सार्वभौमिक पहुँच पर बल दिया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल शिक्षा के व्यापक प्रसार हेतु जन सेवा केन्द्रों के नेटवर्क को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। डिजिटल सेवाओं और कार्यक्रमों के लिए ग्रामीण समुदाय के लोगों को जागरुक किए जाने की आवश्यकता है। कौशल विकास कार्यक्रमों में डिजिटल शिक्षा को भी सम्मिलित किया जाए। पंचायत स्तर पर सप्ताह में एक दिन डिजिटल सेवाओं के सम्बन्ध में ग्रामवासियों को प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। इससे डिजिटल सेवाओं और तकनीकी के विषय में जो भ्रम, शंका व संदेह होगा उसे दूर करने में सहायता मिलेगी एवं डिजिटल सेवाओं को लेकर ग्रामीण लोगों की मनोवृत्ति में बदलाव आएगा तथा डिजिटल इंडिया की सार्वभौमिक पहुँच ग्रामों में सुनिश्चित और सुदृढ़ होगी। किसानों को डिजिटल प्लेटफार्मों के प्रयोग के प्रति डिजिटली साक्षर व जागरूक किये जाने की आवश्यकता है। उन्हें डिजिटल प्रशिक्षण दिए जाएँ, इससे ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल इंडिया की नींव मजबूत होगी। डिजिटल रूप से महिलाओं, वंचित समूहों तथा हाशिए के लोगों को जोड़ा जाए। महिलाएँ यदि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल माध्यमों से जुड़ती हैं तो परिवार डिजिटल रूप से साक्षर होंगे और प्रौद्योगिकी में जेंडर अंतराल को कम करने में सहायता मिलेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों को डिजिटल माध्यमों से जोड़कर उन्हें नयी 'पहचान' दी जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में कैशलेस लेनदेन को बढ़ावा देने के लिए लोगों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। इन क्षेत्रों में ई-कॉमर्स, डिजिटल मार्केटिंग, डिलीवरी सेवाओं के लिए डिजिटल

तकनीकी की समझ को प्रोत्साहित किया जाए। ग्रामीण समुदाय में विशेष रूप से युवाओं को ऑनलाइन शिक्षा, ई-लर्निंग, डिजीलॉकर, डिजिटल लाइब्रेरी आदि के सम्बन्ध में जानकारी दी जाए, इससे भी डिजिटल इंडिया का मार्ग प्रशस्त होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वर तथा मोबाइल और स्मार्टफोन के कनेक्टिविटी को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं में रोजगार के जो अवसर हैं उसे विकसित करने की आवश्यकता है। इससे ग्रामीण युवाओं का आकर्षण डिजिटल सेवाओं के प्रति और अधिक बढ़ेगा। स्कूली स्तर पर सभी स्कूलों में डिजिटल कौशल प्रशिक्षण को सार्वभौमिक बनाने की आवश्यकता तथा समय की अनिवार्यता है।

सूचना और संचार क्रांति आज ग्रामीण भारत को एक नई दिशा दे रही है। डिजिटल संचार डिजिटल अवसंरचना का केंद्रीय भाग बन चुका है तो दूसरी तरफ भारत नेट परियोजना ढाई लाख से अधिक ग्राम पंचायतों को ब्रॉडबैंड से जोड़ने के लिए चरणबद्ध तरीके से कार्यान्वित की जा रही है जो पूर्ण होने पर ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को डिजिटल रूप से रूपान्तरित करेगी, इसका सकारात्मक प्रभाव गाँव में दृष्टिगत हो रहा है। ग्रामीण समुदाय इंटरनेट, मोबाइल, स्मार्टफोन से जुड़ चुके हैं तथा डिजिटल सामाजिक सेवाओं का लाभ प्राप्त कर रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास से शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि, पर्यटन, परिवहन, बैंकिंग, वित्तीय सेवाएं, तथा ई-गवर्नेंस डिजिटल रूप कार्य कर रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में धीरे-धीरे ही सही कैशलेस लेनदेन शुरू हो चुका है। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता बढ़ रही है और आज स्थिति यह है कि नगरों से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट उपभोक्ता हैं। डिजिटल इंडिया शिक्षित-अशिक्षित एवं ग्रामीण-नगरीय के बीच के अन्तराल को निरन्तर कमजोर कर रहा है। डिजिटल इंडिया से ग्रामीण समाज में जिस सशक्त ग्रामीण अवसंरचना का विकास हो रहा है, वही आत्मनिर्भर व विकसित भारत के भविष्य को मूर्त रूप देगा।

संदर्भ

1. इंडिया 2015 व इंडिया 2024 ईयर बुक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली।
2. कुरूक्षेत्र दिसम्बर 2015, अगस्त 2017, दिसम्बर 2020 एवं जुलाई 2021, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, कमरा नं. 48-53, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स लोधी रोड, नई दिल्ली।
3. Bhatia, A., & Chhavi, K. (2016). Rural Development through E-Governance Initiatives in India. IOSR Journal of Business and Management, 61-69.
4. Kaur, Ranmeet, E-Commerce in India, Asian journal of research in business economics and management, vol.2, issue 6,2012
5. Kumar, T., Prdhi, S., & Bisen, A. (2017). Role of Digital India in Rural Areas. International Journal of Advance Engineering & Research Development, 1-4.
6. Luvy. (2018). Impact of Digital India by 2019. International Journal of Scientific & Engineering Research, 9(4), 1285-1288.
7. M.M.K Sardana (2012), Vision of Digital India challenges ahead for political establishment DN2012/09,ISID.
8. National e-Governance Plan, Ministry of Communication & Information Technology, Government of India, [http://www.mit.gov.in/default.aspx?id=827]
9. N. Gorla, "Hurdles in rural e-government projects in India: lessons for developing countries", Electronic Government: An International Journal, 5(1), 2008, 91-102.
10. P. Mittal and A. Kaur, "E-governance - A challenge for India", IJARCET, 2(3), 2013, 1196-1199.
11. V.R. Salkute and S.R. Kohle, "E-Government Milestones in Rural India: Eagro Aspects", International Journal of Enterprise Computing and Business Systems,1(2), 2011.
12. https://censusindia.gov.in/
13. http://www.digitalindia.gov.in/

कुँवर संजय भारती
असिस्टेंट प्रोफेसर-लाइब्रेरी
रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज,
अकबरपुर, अम्बेडकर नगर।

सुश्री सीता पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर-समाजशास्त्र विभाग
रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज,
अकबरपुर, अम्बेडकर नगर।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में अभिव्यक्त कृषक संस्कृति का स्वरूप

–जितेंद्र कुमार

किसी भी समाज की संपूर्ण मानसिकता का दर्पण वहाँ की 'संस्कृति' होती है, जो उसके आदर्श और सुंदर रूप को चित्रित करती है। यह मानवीय जीवन के सभी क्रियाकलापों का बहीखाता होती है। प्रत्येक राष्ट्र या क्षेत्र विशेष की अपनी एक लोक संस्कृति भी होती है। राष्ट्र या क्षेत्र विशेष की सीमाओं म. रहकर व्यक्ति इस संस्कृति का निर्माण एवं विकास करता है।

'लोक' शब्द का इस्तेमाल मानव इतिहास के प्रारंभ से ही किया जा रहा है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'देखने वाला' होता है। मूलतः 'लोक' से अभिप्राय किसी देश म. रहने वाले जनसमुदाय से है। हजारीप्रसाद द्विवेदी 'लोक' शब्द को व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं कि - "लोक शब्द का अर्थ जनपद या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों म. फैली वह समस्त जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियों का ज्ञान नहीं है। नगर म. परिष्कृत रुचि-संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा वे अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यासी होते हैं तथा परिष्कृत व्यक्तियों की विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखनेवाली वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं।"[1]

'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए लक्ष्मीधर वाजपेयी ने कहते हैं कि- "लोक का तात्पर्य सर्वसाधारण जनता से है। दीनहीन, शोषित, पतित, पीड़ित लोग और जंगल जातियाँ, कोल, भील, संभाल, गौड़, नाग, शक, हूण इत्यादि सभी लोक समुदाय मिलकर 'लोक' संज्ञा को प्राप्त होता है।"[2]

लोक संस्कृति से अभिप्राय "लोक' की संस्कृति' से है। इस लोक संस्कृति म. मानव कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं। अर्थात् किसी भी राष्ट्र या क्षेत्र विशेष के जनसमुदाय की परंपरागत मान्यताएँ, धार्मिक-सामाजिक मान्यताएँ, रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेश-भूषा, भाषा और मंनोरंजन की प्रणालियाँ लोक संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग है। लोक-कथा, लोक-गीत, लोक-नृत्य, लोक-उत्सव तथा धार्मिक पर्व इत्यादि लोक सांस्कृतिक तत्वों के प्रमुख मुद्दे हैं। जॉर्ज एम. फोस्टर ने 'लोक संस्कृति' को परिभाषित करते हुए कहा है कि - "लोक संस्कृति को एक ऐसी सामान्य जीवन शैली के रूप म. देखा जा सकता है जो किसी क्षेत्र के अनेक गाँव, कस्बों तथा नगरों के कुछ या सभी व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है।"[3] 'लोक संस्कृति' को स्पष्ट करते हुए डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं - "लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जनसाधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्सभूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी।"[4]

हम अपने भारतीय परिदृश्य म. लोक संस्कृति का आँकलन कर. तो यहाँ मुख्यतः कृषक संस्कृति समग्रता म. नजर आती है। इसी संस्कृति ने हमारी जमीन, प्रकृति और जलवायु को संरक्षित करने का जिम्मा उठा रखा है। दोनों ही वर्ग स्वाभाविक स्वरूप म. हैं तथा उनम. किसी भी तरह का बनावटीपन नहीं है। एक बच्चे को उसके पिता-माता या दादा-दादी द्वारा सुनाई गईं लोक-कथाएँ उसे उसकी लोक संस्कृति से जोड़ने का कार्य करती है। जो लोक-कथाएँ एवं मिथक कथाएँ हैं वे आज भी मानवीय संवेदनाओं को संपुष्ट करती हैं। समकालीन कहानीकार लोक-कथाओं के प्रति सतर्कता से लिखता नजर आता है, जिससे कि इसम. कृत्रिमता न आ जाए।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों म. कृषक संस्कृति

भारत कृषि प्रधान देश है। जीवन का वास्तविक स्वरूप यहाँ के गाँवों म. नजर आता है, जिसका मुख्य स्रोत कृषि है। अर्थात् कृषि का विस्तार ग्रामीण जीवन म. ही विद्यमान है। हमारा देश गाँवों से बनी एक ऐसी संरचना है, जिसम. रहनेवाले अधिकतर लोग का जीवन कृषि पर निर्भर है। इस कृषि आधारित देश की अपनी एक किसानी संस्कृति भी है और देश

का सांस्कृतिक विकास इसी किसानी संस्कृति से संभव है। अर्थात् हमारी संस्कृति का मुख्य स्रोत कृषि है। हमारा सांस्कृतिक प्रसार किसानी और ग्रामीण जीवन म. ही बसता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते किसान जो करता है, विचारता है, वह सब जटिल सांस्कृतिक गोलाबंधी है। मनुष्य के लिए ज्ञान, कला, नैतिकता, प्रथाएँ और परंपराएँ सीखने का आधार ही कृषि है। समग्र रूप म. देख. तो कह सकते हैं कि कृषि ही इस देश की प्राण, संस्कृति और सरोकार रही है और है। भारतीय संस्कृति इसी किसानी संस्कृति पर खड़ी है।

आज जब हम इक्कीसवीं सदी के तृतीय दशक म. प्रवेश कर चुके हैं तो देख सकते हैं कि इस कृषि प्रधान देश म. किसानों की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। आज मोबाइल और इंटरनेट की तरह तेज रफ्तार म. भागते जीवन ने किसानों और किसानी को हास्य पर ढकेल दिया है। अर्थात् आज विकास का मॉडल, कृषि विनाश की परिणति तक जाने को तैयार है। खेत और जंगलों को उजाड़ कर आज बड़े-बड़े मॉल बनाए जा रहे हैं, जिसके पीछे अंतरराष्ट्रीय कंपनियों की एजंसियों की कूटनीति विद्यमान है। आज वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के दौर म. तो परिस्थितियाँ और भी खराब होती जा रही हैं। आज चारों ओर कॉरपोरेट दुनिया को लाभ पहुँचाने के लिए कृषि क्षेत्र को तबाह करने का प्रयास किया जा रहा है। हमारे देशी बीजों पर भी विदेशी शक्तियों का अधिकार होता जा रहा है। प्राकृतिक बीज उजाड़े जा रहे हैं तथा हाईब्रीड बीजों को बेचनेवाली कंपनियाँ ही उसे बनाने वाली हैं।

एक किसान का संपूर्ण जीवन गाँव, जमीन, जल और कृषि से संबद्ध होता है तथा खेत अगर किसान का शरीर है तो खेती उसकी आत्मा है, जिसके बिना वह जी नहीं सकता। उसका अपना एक अस्तित्व है, उसकी अपनी एक संस्कृति है। विनाश के कगार पर लाकर खड़ी कर दी गई इस संस्कृति को एक बार फिर से स्थापित करने का प्रयास आज के कहानीकार कर रहे हैं। भारत की आत्मा ग्रामीण समाज और कृषि संस्कृति हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों ने इसी यथार्थ को लक्ष्य करके गाँव और कृषि संस्कृति को बड़े स्तर पर अपने स्वर प्रदान किए हैं। तमाम तरह की विपदाओं और बाधाओं को सहकर भी एक किसान कृषि संस्कृति को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध होता है। वह उसे किसी भी वजह से नष्ट नहीं होने देना चाहता है। किसानों की इसी प्रतिबद्धता की संस्कृति को महेश कटारे की 'गोद म. गाँव' और देव.द्र सिंह की 'कंपनी बहादुर' कहानियों म. देखा जा सकता है।

अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ती घेराबंदी के जाल म. किसान आज इतना मजबूर हो गया है कि अपने सामने अपने बंजर खेतों को केवल निहार भर सकता है तथा उन्ह. लुटने से नहीं बचा सकता है, न ही उन्ह. दोबारा उपजाऊ बनाने की हिम्मत जुटा सकता है। लेकिन ऐसी परिस्थिति म. भी जब 'गोद म. गाँव' कहानी का सरपंच सालिगराम से कंपनी के रेस्ट हॉउस के लिए उसके खेत की जमीन देने को कहता है तो सालिगराम का खेतिहर प्रेम उसे ऐसा करने नहीं देता। सालिगराम जवाब म. कहता है कि - "पर नईं भैया! हम ना बेच.गे। धरती है तो आस भी बची है। सोचता है सालिगराम... अकाल, बाँझ होती धरती, कंपनी, दलाल आदि से उसकी जिंदगी घिर चुकी है, फिर भी वह हिम्मत नहीं हारता, अपने बेटे जै सिंह को समझाते हुए कहते हैं- जै सिंह! मोय तो जे लगई रई कि जौन दिन हमारे सोत सुख जाएँगे तौन दिन जे कंपनी हम. मरते बिलबिलाते छोड़ जाएगी। चूसे भये आम की नाईं। ... उसकी इस बात का समर्थन सालिगराम की बीवी रामसिरी भी करती है- 'जमीन तो अब नई बिकेगी।... बसस। जो होयगा देख.गे।"[5] दूसरी ओर देव.द्र सिंह की कहानी 'कंपनी बहादूर' का मुख्य पात्र किसान धनराज को भी अपने खेतों से बहुत लगाव है और वह अपने खेतों को धरती माता कहता है। वह कहता है कि - "देखो बेटा, खेत चाहे चास लगा हो कि खाली, उसको साँझ-विहान नहीं तो कम से कम दिन म. एक बार जरूर देखना चाहिए। खेत को रोज देखोगो तो पता चलेगा कि उसको किस चीज की जरूरत है। खेत सही सलामत है कि नहीं। मान लो कोई अरिया दबा के आर ही छाँट ले तो तुमको कैसे पता चलेगा? ... और सबसे बड़ी बात बेटा ये धरती माय है हमारी। माय जैसे दूध पिलाकर बच्चों को पोसती है, वैसे ही धरती माता भी अपने बच्चों का प्रतिपाल करती है। अब माय से बच्चा भला दूर कैसे रह सकता है। इसलिए उसक नित दर्शन करना, उसकी माटी को माथे से लगाना किसान का धरम है ...धरती माता के साथ इससे नेह बढ़ता है।"[6]

हमारे देश म. आज भी किसानों के लिए उनकी जमीन, उनके खेत माँ के ही पर्याय हैं। किसान अपने खेतों म. काम करते समय इतना मग्न हो जाता है कि जैसे उसे परम आनंद की प्राप्ति हो रही हो। इसलिए कई बार लाभ न प्राप्त होने पर भी किसान अपने खेत या जमीन की उपेक्षा करने को तैयार नहीं होता। किसान और जमीन का जो आत्मीय संबंध है उसे तोड़ पाना बहुत ही कठिन कार्य है। एक किसान और जमीन के साथ उसके संबंध की सुदंरता को पराग मांदले ने अपनी कहानी 'जमीन से रिश्ता' म. इस तरह वर्णित किया है-"गाँव की मिट्टी से जुड़ी उसकी नाल और दूसरी माय से जुड़ी एक अदृश्य नाल।"[7] कहा जा सकता है कि किसान का अपनी जमीन के साथ जुड़ाव बच्चे और माँ के संबंध जैसा है, जिसकी गोदी से वह कभी उतरना नहीं चाहता है। अर्थात् एक किसान अपनी जमीन से इतना प्रेम करता है कि किसी भी धन-दौलत

के बदले उसे देना नहीं चाहता।

कृषकों की जीवन शैली और रहन-सहन

किसानों की जीवन शैली प्राकृतिक होती है, उसम. किसी भी तरह की कृत्रिमता नहीं होती। यह उनकी संस्कृति की पहचान है। अर्थात् किसान अपने निजी संसार म. यांत्रिकता एवं कृत्रिमता से दूर रहते हैं। इसलिए उनका जीवन स्वाभाविकता और सरलता से भरपूर होता है। सुबह से लेकर साँझ होने तक काम करके थके किसान अपनी खेती म. समर्पित अपना संपूर्ण जीवन जीते हैं। कई तरह की विपन्नता के बावजूद भी इन लोगों म. संतोष है। हल, अनाज एवं खेत-अपनी झोंपड़ियों म. परिवार एवं गाय, बैलों के साथ सरल जीवन बसर करने वाले लोगों के मित्र हैं। उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। शैलेश मटियानी ने अपनी कहानी 'पाप-मुक्ति' म. एक छोटे से किसान परिवार को चित्रित किया है - "छोटा-सा घर है। दो गोठ नीचे हैं। एक म. भैंस रहती है, दूसरे म. बैल। ऊपर एक कमरा रसोई का है, एक बाहर का और दिनों आनंदी, कुरी और किसनिया बहार के बड़े कमरे म. सोते थे, ललिता अंदर रसोईवाले कमरे म. सोती थी।"[8] इसी तरह बटरोही ने भी अपनी कहानी 'कहीं दूर जब दिन ढल जाए' म. बसोली गाँव म. स्थित बुआ के घर का वर्णन किया है- "जिस कमरे म. बैठा था, वह 'चाख' कहलाता था। उसी के भीतर का एक बड़ा कमरा बाकी तमाम कामों के लिए मुकर्रर था। दक्षिणी कोना कुत्ते का था, जो दरअसल एक भरा-पूरा 'स्टोर' था। बाँस, निंगाल और गेहूँ के डंठलों से बने अनेक छोटे-बड़े टोकरे थे, जिनम. अनाज रखा गया था और इन्हीं के बीच कहीं कुत्ते ने अपने लिए जगह बना ली थी।"[9] देखा जा सकता है कि निम्नस्तर पर जीवन बसर करने वाली ग्रामीण जनता प्रातःकाल से ही अपनी दिनचर्या शुरू करती है। गाँवों म. रहने वाले लोग किस प्रकार अपने दिनचर्या की शुरुआत करते हैं उसका यथार्थ चित्रण शैलेश मटियानी ने अपनी अन्य कहानी 'कुसुमी' म. इस प्रकार किया है - "कुसुमी को केशरसिंह के साथ ही खेतों पर डलिया फोड़ने, खाद फैलाने जाना है। दोपहर की रसोई के लिए चावल कूटने को कुसुमी उठी थी। तब दिशा भी नहीं खुली थी। मशाल जलाकर धान कूटे थे उसने। धान कूटने के बाद गाय-भैंस का दूध लगाकर और चाय पीकर गोठों की सफाई करते-करते कुसुमी के माथे पर भोर की धूप उतर आई।"[10] वस्तुतः "केशरसिंह भी, खेत जोतने को जाने की तैयारी म., अपने हल-जुए को ठीक कर रहा था। घर के चबूतरे पर बैठा था। कुसुमी गोठ की खाद एक डलिया म. भर चुकी थी। डलिया काफी भारी हो गई थी और कुसुमी उसे अपने सिर तक उठा नहीं पा रही थी।"[11]

ग्रामीण समाज अथवा किसानी समाज म. बच्चे अल्प आयु से ही अपने पूर्वजों की परंपरा से जुड़ना चाहते हैं, उनके साथ कदम से कदम मिलाकर जल्द ही अपनी परंपरा को समझना चाहते हैं। लेकिन, वर्तमान पीढ़ी ग्रामीण जीवन एवं कृषि संस्कृति या गंवारू कहलाने को शर्म की बात समझती है। भले ही वे बेरोजगार रह., लेकिन उन्ह. अपनी जड़ों की ओर लौटना मंजूर नहीं है। समकालीन कथाकार पंकज बिष्ट की कहानी 'हल' म. शिबिया एक ऐसा ही पात्र है जो कम उम्र म. ही परिवार का मुखिया हो गया था - "दो साल पहले शिबिया ने मामा उम्मीद सिंह से हल बाहना सीखा था और तब सबकुछ खेल-खेल म. ही हो गया था। उसी दिन शिबिया ने मुश्किल से किसी तरह दो-तीन चीरे मारे थे और शाम तक उसके छोटे-छोटे हाथों म. डंफू जैसे छाले पड़ गए थे, पर अगले साल जब वह भागुली का हल का काम निबटाने आया था तो अगली सुबह शिबिया उसके उठने से पहले ही बैल लेकर निकल चुका था और जब वह पहुँचा, आधा खेत बाह चुका था। उसने दूर से ही देखा पतला-दुबला मरियल-सा लड़का जिसका कद उठ नहीं पा रहा था, बैलों की तो बात रही दूर हल के मूठ के पीछे ही छिप गया था, फिर भी न जाने कैसे और कब, बैल साधना सीख गया था।"[12]

कृषि समाज म. लोग अपने बच्चों को बचपन से ही खेती और अन्य कामों म. लगाने लगते हैं। वो सोचते हैं कि अभी से सीखेगा तभी तो आगे चलकर काम संभालेगा। विद्यासागर नौटियाल की 'भैंस का कट्या' कहानी म. आठ वर्ष के गबलू को देखा जा सकता है कि वह दिनभर किसी न किसी काम म. व्यस्त है - "उठते ही उसे गाय दे दी जाती थी, जिसे लेकर वह चराने चला जाता। यदि कभी देने म. देरी हुई तो माँ-बाप उसे और काम दे देते थे, जैसे किसी डोम को बुला लाना, पंडित के घर जाकर पूर्णमासी के दिन का पता लगाना, किसी के घर उधार आटा वापस कर आना और किसी पड़ोसी का कोई बर्तन लौटा आना। गबलू जानता था कि उठते ही उसे रात तक म. व्यस्त रहना पड़ेगा इसलिए वह भरसक देर से ही उठता था।"[13] समग्रतः कहा जा सकता है कि बचपन म. जिस प्रकार एक बच्चा अपनी माँ पर पूर्णतः निर्भर होता है उसकी तरह कृषि समाज म. एक किसान खेती पर निर्भर रहता है।

कृषक संस्कृति म. चित्रित लोक कला

लोक कलाएँ पारंपरिक ज्ञान और रीति-रिवाजों के संरक्षण म. महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा लोक-संस्कृति को स्पष्टतः किसी भी देश या क्षेत्र विशेष के लोक जीवन और लोक कलाओं म. देखा जा सकता है। लोक कलाओं का सीधा संबंध लोक-जीवन और लोक संस्कृति से होता है और यही कारण है कि किसी भी प्रदेश की जनता के जीवन और संस्कृति की स्पष्ट झलक वहाँ की लोक कथाओं म. मिलती है। समकालीन हिंदी कहानियों म. कृष्णा अग्निहोत्री की 'सर्पदंश' और पंकज बिष्ट की 'हल' कहानियों म.

'कूडियाट्टम' और 'रामलीला' का जिक्र किया गया है। 'कूडियाट्टम' केरल के मंदिरों म. त्योहारों के अवसर पर प्रदर्शित एक गीत नृत्य प्रधान लोकनाट्य रूप है, जिसम. लोक कथाओं पर आधारित नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं। 'रामलीला' उत्तरी भारत म. खेला जाने वाला राम के चरित पर आधारित नाटक है, जो अनेक शैलियों म. प्रस्तुत की जाती हैं। केरल के कूडियाट्टम के माध्यम से भी रामकथा को प्रस्तुत किया जाता रहा है। क्षेत्र विशेष के बदलते ही रामकथा कहने की शैलियों म. भी बदलाव देखा जा सकता है।

भारत म. जब फसल. काटी जाती हैं तब भी लोक कलाओं का सुंदर प्रस्तुतीकरण देखने को मिलता है। हमारे देश म. फसल. जब काटी जाती है तो उससे संबंधित कई त्यौहार एवं नृत्य प्रसिद्ध हैं, यथा- पंजाब म. फसलों के काटे जाने पर बैशाखी मनाया जाता है और पारंपरिक नृत्य किया जाता है। वहीं, बिहार म. फसलों के काटे जाने पर चौयती, ओडिशा म. बिहू, उत्तराखंड म. ओणम आदि त्यौहार एवं पारंपरिक नृत्य करते हुए लोग जश्न मनाते हैं।

कृषक संस्कृति म. व्याप्त लोकगीत

लोकगीतों से लोक की सहज अनुभूति परिलक्षित होती है। लोकगीत की उत्पत्ति किसी एक व्यक्ति विशेष की अनुभूति पर आधारित नहीं होती बल्कि समस्त लोक की अनुभूति पर आधारित होती है। लोकगीतों की विशेषता है- भावनात्मकता, संगीतात्मकता, सरलता एवं गेयता। मानव हृदय के सहज उद्गार हैं लोकगीत, जो लोक की परिस्थितियों के अनुरूप अभिव्यक्त किया जाता है। जैसे सुख म. उल्लासित होकर और दुःख म. दुखी होकर समय-समय पर गाये जाते हैं तथा इन गीतों की मौखिक परंपरा होती है।

लोकगीतों के बारे म. ओमप्रकाश गर्ग लिखते हैं, "लोकगीत लोकमानस के आत्मानंद की कष्ट एवं पीड़ाओं की, सुखों-दुखों की, समस्याओं, कठिनाइयों की, परस्पर सहयोग-साहचर्य की युगों-युगों की भूगर्त और झेली हुई अनुभवजन्य अभिव्यक्तियाँ हैं। अतः उनकी आस्था है कि मानव हृदय की विविध अनुभूतियों की गेय अभिव्यक्ति ही लोकगीत है जो अतिप्राचीन काल से ही अपना स्रोत प्रवाहित किए हुए हैं।"[14] इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों म. भी लोक जीवन और लोक संस्कृति के साथ लोकगीतों का बहुत प्रयोग हुआ है। शैलेश मटियानी की कहानी 'कुसुमी' म. श्रम परिहार के तौर पर गाये जाने वाले गीत का जिक्र हुआ है- "चल सुसरी, तेरा यार मर जावे, जिसका सुमिरन करती हुई तू बेर-बेर सड़क म. खड़ी हो जाती है टूटे-टूटे अरे, जोबन को दिन तेरो जाण लाग्यो...।"[15]

अंततः कहा जाए तो इक्कीसवीं सदी की कहानियों म. लोक चेतना का साहित्य विद्यमान है, जो कृषक संस्कृति को तो व्यक्त करता ही है, वहीं नवउपनिवेशवादी-भोग संस्कृति का जिक्र भी करती हैं। तकनीक की रफ्तार पकड़े जिंदगियाँ किस प्रकार दौड़ी जा रही हैं उनके बीच म. कहीं-कहीं लोक संस्कृति भी बची है। लेकिन, कब तक यह विचारणीय विषय है। इक्कीसवीं सदी म. लेखन करते हुए भी लोक संस्कृति को कायम रखने का प्रयास सरहानीय है। यह एक प्रयास है जिसके जरिए हम अपनी जड़ों की ओर लौट सकते हैं और आज की परिस्थितियों को भी उसम. समाहित कर सकते हैं।

संदर्भ

1. लोक साहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. श्रीराम शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, संस्करण 1973, पृ. 4
2. लोकसिद्धांत, (भारतीय लोक संस्कृति का आधार, लक्ष्मीधर वाजपेयी), सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग, पृ. 112
3. लोक संस्कृति एवं साहित्य का वर्तमान स्वरूप, संपादन- डॉ. अल्पना सिंह, वांग्मय पुस्तक, अलीगढ़, संस्करण 2013, पृ. 147
4. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास, संपादक- महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण 1960, पृ. 4
5. प्रतिरोध की कहानियाँ, संपादन- अरविंद कुमार, ओम पब्लिकेशन, संस्करण 2016, पृ. 244
6. प्रतिरोध की कहानियाँ, संपादन- अरविंद कुमार, ओम पब्लिकेशन, संस्करण 2016, पृ. 245
7. कथादेश (किसान जीवन का यथार्थ : एक फोकस), अंक-मई 2012, पृ. 109
8. पाप-मुक्ति तथा अन्य कहानियाँ, शैलेश मटियानी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ. 109
9. इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 24
10. पाप-मुक्ति तथा अन्य कहानियाँ, शैलेश मटियानी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ. 67
11. वही, पृ. 67
12. इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 231
13. प्रतिरोध की कहानियाँ, संपादन- अरविंद कुमार, ओम पब्लिकेशन, संस्करण 2016, पृ. 205
14. परंपरा, इतिहासबोध और संस्कृति, श्यामचरण दूबे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1991, पृ. 98
15. पाप-मुक्ति तथा अन्य कहानियाँ, शैलेश मटियानी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ. 26

जितेंद्र कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भक्तिकाल : आधुनिकता के आईने में

–डॉ. राजकुमार राजन

मध्यकालीनता और आधुनिकता समकालीन दौर में विमर्श के केंद्र में है। यह विमर्श बौद्धिक चेतना से विकसित हुई है। ज्ञान और बुद्धि तर्कशक्ति को विकसित करती है। भारतीय सभ्यता अपने वर्तमान संदर्भ में परम्परा और आधुनिकता का संतुलन है। वैश्विक परिदृश्य में जैसे-जैसे सामाजिक परिवर्तन हुए, वैसे ही हमारी संस्कृति में भी बुनियादी परिवर्तन का संघर्ष का परिवर्तनकारी दौर चलता रहा है। भारत विविधताओं का देश है। यह विविधता एक बड़ी क्रांति की चेतना को रोकता है। भारतीय संस्कृति समन्वय और सामंजस्य का अद्‌भुत स्रोत है। भक्तिकाव्य का महत्त्वपूर्ण हिस्सा मध्यकालीनता के हिस्से में है। मध्यकालीनता के केंद्र में विश्वास है, जबकि आधुनिकता तर्क से संबंध रखता है। तर्क और विश्वास दोनों एक-दूसरे का विपरार्थक है। तर्क आधुनिकता का पर्याय है, जबकि मध्यकालीन बोध में विश्वास की अनिवार्यता है। भक्तिकाव्य 'भक्ति' से संचालित है। मध्यकाल के भक्त कवियों में तुलसीदास की दृष्टि 'भक्ति' से संचालित है। मध्यकाल के भक्त कवियों में तुलसीदास की दृष्टि में 'भक्ति' की उपयोगिता उसकी समानता में है, जबकि सामाजिक मापदंड में यथास्थितिवादी दृष्टि है। कबीर के काव्यों में भक्ति और सामाजिक मापदंड में असमानता नहीं है।

आधुनिकता के केंद्र में 'ज्ञान' महत्त्वपूर्ण है। यहाँ 'ज्ञान ही शक्ति है' के रूप में विमर्श प्रारंभ हो जाता है। भक्तिकाल में 'ज्ञानाश्रयी परम्परा' का बोध निर्गुणकाव्य में ही उपलब्ध है। आधुनिकता की सैद्धान्तिकी, भक्तिकाव्य के निर्गुणधारा से संबंधित दिखता है। निर्गुणधारा कवियों में कबीर के काव्यों में जो 'तर्क एवं ज्ञान' की दृष्टि है, वह आधुनिकतवादी वैचारिकी में संलग्न है।

आधुनिकता 'वैज्ञानिकता' का पर्याय है। आधुनिकता परम्परा के उन्हीं बातों से सहमति दर्ज करता है, जिसमें तर्क, बुद्धि एवं वैज्ञानिकता हो। आधुनिकता विज्ञान, तर्कवाद, औद्योगिकरण, शहरीकरण और व्यक्तिवाद से संचालित होता है। यहाँ हम आधुनिकता की वैज्ञानिकता और तर्कवाद की दृष्टि से भक्तिकाल के निर्गुण काव्यधारा को समझने का प्रयास करेंगे।

मध्यकालीन भक्तिकाव्य-आन्दोलन मूलतः सांस्कृतिक-धार्मिक आंदोलन है लेकिन मूलतः इसे हम धार्मिक आन्दोलन कह सकते हैं। भक्ति-आंदोलन भगवान विष्णु या उनके अवतारों की भक्ति की भी स्तुति का आंदोलन के रूप में परिभाषित होते रहे हैं। लेकिन धीरे-धीरे यह आंदोलन साधारण जन की व्यथा का आंदोलन उभरकर सामने आया। रामानुज ने भक्ति-आंदोलन को सर्वग्राह्य बनाने में अहम भूमिका निर्वाह की। 'भक्ति-आंदोलन' की गहराइयों को समझने के लिए 'मुक्तिबोध' की भक्तिकाव्य संबंधी दृष्टि को समझना जरूरी है। मुक्तिबोध कहते हैं। 'भक्ति-आंदोलन मूलतः उच्च वर्गों या ऊँची कही जाने वाली जातियों के खिलाफ निम्न वर्गों का विद्रोह है। मुक्तिबोध मूलतः भक्ति-आंदोलन को जातीय असमानता से जोड़कर देखते हैं। उनकी दृष्टि में निम्न कही जाने वाली जातियों को जो उत्पीड़न हो रहा था। उसके कारण भक्तिकाल का अभ्युदय हुआ है। मुक्तिबोध यहीं नहीं रूकते बल्कि ''मुक्तिबोध की तीसरी महत्त्वपूर्ण स्थापना यह है कि भक्ति-आंदोलन में उच्च वर्गों का प्रभाव शनैः-शनैः मजबूत होता गया और भक्ति-आंदोलन के बिखरने तथा अपना वास्तविक ताप खो देने का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है।''[1] भक्ति-आंदोलन को समझने का यह रिसर्च 'मुक्तिबोध' जैसे आधुनिकतावादी व्यक्तित्व ही कर सकता है। नहीं तो आलोचना के आदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो भक्तिकाव्य के शुरुआती रचनाओं को गंभीरता से लेते ही नहीं। मुक्तिबोध भक्तिकाव्य के आधुनिकतवादी आलोचक हैं। भक्तिकाल को आधुनिकतवादी दृष्टि से देखने, समझने की जरूरत है। भक्ति-आंदोलन जन-सामान्य से प्रारंभ हुआ, जो आंदोलन के रूप में असमानताओं के विरुद्ध था, 'मनुष्यता' उसकी केन्द्रीयता थी। भक्ति-आंदोलन को उच्चवर्गीय कवियों एवं आलोचकों ने अपनी वैचारिकी की तरह बना लिया और अपना प्रभुत्व स्थापित करते हुए एक नए मानदण्ड के सहारे 'तुलसीदास' को स्थापित करते हुए कबीर, रैदास, नामदेव, पीपा को हाशिए पर डाल दिया गया। आधुनिकता ने ऐसे हाशिए के कवियों को केंद्र में लाने की वैचारिकी गढ़ा। भक्तिकाव्य के सबके बड़े कवि 'कबीर' में

आधुनिकता जैसे प्रश्न आज के साहित्यिक पीढ़ियों में गूंजती है तो यह 'आधुनिकता' की ही देन है।

आज के दौर में 'कबीर की प्रासंगिकता' उनके मौलिक विचारों में है। जो उनके काव्य आज की संवैधानिक चुनौतियों का समाधान भी है। उनके काव्यों में जातिवाद, वर्गवाद, सम्प्रदायवाद, रूढ़िवाद और अंधविश्वास को खड़े चुनौती देती है। कबीर के काव्यों में सिर्फ चुनौती नहीं है बल्कि समाधान भी है। दरअसल कबीर उन परम्पराओं से टकराते हैं, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच दरार पैदा करती है। कबीर यथास्थितिवादी सोच के विरुद्ध थे, इसलिए वे सामाजिक परंपरागत ढाँचे के विरुद्ध क्रांति कर रहे थे। उन क्रांति के रास्ते में जो भी आए, उसकी अच्छी खबर कबीर ने अपनी कविताओं में ली है। इसलिए कबीर कहते हैं -

''कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ।''

कबीर तर्कवादी थे, ज्ञान एवं बुद्धि उनकी प्रेरणा थी, जिस सामाजिक मनःस्थिति से उनका निर्माण हुआ था, वहाँ असमानताओं की भी एक लम्बी फेहरिस्त थी। जो उनको सामाजिक विषमताओं को खत्म करने की बार-बार प्रेरणा देती थी। यह प्रेरणा ही उन्हें सामाजिक परिवर्त्तन करने की आत्मबल प्रदान करता था। इसलिए कबीर अपने काव्यों में आत्मबल और साहस पर बल देते हैं। आधुनिक समय में एक अंधी दौर की प्रतिस्पर्धा चल रही है। हर व्यक्ति वह सबकुछ प्राप्त कर लेना चाहता है, जो उसे तमाम भौतिकवादी सुख-सुविधाएँ दे सके। इस अंधी दौर में नैतिकता-अनैतिकताओं के बीच की दूरियाँ खत्म हो गई है। व्यक्ति किसी भी चीजों से संतुष्ट नहीं है, जिसको जो मिला, वही उसके लिए मूल्यहीन है। आधुनिकता एक ऐसे समाज का निर्माण कर रहा है, जो बहुत कुछ पा लेने की होड़ में बहुत कुछ खो जाने के भय को खत्म कर दिया है लेकिन कबीर के काव्यों में इन सब संकटों का समाधान है -

''साईं इतना दीजिए जामे कुटुम समाय।
आप न भूखा रहि सके, साधु न भूखा जाय।।''

अपनी सुविधाओं के लिए कबीर कभी भी किसी राजपरस्ती से समझौता नहीं किए, वे सामाजिक क्रांति करते हुए निर्भय से अपनी बातों को काव्यों में रचते हैं। उनकी निर्भीकता उनको महान कवियों की श्रेणी में लाता हैं ''वे सिर से पैर तक मस्त-मौला थे। मस्त-जो पुराने कृत्यों का हिसाब नहीं रखता, वर्तमान कर्मों को सर्वस्व नहीं समझता और भविष्य में सबकुछ झाड़-फटकार निकल जाता है।''[2] कबीर यथास्थितिवादियों को चुनौती देते हैं, तुम्हारा और मेरा मन एक समान नहीं हो सकता है क्योंकि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह वह अपनी आँखों से देखकर और महसूस करके कह रहा हूँ, जबकि तुम जो परम्परा से चली आ रही है, उन बातों को ही सिद्ध कर रहे हो। इसलिए तुम्हारा और मेरा मन तो एक समान हो ही नहीं सकता। कबीर और रैदास के सामाजिक, धार्मिक चिंतन में छुआछूत, जाँति-पाति का विरोध, रूढ़िवाद का विरोध, अंधविश्वास का विरोध, उस दौर के क्रांति का आग़ाज था। जिसकी धमक आज भी महसूस किया जा सकता है। कबीर अपने समय के बड़े कवि हैं और भविष्य की भयावहता को पकड़ लेने की उनकी क्षमता उन्हें 'महान सामाजिक दार्शनिक' भी बनाता है। कबीर के चिंतन में 'मानवतावादी' दृष्टि है। इसी दृष्टि के कारण वे 'प्रेम' को सर्वोपरि मानते हैं। 'प्रेम' उनका आदर्श शब्द हैं, जो वर्तमान चुनौतियों का समाधान भी है। जहाँ प्रेम है, वहाँ समस्या नहीं, शांति और सौहार्द्र प्रेम के कोख से निकला हुआ भाव है। आज के दौर में शांति और सौहार्द्र की सबसे ज्यादा अनिवार्यता महसूस की जा रही है। यहाँ कबीर के विचार ही समाधान हैं। 'गोपेश्वर सिंह' अपनी पुस्तक 'साहित्य से संवाद' में कबीर के रहस्यवाद पर विचार करते हुए लिखते हैं, ''कबीर के रहस्यवाद...। भौतिक एवं आध्यात्मिक अधिकारों से वंचित सामाजिक रूप से अपमानित-प्रताड़ित जनों के लिए वैकल्पिक संसार रचने का स्वप्न है।''[3] कबीर समाज सापेक्ष चिंतक हैं, उनका रहस्यवाद सामाजिक एवं आध्यात्मिकता से जुड़े हैं। जिनमें आधुनिकता प्रहरी के समान है।

भक्तिकाल को आधुनिकता के आइने से देखने के क्रम में सगुण भक्ति के महान कवि 'सूरदास' को याद करना स्वाभाविक है। सूरदास की भक्ति 'सख्य भक्ति' थी। सखा, मित्रता, प्रेम, भजन कीर्तन, गायन ये सभी मनुष्यता के आधार हैं। सूरदास की भक्ति मानवतावादी है। सखा और मित्रता समानता का पर्याय है। समानता उनकी भक्ति की मूल प्रवृत्ति है, यों तो भक्तिकाल ईश्वर की भक्ति में समानता की भाव का आन्दोलन है। लेकिन कुछ कवियों ने सामाजिक दर्शन में असमानताओं को सर्वोपरि माना जबकि सूरदास अपने बंद आँखों से कृष्णमय भक्ति द्वारा एक ऐसे भक्ति का दर्शन दिये, जो मनोरंजक भक्ति 'मानवतावाद' के पर्याय हो गया। यद्यपि सूरदास की प्रवृत्ति वात्सल्य और श्रृंगार में अधिक रही है। सूरदास की बाल लीलाएँ 'वैश्विक बाल लीलाएँ' की समानार्थी है। ऐसी अद्भूत और जीवंत बाल लीलाएँ दुनियाँ के किसी साहित्य में उपलब्ध नहीं है। जैसी सूरदास के काव्यों में है। सूर के कुछ पद ऐसे हैं, जो आज भी जिसका पठन करने से अपना बचपन याद आने लगते हैं। बालपन के ये शब्द मन को मोहित कर लेता है।

''मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो
मो सों कहत मोल को लीन्हों-तू जसुमति कब जायो।।''

सूरदास की भक्ति की विशिष्टता सख्य भाव में है।

यह सख्य भाव का वृहद समाज पारिवारिक जीवन से है। सूर पारिवारिक जीवन में हो रहे, घटनाओं, स्थितियों और उतार-चढ़ाव के मानस को अंकित करने वाले कवि हैं। उनके पारिवारिक केंद्र में नंद, यशोदा, कृष्ण और बलराम हैं। दूसरी तरफ वासुदेव और देवकी हैं। इन्हीं चरित्रों के मध्य सूर काव्यों का सृजन करते हैं। ''जीवन के प्रति अनुराग जगाना परिवार के भावात्मक आकर्षणों का उद्घाटन करके ही संभव था।''[4]

सूरदास के काव्यों में उद्धव-गोपी संवाद बेहद रोचक प्रसंग है। उद्धव ने गोपियों से कृष्ण को भूलकर निराकार ब्रह्म की उपासना करने की सलाह देते हैं। उद्धव जो अपने को अत्यंत ज्ञानी समझते थे, गोपियों के उत्तर ने उद्धव को बार-बार निरूत्तर करते रहना पड़ा। उद्धव को गोपियों व्यापारी तक कह डाली।

''आयो घोष बड़ो व्यापारी।
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी।।''

सूर के कुछ पद तो अनायास ही उस प्रेम की याद दिलाते हैं, जो प्रेम आधुनिक समय के चुनौतियों का समाधान हो सकता है। भक्तिकाव्य में अलौकिकता से लौकिकता का प्रेम आधुनिकता का पर्याय परिलक्षित होता है। भक्तिकाल के अधिकांश कवियों ने प्रेम को सबसे बड़ा पुरुषार्थ कहा है। कबीर ने तो सारे पोथी ज्ञान से प्रेम के ढाई अक्षरों में नाप देते हैं -

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोइ।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होई।।''

भक्तिकाल के कवियों के लिए 'प्रेम' आदि से लेकर आधुनिकता की चुनौतियों का समाधान है। 'प्रेम' वर्तमान चुनौतियों का समाधान भी है और यह 'प्रेम' भक्तिकाल का प्राणतत्त्व है।

भक्तिकाल का साहित्य, आंदोलन से उपजा साहित्य है। तुलसीदास को ग्रियर्सन ने समन्वय के सबसे बड़े कवि के रूप में उद्धृत करते हैं। वे एक तरफ जहाँ अपने विचारों, काव्यों में यथास्थितिवादी, वर्ण-व्यवस्था के समर्थक लगते हैं, दूसरी तरफ बहुत सारे उदाहरणों के द्वारा वे उन मिथकों को तोड़ते भी हैं। भक्तिकाल के लगभग सभी कवियों ने नारी के अधिकार की बात करने में संकोच जाहिर किया है, वहाँ तुलसीदास की कुछ पंक्तियों नारी की पराधीनता पर चिंता जाहिर करते हैं।

''कत विधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।''

पराधीन व्यक्ति को कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है, पराधीनता एक तरह का अभिशाप का पर्याय है। पराधीनता सिर्फ मानवीय ही नहीं होता बल्कि यह गैर मानवीय जीव-जंतुओं के लिए भी घृणास्पद है। दूसरों के अधीन रहकर कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। वह चाहें स्त्रियों ही क्यों नहीं हो। आधुनिकता में 'स्वतंत्रता' का विशेष महत्त्व है। आधुनिकता का पर्याय स्वतंत्रता है। आप स्वतंत्र है, आपके विचार स्वतंत्र हैं, आप पराधीन नहीं हैं, इसका तात्पर्य ही होता है, आप आधुनिक हैं। आप आधुनिकता में जीवन-यापन कर रहे हैं। तुलसीदास के काव्यों में आधुनिक भाव-बोध की बहुत-सारे संगतियाँ विद्यमान हैं, लेकिन कुछ अंतर्विरोध भी हैं, जिसको लोकधर्मी आलोचक चौथी राम यादव उद्धृत करते हैं, ''भक्ति के क्षेत्र में जाति-पाँति तो व्यर्थ है, लेकिन सामाजिक जीवन में जाति-पाँति के बंधन को मानना ही पड़ेगा। यह जो उनका दर्शन है, जिसे मुक्तिबोध ने रेखांकित किया कि सामाजिक जीवन में जाति-पाँति के पक्के समर्थक थे।''[5]

कबीर, रैदास और तुलसी के काव्य-दर्शन में भक्ति एवं सामाजिक दर्शन लेकर एक बहुत गहरी डिबेट है। लेकिन फिर भी आज जितने भी सामाजिक परिवर्तन आंदोलन हो रहे हैं, ये सब कबीर से प्रेरणा लेते हैं। क्योंकि कबीर के काव्य में जो सत्ता से प्रतिरोध है, यह स्वयं में परिवर्तन के कई विकल्प प्रस्तुत करते हैं।

भक्तिकाल को यदि हम आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने का प्रयास करते हैं, तो अभी अनुसंधान के लिए एक व्यापक क्षेत्र बचा है, जिस पर रिसर्च किया जाना बाकी है।

संदर्भ

1. भक्ति-आन्दोलन और भक्ति-काव्य, शिवकुमार मिश्र, पृ. 22.
2. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 126
3. साहित्य से संवाद - गोपेश्वर सिंह, पृ. 35
4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 45
5. बात कहूँ मैं खरी खरी, सं. धर्मवीर यादव गगन, पृ. 84.

डॉ. राजकुमार राजन
एसोसिएट प्रोफेसर
शहीद भगत सिंह कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

'पुनर्नवा' उपन्यास में संस्कृत ग्रंथों के संदर्भ

–डॉ. सव्यसाची

'पुनर्नवा' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का तीसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसमें द्विवेदी जी ने गुप्तकाल को कथा का मुख्य आधार बनाया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिलों में लोकजीवन में 'लोरिक' की कथा प्रचुरता में मिलती है, जिन्हें मुल्ला दाउद ने अपनी रचना 'चन्दायन' में स्थान दिया हैं। द्विवेदी जी के उपन्यास का आधार यही चन्दायन है।

इस उपन्यास में कुछ पात्र इतिहास से, कुछ लोक-कथाओं से तथा कुछ कल्पित है। यज्ञमेन, आरशिव, समुद्रगुप्त, रुद्रसेन, चण्डसेन इत्यादि ऐतिहासिक पात्र है। आर्यक श्यामरूप, मृणाल, चन्द्रा, मुमेरे काका चन्द्रमौलि इत्यादि कल्पित पात्र हैं। द्विवेदी जी ने काल्पनिक घटनाओं को उपन्यास में इतनी कुशलता से पिरोया है कि कहीं भी ये इतिहास को काटती नजर नहीं आती।

'पुनर्नवा', जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है पुरातन को पुनः नवीन करना। द्विवेदी जी की शब्दावली में यह बासी को ताजा करना है। उन्होंने शुरू में कह दिया है कि ''यदि निरूतर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही अपने साथ धर्म को भी तोड़ देगी। 'द्र' परन्तु उपन्यास का नायक गोपाल आर्यक व्यवस्थाओं को सुधारने में सफल नहीं हुआ। वह युद्ध-वीर, साहसी, संयमी सब कुछ है किन्तु लोकापवाद से डर जाता है। उसने वेश्या-पुत्री मृणाल मंजरी से विवाह कर सामाजिक प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। वही चन्द्रा के प्रसंग में लोकापवाद से भागते रहना उसकी कायरता का द्योतक है। इस प्रकार आर्यक के माध्यम से द्विवेदी जी समाज में व्याप्त सड़ी-गली परम्परा और स्वस्थ प्रगतिशीलता का संघर्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं।

उपन्यास में कथा के विभिन्न अंश अलग-अलग स्रोतों से एकत्रित किए गये हैं। इसमें कालिदास और शूद्रक, लोरिक, चन्दा जैसे उपाख्यान से सामग्री को इकट्ठा किया गया है। नगरश्री मंजुला का आचार्य देवरात के आश्रम में आना तथा देवरात को अपने घर आमंत्रित करना, देवरात का यह कहना कि अवसर आने पर तुम्हारी कामना पूरी होगी, महामारी में मंजुला के घर पहुँचना और यह कहना कि देवी तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार कर आया हूँ, कहकर पानी देने का प्रसंग टैगोर की 'अभिसार' कविता की याद दिलाता है। उसी प्रकार उपन्यास के चौदहवें पन्द्रहवें उच्छ्वास में बसन्तसेना, चारुदत्त, मदनिका की कथा शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' की याद दिलाती है।

इस प्रकार आचार्य द्विवेदी जी की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें वेद-व्यास, कालिदास, बाणभट्ट, शूद्रक आदि के साहित्य के न जाने कितने स्रोत प्रवाहित हैं। उनके उपन्यासों में उन कवियों के साहित्य से प्रेरित अनेक स्थल मिल जाते हैं। साथ ही 'लोरिकायन', 'चंदायन' से प्रेरित अनेक सूत्र हैं जो द्विवेदी जी के रचना-कौशल का सहयोग पाकर और भी व्यवस्थित हो गए हैं। द्विवेदी जी ने उपन्यास के उन सब रूपों से मिथकात्मक दृष्टि से ऐसे इतिहासपरक आख्यान की रचना की है कि पाठक चमत्कृत हो जाता है।

प्रायः इस उपन्यास को पढ़ने पर प्राचीन इतिहास का विद्यार्थी भी अचकचा जाएगा कि कहाँ शूद्रक का मृच्छकटिकम्, कहाँ कालिदास, कहाँ लोरिकायन के चंदा-लोरिक, कहाँ द्विवेदी जी के गाँव बलिया का दुबहेड़ और आस-पास की पुरानी जमीदारी हल्दी, और कहाँ पाटलिपुत्र, मथुरा और उज्जयिनी! पर द्विवेदी जी ने खूब जोड़ा, तीन-तीन क्या चार-चार शताब्दियों के इतिहास को सम्पिडित करके निचोड़ लिया और उसे बीस-पच्चीस नव सिरजे वर्षों के भाड़ में अंजुरी-अंजुरी बरका दिया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पुनर्नवा उपन्यास पर सर्वाधिक प्रभाव शूद्रक के मृच्छकटिकम् नाटक का पड़ा है। यह प्रभाव ठीक उसी तरह है जिस प्रकार 'रामशर्मन' कृत अध्यात्मरामायण का प्रभाव तुलसी के 'रामचरितमानस' पर है। पात्रसाम्य और एक सीमा तक घटना साम्य जैसा इन दोनों प्रन्थों में पाया जाता है, सम्भवतः वैसा ही साम्य पुनर्नवा और मृच्छकटिकम् में है।

'मृच्छकटिकम्' और 'पुनर्नवा' के पात्रों में पर्याप्त साम्य है। उस नाटक के पात्रों को द्विवेदी जी ने पुनर्नवा में उतार दिया है। पुरुषों में चारुदत्त रोहसेन आर्यक, शार्विलक, राजा, पालक, बौरक, मधुर, रेभिल आदि और स्त्रियों में धूता, वसंतसेना, मदनिका, रदनिका आदि मूलतः मृच्छकटिकम् के पात्र हैं। लेकिन पुनर्नवा में भी ये पात्र चरित्रादि गुणों के साथ ज्यों-का-त्यों आए हैं।

'मृच्छकटिकम्' और 'पुनर्नवा' में चारुदत्त और बसन्तसेना हू-ब-हू एक समान गुणों को, समान सम्बन्धों और समान अस्तित्व को लेकर सामने आते हैं।

संक्षेप में कहा जाए तो 'मृच्छकटिकम्' के उन सभी पात्रों की आधार भूमि को लेकर ही 'पुनर्नवा' की सृष्टि हुई है। पुनर्नवा में इन पात्रों के सम्बन्ध में जहाँ-जहाँ जो कथात्मक सूत्र आए हैं वे ठीक एक ही तरह से प्रस्तुत किए गये हैं।

'पुनर्नवा' में कवि चन्द्रमौलि को आचार्य द्विवेदी ने कालिदास के रूप में उतारा है। वहाँ चन्द्रमौलि जो कुछ भी कहते हैं वह कालिदास का काव्य है। जीवन और साहित्य से सम्बद्ध जो मान्यताएँ 'पुनर्नवा' में चन्द्रमौलि द्वारा व्यक्त हुई हैं वे सब कालिदास की मान्यताएँ हैं। वैसे भी द्विवेदी जी के साहित्य को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनको कालिदास का काव्य मानो रट-सा गया है। द्विवेदी जी के मस्तिष्क पर उस कवि के साहित्य का अमिट प्रभाव है और मूलतः उस प्रभाव के कारण कहीं-कहीं तो कालिदास के पूरे-पूरे श्लोकों के भाव, भाषान्तर से पुनर्नवा में उद्धृत है।

इस प्रकार द्विवेदी जी के उपन्यास 'पुनर्नवा' में आए इन संस्कृत कवियों के अन्बी की (संदर्भ) सायधी का यहाँ पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है जो कि इस शोध का मुख्य विषय है।

''पुनर्नवा' उपन्यास के द्वितीय अध्याय में उपन्यासकार ने मंजुला के सौन्दर्य चित्रण के लिए संदर्भ के रूप में कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के शकुन्तला के सौन्दर्य-चित्रण को ग्रहण किया है। मधुर आकृतियों के लिए सब कुछ मण्डनीय है।' कालिदास ने अपने नाटक में सौन्दर्य चित्रण के लिए कहा है- 'शैवाल जाल से अनुविद्ध होकर भी कमल पुष्प की शोभा कमनीय होती है।'

ठीक वैसा ही सौंदर्याकन लेखक ने 'पुनर्नवा' में मंजुला के लिए किया है- ''वह अभिमानिनी नगरश्री नगर की गलियों में चल पड़ी। पहनावे में सिर्फ एक स्वच्छ साड़ी थी। हाथ में एक सोने की चूड़ी, गले में एक सूत्र का हेमहार था।''

इसी क्रम में लेखक पुनः मंजुला के सौन्दर्यांकन के सम्बन्ध में कहता है-

''ऐसा जान पड़ता था कि शोभा ने ही वैराग्य धारण कर लिया है, कांति ने ही व्रतोद्यापन किया है, चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना ही धरती पर उतर आई है, पद्मन की चारुता ने ही धूल पर चलने का संकल्प किया है और रति ने ही उदास भाव ग्रहण करके धरती को धन्य किया है। निस्संदेह वह उस वेश में भी मनोहर लग रही थी। शैवाल जाल से अनुविद्ध होकर भी कमल पुष्प की शोभा कमनीय होती है, मेघों से आवृत्त चन्द्रमण्डल की शोभा भी रमणीय जान पड़ती है, मधुर आकृतियों के लिए सब-कुछ मण्डन-द्रव्य ही बन जाता है।''

उपर्युक्त संदर्भ जितना अधिक सार्थक शकुन्तला के सौन्दर्यांकन में है उतना ही अधिक सफल मंजुला के सौन्दर्य-चित्रण में भी है। उक्त संदर्भ की संगति उपन्यास में इतनी कुशलतापूर्वक बैठाई गई है कि देखते ही बनता है। दोनों ही नायिकाओं का वैराग्य रूप मण्डनीय है।

पाँचवें अध्याय में एक संदर्भ आया है जिसे लेखक ने चन्दनक के माध्यम से प्रस्तुत करवाया है। चन्दनक मृणाल-मंजरी को अकेली देखकर एक पन्त्र फेंकता है। पत्र के एक ओर लिखा हुआ था मृणाल मंजरी के योग्य-

'वाप्यां स्नाति पिचक्षणो द्विजवरः मूर्वोऽपि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नम्यते बर्हिणा।
ब्रह्माक्षत्रविशस्तरंति च यथा नावा तथैवेतरे
त्वं वापीव लतेव नौरिव जर्न वेश्यासि सर्वभज।।'

द्विज पण्डित मूरख शूद्र गंवार नहाते हैं, पापी में भेद कहाँ, वन फूली लता तन देती सभी को मयूर हो, काम हो खेद कहाँ!

निज गोद में लेती बिठा तरनी सभी जाति कुलीन कुजारज जो, तुम वापी-लता-तरनी-सम सेविका हो सबकी, सबको ही भजो।

उपर्युक्त संदर्भ 'मृच्छकटिकम्' का है। मृच्छकटिकम् में यह संदर्भ विट के माध्यम से प्रगट किया गया है जिसे वह बसन्तसेना के लिए प्रयुक्त करता है। जबकि 'पुनर्नवा' उपन्यास में यह संदर्भ बन्दनक के माध्यम (पत्र द्वारा) से मृणाल मंजरी के लिए प्रयोग में लाया गया है। यद्यपि दोनों प्रसंगों में स्थितियाँ बिल्कुल अलग हैं किन्तु यह लेखक की लेखनी का ही जादू है कि यह संदर्भ कहीं से भी असंगत प्रतीत नहीं होता और ऐसा लगता है कि यह कथन सिर्फ मृणाल-मंजरी के लिए ही प्रयोग में लाया गया है, कहीं अन्यत्र से नहीं लिया गया है।

छठे अध्याय में आया हुआ संदर्भ 'विच्छित्तिशेषः सुरसुन्दरीणाम्' 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का है, जिसे देवरात के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मंजुला के पत्र को देखकर देवरात को अनुभूति होती है-'सारा पत्र स्याही को ही काजल बनाकर लिखा गया था। देवरात का हृदय बुरी तरह से धड़कने लगा और उनके मुख से अनायास ही निकल पड़ा- 'विच्छित्ति शेषैः ...। सुर-सुन्दरियों के प्रसाधन के बाद बचे हुए सिंगारदान के रंग से! तो मंजुला ने अपने

सिंगारदान की सबसे महार्घ और सबसे मोहन प्रसाधन सामग्री से यह पत्र लिखा है।'' अनुभूति का यह उदाहरण यहाँ पर बड़ा ही सटीक बन गया है।

उपन्यास के नौवें अध्याय में एक संदर्भ आया है जो 'शूद्रक' विरचित 'मृच्छकटिकम्' का है। 'त्रेताहत सर्वस्वः पावर पतनाच्च शोषित-शरीरः ।

नर्दित दर्शित मार्गः कटेन विनिपातितो याभि।'

जिस प्रकार 'मृच्छकटिकम्' में माथुर और दर्दुरक नामक जुआरी आपस में वाद-विवाद करते हैं उसी प्रकार उपन्यास में भी। या स्पष्ट रूप में कहा जाय तो नाटक के उक्त संदर्भ को उपन्यासकार ने ज्यों-का-त्यों लाकर अपने औपन्यासिक प्रसंग में प्रस्तुत कर दिया है। यह संदर्भ यहाँ पर बड़ा ही सार्थक है।

इसी अध्याय में उक्त संदर्भ के पश्चात् पुनः ही एक और संदर्भ प्रस्तुत किया गया है-

द्रव्यंलब्धं यूतेनैव, दारा मित्रं घृतेनैव। दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव, सर्व नष्टं यूतेनैव।

उक्त संदर्भ भी 'शूद्रक' कृत 'मृच्छकटिकम्' का ही है। जुआरियों के इस कथा-प्रसंग में उपन्यासकार ने बड़ी ही चतुराई से युधिष्ठिर का नाम भी जोड़ दिया है। इस जुआ और जुआरियों के उद्धरण की सार्थकता इस बात में निहित है कि जुआरी, युधिष्ठिर आदि की चर्चा करते हुए उपन्यासकार का मूल उद्देश्य माँदी तक पहुँचकर उसकी चर्चा करवाना है कि जिस प्रकार युधिष्ठिर जुए में अपनी पत्नी को हार गए थे उसी प्रकार वह भी अपनी पत्नी (रदनिका) को हार चुका है और अब वह माँदी नामक लड़की को खरीदकर उसके साथ घर बसाना चाहता है- जुआरी बोला- 'श्रावस्ती में जुआ खेलकर बहुत जीता था, बहुत हारा भी था, युधिष्ठिर का चेला तो हूँ ही। उन्होंने द्रौपदी को दाँव पर रख दिया तो मैंने भी रदनिका को दाँव पर रख दिया। किसी तरह दस सुवर्ण इकट्ठा किया कि फिर से नया घर बसाऊँ। देखा, तीन गाड़ियाँ लादे कपोतक अपनी कमाई पर निकला है। उसका काम ही स्त्रियों का क्रय-विक्रय है। मैंने एक लड़की को खरीदना चाहा। नाम उसका माँदी था, बेहद सुन्दर थी।

ग्यारहवें अध्याय में आया हुआ संदर्भ उपन्यासकार ने चन्द्रमौलि नामक पात्र के माध्यम से प्रस्तुत कराया है-

'श्यामास्वंगं चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं।
वक्त्रच्छायां शशिनी शिखिनां बहंभारेषु केशान्।।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भू विलासान्।
हन्तैकत्र क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।।

हाय प्रिये, श्यामा लताओं में तुम्हारे अंग का सादृश्य मिल जाता है, चकित हरिणियों की दृष्टि में तुम्हारा दृष्टिपात दिख जाता है, मोरों के बर्हभार में तुम्हारे केशों की शोभा देखने को मिल जाती है पर हाय! कोपन-स्वभावे, तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर की शोभा का सा श्य एक जगह तो कहीं भी नहीं मिलता। उपर्युक्त संदर्भ कालिदास विरचित 'मेघदूत' का है, जिसे चन्द्रमौलि के माध्यम से प्रगट कराया गया है। क्योंकि उपन्यास में चन्द्रमौलि को कालिदास का ही अतिरूप माना गया है।

बारहवें अध्याय में आया हुआ संदर्भ 'न ययौ न तस्थी' कालिदास विरचित 'कुमारसम्भव' का है। 'कुमारसम्भव' में यह संदर्भ उस समय आया है जब पार्वती तपस्या कर रही होती हैं और उनके सामने अचानक शिव उपस्थित हो जाते हैं। पार्वती जड़वत्-सी हो जाती है, वह वहाँ से जाना चाहती श्री किन्तु जा नहीं सकी। उपन्यास में यह जड़वत स्थिति सुमेर काका की हो जाती है जब उन्हें मृणाल के प्रति चन्द्रा के हृदय की भावनाओं का ज्ञान होता है-'काका काठ की मूर्ति की तरह जैसे थे, वैसे ही बने रहे। न हिले, न बोले, न आगे बढ़े- न यी...। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों रहते हुए भी उपन्यासकार ने उक्त संदर्भ का सार्थक प्रयोग अपने कथा-प्रवाह में बड़ी ही कुशलतापूर्वक किया है।

उपन्यास के तेरहवें अध्याय में 'श्वेताश्वरोपनिषद्' का एक संदर्भ आया है-

रुद्र, यत्ते दक्षिणं मुखं तेन माँ पाहि नित्यम्।

'श्वेताश्वरोपनिषद्' के चतुर्थ अध्याय में वर्णित यह प्रार्थना का छंद है। हे रुद्र! तुम अजन्मा हो ऐसा समझकर कोई भयशील (व्यक्ति ही) आपकी शरण में आता है आपका जो दाहिना मुख है उसके द्वारा सदैव ही मेरी रक्षा करें।' यही संदर्भ 'पुनर्नवा' में उस समय प्रयोग में लाया गया है जब-'देवरात महाकाल के दरबार में पहुँचकर भी शांति नहीं पा सके, वे स्थिति की खोज में है। महाकाल के धावमान वेग से वे केवल खिंचे चले जा रहे हैं। फिर भी उनके भीतर चलते रहने वाले तूफान की गति में कोई कमी नहीं आ रही है। शांति चाहिए पर महाकाल देवता प्रचण्ड नर्तन में व्यायुत है। कोई प्रार्थना कारगर नहीं हो रही है वे केवल कातर भाव से पुकार सके रुद्र, यत्ते...

लेखक द्वारा प्रयुक्त किया गया उक्त संदर्भ 'पुनर्नवा' के उस प्रसंग में पूरी तरह सार्थक एवं सफल प्रयोग है।

इसी श्रृंखला में आगे चलकर एक और संदर्भ आया है जो 'कुमार सम्भव' का है-

'न सन्ति यथार्थविदः पिनाकिनः' उपन्यास में इसे किसी अज्ञात पात्र द्वारा प्रस्तुत करवाकर देवरात को सुनवा दिया गया है- ''मंदिर-द्वार से दूर कोई बड़ी ही मधुर वाणी में धीरे-धीरे गा रहा था। देवरात उस छन्दोबद्ध संगीत के अंतिम चरण को सुनकर चौंक पड़े। गाने वाला गा रहा था- न संति... (पिनाक धारण करने वाले देवता (शिव) के यथार्थ स्वरूप को जानने-समझने वाले नहीं हैं।''

इस प्रकार पार्वती-तपस्या के उक्त प्रसंग की संगति

अपने उपन्यास में बैठाने में लेखक को पूरी सफलता हासिल हुई है।

तेरहवें अध्याय में ही आया हुआ अगला संदर्भ भी कालिदास विरचित 'कुमारसम्भव' का हैं। जिसे किशोर गायक द्वारा प्रस्तुत किया गया है- 'कौन है यह किशोर गायक? कितनी मधुर वाणी में गा रहा है। कितनी तन्मयता के साथ! 'न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः'। शिव विश्वमूर्ति हैं उनके विश्वमूर्ति रूप की अवधारणा नहीं करनी चाहिए, सुनकर उनके चित्त को शांति मिली क्योंकि विश्वमूर्ति रूप की अवधारणा ही तो वे कर रहे थे।'' जो उन्हें नहीं करनी चाहिए। इस अभिव्यक्ति में लेखक ने पूरी तरह सफलता पाई है।

उपन्यास के चौदहवें अध्याय में एक संदर्भ आया है जिसे गुरुजी के माध्यम से प्रकट किया गया है। 'गुरु जी भाव-विह्वल होकर गा उठे थे' 'एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसम् आनम्य तत् पृथुशिरः स्वधिरूढ़ आद्यः ।। तन्मूर्धरत्ननिकर स्पर्शातिताम् पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्नन।' यह संदर्भ 'श्रीमद्भागवत् पुराण' का है। यह प्रसंग उस समय का है जब श्रीकृष्ण ने कालिय नाग के सहस्त्र फन पर नृत्य किया था। 'कलादिगुरु नृत्य कभी मथुरा की विशेषता माना जाता था भगवान श्रीकृष्ण ने कालिय नाग के समस्त फणों पर विकट नृत्य किया था।... वसन्त सेना ने भगवान कृष्ण बनकर उस विकट मनोहर नृत्य को उजागर किया था।'' कृष्ण के उस नृत्य प्रसंग को उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास 'पुनर्नवा' में बसन्त सेना के नृत्य के साथ जोड़ दिया है। जो अत्यन्त सार्थक सिद्ध हुआ है। उस सार्थकता का अनुमान तो स्वतः उपन्यासकार की निम्न पंक्तियों से हो जाता है- 'बसन्तसेना तो कृष्ण-मय हो गई थी' उसका भावानुप्रवेश बस देखने योग्य था।

सोलहवें अध्याय में आए हुए 'मनु स्मृति' के संदर्भ 'हृदयेनाभ्यनुज्ञातः' द्वारा धर्म के लिए हृदय पक्ष को ध्यान में रखने पर बल दिया गया है। 'आदि मनु ने धर्म के लिए हृदयप्रक्ष को ध्यान में रखने पर भी बल दिया था।'

उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में आया हुआ संदर्भ कालिदास विरचित 'कुमारसम्भव' का है। जिस प्रकार मदन-शर से बेधे गए शिव के गणों को एक ही इशारे में नन्दी ने चांचल्य से विरत होने का निर्देश दे दिया था-'मा चापलायेति गणान् व्यनैषीत्'। उसी प्रकार उपन्यास में मृणाल मंजरी की बवनाओं को जानकर चन्द्रा की यही स्थिति हो जाती ''चन्द्रा ऐसे स्तब्ध हो रही, जैसे काठ की शीना हो। ऐसा लगा कि उसके अन्तर्यामी ही निश्चेष्ट हो गए ही और उन्होंने उसके मन और इन्द्रिय के रूपस्त व्यापारों को किसी अज्ञात इशारे से रोक दिया है। में बैठाने में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उक्त संदर्भ की संगति अपने प्रसंग उन्नीसवें अध्याय में ही 'कुमारसम्भव' का ही एक और संदर्भ आया है-

'वासं वसाना तरुणार्करागम्' (तरुण सूर्य की कालिमा वाला वस्व) उपन्यास में इसे चन्द्रमौलि की रचना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ की प्रस्तुति उपन्यास में दिव्य द्युनिवाली संन्यासिनी के सौन्दर्य-चित्रण की समानता के लिए की गई है- 'उसकी दृष्टि दूर चबूतरे पर बैठी एक दिव्य द्युतिवाली संन्यासिनी की ओर गई... सारे मुख-मण्डल को घेरकर एक अपूर्व प्रभा-मण्डल स्पष्ट झलक रहा था। ललाट इतना उज्ज्वल था कि सोने के दर्पण का भ्रम होता था उसके परिधान में एक हल्के लाल रंग का कौशेय वस्व था- शरत्कालीन प्रभात की प्रथम किरणों के समान चमकीला। इस प्रकार लाल वस्त्र धारण करने वाली पार्वती का सौन्दर्य और लाल वस्त्र धारण करने वाली संन्यासिनी दोनों का सौन्दर्य नीर-क्षीर की भाँति उक्त संदर्भ में ऐसा समाहित हो गया है कि लगता ही नहीं कि यह अन्यत्र का संदर्भ है।

इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए उपन्यास के उन्नीसवें अध्याय में एक और संदर्भ आया है-

'दैवात किमपि न लब्धं, दृष्टिसुखं को निवारयति।' सूक्ति के रूप में प्रस्तुत किए गये इस संदर्भ को संन्यासिनी द्वारा प्रगट किया गया है। इसको बसन्तसेना के लिए प्रयुक्त किया गया है। बसन्तसेना को जो सम्मान दिया गया है उसका स्पष्टीकरण करते हुए संन्यासिनी कहती है कि बसन्तसेना का सम्मान एक छलावा है इसमें कोई सच्चाई नहीं है- 'यहाँ की नगरश्री बसन्तसेना है। सब लोग उसका सम्मान करते हैं, पर गणिका का सम्मान केवल छलना होता है। हृदय से उसे कोई मान नहीं देता, सब उससे पाने की आशा रखते हैं- दैवात किमपि... वाला भाव होता है। भाग्य के फेर से और कुछ नहीं मिला तो दृष्टि-सुख को कौन रोक सकता है। गणराज्य जब थे तब उन दिनों गणिका सारे गण की चुनी हुई रानी होती थी, परन्तु तब भी वह गण की साझे की सम्पत्ति मानी जाती थी, अब तो वह क्रय योग्य दासी बन गई है। नाम वही चला आ रहा है भावना बदल गई है।'

बाइसवें अध्याय में संस्कृत की ही एक सूक्ति को संदर्भ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ का प्रयोग देवरात के मन में प्रकाश, आत्मबल जाग्रत करने के परिप्रेक्ष्य में किया गया है- ''वेवरात कातर हो उठे।...दीर्घकाल से विस्मृत बाहुबल का अभिमान बाँध तोड़कर बाहर आना चाहता एक बड़ा-सा वस्व उठाकर हवा करने लगे। उनके मन में विचार भी तेजी से चल रहे थे और हाथ भी उतनी तेजी से हिल रहे थे। अचानक... वे अंदाजे से उधर बढ़े। पर वह उलझता ही राया। उन्होंने झटके से खीचा। उन्हें जान पड़ा कि किवाड़ भी खिंचे आ रहे हैं। उन्होंने और भी बल लगाया।... उलझा ही रहा मगर किवाड़ खुल गए। स्वच्छ वायु का एक झोंका आया और उनके मन और प्राणों

को जगा गया। दोनों किवाड़ों को खोलने पर हल्का-सा प्रकाश भी दिखाई दिया। सामने आँगन था। वे बाहर आ गए। 'हे प्रकाशपुंज, तमसो मा ज्योतिर्गमय।'

देवरात को अपार बल मिला। वे अनायास अपने दोनों साथियों को आँगन में ले आए। बाहर का द्वार बन्द था। चारो ओर टटोल-टटोल कर वे परखने लगे। अब उन्हें ऐसा लगने लगा... कोई उनसे करवा रहा है। ... उनका भाराक्रांत चित्त हल्का हो गया, बहुत हल्का।

'सामवेद' के उक्त संदर्भ-सूक्ति का प्रयोग यहाँ पर इतना सार्थक है कि देवरात तो अंधकार से प्रकाश की ओर आ ही गये उन्हें एक रास्ता सूझ गया, उनके भीतर आत्मबल का संचार हुआ ही साथ ही पाठकों के मन का भी अंधकार समाप्त हो गया जो कथा-प्रसंग उनके लिए रहस्य बना हुआ था वह गुत्थी सुलझ गयी कि दोनों मित्र कौन हैं। वस्तुतः वे दोनों माढ़व्य और चन्द्रमौलि हैं। उक्त मुक्ति संदर्भ का वर्णन 'बृहदारण्यक उपनिषद' में भी विस्तृत रूप में किया गया है।

उपन्यास के तीसवें अध्याय में उपन्यासकार ने एक बार फिर कालिदास की रचना को संदर्भ रूप में प्रस्तुत किया है। यह संदर्भ निम्न प्रसंग में समाहित है-'कुछ लोग इकट्ठे होकर किसी से कुछ सुन रहे थे। सुनने वाला बहुत मीठे स्वर में कुछ सुना रहा था। आर्यक ने सोचा इनकी तन्मयता भंग नहीं होनी चाहिए... सुनने की इच्छा से चुपचाप उधर ही बढ़ गया- अवश की भाँति।... प्रसंग पार्वती की तपस्या का था। शिव ब्रह्मचारी वेश में परीक्षा लेने आए थे। तपोनिरता पार्वती से कुशल-प्रश्न पूछ रहे थे, हे सुकुमारि, बड़ी कठोर तपस्या कर रही हो। शरीर का ध्यान तो रखती हो न? शारीरिक शक्ति की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए वही तो पहला धर्म-साधन है! ऐसा न करना कि कठोर तप के कारण यह सुकुमार शरीर ही टूट ही टूट जाए-

'अपि स्वशक्त्या तमसि प्रवर्तसे
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

कैसा कण्ठ है? कैसी मर्मभेदी अभिव्यक्ति है- शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्! आर्यक को लगा स्वर परिचित जान पड़ता है।... आर्यक सावधानी से सुनने लगा। यह तो चन्द्रमौलि कण्ठ है। आर्षक के प्रश्न का कैसा विलक्षण उत्तर है- शरीमाद्यं खलु धर्म साधनम्। शरीर अर्थात् आचरण पक्ष। बह चन्द्रमौलि के सामने जाने का प्रयत्न करने लगा। श्रोताओं में से किसी ने पहचान लिया। इन्द्रमौलि जैसे सोते से जागा। आर्यक को सामने देखकर चकित विस्मित ताकता रहा। आर्यक ने उसे आलिंगन गाढ़ में बाँध लिया।

'कुमारसम्भव' के इस संदर्भ को पुनर्नवा में चन्द्रमौलि के माध्यम से प्रस्तुत कराकर लेखक ने चन्द्रमौलि और आर्यक के मिलन का माध्यम बनाया है। शिव पार्वती तपस्या प्रसंग को कथा-प्रवाह में समाहित करने का लेखक का उद्देश्य चन्द्रमौलि और आर्यक को मिलवाना तो है ही शारीरिक क्षमता को प्रथम धर्म के रूप में स्थापित करना भी है। इस स्थापन में लेखक ने पूरी सफलता पाई है।

संदर्भ

1. वही
2. वही, अध्याय 30, पृष्ठ 343
3. कालिदास, कुमारसम्भव 5/78
4. कालिदास, कुमारसम्भव
5. पुनर्नवा : पृष्ठ भाग एवं अध्याय 15, पृष्ठ 187
6. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : सं. बादाम सिंह रावतः विद्यानिवास मिश्र के लेख से।
7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य भाषा और शैली : विशन कुमार शर्मा
8. सरसिजमनु मनुविद्धं शैवले नादिरम्यं मलिनमपि हिमांशोलक्ष्य लक्ष्मी तनोति इयर्माधक मनोज्ञा वल्कलेनादि तन्वी, किमिवहि मधुराणां मणनं नाकृतीनाम् कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/19
9. पुनर्नवा, अध्याय 2, पृष्ठ 21
10. वही
11. वही, अध्याय 5, पृष्ठ 52-53
12. शूद्रक : मृच्छकटिकम् 1/32
13. विच्छिन्ति शेषः सुरसुन्दरीणां, वर्णरमी कल्पलतांशुकेषु विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखान्ति
14. पुनर्नवा, अध्याय 6, पृष्ठ 59
15. शूद्रक : मृच्छकटिकम् 2/9
16. वही, 2/8
17. पुनर्नवा, अध्याय 9, पृष्ठ 100
18. वही, पृष्ठ 123-124
19. मेघदूत 46

डॉ. सव्यसाची
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
नेहरू ग्राम भारती
विश्वविद्यालय प्रयागराज

निष्ठा का सवाल उठाये अरसा गुजर गया !

–अनुज कुमार

शोध-सार

प्रसिद्ध आलोचक-विचारक और पत्रकार कँवल भारती जी दलित हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण हस्ती हैं। उनका पहला कविता संग्रह, 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?', 1996 में प्रकाशित हुआ था और इसमें निष्ठा के मुद्दे को संबोधित किया गया था। वे यह सवाल उस समाज में पूछ रहे थे जो लोकलुभावनवाद, राष्ट्रवाद, अधिनायकवाद और बहुसंख्यकवाद जैसे कारकों के कारण तेजी से बदल गया है। बदल रहा है। जाति-आधारित अत्याचारों की बढ़ती आवृत्ति से पता चलता है कि सत्ता कैसे उन हिंदुओं की कीमत पर ब्राह्मणवाद को बढ़ावा देती है, जो कुलीन जातियों से संबंधित नहीं हैं। कॉर्पोरेट और उच्च जाति समूहों के पक्ष में सत्ता-प्रचारक नीतियों में वृद्धि हुई है, जिससे हाशिये के समाज खुद को और अलग-थलग पा रहा है। कँवल भारती जी की कविताएँ साहित्य में चित्रित लगातार गिरते समाज की याद दिलाती हैं, जो साहित्य के प्रति अधिक समावेशी और आलोचनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता पर प्रकाश डालती हैं। कँवल भारती जी की कविता हमें आगाह करती हैं कि पतनोन्मुख समाज उस अभिशाप और असहायता की याद दिलाता है जिसका सामना दलित और अन्य हाशिये के समाज ऐसी स्थिति में करते हैं। कँवल भारती आत्म-सहानुभूति और स्वयं के दर्द का अनुभव करने के महत्व पर जोर देते हैं। दलित कविता जाति की वास्तविकता को प्रस्तुत करती है, जिसे समझना ऊँची जातियों के लिए कठिन है। 'मुर्दहिया' जैसी दलित आत्मकथाएँ पाठकों को सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक सीमाओं के कारण दुर्गम क्षेत्रों में यात्रा करने में मदद करती हैं। मलखान सिंह की कविता 'एक पूरा युग' और कँवल भारती की कविता 'जब तक व्यवस्था जीवित है' मानव जीवन में शोषण और गुलामी के दर्द को दर्शाती है। संस्कृति आधिपत्यवादी और बहुसंख्यकवादी है, जिसमें प्रमुख संस्कृतियाँ कमजोर संस्कृतियों पर हावी होती हैं या परिवर्तनों के साथ कमजोर संस्कृतियों को अवशोषित कर लेती हैं। भाषा प्रभुत्व बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य करती है और भाषा कभी-कभी अभिव्यक्ति में बाधा बन सकती है। किन्तु भाषा के माध्यम से ही स्वयं को समझने और अभिव्यक्त करके, पाठक एक आधिपत्यवादी और बहुसंख्यकवादी समाज की चुनौतियों से निपट सकते हैं। कँवल जी का यह काव्य-संग्रह इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रखर वैचारिक प्रतिबद्धता का दर्शन हमें इस संग्रह में मिलता है। यह दर्शन दलित-सौन्दर्यशास्त्र की कसौटी पर खरे उतरता है। कँवल जी के काव्यसंग्रह से गुजरते हुए हम समतामूलक समाज के सपने को जीते हैं, एक समानांतर विमर्श को देखते हैं जो किसी भी बहुसंख्यक संकल्पना को चुनौती दे रहा होता है। अंबेडकर की तरह उनमें भी राष्ट्र से प्रेम है। किन्तु यह प्रेम सवालों से भरे हुए हैं। ये सवाल भी इसलिए क्योंकि मनुष्य और उसकी गरिमा उनके लिए सबसे अव्वल है।

बीज शब्द : कँवल भारती, हिन्दू, हिन्दी साहित्य, रैदास, दलित, ब्राह्मणवाद, अंबेडकर, बाबा साहब अंबेडकर, झलकारी बाई, दलित कविता, हिन्दी कविता, चोमस्की, शम्बूक, सनातन, बुद्ध, कबीर, मुर्दहिया, निष्ठा, इतिहास

मूल आलेख

''यदि यह विधान लागू हो जाता
कि तुम्हारे जीवन का कोई मूल्य नहीं।
कोई भी कर सकता है तुम्हारा वध;
ले सकता है, तुमसे बेगार;
तुम्हारी स्त्री, बहिन और पुत्री के साथ,
कर सकता है बलात्कार;
जला सकता है घर-बार।
तब, तुम्हारी निष्ठा क्या होती?'' (पृ. 39-40)

प्रसिद्ध आलोचक-चिन्तक, पत्रकार कँवल भारती जी के बगैर दलित हिन्दी साहित्य की कल्पना अधूरी है। उनका पहला और एकमात्र काव्य-संग्रह 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?' 1996 में बोधिसत्व प्रकाशन से छपकर हमारे सामने आया। उपरोक्त कविता में कँवल भारती जी ने, कुछ स्थितियों का हवाला देते हुए निष्ठा की बात उठाई है। जो भी कविता पढ़ेगा वह कँवल जी की पक्षधरता को साफ समझ जाएगा। इस बीच बहुत सारा पानी बह चुका है। कई अलग-अलग कारणों से समाज तेजी से तब्दील हुआ है। अगर समाज, साहित्य में परिलक्षित होता है, तो हम कह सकते हैं कि धीरे-धीरे हम एक ऐसे समाज में तब्दील होते चले गए हैं जहाँ पॉपुलिज्म, राष्ट्रवाद, अधिनायकवाद और बहुसंख्यकवाद को ख़ास तवज्जो दी जाने लगी है। कुछ और बिन्दु जोड़ दें तो सत्ता द्वारा कॉर्पोरेट और उच्च जातियों के पक्ष को लाभ पहुंचाती नीतियों में इजाफा हुआ है। मौजूदा हुकूमत तो इस दावे का खंडन करती है कि वह केवल हिंदू और चंद अमीरों की समर्थक है। बल्कि हकीकत किसी दूसरे ढंगे से हमारे सामने मौजूद है। वर्तमान व्यवस्था में सिर्फ अल्पसंख्यक मुसलमानों और ईसाइयों को ही अलग नहीं किया जा रहा है। जाति-आधारित अत्याचारों की बढ़ती आवृत्ति दर्शाती है कि किस प्रकार सत्ता ब्राह्मणवाद को बढ़ावा देती है। यह उन हिंदुओं की कीमत पर होता है जो पारंपरिक जाति पदानुक्रम के अनुसार कुलीन जातियों से संबंधित नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, भारत में दलितों, महिलाओं और अन्य लोगों पर ब्राह्मणवादी नीतियों और रणनीतियों के प्रभाव को लेकर मुख्यधारा में बहुत काम विवेचना की गई है। पहले कानून मंत्री बी.आर. अंबेडकर की बात सच होती नजर आ रही है। उन्होंने लिखा था, ''अगर हिंदू राज हकीकत बन जाता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं, यह इस देश के लिए सबसे बड़ी आपदा होगी।" वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वही हो रहा जिसको लेकर बाबा साहब अंबेडकर ने आशंका जताई थी। अल्पसंख्यक विरोधी बयानबाजी का सामान्यीकरण, देश के आंतरिक और साथ ही बाहरी दुश्मनों द्वारा उत्पन्न आसन्न ख़तरे के नियमित और झूठे दावे। पक्षपातपूर्ण तथ्यों का भोंड़ा प्रदर्शन और एक उग्र सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हम सब अनुभव करने को बाध्य हैं। गाय की राजनीति का आलम यह कि इसका अधिकतम नुकसान दलितों और मुसलमानों को ही उठाना पड़ा है। सामाजिक, सांस्कृतिक अपमान के अलावा आर्थिक नुकसान भी उन्हें इस बीच अधिक झेलना पड़ा है। मवेशियों की बिक्री और ख़रीद के आरोपों पर हिंसा ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया है, जिससे आम तौर पर किसान और विशेष रूप से दलित प्रभावित हुए हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि कई दलित समूह गाय की खाल के प्रसंस्करण से संबंधित व्यवसायों में संलग्न हैं, जो बदले में उपभोक्ता और औद्योगिक वस्तुओं के निर्माण में जाता है। इसके अतिरिक्त, इस 'भावनात्मक' मुद्दे पर लिंचिंग के कई शिकार दलित थे। ऊना प्रकरण, जिसमें सात दलित पुरुषों को निर्वस्त्र कर पीटा गया, ने समुदाय में एक भयावह संदेश भेजा। उच्च वर्ग का खुला सामाजिक प्रभुत्व, कुछ एक के लिए तीव्र आर्थिक विकास के साथ-साथ गरीबी के सूचकांक पर लगातार गिरना, स्त्री-द्वेष और उस पर नियंत्रण एवं इतिहासके साथ अप्रत्याशित रूप से छेड़छाड़ जैसी कुछ और स्थितियाँ हैं जो हम देख पा रहे हैं। कहना चाहिए चुपचाप ऐसी स्थिति में जीने को अभिशप्त और लाचार हैं। ऐसे में लगातार पतनोन्मुख समाज का चित्रांकन साहित्य में कितना हो रहा है? यह हम सब को देखने की आवश्यकता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह धूमिल के 'हाथ की मुठ्ठी के तने होने और काँख भी ढके रहने' समान हुआ है। इधर मंच (लिटफेस्ट) और पुरस्कार का भी एक नया शगल चल निकला है। मंच और पुरस्कार, साहित्यकार का सच नहीं होने चाहिए। किन्तु यह तभी हो सकता है जब साहित्य, रचनाकार के लिए कहीं पहुँचने भर का टूल न हो।

ऐसे में कँवल भारती जी की कविताएँ कहाँ खड़ी होती हैं? यूं कहें कि कँवल भारती जी का व्यक्तित्व खुद कैसा है। हम देखते हैं कि वे अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त करने में कोताही नहीं बरतते। विषम से विषम परिस्थितियों में वे मुखर और स्पष्टवादी रहे हैं। उनका चिंतक रूप, प्रखरता और स्पष्टता के साथ हमारे समक्ष उनके लेखों और टिप्पणियों के जरिए प्रस्तुत होता रहा है। उनके द्वारा हिंदी की विविध साहित्यिक विधाओं में लेखन उनके गहन अध्येता और आलोचक रूप से हमारा परिचय कराता है।

उनकी कविताओं से गुजरते हुए उनकी निष्ठा पर कोई सवाल खड़े नहीं किए जा सकते-''मैं दलित चेतना का कवि हूँ/है रचना कर्म मेरा विद्रोह/दलितों की पीड़ा का चित्रण/समता, समानता है प्रतिमान'' (पृ.15) बल्कि हैरत की जा सकती है कि आख़िर क्या वजुहात थे जिसने उन्हें एक काव्य-संग्रह तक ही सीमित कर दिया।

कँवल भारती की कविताओं पर सरसरी नजर दौड़ाने से यही पता चलता है कि उनके अंदर समता को लेकर बेचैनी है। वे महीन से महीन विभाजन और भेद भरे व्यवहारों-नीतियों की शिनाख़्त बहुत आसानी से कर लेते हैं। जिसे दरअसल 'आसानी' कहा जा रहा है, वह 'यातना' है। यातना, जो असहनीय है। किन्तु एक खूबसूरत दुनिया की चाह कवि की तड़प है। वह जान रहा है कि रेखांकित करने योग्य बदलाव नहीं आये हैं, दलित को आज भी वह समानता प्राप्त नहीं हुई, जिसका वह हकदार है। सवाल जैसे सदियों से बने हुए थे आज भी बरकरार हैं। केवल

शक्लों-सूरत में थोड़ा हेर-फेर हुआ है। धर्म, पूंजी और राज्य का गठजोड़ उतरोत्तर मजबूत हुआ है। तमाम योग्यताओं और मेधा के बावजूद दलित अपने ही देश में दोयम दर्जे का प्राणी बनकर जीवनयापन करने को वह बाध्य है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सबसे महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक समता आज भी नहीं मिली है।

कँवल भारती के चौकस इतिहासबोध का हवाल हमें उनकी कई कविताओं में देखने को मिलता है। यहाँ 'पंद्रह अगस्त' और 'शंबूक' कविता के मार्फत हम उनके इतिहासबोध को देखने का प्रयास करेंगे। जिस तरह गांधी के दर्शन को लेकर सुशीला टाकभौरे सवाल करती हैं, उसी तरह 'पंद्रह अगस्त' कविता में भारती जी बेलाग सवाल करते हैं-''तुम बोलते हो महात्मा गांधी की जय/पंद्रह अगस्त पर/ और भूल जाते हो डॉ. अंबेडकर को जिन्होंने स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया था।" (पृ. 34) इसी कविता में आगे वे कई और सवाल करते हुए दिखते हैं। मसलन खुदीराम, सुखदेव, आजाद और भगत सिंह को हम विद्रोही मानते हैं क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों के ख़िलाफ लड़ाई की थी, पर उन दलितों का क्या जो हिंदुओं के अत्याचारों के शिकार हुए? मनु और उसके द्वारा बनाए गए काले कानूनों का क्या? जिन्होंने गुलाम बनाये रखने में कोई कसर नहीं छोड़ता। (जिसका नतीजा यह था कि अगस्त 9, 2018 को संविधान की प्रति जलाई गई) झलकारी बाई का क्या जिसे लक्ष्मीबाई के लिए विस्मृत कर दिया गया? चौरी-चौरा के भुला दिए गए शहीदों का क्या? जलियाँवाला बाग के शहीदों के साथ-साथ वीर उधम सिंह का जिक्र क्यों नहीं? जिसने डायर को ख़त्म करने के लिए लंबा इंतजार किया पर अपने लक्ष्य से टस-से-मस नहीं हुए। गदर का मंत्र देने वाले मातादीन भंगी को मंगल पांडे के साथ क्यों याद नहीं किया जाता? कविता के अंत में कँवल जी ललकारते हुए हमें वास्तविकता से रूबरू कराते हैं-''यदि जीवित रखना है लोकतंत्र को/देश की राजनीतिक स्वतंत्रता का/ तो नष्ट कर दो जाति के दंभ को/वर्ण की सोच को/बनो समता के पक्षधर/उठो जाति-वर्ग विहीन समाज के निर्माण के लिये/एक और स्वतंत्रता संग्राम लड़ने के लिये।" (पृ. 35)

अब 'शंबूक' कविता पर गौर करें। अपने आस-पास का हमारा आज का अनुभव यही कहता है कि 'सत्य' जैसी की कोई अवधारणा नहीं बची है। आज का सत्य एक उत्पाद है। कभी इसे ही हरमन और चोम्स्की ने 'मैनुफैक्चरिंग कॉन्सेंट' कहा था। आप की सहमति किसी बात पर ली जा सकती है, या इसे इस तरह भी लिखा जा सकता है कि आपको जबरन सहमत होने को बाध्य किया जा सकता है। तिस पर आपको जबरदस्ती किसी बात पर विश्वास दिलाया गया है, इसकी भनक भी शायद ही आपको लगे। फिर एक और कथन जो बेहद प्रचलित है कि "इतिहास विजेताओं द्वारा लिखा जाता है। बतर्ज अब 'शंबूक' कविता की कुछ पंक्तियाँ देख लेते हैं- ''शंबूक/हम जानते हैं तुम इतिहास पुरुष नहीं हो/वरना कोई लिख देता/तुम्हें भी पूर्व जन्म का ब्राह्मण/स्वर्ग की कामना से/राम के हाथों मृत्यु का याचक'' (पृ. 47) हिन्दू या सनातन संस्कृति से जाहिर है जो कोई भी लड़-झगड़ के, अपना प्रतिरोध दर्ज कर जब भी इतिहास में किसी तरह दर्ज हुआ है उसके साथ किंवदंतियाँ जोड़ दी गईं। बुद्ध, रैदास, कबीर सभी इसके उदाहरण हैं। काव्य-संग्रह में कँवल भारती द्वारा दिए निवेदन का एक अंश द्रष्टव्य है-''मध्य युग के दलित कवियों-कबीर और रैदास को भी हिन्दी साहित्य में तभी स्थान मिला था, जब उन्होंने अपना समाज तैयार किया था, अपना पंथ बनाया था और अपने लाखों अनुयायियों को पैदा किए थे। उनको अस्वीकार करना आसान नहीं था। यह ब्राह्मणों की मजबूरी थी, जो उन्होंने उन्हें स्वीकार किया। पर विचारणीय बात यह है कि ब्राह्मणों ने कबीर और रैदास आदि दलित संतों को विकृत करके स्वीकार किया है। उनके काव्य को समग्र रूप में नहीं, अपितु उसके उतने ही अंश को पाठ्यक्रमों में रखा है, जीतने से ब्राह्मणवाद का दुर्ग सुरक्षित राहत है।" इसे आप 'ऐसीमिलेशन'' भी कह सकते हैं। वर्चस्वशाली संस्कृति अपने अधीनस्थ संस्कृति के साथ ऐसा ही करती है। कँवल भारती ऐसे किसी भी नेरेटिव को नकारते हुए कहते हैं-''शंबूक (हम जानते हैं) /तुम्हारी तपस्या से/ब्राह्मण का बालक नहीं मरा था/जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है/मरा था ब्रह्मणवाद/मरा था उसका भवितव्य।"(पृ. 47)

कँवल भारती, उन दलित रचनाकारों में रहे हैं जिन्होंने हमेशा स्वानुभूति पर बल दिया। कहा ही गया है, फटी एड़ियों का दर्द वही जानेगा जिसकी खुद की एड़ियाँ फटी हुई होंगी। आयातित अनुभव कभी वह प्रामाणिकता नहीं दर्ज कर पाएंगे जिसके जरिए किसी रचना को गांभीर्य और औदात्य प्राप्त हो। खुद कवि कहते हैं कि-''दलित कविता जाति का यथार्थ प्रस्तुत करती है। यह यथार्थ निश्चित रूप से कटु है। इस कटु यथार्थ को सवर्ण कैसे महसूस कर सकते हैं, जबकि इसे उन्होंने जिया है नहीं है।" (निवेदन से, पृ.18) स्वानुभूति के महत्व को हम दलित आत्मकथाओं के जरिए समझ सकते हैं। जूठन, अपने-अपने पिंजरे, मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, तिरस्कृत एवं मुर्दहिया आदि कुछ ऐसी दलित आत्मकथाएँ हैं जो काफी लोकप्रिय हुईं। जिन्होंने संभवतः कई पाठकों को ऐसे अगम्य क्षेत्र में प्रवेश कराया जहाँ वे अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक सीमाओं के कारण कभी जा ही नहीं पाए। कहना न होगा कि ऐसा सर्वथा भिन्न अनुभव क्षेत्रों के कारण संभव हो पाया। स्वानुभूति को ठीक-ठीक समझने के लिए मुझे हमेशा मलखान सिंह की कविता 'एक पूरी उम्र' याद आती है-

''यकीन मानिए/इस आदमखोर गाँव में/मुझे डर लगता है/बहुत डर लगता है/लगता है कि अभी बस अभी/ठकुरासी मेंड़ चीखेगी/मैं अधशौच ही खेत से उठ आऊँगा/ कि अभी बस अभी/हवेली घुड़केगी/मैं बेगार में पकड़ा जाऊंगा।" कल्पना के अतिरेक के बावजूद किसी प्रिवीलेज्ड रचनाकार के लिए संभव नहीं कि वह अधशौच से उठने की सोच भी सके। इस दंश को वही व्यक्त कर सकता है जिसने फर्स्ट हैंड उस भय या आतंक का अनुभव किया हो। जहाँ मनुष्य के जीवन की गरिमा ढेला बराबर भी नहीं हो। एक ऐसी ही कविता कँवल भारती जी की भी है। नाम है 'जब तक व्यवस्था जीवित है'। कविता में 'राख/ ही जानती है जलने का दर्द' चरितार्थ हुआ है- ''जब तक व्यवस्था जीवित है/और तुम्हें उसका आश्रय प्राप्त है/तभी तक तुम लिखोगे/ राम को राष्ट्र का गौरव/पौराणिक कथाओं में ढूँढोगे मानवतावाद/वेदों में बताओगे/सही सलामत/सहज और जमीन से जुड़े।/तुम क्या जानो/ जाति की व्यथा/शोषण की पीड़ा/अपमान की यंत्रणा/दासता की वेदना/क्योंकि तुम्हारे बाप ने नहीं काढ़ी/मरे जानवरों की खाल/तुम्हारी माँ ने नहीं ढोया मैला/तुम्हारे बच्चों ने/घर-घर जूठन की जुहार नहीं लगाई/ तुम्हें कीड़े से बजबजाते गंदे नालों के किनारे/अंधेरे घरों में रहना नहीं पड़ा।" (पृ. 51)

संस्कृति मूलतः अपनी आंतरिक संरचना में वर्चस्ववादी और बहुसंख्यकवादी होती है। यानी एक 'समान' संस्कृति हेतु कुछ वर्चस्वशाली संस्कृतियाँ अपने से कमजोर संस्कृतियों पर या तो हावी हो जाती हैं या थोड़े फेर-बदल के साथ शक्तिहीन संस्कृतियों को अपने अंदर समाहित कर लेती है। ग्राम्शी इसे ही 'हेजेमनी' यानी आधिपत्य की संज्ञा देते हैं। वर्चस्व को बरकरार रखने में भाषा भी एक टूल का काम करता है। चूँकि भाषा का संस्कार हमें बचपन से ही मिलना शुरू होता है, ऐसे में भाषा के अभिजात्यवादी खोल से निकलना बेहद मुश्किल होता है। यह विचित्र संयोग है कि भाषा ही आपके भावों और विचारों को शक्ल देने का काम करती है और भाषा ही कभी-कभी आपकी अभिव्यक्ति को बाधित कर सकती है। कँवल भारती कुछ इसी तरह के उद्‌गार 'तुम्हें आजाद कर रहा हूँ' कविता में करते हैं- ''सदियों के अंतराल के बाद/समझ में आया/शब्द कितने बड़े शस्त्र होते हैं/व्यूह को सुरक्षित रखते हैं/तुमसे मिली अनुभूतियों से ही/जनमी है मेरी भाषा/इसलिये तुम्हारे सारे शब्द/मेरी वेदनाओं ने निगल लिए हैं/व्याकरण जला दिया है/जो विभाजित करता था मुझे और तुम्हें।" (पृ. 51) कुछ इसी तरह की एक और कविता है 'रचो वे पारमिताएं'।

कँवल भारती न केवल इस कविता में भाषाई हेजेमनी को डिकोड करते हैं बल्कि लगभग चेताते हुए कहते हैं कि-''मैंने सारे रहस्य सुलझा लिये हैं/वातायन खोल दिये हैं/यह जगत मिथ्या नहीं है/मिथ्या हैं तुम्हारा ब्रह्म/ब्रह्म से उपजा मानवतावाद।/अब तुम ताजी हवाओं को रोक रहे हो/बंद करने लगे हो खुले वातायनों को/लेकिन अब वे बंद नहीं होंगे/क्योंकि। चौखट का आखिरी हिस्सा भी टूट गया है।/अब तुम्हारे ही शब्द/तुम्हारे विपरीत दाहक अभिव्यक्तियाँ बन गये हैं/तुम्हें अपनी अर्थवत्ताएं बदलनी होंगी/नकारनी होंगी अपनी व्याख्याएं/वरना यह आयतित भाषा भी/जो तुमने ओढ़ रखी है/कि तुम महिमा मंडित करते हो ब्रह्म को/ब्रह्म से उपजे मानवतावाद को/आत्मघाती होगी।" (पृ. 59-60) हम सभी इस बात से अच्छी तरह वाकिफ हैं कि ब्रह्म से उपजे मानवतावाद का संबंध गांधी के उस हरिजन से है जो स्टेटस कुओं को जस-का-तस बनाए रखता है।

बहुत साधारण-सी लगने वाली 'प्रीत की रेखाएं' कविता, महत्त्वपूर्ण हो सकती है। बशर्ते हम उसे ताउम्र संघर्ष कर रहे किसी भी साधारण आदमी के साथ जोड़ कर देखें। इस कविता को पढ़ते हुए बरबस ही फैज की मशहूर नज्म 'मुझ से पहली सी मोहब्बत मिरी महबूब न माँग' की याद हो आती है। फैज कहते हैं कि 'और भी दुख हैं जमाने में मोहब्बत के सिवा/राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा' सवाल उठता है कि वे कौन से दुख हैं जो फैज साहब के लिए प्राइऑरटी हैं? शायद उन मजलूमों का दुख जो वे केवल इसलिए सहने को बाध्य हैं क्योंकि उनके पास अपने हालातों को बदलने के मौके नहीं होते हैं। फिर आते हैं मुहब्बत की बात पर। शायद इश्क को फैज के यहाँ एक निजी मामले के रूप में देखा जा रहा है। सही भी है, लेकिन यह बात भी सोलह आने सही है कि निजी प्रेम ही है जो आपको वह बुलंदी देता है, ताकत देता है, हौसला देता है, जिससे कि आप जमाने भर से लड़-भिड़ सकें। यानी निजी प्रेम से होते हुए सामाजिक प्रेम की ओर मजबूती से बढ़ा जा सकता है। अब इसके ठीक उलट 'प्रीत की रेखाएं' कविता देखिए। कवि सब कुछ भूल गया है। चंदन सदृश महकता शरीर, मुस्कान जो मोतियों सी है, गुलाबी होंठ, यौवन की मादकता, रूप-देह-वासना सब कुछ। कुल मिलाकर एक युवा के अंदर जो वासना की चाह होती है, यौवन का जो भावोद्वेग होता है वह ख़त्म हो चुका है। सवाल उठता है, क्यों? क्योंकि कवि ऐसी पृष्ठभूमि से ही साबका नहीं रखता जहाँ पल दो पल थिर होकर, ठहर कर इश्क-विश्क के बारे सोचा जा सके। उसका जीवन सतत संघर्षशील रहा है-''हाँ मैं भूल गया हूँ/क्योंकि अदद सहज-सरल जीवन/मेरे पास नहीं था।/मेरे पास संतप्त जिजीविषाएँ थीं/अभाव-चक्र से उत्पन्न विद्रूपताएँ थीं/और मैं एक टुकड़ा सुख जीने के लिये भी/टुकड़े-टुकड़े हो रहा था।" आगे वे लिखते हैं-''अब विडंबनाओं की धूप में/उसका यौवन/शिशिर की हवाओं में/बर्फ बन गयी उसकी आकांक्षाएँ/वासना नहीं जगातीं/प्रीत की रेखाएं खींचती

हैं।" (पृ. 52) हम देख सकते हैं कि इस कविता के मार्फत दो बातें उभर कर आती हैं- पहला यह कि एक व्यक्ति जिसका संबंध अभावों से ही ताउम्र जुड़ा रहा हो, वह पहले अपने हालात सुधारने में ही लगा रहेगा। रोजमर्रा के जरूरतों की जुगाड़ में, प्रेम और सहवास उसके लिए किसी लक्जरी समान होंगे। भूख और उसका दुख ही उसके लिए प्राथमिकता होगी। 'निज का विकास' उसकी पहली शर्त होगी। दूसरा यह कि जिस प्रीत की रेखाओं की बात कँवल जी करते हैं वह अवसान की स्थिति में उपजा 'प्लैटोनिक लव' है। न कि वह रक्त का तेज प्रवाह जिसे हम अंग्रेजी में 'एड्रेनालाइन रश' कहते हैं। जहाँ प्रेम और दैहिक लालसा अपने चरम पर होते हैं। वह भला जीवन को सुगम करने में जूझ रहे व्यक्ति को कहाँ मयस्सर होती है! यह कविता हमें यह भी एहसास दिलाती है कि सबका जीवन एक-सा नहीं है। प्रेम और उत्कट चाह भी हालातों पर निर्भर करते हैं।

यह कहने में कोई संकोच नहीं कि कँवल भारती की लगभग हर कविता से जब आप गुजरेंगे तो शिद्दत से महसूस कर पाएंगे कि उनकी कविताएँ एक समानांतर नेरेटिव निर्मित करते हैं। मानो पाठकों को चुनौती दे रहे हों कि यदि तुम्हारा वर्ग और जाति मुझ सा नहीं है तो हमारी चेतना और किसी विषय की ग्राह्य-क्षमता भी मुख़्तलिफ होगी। 'क्या हूँ मैं?' एक बहुत ही मार्मिक कविता है। विस्थापन की पीड़ा केवल उनकी नहीं होती जो अपना दुख दुनिया के सामने रख सकते हैं, बल्कि उनकी पीड़ा, उनका संघर्ष भी कहीं से कमतर नहीं होता जिनके पास दुनिया को अपनी तकलीफें बयान करने का न कोई साधन है, और न ही कूवत। लेकिन दुनियावी दस्तूर यह रहा है कि बहुसंख्यकवादियों का दुख, उनकी पीड़ा, उनके संघर्ष को ही सबसे बड़े दुख के रूप में साझा किया जाता रहा है और सहानुभूति बटोरी गई है। दुख, दुख है। सभी का एक समान है, न कम, न ज्यादा। इसे लेकर किसी भी प्रकार की राजनीति, अपराध समान है। लेकिन क्या विडंबना है कि संस्तरीकृत समाज में हर दुख को एक सा मानने का चलन नहीं है। कश्मीरी पंडितों के विस्थापन का हवाला देते हुए कँवल भारती अपने विस्थापन को लेकर सवाल कर रहे हैं, गोया अपनी अस्मिता, अपनी वस्तुस्थिति को लेकर सवाल कर रहे हों!- ''मैं, जो सदियों से अपनी पीड़ा को/अपने विस्थापित होने के अहसास को/अपने चारों ओर व्याप्त दहशत के साये को/यातनाओं के दंश को/अभिव्यक्ति दे रहा हूँ, आवाज लगा रहा हूँ/स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की। क्या मेरी पीड़ा पीड़ा नहीं है?/क्या मैं विस्थापित नहीं हूँ?/क्या हूँ मैं?/अराष्ट्रीय या अवांछनीय?'' (पृ. 63) कवि का 'मैं' हर उस दलित का प्रतिनिधित्व करता है जो धर्म के नाम पर होने वाले आतंकवाद का तो शिकार बनता ही है, साथ ही साथ राज्य द्वारा प्रायोजित-पोषित आतंकवाद का भी शिकार होता है। ऐसे में थोड़ा-बहुत सम्मान से जीने की लालसा पाले उसका जीवन एक शहर से दूसरे शहर दर-बदर होने में ही ख़त्म हो जाता है। एक दलित का जीवन विस्थापित का जीवन है। शहरों की शक्लों-सूरत को चार-चाँद लगाने वालों को जब चाहे हुकूमत बेघर कर देती है।

कँवल भारती की एक अद्भुत कविता है 'पिंजरे के द्वार खोल देना'। दलित कवियों पर नैराश्य और नकारात्मकता के आरोप लगते हैं। ऐसे आरोपों को यह कविता खारिज करती है। यह कविता उस वास्तविकता की ओर हमारा रुख करती हैं, जहां रूढ़िगत और ठस समाज का नुकसान सभी झेलते हैं। वह भी झेलता है जो इन रूढ़ियों के कारण लाभ की स्थिति में है। इस कविता में कँवल भारती दिखाने की कोशिश करते हैं कि कैसे एक सवर्ण समाज से आया व्यक्ति चाह कर भी संरचनावादी स्थितियों को नकार नहीं पाता। कभी मर्यादा के नाम पर वह वर्जनाओं को लांघ नहीं पाता, कभी परंपराओं के नाम पर वह न्याय-अन्याय को नजरंदाज कर देता है, कभी अनास्था और पाप-पुण्य का भय उसे किसी स्थापित मान्यता को नकारने से रोक लेते हैं, और कभी पिंजरे में कैद पक्षी को आजाद करने की चाह को वह अपने भीतर दफन कर लेता है, क्योंकि घर का बुजुर्ग पिंजरे में कैद पक्षी को ही सम्मान और प्रतिष्ठा का मसला बताता है। लेकिन कवि है कि फिर भी एक आस पाले हुए है। यह कविता उस आस का प्रतिबिंबन करती हैं, जहाँ कोई व्यक्ति स्वयं के परिमार्जन में जीवन-पर्यंत लगा रहता है। व्यक्ति अगर चाहे तो खुद को लगातार चुनौतियाँ देते हुए बदल सकता है। कँवल जी उसी भावना को प्रश्रय देते हैं। भावना जो मनुष्यता के पक्ष में खड़े होने को ताउम्र जद्दोजहद करती है-''इस शायद और तभी के बीच कोई भावना/बुलबुले की नियति जीती है।/प्रतिरोधों से अविचलित/आस्था से अपराजित/कोई व्यक्ति-चेतना/यदि जन्म ले तुम्हारे भीतर/तो तुम सिर्फ इतना करना/पिंजड़े का द्वार खोल देना।" (पृ. 46)

कुछ और कविताएँ भी हैं जहां हम कवि को एक समतामूलक उन्नत समाज और एक सम्पूर्ण राष्ट्र की कल्पना से ओत-प्रोत पाते हैं। जहाँ कवि तमाम अन्याय और शोषण के निषेध का आह्वान करते हैं और सकारात्मक रुख इख़्तियार करते हुए आगे बढ़ने हेतु प्रेरित करते हैं। एक बानगी देखिए-''हम लें संकल्प इस नये वर्ष में/ध्वस्त हों धर्म के सिद्धांत/विकसित हो धार्मिकता।/नष्ट हो मनुष्यता के आग्रह/जीवित हो मनुष्य/राष्ट्र की मिटें संकीर्णताएं/बने यह सम्पूर्ण वसुधा एक कुटुम्ब।" (पृ. 46) इसी तरह 'रचो वे पारमिताएँ' कविता के अंत में भी वे 'एक राष्ट्र' की संकल्पना करते हैं जो समानता के सिद्धांत पर टिका हो- ''इसलिए अब और मत रचो/विशेषाधिकार और निर्योग्यताओं

के मानस/असमता की विद्रूपताएं।/रचो ऐसी पारमिताएं/कि हम बन सकें एक राष्ट्र।" (पृ. 60) एक और नई उम्मीदों से भरी कविता नव वर्ष 1995 है-''सामाजिक परिवर्तन के/इस काल खण्ड में/परिवर्तित हों मूल्य/जीवन के/कविता में नहीं,/यथार्थ में।/हम देखें क्षितिज बनाते हुए/धरा और आकाश को/नई अंगड़ाइयाँ लेते हुए/बेकार बैठी श्रम शक्ति को/मुक्ति के लिये /सीधे होते, कमान से झुके जिस्मों को।" इसी कविता का दूसरा हिस्सा भी एक बेहतर कल का विश्वास रखने वाले कवि की पहचान है-''जागो धर्म, समाज और पूँजी के तंत्र से/अभिशप्त मनुष्यता/सृजित हो नया भारत/नया समाज/नया इतिहास/इस काल खंड में।/ऐसा हो विप्लव/यह नूतन वर्ष/पीढ़ियों के लिए बन जाए उत्सव।"

यह भी एक कड़वा सच है कि केवल उम्मीद और आशा ही जीवन के खुराक नहीं हो सकते हैं। व्यवहारिक धरातल पर एक अच्छे कल की बाट जोहने वालों को उसे जमीन पर भी अमली जामा पहनाना जरूरी होता है। कँवल भारती लगभग फटकारते हुए अपनी कुछ कविताओं में अपने दलित बंधुओं को संबोधित हैं जो सुख-सुविधाओं में डूब गए हैं। बाबा अंबेडकर के समान चुनौती देते हुए वे कहते हैं-''तुम क्रांति नहीं करोगे/सिर्फ दारू पियोगे/और गाल बजाओगे।/क्रांति के दस्तावेज सुंदर नहीं होते/जैसे सुबह के अखबार/जो तुम्हें गुदगुदाते हैं मीठी भाषा में।" आगे भाषा के छद्म को समझाने के लिए बेहद स्पष्ट और चोट पहुंचाती पंक्तियों के साथ वे मुख़ातिब होते हैं जो जीवन के हकीकतों से जुड़ी हुई हैं- ''यह बताओ/बलात्कार की शिकार/तुम्हारी माँ की भाषा क्या होगी?/कैसे होंगे/गुलामी की जिंदगी जीने वाले/तुम्हारे बाप के विचार/ठाकुर की हवेली में दम तोड़ती/तुम्हारी बहिन के शब्द/क्या वे सुंदर होंगे?''

कँवल भारती की आलोचना दृष्टि पर एक सरसरी नजर डालने पर वे उस परंपरा के वाहक प्रतीत होते हैं जो श्रमण शक्ति पर विश्वास करता है। मनुष्य की गरिमा को महत्व देता है। उस पर अभिमान करता है। आजीवकों, चार्वाकों, बुद्ध,, नाथ, कबीर, रैदास, फुले, साहू जी महाराज, आंबेडकर, पेरियार, संत गाडगे, स्वामी अछूतानन्द उनके आदर्श हैं। अंबेडकर के प्रति उनमें कृतज्ञता का भाव सबसे अधिक है। इसी संग्रह की कई कविताओं में उनके इस बोध का परिचय हमें प्राप्त होता है, बल्कि पहली कविता ही बाबा अंबेडकर को समर्पित है-''चौदह अप्रैल/एक तारीख/सदियों के अंधकार की परतों को चीरकर उदित होने वाले/एक प्रकाश पुंज का दिन/जो लाया था एक सवेरा/दलित-प्रवंचितों के जीवन की काली निशा में।/चौदह अप्रैल/एक पावन दिन/उस मुक्तिदाता के उदय का/जिसने किया था मानव को मुक्त/संकीर्ण परिधियों से/दारुण प्रथाओं से'' (पृ. 19) 'बलिहारी मन' भी बाबा अंबेडकर के कर्म और त्याग को लेकर रची गई कविता है, जिस कारण अंबेडकर कवि के मानस पर अंकित हैं-''डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर/जिन्होंने जीवंत प्रतिमाओं में तराशा था/मेरे समाज को, जो पाषाण हो गया था।/बनकर चित्रकार/उनकी मानवीय अनुभूतियों को/समता, स्वतंत्रता और सम्मान के रंगों से/सजीव किया था राजनीति के कैनवास पर'' कविता की अंतिम पंक्तियाँ कँवल जी के अनन्य प्रेम को और अधिक स्पष्ट कर देती हैं-''हे मेरे आधुनिक समाज के शिल्पकार/उसकी अनुभूतियों के चित्रकार/वेदना के संगीतकार/तुम पर बलिहारी है मन/शत-शतबार।" बाबा को समर्पित उनकी एक और कविता है, जिसमें सदियों के समानता के संघर्ष को बढ़ाते हुए बाबा साहब अंबेडकर ने जो गरिमा और सम्मान से भरे जीवन हेतु लौ जलाई थी, वह आज भी जल रही है। 'मुक्ति संग्राम जारी है'-''जब भी अहसास करता हूँ/तुम्हारे विचारों में मुखर होता है रचनात्मक विप्लव/जो समाता है रोम-रोम में/बाबा तुम मरे नहीं हो/जीवित हो/हमारी चेतना में/हमारे संघर्ष में/जो मुक्ति संग्राम लड़ा था तुमने/वह जारी रहेगा उस समय तक/जब तक कि हमारे मुरझाए पौधों के/ हिस्से का सूरज/उग नहीं जाता।"

1996 में प्रकाशित उनके कविता-संग्रह की एक-एक कविता आज के माहौल में इतनी मौजूं हो गई हैं कि हैरत होती है कि कोई अपने समय से इतना आगे कैसे देख पाता है। यही तो एक गंभीर चिंतनशील रचनाकार की पहचान होती है। वह देश काल का उल्लंघन करने का माद्दा रखता है। बल्कि किसी रचनाकार और उसकी रचना की उत्तरजीविता ही इस बात पर निर्भर करती है कि वह समकालीन संदर्भों में कितना सटीक बैठता है। उनकी लगभग सारी कविताएँ चुनौतीपूर्ण दस्तावेज हैं, जो नीम की कड़वाहट लिए हैं और हलक से नीचे उतारने में तकलीफ होती है। लेकिन सभी जानते हैं कि अगर उतार लिए जाएँ तो सेहत के लिए अच्छा होता है। तीस साल के करीब-करीब हो गए इस काव्य-संग्रह को आए। इन तीन दशकों में बहुत कुछ बदल गया है। जिसकी तसदीक इस कविता संग्रह में भी है। लेकिन बहुत कुछ नहीं भी बदला है, एक उदाहरण पेश है-''धर्म के सिद्धांत/बना नहीं सके धार्मिक/मनुष्यता के आग्रह/नहीं बना सके मनुष्य।/राष्ट्र की अवधानाएं/पैदा कर गईं अलगाव/वर्ण और जाति की व्यवस्थाओं ने/न स्वतंत्रता को स्वीकारा/न समता को/न बंधुता को/वे विकसित करते रहे ईश्वर को/मनुष्य को मारते रहे/वे खड़े करते रहे भगवानों के भवन/उजाड़ते रहे इंसानों की बस्तियाँ। धर्म, मनुष्यता और राष्ट्र/सिर्फ शब्द हैं, जो चिंतन में दिखाई पड़ते हैं, उनका अस्तित्व दूर तक भी नहीं है।" (पृ. 61) क्या बदला है आख़िर इन तीस

सालों में? थोड़ी बहुत आर्थिक स्थिति बदली है, वह भी तब जब दलित विस्थापित मजदूर बनने को बाध्य हैं। कोरोना के दौरान, इन्हीं मजदूरों की दिल दहला देने वाली अमानवीय स्थितियों ने को हम सभी जानते हैं। अलग से यह कहना जरूरी नहीं कि इन मजदूरों में अधिकतर दलित जातियों से ही सम्बन्ध रखते होंगे जिनके हिस्से अकसर बेगारी ही लिखी होती है। कँवल भारती ने तब ही लिखा था-''तुम कहते हो यह देश सबका है।/पर, शिक्षा पर तुम्हारा कब्जा।/भूमि पर तुम्हारा एकाधिपत्य/उद्योगों पर तुम्हारा एकछत्र राज,/हमारा क्या? /तुम्हारी करें हरवाही/सिर पर ढोयें मैला/उठायें मारे जानवर/करें तुम्हारी बेगार/कैसे कहें यह धर्म हमारा/कि तुम हमारे हो।" (पृ. 63) हाल ही में एक फिल्म आई थी 'गुठली-लड्डू'। एक ऐसे बच्चे कि कहानी जिसे सिर्फ इसलिए बार-बार शिक्षा पाने से रोक दिया जाता था क्योंकि वह दलित जाति से साबिका रखता है। कोई कहने को आज भी कह सकता है कि अब वह जमाना नहीं रहा। पर ऐसा आज भी है, बस हम आँखें दूसरी तरफ कर लेने की आदत पाल चुके हैं। आप किसी भी राज्य के गाँव-जवार चले जाइए। संघर्षशील पृष्ठभूमि से आने वाले आज भी संघर्ष ही कर रहे हैं। बच्चे पढ़ते नहीं। मजदूरी में इधर-उधर लगे रहते हैं। ऐसे गाँवों में कोई सरकारी विद्यालय हो तो कुछ शिक्षक आज भी आपको मिल जाएंगे जो जाति या धर्म के संबोधनों द्वारा मनोबल तोड़ने का एक मौका नहीं छोड़ते। हिकारत भरी नजरों से सभी देखते हैं, किन्तु ऐसी स्थिति में होने के कारणों की पड़ताल करने से बिदकते हैं। ऐसा इसलिए कि धर्म और सांस्कृतिक वर्चस्व ख़त्म नहीं हुआ है-''जिसमें समर्थन हो कोटि मनुष्यों की नीचता का/आदेश हो उन्हें दास-कर्म करने का/निषेध हो पढ़ने और धन कमाने का/साफ कपड़ा पहिनने, सभ्यता से रहने का/उन धर्मशास्त्रों को तुम क्या कहोगे?'' (पृ. 44) यह सवाल पूछना ही बुरा लगता है। उन्हें, जिन्होंने सदियों से अपने प्रिवीलेज को कभी एड्रेस करने की कोशिश ही नहीं की, उलटे सवाल उठाने वालों पर ही जातिवादी होने के आरोप मढ़ दिए, यह धर्म, समाज, राजनीति और साहित्य हर जगह हुआ- 'तुम्हें दिखाई दिए/ राजनीति के खतरे/जब हमने गांधी को अपने कंधों पर ढोने से इनकार कर दिया/अब तुम्हें दिखाई दे रहे हैं/साहित्य में जाति के खतरे/जब हमने प्रेमचंद-निराला को अपने कंधों पर ढोने से इनकार कर दिया है।" (पृ. 70) मान लीजिए कभी जातिवाद का आरोप सीधे-सीधे लगाने में असमर्थ रहे तो दलितों को 'नक्सलवादी' करार दिया गया। सिर्फ इसलिए कि दलितों ने मुसलसल अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के ख़िलाफ अपना प्रतिरोध दर्ज किया-''एक दिन उन्होंने/अत्याचारियों को घेर लिया/कुछ का गला रेत दिया/कुछ को गोलियों से भून दिया/गजब हो गया/सरकार भी/अत्याचारी भी/एक स्वर में चीख उठे/कितने नक्सलवादी हो गए हैं/बिहार के दलित'' (पृ. 70) ओमप्रकाश वाल्मीकि की तरह कँवल भारती ने भी कहा है, 'बस्स बहुत हो चुका'। पीढ़ियों से जो शोषण की परंपरा चली आ रही है उस पर वे पूर्ण विराम लगाने की इच्छा रखते हैं-''पीढ़ी दर पीढ़ी।/अब यह हो नहीं सकता/कि तुम्हारे सारे गंदे काम हम करें/पीढ़ी दर पीढ़ी।/और हम हो कर बहिष्कृत जीते रहें/पीढ़ी दर पीढ़ी।/अब हम बनाएंगे राष्ट्र की मुख्यधारा'' (पृ. 66)

कँवल भारती ने हर उस व्यक्तित्व की आलोचना की है जिनके यहाँ विरोधाभास की झलक दिखाई देती है या उतरोत्तर जिनका चिंतन वर्ण-व्यवस्था को ही संबल प्रदान करता है। राम, गांधी, तुलसीदास, स्वामी विवेकानंद सभी उनकी काव्य-आलोचना की धार से नहीं बचते।

अंत में आइए उस कविता पर बात करते हैं जो एक पाठक के तौर पर मेरी प्रिय कविताओं में से एक है। कविता है ''तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती।'' कविता-संग्रह का नाम भी यही है। जाहिर है कविता महत्त्वपूर्ण ही होगी। यह एक लंबी कविता है। कविता क्या है, सवालों की एक फेहरिस्त है! सवाल, सिचूऐशन्स की शक्ल में रखे गए हैं। इन सवालों को पूछे हुए अरसा हो गया है लेकिन जवाब अब भी नहीं मिलते। बल्कि कहना चाहिए जवाब सभी जानते हैं, बस स्वीकार का डर है। 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' कई बार दर्ज किया जा चुका है पर मानो द्वार बंद रहे यही कुछ वर्णों की कामना सदियों से रही है। वे उन स्थितियों से बावस्ता होना ही नहीं चाहते जिनमें यदि उन्हें रहने को विवश होना पड़े तो पल भर में ही लगे कि दम घुट जाएगा। एक बानगी देखिए-''यदि स्मृतियों का यह विधान लागू हो जाता/तुम ब्राह्मणों, ठाकुरों और वैश्यों पर/कि तुम नीच हो,/श्मशान-भूमिवत हो/तुम्हारे आवास हों गाँवों के बाहर/तुम्हारे पेशे हों घृणित-/मरे जानवरों को उठाना,/ मल-मूत्र साफ करना, कपड़े धोना, बाल काटना,/हमारे खेतों-घरों में दास-कर्म करना।/तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?'' (पृ. 38-39)।

कँवल भारती का सम्पूर्ण काव्य-कर्म विचारधारात्मक है। यहाँ तक कि जहाँ-जहाँ वे भावुक से लगते भी हैं वहाँ भी उनका विचारक रूप हावी होता है। इससे यह बात भी निकल कर आती है कि एक दलित पृष्ठभूमि से आने वाले कवि को इतना अवकाश ही नहीं कि वह अपने विचारों से बिखरे। विचारों से बिखरने के मतलब बद हालातों का और बदतर हो जाना है। किन्तु भाव और विचार का ऐसा अनूठा संतुलन है, जिसे एलन टेट के 'तनाव सिद्धांत' से जोड़कर देखा जा सकता है। यह काव्य-संग्रह अब प्रकाशन में नहीं है। होनी चाहिए क्योंकि लगभग हर कविता से गुजरते हुए बेहद तल्ख़ी से आपको महसूस होगा कि कँवल

जी आज के हालत लगभग तीस साल पहले लिख चुके हैं। यह कहने में कोई संशय नहीं कि संग्रह हाथों हाथ बिक जाएगी। हाल ही में प्रोफेसर तुलसी राम स्मृति व्याख्यानमाला के अंतर्गत राहुल सांकृत्यायन सृजन पीठ, मऊ में दिनांक 11 फरवरी, 2024 को दिए गए उनके भाषण के अंश को यहाँ उद्धृत करना जरूरी प्रतीत होता है-''समय की सूई सदैव आगे की ओर चलती है। वह पीछे की दिशा में नहीं लौटती। किंतु भारत में दर्शन की सूई शंकराचार्य के 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या' पर ही अटकी हुई है। यह कहना ज्यादा सही होगा कि उसे वहीं पर अटकाकर रखा गया है। इस सूई को न दयानंद सरस्वती आगे बढ़ा सके, न स्वामी विवेकानंद और न अरविंदो। क्योंकि सूई के आगे बढ़ने से मानव-मस्तिष्क का विकास होता है, ज्ञान-विज्ञान का विकास होता है, जबकि सूई के ठहरे रहने से ब्राह्मणवाद टिका रहता है। दूसरे शब्दों में यही सनातन दर्शन है, जो एक वैकल्पिक दर्शन के रूप में थोपा जा रहा है।" लगभग इसी बात को इस काव्य संग्रह की भूमिका लिखते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दर्ज किया है। भूमिका की शुरुआत में ही कँवल जी जिस 'मानव-मस्तिष्क के विकास' की बात करते हैं उसे ही वाल्मीकि जी 'आधुनिकता बोध' से जोड़कर देखने की कोशिश करते हैं। हमारे समाज की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि हम केवल बाह्य रूप से आधुनिक हुए हैं। वाल्मीकि जी कहते हैं -''हिन्दी कविता का बाह्य रूप, उसकी अंतर धारा से भिन्न है। विभिन्न काव्य-आन्दोलनों और काल निर्धारण में विद्वानों ने अपने निष्कर्षों में बाह्य रूप को ही स्थापित किया है। हिन्दी कविता का यह एकांगी स्वरूप उसे आधुनिक होने से रोकता है। उसकी सामाजिकता पर सवाल खड़े करता है। इसके ठीक विपरीत हिन्दी दलित कविता अपनी सामाजिक चेतना के कारण सजग और जीवंत दिखाई पड़ती है।" (भूमिका से, पृ. 9)

संदर्भ

1. मौजूद ईश्वर ब्रह्म और आत्मा (आलोचना) 1970, हिंदू धर्मग्रंथों में शूद्र और नारी (शोध) 1971, सीता : एक विद्रोहिणी नारी (विश्लेषण) 1979, बौद्ध धर्मापदेष्टायों का नया संघ (आलोचना) 1981, डॉ. अंबेडकर बौद्ध क्यों बने? (विश्लेषण) 1983, संत रैदास : एक विश्लेषण 1985, परिवर्धित सं 2000, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती (कविता) 1996, मनुस्मृति : प्रतिक्राति का धर्मशास्त्र (विश्लेषण) 1996, काशीराम के दो चेहरे (पत्रकारिता) 1996, डॉ. अंबेडकर को नकारे जाने की साजिश (आलोचना) 1996, डॉ. अंबेडकर : एक पुनर्मूल्यांकन (विश्लेषण) 1997, लोकतंत्र में भागीदारी के सवाल (पत्रकारिता) 1997, धम्मचक्कपवतन सुक्त (अनुवाद, व्याख्या, आलोचना) 1997, दलित विमर्श की भूमिका (इतिहास) 2002, दलित धर्म की अवधारणा और बौद्धधर्म (आलोचना) 2002, दलित चिंतन में इस्लाम (आलोचना) 2004, जाति, धर्म और राष्ट्र (विश्लेषण) 2005, मायावती और दलित आंदोलन (पत्रकारिता) 2005, दलित साहित्य की अवधारणा (आलोचना) 2006, हिंदी क्षेत्र की दलित राजनीति और साहित्य (विश्लेषण) 2006, राहुल सांकृत्यायन और डॉ. अंबेडकर (विश्लेषण) 2007, समाज, राजनीति और जनतंत्र 2009, समाजवादी अंबेडकर 2009, आजीवक परंपरा और कबीर 2009, दलित साहित्य के आलोचक और विमर्श 2009; संपादन-मूक भारत 1978, माझी जनता 2000, दलित निर्वाचित कविताएँ (संपादन) 2012, दलित कविता का संघर्ष (आलोचना) 2012 , कबीर : एक विश्लेषण (विश्लेषण), 2015, साहित्य और राजनीति की तीसरी धारा (विश्लेषण) 2015, मदर इंडिया (अनुवाद) 2019, आरएसएस और बहुजन चिंतन (विश्लेषण), 2019, डॉ. अंबेडकर और वाल्मीकि समाज (अनुवाद) 2019, कबीर और कबीर पंथ (अनुवाद) 2022, चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु ग्रंथावली (ग्रंथावली 4 भाग) 2023 आदि उनकी पुस्तकें हैं।
2. भारती कँवल, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, निवेदन, पृ. 17
3. https://www.hindwi.org/kavita/ek-puri-umr-malkhan-singh-kavita
4. भारती कँवल, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, प्रीत की रेखाएं, पृ. 51
5. भारती कँवल, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, नव वर्ष 1995, पृ. 50
6. वही, पृ. 50
7. भारती कँवल, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, तुम क्रांति नहीं करोगे, पृ. 53
8. वही, पृ. 53
9. भारती कँवल, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, बलिहारी है मन, पृ. 27
10. वही, पृ. 28
11. भारती कँवल, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, मुक्ति संग्राम जारी है, पृ. 33
12. https://www.forwardpress.in/2024/02/philosophy-hinduism-and-social-reform-movements/

अनुज कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा-797004

युवाओं के बीच ओटीटी प्लेटफॉर्म की लोकप्रियता से टेलीविजन पर पड़ता प्रभाव

–शालिनी प्रसाद
–डॉ. राहुल अमीन

प्रौद्योगिकी बदलने पर मीडिया, मनोरंजन और संचार उद्योग हमेशा बदलते हैं। इस लेख में शोधकर्ता बताते हैं कि मनोरंजन उद्योग में कैसे बदलाव हो रहे हैं और इसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। टेलीविजन की तुलना में ओटीटी प्लेटफॉर्म एक नया माध्यम है। यह माध्यम काफी समय से मौजूद है लेकिन भारत में कोविड-19 के दौरान लोगों के बीच इसकी लोकप्रियता बढ़ गई है। ओटीटी ने कन्टेंट वितरित करने और उपभोग करने के तरीके में क्रांति ला दी है, जिससे कन्टेंट उपभोक्ताओ को अपने लक्षित दर्शकों के साथ सीधे जुड़ने का एक आधुनिक अवसर मिला है। ये प्लेटफॉर्म कंप्यूटर, स्मार्टफोन, स्मार्ट टीवी और लैपटॉप जैसे कई इंटरनेट-सक्षम उपकरणों के माध्यम से सुलभ सेवाएँ और कन्टेंट प्रदान करते हैं। ओटीटी का मुख्य लाभ दर्शकों से तुरंत प्रतिक्रिया प्राप्त करना है, जिससे कन्टेंट निर्माता दर्शकों की पसंद के आधार पर अपनी पेशकश तैयार कर सकते हैं। संक्षिप्त नाम ''ओटीटी'' का अर्थ ''ओवर-द-टॉप'' है, एक ऐसा शब्द जिसने मीडिया और मनोरंजन उद्योग में प्रमुखता हासिल की है। इस संदर्भ में, यह केबल, उपग्रह या प्रसारण टीवी जैसे प्रसारण के पारंपरिक साधनों को पछाड़कर इंटरनेट के माध्यम से वीडियो और ऑडियोकन्टेंट के वितरण को आसन करता है। ओटीटी सेवाओं के उद्भव ने तीन प्राथमिक श्रेणियाँ पेश की हैं : सदस्यता वीडियो-ऑन-डिमांड (एसवीओडी), विज्ञापन-समर्थित वीडियो-ऑन-डिमांड (एवीओडी), और ट्रांजेक्शनल वीडियो-ऑन-डिमांड (टीवीओडी)। अनिवार्य रूप से, ओटीटी केबल टीवी का एक आधुनिक विकल्प प्रदान करता है, जो उपयोगकर्ताओं को बिना केबल कनेक्शन के ढेर सारी मीडिया कन्टेंट तक ऑनलाइन पहुँचने की अनुमति देता है। केबल टीवी के व्यापक उपयोग के बावजूद भी इस प्रवृत्ति ने महत्वपूर्ण गति पकड़ ली है। केबल टीवी के विपरीत नेटफ्लिक्स और स्पॉटिफ जैसे ओटीटी प्लेटफॉर्म, ग्राहकों को सीधे इंटरनेट पर विविध शो और कार्यक्रमों प्रदान करता है। इन सेवाओं को ओटीटी प्लेटफॉर्म द्वारा सुविधा प्रदान की जाती है जो उपयोगकर्ताओं को विभिन्न इंटरनेट से जुड़े उपकरणों पर कन्टेंट स्ट्रीम करने की अनुमति देती है। इन उपकरणों में स्मार्टफोन, स्मार्ट टीवी, टैबलेट, कंप्यूटर और स्ट्रीमिंग मीडिया प्लेयर शामिल हैं। शब्द ''ओवर-द-टॉप'' इस विचार को समाहित करता है कि कन्टेंट वितरण केबल या सैटेलाइट टीवी जैसे पारंपरिक वितरण तंत्र से परे है। यह अभिनव वितरण मॉडल उपयोगकर्ताओं को कंप्यूटर, फोन, टैबलेट और स्ट्रीमिंग मीडिया प्लेयर जैसे विभिन्न उपकरणों पर समर्पित ऐप्स और वेबसाइटों के माध्यम से कन्टेंट का उपभोग करने और उससे जुड़ने में सक्षम बनाता है। नतीजतन, ओटीटी व्यक्तियों और उद्यमों के लिए अपने लक्षित दर्शकों के साथ सीधे वीडियो कन्टेंट साझा करने का एक आकर्षक माध्यम बनकर उभरा है। पारंपरिक चैनलों को दरकिनार करके, ओटीटीप्लेट फॉर्मकन्टेंट उपभोग के परिदृश्य को नया आकार देते हुए वैश्विक स्तर पर दर्शकों तक पहुँचने की क्षमता रखता है।

टेलीविजन मीडिया में दो प्रकार के कार्यक्रम प्रारूप होते हैं : फिक्शन और नॉन-फिक्शन। धारावाहिक, सिटकॉम, कॉमेडी शो, विज्ञापन और एनीमेशन कार्यक्रम काल्पनिक कार्यक्रम हैं, और वास्तविकता, तथ्य, आंकड़े, कल्पना का कोई दायरा नहीं, पत्रकारिता शैली और वृत्तचित्र टेलीविजन द्वारा प्रस्तुत गैर-काल्पनिक कार्यक्रम हैं। भारतीय लोग परिवार के साथ बैठना और टेलीविजन कार्यक्रम देखना पसंद करते हैं। विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम भारतीय दर्शकों पर अन्य प्रभाव डालते हैं। टेलीविजन कार्यक्रम दर्शकों पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव डालते हैं। जो लोग अधिकतर समय टेलीविजन देखने में बिताते हैं वे आसानी से रील की दुनिया को वास्तविक दुनिया के रूप में समझने लगते हैं। टेलीविजन की दुनिया के सबसे आम और आवर्ती संदेशों को प्रतिबिंबित करने वाले तरीकों से, टीवी देखना एक मतलबी और डरावनी दुनिया में अतिरंजित विश्वास पैदा करता है (गर्बनेर, 1976)। शोध के निष्कर्षों से पता चलता है कि यदि

युवा टेलीविजन पर हिंसक दृश्य देखते हैं और तो वे उन लोगों से प्रेरित होकर आक्रामक व्यवहार और आक्रामक भावनाओं के साथ काम करना शुरू कर देते हैं (बुशमैन और ह्यूसमैन, 2014)। दो-तिहाई टेलीविजन कार्यक्रमों में किसी-न-किसी प्रकार की शारीरिक हिंसा होती है, जो युवाओं को आंशिक रूप से प्रभावित कर सकती है (कपलान, 2012)।

ओटीटी प्लेटफॉर्म धारावाहिक, वेब शृंखला, लघु फिल्में, वृत्तचित्र कार्यक्रम, फीचर फिल्में, रियलिटी शो, एनिमेटेड कार्यक्रम, कॉमेडी शो और सिटकॉम जैसे कार्यक्रमों के विभिन्न प्रारूप प्रदान करते हैं। यदि दर्शकों ने प्राइम सेवाओं की सदस्यता ली, तो स्ट्रीमिंग के दौरान लोगों को विज्ञापनों से बाधा नहीं आएगी। कुछ ओटीटी प्लेटफॉर्म टेलीविजन कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं जिन्हें टेलीविजन पर भी प्रसारित किया जाता है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में कई एपिसोड होते हैं और इन्हें धारावाहिक कहा जाता है। हालाँकि, ऑनलाइन वेबसीरीज ओटीटी प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध है। इसे सत्रों में विभाजित किया गया है, और प्रत्येक सीजन में अधिकतम 20 या न्यूनतम 6 एपिसोड होते हैं। वेबसीरीज सस्पेंस के साथ समाप्त होती हैं, इसलिए एक और सत्र देखने की उत्सुकता बनी रहती है। लोग अगले सत्र की प्रतीक्षा करते हैं और कभी-कभी सीजन को एक ही बैठक में समाप्त कर देते हैं। पांडा और पांडे (2017) ने पाया कि अत्यधिक देखने की प्रेरणा सामाजिक संपर्क, वास्तविकता से पलायन, कन्टेंट तक आसान पहुँच और स्ट्रीमिंग के दौरान कोई विज्ञापन न होना है। लगातार एक बार में पूरा सीजन देखने का ऐसा व्यवहार दर्शकों की कन्टेंट की लत को दर्शाता है जो अकसर उनके निजी जीवन में गड़बड़ी का कारण बनता है, चाहे वह असामाजिक व्यवहार प्रदर्शित करना हो, भावनात्मक संवेदनशीलता में वृद्धि हो, या नींद के चक्र में व्यवधान हो, जिससे विभिन्न स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं जो आमतौर पर लोगों के बीच होती हैं। जवानी शोधकर्ता के अनुसार, हिंसक कार्यक्रमों का युवाओं पर महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, लेकिन ज्यादातर समय, ये प्रभाव नकारात्मक होते हैं (रहमान, 2017)। चूंकि नया ऑडियो-विजुअल मीडिया ओटीटी प्लेटफॉर्म दर्शकों को कई तरह से प्रभावित करना शुरू कर रहा है, इस शोध अध्ययन के दौरान यह कथन स्पष्ट हो गया है। अय्यर, के.वी. (2018) ने अपने लेख में पाया कि इंटरनेट सस्ता और अधिक उपलब्ध हो गया है, जिससे ऑनलाइन स्ट्रीमिंग सेवाओं में वृद्धि हुई है। ओटीटी (ओवर-द-टॉप) प्लेटफॉर्मवेब शृंखला अपने दर्शकों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने और बनाए रखने के लिए एक अभिनव और प्रभावी माध्यम हो सकती है, इसलिए युवा शुरुआत पारंपरिक विज्ञापनों की उपस्थिति को अस्वीकार करते हैं। मैट्रिक्स, एस. (2014), के शोध से पता चला नेटफ्लिक्स किशोर की पसंद और उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए अत्यधिक देखने की प्रथा को बढ़ाने और एक शो के पूरे सीजन को एक साथ रिलीज करने की रणनीति लागू करता है। धानुका, ए. और बोहरा, ए. (2019) ने 'बिंज-वॉचिंगः युवाओं में वेब-सीरीज की लत' पर एक शोध लेख लिखा। शोधकर्ताओं ने पाया कि मुंबई में युवा समूह में नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से बिंज-वॉचिंग देखना पसंद करते हैं। समय उनकी कार्य माँगों पर निर्भर करता है। लेख में उल्लेख किया गया है कि अत्यधिक देखने से युवाओं के दिमाग और व्यवहार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह महामारी से पहले किया गया शोध था।

दर्शक टीवी मीडिया के बजाय ओटीटी मीडिया को चुन रहे हैं क्योंकि दर्शकों को लगता है कि टेलीविजन की तुलना में ओटीटी प्लेटफार्मों तक पहुँच आसान है और दर्शकों को टेलीविजन ओटीटी प्लेटफार्मों की तुलना में कम मनोरंजक लगता है। सुंदरवेल, ई., और एलंगोवन, एन. (2020) ने अपने शोध में निष्कर्ष निकाला है कि लोगों में मनोरंजन के माध्यम में परिवर्तन होना एक लंबी प्रक्रिया है क्योंकि केबल कनेक्शन मिलना अभी भी किफायती है पर वीडियो ब्राउजिंग के लिए डेटा कनेक्शन एंड सब्सक्रिप्शन चार्ज लगती है। भारतीय युवा हमेशा डिजिटल मीडिया की ओर आकर्षित होते हैं, इसलिए केबल टीवी पर जीत हासिल करने के लिए ओटीटी (ओवर-द-टॉप) को एक अच्छी व्यावसायिक रणनीति की आवश्यकता है। दर्शक टेलीविजन की ओर से ओटीटी को प्राथमिकता देने लगते हैं, उन्हें बस सदस्यता शुल्क पर कुछ काम करने की जरूरत होती है। दर्शकों को ओटीटी (ओवर-द-टॉप) प्लेटफॉर्म तक पहुँचने के दौरान सदस्यता शुल्क का सामना करना पड़ता है, लेकिन 41 हजार और उससे अधिक माता-पिता के मासिक आय वर्ग के दर्शकों को ओटीटी (ओवर-द-टॉप) प्लेटफॉर्म तक पहुँचने के दौरान धीमी इंटरनेट कनेक्टिविटी के मुद्दों का सामना करना पड़ता है। माता-पिता की मासिक आय का दर्शकों की पसंद पर प्रभाव पड़ता है। 41 हजार से नीचे, सभी दर्शक सोचते हैं कि सदस्यता शुल्क अधिक है। दर्शक ओटीटी प्लेटफॉर्म की ओर आकर्षित हैं क्योंकि यह उन्हें वह कन्टेंट चुनने की अनुमति देता है जिसे वे देखना पसंद करते हैं, और दर्शक कहीं भी और कभी भी ओटीटी प्लेटफॉर्म का उपयोग कर सकते है। पुथियाकाथ, एच.एच., और गोस्वामी, एम.पी. (2021) का दावा है कि ओटीटी (ओवर-द-टॉप) विश्राम की संतुष्टि में टीवी को विस्थापित करता है। शोधकर्ता उपयोगकर्ता को कभी भी, कहीं भी उन्हें आकर्षित करने वाली और हर तरह की कन्टेंट प्रदान करने के लिए ओटीटी (ओवर-द-टॉप) की अनूठी प्रकृति को ही महत्वपूर्ण कड़ी माना है। दर्शक

ओटीटी प्लेटफॉर्म पर वेब शृंखला और टेलीविजन शो के कार्यक्रम और दूसरा ओटीटी प्लेटफॉर्म पर फिल्में और लघु फिल्में देखना पसंद करते हैं। जैन, एम.के. (2021) ने एक अध्ययन किया और पाया कि प्रौद्योगिकी मनोरंजन उद्योग के लिए इंटरनेट के उपयोग को बढ़ाने में मदद करती है, जो ओटीटी सेवाओं के साथ अच्छा प्रदर्शन करता है। महामारी कोविड-19 ने मुख्य रूप से ओटीटी (ओवर-द-टॉप) प्लेटफॉर्म की सदस्यता और लोकप्रियता में योगदान दिया है। ओटीटी (ओवर-द-टॉप) सेवा एक विशिष्ट प्लेटफॉर्म की सदस्यता द्वारा दर्शकों के मनोरंजन के लिए बिना विज्ञापन के प्रदान की जाती है। सदस्यता सेवा और इंटरनेट डेटा लागत उन सभी पहलुओं को जोड़ती है जो दर्शकों के लिए केवल मनोरंजन के लिए खर्च करना मुश्किल होता है। अधिकांश दर्शक अकेले ओटीटी प्लेटफॉर्म देखना पसंद करते हैं। टेलीविजन हमेशा से एक पारिवारिक माध्यम रहा है, जहाँ हर कोई एक साथ बैठकर टीवी देखता है। लेकिन जब कोई बच्चा कार्टून देखना चाहता है तो कोई कुछ नहीं देख पाता. ओटीटी प्लेटफॉर्म मनोरंजन का पारस्परिक माध्यम बन गया है। हर कोई अपनी पसंद के समय पर देखने के लिए अपनी पसंदीदा कन्टेंट चुनता है। हम कह सकते हैं कि लोग कभी भी, कहीं भी अपनी पसंद की कन्टेंट का प्रबंधन कर सकते हैं। गुप्ता, म.प्र. (2021) ने यह कहते हुए अध्ययन का निष्कर्ष निकाला कि हर समय कन्टेंट की उपलब्धता, एपिसोड के लिए डाउनलोड विकल्प और कहीं भी पहुँच लोगों को वेब शृंखला की ओर बढ़ने में मदद करती है। दर्शक विज्ञापनों को स्किप कर सकते हैं, विडियो को आगे पीछे बढ़ाकर देख सकते हैं, ये सुविधा आपको टेलीविजन प्रसारण में नहीं मिलती है, यह भी एक तथ्य है कि दर्शक टेलीविजन के बजाय ओटीटी को चुनते हैं (क्रोनिन एंड माइनली, 1992)। ओटीटी (ओवर-द-टॉप) प्लेटफॉर्म तक पहुँचने के लिए उपकरण के रूप में मोबाइल फोन और टैबलेट का उपयोग ज्यादातर करते हैं क्योंकि हम इसे कहीं भी कभी भी उपयोग कर सकते हैं। टेलीविजन दर्शकों तक सीमित चैनल पहुँचाता है। कोविड-19 के दौरान ओटीटी (ओवर-द-टॉप) दर्शकों को व्यक्तिगत उपकरणों पर सामग्री की एक शृंखला तक पहुँचने के विकल्प दिए गए थे (निझावनएटअल.; एस., 2020)। ओटीटी प्लेटफॉर्म एक बड़े स्कोप और इनोवेशन का मंच है।

अधिकांश दर्शक वेब शृंखला और ऑनलाइन कन्टेंट कभी-कभी उन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती है। बटलर, एफ., और पिकेट, सी. (2009) ने अपने शोध लेख 'टेलीविजन कार्यक्रम अकेलेपन को दूर कर सकते हैं' में कहा है कि किसी व्यक्ति की पसंदीदा फिल्म या टीवी कार्यक्रम उनके अकेलेपन को ठीक करता है। कभी-कभी लोग अकेलेपन और सामाजिक संकट से पीड़ित होते हैं, इसलिए वे अपने पसंदीदा कार्यक्रम और शृंखला देखते हैं, उनके बीच एक सुकून की जगह ढूंढते हैं और राहत महसूस करते हैं। दर्शकों का मानना है कि ओटीटी कार्यक्रम/शृंखला कभी-कभी उन्हें एक शानदार जीवन शैली अपनाने के लिए प्रभावित और प्रेरित करती हैं। हम यह कहकर निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 18-22 आयु वर्ग के लोग कभी-कभी सोचते हैं, और 23-31 आयु वर्ग के दर्शक इस बात से सहमत हैं कि ओटीटी कार्यक्रम/शृंखला उन्हें भव्य जीवन शैली स्वीकार करने के लिए प्रभावित करते हैं। स्टारोस्टा, जे. एटअल. (2020) ने लिखा कि लोग दैनिक समस्याओं से बचने के लिए अत्यधिक बिंज-वॉच करते हैं। व्यक्ति अत्यधिक देखने के बाद नकारात्मक भावनाओं से निपटने के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं। दर्शक स्कूल, काम, कर्तव्यों, खराब स्वास्थ्य और नकारात्मक सामाजिक परिणामों की उपेक्षा करना शुरू कर देते हैं। तकनीकी प्रगति मनोरंजन के नए रूपों और व्यवहार परिवर्तन में खतरों के प्रकार पैदा करती है। अधिकांश दर्शक सोचते हैं कि, कुछ हद तक, ओटीटी मीडिया तक पहुँच उनकी पढ़ाई को प्रभावित करती है। ओटीटी मीडिया तक आसान पहुँच कुछ हद तक उनके अध्ययन को प्रभावित करती है। दर्शक कभी-कभी ओटीटी प्लेटफॉर्म देखने के बाद हिंसा और अश्लीलता की ओर आकर्षण महसूस करते हैं। सिंघल, ए., और रोजर्स, ई.एम. (1988) भारत में विकास के रूप में टेलीविजन सोपओपेरा पर चर्चा करते हैं। शोधकर्ता ने कहा कि नाटकीय कार्यक्रम दर्शकों को आकर्षित करते हैं। हम लोग कार्यक्रम उद्योग को नए आयाम देते हैं और टेलीविजन को एक अच्छे, मजबूत राष्ट्र और विकास के निर्माण में मदद करते हैं। यह कार्यक्रम दर्शकों के लिए खुद को विकसित करने का एक अच्छा स्रोत बन गया। वैसे ही आजकल वेबसीरीज का चलन है. कंटेंट निर्माताओं को ओटीटी (ओवर-द-टॉप) पर जो प्रस्तुत किया गया है उस पर पुनर्विचार करना चाहिए। अगर ऑडियो-वीडियो मीडिया कुछ अच्छा पेश करता है तो दर्शक उसे देखना पसंद करते हैं। शोधकर्ताओं ने पाया कि टीवी क्राइम शो युवाओं में नई तकनीकों और विचारों को बढ़ावा देते हैं। टीवी क्राइम शो मुख्य रूप से दर्शकों के हित के लिए आक्रामकता, अश्लीलता और वास्तविकता में हेरफेर जैसी नकारात्मक को बढ़ावा देते हैं, जो एक स्वस्थ समाज के लिए भी अनुपयुक्त है अधिकांश उत्तरदाताओं को लगता है। हर माध्यम का एक रूप होता है कुछ अच्छा तो कुछ बुरा ओटीटी एक नए माध्यम के रूप में उभर कर सामने आया है और हमें इसके सकारात्मक पहलू पर और काम करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. गेर्बनेर, जी., ग्र०स, एल., मॉर्गन, एम., सिग्नोरीली, एन., और शानहन, जे. (2002)। टेलीविजन के साथ बड़ा होनाः खेती की प्रक्रियाएँ। मीडिया प्रभावों में (पृ. 53-78)। रूटलेज।
2. बुशमैन, बी.जे., और ह्यूजमैन, एल.आर. (2014)। डिजिटल गेम में हिंसा और आक्रामकता पर पच्चीस साल के शोध पर दोबारा गौर किया गया। यूरोपीय मनोवैज्ञानिक।
3. कपलान, ए. (2012)। मीडिया में हिंसाः व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है? (मुख्य कहानी)। मनोरोग समय, 29 (10), 1-11.
4. पांडा, एस.; पांडे, एस. द्विघातुमान-देखना और कॉलेज के दर्शकः प्रेरणाएँ और परिणाम। युवा उपभोग. 2017, 18, 425-438।
5. रहमान, एम.ए. (2017)। बच्चों के व्यवहारिक विकास पर टीवी क्राइम शो का प्रभाव।
6. अय्यर, के.वी. (2018)। युवा उपभोक्ताओं के बीच भारतीय वेब शृंखला में उत्पाद प्लेसमेंट की प्रभावशीलता का एक अध्ययन। आईएसएसएनः 2230, 9667.
7. मैट्रिक्स, एस. (2014)। नेटफ्लिक्स प्रभाव : किशोर अत्यधिक देखना, और ऑन-डिमांड डिजिटल मीडिया रुझान। जेनेसीः युवा लोग, ग्रंथ, संस्कृतियाँ, 6(1), 119-138।
8. धानुका, ए., और बोहरा, ए. (2019)। द्विघातुमान-देखनाः युवाओं में वेब-सीरीज की लत। प्रबंधन क्वेस्ट, 2(1).
9. सुंदरवेल, ई., और एलंगोवन, एन. (2020)। भारत में ओवर-द-टॉप (ओटीटी) वीडियो सेवाओं का उद्भव और भविष्य : एक विश्लेषणात्मक शोध। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस, मैनेजमेंट एंड सोशल रिसर्च, 8(2), 489-499।
10. पुथियाकाथ, एच.एच., और गोस्वामी, एम.पी. (2021)। क्या ओवर-द-टॉप वीडियो प्लेटफॉर्म भारत में पारंपरिक टीवी चैनलों की तुलना में गेम चेंजर है? एक आला विश्लेषण. एशिया पेसिफिक मीडिया एजुकेटर, 31(1), 133-150।
11. जैन, एम.के. (2021)। ओटीटी प्लेटफॉर्म का उदयः उपभोक्ता प्राथमिकताएँ बदल रही हैं। ईपीआरए इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टी डिसिप्लिनरी रिसर्च (आईजेएमआर), 7(6), 257-261।
12. गुप्ता, एम. पी. (2021), भारतीय ग्राहकों के टीवी शृंखला से वेब शृंखला की ओर बदलाव को प्रभावित करने वाले कारक- भारत में ओटीटी सेवाओं का भविष्य। ईपीआरए इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टी डिसिप्लिनरी रिसर्च (आईजेएमआर), खंड 7, अंक 2,150।
13. क्रोनिन, जे. और मेनेली, ई. (1992)। भेदभाव बनाम बचाव : टेलीविजन विज्ञापनों को 'जिप करना'। जर्नल ऑफ इंटरनेशनल एडवरटाइजिंग, 21(2), 1-7.
14. निझावन, जी.एस., और दहिया, एस. (2020)। भारत में ओटीटीएस को अपनाने में उत्प्रेरक के रूप में कोविड की भूमिकाः विकसित हो रहे उपभोक्ता उपभोग पैटर्न और भविष्य के व्यावसायिक दायरे का एक अध्ययन। सामग्री, समुदाय और संचार जर्नल, 298-311।
15. बटलर, एफ., और पिकेट, सी. (2009)। काल्पनिक मित्रः टेलीविजन कार्यक्रम अकेलेपन को दूर कर सकते हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक।
16. स्टारोस्टा, जे., इजीडोर्जिक, बी., और डोब्रोवोलस्का, एम. (2020)। समस्याग्रस्त द्विघातुमान-देखने के लक्षणों से जुड़े कारकों के रूप में व्यक्तित्व लक्षण और प्रेरणा। स्थिरता, 12(14), 5810.
17. सिंघल, ए., और रोजर्स, ई.एम. (1988)। भारत में विकास के लिए टेलीविजन सोप ओपेरा1. राजपत्र (लीडेन, नीदरलैंड), 41(2), 109-126।

शालिनी प्रसाद
डॉक्टरेट रिसर्च स्कॉलर
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
अर्का जैन विश्वविद्यालय, जमशेदपुर, भारत
shaliniprasad.2050@gmail.com

डॉ. राहुल अमीन
एसोसिएट प्रोफेसर एवं प्रमुख
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
अर्का जैन विश्वविद्यालय, जमशेदपुर, भारत

राष्ट्रीय एकात्मता यात्रा का भारत की एकता में योगदान का अध्ययन

–अनुज
–स्वेता रानी
–डॉ. धीरज कुमार

राष्ट्रीय एकात्मता यात्रा के माध्यम से छात्र देश की विविधता को गहराई से समझते हैं। भारत विविधतों से परिपूर्ण है। यह विविधता भौगोलिक, भाषाई, खान-पान, रहन-सहन व पहनावा आदि के तौर पर देखा जा सकता है। भारत को जो भौगोलिक रूप से विखंडित नहीं कर सके, वे भारत की विविधता को उपकरण बनाकर देश के एकता के सूत्र को कमजोर करने का प्रयत्न करते रहे हैं। भारत एक विशाल देश है, जो कश्मीर से कन्याकुमारी तथा गुजरात से अरूणाचल तक फैला हुआ है। भौगोलिक विविधता के कारण पूर्वोत्तर भारत को देश के बाकी हिस्से से अलग रखने का प्रयास किया गया। पूर्वोत्तर के इन राज्यों को मौलिक अवसंरचनाओं से भी दूर रखने के प्रयास किए गए। केन्द्र सरकार ने 2014 के बाद से पूर्वोत्तर की ओर विशेष ध्यान दिया है। राष्ट्रीय एकात्मता यात्रा साठ के दशक से ही देश के एकता सूत्र को मजबूती प्रदान करने का कार्य कर रहा है। देश का युवा पूर्वोत्तर को बहुत ही सूक्ष्मता व वैज्ञानिकता से देश की सांस्कृतिक एकता के सूत्र को मजबूत कर रहा है।

देश की विविधता का सम्मान करने व विविधता को जानने के लिए (एस.ई.आई.एल) (S.E.I.L.) यात्रा का आयोजन किया जाता है। SEIL (Student Experience in Interstate Living) इस यात्रा को अन्तर्राज्यीय छात्र जीवन दर्शन यात्रा के नाम से जाना जाता है। वर्तमान युग में दुनिया को वैश्विक ग्राम माना जाता है। इस वैश्विक ग्राम की अवधारणा में भी भारत के भीतर के पूर्वोत्तर को परिभाषाओं में भी रखना उचित नहीं समझा। भारत में पूर्वोत्तर का हिस्सा लम्बे समय से बाकी हिस्से से दूर रहा, यह दूरी भौगोलिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक रूप से भी थी। भारत बहुसांस्कृतिक देश है। संस्कृति का परिसंचरण भाषा के द्वारा होता है। प्रसिद्ध भाषाविद् ग्रियर्सन के अनुसार भारत में 179 भाषाएँ तथा 544 के लगभग बोलियाँ हैं। इन भाषाओं व बोलियों में भिन्नता के कारण संस् ति में परिवर्तन होता है। इस विशाल राष्ट्र को सांस्कृतिक रूप से कमजोर करने के लिए कुछ असामाजिक तत्व इस विभिन्नता को हथियार बनाते आए हैं।

भारत दुनिया की बड़ी आबादी वाला देश है। भारत युवाओं की आबादी के मामले भी सबसे युवा देशों की पंक्ति में प्रथम स्थान पर है। इस कारण विदेशियों की निगाह समय-समय पर हमारी संस्कृति को छिन्न भिन्न करने का असफल प्रयास करते रहे हैं। युवाओं को भी पथ भ्रष्ट करने के तमाम प्रयास होते रहे जो की असफल सिद्ध हुए हैं। भारतीय समाज में सांस्कृतिक विरासत को सहेजे रखने की बेहद लम्बी की परम्परा रही है। भारतीय युवाओं को राह दिखाने के लिए स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द, महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, लाक्षित बरफुकन, रानी गिड़ालू, रानी रोलिनपूई जैसे लोगों का तप युवाओं को प्रेरणा देता है। वर्तमान में पूर्वोत्तर का युवा जीवन के विभिन्न आयाम में छात्रों शोधार्थियों विचारकों के मध्य अपनी बात रखने का एक लोकतांत्रिक प्रयास कर रहा है। जैसे चौपाल पर लोग अपना मत प्रकट करते हैं ठीक उसी प्रकार पूर्वोत्तर के युवा भी दुनिया को चौपाल मानकर अपनी कामयाबी का लोहा मनवा रहे हैं। यहाँ छात्र अध्ययन के साथ अनुभवी लोगों के सानिध्य में बहुत कुछ सीख पाते हैं। छात्रों को सिखाने के लिए नए उपागमों का उयोग किया जाता है। राष्ट्रीय एकात्मता की यह यात्रा युवाओं की चौपाल है। इस यात्रा का लक्ष्य है, की युवाओं को अनुशान से आत्मअनुशासन की ओर ले जाएँ।

सील यात्रा ने स्थापना के दिनों से ही छात्र हितों को ध्यान में रख कर काम किया है। सील यात्रा के माध्यम से भारत

की सांस्कृतिक विविधता का सम्मान के उपागम का प्रयोग करते हुए बहुत साधारण तरीके से ऐतिहासिक बदलाव लाने की परम्परा जारी है। सील यात्रा एक युवाओं में उत्साह भरता है तथा युवाओं को यात्रा के दौरान चौपाल सरीखे मंच प्रदान करता है, कि युवा अपनी बात कह पाएँ।

सील यात्रा

सील यात्रा साठ के दशक से शुरू होकर यह अनवरत चलने वाली यात्रा है। कोविड महामारी के दौरान सील यात्रा ने दो वर्षों के विराम का काल भी देखा।

एस.ई.आई.एल (सील) यात्रा के उद्देश्य

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा

प्रत्येक वर्ष सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा का आयोजन किया जाता है। यह यात्रा सन 1965 से अनवरत रूप से जारी है, कोरोनाकाल में यह यात्रा स्थगित रही। सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा के माध्यम से पूर्वोत्तर के छात्र भारत के बाकी हिस्से का भ्रमण करते हैं, तथा भारत के बाकी हिस्से के छात्र भी पूर्वोत्तर भारत की यात्रा करते हैं। यह ग्रामीण परिवेश के युवाओं को राष्ट्रीय मंच प्रदान करता है।

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रियों का चयन

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा में छात्र-छात्राओं का चयन कई स्तर के साक्षात्कार के द्वारा किया जाता है। यह यात्रा का प्रथम चरण है, जिसकी शुरुआत कुछ माह पूर्व की जाती है। साक्षात्कार व चयन की यह प्रक्रिया कई चरणों में होती है। पूर्वोत्तर के सभी राज्यों के चयनित छात्र सुदूर ग्रामों में जाकर, देश के उस अंतिम पंक्ति के व्यक्ति से मिलना व चयन करना, उसे समझाना, जिस अंतिम पंक्ति के व्यक्ति का नाम हम सिर्फ नारों व भाषणों में सुनते आए हैं। सभी छात्रों का चयन कर उन्हें सील (एस.ई.आई.एल) के कार्यक्रम में भेजा जाता है। चयन प्रक्रिया के दौरान उन छात्रों को प्राथमिकता पर रखा जाता है, जो राज्य के बाहर कभी नहीं गए हैं। इनमें ज्यादातर युवा भले ही पड़ोसी राज्य के हों पर पहली बार एक-दूसरे से मिलते हैं।

सील (एस.ई.आई.एल) प्रशिक्षण

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रियों का चयन कर, इन्हें गुवाहाटी में 2 दिवसीय प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण में प्रत्येक यात्रा के दौरान चिन्हित राज्यों के मौसम, तापमान, खान पान आदि के बारे में विस्तारपूर्वक बताया जाता है। पूर्वोत्तर के राज्यों से आए सभी छात्रों का एक-दूसरे से परिचय कराया जाता है। पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में लगभग सभी जनजातियों को शामिल किया जाता है। जनजातियों की जनसंख्या के अनुपात में सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधियों का चयन किया जाता है। सील (एस.ई.आई.एल) का यह प्रशिक्षण रिहायसी होता है। इस कार्यक्रम में प्रत्येक दिन विशिष्ट गणमान्य व्यक्तियों को मुख्य अतिथि के तौर पर आमंत्रित किया जाता है। युवाओं का यह कुंभ गांव के मेले में लगने वाली चौपाल सरीखा होता है।

सील (एस.ई.आई.एल) समूह

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा के दौरान सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधियों को कई समूहों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक समूह का एक कॉर्डीनेटर होता है। वर्ष 2023 में सील (एस.ई.आई.एल) यात्रियों के 16 समूहों का गठन किया जाता है। इन 16 समूहों का नाम पूर्वोत्तर भारत की महान विभूतियों के नाम पर रखा गया था। लाक्षित बरफुकन, कनकलाता बरूआ, रानी लानलू रोपुईलियानी, वाना पा चानचिन किमचम, यू तिरोत सिंह, यू कियानाग नागब, पा तोगन संगमा, मातमूर जमोह, मोजी रिबा, रानी माँ गाडिनलुई, वीर तिकेन्द्रजीत सिंह, हायपू जोदोनांगमलंगमेई, सुनिती चौधरी, शांति घोष, गोपीनाथ बारदोलोई, जुडेलेई हायका नामक प्रत्येक समूहों में लगभग 45 प्रतिनिधि थे। प्रत्येक समूह ने 4 राज्यों का भ्रमण किया।

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा द्वारा व्यवहारिक शिक्षा

भारत में भ्रमण करते हुए सीखने का सबसे किफायती माध्यम रेल है। रेल यात्रा के माध्यम से भाषा, संस्कृति, भौगोलिकता, मौसम, खान-पान आदि के बदलावों को समझने में बहुत आसानी होती है। सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधियों की ज्यादातर यात्रा रेल के माध्यम से होती है। समूह के सभी व्यक्तियों के लिए टिकट बुक करना, अगले गंतव्य पर पहुँचने के बाद की रणनीति, यह सब सील (एस.ई.आई.एल) के पदाधिकारियों द्वारा सील (एस.ई.आई.एल) के केन्द्रीय कार्यालय द्वारा किया जाता है। पूर्वोत्तर के राज्यों में रेलवे का जाल इस तरह से नहीं बिछा है, जैसा की मैदानी क्षेत्रों में होता है। रेलवे का पूर्वोत्तर में सघन जाल न बिछ पाने का सबसे बड़ा कारण पिछली सरकारों की इच्छा शक्ति में कमी है। भौगोलिक रूप से भी पूर्वोत्तर का क्षेत्र दुर्गम स्थान है रेल व सड़क निर्माण के लिए। 2022 में नागालैंड में रेलवे स्टेशनों का विस्तार किया गया है। मिजोरम में भी रेल के विस्तार को लेकर युद्ध स्तर पर काम हो रहा है।

पूर्वोत्तर के ज्यादातर छात्र इस यात्रा के माध्यम से जीवन में पहली बार रेल यात्रा के अनुभव को महसूस करते हैं। तमाम तरह के बदलावों को भी अनुभवों के माध्यम से सीखते हैं।

अतिथि देवो भवः

भारतीय परम्परा में अतिथि देवो भवः की संकल्पना को यह यात्रा मूर्त रूप प्रदान करती है। इस यात्रा का मूल उद्देश्य है, भारत में एकात्मता के सूत्र को प्रबलता प्रदान करना। वर्तमान दौर में ज्यादातर आम जन मानस यात्रा के दौरान लोग होटल, डोरमैट्री, लांज आदि में ठहरना पसंद

करते हैं। इस सम्पूर्ण यात्रा के दौरान सील (एस.ई.आई.एल) यात्री आम नागरिकों के घर ठहरते हैं। पूर्वोत्तर के किसी गाँव का बच्चा जब हरियाणा के किसी गाँव में किसी के घर पर ठहरता है, तो वह उस राज्य की परम्परा व सामाजिकता तथा पारिवारिक ताने-बाने का सही अनुभव जन्य ज्ञान मिल पाता है। यह सांस्कृतिक समझ किसी होटल में ठहरने पर नहीं मिलेगी। परिवार में साथ रहने के कारण अतिथि छात्र और आतिथ्य कर रहे परिवार में जो वात्सल्य का भाव पनपता है, वह जीवन पर्यंत बना रहता है। यह यात्रा युवाओं को यह भी समझाने में मदद करती है कि हमारे भोजन का प्रकार हमारे भौगोलिक वातावरण व उपलब्धता द्वारा तय होती है। साथ ही हमें एक दूसरे की सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करना चाहिए।

सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधियों के स्वागत के लिए गंतव्य स्टेशन पर मेजबान घर के लोग उपस्थित रहते हैं। गंतव्य स्टेशन के राज्य की संस्कृति के अनुरूप छात्रों का ढोल, नगाड़े व पारम्परिक वाद्य यंत्रों द्वारा सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधि दल का स्वागत किया जाता है।

राज्य के प्रसिद्ध स्थान, धरोहर, मेले, आदि का भ्रमण। उत्तर प्रदेश में भ्रमण पर गए सील (एस.ई.आई.एल) दल के छात्रों ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ जी से लखनऊ स्थित उनके आवास पर मुलाकात की तथा रात्रि भोज भी किया। मुंबई में पहुँचे एक दल ने फिल्म अभिनेता श्री अनुपम खेर जी मुलाकात की साथ ही उनकी फिल्म का प्रीमियर शो भी साथ ही देखा। हिमाचल के धर्मशाला पहुँचे समूह ने बौद्ध धर्म के धर्म गुरू माननीय दलाई लामा जी से भेंट की। दिल्ली में भ्रमण कर रहे दल ने महामहिम राष्ट्रपति श्री द्रौपदी मूर्मू जी से भेंट की। इस यात्रा की अमिट छाप इन सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधियों के मन मस्तिष्क पर सदैव के लिए होती है।

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा के दौरान प्रत्येक राज्य में नागरिक अभिनंदन समारोह भी किया जाता है। सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधियों को सम्मानित किया जाता है। इन छात्रों के समूह का बाकी लोगों से संवाद होता है। सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधि अपने अनुभवों को जनता से साझा भी करते हैं। यह नागरिक अभिनंदन तथा अनुभव साझा कार्यक्रम में युवा चौपाल सरीखी बैठकों में यात्रा के दौरान अपने अनुभवों को साझा करते हैं।

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा अवधि

सील (एस.ई.आई.एल) की यात्रा का कोई निश्चित समय नहीं है। यात्रा अवधि को कम अथवा ज्यादा किया जाता है। वर्ष 2023 की सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा 20 दिवसीय महापर्व था।

राष्ट्रीय एकात्मता

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा का उद्देश्य होता है, राष्ट्र की एकता। सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा के माध्यम से दोनों ओर के सील (एस.ई.आई.एल) यात्रियों को समझ आता है। भारत भले ही विविधताओं से भरा देश हो, पर इन विविधताओं के ही मध्य एकता है। यह यात्रा बताती है कि कोई भी राज्य पूर्ण नहीं है। प्रत्येक राज्य में बहुत अनोखी खूबियाँ हैं, जो अन्य राज्यों में नहीं है। यह सांस्कृतिक सहयोग व समन्वय ही हमें विश्व में सबसे सशक्त राष्ट्र बनाएगा।

सांस्कृतिक आदान प्रदान

सील (एस.ई.आई.एल) के प्रतिनिधियों का स्वागत उस राज्य के परम्परागत लोक नृत्य, संगीत व गायन आदि द्वारा किया जाता है। पूर्वोत्तर के हर कबिले का अपना नृत्य व पहनावा है। पूर्वोत्तर के सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधि भी अपने लोक नृत्य, संगीत आदि को दिखाते हैं। इससे भी कला व संस्कृति का आदान प्रदान होता है।

आतिथ्य सत्कार

सील (एस.ई.आई.एल) के प्रतिधियों को इस यात्रा के माध्यम से यह ज्ञात होता है। भारत में आतिथ्य सत्कार तथा अतिथियों को विदा करने के लिए अलग-अलग परम्पराओं का चलन है। सील (एस.ई.आई.एल) के प्रतिनिधि कहते हैं, अब यात्रा के पूर्ण होने पर उन्हें लगता है कि भारत में उनके दो घर हैं।

यात्रा समापन

यात्रा के समापन पर एक भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है। इस कार्यक्रम में सील (एस.ई.आई.एल) के सभी प्रतिनिधि, कार्यक्रम के मुख्य अतिथि, इन प्रतिनिधियों के मित्र व रिश्तेदार, सील (एस.ई.आई.एल) के पदाधिकारी भी उपस्थित रहते हैं। यह कार्यक्रम सील (एस.ई.आई.एल) प्रतिनिधियों के अनुभवों को साझा करने का कार्यक्रम होता है। इस अनुभव साझा करने के दौरान यात्री बताते हैं कि यात्रा के दौरान उन्हें क्या अच्छा लगा तथा कहाँ पर चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सील (एस.ई.आई.एल) उन सुझावों पर चिंतन व मंथन करता है। यह प्रयास किया जाता है कि आगामी यात्रा के दौरान कोई अन्य सील यात्री का इन समस्याओं से सामना न हो।

एकात्मता का भाव

सील (एस.ई.आई.एल) यात्री जब आतिथ्य सत्कार करने वाले परिवार से अलग हो अपने गृह राज्य की ओर निकलते हैं। तब सभी की आँखें नम हो जाती हैं। कार्यक्रम के समापन में अपने साथियों से बिछुड़ते समय भी इन छात्रों के आँसू नहीं थमते हैं।

युवा संगम

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा 1965 के दशक से ही चल रही है। राष्ट्रीय एकता, भारतीयता, बन्धुत्व के भाव को यह यात्रा प्रबलता प्रदान करती है। भारत सरकार ने

सील (एस.ई.आई.एल) की तरह ही युवा संगम कार्यक्रम को शुरू करने हेतु आधिकारिक घोषणा की है। युवा संगम कार्यक्रम का लक्ष्य होगा हजारों युवाओं को सांस्कृतिक आदान प्रदान के माध्यम से देश से अवगत कराना।

निष्कर्ष

सील (एस.ई.आई.एल) यात्रा के माध्यम से पूर्वोत्तर से भारत के बाकी हिस्सों के मध्य की भावनात्मक दूरी को कम कर रहा है। राष्ट्रीय एकात्मता को प्रबलता प्रदान करने का कार्य इस यात्रा के माध्यम से हो रहा है। देश में बहुत सी सरकारें आईं पर पूर्वोत्तर भारत विकास से अछूता ही रहा। आज पूर्वोत्तर भारत में विकास बहुत तेजी से हो रहा है। सील एस ई आई एल के माध्यम से लोग एक दूसरे के करीब आ रहे हैं। इस राष्ट्रीय एकात्मता यात्रा के सहभागी अपने साथियों को भारत में अन्य राज्यों में पढ़ने लिखने व घूमने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। सील की यह यात्रा पूर्वोत्तर के छात्रों को चौपाल सरीखा एक मंच प्रदान करती है। राष्ट्रीय एकात्मता यात्रा के माध्यम से छात्र भारत के अन्य राज्यों में भ्रमण करते हैं। पूर्वोत्तर भी सांस्कृतिक लिहाज से विविधता में एकता को समेटे हुए है। इस यात्रा के माध्यम से छात्र पूर्वोत्तर के बाकी राज्यों के छात्र-छात्राएँ आपस में भी मेल-जोल बढ़ाते हैं। यह यात्रा देश की एकता के सूत्र को सशक्त करती है।

संदर्भ

- Narain, I. (1976). Cultural pluralism, national integration and democracy in India. Asian survey, 16 (10), 903-917.
- Dikshit, K. R., & Dikshit, J. K. (2014). North-east India: Land, people and economy. Dordrecht: Springer Netherlands.
- Prabhakar, G. (2019). Rashtriya Ekatmata evam Shramik Kshetra (राष्ट्रीय एकात्मता एवं श्रमिक क्षेत्र)
- PALKHIWALA, N. (2016). We the Nation-MEHTA Publishing House.
- Embree, A. T. (1973). Pluralism and national integration: the Indian experience. Journal of International Affairs, 41-52.
- Haokip, T. (2012). Political integration of northeast India: A historical analysis. Strategic Analysis, 36 (2), 304-314.
- Chauhan, R. (2009). National e-governance Plan in India. United Nations University–International Institute for Software Technology
- Dunia, N. (2023). मणिपुर के लोक नृत्य और लोक संस्कृति से महकी इंदौर की धरा

अनुज
शोधार्थी
जनसंचार विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल, मिजोरम।
thanujpratap@gmail.com

स्वेता रानी
शोधार्थी
जनसंचार विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल, मिजोरम।

डॉ. धीरज कुमार
सहायक आचार्य
जनसंचार विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल, मिजोरम।

असगर वजाहत के नाटकों में सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भ

–सोनू (पीएचडी)

–प्रो. नीलम राठी

प्रस्तावना

अक्सर समकालीन हिन्दी नाटकों की वस्तुस्थिति को लेकर नाट्य अलोचकों का रवैया उदासीन रहा है। वे मानते हैं कि 'अस्सी के दशक बाद समकालीन हिन्दी नाटक के क्षेत्र में कुछ खास काम नहीं हुआ' या 'कुछ गिने-चुने नाटक ही देखने को मिलते हैं।' इस तरह के पूर्वाग्रह से दूर हटकर अगर हम स्वतंत्र विचार करें तो हम पाएंगे कि समकालीन हिन्दी नाटकों की अभिव्यक्ति विशिष्ट विमर्श के रूप में हुई है। अस्सी के बाद का दौर भारतीय समाज में एक बड़े परिवर्तन का दौर है। सत्ता की राजनीतिक-आर्थिक रणनीतियों का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। भूमंडलीकरण ने वैश्विक रूप से केवल वस्तुओं और उत्पादों का ही हस्तांतरण नहीं किया अपितु वैचारिकता का भी आगमन भारतीय समाज में हुआ। अस्मिता मूलक विमर्श की जो लहर सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में चल रही थी उसने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के में भारतीय परिवेश को भी प्रभावित किया। जातिवाद, नस्लवाद, स्त्री अस्मिता के प्रश्न, वृद्ध विमर्श जैसे मुद्दों को समकालीन हिन्दी साहित्य की विशिष्ट प्रवृत्तियों के रूप में पहचाना जा सकता है।

बीज शब्द - भारतीय समाज के बदलते मूल्य, राजनैतिक सत्ता का बदलता स्वरूप, स्त्री-पुरुष संबंध, धार्मिक पाखंड, विभाजन का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव, साम्प्रदायिक सौहार्द, नई पीढ़ी की दिशा हीनता, उपभोगतावादी संस्कृति, कलाकार और सत्ता का द्वंद्व, असगर वजाहत के नाटकों की भाषा।

शोध प्रविधि - प्रस्तुत शोध विषय में विवेचनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

शोध आलेख

समकालीन दौर के लगभग सभी हिन्दी नाटककारों ने अस्मिता मूलक विमर्श के विभिन्न पहलुओं को अपने नाटकों में अभिव्यक्त किया है। असगर वजाहत इस दौर के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। बदलते हुए भारतीय परिवेश को उनके नाटकों के माध्यम से समझा जा सकता है। 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याई नई', 'इन्ना की आवाज', 'वीरगति', 'महाबली' तथा गोडसे / गाँधी. कॉम इत्यादि उनके महत्त्वपूर्ण नाटक हैं। इन नाटकों में असगर वजाहत ने समकालीन समय में परिवर्तित होते भारतीय समाज के मूल्य, राजनीतिक सत्ता का बदलता स्वभाव, स्त्री पुरुष संबंधों का द्वंद्व, नई पीढ़ी की भविष्य के प्रति उदासीनता, धार्मिक पाखण्ड, विभाजन का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव, ऐतिहासिक पात्रों की तत्कालीन विमूढ़ता जैसे विषयों को अभिव्यक्ति दी है। असगर वजाहत केवल एक अच्छे साहित्यकार ही नहीं हैं बल्कि भारतीय समाज के इतिहास की गहन समझ और बोध को समझने वाले इतिहास के अध्येता भी हैं। किसी भी समाज विशेष को उसकी राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन, प्रभावित करते ही हैं।

'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याई नई' विभाजन की त्रासदी पर आधारित नाटक है। सांप्रदायिक सौहार्द और प्रेम नाटक का मूल विषय है। असगर वजाहत ने विभाजन की त्रासदी और उसके परिणामों से उत्पन्न हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक प्रभावों को इस नाटक में प्रस्तुत किया है। विभाजन के बाद सिकंदर मिर्जा को लखनऊ से लाहौर विस्थापित होना पड़ा। उन्हें लाहौर में जोहरी रतनलाल की हवेली आवंटित होती है और उसके साथ ही रतनलाल की माँ भी। रतनलाल की माँ अपनी उम्र के आखिरी पड़ाव पर सामंजस्य पूर्ण जीवन जीने को अभिशप्त है। यही नाटक की मुख्य पात्र भी है जिसके चारों ओर नाटक का कथानक घूमता रहता है। विभाजन के दंगों

में रतनलाल की माँ ने अपना पूरा परिवार खो दिया। वह हमीदा बेगम से कहती भी है- 'बेटी, कोई बार-बार नहीं मरता... मैं मर चुकी हाँ मनू पता है और उसके बीबी बच्चे हुम इस दुनिया विच नई है... मौत और जिन्दगी बिच मेरे वास्ते कोई फर्क नाई बचया' सिकंदर मिर्जा पहले तो रत्न की माँ को घर से निकालने की पूरी कोशिश करते हैं। लेकिन माई की सेवा परायणता से प्रभावित होकर घर से नहीं निकाल पाते तो उसे स्वीकार कर लेते हैं। सिकंदर मिर्जा कहता है -

''हुजूर माई में खिदमत का जज्बा बड़ा है''[1]

रतनलाल की माँ भी बदले हुए परिवार और समाज को अपना लेती है। और समाज में घुलमिल जाती है। पुराने परिवार की दर्दनाक मौत को भूलकर एक नए समाज में नई पहचान स्थापित करती है। मोहल्ले के मुस्लिम लोग भी बुढ़िया का आदर करने लगते हैं। गिरीश रस्तोगी लिखती हैं-

''नाटककार ने ही बड़े सहज रचनात्मक कौशल से इस बुढ़िया को ही नाटक का केंद्रीय पात्र बना दिया है सारे लोग उसी के इर्द-गिर्द हैं वही सांप्रदायिकता के घृणित, आतंकित और हिंसा प्रतिहिंसा और तीव्र घृणा को मनुष्यता में बदलने का उदाहरण बनती है।''[2]

धीरे-धीरे इनके आपसी संबन्ध और भी मजबूत होते हैं और बुढ़िया इस नए समाज में सबकी सहायता करनी वाली दादी के रूप में पहचानी जाने लगती है। विभाजन की त्रासदी में वृद्ध विमर्श को असगर वजाहत ने बहुत ही खूबसूरती से उठाया है। जो कि नाटकों में नया प्रयोग है। प्रत्येक समाज के दो पक्ष होते हैं। इस नाटक में हम देखते हैं कि यहाँ पर भी समाज के दो पक्ष हैं। एक पक्ष नासिर काजमी मौलवी इकरामुद्दीन, अलीमुद्दीन तथा सिकंदर मिर्जा का है जोकि सामंजस्यवादी हैं। वहीं दूसरा वर्ग धर्म के नाम पर पर अपना उल्लू सीधा करने वाले लालची, मक्कार पहलवान और उसके दोस्तों का है। भारतीय समाज शुरुआत से ही सामंजस्यवादी रहा है। इसने सदैव सभी को आश्रय दिया है और अपनाया है। इस बात की झलक नासिर काजमी और मौलवी इकरामनुद्दीन जैसे चरित्रों में देखने को मिलती है।

असगर वजाहत इस नाटक में हिन्दी, उर्दू के साथ साथ पंजाबी का अच्छा प्रयोग करते हैं। रतनलाल की माँ की भाषा ठेठ पंजाबी है और बाकी पात्रों की हिन्दी उर्दू मिश्रित पर इससे नाटक के कार्यव्यपार में कहीं कोई रुकावट नहीं आती। दो भाषाओं के संयोग से एक नए बिंब का निर्माण होता है। रचनात्मकता और पात्रों के बीच संवेदना बढ़ती है। प्रत्येक दृश्य के अंत में अंतराल गायन होता है। जो नाटक की लय को बढ़ाता है-

'शहर सुनसान है किधर जाएं,
खाक होकर कहीं बिखर जाएं'

'वीरगति' समकालीन सुखमय जीवन की बोरियत का हालिया बयान पेश करने वाला व्यंग्य नाटक है। इस नाटक के केंद्र में प्रतीक के रूप में वह धनी वर्ग है जो धन के बल पर कुछ भी कर सकता है। यह वर्ग अपनी दैनिक दिनचर्या से उब चुका है वह ना तो घर में सुकून पाता है, ना ही बाहर की सामान्य दिनचर्या में। अरबपति परिवार की संतान नाम सुकुमार उम्र 18 से 20 वर्ष के बीच, इसी वर्ग का उदाहरण है वह अपने पारिवारिक जीवन की दैनिक क्रियाकलापों से उब गया है वह कहता है-

''मैं खुद अपने सवालात के अंधेरे में डुबकिया लगा रहा हूँ... लेकिन हाय एक बेकली है जो मुझे तड़पाती है, एक चिनगारी है जो मुझे जलाती है, एक दीवानगी है जो मुझे पागल बनाती है।''[3]

'वीरगति' एक व्यंग्य नाटक है। जहाँ उच्च वर्ग के परिवारों की व्यवस्था को प्रदर्शित किया गया है। भारतीय समाज में सामाजिक पद प्रतिष्ठा का संकेत केवल संपन्नता है। चाहे वह नाम की हो या आराम की। संपन्नता व्यक्ति के सभी दाग मिटा देती है। 'सामाजिक आर्थिक रूप से मजबूत व्यक्ति कोई भी गलत कार्य नहीं करता' इस धारणा को यह नाटक यथार्थ रूप से प्रस्तुत करता है। नाटक का प्रमुख पात्र सुकुमार एक नवयुवक है। संभ्रांत घर का इकलौता जो चोरी, डकैती जैसे सभी कुकृत्य करता है, पर उसका धनी परिवार समाज में यह डुगडुगी पिटवा देता है, कि वह जिसके घर डाका डालेगा उसे डबल दौलत दी जाएगी इसलिए आम जनता इस चोरी को एक संभावना के रूप में देखती है। डुग्गी पीटने वाला ढिंढोरची आता है और डुग्गी बजाकर आम जन को बोलता है-

''देश के साहूकार का बेटा,
लाड का पाला नाज का बेटा घर से भागा है यह कहकर,
लूट करेगा डाकू बनकर जिसके घर वह डाकू आए..
फिर डाकू जो कुछ ले जाए,
जिसका जितना धन जाएगा
उसको दुगना मिल जाएगा,
एक मुनादी सुन लो लोगों''[4]

असगर वजाहत ने इस नाटक में नई पीढ़ी की हताशा और दिशाहीनता के बोध को स्पष्ट किया है। जीवन के बेहद उर्वर और स्वर्णिम समय को वर्तमान युवा पीढ़ी बर्बाद करने में लगी हुई है। जिसका उपयोग राष्ट्र के हित में, समाज सेवा में किया जा सकता था। दिशाहीनता और अकर्मण्यता समकालीन समय की एक विडंबना के रूप में सामने आई है जोकि किसी भी समाज के लिए हानिकारक है। सभी कुकृत्य करने के बाद भी हम देखते हैं कि वही लड़का सुकुमार मंत्री को जूता मारता है। और राजा बना दिया जाता है। समकालीन राजनीति की त्रासदी को यह

नाटक स्पष्ट करता है। यह यथार्थ का चित्रण करने वाला व्यंग्य नाटक है। धन से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। यह उपभोक्तावादी संस्कृति का ही प्रभाव है जिसके केंद्र में पूंजी है।

'गोडसे / गांधी. कॉम' एक काल्पनिक घटना पर आधारित नाटक है। इसकी कथा नाथूराम गोडसे द्वारा राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को गोली मारने के साथ शुरू होती है। बापू उसकी गोली से मरते नहीं बल्कि होश में आने पर वो सबसे पहले गोडसे के बारे में जानना चाहते हैं। वो कुछ समय बाद वर्तमान भारतीय सरकार से गोडसे से जेल में मिलने की अनुमति माँगते हैं। लेकिन उनकी जान को गोडसे से खतरा है। कहकर उन्हें रोकने की कोशिश की जाती है। अपनी मांगों को लेकर गाँधी अनशन पर बैठ जाते हैं और अंततः सरकार को झुकना पड़ता है। गाँधी गोडसे से मिलने उसके वार्ड में पहुँचते हैं। यह नाटक बड़े फलक पर गाँधीवाद को व्याख्यायित करते हुए उसकी संपूर्ण संभावनाओं तथा सीमाओं पर सार्थक प्रश्न उठाता है। और वर्तमान समय की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था का भी विश्लेषण करता है। उदार हिंदुत्व बनाम कट्टर हिंदुत्व की बहस का इस नाटक में एक नया आयाम दिखता मिलता है। नाटक में गाँधी गोडसे से कहते हैं-

''अगर तुम इन सबको बराबर का हिन्दू नहीं मानते तो तुम खुद भी हिन्दू नहीं हो... पहले तो तुमने देश को छोटा किया नाथूराम... अब हिन्दुत्व को छोटा मत करो... हिन्दू धर्म बहुत बड़ा, बहुत उदार और महान धर्म है गोडसे... उसे छोटा मत करो... दूसरे को उदार बनाने के लिए पहले खुद उदार बनना पड़ता है।''[5]

गाँधी जी प्रेम को वासना से इतर मानते हैं, गाँधी कहते हैं कि अगर प्रेम है तो उसमें आध्यात्मिकता दिखाई देनी चाहिए। प्रेम में छिपाव का भाव ही उसे वासना की ओर ले जाता है लेकिन वजाहत ने इस नाटक में कहीं-ना-कहीं गाँधीवादी विचार को अपने तर्कों द्वारा समझने का प्रयास किया है। नाटक की पात्र निर्मला एक गृहणी है। वह गाँधी के ब्रह्मचर्य पर सवाल खड़े करती है वह कहती है -

''महात्मा हो के तू कैसी बातें कर रहा है... उल्टी गंगा बहा रहा है। चल ठीक है... ऋषि-मुनि, साधु-महात्मा घर-बार नहीं करते तो ठीक है... भगवान से लौ लगाते हैं. .. पर ये तू क्या कह रहा है... आदमी और तू औरत एक दूसरे के लिए नहीं तो क्या आदमी और जानवर एक दूसरे को लिए बने हैं?''[6]

आज समकालीन समय में गाँधीवादी मूल्यों का भी राजनीतिकरण हो गया है। महात्मा गाँधी के स्वच्छता आंदोलन से हिंसा भड़कने का खतरा है। इसलिए जेलर कारावास में भी गाँधी जी व अन्य कैदियों को एकजुट नहीं होने देता इससे हिंसा होने का डर है। इस नाटक के माध्यम से असगर वजाहत आज के गाँधीवादी मूल्यों की समस्याओं का चित्रण करते हैं। पूरा नाटकीय वितान संवादों में है।

'महाबली' नाटक में भक्तिकालीन कवि तुलसीदास के जीवन के एक पक्ष को केंद्र में रखकर सामाजिक ताना-बाना बुना गया है। नाटक के केंद्र में तुलसीदास का चरित्र और परिवेश के रूप में बनारस का मध्यकालीन परिवेश है। इस नाटक की रचना के प्रमुख आधार हैं अकबर द्वारा चलाया गया राम टका जिस पर राम और सीता का चित्र बना है। नाटक का मूल संघर्ष कलाकार और सत्ता का द्वंद्व है। एक ओर तुलसीदास सामान्य जन की भाषा 'अवधी' में रामचरितमानस लिखकर विवाद का कारण बनते हैं वहीं दूसरी ओर अकबर द्वारा प्रस्तावित राज दरबार के राजकवि होने का गौरव भी ठुकरा देते हैं।

तुलसीदास तत्कालीन ब्राह्मणों के बीच विवाद का कारण बनते हैं। क्योंकि वे रामचरितमानस का पाठ सामान्य अवधी भाषा में करते हैं जिससे संस्कृत के बाकी पंडित उनके साथ कलह करते हैं। बात जब किसी भी तरह नहीं सुलझती तो तुलसीदास की छवि धूमिल करने का प्रयास किया जाता है। आजकल यह सामान्य प्रवृत्ति बनकर उभरी है जिसका प्रयोग आमतौर पर राजनीति और मीडिया में देखा जा सकता है। किसी को कमजोर करना है तो उसके चरित्र का हनन करना शुरू कर दो। लोग उस पर यकीन करना छोड़ देंगे। वह स्वयं ही कमजोर हो जाएगा। इस नाटक में तुलसीदास पर एक गर्भवती स्त्री ऐसा ही आरोप लगाती है। असगर वजाहत इतिहास के प्रति गंभीर दृष्टि रखते हैं। वह जानते हैं कि तुलसीदास और अकबर समकालीन थे पर कभी मिले नहीं। इसलिए असगर वजाहत ने तुलसीदास और अकबर के संवाद को तुलसीदास स्वप्न के अंतर्गत रखा है। सम्राट अकबर तुलसीदास से कहता है-

''किसी को गिरफ्तार कर लेना बहुत आसान है गोस्वामी लेकिन किसी को आकर्षित कर लेना बहुत मुश्किल काम है, हम तुम्हें आसानी से गिरफ्तार कर सकते थे लेकिन हमें मुश्किल काम पसंद है।''[7]

सम्राट अकबर तुलसीदास को 'महाबली' नाम से संबोधित करता है क्योंकि वह उन्हें जीत नहीं सका। अंत में अकबर कहता है कि मैं हमेशा इतिहास में दर्ज रहूँगा। इसके जवाब में तुलसीदास कहते हैं कि मैं इतिहास में दर्ज न होकर हमेशा वर्तमान में रहूँगा। यही कला की सबसे बड़ी खूबी है कि उसका सृजन चाहे जब हो लेकिन वह हमेशा वर्तमान में अपना औचित्य बनाए रखती है।

'समिधा' नाटक समकालीन समय का यथार्थवादी नाटक है। यह अध्यात्म के पाखंड पर आधारित है। धनवान

व्यापारी अपने हित के लिए इस पाखण्ड को बढ़ावा देते हैं। उनके लिए अध्यात्म अपना प्रभाव और संपर्क बढ़ाने का माध्यम बन जाता है। एक गरीब आदमी जिसका नाम अंबिका प्रसाद है, को उद्योग समूह के मालिक द्वारा जबरन बाबा बना दिया जाता है। उसके नाम पर एक बड़े आश्रम की स्थापना की जाती है। यह आश्रम एक कॉरपोरेट सेक्टर की तरह काम करता है। असगर वजाहत ने इस नाटक में धूर्त लोगों की असलियत को उजागर किया है। जो धर्म के नाम पर सामान्य जनमानस को ठगता है, लूटता है और अपनी जेब भरता है। एक प्रकार से पूरा का पूरा मार्केट स्थापित हो जाता है जहाँ आप पैसा देकर ईश्वर को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। सबके केंद्र में पूंजी है। वहीं ताज्जुब की बात तो यह है कि आम जनमानस इस धार्मिक अफीम के नशे में सदियों से ठगा जा रहा है लेकिन वह सवाल खड़े नहीं करता। राजनीति के कटु यथार्थ को भी। वर्तमान समय के उपभोक्तावादी दौर में लोगों की धार्मिक आस्था और विश्वास का किस प्रकार मजाक बनाया जाता है। कैसे मीडिया एक बाबा को समाज में स्थापित करती है। आदि प्रपंचों को नाटक में प्रस्तुत किया गया है।

'इन्ना की आवाज' एक लोक कथा पर आधारित एक गम्भीर नाटक है। सत्ता किस प्रकार अपनी छवि को सर्वोत्तम बनाने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है, इसका अच्छा उदहारण यह नाटक इन्ना की आवाज पेश करता है। नाटक का केंद्रीय पात्र इन्ना है, जो एक मजदूर है। वह हंसमुख, कर्मठ तथा प्रकृति प्रेमी है जो घोड़ों को पानी पिलाता है तथा अन्य लोगों की भी सेवा करता है। लोग उसकी गायन कला से बहुत प्रभावित होते हैं।

सम्राट सुल्तान अपने लिए एक भव्य राजमहल का निर्माण करवाते हैं। महल बनने के बाद वह चाहते हैं कि महल के मुख्य द्वार पर उनका नाम लिखा जाए। अनपढ़ कारीगर जब सम्राट का नाम लिखते हैं तो वह अपने आप मिट जाता और उसके स्थान पर 'इन्ना' जो कि एक दास है उसका नाम लिख जाता है। इन्ना का गला बहुत सुरीला है। इन्ना की सज्जनता और उसके सुरीले गीत जनमानस में इन्ना को लोकप्रिय बना देते हैं। सम्राट को जब ज्ञात होता है कि, इन्ना नाम का दास आमजन में बहुत प्रभाव उत्पन्न करने वाला बंधुआ मजदूर है तो राजा को उससे भय उत्पन्न होता है कि वह तख्ता पलट न कर दे इसलिए वह षड्यंत्र कर, पहले इन्ना को 'वजीर ए आजम' (महामंत्री) नियुक्त करता है। इन्ना जैसा सामान्य व्यक्ति राजकाज की कुटिल नीतियों से अनजान होता है। वह जो भी हुक्म करता है उसका प्रतिकूल प्रभाव जन सामान्य पर पड़ता है। इन्ना हुकुम करता है कि 'घोड़ों को चाबुक से न पीटा जाए' तब जनता घोड़ों को कुशल बनाने के लिए उन्हें भूखा रखना पड़ता है बिना मार या प्रताड़ना के घोड़े कैसे तैयार होते?

इन्ना अगला आदेश करता है कि कोई भी नगर में फटेहाल नहीं रहेगा, तब उसके राजकर्मचारी गरीब जनता के वह फटे पुराने कपड़े भी छीन लेते हैं। बदहाली में गरीब आखिर नया कपड़ा पहने तो कैसे? व्यवस्था वजीर के हुकुम को न बजाए तो कैसे? इन घटनाओं से सामान्य जन के बीच इन्ना की लोकप्रियता धूमिल हो जाती है। और उसका नाम भी महल के दरवाजे से मिट जाता है। यहाँ महल का दरवाजा लोक-चित्तवृत्ति के प्रतीक के रूप में आया है। सम्राट बड़ी ही कुटिलता से शराब में जहरीली दवा देकर धीरे-धीरे इन्ना के गले को बेसुरा तथा नष्ट करवा देता है। जिससे उसकी आवाज हमेशा के लिए ख़राब हो जाती है। सम्राट उसको वापस दास बना देता है। शक्तिशाली सम्राट एक गरीब से ईर्ष्या का बदला ले लेता है। इस नाटक के संदर्भ में गिरीश रस्तोगी लिखती हैं-

''इससे अधिक अमानवीय सजा और क्या हो सकती है कि इन्ना न अबकी दुनियां के उपयुक्त रहा न इस व्यवस्था के। उसका कुछ न रह जाना ही अस्तित्वहीनता, अकेलेपन की भयानक त्रासदी है जो नाटक के अंत में हिला देती है।''[8]

नाटक के अंत में सुल्तान का वाक्य बहुत ही मारक साबित होता है वह इन्ना से 'वजीर ए आजम' का पद वापस लेते हुए को कहता है-

''अब तुम न इन्ना हो न हमारे वजीर ए आजम। (कहकहा लगाकर) तुम कुछ भी नहीं हो इन्ना। (ठहरकर ऊँची आवाज में) अब तुम गा भी नहीं सकते चरवाहों का वह नग्मा जिसे सुनकर लोग तुम्हारे दीवाने हो जाया करते थे।''[9]

सुल्तान के आदेश पर इन्ना गाने की कोशिश करता है लेकिन उसकी आवाज स्पष्ट नहीं आती वह फट जाती है। ऐसा कई बार होता है। नाटक को विविध रूप से बारह दृश्यों में बांटा गया है। नाटक की भाषा बोलचाल की हिन्दी है साथ ही उर्दू शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं देखने को मिलता है। असगर वजाहत के नाटकों की भाषा और रंग दृष्टि महत्त्वपूर्ण हैं। असगर वजाहत ने हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं का मिला-जुला रूप अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है उनका प्रत्येक नाटक भारतीय समाज की विशेष प्रवृत्ति और प्रश्नों का प्रतिनिधित्व करता है।

निष्कर्ष

असगर वजाहत समकालीन दौर के प्रमुख नाटककार हैं। आज के समय और समाज की गंभीर समस्याएँ उनकी नाट्य रचनाओं की केन्द्रीय अंतर्वस्तु बनकर सामने आती है। यह समस्याएँ केवल सामान्य जीवन की समस्याएँ नहीं हैं बल्कि वे ज्वलंत मुद्दे हैं जो न केवल अतीत बल्कि आज

के समय में भी गंभीर चुनौती बनकर आज के समाज के सामने खड़े हैं। समकालीन समय में परिवर्तित होते भारतीय समाज के मूल्य, राजनीतिक सत्ता का बदलता स्वभाव, स्त्री पुरुष संबंधों का द्वन्द्व, नई पीढ़ी की भविष्य के प्रति उदासीनता, धार्मिक पाखंड, विभाजन का सामाजिक सांस्कृतिक प्रभाव, ऐतिहासिक पात्रों की तत्कालीन विमूढ़ता आदि विषयों को उनके नाटकों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। असगर वजाहत ने अपने नाटकों में नाट्य संरचना और शैली को लेकर विभिन्न प्रयोग किए हैं। उनके नाटक की कथावस्तु का आधार केवल ऐतिहासिक नहीं है बल्कि सांस्कृतिक गुणों से भी युक्त है। जिस भी परिवेश का चित्र वे नाटक में प्रस्तुत करते हैं उसकी भाषागत विशेषताओं को भी नाटक में स्पष्ट देखा जा सकता है। अरबी फारसी शब्दावली का प्रयोग विभिन्न नाटकों में किया गया है। पात्रों के संवाद छोटे-छोटे हैं लेकिन जहाँ जरूरत पड़ी है वहाँ उन्होंने विस्तार किया है। उन्होंने नाटक के स्वरूप को सामाजिक सरोकार से जोड़ा है। मानवीय समस्याएँ और मानवीय संबंधों की गहन पड़ताल उनके नाटकों की विशेषता है।

अतः स्पष्ट कह सकते हैं कि असगर वजाहत केवल एक अच्छे साहित्यकार ही नहीं है बल्कि भारतीय समाज के इतिहास की गहन समझ और बोध को समझने वाले इतिहास के अध्येता भी हैं।

संदर्भ

1. वजाहत, असगर, आठ नाटक, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019
2. आठ नाटक (जिस लहौर नई देख्या ओ जम्याई नई), असगर वजाहत, पृष्ठ 185
3. बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच, गिरीश रस्तोगी, पृष्ठ 186
4. आठ नाटक (वीरगति), असगर वजाहत, पृष्ठ 79
5. आठ नाटक (वीरगति), असगर वजाहत, पृष्ठ 100
6. आठ नाटक, (गोडसे/गांधी.कॉम), असगर वजाहत, पृष्ठ 289
7. आठ नाटक, (गोडसे/गांधी.कॉम), असगर वजाहत, पृष्ठ 273
8. आठ नाटक, (महाबली), असगर वजाहत, पृष्ठ 27
9. बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच, गिरीश रस्तोगी, पृष्ठ 186
10. आठ नाटक (इन्ना की आवाज), असगर वजाहत, पृष्ठ 77

सोनू (पीएचडी)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल- sonuparjapati671@gmail.com

प्रो. नीलम राठी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल-drneelmrathi@du.ac.in

भारतीय लोकसाहित्य परंपरा में जिकड़ी का लोकचिंतन

–डॉ. महेश कुमार चौधरी

जिकड़ी लोकमनोरंजन की प्रमुख विधा के रूप में जानी जाती है। लोकसंगीत की स्थानीय विधा के रूप में जिकड़ी अलवर, डीग, भरतपुर, कामां, आगरा, अलीगढ़, मथुरा, हाथरस, धौलपुर, करौली, बुलंदशहर, बदायूं तक प्रचलित है। जिकड़ी रामायण, रामचरित मानस, महाभारत जैसे धार्मिक ग्रंथों को आधार बनाकर समाज में नैतिकता का उपदेश देने का प्रमुख माध्यम है। जिकड़ी में सूक्ष्म भावों अथवा कथानकों के स्थान पर खुला और सादा सार्वजनिक आल्हाद होता है। लोक की प्रासंगिकता तभी बनती है जब उसकी दृष्टि सहज और सुलभ होती है। जिकड़ी को भले ही भक्तिगीत कहें, ग्राम्यगीत का प्रकार कहें, नैतिक गीत कहें लेकिन ये हैं लोकगीत। मैं जिकड़ी को उपदेशात्मक लोकगीत की श्रेणी में रखता हूँ। जिकड़ी के माध्यम से उन परंपराओं को भी सामने लाया जाता है जो या तो विस्मृत कर दी गईं या नई पीढ़ी को उनका भान नहीं। हिन्दी साहित्य के मनीषी डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लोकगीतों पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं कि 'ग्रामगीतों का महत्त्व उनके काव्य सौंदर्य तक सीमित नहीं है। इसका एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है- एक विशाल सभ्यता का उद्‌घाटन जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूब गई या गलत समझ ली गई है। ग्राम्य गीत सभ्यता की वेद श्रुति हैं। वेद भी तो अपने आरंभिक युग में वेद श्रुति कहलाये थ। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत थे। और ग्रामगीतों की भांति ही सुन-सुनकर याद किये जाते थे। सौभाग्यवश वेद ने बाद में श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया पर हमारे ग्राम-गीत अब भी श्रुति ही हैं। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है उसी प्रकार ग्राम-गीतों द्वारा आर्यपूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है।"[1]

जिकड़ी को पद्यमय आख्यान कहा जा सकता है। जहाँ-जहाँ ब्रज की बोली का प्रभाव क्षेत्र है वहाँ-वहाँ जिकड़ी गायी और सुनायी जाती है। जिकड़ी की भाषा लोकभाषा होती है। अतः इसमें रोजमर्रा में बोले जाने वाले शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है ताकि जनसामान्य और गाँवों में निवास करने वाली जनता को जिकड़ी आसानी से संप्रेषित हो।

सत्यवान-सावित्री प्रसंग से लोकोक्ति दृष्टव्य है-

कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली
महलों को छोड़ तू छप्पर में सोवेगी।

जिकड़ी गाते समय ढ़ोलक, खड़ताल और हारमोनियम जैसे वाद्य यंत्रों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। जिकड़ी गायन के लिए ना तो बड़े मंच की आवश्यकता होती है और ना ही यवनिका का प्रयोग किया जाता है। गाँव की चौपाल या कोई ऊँचे स्थान को ही मंच का रूप दे दिया जाता है। जो चारों तरफ से खुला होता है। एक ओर वाद्य यंत्रों के साथ संगत करने वाले कलाकार बैठते हैं तो दूसरी ओर तकनीक के शामिल हो जाने से माइक साउंड वाले बैठते हैं। बीच में जिकड़ी गाने वाला बैठता है। जिकड़ी गायक सबसे पहले सभी श्रोताओं को राम-राम सा कहकर अभिवादन कर अपना स्थान ग्रहण करता है। जिकड़ी के मंच पर कोई विशेष मंच सज्जा भी नहीं होती है। जिकड़ी गायक एक-एक कर संगत करने वाले कलाकारों का उत्साहपूर्ण परिचय कराता है। उसके बाद मंगलाचरण कर जिकड़ी की शुरुआत की जाती है। शुरुआत में अपना कंठ खोलने के लिए गायक लंबा अलाप भरता है जिसका आरोह-अवरोह देखते ही बनता है। जिन जिकड़ियों के लेखकों का नाम अज्ञात है उनके लिए बोलते हैं कि- आप जैसे बुद्धिजीवियों ने लिखा है -यथा

वक्त सुबह का हो गया
बज गये साढ़े चार
एक बार दुर्गे मैया की
बोलो जय जयकार।

कई जिकड़ी गायक शुरुआत में भवानी नाम से शुरुआत करके भक्त प्रहलाद के प्रसंग पर आधारित जिकड़ी गाते हैं-

कितनऊँ ल्यौ धमकाय पिताजी, पर राम-नाम नाय छूटैगौ
धरयौ धरायौ घड्यौ पाप कौ, चौराहे पै फूटेगौ।
तन-मन में रोम-रोम में, हरि का नाम समाया है
जब से जन्म लिया है तुमने, भारी पाप कमाया है
बल बुद्धि और तेज तपस्या, ये सब प्रभू की माया है
कोई है जाय पार भंवर से, जो राम-नाम को लूटैगौ
भरयौ भरायौ घड्यौ पाप कौ चौराहे पै फूटैगौ।

सतयुग में जब हिरणाकुश का पाप छाया भारा
नरसिंह रूप लैकैं, तब पेट उसका फारा
नाखून शस्त्र उनके, तो संहार कैसा होगा
कलयुग में आने वाला भगवान कैसा होगा।

जिकड़ी में हरिश्चंद तारामती की कथा, सत्यवान-सावित्री कथा, महाभारत, रामायण के प्रमुख प्रसंग भतृहरि के भजन, सती सावित्री, अरुंधती, शाण्डिली, शतरूपा, अनसूया, संज्ञा, सुमति, मेना जैसी आदर्श नारियों के गीत प्रमुख विषय होते हैं। इसके अलावा पंचकन्याओँ-सीता, द्रोपदी, तारा, अहिल्या और मंदोदरी को आधार बनाकर जिकड़ी लोक में गाई जाती है। कृष्णभक्त मीराबाई, देशभक्त लक्ष्मी बाई और गीता की पौराणिक कथाओँ को भी जिकड़ी गायक संगीत के माध्यम से प्रस्तुत करता हैं। कंजूस सेठ की कथा तथा स्वतंत्रता सेनानी लक्ष्मीबाई के प्रसंग भी गाये जाते हैं। जिकड़ी में जीवन के उच्च मानवीय मूल्यों की प्रतिस्थापना तो है ही साथ ही भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के साथ नई पीढ़ी को भारतीय संस्कृति से परिचित कराने की पहल भी शामिल है। जिकड़ी परंपरागत गायन पद्धति को आगे बढ़ाती है। किसी गाँव में जब भी जिकड़ी गायी जाती है तो पूरे गाँव के लोग एक चौपाल पर इकट्ठा होते हैं। जाति-मजहब, धर्म, रंग-वर्ण, ऊँच-नीच सारे विभेदों से दूर हर कोई जिकड़ी के आनंदातिरेक के रंग में रंग जाता है। यह लोकगीत शैली सामाजिक समरसता की वाहक है। जिकड़ी वास्तव में लोक में रहने वाले लोगों की सामूहिक चेतना को दर्शाने वाला प्रभावशाली माध्यम है। लोकगीतों पर अपनी राय में अभिषेक रोशन लिखते हैं-''किसी भी समाज की लोकपरंपरा उसके लोकविश्वास, लोक व्यवहार और लोकभ्रमों के द्वारा विकसित होती है। इस लोक परंपरा को जीवंत और जागृत रखने का सशक्त माध्यम लोकगीत होता है। ये लोकगीत समाज की आशा-निराशा, संघर्ष सपने, लोक विश्वास औक लोकभ्रम के गीत-संगीत होते हैं जहाँ जिन्दगी जीने की झंकार होती है।"[2]

जिकड़ी लोकगीत सामाजिक अंतर्यात्रा है। इनमें गाये जाने वाले भजनों को सुनकर जहाँ आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है वहीं सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहने का अहसास भी होता है। सामाजिक ताने-बाने की गवाह रही जिकड़ी में लोकजीवन की झांकी देखने को मिलती है। जिकड़ी गायक यहाँ बीच-बीच में आपको समाज और परिवार के दायित्वबोध का दर्शन कराता है वहीं सामाजिक बुराईयों पर भी करारी चोट करता है। यहाँ आधुनिक दृष्टिबोध भी दृष्टिगोचर होता है।

हैं बाप दुखी घर पै भूखी रो रही अम्मा
छोरा गोवर्धन की दै रह्योहै परकम्मा

उक्त पंक्तियाँ हमारे समय की त्रासदी को उद्घाटित करती हैं।

लोक की खासियत कहें या खूबसूरती इनमें आधुनिक संदर्भों और समसामयिक संदर्भ जुड़ते चले जाते हैं। और मौखिक परंपरा से आगे हस्तांतरित होते चले जाते हैं। जिकड़ी में भी आधुनिक संदर्भ जुड़कर पारंपरिक रूप से आगे बढ़ते रहते हैं।

जिकड़ी लोकगीत जीवन को जीने की पद्धति के गीत हैं, मनुष्यता के गीत हैं, सांस्कृतिक गौरव और भारतीय संस्कृति का दर्शन कराने वाले गीत हैं। इन गीतों में जहाँ हमारे गौरवशाली इतिहास के दर्शन होते हैं वहीं ये हमें निराशा के घने तिमिर से निकालकर जीवन को प्रकाशमय बनाकर सकारात्मक दृष्टि से सोचन की प्रेरणा देते हैं। लोक में रची गई जिकड़ी जीवन की सच्चाई को बखान करने वाले आख्यान हैं।

लै माला रोते हैं किस जाप के चरणों में
सब तीरथ होते हैं मां-बाप के चरणों में।
क्यों पुण्य को खोते हो तुम पाप के चरणों में
सब तीरथ होते हैं मां बाप के चरणों में।।

जिकड़ी पूंजीवाद के प्रभाव से बिखरते ताने-बाने की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। लोक में जितनी भी विधायें प्रचलित हैं वे भाषाशास्त्रियों के लिए ऐसा अक्षय स्त्रोत है जो कभी सूख नहीं सकता। इसलिए लोक जब तक जिन्दा है शास्त्र अपनी परिभाषाएँ गढ़ता रहेगा। जिकड़ी लोकगीत ब्रज की लोकसंस्कृति के संवाहक हैं। यही वजह है कि ब्रज की मिट्टी और संस्कारों की सौंधी सुगंध आपको सुनते ही पता चल जाएगी। ''मनुष्य विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश में विकसित होता है और उसकी भाषा भी उसी सांस्कृतिक परिवेश में पनपती-बढ़ती और फूलती-फलती है। वस्तुतः संस्कृति और भाषा का इतना अधिक संबंध है कि वह संस्कृति के अनुरूप ही रूपायित होता है।"[3]

जिकड़ी गायन की एक विशिष्ट शैली है। जिकड़ी गायन में स्वर का उतार-चढ़ाव और कथ्य के अनुरूप संवेदनायें गायन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जिकड़ी गायक जब भी भजन या किसी प्रसंग को सुनाते हैं तो पद्यों को खींचकर गाते हैं। जिकड़ी की प्रस्तुति में किसी-किसी शब्द की आवृति की जाती है। इस आवृति में ढ़ोलक की थाप का संयोजन देखते ही बनता है।

बिन सजनी के साजन अच्छा नहीं लगता

बिन भक्ति के चंदन अच्छा नहीं लगता
बिन सीता के रघुनंदन अच्छा नहीं लगता
एक भाई चाहिये रक्षा के लिए
बिन बहन के रक्षाबंधन अच्छा नहीं लगता।

तेरे कारण हे मनमोहन मीरा ने घर छोड़ दिया
ले इकतारा जोगन बन गई और जग से नाता तोड़ लिया
मन के पिया की बनूं जोगनिया,
तन के पिया को छोड़ दिया
तेरे कारण हे मनमोहन मीरा ने घर छोड़ दिया

बाली नै अभिमान कियौ तो, एक बाण तै मार दियौ
हिरणाकुश अभिमान कियौ तो धर जंघा पै चीर दियौ।

जिकड़ी में लोक जीवन के उतार-चढ़ाव, सुख-दुख, सामाजिक रीति-कुरीति, भावात्मक अभिव्यक्ति, सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास परंपराएँ सब एक उन्मुक्त उच्छवास की तरह हैं। जिकड़ी में ना तो छंदों की बोझिलता है और ना ही अलंकारों युक्त भाषा का कौतुकपूर्ण संयोजन। ये तो लोकमानस की गंगा है जिसका प्रवाह अपनी सरल गति से बह रहा है। जिकड़ी में कोई नियमानुकूल छंद विधान भी नहीं होता है। लिखने वाले का तुकांत अगर मिल जाए तो यही जिकड़ी की सार्थकता है। ना तो जिकड़ी लिखने वाले और ना ही गाने वाले मात्रिक या वार्णिक छंदों के चक्कर में पड़ते हैं और ना ही छंद विधान के किसी नियम की उनको जानकारी है। वे तो सिर्फ और सिर्फ स्वांत सुखाय गाते और सुनाते हैं। जिकड़ी में केवल लय ही प्रधान है। यानि गेयता प्रशस्य है। तुक और लय के आपसी सामंजस्य से जिकड़ी कर्णप्रिय बन पड़ती है। जिकड़ी में कोई पंक्ति बड़ी होती है तो कोई छोटी होती है लेकिन जिकड़ी गाने वाला कलाकार थोड़े बहुत आरोह-अवरोह से उसे साध लेते हैं। यानि छंदोभंग दोष से बचने के लिए गायक कहीं ह्रस्व की दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व बनाकार गाते हैं। अगर कहीं अक्षरों की कमी होती है तो गायक अपनी ओर से और, क्या, कहते हैं, सज्जनों, हां जी, क्या कहिये, तौ भैया, सज्जनो, देवियो जैसे शब्दों को अपनी ओर से जोड़ लेते हैं। इस प्रकार से जिकड़ी में ना तो कहीं गतिरोध पैदा होता है और ना ही गेयता में कहीं अवरोध पैदा होता है। लय ही वास्तव में जिकड़ी की आत्मा है। बिना लय के जिकड़ी निष्प्राण हैं। 'लोकधुनें बहुत सरल होती हैं। परंतु इनकी सरलता का यह अर्थ नहीं है कि इनमें गायन क्रिया के सौंदर्यवर्धक उपकरणों का पूर्णत अभाव है। ऐसे अनेक गायक होते हैं जो सरल से सरल धुनों को गाते समय भी स्वभावत अनेक प्रकार के कुंडली, सवैया, मुकरियों का अनायास ही प्रयोग करते हैं।"[4] जिकड़ी में गाई जाने वाली कुंडली का रूप दृष्टव्य है-

सदा ना रहनौ जगत में, सबसे राखौ मेल
हिलमिल काटौ जिन्दगी, ये चार दिना कौ खेल
चार दिना कौ खेल, धरयौ सब यहीं रह जायेगौ
राजा हो या रंक ये काल सबकूं खा जायैगो

सामाजिक समरसता और भौतिकता के प्रति आग्रह, दोनों के प्रति आगाह उक्त पंक्तियों में किया गया है।

शास्त्रीय संगीत के प्राप्त अनेक रागों का जन्म लोक-धुनों से हुआ है ऐसा कहना कुछ असमीचीन नहीं होगा। 'किसी किसी गीत की स्वर परिधि भी बहुत संक्षिप्त होती है। अधिकांश लोकगीत में तीन, चार अथवा पांच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं। हमारे देश में शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार और विकास के साथ-साथ गाँव और नगर में अधिकाधिक संपर्क बढ़ने के कारण लोकगीतों की स्वर सीमायें भी बढ़ती जा रही हैं।"[5]

जिकड़ी लोकगीत हमारी संस्कृति और संस्कारों से लेकर जीवन क भावनात्मक चित्रों के दर्पण है। इसमें व्यक्ति, समाज, परिवार, देश, राष्ट्र की चेतना की सामूहिक पुकार है। जिकड़ी हमारी मूल संस्कृति के बोलते हुए चित्र हैं। जिकड़ी में जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं है जो प्रतिबिंबित नहीं होता। ऐतिहासिक प्रसंगों को इस तरह से अभिव्यक्त किया जाता है कि आने वाली पीढ़ियाँ उससे सबक ले सकें। एक उदाहरण दृष्टव्य है- कि अहंकार हमेशा टूटता है जब गांधारी कुंती से कहती है मेरा पुत्र दुर्योधन बहुत बलशाली है और वही राज का अधिकारी होगा तो कुंती कहती है ये अभिमान ठीक नहीं -

लाल मेरे पांचों अलवेले री बहना
धमकी मत दे री बहना
तेरे सौ पुत्रन की पार परैना
मेर पुत्रन को काम करारौ
जब तक संग मुरलिया बारौ

इस जिकड़ी में घमंड को चूर-चूर करन का भाव जहाँ समाहित है वहीं ब्रज अंचल में कृष्ण की उपासना की महत्ता भी परिलक्षित हो रही है। दरअसल जिकड़ी के बीच-बीच में बंसी वारे की जय के जयकारे सहज ही सुन और देखे जा सकते हैं।

लोक साहित्य में लोक मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती गुनगुनाती है। लोक जीवन में पग-पग पर लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं। लोक साहित्य उतना ही पुराना है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। लोकगायन की परंपराओं में देश के किसी भी हिस्से में चले जाइये आपको विषय समान मिलेंगे लेकिन गायन की शैली और बोली का अंतर साफ देखने को मिलेगा। सत्यवान सावित्री की कथा हरियाणा में

होने वाले सांग (स्वांग) में प्रमुखता से गाई जाती है। लेकिन जिकड़ी में सत्यवान सावित्री कथा के स्वरूप और गायन में अंतर आ जाता है। जब सत्यवान पेड़ पर चढ़कर लकड़ी काटता है तो उसी पेड़ के नीचे सावित्री अपना रथ को लेकर आ जाती है। सावित्री रथ को खड़ा करके सत्यवान को देखने लगती है तो सत्यवान कहता है-

क्या है इरादा छोरी तेरा, मैं अब तक ना जाना
नहीं मुझे नीचे आना, लौट तू घर को जाना
ये भूखे होंगे तेरे रथ के घोड़ा रे
मुझको पता है तू क्या करवायेगी
खुरपा देगी हाथ में और घास खुदवायेगी
बेच कैं लकडी, लकड़ी बेच कैं गुजर करूं
मुझे मिल जाये धेला आना, नहीं मुझे नीचे आना।

सावित्री कहती है-

मैं सब जग में डोली, तू ही लग्यौ प्यारो
मैं नार बनूं तेरी, तू बनजा मेरौ
पेड़ से उतर कैं आजा, प्यार से मनाऊंगी
करूंगी गुलामी तेरौ, हुकम बजाऊंगी
साथ जीऊंगी उमरिया तेरे, साजन तुमको माना

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज कहते हैं कि- 'भारतीय लोक संस्कृति श्रमशील समाज की संवेदनात्मक आवेगों की अभिव्यक्ति रही है। धरती के हर हिस्से के मूल निवसियों ने अपनी लोक संस्कृति की रक्षा की है। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पनपती है। लोक संस्कृति के उपासक या संरक्षक बाहर की पुस्तकें न पढ़कर अन्दर की पुस्तकें पढ़ते हैं। लोक संस्कृति की शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा-भक्ति की प्राथमिकता रहती है। उसमें अविश्वास, तर्क का कोई स्थान नहीं रहता। लोक संस्कृति में श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है, वह अन्तः सलिला सरस्वती की भाँति जनजीवन में सतत प्रवाहित हुआ करती है। लोक संस्कृति एवं लोकोत्तर संस्कृति तथा विश्व की सभी संस्कृतियों का बीज एक ही है। यह बीज लोक संस्कृति ही है।"[6]

जिकड़ी लोकगीतों के विश्लेषण ये बताता है कि साहित्य की जड़ें लोक से ही अभिसिंचित हैं और लोक मातृशक्ति के बिना अधूरा है। जिकड़ी पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर भी करारी चोट करती है। हमारा समाज बेटा और बेटी में जो विभेद करता है उनको विभिन्न प्रसंगों और संदर्भों के माध्यम से उजागर कर जिकड़ी लोक के महत्त्व को कई गुना कर देती है।

बेटी बिना घर आंगन सूना,
बटी एक चमकता मोती है
बेटा तो है जिगर का टुकड़ा,
बेटी नयनों की ज्योति है
बेटे को है हर सुख-सुविधा, पर बेटी कष्ट उठाती है
जहां से बेटा आता है, वहीं से बिटिया आती है।

सतीत्व के तेज को पौराणिक संदर्भों के माध्यम से समीचीन बनाकर प्रस्तुत करन की कला जिकड़ी गायन स्त्री सशक्तिकरण की पहल का एक सामूहिक प्रयास भी है। जिकडी में जब ये प्रसंग सुनाया जाता है कि शाण्डिली कौशिक (सांडली) ने अपने सतीत्व के बल पर सूर्य को उगने से ही रोक दिया था तो मातृशक्ति के प्रति सुनने वाले लोग श्रद्धावनत होकर अपना शीश झुका लेत हैं यथा-

एक बेटी थी सती सांडली,
अपना धर्म ना हिलने दिया
अपने पतिव्रत बल के कारण
ना सूरज को निकलने दिया
श्राप मिला जब पति अपने को,
पीड़ा हृदय में होती है
बेटा तो है जिगर का टुकड़ा
पर बेटी नयनों की ज्योति है।

ब्रज अंचल के गाँवों में आज भी बच्चे के जन्मोत्सव से लेकर, विवाह और मांगलिक कार्यों में जिकड़ी खूब गाई जाती है। जिसमें गाँव के हजारों लोग सुनने के लिए आते हैं। इसका क्रेज टेलीविजन और मोबाइल के आने के बाद भी कम नहीं हुआ बल्कि जिकड़ी पूरी तकनीक के साथ आप यूट्यूब पर देख सकते हैं। अच्छी वॉयस क्वालिटी के साथ फिल्मांकन और जिकड़ी चैनलों पर मिलियन सब्सक्राइबर इस बात का प्रमाण हैं कि पूर्वी राजस्थान की ये एक पॉपुलर विधा है। स्त्री सशक्तिकरण के युग में सैंकडों की संख्या में महिला गायक पूरे आत्म विश्वास के साथ ऐतिहासिक और धार्मिक प्रसंगों को जब सुनाती हैं तब सुनने वाला भाव-विभोर होने से अपने आपको रोक नहीं पाता। जिकड़ी लोकगीतों में प्रायः सभी रस पाये जाते हैं लेकिन प्रधानत भक्ति रस और करूणरस की उपलब्धि होती है। जिकड़ी की रसात्मकता मानव के हृदयों को शीतलता प्रदान कर आनंद की अनुभूति देती है।

संदर्भ

1. लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति परंपरा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य- वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ.सं. 273-274
2. आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक, जुलाई-सितंबर 2013 पृ.सं.-115
3. लोकजीवन की अभिव्यक्ति के विविध आयाम, पृ.सं. 42
4. लोकसाहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.सं. 201
5. लोकसाहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.सं. 201
6. भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, एम.ए., सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ-24. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

डॉ. महेश कुमार चौधरी
असि. प्रोफेसर, शहीद भगत सिंह कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल- lokparampra@gmail.com

RNI NO.: DELHIN/2008/27588
An International Peer Reviewed Research Journal
Website : www.bahurinahiawana.in

साधो भाई, जीवत ही करो आसा॥
जीवत समझे, जीवत बूझे, जीवत मुक्ति निवासा॥
जियत करम की फांस न काटी, मुए मुक्ति की आसा॥
तन छूटे जिव मिलन कहत है, सो सब झूठी आसा॥
साधु संत की करै बंदगी, कटै करम की फांसा॥
सत्त गहै सतगुरु को चीन्है, सत्त नाम विस्वासा॥
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा॥1

–कबीर

1. महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन
4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002,
प्रथम संस्करण, 2017, पृष्ठ संख्या 382, पद संख्या 10